बृहत् जैन शब्दार्णव

द्वितीय खंड।

संग्रहकर्ता—

स्वर्गीय पं० विहारीलालजी जैन मास्टर 'चैतन्य' C. T. बुलंदशहरी–अमरोहा।

सम्पादक—

श्रीमान् ब्रह्मचारी सीतलप्रसादजी,

[समयसार, नियमसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय, तत्वभावना, स्वयंभूस्तोत्र, समाधिशतक, आत्मानुशासन आदिके टीकाकार तथा प्रतिष्ठापाठ, गृहस्थधर्म, जैनधर्म प्रकाश, प्राचीन जैन स्मारक, मोक्षमार्ग प्रकाशक आदि२ ग्रंथोंके संपादक।]

प्रकाशक—

मूलचन्द किसनदास कापड़िया,

मालिक, दिगम्बरजैनपुस्तकालय, कापड़ियाभवन–सूरत।

"जैनमित्र" के ३४ वें वर्षके ग्राहकोंको

भेंट।

भूमिका।

अमरोहा निवासी मास्टर विहारीलालजी जैन चैतन्य एक परोपकारी धर्मात्मा थे। उन्होंने बृहत् जैन शब्दार्णवके लिये शब्दोंका संग्रह उनके संकेतोंके साथ एक रजिष्टरमें सम्पादन कर लिया था। तदनुसार वे प्रथम ही जिल्द प्रकाशित करा सके और अचानक कालने उनके तनको चर्वण कर लिया। प्रथम जिल्दमें वे अकारके 'अणण' शब्द ही तक देसके। मास्टरसाहबने बहुत विस्तारके साथ शब्दोंके अर्थ लिखे। मेरे वे धर्ममित्र थे। मुझे बहुधा यह ध्यान आजाया करता था कि यह कोष यदि पूर्ण कर दिया जाय तो जिनवाणीके स्वाध्याय करनेवालोंको बहुत ही लाभ हो। ऐसा विचारकर मैंने इस वर्ष अमरोहा जिला मुरादाबादमें अपना वर्षाकाल बिताया, जहां उक्त माष्टर साहबका संग्रहीत पुस्तकालय है। और नगरके बाहर बागमें ठहरा व रात्रि दिन परिश्रम करके आज उस कोषकी पूर्ति की है। मैंने जिस विस्तारसे माष्टर साहबने लिखा है उस विस्तारसे लिखनेके विचारको इसलिये छोड़ दिया कि वैसा कार्य होनेके लिये कई वर्षोंकी आवश्यक्ता है या एकसाथ कई विद्वानोंका मेल मिलाना है। इसलिये इस कार्यको असंभव जानकर शब्दोंके अर्थ व भाव अति संक्षेपमें लिखकर इस बृहत् कोषको पूर्ण किया। हर शब्दके साथ यथासंभव उसका संकेतिक शास्त्रका नाम व पत्र व गाथा व श्लोक नं० देदिया गया है। जिससे शब्दखोजी इस विशेष ग्रन्थको देखकर विशेष मालूम कर सकें। माष्टर साहबने इस कोषमें जैन जेम डिक्शनरी जिसको स्व० बा० जुगमन्दरलाल जज हाईकोर्ट इन्दौरने संकलित किया था, उसके शब्द व पं० गोपालदासजी बरैया कृत जैन सिद्धांत प्रवेशकाके सब उपयोगी शब्द इस कोषमें आगए हैं।

हरएक स्वाध्याय करनेवाले भाई बहनको उचित है कि वह इस कोषको अपने पास रक्खे। यदि कोई इस कोषको ही मात्र स्वाध्यायमें लेकर शब्दोंको समझ जायगा तो उसे बहुतसी प्रसिद्ध व उपयोगी जैन सिद्धांतकी बातोंका ज्ञान होजायगा।

मैंने अपनेमें शक्ति न होते हुए भी इस कार्यको मात्र जिनवाणीके प्रेमवश किया है व पूरी सावधानी रक्खी गई है कि जो अर्थ शास्त्रमें है वही प्रगट किया जावे। तथापि प्रमादवश यदि कोई भूल होगई हो तो विद्वान पाठकगण क्षमा करेंगे व सूचित करनेकी कृपा करेंगे।

अमरोहा।
कार्तिक सुदी ११ वीर सं० २४५७
वि० सं० १९८७ रविवार ता० २-११-१९३०

जैन धर्मका सेवक—
ब्र० सीतलप्रसाद।

× × ×

नोट——इस बृहत् शब्दार्णव द्वितीय भागमें ६०६९ शब्द आए हैं व प्रथम भागके ५२५ शब्दोंको मिलाकर दोनों भागोंमें ६५९७ शब्द हुए हैं। तथा प्रथम भागमें १२०० अन्य शब्दोंके अर्थ भी दिये गये हैं। इस कोषका लाभ जैनमित्रके ग्राहकोंको बिना मूल्य ही मिल जावे, इसलिये जैन समाजके धर्मी महाशयोंसे अपील की गई तो हर्षकी बात है कि नीचे लिखे महाशयोंने [illegible] कृपा हुए हैं—

१००) रायबहादुर साहू जुगमंधरदासजी — नजीबाबाद
१००) धर्मपत्नी रायबहादुर लाला सुलतानसिंहजी — दिहली
१००) ला० गिरधारीलाल प्यारेलालजी एज्यूकेशन फंड दिहली मा० ला० आदिश्वरलालजी — ,,
१००) लाला मुसद्दीमल झून्नूलालजी जौंहरी — ,,
१००) ,, मक्खनलालजी ठेकेदार — ,,
१००) ,, कुडियामल बनारसीदासजी, सदर — ,,
१००) ,, मेसर्स जैनी ब्रदर्स कानपुरवाले — ,,

इसके अतिरिक्त जो शेष खर्च हुआ वह प्रकाशकजी—श्रीमान् सेठ मूलचन्द किसनदासजी कापड़िया—सूरतने लगानेकी उदारता दर्शाई है। अतः इस उत्तम शास्त्रदान करनेवाले इन दानी महाशयोंको कोटिशः धन्यवाद है। तथा उपरोक्त रकम एकत्रित करके भिजवानेमें ला० जौंहरीमलजी जैन सराफ देहलीने बहुत परिश्रम किया था उसके लिये आप भी धन्यवादके पात्र हैं।

मेरे भ्रमणमें रहनेके कारण प्रुफ मैं स्वयं नहीं देख सका इससे छपनेकी कई भूलें रह गई हैं। जिनका शुद्धाशुद्धिपत्र लगा दिया है, पाठकगण कष्ट उठाकर उन्हें शुद्ध करके रख लेंगे। मेरी अंतिम भावना है कि इस कोषका प्रचार किया जावे जिससे स्व० माष्टर बिहारीलालजीका परिश्रम सफल हो।

सागर
ता० २२-३-३४. } ब्र० सीतल।

निवेदन।

इस बृहत् जैन शब्दार्णव कोषका संपादन व प्रकाशन ऐसी कठिन परिस्थितिके बीचमें हुआ है कि उसका उल्लेख करना हम उचित समझते हैं। पं० बिहारीलालजी मास्टर—अमरोहाने वर्षोंतक जीतोड़ परिश्रम करके सारे जैन शब्दोंकी नोट तैयार करदी थी, फिर उसका संपादन करते २ निजी खर्चसे उसके क्रमशः छपानेका भी आपने प्रारम्भ कर दिया था। अर्थात् इसका प्रथम भाग वीर सं० २४५१ में प्रकट हुआ था परन्तु उसके बाद आप परलोकवासी होगये। आपकी सब लिखी लिखाई नोट ऐसी ही पड़ी थी जिसको पूरा करना सहज कार्य न था। परन्तु श्रीमान ब्र० सीतलप्रसादजीने कितना भी परिश्रम करना पड़े यह निश्चय कर अपूर्ण कार्य पूर्ण करनेका बीड़ा अमरोहा निवासी भाइयोंकी सूचना व अपने जैन साहित्यके प्रेमवश उठाया और वीर सं० २४५७ में अमरोहामें चातुर्मास करके वहां इस कार्यको प्रारम्भ किया व रातदिन इसी कार्यमें ऐसे संलग्न रहे कि भूख, तृषा, परिश्रम, नींद आदिकी परवाह न की। इसीसे इस कार्यको करीब १०-१२ आनी भाग तैयार होते२ आप अमरोहामें ऐसे बीमार पड़ गये कि बोलने चालने व उठने बैठनेकी भी आपको ठीक२ सुध न रही। उस समय हमें वहां बुलानेके लिये ब्रह्मचारीजी व वहांके भाइयोंकी ओरसे दो तीन तार आये, तब हम यहांसे अपने चि० बाबूभाईको साथ लेकर अमरोहा गये व ब्रह्मचारीजीसे रात्रिको मिले। तब आप लेटे हुए थे, नाड़ी भी धीमी२ चल रही थी व आप कुछ होशमें थे। उस समय हमसे आपने

कहा कि मेरी जो अंतिम इच्छा है उसका यह कागज आप लेवें और इसी मुताबिक व्यवस्था करना। तथा आप व पं० परमेष्ठीदासजी मिलकर किसी प्रकारसे भी इस कोषका काम अवश्य२ पूरा करना। तथा मेरा सब साहित्य विषयक सामान आप सम्हाल लें व उसकी उचित व्यवस्थित करना क्योंकि मेरे जीवनका मुझे भरोसा नहीं है। ऐसा कहते२ आपकी आंखोंमें अश्रु आगये थे! फिर सुबह होते ही जहां आप कोषका कार्य कर रहे थे वहां हम गये और सब सामग्री सम्हाली। परन्तु सुबहसे आपकी बीमारीमें कुछ पल्टा आया व धीमे२ आपको आराम मालूम होने लगा। तब दो दिन ठहरकर हम ब्रह्मचारीजीकी आज्ञासे सूरत वापिस लौटे और श्रीमान् ब्रह्मचारीजीको १५-२० दिनमें आराम होगया व आपने तुर्त ही अपूर्ण कार्य हाथमें लिया और उसे फिर परिश्रम करके पूर्ण किया। व उसके बाद ही अमरोहा छोड़ा था।

अब ग्रन्थका संपादन तो हो गया परन्तु उसका प्रकाशन करना सहज न था क्योंकि ऐसे ग्रन्थ अधिक नहीं बिकते व प्रथम भाग बहुत कम बिका था। अतः इसको अब कैसे प्रकट करना चाहिये इसी विचारमें आप संलग्न रहते२ दो तीन माह बाद सूरत पधारे और हमसे इस विषयमें परामर्श किया। तो अंतमें हम दोनोंने यह निश्चय किया कि कुछ सहायता प्राप्त करके इसको छपाकर 'जैनमित्र' के ग्राहकोंको भेंटमें दिया जावे तो अच्छा प्रचार होजावेगा। यदि इसके लिये कमसे कम ८००) श्री० ब्रह्मचारीजी इकट्ठे कर दें तो शेष हमने लगानेका स्वीकार किया। फिर श्री० ब्रह्मचारीजीने देहली जाकर देहली व नजीबाबादसे ८००) की सहायता लिखवाई जिसमें १००) नगद मिले। उसके बाद छपाईका काम धीरे२ होसका व अंतमें श्री० ला० जौहरीमलजी शर्राफ देहलीके परिश्रमसे कुल ७००) वसूल हुये व एक दानीके १००) स्वीकार किये हुये नहीं आये तब शेष १००) भी हमें लगाने पड़े। इस प्रकार इस महान ग्रंथको पूर्ण छापकर प्रकट किया है। अतः इस ग्रन्थके संपादन व प्रकाशन कार्यके लिये श्रीमान् ब्रह्मचारी सीतलप्रसादजीने जो जीजानसे परिश्रम किया है उसके लिये सारा जैनसमाज व विशेष करके 'जैनमित्र' के पाठक व हम ब्रह्मचारीजीके हृदयसे सदाके लिये आभारी रहेंगे। अब हम जैनमित्रके ग्राहकोंसे निवेदन करेंगे कि वे इस बृहत् जैन कोषको सम्हाल कर रखें तथा जब कभी कोई भी जैन शब्दका अर्थ जानना हो तो इस कोषका उपयोग करें तथा इस कोषको प्राप्त होते ही एक-धार इसका स्वाध्याय ध्यानपूर्वक शांतिसे अवश्य कर जावें जिससे आपको जैनधर्मके सिद्धांतका ज्ञान होजावे।

इस ग्रन्थका प्रथम खंड जिसमें 'अ' से 'अण्ण' तकके शब्द हैं व जो विस्तृतरूपसे स्वाध्याय करने योग्य लिखा है उसे हरएक पाठक बिजनौरसे या हमसे मगा लेवें व ग्रंथ पूरा करलेवें तब ठीक होगा।

अंतमें हम फिरसे श्रीमान् ब्रह्मचारीजीका व इस ग्रन्थमें ७००) सहायता देनेवाले शास्त्रदानी महानुभावोंका आभार मानकर इस अल्प निवेदनको पूर्ण करते हुए आशा रखते हैं कि ऐसे शास्त्रदानका अनुकरण जैन समाजमें अधिक२ होता रहे।

सूरत-वीर सं० २४६०
प्र० वैशाख सुदी ३
ता० १५-४-३४.

जैनसमाज सेवक—
मूलचंद किसनदास कापड़िया,
प्रकाशक।
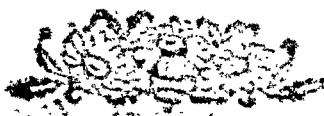
इस ग्रन्थमें प्रयुक्त संकेताक्षरोंकी सूची।

संकेत	अर्थ
अ.	अध्याय
अ. म.	अर्धमागधी कोष
अना.	अनगार धर्मामृत
आ. प.	आलाप पद्धति
आदि.	आदिपुराण
आ. सा.	आराधना सार कथा
आ. मी.	आप्त मीमांसा
इ.	इतिहास
ई.	ईस्वीसन्
उ.	उक्तं च
उ. पु.	उत्तरपुराण
क.	कर्णाटक जैन कवि
कि. कि.	किशनसिंहकृत क्रियाकोष
क्रि. मं.	क्रिया मंजरी
कृ.	कृष्णपक्ष
गा.	गाथा
गु. भू. श्रा.	गुणभूषण श्रावकाचार
गृ.	गृहस्थ धर्म
गो. क.	गोमट्टसार कर्मकांड
गो. जी.	गोमट्टसार जीवकांड
च.	चर्चाशतक
च. स.	चर्चा समाधान
चा.	चारित्रसार
चन्द्र.	चन्द्रप्रभ चरित्र
जै. सि. प्र.	जैनसिद्धान्त प्रवेशिका
जै. हि.	जैन हितैषी
त. सार.	तत्वार्थ सार
त. सू.	तत्वार्थ सूत्र
तत्वा.	तत्वार्थ राजवार्तिक
त्रि.	त्रिलोकसार
तीर्थ. द.	तीर्थ दर्शक
दि. ग्र.	दिगम्बर जैन ग्रंथकर्ता और उनके ग्रंथ
द्रव्य.	द्रव्यसंग्रह
धर्म.	धर्मसंग्रह श्रावकाचार
नि.	निर्वाण
न्या.	न्यायदीपिका
प.	पर्व
प. पु.	पद्मपुराण
पु.	पुराण
पु.	पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय
प्रति.	प्रतिष्ठासार आशाधर
प्र.	प्रकरण
प्र. खंड.	प्रथम जिल्द
पं.	पंचास्तिकाय
प्र. सा. सं.	प्रतिष्ठासार संग्रह सीतलसाकृत
प्रा.	प्राकृत
प्र. जि. पृ.	प्रथम जिल्द पृष्ठ
प्रा. जै. इ.	प्राचीन जैन इतिहास
ब. स्मा.	बम्बई प्रा. जैन स्मारक
भग.	भगवती आराधना
भगवती.	भगवती आराधना सार
मू.	मूलाचार
या. द.	यात्रा दर्पण
रत्न.	रत्नकरण्ड श्रावकाचार
राज. या रा.	राजवार्तिक
ल.	लब्धिसार
वि. सं.	विक्रम संवत
विद्व.	विद्वद्रत्नमाला
बृ. वि. च.	बृहत् विश्वचरितार्णव
व्या.	व्याख्या
श.	शब्द
शिक्षा.	जैनसंप्रदाय शिक्षा
शु.	शुक्लपक्ष
श्रु.	श्रुतावतार कथा
श्रा.	श्रावक धर्मसंग्रह
श्लो.	श्लोकवार्तिक
सर्वा.	सर्वार्थसिद्धि
सा.	सागारधर्मामृत
सि. द.	जैनसिद्धान्त दर्पण
स्था.	स्थानांगार्णव
सू.	सूत्र
सं.	संवत
हरि.	हरिवंशपुराण
क्ष.	क्षपणासार
क्षे.	क्षेपक
ज्ञा. ज्ञाना.	ज्ञानार्णव

शुद्धाशुद्धि पत्र ।

पृ.	का.	ला.	अशुद्धि	शुद्धि
२८१	२	३२	२ पहर	८ पहर
२८७	१	१६	८–६	६
२८९	१	३	बनाया हो	बनाया हो उसे लेते हैं
,,	,,	१८	अधः	अन्य
२९३	२	२४	३३ जाति	२३ जाति
२९४	२	२८	अवस्था	अनवस्था
२९५	१	१	पासवाला	व्यासवाला
,,	,,	८	शास्त्रका कुंड	शलाका कुंड
,,	,,	२४	माननेमें	अनादि माननेमें
२९८	२	९	नहीं रखना	रखना
३०७	१	१६	अप्रत्याख्यान	प्रत्याख्यान
,,	२	१७	अनुपम	अनुभय
,,	,,	२४	अनुभवमई	अनुभयमई
३०८	१	२५	पर मारद्रा	परमाणु
३०९	१	२७	पदार्थ	परार्थ
३१०	१	२३	(२६४–१)	($२^{६४}$–१)
३१३	१	२४	पासवाले	व्यासवाले
,,	२	७	क्रमानुष	कुमानुष
३१४	१	२८	विमाए	विद्याएं
३१४	२	१७	हेतक	शोक
३१६	१	२९	रुदन	भोजन
३२५	२	३५	प्र०	पु०
३२६	२	२०	दुःखी	दुखर
३३०	१	१३	घम	घन
३३०	१	१५	वैसुसिक	वैसृसिक
३३१	२	१३	वादी न	वादी व
३३२	१	१५	पारस	या रस
३३६	१	१	अमृतां	अमृतं
३३६	१	२७	हवि	द्वीप
३३८	१	५	योग्य	योग
३३८	१	१५	ानेमें	अन्तमें
३४०	१	१८	तक	एक
३४१	१	३०	देडक	इन्द्रक
३४१	२	२८	निवृत्ति,	पदार्थ,
३४१	१	३५	एक अन्तर	एक अक्षर
,,	२	६	एक हटि	एकही
३५२	२	२२	सूर्यगुल	सूच्यंगुल
३५५	१	३५	त्यागी हो	त्यागी न हो
३६२	१	२१	त्रिमोंके	सिद्धोंके
३७०	२	२३	घात करना	घात न करना
,,	२	२५	न होने देना	होने देना
,,	२	३१	घात न करना	घात करना
३७२	१	९	ज्ञान उल्टे	उल्टे
३७४	१	१२	अनुष्ट	अनुत्तर
,,	१	३५	कर लेंगे	करलें
३८५	१	२१	पढते	पतले
३८७	१	८	पूर्णनयका	पूर्ण
३९०	२	४	अन्वक	अधिक
३९२	१	५	७×७×२×२	७×७×३८$\frac{१}{२}$×२
३९९	१३	३४	विनन	विनय
४१२	२	२३	द्रव्यकर्म नोकर्म,	नोकर्म
४१५	१	३५	४४०००	४२०००
४१६	२	११	कवंति....भ्रांति	कपंतिहिंसंतिंःति
४२०	२	१७	भीतरसे	भीतसे
४२३	२	३१	वेवगाथा	वेद गाथा
४२५	२	२५	बतावे	बचावे
४२७	१	३	निष्ठायक	निष्ठापन
,,	१	८	निष्ठायन	,,
४२९	१	८	सर्ग	सर्व
४३१	१	१८	अनायोग	अनाभोग
४३२	१	१	जबतक	जब एक
,,	,,	२८	कालितक	फालितक
४३३	१	९	निनदस	निजरस
४३९	१	१	रहित	सहित
,,	,,	२	पापोंका	भावोंका
४४२	०	१	वर्गणादि	वर्णादि
४४५	०	१३	३०६	३६
४४८	२	३	पहुंच	पहुंचा
४५२	२	१	दक्षिण	पश्चिम
४५५	१	१३	केवलज्ञान हुए	केवलज्ञान होना
४५५	२	३३	$\frac{८×२×१×८}{२}$	$\frac{८×[illegible]×१×८}{२}$
४५५	२	३०–३४–३५	घाति	[illegible]
४६१	१	५	६००००	[illegible]
४६१	२	१८	[illegible]	[illegible]
४६१	२	२	[illegible]	[illegible]

४६३	२	२०	भाव	माप
४६७	१	३४	वे छन्ने	वे छन्नेमें
४६९	१	४	४२	४१
४७३	१	३४	सामायिक	स्वाभाविक
४७६	१	८	आस्रव	संवर
४७८	१	१३	तप्त डाला	तप्त जल
४७९	२	१९	एक	आठ
४८३	२	२	निमित्त	विशुद्ध
,,	२	१४	२४+४	२४×४
४८७	१	१९	क	दंडक-देखो शब्द "आगत" भरतके कुम्भकार
४८८	२	१६	न छोड़ना	छोडना
४९०	१	७	वाचन	पाचन
४९१	१	९	वात मुण्ड	वाक्मुण्ड
४९१	१	२९	भक्ति	शक्ति
,,	२	२६	निर्माण	निर्वाण
४९३	२	२९	छत्रनियें	छत्रनिर्मे
४९८	१	२७	पुत्र	पुंज
५००	१	१२	व्यवहार	व्यय
५०१	१	१९	आकार	आकर
५०३	२	३०	१२वां	११वां
५०४	२	३१	नमा	नमो
,,	२	३४	कालि	फालि
,,	२	३९	विषेकों	निषेकों
५३२	२	९	योग्य	योग
५३३	१	३२	चार स्थान	चार मास
,,	२	८	१९	२९
५३४	२	२१	भोग	भागे
५३९	२	१६	२१००	२१०००
५४२	१	९	महोरन	महोरग
,,	१	११	मगा	मगर
५४७	२	१२	गुल	गुण
५४९	२	१२	एकांक	एकांत
५५३	२	४	प्रत्यभिमान	प्रत्यभिज्ञान
,,	२	६	नहीं है	वही है
५५४	१	१४	अनुपम	अनुमय
,,	२	१	कालि	फालि
,,	२	४	सुल	मूल
,,	२	१८	आश्रय	आस्रव
५५७	२	३०	मनुभव	अनुभय
५६७	२	४	भव्य	मव्य
,,	२	१७	आप्त	आत्म
,,	२	२३	भव्यान्तर	भवान्तर
५६८	२	२१	असंयत	असिद्ध
,,	,,	२६	१९	२९
,,	,,	३१	अपने	आगे

५६८	१	७	४+अ०क०	४ अ० क०
,,	९	११	१८	११
,,	२	९	६	२
,,	२	७	२० अभव्यत्व	२०+अभव्यत्व
,,	२	१९	३९	उप०
,,	२	२२	८४	८=४
,,	२	२४	प्रसिद्धत्व	असिद्धत्व
५७३	१	२१	आधार	आचार
५७५	२	३०	बहु विष	बहु विध
५७८	२	२९	बच्चा	बच्ची
५८०	२	२७	१००	१०००
५८१	२	३४	२५००	६२५००
५८४	२	२	नख	नरक
५८६	२	११	जैनीके	जैमनीके
५८७	१	९	७४ दिन	३४ दिन
५९९	१	१३	पूजनदेव	रजतदेव
५९९	१	३१	सप्तक्य	सत्यकी
६१७	१	१२	नेर	और
६२४	१	११	१९५२	१८५२
६३०	२	१७	जो	जैसे
६३५	२	१०	हावन	हासन
,,	,,	१९	प्रतिज्ञा	प्रतिष्ठा
,,	९	२०	श्रवण	मध्यमें हैं श्रवण
६३७	२	७	श्रुतनिषद्ध	श्रुतनिबद्ध
,,	२	२९	१० उपवास	१० उपवास १०
६३८	२	३३	नाम	समय
,,	२	३५	गुण	स्मरण
६३९	२	९	१	१०
६४०	१	९	६९६४	८०६४
,,	१	१९	१५७२	१५८७२
६४१	१	२८	४५	४४
६४४	१	३४	वाठ	वाळ
६४६	१	४	भूसा	मूसा
६४७	१	४	शक	चक
६४७	२	१८	फैटार	फैठार
६४८	२	२३	हीन	तीन
६५१	२	९	फँसना	फैलना
६५५	१	११	सक्षम	सक्षय
६६५	१	१४	हरितपेण	हरितवर्ण
६७०	२	२२	स्तिति	स्थिति

बृहत् जैन शब्दार्णव ।

द्वितीय खण्ड ।

मङ्गलाचरण ।

अर्हत् सिद्धाचार्य गुरु, साधु चरण नमि माथ ।
कोष कार्य आरंभमें, जिनवाणी दे साथ ॥ १ ॥

*अ

(प्रथम खण्ड पृ० २८० से आगे)

अतदाकार—जिसका आकार निश्चित न हो । सं० प्रतिमा या मूर्ति या स्थापना । जिसकी मूर्ति या प्रतिमा या स्थापना की जाय उसका वैसा ही रूप न बनाकर किसी भी वस्तुमें उसको मान लेना । जैसे शतरंजकी गोटमें हाथी, घोड़ा, बादशाह मानना । तदाकार स्थापनामें वैसा ही रूप बनाकर स्थापना करते हैं जिससे रूप देखते मात्र हीसे देखनेवालेको जिसका रूप है उसका स्वरूप झलक जाता है परन्तु अतदाकार स्थापनामें दूसरेके कहनेसे ही मालूम पड़ता है कि यह अमुककी स्थापना है । "परोपदेशात् एव तत्रसोऽयम् इति" (श्लो० अ० १ सू० ५ श्लोक ५४) ।

अतिकाम—रावणकी सेनामें रामके साथ युद्ध करते हुए एक योद्धा (पा.इ. २ पृष्ठ १६७) ।

अतिकाय—महोरग जातिके व्यन्तर देवोंके एक इन्द्रका नाम । आठ तरहके व्यंतर देव होते हैं । हरएकके दो दो इन्द्र दो दो प्रत्येन्द्र होते हैं । १६ इन्द्रोंके नाम हैं—किन्नर जातिके किन्नर व किंपुरुष, २ किंपुरुषोंके सत्पुरुष, महापुरुष, ३ महोरगोंके अतिकाय, महाकाय, ४ गंधर्वोंके गीतरति, गीत यश, ५ यक्षोंके पूर्णभद्र माणिभद्र, ६ राक्षसोंके भीम, महाभीम, ७ भूतोंके प्रतिरूप, अप्रतिरूप, ८ पिशाचोंके काल, महाकाल । (सर्वार्थ० अ० ४ सू० ६)

अतिक्रम—उल्लंघन, मर्यादाको लांघ जाना । जो प्रमाण किया हो उससे अधिक रख लेना सो प्रमाणातिक्रम है (रा० अ० ७ सू० २९), छोटा मनका दोष, कोई प्रतिज्ञा करी हो उसके खंडनका एक भाव मात्र आकर रह जाना अर्थात् मनकी शुद्धिमें दोष लगना (अमितगति द्वा० श्लोक ९) अतीचार, प्रतिक्रमण ।

अतिक्रमण—अतिक्रम, इंद्रिय विषयकी इच्छा (मू० १०२६) ।

अतिक्रांत—उल्लंघन कर गया ।

अतिक्रांत-प्रत्याख्यान—चतुर्दशी आदि पर्वमें उपवास करके उनके बीतनेपर भी जो पूर्णिमा आदि तिथियोंमें चार प्रकारके आहारका त्याग कर देना (मू० ए० ४२६) ।

अति गृद्ध—राजा—यह भरतचक्रीका नववां पूर्व भव । तब यह कुकर्म करके नर्क गया था । (आदि० ४७) ।

अतिचार—मनमें [illegible] व [illegible] ली हुई प्रतिज्ञाका एक देश भंग । विषयोंमें [illegible] करना, (मू० १०२६) ।

क्षतिं मनःशुद्धिविधेरतिक्रमं,
व्यतिक्रमं शीलवृतेर्विलंघनम् ।

* प्रारम्भ ता० १९-७-२० [illegible] ।

भमोऽतिचारं विषयेषु वर्तनं,
वदन्त्यनाचारमिहातिसक्तिताम् ॥९॥

अर्थ-मनके भीतर व्रतकी शुद्धताकी कमीके भाव होना अतिक्रम है। व्रतके तोड़नेके भाव होना व्यतिक्रम है। इंद्रिय विषयमें आचरण कर लेना अतिचार है। अत्यन्त आशक्त हो व्रत खंडन करना अनाचार है। (अमित द्वा० ९) (देखो अचौर्य अणुव्रत शब्द पृ० १४७-१४८ प्रथम खंड०)। श्रावकोंके पालने योग्य सम्यग्दर्शन, अहिंसादि १२ व्रत व समाधिमरण है। इसके हरएकके पांच२ दोष या अतीचार संभव हैं (त० सू० अ० ७) अनाचारमें पूर्ण खंडन होजाता है, अतीचारमें एक देशव्रतका खंडन होता है। जहांतक प्रतिज्ञा पालनेके भाव बने रहें वहांतक अतीचार है। जब भाव ही न रहें तो अनाचार है। व्रतकी अपेक्षा सहित एक अंश भंग होना (सा० ४ अ० १८) "सापेक्षस्य व्रतं हि स्यादतिचारोंऽशभंजनं")।

अतितुच्छफल-जो फल इतना छोटा हो कि उसमें जो लकीर व गांठ आदि चिह्न चाहिये सो प्रगट न हुए हों। इसको २२ अभक्ष्यमें गिनाया है (गृ० ८८)-इसमें साधारण वनस्पतिके घातका दोष होता है। जिस फलमें बाहरी चिह्न न प्रगट हों वह अनन्त जीव सहित साधारण वनस्पति सहित है। (गो० जी० श्लोक १८८) जैसे बहुत छोटी ककड़ी।

अतितृष्णा-भोगोंके भोगनेकी अत्यन्त वांछा रखना। यह श्रावकके भोगोपभोग परिमाण व्रतका चौथा अतीचार है (रत्न० श्लोक ९०)।

अतिथि-जैन साधु जो संयम सिद्धिके लिये भ्रमण करते हैं व संयमकी रक्षा रखते हैं या जिनको किसी खास तिथिमें उपवासका नियम न हो "संयमं अविनाशयन् अतति, न अस्य तिथिः अस्ति तिथिपर्वोत्सवाः सर्वे त्यक्ता येन महात्मना। अतिथिं तं विजानीयाच्छेषमभ्यागतं विदुः॥" (सर्वा० ७, २१) तिथि नियम जिनके हैं उनको अभ्यागत कहते हैं। (सा० ५-४८)

अतिथिसंविभाग-अतिथिको अपने लिये बने भोजनमेंसे भिक्षा देना या धर्मोपकरण, शास्त्रादि, या शुद्ध औषधि या आश्रय देना (सर्वा० ७-२१) यह श्रावकका १२वां व्रत या चौथा शिक्षाव्रत है। श्रावक गृहस्थ दान देकर भोजन करता है। यदि अतिथि मुनि न मिलें तो क्षुल्लक, ऐलक, ब्रह्मचारी, कोई व्रती श्रावक व श्राविका या व्रतरहित श्रद्धावान जैनको भक्तिपूर्वक आहार कराके या ऐसे पात्र न मिलनेपर दयापूर्वक दुःखित भुक्षित मानव या पशुको भोजन देकर व उसके लिये कुछ थोड़ासा भी निकालकर फिर भोजन करता है।

अतिदुःखम-(दुःखम दुःखम) अवसर्पिणी कालका छठा व उत्सर्पिणी कालका प्रथम भाग-जो २१००० वर्षका होता है। जहां शरीरकी ऊंचाई आयु, बल आदि घटते जांय वह अवसर्पिणी व जहां बढ़ते जांय वह उत्सर्पिणी हैं। हरएक काल १० कोड़ाकोड़ी सागरका होता है। अवसर्पिणीके छः भागोंके ये नाम हैं-१-सुखमसुखम, २-सुखम, ३-सुखम दुःखम, ४-दुःखम सुखम, ५-दुःखम, ६-अतिदुःखम। पहला ४ दूसरा ३ तीसरा २ चौथा ४२००० वर्ष कम १ कोड़ाकोड़ी सागर वर्षका होता है। ५वां २१००० व छठा २१००० वर्षका होता है (त्रि० ७८१) उत्सर्पिणीके इसीके उलटे नाम हैं व इतना ही काल है। इन छः कालोंका पलटना भरत व ऐरावतके आर्यखण्डमें होता है इनके शेष ५ म्लेच्छ खंडोंमें सदा चौथा दुःखम-सुखम काल वर्तता है। (त्रि० ७८०) इस छठे कालमें नरक व पशुगतिसे ही जीव आकर जन्मते हैं व मरके वहीं जाते हैं। मान व तीव्र कषाय युक्त होते हैं। मेघ अल्प जलवाले व भूमि निःसार होती है (त्रि० ८६३) अवसर्पिणीके इस छठे कालके अंतमें आर्यखंडमें सात सात दिनतक पवन, अतिशीत, क्षाररस, विष, कठोर अग्नि, धूल, धुआं इनकी वर्षा ४९ दिनतक होती है, जिससे बहुतसे मानव पशु भागकर विजयार्द्धपर्वत व महागंगा व

महासिंधुकी वेदी व अन्य गुप्त स्थानोंमें छिप जाते हैं। दयावान विद्याधर या देव बहुतसे मानव व पशुओंके युगलोंको सुरक्षित स्थानपर ले जाते हैं। इस अनिष्ट वर्षासे शेष प्राणी नष्ट होजाते हैं। पृथ्वी जलकर १ योजन (२००० कोश) तक नीचे चूर्ण हो जाती है। फिर उत्सर्पिणीका प्रथम अतिदुःखम काल प्रारम्भ होता है। तब सात दिन क्रमसे जल, दुग्ध, घी, अमृत आदि रसके जलकी वर्षा ४९ दिनतक होती है, जिससे पृथ्वी जम जाती है, वृक्षादि निकलने लगते हैं। जो मानव व पशु चले गए थे व लेजाए गए थे सो सब लौट आते हैं। (त्रि० ८६९–८७०)।

अतिपिंगल–पिंगल कोतवालका पुत्र–सुलोचनाके पूर्वभवकी कथामें (आदि० ४६–२६१)

अतिपुरुष–आठ प्रकार व्यंतर जाति देवोंमें किंपुरुष जातिके १० प्रकार हैं, उनका छठा भेद। वे १० हैं–१ पुरुष, २ पुरुषोत्तम, ३ सत्पुरुष, ४ महापुरुष, ५ पुरुषप्रिय, ६ अति पुरुष, ७ मरु, ८ मरुदेव, ९ मरुत्प्रभ, १० यशस्वान (त्रि० २५९)

अतिप्रसंग–एक पाप स्थान। जो साधु विना गुरुकी आज्ञाके स्वच्छंद एकाकी विहार करता है उसके आज्ञालोप, अति प्रसंग, मिथ्यात्व आराधन, सम्यक्तघात, संयमघात ये पांच पाप स्थान होते हैं (मू० १५४), व्रतकी मर्यादा उल्लंघनका निमित्त।

अतिप्रायेण–अति प्रचुरतासे, बहुत अधिक। अवसर्पिणीके पहले कालमें ३ दिन बीचमें छोड़कर, दूसरेमें २ दिन, तीसरेमें १ दिन, बीचमें अंतर देकर, चौथेमें १ दिनमें १ वार, पांचवेंमें कईवार व छठे कालमें अति बहुवार वहांके निवासी भोजन करते हैं (त्रि० ७८९)

अतिबल–आगामी उत्सर्पिणी कालमें भरतक्षेत्रमें होनेवाले ७वें नारायण (त्रि० ८८०), ऋषभदेवके पूर्वभवमें राजा महाबलके पिता (आदि० ४-१२२); ऋषभदेवके ७५वें गणधर (हरि० पृ० १६६) सूर्यवंशमें भरतचक्रीके पीछे एक राजा विद्युद्द्

विद्याधरके पूर्व भवोंमें साकेतपुरका राजा (हरि० पृ० २९३); सुमतिनाथ तीर्थंकरके पूर्वभवके मांडलिक राजाका नाम (हरि० पृ० ५६५); भरतके आगामी उत्सर्पिणीके छठे नारायण (ह० पृ० ५६६); सुकुमाल स्वामीके पूर्व भवमें कौशाम्बीका राजा (आ० सार० पृ० ९४)।

अतिबाल विद्या–उपासकाध्ययनी ७ वें अंगके १० अधिकार वस्तु हैं, उनमें पहला। वे १० हैं– १ अतिबालविद्या, २ कुलविद्या, ३ वर्णोत्तमत्व, ४ पात्रत्व, ५ सृष्ट्यधिकारत्व, ६ व्यवहारेशिता, ७ अवध्यत्व, ८ अदंड्यता, ९ मानार्हता, १० प्रजासंबंधांतर। ७ द्विजोंको बाल्यकालसे विद्याभ्यास करानेका उद्योग। आदि० प. ४०, १७५.... १७८)

अतिभारारोपण–न्याय रूप भारसे अधिक बोझा लादना (सर्वा० ७।२५) यह अहिंसा अणुव्रतका चौथा अतीचार है, अतिभारवहन परिग्रह-प्रमाण अणुव्रतका प्रथम अतीचार, (रत्न० ६२)

अतिमब्बे–देखो शब्द अजितपुराण (प्र० जि० पृ० १८५–६) कर्णाटक जैन कविरत्न (ई० सन् ९४९) की पुत्री, चालुक्यनरेश आहव-मल्लका सेनापति नागदेवकी स्त्री, एक हजार जिन-प्रतिमाएं बनवाईं। लाखोंका दान किया। इसको दानचिन्तामणि कहते थे (क० नं० १६)।

अतिमुक्तक–राजा कंसका बड़ा भाई मुनि (हरि० पृ० ३२५)।

अतिरथी–समस्त योद्धाओंमें मुख्य जरासिंधके मुकाबलेमें कृष्णकी सेनामें रथनेमि, कृष्ण और बलभद्र, ये अतिरथी थे (हरि० पृ० ४६८)।

अतिलौल्य–अति गृद्धता, भोगोंकी अतितृष्णा (रत्न० ९०) यह भोगोपभोग परिमाण व्रतका तीसरा अतीचार है।

अतिवाहन–शक्तिसे अधिक वाहनोंको चलाना। यह परिग्रह प्रमाण व्रतका प्रथम अतीचार है (रत्न० ६२)।

अतिविजय–रावणके विरुद्ध रामकी सेनामें एक योद्धाका नाम (प्रा० इ० २ पृ० १३१)।

अतिवीर–श्री महावीरस्वामी २४ वें वर्तमान भरतके तीर्थंकरका एक नाम। पांच नाम प्रसिद्ध हैं– श्री वर्द्धमान, वीर, अतिवीर, महावीर, सन्मति।

अतिवीर्य–भरत चक्रवर्तीका पुत्र, जिसने जयकुमार सेनापतिके साथ मुनि दीक्षा ली। नन्द्यावर्त राजा अतिवीर्य जिसको लक्ष्मणजीने वश किया। परन्तु वह मुनि होगया। (प्रा० इ० २ पृ०१०४)।

अतिवेगा–राजा विद्युद्दंष्ट्र विद्याधरके पूर्वभवोंमें पृथिवीतिलकपुरके राजा प्रियंकरकी स्त्री (हरि० पृ० २९९)

अतिव्याप्ति–न्याय सिद्धांतकी रीतिसे किसी वस्तुको पहचाननेके लिये लक्षण कहा जाता है, जिससे किसी पदार्थको दूसरेसे भिन्न पहचान सके। उस विशेष गुणको लक्षण कहते हैं। जिसका लक्षण हो उसे लक्ष्य कहते हैं। इसमें तीन दोष न रहने चाहिये–अव्याप्ति, अतिव्याप्ति, असंभव लक्ष्यके एक भागमें हो सबमें न हो, वह अव्याप्ति है, जैसे पशुका लक्षण सींग। जो लक्ष्यसे बाहर अलक्ष्यमें भी चला जाय वह अतिव्याप्ति है, जैसे गौका लक्षण सींग। जो संभव ही न हो उसे असंभव कहते हैं। जैसे मनुष्यका लक्षण सींगवाला। (जै०सि०प्र०अ० १)

अतिशय–चमत्कार, कोई विशेष बात। तीर्थंकरोंके ३४ अतिशय प्रसिद्ध हैं–

१० जन्मके–१ मलमूत्र रहित शरीर, २ स्वेद या पसीना न होना, ३ सफेद खून, ४ वज्रवृषभ नाराच संहनन, ५ समचतुरस्र संस्थान, ६ अद्भुतरूप, ७ अतिसुगन्ध, ८–१००८ लक्षण, ९ अतुलबल, १० प्रियवचन। केवलज्ञानके समयके १० अतिशय। १ उन्मेष रहित नेत्र, २ नख व केश न बढ़ना, ३ भोजनका अभाव, ४ वृद्ध न होना, ५ छाया न पड़ना, ६ चौमुख दीखना, ७ एकसौ योजन तक सुभिक्ष, ८ उपसर्ग व दुःख न होना, ९ आकाश गमन, १० समस्त विद्यामें निपुणता।

१४ अतिशय देवकृत–१ भगवानकी अर्ध मागधी भाषाका खिरना, २ जीवोंमें मित्रता, ३ सब ऋतुके फलफूल फलना, ४ पृथ्वी दर्पणसम होना, ५ सुखदाई पवन चलना, ६ सुखप्रद विहार होना, ७ पृथ्वी कंकर पत्थर रहित होना, ८ सुवर्ण कमल रचना, ९ पृथ्वी धान्यपूर्ण होना, १० आकाश निर्मल, ११ दिशाएँ निर्मल, १२ जयघोष, १३ धर्मचक्र चलना, १४ सुगंधित जलकी वर्षा। (हरि० पृ० १८)

अतिशयक्षेत्र–जहां कोई प्रसिद्ध मंदिर हो व जहां तीर्थंकरोंके गर्भसे लेकर ज्ञानकल्याणक हों व जहां सामान्य साधुओंकी तो भूमि हो व प्रसिद्ध प्रतिमा हो।

अतिशयक्षेत्र पूजा–ऐसे क्षेत्रोंकी पूजा।

अतिशय चतुष्क–अनंतदर्शन, अनंतज्ञान, अनंत सुख, अनंत वीर्य।

अतिशय धवल-कर्णाटक जैन कवि नृपतुंग (सन् ई० ८१४–८७७)। राष्ट्रकूटवंशी राजा अमोघवर्ष कवि राजमार्ग व प्रश्नोत्तरमालाका कर्ता (क० १८)।

अतिशय मति–दशरथका एक मंत्री जो यज्ञका विरोधी था (प्रा० इ० २ पृ० १९७)।

अतिशय वीर–यदुवंशमें मथुराका राजा (हरि० पृ० २०४)।

अतिसर्ग–त्याग।

अतिसंग्रह–पदार्थोंका मर्यादासे अधिक संग्रह करना। यह परिग्रह प्रमाण अणुव्रतका दूसरा अतीचार है (रत्न० ६२)।

अतिसंधान–माया कषाय (रा०सूत्र पृ०१७९)

अतिस्थापन निषेक–जिन निषेकोंमें दूसरे निषेक न मिलाए जावें (ल० पृ० २८)।

अतिस्थापना–उल्लंघन करने योग्य कर्म स्थिति, आबाधाकालके बाहरकी कर्मस्थिति (अ०भा०पृ० ४)

अति स्थापनावली–वह आवली जिसमें किसी कर्मकी स्थिति घटाकर उसके निषेकोंको न मिलाया जावे (ल० पृ० १९)।

अतीचार–देखो अतिचार।

अतीतकाल–जो समय बीत गया हो। सं०–चौवीसी–जो २४ तीर्थंकर इस कालके पहले हो गए हों। इस भरतक्षेत्रमें भूत चौवीसीके तीर्थंकर होचुके हैं। वे हैं–१ निर्वाण, २ सागर, ३ महासाधु, ४ विमलप्रभ, ५ शुद्धाभदेव, ६ श्रीधर, ७ श्रीदत्त, ८ सिद्धाभ, ९ अमलप्रभ, १० उद्धार, ११ अग्निदेव, १२ संयम जिन, १३ शिव जिन, १४ पुष्पांजलि, १५ उत्साह, १६ परमेश्वर, १७ ज्ञानेश्वर, १८ विमलेश्वर, १९ यशोधर, २० कृष्णमति, २१ ज्ञानमति, २२ शुद्धमति, २३ श्रीभद्र, २४ अनंतवीर्य। (पंचकल्याणकदीपिका द्वि० अ० पृ० ३२)

अतीत ज्ञायक शरीर नो आगम द्रव्यनिक्षेप–किसी पदार्थके ज्ञाताका शरीर जो उस विषयमें उपयुक्त नहीं है, नो आगम द्रव्यनिक्षेप कहलाता है। उनका शरीर जो भूतकालमें था अब नहीं है सो अतीत, व भूतज्ञायक शरीर है। (गो. क. ५५-५६)

अतीत स्मरण अब्रह्म–पूर्व भोगे हुए व सुने हुए भोगोंको याद करना। (भ० पृ० २०७)

अतुलार्थ–समवसरणकी रचनामें उत्तर दिशाका एक दरवाजा। (हरि० पृ० ५०८)

अतींद्रिय–जो इंद्रियोंके गोचर न हो। सं० सुख–वह सुख जो इंद्रियोंकी सहायता विना आत्माके ही द्वारा प्राप्त हो। ज्ञान–केवलज्ञान जो आत्माका स्वभाव है। इस ज्ञानमें विना क्रमसे सर्व जाननेयोग्य पदार्थ एक कालमें झलक जाते हैं। इसमें किसीकी सहायताकी जरूरत नहीं (सर्वा० अ० १ सू० ९ व २९) "सर्व द्रव्यपर्यायेषु केवलस्य"–केवलज्ञान सर्व द्रव्य व पर्यायोंको जान सक्ता है।

अत्यनुभव–विषय भोगोंको अत्यन्त आसक्त होकर सेवना, यह भोगोपभोग परिमाण व्रतका पांचवां अतीचार (रत्न० ९०)।

अत्यन्ताभाव–एक द्रव्यका दूसरे द्रव्यमें बिलकुल न होना, एकका दूसरेमें अभाव। जैसे जीवका अभाव पुद्गलमें व पुद्गलका अभाव जीवमें। अभाव चार तरहका होता है। प्रागभाव–एक किसी द्रव्यमें उसकी होनेवाली पर्यायका अभाव जैसे–मिट्टीमें घरकी पर्याय। प्रध्वंसाभाव–एक किसी द्रव्यमें उसकी भूतपर्यायका अभाव, जैसे कपाल खंडमें टूटे हुए घटका अभाव। इतरेतराभाव या अन्योन्याभाव–एक द्रव्यकी दो भिन्न २ पर्यायोंमें वर्तमानमें एक दूसरेका अभाव। जैसे घटमें पटका, पटमें घटका। दोनों एक पुद्गल द्रव्य हैं इससे कभी घटके परमाणु पट रूप भी होसक्ते हैं व पटके घटरूप होसक्ते हैं, अत्यन्ताभाव बिलकुल ही पृथक् द्रव्योंमें परस्पर होता है (आ० मी० १०–११ व जैं० सि० प्र० १८१–१८५)।

अत्र अवतर अवतर–पूजा करते हुए पहले जिसकी पूजा करनी होती है उसका सन्मान करते हुए–ये मंत्र पढ़ते हैं, अत्र अवतर अवतर संवौषट्, अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः, अत्र मम सन्निहितो भवभव वषट्। भाव यह है कि–हे पूज्य! यहां पधारिये, यहां विराजिये, यहां आकर मेरे हृदयके निकटवर्ती होजाइये।

अत्रिलक्षणा–जिसमें उत्पाद व्यय ध्रौव्य तीन लक्षण एक साथ न हो। एक एक लक्षण उत्पाद या व्यय या ध्रौव्य अत्रिलक्षण है। (सि० द० पृष्ट २०)।

अथाख्यात चारित्र–चारित्र मोह या सर्व क्रोधादि कषायोंके नाश होजानेपर या उनके उपशम होजानेपर जो निर्मल वीतराग भाव या जैसा चाहिये वैसा चारित्र प्रगट हो। यह ११वें व १२वें, १३वें, १४वें गुणस्थानमें होता है। इसको यथाख्यात चारित्र भी कहते हैं। यह आत्माके स्वभावमें स्थितिरूप है। (सर्वार्थ अ० ९ सू० १८)

अयाणा या अयाना–अज्ञान जो ज्ञान व मोह आदिका करता है। इसकी मर्यादा ८ वर्षका [illegible] वर्षके अधिक नहीं है। [illegible] होसकते हैं। देखो अज्ञान शब्द (श्र० [illegible] पृ० ३६)।

अथिर भावना—इसको अनित्य भावना भी कहते हैं—१२ भावनाएं होती हैं उनमें पहली भावना। यह विचारना कि शरीर व विषयभोगके पदार्थ आदि सब जल बुदबुदके समान व इन्द्रधनुषके समान नाशवंत हैं। संसारमें कोई अवस्था नित्य नहीं है। वे बारह भावनाएं हैं—१ अनित्य, २ अशरण, ३ संसार, ४ एकत्व, ५ अन्यत्व, ६ अशुचि, ७ आस्रव, ८ संवर, ९ निर्जरा, १० लोक, ११ बोधिदुर्लभ, १२ धर्म। इनके विचारनेसे संसारसे मोह हटता है व जिनधर्ममें प्रीति बढ़ती है (सर्वा० अ० ९ सू० ७)।

अदंडत्व अधिकार—द्विजोंको आठवां अधिकार कि वे दंड होने योग्य कार्य न करें (देखो शब्द अतिबाल विद्या)।

अदत्तग्रहण—अदत्तदान—विना दिया कुछ लेलेना। चोरी यह मुनियोंके भोजनके ३२ अंतरायोंमें २८ वां अंतराय है (मू० ४९९) मुनि भोजन करते समय भूमिपरसे कोई वस्तु पाद व हाथसे उठा लें तो अंतराय होता है। अदत्तादान विरमण, अदत्तत्याग, अदत्त परिवर्जन, अदत्तादान विरति—चोरीका त्याग (देखो अचौर्य अणुव्रत महाव्रत (प्र० जि० पृ० १४७–१४८)।

अदन्त घर्षण, अदन्त मन—दंत मन नहीं करना। मुनिगण गृहस्थके समान दांतोंको घिस घिसकर दातौन आदिसे साफ नहीं करते हैं। इसका यह भाव नहीं है कि भोजनके पीछे मुखको साफ नहीं करते हैं। भोजनके पीछे मुंह ऐसा शुद्ध करते हैं कि कोई कण दांतमें न रह जावे। परन्तु उनको शृंगारकी इच्छा नहीं है, इसीसे दातौन व मंजन आदि नहीं मलते हैं (मू० ३ व ३३) यह साधुके २८ मूल गुणोंका २६ वां भेद है। (२८ मूलगुण देखो प्र० जि० पृ० २२६)।

अदर्शन परीषह—देखो बाईस परीषह (प्र० जि० पृ० २०९) किसी साधुको दीर्घकाल तपस्या करनेपर भी कोई ज्ञानका अतिशय न प्रगट हो, तब यह भाव आजाना कि हम सुनते थे कि तपसे बड़े२ चमत्कार होते हैं सो कथन मात्र ही मालूम होता है। ऐसा भाव यदि आजावे तो सम्यग्दर्शनमें दोष आजावे। इस दोषको जीतना, इस भावको चित्तमें न आने देना सो अदर्शन परीषह है। (सर्वा० अ० ९ सू० ९)।

अदानभाव—मात्सर्य भाव, ईर्षा भावसे किसीको ज्ञान दान न करना (हरि० पृ० ५२३)।

अदिति—धरणेन्द्र नागकुमारेन्द्रकी एक देवी (हरि० पृ० २९६)।

अदीक्षित—विना दीक्षा या वेष धारण किये हुए सं० ब्रह्मचारी या अदीक्षा ब्रह्मचारी—जो विना किसी वेषके ब्रह्मचारी होते हुए गुरुके पास शास्त्र पढ़के फिर पीछे गृहस्थधर्ममें लीन होते हैं। (गृ० पृ० १९९)।

अदृष्टदोष—विना देखे हुए एक साधु दूसरे साधुकी विनय करें, यह कृति कर्म या विनयके ३२ दोषोंमेंसे एक दोष है। (मू० ६०३–६०७)

अद्धानशन—उपवासका नियमित काल एक दिनसे लेकर छः मास पर्यंत (भग० पृ० ८७)।

अद्धापल्य—देखो शब्द अंकविद्या (प्र० जि० पृ० १०७–१११) पल्यके तीन भेदोंमें १ भेद।

अद्धापल्योपम काल—देखो शब्द अंकविद्या (प्र० जि० पृ० १०७–१११)।

अद्धा सागर—देखो शब्द अंकविद्या (प्र० जि० पृ० १०७–१११) सागरके तीन भेदोंमेंसे १ सागर।

अद्धा सागरोपम काल—देखो शब्द अंक विद्या (प्र० जि० पृ० १०७–१११)। १० कोड़ाकोड़ी अद्धापल्यका एक अद्धासागर होता है। एक करोड़को करोड़से गुणा करनेपर कोड़ाकोड़ी होता है जैसे१००००००००००००० अर्थात् दशनील।

अधर्म—जो धर्म न हो, मिथ्याधर्म, पाप,।

अधर्मद्रव्य अधर्मास्तिकाय जैन सिद्धांत नित्यसत्‌रूप छः द्रव्योंको मानता है, उनमें अधर्म द्रव्य अमू-

तींक लोकव्यापी एक अखण्ड द्रव्य है, जो स्वयं ठहर-नेवाले जीव और पुद्गलोंको ठहरनेमें सहकारी होता है, प्रेरणा नहीं करता है। जैसे छाया पथिकको ठह-रनेमें कारण होती है वैसे ही उदासीनपनेसे यह कारण पड़ता है। इतना जरूरी है कि यदि इसकी सत्ता न माने तो कोई वस्तु थिर नहीं रह सकेगी। यह लोक जो ३४३ घन राजू प्रमाण एक मर्यादामें है यह न रहेगा, यदि अधर्म द्रव्यको न माना जायगा। यह द्रवण या परिणमनशील है, इससे इसको द्रव्य कहते हैं। इसमें लोकव्यापीपना है। अर्थात् यह असंख्यात बहु प्रदेशी है। इसलिये इसको अस्तिकाय कहते हैं। एक प्रदेशीको अस्ति-काय नहीं कह सक्के। जैसे कालद्रव्य (सर्वा० अ० ५ सू० १ व ८ व १३ व १७)।

अधिकरण–आधार–जिसमें कोई वस्तु रहे। पदार्थोंको जाननेकी ८–६ रीतियां हैं १ निर्देष–स्वरूप कथन, २ स्वामित्व-मालिक बताना, ३ साधन-होनेका उपाय बताना, ४ अधिकरण–कहां वह रहती है सो बताना, ५ स्थिति–कालकी मर्यादा बताना, ६ विधान–उसके भेद बताना (सर्वा० अ० १ सू० ७), कर्मोंके आनेके कारण जो भाव हैं उनमें अधि-करण भी है। जीव व अजीवके भेदसे दो प्रकार अधिकरण हैं। जीवाधिकरण अर्थात् जीवोंके भावोंके आधार, जिनसे कर्म आते हैं। वे १०८ तर-हके होते हैं। संरंभ (इरादा) समारम्भ (प्रबन्ध) आरम्भ (शुरू करना) इन तीनको मन, वच, काय, व कृत, कारित अनुमोदना व क्रोध, मान, माया, लोभ इन चार कषायोंसे गुणनेपर ३×३×३×४= १०८ भेद होजाते हैं। जैसे क्रोध सहित मन द्वारा कृत संरंभ एक भेद हुआ कि क्रोधके वश हो मनमें किसीको मारनेका विचार करना। अजीवाधिकरणके ११ भेद हैं जिनके निमित्तसे कर्मोंके आस्रवका निमित्त होता है। देखो शब्द अजीवाधिकरण (प्र० जि० पृ० १९३–२०३)

अधिकरणिकी क्रिया–हिंसाके उपकरणोंको ग्रहण करनेकी क्रिया। यह २५ क्रियाओंमेंसे ८वीं क्रिया है जो आस्रवके आनेमें कारणभूत है। देखो अधिकारी क्रिया शब्द (प्र० खं० पृ० ७६)।

अधिकरणिक–मुख्य जज–गुजरातमें वल्लभी राजाओंका राज्य था, उस समय १८ अधिकारी नियत होते थे–(१) आयुक्तिक या विनियुक्तिक-मुख्य अधि-कारी (२) द्रांगिक–नगरका अधिकारी (३) महत्तरि–ग्रामपति, (४) चाटभट–पुलिस सिपाही, (५) ध्रुव ग्रामका हिसाब रखनेवाला वंशज अधिकारी, तलाटी या कुलकरणी, (६) अधिकरणिक मुख्य जज, (७) डंडपासिक–मुख्य पुलिस आफिसर, (८) चौरोद्धरणिक-चोर पकड़नेवाला, (९) राजस्थानीय–विदेशी राज-मंत्री, (१०) अमात्यमंत्री, (११) अनुत्पन्नादान समुद्ग्राहक–पिछलाकर वसूल करनेवाला, (१२) शौल्किक–चुंगी आफिसर, (१३) भोगिक या भोगो-द्धरणिक–आमदनी या कर वसूल करनेवाला (१४) वर्त्मपाल–मार्गनिरीक्षक सवार, (१५) प्रतिसारक क्षेत्र और ग्रामोंके निरीक्षक, (१६) विषयपति–प्रांतके आफिसर (१७) राष्ट्रपति–जिलेके आफिसर, (१८) ग्रामपति–ग्रामका मुखिया (बं० स्मा० पृ० १९०)।

अधिकारमद–अपनी हुकूमतका घमंड करना। सम्यग्दृष्टीको आठ मद नहीं करना योग्य है। (देखो शब्द-अष्टस्थान मद प्र० खं० पृ० १३-१४) यह सातवां मद है।

अधिकार वस्तु–ज्ञानप्रवाद पूर्वमें १० वस्तु अधिकार हैं (देखो शब्द [illegible]

अधिगम–पदार्थोंका ज्ञान, सम्यग्दर्शनके उत्पन्न होनेमें दो बाहरी कारण होते हैं। निसर्ग और [illegible], वह जो परोपदेशसे हो वह अधिगम परोपदेशके बिना ही वह निसर्ग, [illegible] कारण होनेसे [illegible] कहते हैं। [illegible] (सर्वा० अ० १ सू० ३) [illegible] [illegible] सू० [illegible]।

अधिगमज मिथ्यात्व–देखो अक्रियावाद शब्द प्र० खं० पृ० २४–२५ ।

अधिगमज सम्यक्त–वह सम्यग्दर्शन जो उपदेशके द्वारा हो ।

अधिराज–१८ श्रेणीका स्वामी राजा होता है। ५०० ऐसे राजाओंके स्वामी अधिराज व १००० राजाओंका स्वामी महाराज, २००० राजाका स्वामी अर्द्धमंडलीक, ४००० राजाओंका स्वामी मंडलीक, ८००० राजाओंका स्वामी महामंडलीक, १६००० राजाओंका स्वामी त्रिखण्डपति नारायण या प्रति-नारायण, ३२००० राजाओंका स्वामी चक्रवर्ती (त्रि० ६८४–६८५) ।

अधिवासना–विधि–केवलज्ञान कल्याणसे प्रतिष्ठित प्रतिमामें अर्हंत् प्रभुको स्थापित करके चंदनादिसे पूजना (प्र० सा० पृ० १०८) ।

अधोकरणलब्धि–देखो अधःकरण लब्धि ।

अधोऽतिक्रम–जो मर्यादा नीचेकी तरफ जानेकी की हो उसको कषायवश उल्लंघन करके दोष लगाना। यह दिग्विरति प्रथम गुणव्रतका दूसरा अतीचार है। इस व्रतके ५ अतीचार हैं–ऊर्ध्वातिक्रम, अधोऽतिक्रम, तिर्यगतिक्रम, क्षेत्रवृद्धि, स्मृत्यन्तराधान। (सर्वा० अ० ७ सू० ३०)।

अधोगति–खोटी गति जहां दुःख अधिक है ।

अधोग्रैवेयिक–१६ स्वर्गके ऊपर नौ ग्रैवेयिक हैं, उनमें तीन नीचेके ग्रैवेयिक जहां अहमिंद्र ही ... होते हैं, देवियां नहीं होती हैं ।

करते ...धोभाग–लोकके तीन स्थानोंमेंसे नीचेका भाग कि का...तके नीचे सात राजू प्रमाण लोक जिसमें अंगारकी ...व्यंतरदेव ऊपरके भागोंमें रहते हैं, नीचे आदि नहीं मह...

२८ मूल गुणोंका...तिक्रम–देखो अधोऽतिक्रम ।

देखो प्र० जि० ४... नारद–इस गत चौथे कालमें

अदर्शन परी... १ भीम, २ महाभीम, ३ रुद्र, जि० पृ० २०९) ... ६ महाकाल, ७ दुर्मुख, ८

करनेपर भी कोई भाव... यह अधोमुख नारद श्रीकृष्ण व पांडवोंके समयमें हुए हैं। यह ब्रह्मचारी होकर जैनधर्म पालते हैं परन्तु इनमें कलहप्रियपनेका दोष होता है। लड़ाई कराकर आप खुश होते हैं इससे पापका बंध करते हैं।

अधोलोक–देखो अधोभाग ।

अधोव्यतिक्रम–देखो अधोऽतिक्रम ।

अधःकरण–उपशम सम्यक्त प्राप्त करनेके लिये या अनंतानुबंधी कषायका विसंयोजन या अन्य कषाय रूप करनेके लिये या क्षायिक सम्यक्त प्राप्त करनेके लिये या चारित्र मोहके उपशम या क्षय करनेके लिये जिन चढ़ते हुए विशुद्ध परिणामोंकी जरूरत होती है उनको करण कहते हैं। ये परिणाम अंतर्मुहूर्ततक बराबर बढ़ते जाते हैं इनके ही तीन भेद हैं–अधःकरण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण। जिसमें इस जातिके परिणाम हों कि जो दूसरे जीवके साथ जिसने पीछेसे इस अधःकरणको प्रारम्भ किया है मिल भी सकें उसको अधःकरण कहते हैं। जिसमें ऐसे परिणाम हों कि जो पीछेसे शुरू करनेवालेके साथ कभी भी न मिलें परन्तु एक साथ शुरू करनेवालोंके साथ मिल भी सकें उसे अपूर्वकरण कहते हैं। जिसमें ऐसे परिणाम हों कि भिन्न समयवर्तीके साथ तो कभी भी न मिलें परन्तु एक साथ शुरू करनेवालोंके सबके परिणाम समान निर्मल हों उनको अनिवृत्तिकरण कहते हैं। (गो० क० ८९७–९१२, जै० सि० प्र० ६२६–६३८) तीनोंका अलग अलग काल भी अंतर्मुहूर्त है। इन करण परिणामोंमें हर समय परिणाम अनन्तगुणे विशुद्ध होते जाते हैं।

अधःकरण लब्धि–सम्यक्त प्राप्त करनेके लिये जिन परिणामोंकी जरूरत है उनकी प्राप्ति। देखो अधःकरण (गो० जी० ६५०)।

अधःकर्म–नीचकर्म, निंदनीककर्म। गृहस्थद्वारा किया हुआ रोटी पानीका आरम्भ। (मू० ४२४)

अधःकर्म दोष–जिस भोजनमें साधुको मन वचन काय, कृत कारित अनुमोदनासे कोई आरम्भ

जनित दोष हो उसको ग्रहण करना । साधु ऐसे भोजनको नहीं करते हैं जो उनके निमित्त हो, जो गृहस्थने अपने लिये बनाया हो ।

अधःप्रवृत्त–जिन भागहारोंसे शुभ कर्म या अशुभ कर्म संसारी जीवोंके अपने परिणामोंके वशसे संक्रमण करे या बदल जावे । अर्थात् अन्य प्रकृतिरूप होजावे । वे भागहार पांच हैं । उद्वेलन, विध्यात, अधःप्रवृत्त, गुणसंक्रम, सर्व संक्रम । इनमेंसे अधःप्रवृत्तरूप संक्रमण उन कर्मोंका वहांतक होता रहता है जहांतक उनका बंध संभव है । (गो० क०, ४०९–४१६) अधःप्रवृत्त आदि तीन करण रूप परिणामोंके विना ही कर्म प्रकृतियोंके परमाणुका अन्य प्रकृति रूप होना सो उद्वेलन संक्रमण है । जहां स्थिति अनुभाग घटता जाय ऐसा संक्रमण जो गुण श्रेणि आदि परिणामोंके पीछे हो सो विध्यात संक्रमण है । जहां समय २ श्रेणी रूप असंख्यात २ गुणे परमाणु अन्य प्रकृति रूप परिणमें सो गुण संक्रमण है । अंतमें परमाणु अधः प्रकृति रूप हों सो सर्व संक्रमण है ।

अधःप्रवृत्तकरण–देखो शब्द अधःकरण ।

अधःप्रवृत्त संक्रमण–देखो शब्द अधःप्रवृत्त ।

अध्यधि दोष–संयमी साधुको आता देख उनको देनेके लिये अपने निमित्त बनते हुये भातमें जल व तंदुल और मिलाकर पकावे अथवा जबतक भोजन तय्यार न हो तबतक उस साधुको धर्मप्रश्नके बहाने रोक रक्खे । यह दाताके लिये अध्यधि दोष है । (मू० ४२७) ।

अध्ययन–पढ़ना, शास्त्रका प्रकरण (अ० मा० पृ० १७६) ।

अध्ययन क्रिया–ज्ञानकी विनय आदि सहित शास्त्र पढ़ना ।

अध्यवसान–अंतःकरणका परिणाम, भाव ।

अध्यवसाय–अभिप्राय, परिणाम, भाव, कषाय सहित भाव, वे भाव जिनसे कर्मोंमें स्थिति व अनुभाग पड़ता है । जितने प्रकारके अध्यवसाय होते हैं उनको स्थान कहते हैं । वे असंख्यात लोकप्रमाण हैं (गो० क० ९४९) । जिन भावोंसे स्थिति पड़ती है उनको कषायाध्यवसाय कहते हैं । जिनसे अनुभाग पड़ता है उनको अनुभागाध्यवसाय कहते हैं । कषायाध्यवसायको ही स्थितिबंधाध्यवसाय भी कहते हैं ।

अध्यात्म–आत्मसम्बन्धी भाव ।

अध्यात्म तरंगिणी–श्री सोमदेव दि० जैन आचार्यप्रणीत ग्रंथ ४० श्लोक, मु० द्रित माणिकचन्द ग्रन्थमाला नं० १३ ।

अध्यात्म द्रव्यार्थिकनय–जैन सिद्धांतमें आत्माके शुद्ध स्वरूपका व अन्य द्रव्यके शुद्ध स्वरूपका कथन जिस नय व अपेक्षासे किया जाता है उसे द्रव्यार्थिकनय कहते हैं । इसमें मात्र एकरूप शुद्ध द्रव्यको ही लक्ष्यमें लिया जाता है । जैसे संसारी जीव भी यदि द्रव्यार्थिकनयसे देखे जावें तो उनको शुद्ध एकरूप अपने स्वभावमें ही देखा जायगा ।

अध्यात्मपचीसी–पं० दीपचंद कासलीवाल (आमेर–जैपुरी कृत) भाषा छंद–(दि० जैन नं० ६२)

अध्यात्म पंचाशिका–एक ग्रंथका नाम ।

अध्यात्म पद–शुभचंद्र कृत टीका (दि० जैन ग्रं० नं० ३३४)

अध्यात्म पर्यायार्थिक नय–आत्माके कथन करनेवाले ग्रंथोंमें भेदरूप व अशुद्ध [illegible] रूप कथन जिस नय या अपेक्षासे होता है उनको पर्यायार्थिक नय कहते हैं ।

अध्यात्म बारहखड़ी–पं० [illegible] (दि० जैन नं० ४४)

अध्यात्म रस–आत्माका विचार, अनुभव, कथन व श्रवण करनेसे [illegible] है, वह अध्यात्म रस है ।

अध्यात्म [illegible]–[illegible] जिस [illegible] हो उसे अध्यात्म [illegible] कहते हैं । [illegible] (दि० [illegible])

अध्यात्म संग्रह–एक ग्रंथ [illegible]

अध्यात्म संदोह—योगीन्द्रदेव कृत सं० ग्रंथ।

अध्यात्मसार—आत्माकी चर्चामें सारपना।

अध्यामाष्टक—वादिराज मुनिरचित छपा माणिकचन्द ग्रन्थमाला नं० १३।

अध्यात्मिक बालचंद्र—कर्णाटक जैन कवि (सन् ११७०) समयसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय, तत्वार्थसूत्र, परमात्मप्रकाश आदिके कनड़ी टीकाकार (क० जैन नं० ३६)।

अध्रुव—क्षणभंगुर, कायम न रहे। दृष्टिवाद अंगमें १४ पूर्वोंमें जो दूसरा अग्रायणी पूर्व है उसमें १४ वस्तु अधिकार हैं उनमें चौथेका नाम। वे १४ हैं—१ पूर्वांत, २ उपरांत, ३ ध्रुव, ४ अध्रुव, ५ अच्यवनलब्धि, ६ अध्रुवसंप्रणधि, ७ कल्प, ८ अर्थ, ९ भौमावय, १० सर्वार्थकल्पक, ११ निर्वाण, १२ अतीतानागत, १३ सिद्ध, १४ उपाध्याय। देखो शब्दअग्रायणी पूर्व (प्र० जि० पृ० ७२) व (हरि० पृ० १४७)।

अध्रुव अनुप्रेक्षा—बारह भावनाओंमें अनित्य भावनाको कहते हैं। यह वारवार विचारना कि संसारके भोग्य पदार्थ सब नाशवंत हैं, थिर नहीं हैं। (सर्वा० प्र० ९ सू० ७)।

अध्रुव कर्मप्रकृति—जिन कर्मोंका लगातार बंध न हो, कभी हो कभी न हो। १२० कर्मोंमेंसे ४७ प्रकृति ध्रुव हैं। वे हैं ज्ञानावरण ५, दर्शनावरण ९, अंतराय ५, कषाय १६, मिथ्यात्व, भय, जुगुप्सा, तैजस, कार्मण, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, वर्णादि ४, इन ४७ का बन्ध जहांतक उनका बंध संभव है वहांतक बराबर हुआ करता है, शेष ७३ प्रकृति अध्रुव हैं। बंधमें १४८ मेंसे १२० को ही गिना गया है। २० वर्णादिमेंसे ४ को गिना १६ को नहीं, ५ बंधन ५ संघातको ५ शरीरमें शामिल करके नहीं गिना, मिश्र और सम्यक्त प्रकृतिका बंध नहीं होता है। इसतरह १६+१०+२=२८ प्रकृति १४८ मेंसे घट गईं। (गो० क० १२४)

अध्रुव ग्रहण—देखो शब्द अक्षिप्रमतिज्ञान (प्र० जि० पृ० ४२) मतिज्ञान जो पंच इंद्रिय और मनसे होता है वह अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा इन ४ के रूपमें होता है। उसके ग्रहणके ६२ भेद हैं उनमें १८ वां भेद अध्रुव ग्रहण है। जो पदार्थ क्षणिक हो उसको जान लेना, जैसे बिजली चमकी उसको जानना, अनिश्चित व अयथार्थ ग्रहण, ध्रुव ग्रहणका उल्टा। (सर्वा० अ० १ सू० १६)

अध्रुव प्रकृति—देखो शब्द अध्रुव कर्म प्रकृति।

अध्रुव बंध—जो बंध निरन्तर न हो, अंतर सहित हो, (गोम० गा० ९०), जहां बंधका अभाव हो उन भव्य सिद्धोंके अध्रुव बंध होता है। जहां बंधका अभाव न हो अभव्य जीवोंके ध्रुव बंध होता है (गो०क० गा० १२३)

अध्रुव भावना—देखो अध्रुव अनुप्रेक्षा।

अध्रुव संप्रणधि—अग्रायणी पूर्वका छठा वस्तु अधिकार, देखो शब्द अध्रुव।

अध्वगत—

अनक्षरगत भाषा—अनुभय वचनके ९ भेदमेंसे ९ वां भेद—अर्हंत भगवानकी दिव्यध्वनि, भगवानकी बाणी मेघकी गर्जना समान निकलती है किसी खास भाषामें नहीं निकलती है। देखो शब्द अंगप्रविष्ट श्रुतज्ञान पृ० १२६ (मू० गा० ३१५–३१६)

अनक्षरात्मक प्रतिमा—

अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान—जो श्रुतज्ञान शब्द या अक्षरोंके द्वारा न हो, मतिज्ञानसे जाने हुए पदार्थके सहारेसे अन्य किसी पदार्थको जानना सो श्रुतज्ञान है। इसके दो भेद हैं अक्षरात्मक, अनक्षरात्मक। यह अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान एकेन्द्रियसे पंचेंद्रिय पर्यंत सर्व जीवोंके होता है। जैसे शीतल पवनका जानना मतिज्ञान है, फिर उसको इष्ट या अनिष्ट जानना सो अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान है (गो० जी० गा० ३१५)

अनक्षरीवाणी—तीर्थंकर भगवानकी दिव्यध्वनि जो मेघकी गर्जनाके समान निकलती है।

अनगार—मुनि, गृह आदि परिग्रह रहित साधु,

जिसके गृह सम्बन्धी तृष्णा चली गई हो (सर्वा० अ० ७ सू० १९) । अनगारके पर्यायवाची शब्द हैं १ श्रमण–जो तपसे आत्माको खेद युक्त करे, २ संयत–इंद्रियोंको वश करनेवाला, ३ ऋषि–सब पापोंको दूर करे व ऋद्धि प्राप्त, ४ मुनि–स्वपरकी अर्थसिद्धिको जाने, ५ साधु–रत्नत्रयको साधे, ६ वीतराग–जिसके राग नहीं, ७ अनगार–गृह आदि परिग्रह रहित, ८ भदंत–जो सब कल्याणोंको प्राप्त हों, ९ दान्त–जो पंचेन्द्रियोंके रोकनेमें लीन हों, १० यति–जो चारित्रमें यत्न करे (मू० गा० ८८६) शीतलनाथ तीर्थंकरके मुख्य गणधर (S. पृ० ५७६)

अनगारव्रत–साधुके व्रत–१३ प्रकार चारित्र व २८ मूल गुण ।

अनगार भावना सूत्र–मुनि धर्मकी स्थिरताके लिये जो भावनाएं की जावें उनका वर्णन जिनमें हो । उसके १० भेद हैं–१ लिंग शुद्धि, २ व्रत शुद्धि, ३ वसति शुद्धि, ४ विहार शुद्धि, ५ भिक्षा शुद्धि, ६ ज्ञान शुद्धि, ७ उज्झन शुद्धि, (शरीरसे मोह न करना) ८ वाक्य शुद्धि, ९ तप शुद्धि, १० ध्यान शुद्धि । (मू० गा० ७६९–७७०)

अनगारकेवली–या अगृहकेवली–जो साधु सर्व परिग्रह त्याग करके केवलज्ञानी होजाते हैं । (उ० पु० पृ० १११ श्लो० ९६)

अनगारधर्मामृत–मुनिधर्मका शास्त्र–पंडित आशाधरजीने सं० १३०० में भव्यकुमारचंद्रिका टीका इसी स्वरचित मूल ग्रंथपर लिखी ।

अनगारिक–साधुकी क्रियाएं (अ० मा० पृ० १९०)

अनगुप्त भय–देखो अगुप्त भय (प्र० जि० पृ० ५४)

अनङ्गकुसुमा–रावणकी बहन चन्द्रनखाकी पुत्री जो हनूमानको विवाही गई थी (इ० २ पृ० ८३)

अनङ्गपुष्पा–

अनङ्गक्रीड़ा–(अनंगरमण)–कामसेवनके जो स्त्री व पुरुषके नियत अंग हैं उनको छोड़कर अन्य अंगसे अन्य रूपसे कामचेष्टा करना । यह ब्रह्मचर्य अणुव्रतका चौथा अतीचार है । (सर्वा० अ० ७ सू० २८) ।

अनंगलवण–रामचन्द्रके पुत्र जो मोक्ष गए । (इ० २ पृ० १९९) ।

अनंग १३–महावीर जयंति (चैत्र सुदी १३)

अनछना जल–विना छना हुआ पानी ।

अनतिक्रमण–जिसमें दोष न हो, ऐसा उत्तर जिसमें अति व्याप्ति आदि दोष न हो (अ० मा० पृ० १४०) ।

अनध्यवसाय–सम्यग्ज्ञानका बाधक एक दोष, जैसे मार्गमें चलते हुए तृणका स्पर्श हुआ । तब यह प्रतिभास होना कि कुछ होगा । निश्चय करनेके लिये अनुत्साह । ज्ञानमें तीन दोष न होने चाहिये । १ संशय–यह शंका करना कि यह सीप है या चांदी है । विरुद्ध अनेक तरफ झुकनेवाला अनिर्णीत ज्ञान । २ विपर्यय–विपरीत निश्चय कर लेना । जैसे सीपको चांदी जान लेना, ३ अनध्यवसाय–निश्चय करनेमें आलस्य (जै० सि० प्र० ८२–८३–८४) ।

अननुगामी अवधिज्ञान–जो अवधिज्ञान जहां उत्पन्न हो उसी क्षेत्रमें रहे, वह जीव अन्य क्षेत्र या अन्य भवमें जाय तो साथ न जावे (सर्वा० अ० १ सू० २२) इसके तीन भेद हैं ।

१ क्षेत्राननुगामी–जो अवधिज्ञान जिस क्षेत्रमें उपजा हो उस क्षेत्रमें तो जीव उसी शरीरमें हो या अन्यमें हो साथ रहे, यदि वह अन्य क्षेत्रमें जाय व जन्मे तो साथ न रहे । २ भवाननुगामी–जो ज्ञान उसी भवमें साथ रहे जिसमें उत्पन्न हुआ है, चाहे वह कहीं भी जावे, दूसरे भवमें साथ न जावे । ३ उभयाननुगामी–जो ज्ञान और क्षेत्र व और भवमें जाते हुए साथ न रहे (गो० जी० गा० ३७२) ।

अननुभाषिनिग्रह–

अननुभाषण–

अनन्त–जिसका अंत न हो । यह सकारी

अलौकिक माप, देखो शब्द अंक गणना (प्र० जि० पृ० ८६–९० लोकोत्तर गणना २१ प्रकार), मिथ्यात्व जो अनंत संसारका कारण है (सर्वा० २९)

अनन्तकथा–पद्मनंदि भट्टारक (वि०सं० १३६२) कृत सं० (दि० जैन नं० १६७)।

अनन्तकवि–एक कविका नाम है। देखो–वीर पृ० ३८–९।

अनन्तकाय–कायिक–जिस वनस्पतिमें एकमें अनन्तजीव एकेन्द्रिय एक साथ रहें, जन्मे या मरे। इनको साधारण वनस्पति कहते हैं। इन साधारणसे आश्रित प्रत्येकको सप्रतिष्ठित प्रत्येक व अनाश्रितको अप्रतिष्ठित प्रत्येक कहते हैं। एक जीव जिसका स्वामी हो वह प्रत्येक है। सप्रतिष्ठित प्रत्येककी पहचान यह है कि जिस प्रत्येक वनस्पति शरीरका सिरा (लंबी लकीर नस समान) संधि (बीचमें मेलकी जगह), पर्व (गांठ) प्रगट न हों व जो तोड़े जानेपर समान टूट जाय तंतु न लगा रहे व जो काटे जाने पर भी उग आवे। इन चिन्होंसे विरुद्ध हो उसे अप्रतिष्ठित प्रत्येक कहते हैं। जिस वनस्पतिकी जड़, उसका कंद अर्थात् पेड, पत्ता, फूल, फल, बीज तोड़े जानेपर सम भंग हों वे अनंतकायरूप प्रतिष्ठित प्रत्येक हैं। जिनका मूल आदि सम भंग न हो वे अप्रतिष्ठित प्रत्येक हैं। जिस वनस्पतिकी कंदकी मूलकी व छोटी शाखाकी व स्कंधकी छाल मोटी हो वह अनंतकाय है व जिसकी छाल पतली हो वह अप्रतिष्ठित प्रत्येक हैं। (गो० जी० गा० १८८–१८९–१९०)

अनन्त कालात्मक सम्यक्त–क्षायिक सम्यक्त जो कभी न छूटे।

अनन्तकीर्ति–आचार्य सं० ७६६ (दि० जैन ९)

अनन्तकेश्वर–मैनूरके कित्तूग्राममें एक मंदिरका नाम (जै० हि० पृ० १४ वर्ष ११)

अनन्तगुण–अनन्त गुणा।

अनन्त गुण हानि–किसी संख्याको अनन्तसे गुणा करनेपर जो आवे उतना किसीमें घटा देना।

अनन्तचतुर्दशी–भादो सुदी १४ दशलाक्षण पर्वका अंत दिन।

अनन्तचतुर्दशी व्रत–अनंत चौदसका व्रत १४ वर्षोंतक करना।

अनन्त चतुष्टय–अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख, अनंत वीर्य–ये चार मुख्य गुण केवली अर्हंत परमात्माके प्रगट होते हैं।

अनन्त जिन–भरतक्षेत्रके वर्तमान २४ तीर्थंकरोंमें चौदहवें जो श्रीसम्मेदशिखरसे मोक्ष पधारे हैं।

अनन्त दर्शन–केवल दर्शन, शुद्ध दर्शन गुण जो दर्शनावरण कर्मके नाशसे प्रगट होता है।

अनन्तनन्दि–शिवायनस्वामी, नंदिसंघ वि० सं० ९६० आराधनासार व दर्शनसारके कर्ता (दि० जैन नं० ३२६)

अनन्तनाथ–१४ वें वर्तमान भरतके तीर्थंकर।

अनन्तनाथ पुराण–कर्नाटक भाषामें २००० श्लोक जिनधर्म गृहस्थ कृत (दि० जैन नं० १००), वासनसेन कृत (दि० जैन नं० २९४)

अनन्त भाग हानि–किसी संख्यामें अनंतका भाग देकर जो आवे उतना किसीमें कम कर देना।

अनन्त भाग वृद्धि–किसी संख्यामें अनंतका गुणा करके जो आवे उतना किसीमें जोड़ देना।

अनन्तमति–राजा विद्युद्दंष्ट्र विद्याधरके पूर्वभवमें एक मुनि (इ० पृ० २९७)

अनन्तमती–श्री आदिनाथके पूर्वभवमें श्रीमतीका जीव १६ वें स्वर्गसे आकर पुंडरीकिणीमें सेठ कुबेरदत्तकी स्त्री अनंतमतीका पुत्र धनदेव (आदि० पर्व ११–१४), श्री आदिनाथके पूर्व भवोंमें कनकप्रभका जीव अनंतमतीका पुत्र आनंद नामका पुरोहित (आ० पर्व ८।११७), जयकुमार सुलोचनाके पूर्वभवमें एक आर्यिका जिनके पास गुणवती व यशस्वतीने दीक्षा ली (अ० प० २६–२७)

अनन्तमित्र–यदुवंशमें उग्रसेनके चाचा राजा शांतनुका पुत्र (इ० पृ० ४९६)

अनन्तरथ–राजा दशरथके भाई अरण्यका पुत्र,

पिताके साथ दीक्षा ले मुनि हुए नाम अनन्तवीर्य प्रसिद्ध हुआ। (प० पु० पृ० ४३३)

अनन्तविजय–श्री रिषभदेवके पुत्र (इति० १ पृ० ७८) और उनके गणधर, श्री अनन्तनाथ तीर्थंकरके पुत्र (इति० २ पृ० ९)

अनन्तवियोजक–अनन्तानुबन्धी ४ कषायके कर्मपिंडको अन्य कषायरूप बदलनेवाला चौथे अविरत सम्यग्दर्शन गुणस्थानसे लेकर ७वें अप्रमत्त विरततक (सर्वा० अ० ९ सू० ४५)

अनन्तवीर्य–भरत चक्रवर्तीके सेनापति जयकुमारका बड़ा पुत्र (जै० इ० १ पृ० ७८)। भरतके आगामी २४वें तीर्थंकर (च० स० नं० १२१)

अनन्तवीर्यसूरि–प्रमेयरत्नमालाके रचयिता।

अनन्तव्रत–अनन्तचतुर्दशीका व्रत।

अनन्तव्रतकथा–एक कथा।

अनन्तव्रतपूजा–जिनदास ब्रह्मचारी कृत (सं० १५१०) शांतिदास ब्र०कृत (दि० जैन नं० २८४) श्री भूषण भट्टारक कृत (दि० जैन नं० ३४७) (दि० जैन नं० ९७)

अनंतव्रतोद्यापन–गुणचन्द्र भ० (सं० १६००) कृत (दि० जै० नं ६८), जिनदास ब्र० कृत (सं० १५१०) (दि० जै० नं० ९७); धर्मचन्द्र भ० कृत (दि० जै० नं० १२६), रत्नचन्द्र भ० (सं० १६००) कृत (दि० जै० नं० २९२)

अनन्तसम्यक्त–क्षायिक सम्यग्दर्शन जो कभी छूटे नहीं।

अनन्तसुख–आत्मीक स्वाभाविक आनन्द जो अरहंतके १३वें गुणस्थानमें ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अंतराय चार घातीय कर्मोंके नाशसे प्रगट होता है।

अनन्तसेन–भगवान ऋषभदेवके पुत्र अनंतवीर्यके पुत्र जो इस अवसर्पिणीमें भरतमें सबसे पहले मोक्ष गए (इ० २ पृ० ७८)।

अनन्तज्ञान–केवलज्ञान जो सर्व लोकालोकके पदार्थोंको एक साथ जान लेता है।

अनन्तर क्रममात्र–पूर्व या उत्तर कार्य कारण भाव। जैसे कृतिकाका उदय रोहिणीसे अंतर्मुहूर्त पहले होता है। (परी० १८।३ भा०)

अनन्ताचार्य–न्यायविनिश्चयालंकारकी वृत्तिके कर्ता–(दि० जैन नं० ३९६)

अनन्तानन्त–एक तरहकी अलौकिक माप, देखो अंक गणना शब्द (प्र० जि० ८६–९०) अनंतको अनंतसे गुणनेपर अनंतानंत होता है।

अनन्तानुबन्धी–अनंत संसारका कारण जो मिथ्यात्व उसको सहायता करे ' अनंतं अनुबंधिनः ' (सर्वा० अ० ८।२०९)

अनन्तानुबन्धी कषाय–अनंत संसारके कारण क्रोध, मान, माया, लोभ कषाय। जो सम्यग्दर्शन व स्वरूपाचरण चारित्रको घात करे (गो० जी० गा० २८३) इस कषायका वासनाकाल छः माससे अधिक अनंत काल तक रह सका है। (गो० क० गा० ४६)

अनन्तानुबन्धी चतुष्क–ऊपर देखो।

अनन्तानुबन्धी चौकड़ी– ,,

अनन्तानुबन्धी क्रोध– ,,

अनन्तानुबन्धी मान– ,,

अनन्तानुबन्धी माया– ,,

अनन्तानुबन्धी लोभ– ,,

अनन्ताणु वर्गणा–देखो शब्द अग्राह्य वर्गणा (प्र० जि० पृ० ७५) २३ जातिके पुद्गल वर्गणाओंमें चौथी जातिकी वर्गणा, जिन वर्गणामें अनंत परमाणुका बन्धरूप स्कन्ध हो (गो० जी० गा० ५९४–९५)

अनन्तादि[illegible]–

अनन्त[illegible]–रिषभदेवके पुत्र [illegible] (आ० पृ० [illegible])।

अनपवर्त्यायु–जिनकी आयु विष, वेदना, शस्त्र, आदि बाहरी कारणोंसे कमती न हो, जो पूरी आयु [illegible] मरें, जैसे देव, नारकी, भोगभूमि, [illegible] देहधारी, भोगभूमिके हैं (सर्वा० अ० २ सू० ५३)

अनभिगत चारित्र–जो चारित्र दूसरेके उपदेशसे प्राप्त हो।

अनभिगत चारित्रार्थ–जो साधु दूसरेके उपदेशसे शुद्ध चारित्र भावको पहुंचे हों (सर्वा० जयचन्द पृ० ३३१–३३२)।

अनभिलाप्य पदार्थ–जिन पदार्थोंका स्वरूप वचनसे कहा न जासके, केवलज्ञान ही जानता है। दिव्यध्वनिसे भी उनका प्रकाश न होसके (गो० जी० गा० ३३४)।

अनमानित–आलोचनाका दूसरा दोष–गुरुको बतावे कि मैं निर्बल हूं जिससे दंड कम मिले (भा० ९ २३९ देखो आलोचना २।

अनय–ज्योतिष चक्रके ८८ ग्रहोंमेंसे ३९ वें ग्रहका नाम (त्रि०गा० ३६६) खोटीनय या युक्ति।

अनयंकरा भाषा–शील खण्डन करनेवाली विद्वेष करनेवाली भाषा (भ० पृ० २९६)।

अनरक्षाभय–सम्यग्दृष्टी ज्ञानीको सात भय नहीं रखना चाहिये। इस लोकभय, परलोकभय, वेदनाभय, अनरक्षाभय, अगुप्तभय, मरणभय, अकस्मात भय, मेरा कोई रक्षक नहीं है कैसे जीऊँगा ऐसा भय (गृह० पृ० ८२)।

अनरराय–राजा दशरथके पिता।

अनर्घ्यपद–अमूल्यपद, अविनाशीपद, मोक्ष।

अनर्थदंड–ऐसे पाप जिनसे कोई लाभदाई प्रयोजन न सधे, उपकार न होते हुए पाप आवे (सर्वा० अ० ७ सू० २१)

अनर्थदंड त्यागव्रत–यह तीसरा गुणव्रत है। अनर्थदंडसे विरक्त होना, पांच तरहका अनर्थ पाप होता है उनसे बचना। (१) अपध्यान–दूसरोंकी हारजीत, बध बंधन, अंगछेद, परधन हरण आदि किस तरह हो ऐसा विचारना (२) पापोपदेश–पशुओंको क्लेशकारी प्राणि वधकारी आरम्भको करानेवाले व्यापारादिका उपदेश देना। जिनसे पाप हो जावे ऐसा वचन कहना (३) प्रमादचर्या–प्रयोजन बिना वृक्षादि छेदन, भूमि कूटन, पानी सिंचन, अग्निबालन आदिका कार्य करना (४) हिंसादान–हिंसाके कारण विष, कंटक, शस्त्र, अग्नि, रस्सी, लकड़ी, खड्ग आदिका देना (५) दुःश्रुति–हिंसा व रागादि बढ़ानेवाली दुष्ट कथाका सुनना सिखाना, व बनाना। गृहस्थ कोई सत् प्रयोजनसे पाप करे तो वह अनर्थदंड नहीं है परन्तु जिसमें कोई भी लाभ न हो और बेमतलब पापबंध हो उसे अनर्थ दंड कहते हैं। उनसे बचना तीसरा गुणव्रत है। (सर्वा० अ० ७ सू० २१)।

अनर्पित–गौण, वर्णन करते हुए जिस बातको मुख्य किया जाय वह अर्पित है। उस समय जिसको गौण रक्खा जाय वह अनर्पित है। जैसे पदार्थमें नित्यपना और अनित्यपना दोनों स्वभाव हैं, उनमें जब नित्यको समझावेंगे तब नित्य अर्पित होगा, अनित्य अनर्पित या गौण होगा। अनेक स्वभाववाले पदार्थमें प्रयोजनके वशसे किसी एक स्वभावको मुख्य करके कहना सो अर्पित है, जिसको न कहा जाय वह अनर्पित है। एक पुरुष पिता भी है व पुत्र भी है जब उसको पिता कहा जायगा तब पुत्रपना अनर्पित रहेगा (सर्वा० ५ सू० ३२)।

अनवद्ध–

अनवद्यमति–महाराज भरत चक्रवर्तिके पुत्र अर्ककीर्तिका मंत्री (इ० १ पृ० ७२)।

अनवस्था कुंड–२१ प्रकार गणनामें उत्कृष्ट संख्यात व जघन्य परीतासंख्यात लानेके लिये जो चार प्रकारके कुंड बनाए जाते हैं उनमें पहले कुंडका नाम अनवस्था है। देखो शब्द–अंक गणना (प्र० जि० पृ० ९०) (त्रि० गा० १४) पहला अवस्था कुंड १ लाख महा योजन लम्बा चौड़ा व १ हजार योजन गहरा, इसको गोल सरसोंसे शिखाऊ भरे तो १९,९७,११,२९,३८,४५,१३,१६,३६,३६, ३६,३६, ३६,३६, ३६,३६, ३६,३६, ३६,३६, ३६,३६, ३६, [illegible] सरसों आएँगे (जै० सि० दर्पण पृ० ६९)। इन सरसोंको निकालकर एक२ द्वीप व समुद्रमें डाले जायें, जहां पूरे हों उतने

पासवाला व १००० योजन गहरा दूसरा अनवस्था कुण्ड किया जाय। फिर खाली किया जाय। इस तरह इतनी दफे खाली किया जावे जब १ शलाका कुण्ड जो १ लाख योजन चौड़ा व १००० योजन गहरा है शिखाऊ भर न जावे। तब १ सरसों उतने ही बड़े प्रतिशलाका कुण्ड ४ में डाले। इस तरह क्रमसे जब प्रति शलाका कुंड भर जावे तब एक सरसों महा शलाकामें डाले, यह भी उतना ही बड़ा है। इस क्रमसे जब महाशलाका भी भर जावे तब जहांतक सरसों फेंकी गई थी उस अन्ततकके व्यासवाले अनवस्था कुण्डमें जितनी सरसों आवेंगी उतना प्रमाण जघन्य परीतासंख्यातका है।

अनवस्था दोष–वह दोष जिसमें जो प्रमाण दिया जाय वह अन्तमें टिके नहीं। जैसे कहना जगतको ईश्वरने बनाया, क्योंकि कोई वस्तु ईश्वर विना नहीं होती। तब ईश्वरको भी कोई बनानेवाला चाहिये, बस हम आगे नहीं चल सके। यही अनवस्था दूषण है। यदि कोई कहे कि ईश्वरने पृथ्वी आदि मूर्ति बनाई सो अन्य मूर्तीकको लेकर बनाई तब उन मूर्तीकको दूसरे मूर्तीकसे बनाई, यदि सादि जगतको मानोगे तो अनवस्था दूषण आवेगा, क्योंकि एक कोई मूर्तीक पदार्थ योंही उत्पन्न होना मानना पड़ेगा माननेमें यह दूषण नहीं आयगा।

अनवस्थित अवधिज्ञान–वह अवधिज्ञान जो सम्यग्दर्शनादि गुणोंके बढ़नेसे कभी बढ़े व कभी उनके घटनेसे घटे। जैसे वायुके वेगके कारण जलमें तरंग एकसी नहीं रहती हैं (सर्वा० अ० १ सू० २२)।

अनवेक्षा–इसमें जीव जन्तु हैं अथवा नहीं हैं ऐसा विचारकर देखनेको अवेक्षा कहते हैं सो नहीं करना अनवेक्षा है (सागा० श्लो० ४०)।

अनवेक्षिताप्रमार्जित आदान–बिना देखे व बिना झाड़े कुछ उठाना।

अनवेक्षिताप्रमार्जित उत्सर्ग–बिना देखे बिना झाड़े भूमिपर मल मूत्र करना।

अनवेक्षिताप्रमार्जित संस्तरोपक्रमण–बिना देखे बिना झाड़े भूमिपर चटाई आदि बिछाना।

ये तीनों प्रोषधोपवास प्रथम शिक्षा व्रतके तीन अतीचार हैं। (सागा० श्लो० ४०)।

अनशन–चार प्रकार आहारका त्याग करना। खाद्य, स्वाद्य, लेह्य (चाटने योग्य) व पेय।

अनशन तप–तपके १२ भेद हैं। छः बाहरी भेदोंमें पहला भेद किसी फलकी इच्छा न करके संयमकी सिद्धि, रागका विजय व कर्मोंके नाश व ध्यानकी प्राप्तिके लिये जो उपवास किया जाय, सो अनशन तप है (सर्वा० अ० ९ सू० १९) इसके दो भेद हैं।

(१) इत्वरिय, (२) यावज्जीव। जो कालकी मर्यादासे उपवास हो वह इत्वरीय है, जो आकांक्षा रहित मरण पर्यन्त चार प्रकार आहारका त्याग है वह यावज्जीव है। एक दिनमें दो समय भोजन भोजन है। चार दफेका भोजन छोड़े उसे चतुर्थ या उपवास कहते हैं। पहले दिन १ दफे ले, बीचमें दोनों दफे न ले, तीसरे दिन १ दफे सो चतुर्थ है। छः वेलाका भोजन छोड़े अर्थात् एक दिनके दो समय और न ले वह षष्ठतम या वेला है। इसी तरह तेलेको अष्टम, चौलेको दशम, पंचमको द्वादश इस तरह जानना। १५ दिनका व १ मासका भी उपवास होता है। इसी तरह कनकावली, एकावली, मुरज, सिंह निःक्रीड़ित आदि तप मर्यादा सहित इत्वरिय या साकांक्ष अनशन तप है।

२–निराकांक्ष अनशन तप ३ प्रकारका है (१) भक्त प्रतिज्ञा–जिसमें २ से लेकर ४८ मुनि तक समाधिमरण करनेवाले मुनिकी सेवा करें व आप भी अपनी सेवा करे इस तरह आहारका त्याग [illegible] (२) इंगिनी मरण–ऐसा [illegible] जिसमें पर की सहायता न ले आप अपनी करे। (३) प्रायोपगमन मरण–जिसमें शरीरका अपने, दूसरेकी अपेक्षा न करे आप भी अपनी सहायता न करे। (मू० गा० २४८–२५९)।

अनस्तमितसंकल्प–दिन अस्त होनेके पहले जिसके भोजनका नियम हो (श्रा० मा० पृ० ४१)।

अनस्तमीव्रत–रात्रि भोजन त्यागव्रत–दो घड़ी दिन रहे व दो घड़ी दिन चढ़े भोजन करे (क्रिया० क्रि० पृ० १२८)।

अनहिलवाड़ा पाटन–राजपूताना मालवा रेलवेके सिद्धपुर स्टेशनसे थोड़ी दूर है। यह चावड़ी और चालुक्य राजाओंकी राजधानी रही है। इसको वनराजने सन् ७४६ में वसाया था। मुसलमानोंने १३ वीं शताब्दिमें ध्वंश किया। पुराने मंदिरोंके खंडहर हैं। पंचासर पार्श्वनाथके जैन मंदिरमें एक संगमर्मरकी मूर्ति है जो वनराजकी कही जाती है। इसके नीचे लेख है, नाम वनराज व सं० ८०२ है। इस मूर्तिकी बाईं तरफ वनराजके मंत्री जाम्बकी मूर्ति है। इस मंदिरमें २४ वेदियां हैं। कुल जैनियोंके मंदिर १०८ हैं, कोई२ वहुत सुन्दर हैं। ढांढरवाड़ामें सामलिया पार्श्वनाथका मंदिर है, जिसमें एक बड़ी काले संगमर्मरकी मूर्ति सम्पवली राजाकी है। श्री महावीर स्वामीके मंदिरमें वहुत अदभुत व मूल्यवान पुस्तकोंके भंडार हैं। वहुतसे ताड़पत्र पर वड़े२ संदूकोंमें रक्षित हैं। पालनपुरका राज्य अनहिलवाड़ा राजपूतोंके आधीन सन् ७४६से १२९८ तक रहा। अन० में ८ वां अंश वस्ती जैनियोंकी है। अनहिलवाडाकी स्थापनाके पहले चावड़ सर्दार पंचासेर ग्राममें राज्य करते थे जो गुजरात और कच्छके मध्य वधिपारमें एक ग्राम है। वनराजका जन्म वनमें रूपसुन्दरीसे हुआ था जो जयशेखर चावड़की स्त्री थी। इसे कल्याण कटकके चालुक्य राजा भुवड़ने मार डाला था। रानी गर्भस्था थी। श्वे० जैन मुनि शील गुणसूरिने पुत्रकी रक्षार्थ आर्यिका वीरमतीको पुत्र देदिया और नाम वनराज रक्खा। इसके मामा सूरपालने इसे पाला। इसने ७४६ से ७८० तक राज्य किया। आयु १०९ वर्षकी थी। इसने ही पंचासर पार्श्वनाथका मंदिर बनवाया, मूर्ति पंचासरसे लाकर विराजमान की। नमन करते हुए उसके सामने अपनी भी मूर्ति स्थापित की जो अब सिद्धपुरमें है। इसका चित्र राजमालामें है। चावड़ वंशने यहां ७२०से ९६२ तक राज्य किया, फिर ९६४ से १२४२ तक चालुक्य या सोलंकी वंशने राज्य किया। इस वंशवाले भी जैनधर्मको भले प्रकार पालते थे। फिर वाघेलवंशने १२०४ तक राज्य किया। अंतिम राजा कर्णदेवसे पाटन अलाउद्दीन खिलजीके भाई अलफखांने १२९७ में ले लिया। इसने बहुतसे जैन मंदिर तोड़कर मसजिदें बनवाईं। प्रसिद्ध कुमारपाल राजाने यहीं ११४३ से ११७४ तक राज्य किया। इस अनहिलवाडा पाटनका हाल श्वे० जैनाचार्योंने कई ग्रंथोंमें लिखा है। जैसे हेमचंद कृत द्वाश्रवकाव्य, वस्तुपालचरित्र, मेरुतुंगकृत प्रबंधचिंतामणि (बं०जैन स्मा० पृ० ३३, २०२ से २१३)।

अनाकार–जिसका कोई जड़मई आकार न हो, जिसका आकार कोई नियमित न हो, अस्पष्ट आकार, आकारका न होना, एक प्रकारका प्रत्याख्यान (मू० गा० ६३८)।

अनाकार उपयोग–दर्शनोपयोग, वह उपयोग जिससे वस्तुका विशेष ग्रहण हो, ऐसे दर्शनोपयोगमें वस्तुका आकार नहीं झलकता है। जब वस्तुका आकार झलकने लगे तब वह ज्ञानोपयोग हो जाता है। (गो० जी० गा० ६७५)।

अनाकांक्षा क्रिया–शठता व आलस्यसे शास्त्रमें कही हुई विधिमें अनादर करना, यह आस्रवकी २५ क्रियाओंमेंसे २०वीं क्रिया है (सर्वा० अ० ६ सू० ५)

अनागत काल–भविष्यकाल, जो काल आने वाला है।

अनागत चौवीसी–भविष्यके उत्सर्पिणी कालमें होनेवाले २४ तीर्थंकर–भरतमें वे २४ तीर्थंकर होंगे–१ महापद्म, २ सूरप्रभ, ३ सुप्रभ, ४ स्वयंप्रभ, ५ सर्वायुध, ६ जयदेव, ७ उदयप्रभ, ८ प्रभादेव, ९ उदंगदेव, १० प्रश्नकीर्ति, ११ जय-

कीर्ति, १२ पूर्णबुद्धि, १३ निःकषाय, १४ विमलप्रभ, १५ बहुलप्रभ, १६ निर्मल जिन, १७ चित्रगुप्ति, १८ समाधिगुप्ति, १९ स्वयंभूजिन, २० कंदर्पजिन, २१ जयनाथ, २२ विमलजिन, २३ दिव्यवाद, २४ अनंतवीर्य (पंचकल्याणकदीपिका भ० द्वि० पृ० ४१)।

अनागत ज्ञायकशरीर नोआगम द्रव्यनिक्षेप–ज्ञाताको जो शरीर आगामी प्राप्त होगा (सर्वा० पृ०७ अ० १) (गो० क०का०गा० ४–५५–५६)

अनागत प्रत्याख्यान–प्रत्याख्यानके १०भेदोंमें पहला भेद, भविष्यकालमें उपवासादि करना (मू० गा० ६३७)।

अनागताभिलाप अब्रह्म–अब्रह्म या कुशील १० प्रकार है उसमें ९ वां भेद, भविष्यमें काम भोग क्रीडा शृंगारादिकी इच्छा। वे १० भेद हैं–१ स्त्री विषयाभिलाप, २ वस्तिविमोक्ष (वीर्यका छूटना विकारी भावसे), ३ प्रणीत रस सेवन या वृष्याहार सेवन (कामोद्दीपक पदार्थका खाना), ४ संसक्त द्रव्य सेवन (स्त्री व कामी पुरुषसे संसर्ग किये हुए शय्यासन महल वस्त्राभरणका सेवना), ५ इंद्रियावलोकन, ६ सत्कार, ७ संस्कार (शृंगार), ८ अतीत स्मरण, ९ अनागताभिलाप, १० इष्ट विषय सेवन। (भ० आ० पृ० ३०७)।

अनागार–गृहरहित मुनि।

अनागारी–गृहरहित मुनि।

अनाचरित दोष व अन्याचरित दोष–वसतिकाके ४६ दोषोंमें १३ वां उद्गम दोष जो संयमीकी वसतिका बनानेके लिये सामग्री अन्य ग्रामसे लावे। (भग० पृ० ९३)।

अनाचार–देखो शब्द अतीचार–अत्यन्त आसक्त होकर प्रतिज्ञाको तोड़ डालना।

अनाचिन्न अभिघट दोष–मुनियोंको दान देनेके लिये जो १६ उद्गमदोष दाताको बचाने चाहिये उनमेंसे १२ वें अभिघट दोषके दो भेद हैं। आचिन्न–जो पंक्तिबन्ध सीधे तीन या सात घरोंसे लाया हुआ भोजन हो सो ग्रहण योग्य है इसके विरुद्ध पंक्तिबंध घर न हों ऐसे ७ घरोंसे लाया हुआ व ८वां आदि घरसे लाया हुआ भोजन अनाचिन्न अर्थात् ग्रहण योग्य नहीं है। (मू० गा० ४३९)।

अनात्म–अपनेसे अन्य।

अनात्मभूत–जो वस्तुके स्वरूपमें मिला न हो।

अनात्मभूत क्रिया–

अनात्मभूत नय–

अनात्मभूत लक्षण–किसी पदार्थको पहचाननेके लिये जो लक्षण किया जावे वह दो तरहका होता है १ आत्मभूत, २ अनात्मभूत। जो लक्षण वस्तुके स्वरूपमें मिला हो अर्थात् वस्तुका गुण, पर्याय या स्वभाव हो वह आत्मभूत लक्षण है, जैसे अग्निका लक्षण उष्णपना या जीवका लक्षण उपयोग। जो लक्षण वस्तुके स्वरूपमें मिला न हो परन्तु अन्य वस्तुको लेकर किया जाय वह अनात्मभूत लक्षण है जैसे दंडी पुरुषका लक्षण दंड। (जै० सि० प्र० नं० ४–५)।

अनादर–जम्बूद्वीप व लवण समुद्रका स्वामी व्यंतरदेव (त्रि० गा० ९६१) इसके मंदिर जम्बूवृक्षकी पूर्व, दक्षिण, पश्चिम शाखाओं पर हैं। भक्ति व विनय व प्रेमका न होना।

अनादर अतिचार–श्रावकके १२ व्रतोंमें सामायिक शिक्षाव्रतका व प्रोषधोपवास शिक्षाव्रतका चौथा अतीचार। सामायिक व उपवास करनेमें उत्साहका न होना। (सर्वा० अ० ७ सू० ३४–३५)।

अनादर क्रिया–

अनादि–जिसका आदि न हो।

अनादिअनन्त–जिसका आदि और अंत न हो।

अनादि धर्म–धर्म अनादिसे है, जो स्वभाव अनादिसे हो।

अनादि नित्यपर्यायार्थिक नय–वह अपेक्षा जिसके द्वारा अनादिकालसे चली आनेवाली स्थूल

नित्यपर्यायको कहा जाय। जैसे मेरुपर्वत पुद्गलकी पर्याय है (आलाप प०)।

अनादिनिधन–जिसका न आदि हो न अंत हो।

अनादि निधन संसार–संसार जो अनादि अनंत हो।

अनादि बन्ध–जो कर्मबंध अनादिसे चला आरहा हो, जिसका अभाव न हुआ हो। इसका विरोधी सादि बंध वह है जिसका कभी बन्धना बन्द होकर फिर बंधना प्रारम्भ हो (गो०क०गा०९०–१२३)।

दृष्टान्त यह है कि ज्ञानावरणका बन्ध दसवें सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान तक होता है वही जीव उपशांत मोह ११ वेंमें चढ़ा, तब वहां ज्ञानावरणका बन्ध बन्द होगया, फिर वही जीव गिरा और १०-वेंमें आया तब फिर ज्ञानावरणका बन्ध शुरू हो-गया। यह सादि बन्ध है। जबतक वह जीव ११ वेंमें नहीं चढ़ा था १० वें तक ही रहा तबतक ज्ञानावरणका बंध उस जीवके बराबर चला आरहा था इसलिये वह अनादि बंध हुआ।

अनादि मिथ्यात्व–सच्चे तत्वोंका श्रद्धान न होना। ऐसा मिथ्यात्व अनादिकालसे चला आरहा हो, कभी छूटा न हो।

अनादि मिथ्यादृष्टी–जो मिथ्याश्रद्धानी जीव अनादिसे चला आरहा हो, कभी जिसको सम्यक्त न हुआ हो।

अनादि सांत–जो अनादिसे चला आरहा हो परन्तु उसका अन्त होजावे। जैसे संसारी भव्य जीवके कर्मोंका बंध प्रवाहकी अपेक्षा अनादि है परन्तु जब वह मुक्त होता है तब उसका अंत होजाता है। क्षायिक सम्यग्दृष्टीके मिथ्यात्व सदाके लिये चला गया इसलिये वहां मिथ्यात्व अनादि सांत है।

अनादृत दोष–वंदना व कृतिकर्म (विनय) में ३२ दोष साधुको न लगाने चाहिये, उनमें पहला दोष, आदर बिना क्रियाकर्म करना (मू.गा.६०७)।

अनादेय नामकर्म–नामकर्मकी ९३ प्रकृतियोंमें एक प्रकृति, जिसके उदयसे प्रभारहित निस्तेज शरीर हो (सर्वा० अ० ८ सू० ११)।

अनाभोग क्रिया–विना देखे व विना झाड़े स्थानपर शरीर आदिका रखना। आस्रवकी २५ क्रियाओंमेंसे १५वीं क्रिया (सर्वा०अ०६ सू० ५), अन्यको नहीं मालूम ऐसा दोष जो मनसे किया हो (मू० गा० ६२०)।

अनाभोग निक्षेपाधिकरण–विना देखे विना झाड़े चाहे जहां पदार्थको नहीं रखना। अजीवा-धिकरणके ११ भेदोंमेंसे निक्षेपके चार भेदोंमेंसे चौथा (सर्वा०अ० ६ सू०९) (भग०पृ० २८९)।

अनाभोगित दोष–नेत्रोंसे देखे विना तथा पीछीसे सोधे विना उठावना रखना, यह दोष आदाननिक्षेपण समितिको पालते हुए न लगाना चाहिये (भग० पृ० ३७७)।

अनायतन–जो धर्मका स्थान न हो, जिनकी गाढ़ संगतिसे सम्यग्दर्शनमें दोष लगे ऐसे ६ अना-यतन हैं–कुदेव, कुगुरु, कुधर्म व इनके सेवक तीन।

अनार्जव–माया (रा० सू० पृ० १७९)।

अनार्य–जो गुणवान सज्जन न हों, म्लेच्छ, असभ्य।

अनार्य क्षेत्र–खंड–म्लेच्छ खंड–ढाईद्वीपमें ८५० म्लेच्छ क्षेत्र हैं, ५ भरत, ५ ऐरावत व १६० विदेह ऐसे १७० कर्मभूमिके क्षेत्रोंमें प्रत्येकके ६, ६, खंड हैं। उनमें एक आर्य क्षेत्र है, ५ म्लेच्छ या अनार्य क्षेत्र हैं। कुल १७० आर्य क्षेत्र या खंड हैं व ८५० म्लेच्छ क्षेत्र या खंड हैं। इनमें सदा चौथा काल वर्तता है परन्तु धर्मकी प्रवृत्ति न होनेसे ये म्लेच्छ क्षेत्र कहलाते हैं।

अनार्य मनुष्य–अनार्य क्षेत्रोंमें रहनेवाले मानव। वे म्लेच्छ जो अंतर्द्वीपोंमें रहते हैं। वे अंतर्द्वीपज म्लेच्छ या अनार्य कहलाते हैं। जो कर्मभूमिमें रहते हैं उनको कर्मभूमिज म्लेच्छ कहते हैं। ९६ अंतर द्वीप हैं। लवणोदध समुद्रके भीतर ८ दिशाओंमें ८, उनके अंतरालमें ८, हिमवन् पर्वत, त्रिपरिणी

पर्वत व विजयार्द्ध दोनोंके अन्तमें ८, ऐसे ही २४ द्वीप लवणोदधिके बाहरी तरफ हैं। इसीतरह २४ कालोदधिके भीतर व २४ उसके बाहर हैं, सब ९६ द्वीप हैं। इनमें लवणोदधिके २४ द्वीपोंका हाल यह है कि जो ८ दिशाओंके द्वीप हैं वे जम्बूद्वीपकी वेदीसे ५०० योजन छोड़कर हैं, जो इनके अंतरके हैं वे ५५० योजन छोड़कर व जो पर्वतोंके अन्तमें हैं वे ६०० योजन छोड़कर हैं। दिशाओंके द्वीप १०० बड़े योजन चौड़े हैं, अंतरालके ५० व पर्वतोंके अंतवाले २५ योजन चौड़े हैं इनमें जो पूर्व दिशाके द्वीपवाले अनार्य एक जांघवाले हैं, पश्चिमके पूंछवाले हैं, उत्तरके गूंगे ह, दक्षिणके सींगवाले हैं। चार दिशाओंके क्रमसे खरगोशसे कानवाले शष्कुली यवर्कनाली या एक तरहकी मछलीकेसे कानवाले, कानोंको बिछानेवाले, लम्बे कानवाले होते हैं। ८ अंतरालमें घोड़ामुख, सिंहमुख, कुत्तामुख, भैंसामुख, बाघमुख, काकमुख, घूघूमुख, व कपिमुख होते हैं। शिखरीके दोनों तरफ मेघमुख व बिजली मुख, हिमवतके दोनों तरफ मछलीमुख व कालमुख, उत्तर विजयार्द्धके दोनों तरफ हाथीमुख व दर्पणमुख, दक्षिण विजयार्द्धके दोनों ओर गौमुख व मेंढ़ामुख, एक जांघवाले मिट्टी खाते हैं, गुफामें रहते हैं। बाकी सर्व पुष्प फल खाते हैं, वृक्षोंके नीचे रहते हैं। सब हीकी आयु १ पल्यकी। युगल ही पैदा होते व मरते हैं। ये सब द्वीपजलके तलसे १ योजन ऊँचे होते हैं। कर्मभूमिके जो म्लेछ होते हैं उनको शक, यवन, शबर, पुलिंद आदि कहते हैं (सर्वा० अ० ३ सू० ३६)।

अनार्य व–माया।

अनार्षवेद–जो वेद सर्वज्ञ वीतरागकी वाणीके अनुसार न हो। सर्वज्ञ वीतराग श्री ऋषभदेव प्रथम तीर्थंकरने जो दिव्यध्वनि प्रगट की उससे जो द्वादशांग वाणी बनी सो आर्षवेद है। जिन वेदोंको मनुष्योंने अनर्गल रचा हो वे अनार्षवेद हैं। क्षीरकदम्बका पुत्र पर्वत था, वह अपने भाई जिन नारदसे वादमें हार गया। उसको एक महाकाल व्यन्तर मिला जो पहले जन्ममें मधुपिंगल था। इसको धोखा देकर राजा सगरने सुलसा कन्याको विवाहा। मधुपिंगल दुःखित हो जैन साधु होगया। पीछे जब सगरका कपट मालूम हुआ तब उसने बड़ा क्रोध किया और मरकर महाकाल व्यन्तर हुआ। पर्वतसे मिलकर इसने वेदोंको हिंसारूप बनाया। यही अनार्ष वेद हैं। महाकालने अपना रूप बदलकर शांडिल्य ब्राह्मण रक्खा और लोगोंको यही वेद पढ़ाकर हिंसामयी यज्ञोंका प्रचार कराया। (हरि० पृ० २६४–२७२ अ० २३)

अनालब्ध दोष–विनय कृतिकर्मके ३२दोषोंमें १ दोष (मूला० गा० ६०७)।

अनाहत–ईशान दिशाका अनावृत यक्ष (प्र० सा० पृ० ७७)।

अनावर्त–एक व्यंतरदेव जो जम्बूद्वीपका रक्षक है। इसने रावण और उसके दोनों भाइयोंको विघ्न किया, जब ये भीम वनमें विद्या सिद्ध कर रहे थे। (प्रा० जैन इ० पृ० ६१)।

अनावृष्टि–(अनावृष्टि) श्री कृष्णके पिता वसुदेवजीके एक पुत्रका नाम (हरि० पृ० ३३२) इनकी माता मदनवेगा थी (ह० पृ० ४१७) राजा जरासिंधके युद्धमें यह कुमार महारथी सुन्दर योद्धा थे (ह० पृ० ४६०) इसने इस युद्धमें हिरण्यनाभिको बड़ी वीरतासे मारा था।

अनाहत ध्यान–अर्हं मंत्रका ध्यान करते हुए आत्माको [illegible] चन्द्र व सूर्यके समान चिन्तवन करे (ज्ञाना० पृ० २९६)।

अनाहार–आहारका त्याग, उपवास, जिस दशामें [illegible] ग्रहण न करे [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है [illegible] [illegible] है, [illegible]

मात्र जल लिया जाय वह उपवास है। जहां आरम्भ न करे व जलपान कुछ भी न ले वह महोपवास है। अपनी शक्तिके अनुसार श्रावक करे (ध० सं० श्रा० पृ० २४९ श्लो० १६९-१७१)।

अनाहारक जीव-औदारिक, वैक्रियिक व आहारक इन तीन शरीर व आहारादि छः पर्याप्तिके योग्य वर्गणाको ग्रहण करे वह आहारक है। जो न ग्रहण करे वह अनाहारक है। जब एक जीव किसी शरीरको छोड़कर दूसरे शरीरमें जाता है तब बीचमें विग्रहगति होती है। उसमें जो जीव एक समय या दो समय वा तीन समयतक मध्यमें रहता है तब वह अनाहारक होता है (सर्वा० २ सू० ३०) विग्रहगतिवालोंके सिवाय केवली समुद्घात करनेवाले सयोगी जिन जब प्रतर व लोकपूर्ण रूप होते हैं तब तीन समय कार्मणयोग होता है। तब भी अनाहारक होते हैं। अयोगी जिन १४वें गुणस्थानवाले तथा सिद्ध भगवान भी अनाहारक हैं। (गो० जी० गा० ६६४-५-६) एक संसारी जीव एक समयमें जब नए जन्मके लिये पहुंचता है तब आहारकवर्गणा मात्रको तो एकेंद्रिय होनेवाला। आहारक और भाषावर्गणाको द्वेन्द्रियसे असैनी पंचेन्द्रियतक होनेवाला। तथा आहारकवर्गणा, भाषावर्गणा और मनोवर्गणाको पंचेन्द्रियसैनी होनेवाला ग्रहण करता है तब आहारक कहलाता है। जब इनमेंसे किसीको न ग्रहण करे तब अनाहारक कहलाता है। तैजसशरीर व कार्मणशरीर बनने योग्य तैजस व कार्मणवर्गणाओंको सर्व संसारी जीव विग्रहगतिमें भी व अन्य चारों गतिमें भी हरसमय ग्रहण करते हैं। मात्र १४वें गुणस्थानी अयोगी जिन व सिद्ध भगवान इनको भी ग्रहण नहीं करते हैं।

अनि-विद्याधरोंके राक्षसवंशमें एक राजा, रावणकी कई पीढ़ी पहले (प्रा० जै० इ० पृ० ९४)।

अनिकाचित-अग्रायणी पूर्वके पंचम वस्तु अच्यवनलब्धिमें कर्मप्रकृति नामके चौथे पाहुड़में २४ योग द्वारोंमेंसे २१वां योगद्वार (ह० पृ० १२७)

अनिच्छा-इच्छा विना, जो काम विना इच्छाके हो जावे जैसे आंखका फड़कना, रात्रिको निद्रामें बकना।

अनित्य-जो अविनाशी न हो, क्षणभङ्गुर हो।

अनित्य निगोद-इतर निगोद, साधारण वनस्पतिकायके उन जीवोंकी राशि जो चतुर्गतिमें भ्रमण करते हुए निगोदमें आते जाते रहते हैं।

अनित्य अशुद्ध पर्यायार्थिक नय-वह अपेक्षा जिससे अनित्य व अशुद्ध पर्याय कहा जावे। जैसे संसारी जीवोंका भवभवमें उत्पत्ति व मरण है। एकेन्द्रिय द्वेन्द्रियादि पर्यायमें जीव है।

अनित्य भावना-१२ भावनाओंमें पहली भावना। यह विचारना कि इंद्रियोंके विषयभोगके योग्य चेतन व अचेतन सब पदार्थ जल बुदबुदवत् चंचल हैं, सदा रहनेवाले नहीं हैं (सर्वा० अ० ९ सू० ७)।

अनित्यत्व-क्षणभङ्गुरपना। पर्यायमें अनित्यत्व है जब कि द्रव्य व उसके गुणोंमें नित्यत्व है। अनित्य स्वभाव वस्तु ११ सामान्य स्वभावोंमेंसे एक है (आ० प० पृ० १९७)।

अनित्य शुद्ध पर्यायार्थिक नय-जो नय सत्ताको गौण करके उत्पाद व्यय स्वभावको ग्रहण करे जैसे पर्याय प्रतिसमय विनश्वर है (दर्पण पृ० ८)।

अनित्य सम्यक्त-उपशम व क्षयोपशम सम्यग्दर्शन, ये दोनों छूटनेवाले हैं। परन्तु क्षायिक सम्यग्दर्शन जो अनन्तानुबन्धी ४ कषाय और मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व व सम्यक्तप्रकृतिके क्षयसे होता है कभी नहीं छूटता है। वह नित्य है। (गो० जी० ६४६)।

अनित्यानुप्रेक्षा-देखो अनित्यभावना।

अनित्य शुद्ध पर्यायार्थिक नय-देखो अनित्य अशुद्ध पर्यायार्थिक नय।

अनिन्दित-समवशरणकी रचनामें जो शोभनीक पुर कुबेर बनाता है उसका नाम (ह० पृ० ५११) जो निन्दित न हो। जो हिंसाकारी न हो। व्यंतर देवोंमें किन्नर जातिके १० भेदोंमें छठा भेद, (त्रि० गा० २५७)।

अनिन्दिता—व्यन्तरदेवोंमें महोरग जातिके देवोंमें अतिकाय इन्द्रकी दो वल्लभिका, देवियोंमें दूसरी (त्रि० गा० २६२)

अनिन्द्रिय—मन, अंतःकरण, ईषत इन्द्रिय, कुछ इन्द्रिय। इन्द्र आत्माको कहते हैं, उसके जाननेका चिन्ह इन्द्रिय है अर्थात इंद्रियोंके द्वारा जो ज्ञान होता है उससे आत्माके अस्तित्वका ज्ञान होता है। इसी तरह मनके कार्यसे भी आत्माका बोध होता है। यह प्रगट नहीं दिखता जबकि इंद्रियें प्रगट दीखती हैं। इसलिये मनको अनिन्द्रिय कहते हैं। जो गुण व दोषोंको विचार करे, तर्क करे, कारण कार्यको समझे, संकेत समझे, शिक्षा ग्रहण करे वह मन है। मन दो तरहका है—भाव मन, द्रव्य मन। मन द्वारा जाननेकी शक्ति व उपयोगको भाव मन कहते हैं। मनोवर्गणा रूप पुद्गल जो हृदयस्थानमें कमलके आकार हो जाते हैं वह द्रव्य मन है। (सर्वा०अ०१सू०१४ व आ०प०सू०१९)

अनिन्द्रिय विषय—मनके द्वारा जो जाना जाय, संकल्प विकल्प।

अनिन्हव—नहीं छिपाना।

अनिन्हवाचार—जिस गुरु व शास्त्रसे ज्ञान प्राप्त हुआ हो उसको नहीं छिपाना। यह सम्यग्ज्ञानके आठ अँगोंमेंसे ८वां अँग है, आठ अँग ये हैं-(१) शब्दाचार-शुद्ध शब्द पढ़ना (२) अर्थाचार-शब्दका अर्थ ठीक करना (३) उभयाचार-शब्द और अर्थ दोनों शुद्ध पढ़ना (४) कालाचार-योग्यकालमें पढ़ना (५) विनयाचार—विनयसहित पढ़ना (६) उपधानाचार स्मरण सहित पढ़ना (७) बहु मानाचार बहुत मानसे पढ़ना, शिक्षक पुस्तक आदिका आदर करना (८) अनिन्हवाचार। (श्रा०प०सं०पृ०७२)।

अनिर्दिष्ट संस्थान—जिसका कोई पौद्गलिक आकार न हो व जिसका आकार नियमित न हो।

अनियतकाल सामायिक—सामायिकको नियत कालमें नहीं करना व चाहे जब करना। प्रातःकाल, मध्याह्नकाल व सायंकाल तीन काल, उत्कृष्ट छः घड़ी मध्यम ४ घड़ी, व जघन्य २ घड़ी नियतकाल है, इसीमें करना। कमसेकम छः घड़ीके भीतर कर लेना। ३ घड़ी रात्रिसे लेकर ३ घड़ी दिन चढ़ेतक प्रातःकालकी ६ घड़ी जानना। एक घड़ी २४ मिनटकी होती है। इसी तरह अन्य समझना।

अनियत गुणपर्याय—अपने गुणोंके पर्यायोंमें जो निश्चल न हो।

अनियतवास—कोई नियमित स्थान रहनेका न हो। साधुजनोंका नियतवास नहीं होता है।

अनियत विहार—जहां नियत भ्रमण न हो, चाहे जहां जावें। साधुओंका विहार नियत नहीं होता है।

अनियमित उपवास—जन्मपर्यंत तक आहार त्याग-कर उपवास करना। जो कालके नियमसे उपवास किये जावें वह नियमित उपवास है। (चा० पृ० १२८)

अनिरुद्ध—श्रीकृष्णका पोता, प्रद्युम्नका पुत्र। यह गिरनार पर्वतसे मोक्ष गए हैं। (ह० पृ० ४०९) पांचवें अरिष्टा नरकके तमक इन्द्रक संबन्धी चार दिशाके चार बिल हैं। निरुद्ध, विमर्दन, अनिरुद्ध व महाविमर्दनक (त्रि० गा० १६१)।

अनिर्वचनीय—अवक्तव्य, जिसका कथन न हो सके। देखो अवक्तव्य।

अनिल—नक्षत्रोंके स्वामी या अधिदेवता—नं० १३, कुल २८ नक्षत्रोंके २८ अधिदेवता होते हैं देखो शब्द अट्ठाईस नक्षत्राधिप (प्र०जि०पृ०३६२)

अनिवर्तक—भरतक्षेत्रके २०वें भविष्य तीर्थंकर।

अनिवृत्ति—वह मुनिराज जिनके पास श्रीकृष्ण बलभद्रने मुनि दीक्षा ली थी। वह धातकी खंडद्वीपमें पश्चिम विदेहमें हुए (ह० पृ० ६९५)।

अनिवृत्तिकरण गुणस्थान—नौमा गुणस्थान। जिसमें एक समयवर्ती परिणाम [illegible] [illegible] समान [illegible] होते हैं। इसमें प्रथम गुणस्थान होता है। [illegible] को यहां [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] है। [illegible] गुणस्थानके [illegible] [illegible] [illegible]

परन्तु परिणाम सबके एक समान एक साथ प्रारम्भ करनेवालोंके होंगे (गो० क० गा० ९११)।

अनिवृत्तिकरण लब्धि–देखो अधःकरण लब्धि।

अनिवृत्ति परिणाम–अनिवृत्तिकरण लब्धिके भाव।

अनिवृत्तोपकरण–

अनिष्टपक्षाभास–जो पक्षाभास वादीको इष्ट न हो, जैसे मीमांसकोंके अनित्य शब्द अनिष्ट है। क्योंकि उन्होंने शब्दको नित्य माना है (प० ६।१३)

अनिष्ट संयोगज आर्तध्यान–जो पदार्थ अपनेको इष्ट न हों, उनके संयोग होनेपर उनके वियोग होनेके लिये चिन्तामें मगन रहना। यह पहला आर्तध्यान है। दूसरा इष्टवियोगज, तीसरा वेदना या पीड़ाजनित, चौथा निदान। यह आर्तध्यान संसारका कारण है (सर्वा० अ० ९ सू० २८)।

अनिष्ठीवन शयन–सोते हुए खखार थूकका नहीं डालना। निष्ठीवन खखार थूकको कहते हैं। यह कायक्लेश तप साधुओंके लिये है (भग०पृ० ९१)।

अनिःसृत ग्रहण–ऐसे पदार्थको जानना जो बाहर पूर्ण प्रगट न हो, जैसे पानीमें बैठे हुए हाथीको उसके मस्तकके भागको देखकर जान लेना। यह भी मतिज्ञानका एक भेद है। (देखो प्र० जि० पृ० ४२ व २२९) १२ प्रकारके पदार्थोंका मतिज्ञान, ६ इंद्रिय व मनसे अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणाके भेदसे होता है। इससे १२×६×४=२८८ भेद अर्थावग्रहके व व्यंजनावग्रह अस्पष्ट पदार्थका आंख व मन सिवाय ४ इंद्रियोंसे होता है तब उसके ईहादि भेद नहीं होते हैं तब १×४×१२=४८ भेद हुए। कुल मिलाकर ३३६ भेद होते हैं, गूढ़ (गो० जी० गा० ३११)।

जिन बारह प्रकारके विषयोंका ज्ञान होता है वे हैं–(१) एक–एकको जानना (२) बहु–बहुतको जानना (३) एकविध–एक जातिकी वस्तु जानना (४) बहुविध–बहुत जातिका एकदम जानना, (५) क्षिप्र–शीघ्र पड़ती जलधाराको जानना,(६) अक्षिप्र–मंद चलते हुए घोड़ेको जानना, (७) अनिःसृत–गूढ़ छिपे हुए जलमें मगन हाथीको जानना, (८) निःसृत–प्रगट पदार्थको जानना, (९) अनुक्त–विना कहे हुएको अभिप्रायसे जानना, (१०) उक्त कहे हुएको जानना, (११) ध्रुव–अचल व बहुत काल रहनेवालेको जानना, जैसे पर्वत, (१२) अध्रुव–विनाशीकको जानना जैसे विजलीकी चमक।

अनिसृष्टदोष–साधुके लिये वस्तिका या ठहरनेके स्थानको जो दातार दे उसमें १६ उद्गम दोष न होने चाहिये। उनमें १६ वां दोष यह है जो असमर्थ बालक व सेवकके आधीन हो सो व जिसका जो स्वामी नहीं है वह वस्तिका दे सो–साधु जाने तो त्याग करे (भग० पृ० ९४) भोजनके भी १६ उद्गम दोषोंमें यह १६ वां दोष है। इसके दो भेद हैं–एक ईश्वर अनिःसृष्ट, दूसरा अनीश्वर अनिःसृष्ट जो स्वामी होकर भी दान देना चाहे परन्तु समर्थ न हो मंत्री आदिसे रोका जाय, फिर भी जो देवे सो ईश्वर अनिःसृष्ट दोष है। जिसका स्वामी न हो व आप सेवकादि देवें सो अनीश्वर अनिःसृष्ट दोष है (भ० पृ० १०५) इसको अनिष्टार्थ दोष भी कहते हैं (मू० गा० ४४४)।

अनिसृष्टा–अंजना नाम चौथे नर्कमें आए इन्द्रकके चार दिशाके चार श्रेणीवद्ध विले हैं। निसृष्टा, निरोधा, अनिसृष्टा व महानिरोधा (त्रि० गा० १६१)

अनिसृष्टि दोष–देखो अनिसृष्ट दोष।

अनी–

अनीक–देवोंकी १० प्रकारकी पदवियोंमें व उस भेदके देव जो सेनाके रूपमें वन जाते हैं वे १० भेद हैं–(१) इन्द्र–देवोंका स्वामी (२) सामानिक–गुरु, उपाध्यायके समान (३) त्रायस्त्रिंश–मंत्री व पुरोहितके समान (४) पारिषद–सभासद (५) आत्मरक्ष–इन्द्रके अंगरक्षक देव (६) लोकपाल–कोतवालके समान (७) अनीक–सेना बननेवाले (८) प्रकीर्णक–प्रजाके समान, (९) आभियोग्य–नानावाहन बननेवाले (१०) किल्बिषिक–हीनपुण्यीदेव (सर्वा० अ० ४ सू० ४)।

अनीक जातिके देवोंकि प्रत्येकके ५० देवांगना होती हैं। सबसे निकृष्ट देवके भी ३२ देवीवे कम नहीं होती हैं। (त्रि० गा० २३९)।

अनीकदत्त और अनीकपाल—वसुदेवकी पत्नी देवकीके पुत्र जो युगलियां पैदा हुए थे और कंसके भयके कारण उनको अलका सेठानीके यहां पालनेको पहुंचाया गया (हरि० ए० ३६३ आ० ३९)।

अनीकिनी—श्री रामचन्द्र आदिके प्राचीन समयमें सेनाके नौ भेद होते थे—(१) पत्ति—इसमें १ रथ, १ हाथी, ५ प्यादे, ३ घोड़ होते हैं, (२) सेना—३ रथ, ३ हाथी, १५ प्यादे व नौ घोड़े, (३) सेनामुख—नौ रथ, नौ हाथी, ४५ प्यादे, २७ घोड़े, (४) गुल्म—२७ रथ, २७ हाथी, १३५ प्यादे, ८१ घोड़े, (५) वाहिनी—८१ रथ, ८१ हाथी, ४०५ प्यादे, २४३ घोड़े, (६) प्रतना- २४३ रथ, २४३ हाथी, १२१५ प्यादे, ७२९ घोड़े, (७) चमू—७२९ रथ, ७२९ हाथी, ३६४५ प्यादे, २१८७ घोड़े, (८) अनीकिनी—२१८७ रथ, २१८७ हाथी, १०९३५ प्यादे, ६५६१ घोड़े, (९) अक्षौहिणी १० अनीकिनीकी होती है। अर्थात २१८७० रथ, २१८७० हाथी, १०९३५० प्यादे व ६५६१० घोड़े। विदित हो कि अनीकिनीतक पहले भेदसे तीन गुणी संख्या है. जब कि अक्षौहिणीमें अनीकिनीसे १० गुणी है (प्रा० जै० इ० द्वि० ए० ११७)।

अनीशार्ध दोष—देखो अनिसृष्टि दोष।

अनु—पीछे, सादृश्य, समान, अनुकूल, सहायक (देखो प्र० जि० १ ए० २७४ नोट २)।

अनुकम्पा—जीवदयाका भाव प्रगट करना, सम्यग्दृष्टीके आठ बाहरी लक्षण होते हैं (१) संवेग—धर्मकार्यमें रुचि (२) निर्वेद—संसार शरीर भोगोंसे वैराग्य (३) उपशम—शांतभाव (४) निन्दा—अपनी निंदा दूसरेसे करना (५) गर्हा—अपनी निंदा आप करना (६) अनुकम्पा-जीवदया (७) आस्तिक्य—नास्तिकपना न होना, धर्ममें श्रद्धा, (८) वात्सल्य—धर्मात्माओंसे प्रीति (पु० ए० ८१) प्रशम (शांतभाव), संवेग, अनुकम्पा, आस्तिक्य ऐसे भी चार लक्षण सम्यग्दृष्टीके कहे हैं (सागा० ए० ७)।

अनुकृष्टि—जहां अधःकरण लब्धिका वर्णन है वहां नीचेके समय परिणामोंकी सदृशता ऊपरके परिणामोंके साथ मिल जावे। इस अधःप्रवृत्तकरणमें अंतर्मुहूर्तकाल है। परिणाम विशुद्धितासे बढ़ते२ असंख्यात लोक प्रमाण हैं। वृद्धि समान होती है इसका दृष्टांत ३०७२ परिणामोंपर लगाया गया है। यदि १६ समय हों और ४ की वृद्धि हो तो इसतरह बटवारा परिणामोंका होगा—१६२, १६६, १७०, १७४, १७८, १८२, १८६, १९०, १९४, १९८, २०२, २०६. २१०, २१४, २१८, २२२। हरएक समय सम्बन्धी परिणामोंमें चार चार खंड हैं। जिसका नक्शा यह होगा—

एक समयके भाव	खंड १	खंड २	खंड ३	खंड ४
२२२	५४	५५	५६	५७
२१८	५३	५४	५५	५६
२१४	५२	५३	५४	५५
२१०	५१	५२	५३	५४
२०६	५०	५१	५२	५३
२०२	४९	५०	५१	५२
१९८	४८	४९	५०	५१
१९४	४७	४८	४९	५०
१९०	४६	४७	४८	४९
१८६	४५	४६	४७	४८
१८२	४४	४५	४६	४७
१७८	४३	४४	४५	४६
१७४	४२	४३	४४	४५
१७०	४१	४२	४३	४४
१६६	४०	४१	४२	४३
१६२	३९	४०	४१	४२

मिल भी जावे सो अधःप्रवृत्तकरण है (गो० क० गा० ८९८-९०७)

अनुक्त ग्रहण—नहीं कहे हुए पदार्थको अभिप्रायसे जानना। मतिज्ञानका एक भेद देखो, अनिःसृत ग्रहण।

अनुगत—एक प्रकारकी छोटी विद्याका अधिष्ठाता देवता (चा० पृ० २०१)।

अनुगामी—साथ साथ जानेवाला।

अनुगामी अवधिज्ञान—देखो अनुनगामी अवधिज्ञान—(१) जो अवधिज्ञान एक क्षेत्रसे दूसरे क्षेत्रपर जानेपर साथ रहे वह क्षेत्रानुगामी। (२) जो अवधिज्ञान इस जन्मसे जहां पैदा हुआ दूसरे जन्ममें साथ जाय वह भवानुगामी है। (३) जो अवधिज्ञान जहां उपजा है उससे दूसरे क्षेत्र या भव दोनोंमें साथ रहे वह उभयानुगामी है। ऐसे भेद अनुगामी अवधिज्ञानके हैं (गो० जी० गा० ३७२)

अनुजीवी गुण—भाव स्वरूप गुण जैसे सम्यक्त, चारित्र, सुख, चेतना जीवके व स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, पुद्गलके (जै० सि० प्र० न० १७८) (गो० क० न० गा० १०)

अनुच्छ—श्री रिषभदेवके ८४ गणधरोंमेंसे ७७वें गणधर (इ० प्र० १ पृ० ८९)।

अनुकृष्ट अनुभाग बंध—
अनुकृष्ट प्रदेशबंध
अनुकृष्ट बन्ध
अनुकृष्ट स्थिति बंध
} बन्ध कर्मोंका चार प्रकारका है प्रकृति, प्रदेश, स्थिति, अनुभाग। कर्मामें स्वभाव पड़ना सो प्रकृति बन्ध है, जैसे ज्ञानावरणादि। कितनी कर्म वर्गणा बंधी सो प्रदेशबन्ध, कितने कालकी मर्यादा उन बन्ध कर्मोंमें पड़ी सो स्थिति बन्ध, कितनी तीव्र या मंद फल दान शक्ति पड़ी सो अनुभाग बंध है। इनमेंसे प्रदेश अनुभाग व स्थिति बंधके चार२ भेद हैं। उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, अजघन्य जघन्य। जहां सबसे अधिक प्रदेश (वर्गणा), स्थिति व अनुभाग बन्धे सो उत्कृष्ट है, जहां उत्कृष्टसे हीन बन्धे सो अनुत्कृष्ट है, जहां सबसे थोड़ी बन्धे वह जघन्य है, जघन्यसे अधिक हो सो अजघन्य है।

अनुत्तर—चक्रवर्तीके सर्वोत्तम सिंहासनका नाम (आदि० पर्व ३७-१५४)।

अनुत्तर विमान—प्राणत नामके १४वें स्वर्गका एक विमान। १६ स्वर्गके ऊपर नौ ग्रैवेयिक, फिर ९ अनुदिश, फिर ५ अनुत्तर विमान हैं। विजय, वैजयंत, जयंत, अपराजित, सर्वार्थसिद्धि (सर्वा० अ० ४ सू० १९)।

अनुत्तरोपपादिक दशांग—जिनवाणीके १२ अङ्गोंमेंसे नौवां अंग। इसमें यह वर्णन है कि हरएक तीर्थंकरके समयमें १० दस महामुनि उपसर्ग सहकर ५ अनुत्तर विमानोंमेंसे किसीमें जन्मे। देखो शब्द अंगप्रविष्ट श्रुतज्ञान (प्र०जि०पृ० १२२)।

अनुत्पन्न व्यन्तर—व्यंतरोंके विशेष भेद, जो इस मध्य लोककी पृथ्वीपर रहते हैं उनमेंसे पांचवा भेद, वे हैं १—दिग्वासी २—अंतर निवासी ३—कूष्मांड, ४—उत्पन्न, ५—अनुत्पन्न, ६—प्रमाणक, ७—गन्ध, ८—महागन्ध, ९—भुजंग, १०—प्रीतिक, ११—आकाशोत्पन्न। पृथ्वीसे १ हाथ ऊपर नीचोपवाद हैं, फिर दस हजार हाथ ऊपर दिग्वासी हैं, फिर कूष्मांड तक दस हजार हाथ ऊँचे २ हैं, फिर हरएक दूसरेसे बीस हजार हाथ ऊँचे क्षेत्रपर निवास करते हैं। नीचोपवादकी दस हजार वर्षकी आयु है फिर दश हजार वर्ष बढ़ती२ गन्ध भेद तक आयु है। अनुत्पन्नकी साठ हजार वर्षकी आयु है। महागंधकी चौरासी हजार वर्षकी, भुजंगकी पल्यका ८ वां भाग, प्रीतिककी पल्यका चौथाई भाग। आकाशोत्पन्नकी आध पल्य (त्रि० गा० २९१-२९२)।

अनुत्सेक—विद्या धन आदिमें बड़े होनेपर भी अहंकार न करना, यह उच्च गोत्रके आस्रवका कारण है (सर्वा० अ० ७ सू० २६)।

अनुदिश—१६ स्वर्गसे ऊपर नौ ग्रैवेयिक उनके ऊपर नौ अनुदित विमान हैं (सर्वा०अ० ४ सू १९)

अनुदिष्ट—जो किसीके निमित्त भोजन या वस्तिका

न बनाए गये हों। मुनि व ऐलक व क्षुल्लक उनके निमित्त बने हुए उद्दिष्ट आहारके त्यागी होते हैं। जो कुटुम्बने अपने लिये बनाया है वही आहार अनुद्दिष्ट है। जो स्थान स्वाभाविक हो व मुनिके लिये निर्मापित न हो वह अनुद्दिष्ट है।

अनुधर–रावणसे युद्ध करते हुए रामचंद्रजीकी सेनामें एक मुख्य योद्धाका नाम (पा० जै० इ० पृ० १२१)।

अनुधारी–

अनुद्धरी–रिषभदेवके पूर्व भवोंमें वज्रजन्घकी छोटी बहिन जिसे चक्रवर्ती वज्रदंतके पुत्र अमितेजको विवाहा गया (आदि० पर्व ८–३३)।

अनुन्धरी–रिषभदेवके पूर्वभवमें जब वे राजा वज्रजंघ थे तब उनकी बहिन जो अनुन्धरी थी जिसे वज्रदंत चक्रवर्तीके पुत्र अमिततेजको विवाहा गया था।

अनुपक्रम काल–वह काल जितनी देरतक कोई न उपजे व्यंतरोंमें जो संख्यात वर्षकी आयुवाले हैं उनमें दो भेद हैं। १–सोपक्रम काल, २–अनुपक्रमकाल–जहां बराबर अंतर पैदा न करें सोपक्रमकाल आवलीका असंख्यातवां भाग मात्र है तबतक लगातार पैदा हों फिर अंतर पड़ जावे। अनुपक्रमकाल बारह मुहूर्त अर्थात् १२×३ घंटा=९ घण्टा है अर्थात ९ घंटेतक कोई न उपजे फिर अवश्य पैदा हो। (गो० जी० गा० २६६)।

अनुपक्रमायुष्क–जिनकी भोगनेवाली आयु अकालमें विषादिके निमित्तसे खण्डन होजाय और वे मर जावें वे जीव सोपक्रमायुष्क हैं। परन्तु जो पूरी आयु करके मरते हैं वे अनुपक्रमायुष्क हैं। देव नारकी भोगभूमिके जीव व [illegible] जीव हैं। जो कर्मभूमिके पशु व मानव सोपक्रमायुष्क हैं, वे परभवकी आयु [illegible] आयुमें हरएकको [illegible] ८ [illegible] है, यदि न [illegible]

हैं। जैसे किसीकी आयु ६५६१ वर्षकी है तो उसके ८ दफेका क्रमक्रमसे (१) २१८७ वर्ष (२) ७२९ (३) २४३ (४) ८१ (५) २७ (६) ९ (७) ३ (८) १ वर्ष बाकी रहनेपर आयु बन्ध सक्ती है। हरएकको अपकर्षकाल कहते हैं इसका लगातार काल अंतर्मुहूर्त है। देव व नारकी आयुके ६ मास शेष रहनेपर व भोगभूमिके जीव ९ मास शेष रहनेपर उसी तरह ८ त्रिभागसे परभवकी आयु बांधते हैं (गो० जी० गा० ५१८)।

अनुपगूहन–सम्यग्दर्शनके ८ अंगोंमें उपगूहन अंग है उसका न होना अनुपगूहन दोष है। किसी धर्मात्मा पुरुषकी असावधानतासे कोई दोष होजाय उसे ईर्षाभावसे लोगोंमें प्रगट करना। (प० सं० पृ० ७४–४९)

अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नय–जिसमें केवल उपचार न हो तथापि ठीक न हो। जैसे कहना कि परमाणु बहु प्रदेशी होता है। क्योंकि परमाणुमें बहु प्रदेशीपनेकी शक्ति होती है। इससे उपचार नहीं है, परन्तु वर्तमानमें एक प्रदेशीको बहुप्रदेशी कहना असद्भूत है। यह स्वजाति असद्भूत है। विजाति असद्भूतनय वह है जो कारणवश अन्य द्रव्यको अन्य द्रव्यमें कहे, जैसे मतिज्ञान मूर्तीक है क्योंकि मूर्तीक द्रव्यके आश्रय हुआ है। अर्थात् इंद्रिय व मनसे हुआ है। स्वजाति विजाति असद्भूत व्यवहारनय। जैसे ज्ञान जीव अजीव सर्व ज्ञेयोंमें व्यापक है (आ० प० पृ० १६०)।

अनुपचरित सद्भूत व्यवहारनय–बिना किसी उपचार या [illegible] गुण और गुणीका भेद करना [illegible]

अनुपम—श्री रिषभदेव प्रथम तीर्थंकरका ८४वां गणधर (हरि० पृ० १६६)।

अनुपमा—आबू पर्वतपर प्रसिद्ध जैनमंदिरके निर्माता पौड़वाड़ जाति तेजपालकी पत्नी, (शिक्षा० ६७१)।

अनुपमान—चक्रवर्तीके पास जो चमर होते हैं, (आदि० पृ० १३३४)।

अनुपलब्धि—साध्यके सिद्ध करनेके लिये जिस हेतुकी प्राप्ति साध्यमें न मिले। इसके दो भेद हैं—अविरुद्ध अनुपलब्धि, विरुद्ध अनुपलब्धि। अविरुद्ध अनुपलब्धिके ७ भेद हैं—(१) अविरुद्ध स्वभाव अनुपब्धि। जैसे इस भूतलमें घट नहीं है, क्योंकि उसकी प्राप्ति नहीं है। यहां घटका स्वभाव भूतलमें नहीं है, (२) अविरुद्ध व्यापक अनुपलब्धि—यहां आम नहीं हैं, क्योंकि आमके वृक्षोंकी प्राप्ति नहीं है। यहां आम आमवृक्षमें व्यापक होते हैं, (३) अविरुद्ध कार्य अनुपलब्धि—यहांपर अग्नि जलती हुई नहीं है, क्योंकि धूम नहीं है। धूम आगका कार्य है उसकी प्राप्ति नहीं है, (४) अविरुद्ध कारण अनुपब्धि—यहां धूम नहीं है, क्योंकि जलती हुई आग नहीं है। यहां धूमका कारण आगका अभाव है, (५) अविरुद्ध पूर्वचर अनुपलब्धि—एक मुहूर्त बाद रोहिणीका उदय नहीं होगा, क्योंकि अभी कृतिकाका भी उदय नहीं हुआ है, कृतिका पहले आती है फिर रोहिणी आती है, (६) अविरुद्ध उत्तरचर अनुपलब्धि—जैसे एक मुहूर्त पहले भरणीका उदय नहीं होचुका है, क्योंकि अभी कृतिकाका भी उदय नहीं है, कृतिका भरणीके बाद आती है, (७) अविरुद्ध सहचर अनुपब्धि—जैसे इस तराजूमें ऊँचापन नहीं है क्योंकि नीचापन नहीं है। यहां नीचापन ऊँचापन साथ२ ही मिलता है। विरुद्ध अनुपब्धि—के तीन भेद हैं। यह विधि साधक है जब कि अविरुद्ध अनुपलब्धि निषेध साधक है—(१) विरुद्ध कार्य अनुपलब्धि—जैसे इस प्राणीमें रोग है, क्योंकि निरोग चेष्टा नहीं पाई जाती है, (२) विरुद्ध कारण अनुपलब्धि—इस प्राणीके दुःख है क्योंकि इष्ट संयोगका अभाव है, (३) विरुद्ध स्वभाव अनुपलब्धि—जैसे पदार्थ अनेक धर्मवाले होते हैं, क्योंकि उसमें एक ही नित्य आदि धर्मका अभाव है (परी० सू० ७९–८९)।

अनुपवास—जलके सिवाय सर्व आहार छोड़ना (सागार० पृ० श्लो० ३५–३५) आरम्भ करते हुए चार प्रकार आहार छोड़े (ध० सं० श्रा० पृ० २४९ श्लो० १७०)।

अनुपसेव्य—जो अपने कुल, देश व रीतिके विरुद्ध हों उनको न खाने व वर्तने योग्य समझना। जैसे ऊँटका दूध, गायका मूत्र, शंख, हाथीके दांत, झूठा भोजन आदि (गृ० ध० पृ० ११९)।

अनुपस्थापन—प्रायश्चित्त तपके भेदोंमें परिहार नाम प्रायश्चित्तके दो भेद हैं—अनुपस्थापन और पारंम्भिक। अनुपस्थानके दो भेद हैं—निजगण अनुपस्थापन, परगण अनुपस्थापन—(१) जो पहले तीन संहननका धारी और नौ या १० पूर्वके जानकार मुनि हों और उनसे प्रमादसे किसीकी वस्तु चुराई जाय व परस्त्री चुराई जाय व मुनि हत्या आदि विरुद्ध कार्य किया जाय तो उसको यह दंड दिया जाता है। वे मुनियोंके आश्रममें बत्तीस दंडके अंतरसे बैठते हैं। सब मुनियोंको नमन करते हैं, बदलेमें अन्य मुनि नहीं करते। मौनसे रहते, पीछीको उल्टी रखते हैं, कमसेकम पांच व अधिकसे अधिक छः छः महीनेके उपवास करते हैं, इस तरह १२ वर्ष पूरा करते हैं। यह निजगण अनुपस्थापन प्रायश्चित्त है। (२) जो अभिमानसे ऊपर लिखे दोष करते हैं वे परगण अनुपस्थापन पालते हैं। वह अपराधी अपने संघसे क्रम२ से सात संघोंके आचार्योंके पास जाकर अपना दोष कहता है। फिर सातवें संघवाले पहले संघवालेके पास भेज देते हैं तब वे ही आचार्य ऊपर लिखित दंड देते हैं। पारम्भिक प्रायश्चित्त उसको दिया जाता है जो तीर्थंकर, गणधर, आचार्य, मुनि, शास्त्र व संघकी झूठी निन्दा करते हैं व दोषीको दीक्षा देते

हैं व अन्य धर्ममें दोष लगाते हैं। उसको आचार्य चार प्रकारके मुनिसंघको एकत्र कर यह घोषणा करते हैं कि यह महा पापी है, यह वंदनायोग्य नहीं। ऐसा कहकर अनुपस्थापन प्रायश्चित्त देकर उस देशसे निकाल देते हैं (चारि० पृ० १३९)

अनुपात्त—जो इंद्रियां पदार्थको दूरसे जाने, भिड़ कर न जाने जैसे नेत्र और मन, इनको अप्राप्यकारी भी कहते हैं। शेष चार इंद्रियाँ भिड़कर जानती हैं उनको उपात्त या प्राप्यकारी कहते हैं (भग० पृ० २१७) (सर्वा० अ० १ सू० १९)

अनुपात्त परांगना—अविवाहित परस्त्री (चा० पृ० ११)

अनुपालना शुद्ध—प्रत्याख्यानके चार भेदोंमें तीसरा भेद। चार भेद हैं (१) विनय शुद्ध—दर्शन ज्ञान चारित्र तप व उपचार विनय सहित प्रत्याख्यान (२) अनुभाषणा शुद्ध—प्रत्याख्यान पाठके अक्षरादि शुद्ध पढ़ना, (३) अनुपालना शुद्ध—रोग, उपसर्ग व भिक्षाके अभावमें व श्रममें व वनमें जो पालन किया जाय, भग्न न हो, (४) भाव विशुद्ध—रागादिसे प्रत्याख्यान दूषित न हो—(मू० गा० ६४०–६४३)

अनुप्रेक्षा—विषयभोगोंकी वारवार चिंता करना। यह भोगोपभोगपरिमाण शिक्षाव्रतका प्रथम अतीचार है। (रत्न०श्लोक९०) आत्मामें वैराग्यके लिये जिनको वारवार चितवन किया जावे वे १२ भावनाएं हैं—१ अनित्य, २ अशरण, ३ संसार, ४ एकत्व, ५ अन्यत्व, ६ अशुचि, ७ आस्रव, ८ संवर, ९ निर्जरा, १० लोक, ११ बोधिदुर्लभ, १२ धर्म (सर्वा० अ० ९ सू० ७)।

अनुव्रत—देखो शब्द अणुव्रत (प्र० जि० पृ० १७४) हिंसा, असत्य, चोरी, कुशील व परिग्रह, इन पांच पापोंका एक देश त्याग, श्रावकके पालने योग्य।

अनुभय गत स्थान—देश संयमके स्थान तीन प्रकार हैं। १ प्रतिपात गत—देश संयमसे गिरते हुए अंतमें संयमके स्थान, २ प्रतिपद्यमानगत—देश संयमको प्राप्त होते प्रथम समयके स्थान, ३ अनुभयगत—इनके विना अन्य समयोंमें सम्भवते स्थान।

अनुभय भाषा—जिस भाषाको सत्य भी नहीं कह सके व असत्य भी नहीं कह सके। जैसे—द्वेन्द्रियसे लेकर असैनी पंचेन्द्रिय तककी अनक्षर रूप भाषा तथा सैनी पंचेन्द्रियोंकी अक्षर रूप भाषा आमंत्रणी आदि। इस सैनी पंचेन्द्रियोंकी अनुभय भाषाके ८ भेद हैं—(१) आमन्त्रणी—जैसे हे देवदत्त! इधर आ (२) आज्ञापनी—तू इस कामको कर (३) याचनी—यह वस्तु दो (४) आपृच्छनी—यह क्या है? (५) प्रज्ञापनी—मैं क्या करूं। (६) प्रत्याख्यानी—मैंने यह त्यागा (७) संशयवचनी—यह चांदी है सीप है (८) इच्छानुलोम्नी—ऐसा ही मैं चाहता हूं। द्वेन्द्रियादिकी अनक्षर भाषाको लेकर ९ भेद होते हैं (गो०जी०गा०२२४–२२५) केवलीकी दिव्यध्वनिको भी अनुभय भाषा कहते हैं।

अनुभय मनोयोग—मनके द्वारा आत्माके प्रदेशोंका सकम्प, जो मन सत्य व असत्य निर्णयसे रहित पदार्थके ज्ञान सहित हो (गो.जी.गा.२१९)।

अनुभय वचन—देखो अनुभय भाषा।

अनुभय वचनयोग—अनुभय वचनके द्वारा आत्मप्रदेशोंका सकंप होना।

अनुभयात्मक भाषा—अनुभयरूप भाषा—देखो शब्द अनुभय भाषा।

अनुभव—तजुर्बा, स्वाद लेना, तन्मय होकर भोगना, आत्माका स्वाद लेना। 'वस्तु विचारत ध्यावतैं, मन पावै विश्राम। रस स्वादत सुख ऊपजै, अनुभौ याकौ नाम॥१७॥ अनुभव चिंतामनि रतन, अनुभव है रस कूप। अनुभव मारग मोखकौ, अनुभव मोख सरूप॥१८॥ (बनारसी नाटक समयसार)

अनुभव प्रकाश—पं० दीपचंदजी कासलीवाल कृत अध्यात्मानुभवका बतानेवाला एक हिन्दी ग्रंथ, बहुत उपयोगी है, मुद्रित है। (दि० जैन ग्र० ९३)

अनुभव विलास-छंदबद्ध पं० दीपचंद्र जैपुरी कृत। (दि० जैन ग्रं० ६२)

अनुभवानन्द-ब्रह्मचारी सीतलप्रसादजी संपादित आत्मानुभवके संग्रहीत रोचक लेख (मुद्रित)।

अनुभाग-कर्मोंमें फलदान शक्ति।

अनुभाग कांडक-खंडन-अंतर्मुहूर्ततक जो अप्रशस्त कर्मोंके अनुभागका प्रतिसमय अनंतगुणा घटाना। (ल० गा० ८१)

अनुभाग कांडक घात-अंतर्मुहूर्त तक जो अप्रशस्त कर्मोंके अनुभागका प्रतिसमय अनंतगुणा दूर होना (ल० गा० ४०८-४८०)

(?) अनुभागकांडोत्करण काल-एक अनुभाग कांडकका घात एक अंतर्मुहूर्तमें होय सो काल (क० पृ० २४)

अनुभाग कृष्टि-कर्म पर मारद्राकी अनुभाग शक्तिका घटाना सो कृष्टि है। समय२ अनंत अनुभागशक्तिका घटाना (क० गा० २८४)

अनुभाग खंडन-सत्तामें बंधी हुई अशुभ कर्मप्रकृतियोंका अनुभाग या फल दानशक्तिको हटाना, अपूर्वकरण लब्धिसे या अपूर्वकरण गुणस्थानमें यह कार्य होता है (गो० जी० गा० ५५)।

अनुभाग बंध-कर्मोंका बंध होते हुए उनमें कषायोंके निमित्तसे तीव्र या मंद फलदान शक्तिका पड़ना। शुभ कर्मप्रकृति जो साता वेदनीयादि हैं उनका उत्कृष्ट या तीव्र अनुभागबंध विशुद्ध परिणामोंसे पड़ेगा तथा उन्हींका जघन्य या मन्द अनुभागबन्ध संक्लेश परिणामोंसे पड़ेगा तथा असातावेदनीयादि व ज्ञानावरणादि अशुभ कर्म प्रकृतियोंका तीव्र अनुभाग बन्ध संक्लेश परिणामोंसे व मंद अनुभागबन्ध विशुद्ध परिणामोंसे पड़ेगा। तीव्र कषायको संक्लेशभाव तथा मंद कषायको विशुद्धभाव कहते हैं। (गो० क० गा० १६३)। घातीयकर्मोंकी शक्तिके चार उदाहरण हैं। मंदतर-शक्ति-लता या बेलके समान कोमल, मंद शक्ति-दारु या काठके समान कुछ कठोर, तीव्र शक्ति-अस्थि अर्थात् हड्डीके समान कठोरतर, अतितीव्र-शैल या पत्थरके समान कठोरतम। अघातीय ४ कर्मोंमें सातावेदनीय, शुभ आयु, शुभनाम व उच्च गोत्रका अनुभाग अधिक २ सुखके लिये कारण अधिक अधिक गुड़, शर्करा, मिश्री और अमृत रूपसे चार तरहका है तथा असाता वेदनीय, अशुभ आयु, नाम, नीच गोत्रका अनुभाग अधिक २ कड़वा व दुःखरूप नींब, कांजीर, विष हालाहलके समान चार तरहका है (गो० क० गा० १८०-१८४)

अनुभागबंधाध्यवसायस्थान-अनुभाग बंधके लिये कारण जीवके कषायरूप परिणाम। वे असंख्यात लोक प्रमाण हैं। उनके जघन्यादि दरजोंको स्थान कहते हैं (गो० जी० गा० ९६०)

अनुभाग रचना-कर्मोंमें जो फलदान शक्ति है उसकी रचना इसप्रकार है कि जितनी स्थिति होती है उसमें आबाधाकालको छोड़कर सर्व कर्मवर्गणाएं बंट जाती हैं। पहले समयमें सबसे कम अनुभागवाली विशेष वर्गणा झड़ती हैं फिर अधिक अनुभागवाली कम वर्गणा। अन्तमें सबसे अधिक अनुभागवाली कम वर्गणा झड़ती हैं। जैसे ६३०० कर्मवर्गणाएं हों व ४८ समयकी स्थिति हो तो पहले समय ५१२ वर्गणाएं होंगी, जिनमें अनुभाग शक्ति समान है परंतु सबसे कम है। दूसरे समयमें ४८० झड़ेगी परंतु इनमें अनुभाग शक्ति पहली वर्गणासे दूनी है। अंतमें या ४८ वें समयमें ९ वर्गणाएं सबसे अधिक अनुभाग वाली झड़ेगी (जै० सि० प्र० नं० ३८९-३९९)

अनुभाग स्थान-कर्मोंमें फल दान शक्तिके अंशोंके दरजे।

अनुभाषण शुद्ध-गुरुके कहे अनुसार शुद्ध प्रत्याख्यान पाठ पढ़ना। देखो शब्द 'अनुपालनाशुद्ध'।

अनुभूति-अनुभव, तजुर्बा, स्वाद लेना। देखो शब्द 'अनुभव'।

अनुमत-सहमत।

अनुमति–अपनी सम्मति, मुनिको तीन प्रकार अनुमतिका त्याग उद्दिष्ट भोजन त्यागमें होता है।

(१) प्रतिसेवा अनुमति–जो पात्रका नाम ले पात्रके अभिप्रायसे भोजन करावे व पात्र जानकर करले–

(२) प्रतिश्रवण अनुमति–दाता साधुको कहे कि तुम्हारे निमित्त आहार तय्यार कराया है ऐसा सुनकर साधु आहार लेले या आहारके पीछे सुने कि उसीके वास्ते आहार हुआ था फिर भी कुछ दोष न माने।

(३) संवास अनुमति–जो आहारादिके निमित्त ऐसा ममत्व भाव करे कि गृहस्थ लोग हमारे हैं।

अनुमति त्याग प्रतिमा–श्रावककी ११ श्रेणियोंमेंसे १० वीं श्रेणी। इस श्रेणीका धारी श्रावक आरम्भ परिग्रहादि बाहरी कामोंमें किसीको अपनी सम्मति नहीं देगा। बहुत ही संतोषी रहेगा। भोजनके समय जो बुलाएगा वहां शुद्ध मिलेगा तब जीम लेगा। आप यह नहीं चाहेगा कि दातार ऐसा भोजन बनावे या बनाता तो ठीक (र० श्रा० श्लोक १४६)।

अनुमती–किन्नरगीत नगरके राजा रतिमयूखकी रानी (प० पु० पृ० ७१)।

अनुमान–साधनसे साध्यका ज्ञान प्राप्त करना, जैसे कहींपर धूआं निकल रहा है, इससे ही यह निश्चय करना कि वहां अग्नि होगी (परीक्षा० मु० १४–५९) यह अनुमान दो प्रकारके हैं–(१) स्वार्थ अनुमान–जो दूसरेके उपदेश विना स्वतः किसी साधनसे साध्यका ज्ञान करले, (२) परार्थ अनुमान–दूसरेके कहनेसे जो साधनके द्वारा साध्यको जाने। जैसे स्वयं धूम देखकर अग्नि मानना पहलेका दृष्टांत है और दूसरेके कहनेसे धूआं देखकर अग्नि मानना दूसरेका दृष्टांत है।

अनुमान बाधित–जिसके साध्यमें अनुमानसे बाधा आवे। जैसे कोई कहे घास आदि कर्ताकी बनाई हुई है क्योंकि ये कार्य हैं। इसमें बाधा आती है। किसीकी बनाई हुई नहीं क्योंकि इनका बनानेवाला ईश्वर शरीरधारी नहीं है। जो जो वस्तु शरीरधारीकी बनाई नहीं है वह वह कर्ताकी बनाई हुई नहीं है जैसे आकाश। (जै० सि० प्र० नं० ९६)।

अनुमानाभास–जो अनुमान ठीक न हो। जिसमें साध्य व साधनका अविनाभाव सम्बन्ध न मिले (परी० मु० ११)।

अनुमानित दोष– } साधु गुरुके पास अपने
अनुमापित दोष– } दोषोंकी आलोचना करे उसमें १० दोष न लगावे। गुरुसे कहे कि मैं निर्बल हूं, मुझे थोड़ा प्रायश्चित्त दिया जायगा तो मैं दोषको कहूंगा। ऐसा कहना अनुमापित या अनुमानित दोष है। वे १० दोष हैं–(१) आकंपित–कुछ भेट देकर दोष कहना कि कम दंड मिले। (२) अनुमापित। (३) दृष्ट–दूसरेको दिखपड़ा हो ऐसा दोष कहना, न दिखनेवाला दोष छिपा लेना। (४) बादर–स्थूल दोषोंको कहना छोटे दोषोंको न गिनना। (५) सूक्ष्म–बड़े२ दोषोंको छिपा कर छोटे२ दोष कहना। (६) प्रच्छन्न–अपना दोष न कहकर गुरुसे गुप्त रीतिसे पूछ लेना कि ऐसे दोषवालेको क्या प्रायश्चित्त लेना चाहिये। (७) शब्दाकुलित–जहां बहुत शब्द होरहा हो, मुनि एक साथ आलोचना कर रहे हों तब गुरुसे अपना दोष कहना। (८) बहुजन–गुरुने प्रायश्चित्त बताया हो उसको दूसरोंसे भी पूछना कि ठीक है या नहीं। (९) अव्यक्त–किसी भी मुनिसे दोष कहकर प्रायश्चित्त लेलेना, गुरुसे न कहना। (१०) तत्सेवी–जो प्रायश्चित्त गुरुने किसीको उसके दोषका बताया है उसे ही जानकर आप भी ले लेना, गुरुसे अपना दोष न कहना (भा० पा० पृ० १२८, (मू० गा० [illegible])

अनुमोदन– } किसीने शुभ वा अशुभ काम
अनुमोदना– } किया हो उसकी [illegible] करना।

अनुयोग–[illegible] इसके १८ भेद हैं–(१) [illegible], (२) [illegible], (३) पद, (४) पद समास, (५) संघात, (६) संघात समास, (७) प्रतिपत्ति, (८) [illegible],

(९) अनुयोग, (१०) अनुयोग समास, (११) प्राभृतक २, (१२) प्राभृतक२ समास, (१३) प्राभृतक, (१४) प्राभृतक समास, (१५) वस्तु, (१६) वस्तु समास, (१७) पूर्व, (१८) पूर्व समास। अक्षरात्मक श्रुतज्ञानके पर्याय और पर्याय समास ऐसे २ भेद मिलानेसे श्रुतज्ञानके २० भेद होते हैं-(१) क्रमसे क्रम श्रुतज्ञानको पर्याय ज्ञान कहते हैं, (२) इंद्रियसे ग्रहणमें आवे सो अक्षर है (३) जिससे अर्थका बोध हो सो पद है, (४) एक गतिका स्वरूप ही जिससे प्रगट हो वह संघात है, (५) चार गतिका स्वरूप जिससे जाना जाय वह प्रतिपत्तिक है, (६) गुणस्थानोंके अनुसार सम्बंधरूप जीव जहां पाइये सो अनुयोग है, (७) जहां चार निक्षेप व निर्देशादिक व सत् संख्या आदिसे परिपूर्ण कथन हो सो प्राभृत है, (८) प्राभृतका अधिकार सो प्राभृतक २, (९) पूर्वका अधिकार वस्तु है, (१०) शास्त्रके अर्थको पोषे सो पूर्व है। हरएकके भेदोंको समास कहते हैं। १४ पूर्व हैं, १९५ वस्तु हैं, ३९०० प्राभृतक हैं, ९३६०० प्राभृतक प्राभृतक हैं, ३७४४०० अनुयोग हैं, इनसे संख्यात हजारगुणे प्रतिपत्तिक, संघात व पद क्रमसे हैं। एक पदके अक्षर १६३-४८३०७८८८ होते हैं। कुल द्वादशांगवाणीके अक्षर अपुनरुक्त होते हैं-(२६४-१)=१८,४४,६७,४४,०७,३७,०९,५५,१६,१५-इनको पदके अक्षरोंसे भाग देनेपर ११,२८,३५,८००५ पद द्वादशांग या अँग प्रविष्ठ श्रुतज्ञानके हैं। शेष अक्षर ८,०१,०८,१७५ इनमें अँगबाह्यश्रुत है। (गो० जी० ३३८....) देखो शब्द अँग प्रविष्ट और अंगबाह्य व अक्षरात्मक श्रुतज्ञान; (प्र० जि० पृ० ११९ व १२९ पृ० ४१) निर्देश स्वामित्व साधन, अधिकरण, स्थितिविधान इनको भी अनुयोग कहते हैं (गो० जी० गा० ७३४)।

अनुयोग द्वारसूत्र-

अनुयोग श्रुतज्ञान-देखो शब्द अनुयोग-१४ मार्गणाके प्रतिपादक अनुयोगसे जो ज्ञान हो।

अनुयोग समास-देखो शब्द अनुयोग-प्राभृतक प्राभृतकसे एक अक्षर कथनके जितने भेद हों।

अनुयोग समास ज्ञान-देखो शब्द अनुयोग, अनुयोग समाससे जो ज्ञान हो।

अनुयोग ज्ञान-अनुयोगसे जो ज्ञान हो (भग० पृ० १९३)।

अनुराधा-पाताललंकाके स्वामी चंद्रोदर विद्याधरकी स्त्री व विराधितकी माता। विराधित और खरदूषणका युद्ध हुआ था (पा.जै.इ. द्वि.पृ. ७०)।

अनुवादी -

अनुवीची भाषण-पाप रहित शास्त्रोक्त वचन कहना, यह भावना सत्यव्रतकी है (सर्वा० अ० ७ सूत्र ५)

अनुवीर्य-कौरव पांडव युद्धमें पांडवोंकी तरफ एक महा प्रवीण योद्धाशिरोमणी, जिनके नीचे लाखों रथ थे (हरि० पृ० ४७१)

अनुव्रत्य प्रत्यय-जिससे सामान्य गुणका बोध हो, व्यावृत्त प्रत्यय जिससे विशेषका बोध हो। सोनेका कुण्डल इसमें सोना अनुवृत्य प्रत्यय है कुण्डल व्यावृत्य प्रत्यय है (परी० ३।४०)

अनुव्रत-देखो शब्द अणुव्रत (प्र० जि० पृ० २७४)

अनुश्रेणी-श्रेणीबद्ध, क्रमवार।

अनुसारी ऋद्धि-दूसरेसे किसी एक पदके अर्थको सुनकर उस ग्रंथके आदि अंत मध्यका अर्थ धारण कर लेना व सर्व ग्रंथ धारण कर लेना पदानुसारित्व ऋद्धि है। इसके तीन भेद हैं (१) प्रतिसारी-बीजोंके पदोंमें रहनेवाले चिन्होंके द्वारा उस बीजपदके नीचे नीचेके पदोंको जान लेना। (२) अनुसारी-बीज पदके ऊपर ऊपरके पदोंको जान लेना। (३) उभयसारी-दोनों ओर रहनेवाले पदोंको नियमित व अनियमित रीतिसे जान लेना। (चा० पृ० २००)।

अनुस्मृति-बार बार याद करना, इंद्रिय विषयोंके सुखोंको बार बार याद करना यह

भोगोपभोग शिक्षा व्रतका दूसरा अतीचार है (रत्न० श्रा० श्लो० ९०)

अनुश्रोत (पदानुसारी बुद्धि ऋद्धि)—बुद्धिऋद्धिके पदानुसारी भेदमें पहला भेद। एक पदको सुनकर ग्रंथके आदि मध्य अंतको स्मरण कर लेना (सर्वा० अ० ६ सू० ३६)

अनुसमयापवर्तन—समय समय अनुभागका घटाना। (क० ग्र० २९)

अनुस्नान—विशेष पूजादि क्रियामें जो मंत्र स्नानादि किया जाता है। इसके मुख्य दो भेद हैं—१ **मंत्रस्नान**—झं वं इन दो अक्षरोंको जलमंडलमें लिखकर जलमें उसे रक्खे फिर तर्जनी अंगलीसे जल लेकर अपने ऊपर डाले। २ **अमृतस्नान**—झं वं ह्वः पोहः इन अमृत अक्षरोंसे अपनेको सींचा हुआ समझकर ध्यान करे (प्रति० ग्र० ३९.)।

अनूपकुमारी—

अनूपचन्द्र—एक श्वे० यतिका नाम। (शिक्षा० पृ० ६९६)

अनृत—असत्य, झूठ १० प्रकार सत्यसे विपरीत वचन जो, १० तरहका सत्य है। (१) जनपद या देश—जो भाषा, प्रजा व देशमें प्रचलित हो। जैसे भातको कहीं चोरू, कुल व भक्त कहते हैं। (२) सम्मत—बहुजन—मान्य वचन जैसे राजाकी स्त्रीको देवी। (३) स्थापना—किसीमें किसीको स्थापित करना जैसे पार्श्वनाथकी मूर्तिको पार्श्वनाथ कहना। (४) नाम—गुणकी अपेक्षा न कर नाम रखना, जैसे किसीको कहना इन्द्रचन्द्र। (५) रूप—स्वरूपकी वा वर्णकी अधिकता देखकर किसीका स्वरूप कहना। जैसे—बगलाओंकी पंक्ति सफेद होती है। (६) प्रतीत्य—एक दूसरेकी अपेक्षासे जो कहा जाय जैसे यह वृक्ष बड़ा है। (७) व्यवहार—जैसे कहना भात पकाया जाता है। (८) संभावना—किसीकी शक्तिको कहना जैसे इंद्र जम्बूद्वीपको उलट सक्ता है। (९) भाव—जो हिंसादि दोष रहित व शास्त्रकी मर्यादारूप हो जैसे प्रासुयला द्रव्य डालनेसे पानी शुद्ध प्राशुक होजाता है। (१०) उपमा—जो भाव उपमारूप हों—जैसे पल्योपम सागरोपम आदि।

अनृद्धि प्राप्तार्य—जिन्हें ऋद्धियें न सिद्ध हों ऐसे आर्य मानव जो ५ प्रकारके होते हैं। (१) क्षेत्रार्य—आर्यखंडमें उत्पन्न हुए। (२) जात्यार्य—इक्ष्वाकु आदि वंशोंमें उत्पन्न हुए। (३) कर्मार्य—इनके तीन भेद हैं (१) सावद्य कर्मार्य जो असि, मसि, कृषि, विद्या, शिल्प, वाणिज्यसे आजीविका करें। (२) अल्पसावद्यकर्मार्य—अल्प हिंसाके काम करनेवाले श्रावक, (३) असावद्य कर्मार्य—मुनि। (४) चारित्रार्य—जो स्वयं उपदेश विना चारित्रमें उन्नति करके क्षीणमोह तक पहुंचे वे अभिगत चारित्रार्य हैं। जो बाहरी उपदेशसे चारित्रमें उन्नति करें वे अनभिगत चारित्रार्य हैं। (५) दर्शनार्य—जो सम्यग्दृष्टी मानव हैं—इनके आज्ञादि १० भेद हैं (तत्वार्थ० अ० ३ सू० ३६)

अनेका—सर्व जगतके पदार्थोंकी एक सत्ताको महा सत्ता या एका कहते हैं। प्रत्येक वस्तुकी भिन्न २ सत्ताको अवान्तर सत्ता या अनेका कहते हैं (सि० द० पृ० १९)

अनेकांत—अनेक अंत या धर्म या स्वभाव जिसमें पाए जावें ऐसे पदार्थ। अनेक धर्मवाले पदार्थोंको कहनेवाली व भिन्न२ अपेक्षासे बतानेवाली स्याद्वाद रूप जिनवाणी। हरएक पदार्थ अपने द्रव्य क्षेत्र काल भावकी अपेक्षा अस्ति या भावरूप है, उसी समय पर पदार्थके द्रव्यादि चारोंकी अपेक्षा नास्ति या अभावरूप है। हरएक वस्तु द्रव्य व गुणोंके सदा ही बने रहनेसे नित्य है, उसी समय पर्यायोंके पलटनेकी अपेक्षासे अनित्य है। हरएक वस्तु अखंड एक द्रव्यकी अपेक्षा एक है वही अनेक गुण व पर्यायोंकी अपेक्षा अनेक है। [illegible] स्वभावोंका [illegible] रूप है। इसको [illegible] अनेकांत कहते हैं, यही [illegible] है [illegible]

इसके समझनेसे परस्पर विरोधका अवकाश नहीं रहता है (पुरु० श्लो० १)।

अनेकांत जयपताका–श्वे० आ० हरिभद्र, कृत ग्रन्थ जिसमें वादि मुख्य मल्लवादि कृत नय-चक्रका कथन है (नयचक्रसंग्रह मा० ग्रन्थ नं० १६ पृ० २)।

अनेकांतधर्म–जैनधर्म। वह धर्म जिसमें पदार्थको भिन्न२ अपेक्षासे नित्य, अनित्य, भाव, अभाव, एक अनेक आदि रूपसे यथार्थ बताया गया हो।

अनेकांतवाद–प्रमाणवाद। जहां समस्त धर्मोंका एक साथ निरूपण किया जावे वह अनेकांत प्रमाण वाद है। जहां एक नयसे एक२ धर्मका कथन किया जाय वह अपवाद या स्याद्वाद कहलाता है। अने-कांतरूप पदार्थको जब अनेकांतरूप प्रमाणसे साधन करें, तब वह कथन प्रमाणवाद है। जब उसीको एक एक नयसे साधन करें, वही एकांतवाद होजाता है। (पु० सि० श्लो० २ पृ० १६)

अनेकांतवादी–जैन धर्मी–जो लोग अनेकांत-वादको माननेवाले हैं–स्याद्वादी।

अनेकार्थ कोष–विश्वलोचन कोष श्रीधरसेनकृत अपरनाम मुक्तावली।

अनेकार्थ ध्वनि मंजरी–अमरसिंहकृत श्लोक २७७ (दि० जैन नं० ३९६)।

अनेन्द्रिय–(अनिन्द्रिय) ईषत इंद्रिय (मन)।

अनेकांतिक–व्यभिचारी, दूषित।

अनैकांतिक हेत्वाभास–जो हेतु या साधन पक्ष सपक्ष व विपेक्ष तीनोंमें व्याप। जहां साध्यके रहनेका शक हो वह पक्ष है। जहां साध्य रहनेका निश्चय हो वह सपक्ष है। जहां साध्यके अभावका निश्चय हो वह विपक्ष है। जैसे हमने कहा इस कोठेमें धूम है क्योंकि अग्नि जलती है। यह अग्निपना हेतु तीनोंमें है इसलिये दूषित है। कोठेमें धूम है यह पक्ष है, गीले ईंधनमें धूमका रहना संभव है यह सपक्ष है, अग्निसे तपे हुए लोहेके गोलेमें अग्नि है परन्तु धूआं नहीं है यह विपक्ष है, तब यह हेतु ठीक नहीं रहा, क्योंकि धूम विना भी अग्नि होती है (जै० सि० प्र० नं० ४६)।

अनोजीविका–गाडी आदि चलाकर आजीविका करना इसे शकट जीविका भी कहते हैं। यह दुःख देनेवाला खर कर्म है, श्रावकोंको न करना योग्य है (सागार० अ० ५ श्लो० २०७ प्र० ३३७)।

अनोत्तर–

अनोद्देशिक–जो भोजन या वास्तिका साधुओंके निमित्त न बनाए गए हों, जो भोजन औद्देशिक न हों, इसके ४ भेद हैं। (१) यावानुदेश–जो अन्न इसलिये बनाया हो कि जो आयगा उसको देंगे। (२) जो अन्य लिंगके साधुओंके लिये बनाया हो वह समुद्देश है। (३) जो तापस परिव्राजकके लिये बनाया गया हो यह आदेश है। (४) जो निर्ग्रथ साधुओंके लिये बनाया हो वह समादेश दोष है।

अन्तकांडक–कर्मकी स्थितिका अंतिम शेष भाग जब कर्मकी शेष सर्व स्थितिका घात होता है (ल० गा० ५९६)।

अन्तकृत–जिन्होंने संसारका अंत कर दिया हो ऐसे तीर्थंकर व केवली।

अन्तकृत दशा–नामका सूत्र ८ वां, श्वेतांबर जैन जिसमें ८ वर्गोंमें ९० अध्ययन हैं। इसमें ऐसे मोक्ष जानेवालोंका वर्णन हो। प्राकृत नाम है–अंत-गडदशा–(अ० मा० पृ० २९)।

अन्तकृत केवली–जिनको उपसर्ग पड़े और जिनका केवलज्ञान व मोक्षकल्याण साथ साथ हो, (हरि० पृ० १४९)।

अन्तकृत दशांग–द्वादशांग वाणीका ८वां अंग जिसमें उपसर्ग जीतनेवाले हरएक तीर्थंकरके समयमें दश दश अंतकृत केवलियोंका वर्णन हो (हरि० पृ० १४९)।

अन्तगत–अंतमें रक्खा हुआ अनुगामि अव-विज्ञानका भेद जो जीवके साथ जाता है (अ० मा० २९)।

अन्तद्विक—अंतके दो गुणस्थान सयोग और अयोग केवली।

अन्तप—विंध्याचलके पृष्ठभागके एक देशका प्राचीन नाम (हरि० पृ० १९७)।

अन्तकरण—कर्मोंमें ऊपर व नीचेके निषेकोंको छोड़ बीचके निषेकोंका अभाव करना (ल०पृ० २९)

अन्तरद—८८ ग्रहोंमेंसे ९वां ग्रह (त्रि० ३६३)

अन्तरदेव—विजयार्द्ध पर्वतका स्वामी देव जिसने भरत चक्रीकी आधीनता स्वीकार की (इ० वृत्ति नं० १ पृ० ९८)।

अंतरद्वीप—ऐसे द्वीप जिनमें कुभोगभूमि वाले मनुष्य वास करते हैं। देखो शब्द "अनार्य मनुष्य"। ढाई द्वीपमें ९६ द्वीप हैं, इसके सिवाय लवणोदधिमें ... व कालोदधिमें कुछ अधिक ९०० अंतर्द्वीप हैं (हरि० पृ० ७७–८२)

ढाई द्वीपमें १६० विदेह देश हैं, हरएक विदेह देशमें उपसमुद्र हैं, उसके भीतर जो द्वीप हैं वे भी अंतरद्वीप हैं, यह उपसमुद्र मुख्य नगरी और महा नदीके बीच आर्यखंडमें है। इस उपसमुद्रमें टापू हैं। उनमें ५६ तो अंतरद्वीप हैं व २६००० रत्नाकर हैं जहां रत्न पैदा होते हैं। व ७०० कुक्षिवास हैं जहां रत्न पैदा होते हैं (त्रि० गा० १७७), लवण समुद्रके अंतरंतटसे परे व वाहरी तटसे उरे ४२००० योजन जाकर ४२००० योजन पास वाले विदिशा पर अंतरदिशामें द्वीप हैं। उनमेंसे चारों विदिशामें दोनों तरफ आठ सूर्य नामके द्वीप हैं। और दिशा विदिशाके बीच आठ अंतरदिशामें दोनों तरफ सोलह चंद्र नामके द्वीप हैं। ये सब गोल हैं। तथा लवण समुद्रके अभ्यंतर तटसे परे १२००० योजन जाने पर १२००० योजन व्यासका धारक गोल आकारका वायु विदिशामें गौतम द्वीप है। ये द्वीप नागकुमार देवोंके निवास हैं। ये कुभोगभूमिवालोंसे भिन्न हैं। (त्रि० गा० ९०९–९१०)

अंतरद्वीपग—अंतरद्वीपोंमें रहनेवाले मानव (देखो ऊपर) (अ० भा० पृ० ३२)।

अंतरद्वीपिका—अंतरद्वीपोंमें रहनेवाली स्त्रियां (अ० भा० पृ० ३२)।

अंतरद्वीपज म्लेच्छ—देखो शब्द "अनार्य मनुष्य" (त्रि० गा० ९१३)।

अंतरद्वीपज कुमानुष—अंतरद्वीपज म्लेच्छ।

अंतरनिवासी व्यंतर—देखो शब्द अनुत्पन्न व्यंतर। मध्यलोकमें रहनेवाले व्यंतर जो पृथ्वीसे २०००१ हाथ ऊपर रहते हैं। इनकी आयु २० हजार वर्षकी होती है (त्रि० गा०२९१–२९२), वे नागकुमार देव जो ८ सूर्य व १६ चन्द्र अंतरद्वीपोंमें व गौतमद्वीपमें हैं। देखो शब्द "अंतरद्वीप"। भरतक्षेत्रके दक्षिण समुद्र तटसे परे संख्यात योजन जानेपर मगध, वरतनु व प्रभास तीन द्वीप हैं। इनमें इनही नामके धारक देव रहते हैं। इनको चक्रवर्ती साधते हैं। ऐसे ही तीन द्वीप ऐरावतके उत्तरमें हैं। (त्रि० गा० ९१२)।

अन्तर भूमिचर—एक जातिके विद्याधर। विद्याधरोंकी जातियां हैं—(१) गौरिक, (२) गांधार, (३) मानव, (४) मनु, (५) मूलवीर्य, (६) अंतर्भूमिचर, (७) शंकुक, (८) कौशिक। ये आठ आर्य जातिके विद्याधर कहलाते हैं तथा (१) मातंग, (२) स्मशान, (३) पांडुक, (४) कालश्वपाकी, (५) श्वपाक, (६) पार्वतेय, (७) वैशालय, (८) वार्क्षमूलक, ये आठ मातंग जातिके विद्याधर हैं। (हरि० पृ० २८४)

अन्तरमार्ग—न्यास और उपन्यास विधि—गांधारोदीच्य—वारागमें जिसमें षड्ज मध्यम और सप्तम अंश होते हैं। गानेका एक भेद (हरि० पृ० २२१)

अन्तरमार्गणा—जिन अवस्थाओंमें कोई जीव कितने काल न पाया जावे; इनको सांतर मार्गणा भी कहते हैं। ऐसी आठ सांतरमार्गणायें हैं। (१) उपशम सम्यक्त—में ७ दिनका उत्कृष्ट अंतर है अर्थात् उत्कृष्ट रूपसे ७ दिन तक कभी कोई जीव संसारमें उपशम सम्यक्तको न प्राप्त करे।

(२) सूक्ष्म सांपराय १० वें गुणस्थानका उत्कृष्ट अंतर छः मास है। (३) आहारक व (४) आहारक मिश्र काय योग वालोंका उत्कृष्ट अंतर पृथक्त्व वर्ष है। तीनसे ऊपर व नौके नीचेको पृथक्त्व कहते हैं। (५) वैक्रियिक मिश्रयोगका उत्कृष्ट अंतर १२ मुहूर्त है। (६) लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्यका। (७) सासादन गुणस्थानीका। (८) मिश्र गुणस्थानीका। इन तीनोंका उत्कृष्ट अंतर हरएक पल्यका असंख्यातवां भाग मात्र है। इन सर्वोमें जघन्य अंतर मात्र एक समयका ही है। (गो० जी० गा० १४३–१४४)

अंतरमुहूर्त (अंतर्मुहूर्त)–१ मुहूर्त ४८ मिनट या २ घड़ीका होता है, उसके भीतरका काल। आवलीसे ऊपर और १ समय कम ४८ मिनिट, बीचके अनेक भेद होते हैं। (जै० सि० प्र० नं० ३६४) एक मुहूर्तमें ३७७३ श्वासोच्छ्वास या नाड़ीका फड़कना होता हैं।

अन्तरविचारिणी–एक तरहकी विद्या। जब नमि विनमिको श्री ऋषभदेव तीर्थंकरके समयमें धरणेन्द्रने विद्याएं प्रदान कीं उनमें १६ विद्याएं मुख्य हैं। वे हैं–

१ मन्द्र, २ मानव, ३ कौशिक, ४ गौरिक, ५ गांधार, ६ भूमितुंड, ७ मूलवीर्यक, ८ शंकुक, इन ८ को आर्य, आदित्य, गंधर्व और व्योमचर भी कहते हैं। तथा ९ मातंग, १० पांडुक, ११ काल, १२ स्ववाक, १३ पर्वत, १४ वंशालय, १५ पांशुमूल, १६ वृक्षमूल इन ८ को दैत्य, पन्नग, मातंग भी कहते हैं। इनके आश्रय नीचे लिखी विद्याएं हैं। १ प्रज्ञप्ति, २ रोहिणी, ३ अंगारिणी, ४ महा गौरी, ५ गौरी, ६ सर्व विद्या प्रकर्षिणी, ७ महाश्वेता, ८ मायूरी, ९ हारी, १० निर्वज्ञ शाड्वला, ११ तिरस्कारिणी, १२ छाया संक्रामिणी, १३ कूष्मांड गणमाता, १४ सर्व विद्यापराजिता, १५ आर्य कूष्मांडदेवी, १६ अच्युता, १७ आर्यवती, १८ गांधारी, १९ निर्वृत्ति, २० दंडाध्यक्ष गण, २१ दंडभूत सहस्रक, २२ भद्रकाली, २३ महाकाली, २४ काली, २५ कालमुखी, २६ एकपर्वा, २७ द्विपर्वा, २८ त्रिपर्वा, २९ दशपर्विका, ३० शतपर्वा, ३१ सहस्रपर्वा, ३२ लक्षपर्वा, ३३ उत्पातिनी, ३४ त्रिपातिनी, ३५ धारिणी, ३६ अंतर्विचारिणी, ३७ जलगति, ३८ अग्निगति, ३९ सर्वार्थसिद्धा, ४० सिद्धार्था, ४१ जयंती, ४२ मंगला, ४३ जया, ४४ संक्रामिणी, ४५ प्रहारिणी, ४६ अशय्याराधिनी, ४७ विशल्याकारिणी, ४८ व्रणसंरोहणी, ४९ सर्वाणकारिणी, ५० मृतसंजीवनी।

विद्याधर लोग इनको सिद्ध करते हैं। (हरि० पृ० २५६)

अंतरंग आर्तध्यान या आध्यात्मिक आर्तध्यान–जिस आर्तध्यानको केवल अपना आत्मा ही जान सके, भीतर ही रहे, बाहर न प्रगट हो। इसके विरुद्ध बाह्य आर्तध्यान है जिसको दूसरे जान सकें जैसे हेतक करना, रोना, विषयोंकी चाह प्रगट करना। अंतरंग आर्तध्यान चार प्रकारका है। (१) चेतन अचेतन मनको अप्रिय पदार्थका सम्बन्ध होनेपर उनके वियोगका चिन्तवन करना अनिष्ट संयोगज आर्तध्यान है। (२) मनोज्ञ पदार्थोंके वियोगमें शोकातुर होना इष्टवियोगज आर्तध्यान है। (३) पीड़ा होनेपर वार वार चिंतवन करना पीड़ा चिंतवन आर्तध्यान है। (४) भोगोंकी प्राप्तिका चिंतवन करना निदान आर्तध्यान है। (चा० पृ० १५९–१६०)

अंतरंग रौद्रध्यान–अपने ही आत्मामें भीतर दुष्ट चिंतवन करना–वह चार प्रकार है। १ हिंसानन्द, २ मृषानन्द, ३ चौर्यानन्द या स्तेयानन्द, ४ विषय संरक्षणानंद या परिग्रहानन्द। हिंसाका, झूठ बोलनेका, चोरीका व परिग्रहकी रक्षाका वारवार सोचना। (चा० पृ० १६१)

अंतरंग धर्मध्यान- ऐसा धर्मध्यान जिससे अपना आत्मा ही जान सके, बाहर प्रगट न हो उसके १० भेद हैं–

(१) अपायविचय–मेरे पापोंका नाश कैसे हो यह विचारना।

(२) उपायविचय–मेरे सदा मोक्षमार्गकी प्रवृत्ति रहे ऐसा विचारना।

(३) जीवविचय–आत्माका स्वरूप निश्चय व व्यवहार नयोंसे विचारना।

(४) अजीवविचय–पुद्गलादि पांच प्रकार अजीवोंका स्वरूप विचारना।

(५) विपाकविचय–कर्मोंके शुभ अशुभ फलोंका विचारना।

(६) विराग विचय–संसार शरीर भोगोंसे वैराग्य चिन्तवन करना।

(७) भवविचय–संसार भ्रमणके दोषोंका चिंतवन करना।

(८) संस्थानविचय–संसारमें जो पदार्थ जिस अवस्थामें है उसका उसी प्रकार चिंतवन करना।

(९) आज्ञाविचय–आज्ञानुसार तत्वका विचार।

(१०) हेतु विचय–मोक्षके व बंधके कारणोंका विचार। (चा० १६४)

अंतरंग तप–सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रमई रत्नत्रय धर्मकी वृद्धिके लिये इच्छाका निरोध करना सो तप है। जिसमें अंतरंग मनमें ही वृत्ति करनी पड़े वह अंतरंग तप अथवा जिसमें मनके निग्रहका विशेष प्रयोजन हो सो अंतरंग तप है। बाह्य तपमें बाहरी द्रव्यकी अपेक्षा होती है व दूसरेको भी प्रगट होता है। यह अंतरंग तप छः प्रकारका है। (१) प्रायश्चित्त–प्रमादसे लगे हुए दोषोंको दंड लेकर शुद्ध करना। (२) विनय–रत्नत्रय व पूज्योंमें आदर करना। (३) वैय्यावृत्यम्–अन्योंकी काय आदिसे सेवा करनी। (४) स्वाध्याय–आलस्य त्यागकर ज्ञानकी भावना करनी। (५) व्युत्सर्ग–पर पदार्थोंमें अपनेपनेका संकल्प त्यागना। (६) ध्यान–चित्तको एकाग्र करके धर्म व शुक्लध्यान करना। (सर्वा० अ० ९ सू० २०)

अंतरंग तप उपधि व्युत्सर्ग–क्रोध, मान, माया, लोभ, मिथ्यात्व, हास्य, रति, अरति, शोक और भय आदि दोषोंको दूर करना इसे अभ्यंतरोपधि व्युत्सर्ग भी कहते हैं। (चा० पृ० १४७)

अंतरात्मा–जो आत्माके सच्चे स्वरूपको पहचाने, सम्यग्दृष्टी जीव। जो शरीरादिमें आत्मबुद्धि करता है वह बहिरात्मा मिथ्यादृष्टी है। चौथे अविरत सम्यग्दर्शन गुणस्थानसे लेकर बारहवें क्षीण मोह गुणस्थान तक अंतरात्मा हैं। फिर तेरहवें व १४ वें गुणस्थान वाले व सिद्ध परमात्मा हैं। जघन्य अंतरात्मा अविरत सम्यग्दृष्टी हैं, मध्यम अंतरात्मा देशविरति श्रावक व प्रमत्त गुणस्थानवर्ती मुनि हैं; उत्कृष्ट अंतरात्मा शुद्धोपयोगी मुनि ७ वेंसे १२ वें गुणस्थानवाले तक। (समाधिशतक श्लोक ४–५ या देखो योगेन्द्रदेव कृत परमात्मप्रकाश और योगसार)।

दोहा–मिच्छा दंसण मोहियउ परु अप्पाण मुणेइ।
सोवहिरप्पा जिण भणिउ पुण संसारु भमेइ ॥७॥
जो परियाणइ अप्पपरु जो परभाव चएइ।
सो पंडिउ अप्पा मुणहिं सो संसार मुएइ ॥८॥
णिम्मजणिकलु सुद्धजिण कि हुबुधु सिवसंतु।
सो परमप्पा जिण भणिउ एहउ जाणि णिभंतु ॥९॥
(योगसार)

भावार्थ–जो मिथ्या श्रद्धानसे मोही होकर आत्माको नहीं पहचानता है वह बहिरात्मा संसारमें घूमता है। जो आत्माको व परको भिन्न जानकर परभावको त्यागता है और अपने आत्माका अनुभव करता है वह पंडित है, अन्तरात्मा है, वह संसारसे छूटता है। जो मल रहित, शरीर रहित, शुद्ध, कर्मोंका जीतनेवाला, वीतराग, आनन्दरूप है, ज्ञानस्वरूप बुद्ध है, व ज्ञान करके सर्व व्यापी विष्णु है वही परमात्मा है।

अन्तराय–विघ्न, श्रावक व मुनिके आहार करने सम्बंधी जो दोष बताए जावें। व्रती श्रावकोंके लिये नीचे लिखे अन्तराय जरूरी हैं। यदि इनमेंसे कोई दोष होजावे तो आहारका उस समय त्याग करे।

देखने और छूने दोनोंके अन्तराय–(१) गीला

चमड़ा, (२) गीली हड्डी, (३) मदिरा, (४) मांस, (५) लोहू, (६) पीप, (७) चर्बी नसें आदि।

केवल स्पर्शसे अन्तराय-(१) रजस्वला स्त्री, (२) सूका चमड़ा, (३) सूकी हड्डी, (४) बिल्ली, कुत्ता, चांडालादि हिंसक जीव।

केवल सुननेके अन्तराय-(१) इसका मस्तक काटो ऐसे कठोर शब्द, (२) हाय हाय ऐसे आर्त-नाद, (३) आपत्तियोंका आना, जैसे शत्रुकी सेना आना, (४) महामारी आदि भयानक रोगका फैलना, (५) अग्निका लगना, (६) मंदिर प्रतिमापर उपसर्ग सुनना।

केवल खानेके अन्तराय-(१) छोड़ी हुई वस्तु खानेमें आजावे, (२) जिन्हें अलग नहीं कर सके ऐसे दो इन्द्री, तेन्द्री, चौइन्द्री जीते जीवोंके मिल जानेपर, (३) भोज्य पदार्थमें ३ या ४ आदि मरे जीव मिल जानेपर, (४) यह भोजन मांस, रुधिर, हड्डी, सांप आदिके समान है ऐसा संकल्प होजाने-पर (गृ० अ० ८ पृ० १७४-सा०अ० ४ श्लोक ३१-३२-३३)।

ज्ञानानन्द श्रावकाचार भाषामें स्पर्श करनेके दोषोंमें नख, केश, ऊन, पंखको भी लिया है। ऐसा प्रसिद्ध है। बड़े केशका अंतराय होता है छोटेका नहीं।

मुनियोंको ३२ अन्तराय बचाना चाहिये-

(१) काक-यदि साधुके ऊपर कौआ बीट करे, (२) अमेध्य-अशुचि वस्तुसे चरण लिप्त होजावे, (३) छर्दि-वमन होजावे, (४) रोध-कोई रोके, (५) रुधिर-लोहू बहता देखलें, (६) अश्रुपात-दुःखसे आंसू निकल आवें, (७) जान्वधःपरामर्श-रुदन होते जांघके नीचे हाथसे स्पर्श करना, (८) जानूपरि व्यतिक्रम-गोड़के प्रमाण काठके ऊपर उलँघ कर जाना, (९) नाभ्यधो निर्गमन-नाभिसे नीचा मस्तक करके निकलना हो, (१०) प्रत्या-ख्यात सेवना-त्यागी हुई वस्तु खानेमें आजावे, (११) जन्तुवध-जन्तुओंका वध होजावे, (१२) काकादि पिण्डहरण-कौआ आदि ग्रास ले जावे, (१३) पाणितः पिण्डपतन-हाथसे ग्रासका गिर जाना, (१४) पाणिजन्तुवध-हाथमें किसी जंतुका मर जाना, (१५) मांसादि दर्शन-मांस आदिका देखना, (१६) उपसर्ग-देव, मनुष्य, पशु आदिसे उपसर्ग होना, (१७) जीव संपात-दोनों पैरके बीच कोई जन्तु गिर जावे, (१८) भाजन संपात-दातारके हाथसे भोजनका वर्तन गिर जावे, (१९) उच्चार-अपने उदरसे मल निकल जावे, (२०) प्रस्रवण-मूत्रादि निकल जावे, (२१) अभोज्य गृह प्रवेश-चाण्डालादि अभोज्य घरमें प्रवेश हो जावे, (२२) पतन-मूर्छा आदिसे आप गिर जावे, (२३) उपवेशन-खड़े भोजन करते २ बैठ जाना, (२४) सदंश-कुत्ते आदिका काट खाना, (२५) भूमि संस्पर्श-हाथसे भूमि छू जाना, (२६) निष्ठी-वन-कफ आदि मलका फेंकना, (२७) उदरकृमि निर्गमन-पेटसे कीड़ेका निकलना, (२८) अदत्त ग्रहण-विना दिया हुआ ले लेना, (२९) प्रहार-अपने व अन्यके ऊपर तलवार आदिसे प्रहार हो, (३०) ग्राम-दाह-ग्राम जलता हो, (३१) पादेन किञ्चित् ग्रहण-पैरसे कुछ उठाकर लेलें। (३२) करेण किंचित् ग्रहण-हाथसे भूमिसे कुछ उठालें, (मू० गा० ४९५-५००)।

अन्तराय कर्म-आठ कर्मोंकी मूल प्रकृतियोंमेंसे आठवीं प्रकृति-वह कर्म जिसके फलसे दान, लाभ, भोग, उपभोग व वीर्यमें विघ्न हो। यह पांच प्रकार है-दानांतराय, लाभांतराय, भोगांतराय, उप-भोगांतराय, वीर्यांतराय (सर्वा०अ० ८ सू० ४)।

अन्तराय दोष-देखो शब्द "अन्तराय"।

अन्तरायिक-(आंतरायिक) दानादिमें विघ्न करनेवाला अंतराय कर्म (अ० मा० पृ० ३२)।

अन्तरायाम-अन्तरकरणमें जितने निषेकोंका अभाव किया हो (ल० पृ० २६)।

अन्तरिक्ष-आठ निमित्तज्ञानोंमेंसे प्रथम विद्या-नुवाद नामके १० वें पूर्वमें इन आठ महानि-मित्तोंका ज्ञान है। वे ८ हैं-अंतरिक्ष, भौम, अंग,

स्वर, स्वप्न, लक्षण, व्यंजन, छिन्न (गो० जी० गा० ३६६)।

अन्तरीक्ष—आकाश ।

अन्तरीक्ष निमित्त ज्ञान—देखो शब्द 'अंतरिक्ष'।

अन्तरीक्ष पार्श्वनाथ—बरार प्रांतके जिला अकोलामें बासिमसे उत्तर पश्चिम १९ मील सिरपुर ग्राममें जैनियोंका माननीय अतिशयक्षेत्र । यहां पुराने मंदिरके भौंरेमें एक बहुत प्राचीन संवत रहित श्री पार्श्वनाथकी मूर्ति है। इसको अन्तरीक्ष इसलिये कहते हैं कि महीन कपड़ा प्रतिमाके बहुभागसे बाहर निकल जाता है । इम्पीरियल गजटियर बरार सन् १९०९ में है—"यहां श्री अन्तरीक्ष पार्श्वनाथका मंदिर है जो दिगम्बर जैन जातिका है (belongs to Digamber Jain Community) इसमें एक लेख सन् १४०६ का है । इसमें अन्तरीक्ष पार्श्वनाथ नाम लिखा है । यह मंदिर इस लेखसे १०० वर्ष पहलेका बना है । यह कहावत है कि एलिचपुरके यल्लेक राजाने नदी तटपर इस मूर्तिको प्राप्त किया था । वह अपने नगरको लेजारहा था, परन्तु उसे पीछे फिरकर नहीं देखना चाहिये था । सिरपुरके स्थानपर उसने पीछे फिरकर देख लिया तब मूर्ति आगे नहीं बढ़ सकी । अकोला गजटियर सन् १९११ में विशेष यह है कि जैन मंदिरके द्वारके मार्गके दोनों तरफ नग्न जैन मूर्तियां हैं । एल राजा जैनी थे । इसको कोढ़का रोग होगया, वह एक सरोवरमें नहानेसे अच्छा होगया। राजाको स्वप्न आया कि प्रतिमा है। वह प्रतिमा लेकर चला । जब प्रतिमा सिरपुरके यहांपर न चल सकी तब राजाने यहीं हेमदपंथी मंदिर बनवाया । यह मूर्ति यहां विक्रम संवत् ५५५ को स्थापित हुई थी । यह मूर्ति पुरुषाकार बड़ी ही मनोज्ञ पद्मासन पाषाणकी है । दर्शनसे बड़ा वीतराग भाव बढ़ता है । दूर दूरसे जैन लोग यात्रार्थ आते हैं ।

अंतर्द्धान—विक्रिया ऋद्धिका एक भेद जिससे अदृश्य होनेका सामर्थ्य हो जाता है (भ० पृ० ५२२)। इस ऋद्धिके कुछ भेद हैं—१ अणिमा—जिससे शरीर सूक्ष्म कर लिया जावे, २ महिमा—जिससे बड़ा शरीर किया जासके, ३ लघिमा—जिससे हलका शरीर किया जावे, ४ गरिमा—जिससे भारी शरीर किया जावे, ५ प्राप्ति—भूमिसे अँगुली द्वारा मेरुके शिखरको चंद्र व सूर्य विमानको स्पर्शनेकी शक्ति, ६ प्राकाम्य—जलमें भूमिकी तरह व भूमिपर जलकी तरह चलनेकी शक्ति, ७ ईशित्व—तीन लोकको प्रभुपना प्रगट करनेकी सामर्थ्य, ८ वशित्व—सर्वको वश करनेकी शक्ति, ९ प्रतिघात—पर्वतके मध्यमेंसे जाने आनेकी ताकत १० अंतर्धान—अदृश्य होनेकी शक्ति ।

अंतर्मुहूर्त- देखो शब्द "अंतरमुहूर्त" ।

अंतसल्लेखना—मरणके अंतमें समाधिमरण करना। जब श्रावक (गृहस्थी)को ऐसा अवसर दीख पड़े कि दुर्भिक्ष है, उपसर्ग है, असाध्य रोग है, जरा है व अब प्राण नहीं बचेंगे तब शांतभावसे प्राण त्यागनेके लिये सबसे क्षमा कराकर व क्षमा करके मरणपर्यंतके लिये महाव्रत धारण करले अर्थात् हिंसादि पंचपापोंको पूर्ण त्याग करके मुनिके समान नग्नमहाव्रती हो जावे, एक तृणके संथारे पर ध्यान करता हुआ प्राण त्यागे । यदि वस्त्रादिका त्याग न बन सके तो अल्प वस्त्र रखले व भोजन धीरे २ त्यागे । दूध पीवे, फिर उसे छोड़कर छाछ रक्खे, फिर मात्र गरम पानी पीवे, फिर पानी भी छोड़कर उपवास करे, निरंतर आत्मध्यान व समताभावमें लीन रहे । ऐसे समाधिमरण करनेवालेके पास कुछ धर्मात्माओंको रहना चाहिये जो धर्मभावमें स्थिर करें। गृह कुटुम्बी मात्र शांतिसे देख जावें, पासमें वार्तालाप न करें, रोवें नहीं; क्योंकि संयमकी रक्षाके लिये व शांतभावके लिये समाधिमरण किया जाता है। इसलिये इसे अपघात नहीं कह सक्ते। समाधिमरण करनेवालेको पांच दोष बचाने चाहिये । जीवितशंसा—अधिक जीनेकी इच्छा, २ मरणाशंसा—मरनेकी चाह करनी, ३ भय—मरनसे भय करना, ४ मित्रस्मृति—मित्रोंको

याद करना, ९ निदान—भोगोंकी आगामी इच्छा करना (रत्न० श्लोक १२२-१३०)।

अन्तस्थिति कांडक—कर्मोंकी स्थितिके जो खंड होते हैं उनमेंसे अंतका खण्ड (ल०गा० ९९९)।

अन्तिम केवली—श्री जम्बूस्वामी महाराज वैश्य राजग्रह निवासी सेठ अरहदासके पुत्र राजा श्रेणिकके समयमें दीक्षित मुनि हुए। श्री महावीरस्वामीके मुक्तिके पीछे ६२ वें वर्षमें यह केवलज्ञानी हुए। भरतक्षेत्रके पंचमकालमें यह अंतिम मोक्षगामी हुए। अब संहनन शक्तिके न होनेसे यहांसे मोक्ष नहीं होती है।

अन्तिम श्रुतकेवली—श्री भद्रबाहु आचार्य जो बंगाल देशमें जन्मे थे। श्री महावीरस्वामीके मोक्षके १६२ वर्ष पीछे हुए। इन्होंने महाराज चंद्रगुप्त मौर्यको मुनि दीक्षा दी, उन्होंने अंत समय गुरुकी सेवा श्रवणबेलगोलाके छोटे पर्वतकी गुफामें की।

अन्तिम चारण मुनि—जो आकाश द्वारा ऋद्धि केवलसे विहार करते हैं। इस भरतक्षेत्रमें अंतिम सुपार्श्व मुनि हुए।

अन्तिम अवधिज्ञानी—श्रीधर मुनि हुए।

अन्तिम मुकुटवद्ध राजा—श्री चन्द्रगुप्त क्षत्रिय कुलमें हुए, महाव्रत धारा (चर्चासमाधान पृ० १३२)

अंतिम गुणहानि—गुणाकार रूप हीन हीन द्रव्य जिसमें पाए जावें उसको गुणहानि कहते हैं जैसे किसी जीवने एक समयमें ६३०० परमाणुओंके समूह रूप समयप्रवद्ध (एक समयमें बंधनेवाले कर्म वर्गणाओंका समूह) का बंध किया और उसमें ४८ समयकी स्थिति पड़ी, उसमें नाना-गुणहानि आठ आठ समयकी जिसको गुणहानि आयाम कहते हैं मानी जावें तो छः होंगी उनमें प्रथम गुणहानिका बटवारा ३२००, दूसरी गुणहानिका इससे आधा १६००, तीसरीका ८००, चौथीका ४००, पांचवींका २०० तथा छठी या अंतिम गुणहानिका १०० आयगा। इसका भाव यह है कि पहले ८ समयमें ३२०० परमाणु झड़ेंगे, दूसरे ८ समयमें १६००, तीसरेमें ४०० इसी तरह अन्तके ८ समयमें मात्र १०० परमाणु झड़ेंगे। कर्म बंध चुकनेके पीछे पहले अधिक झड़ते हैं फिर उनके झड़नेकी संख्या कम कम होती जाती है। अंतिम गुणहानि निकालनेका नियम यह है कि जितना कुल द्रव्यका परिमाण हो उसको १ कम अन्योन्याम्यस्तराशिसे भाग देनेपर अंतिम गुणहानि निकलती है। जितनी गुणहानियां हों उतनी दफे दुए लिखकर गुणनेसे अन्यो० राशि निकलती है। इस उदाहरणमें ६ गुणहानि हैं तब २×२×२×२×२×२=६४ अन्या० राशि हुई। अंतिम गुण हानि=६३००÷६४-१=१०० इसकी दूनी दूनी अन्य गुणहानियां होती हैं। (जैन सि०प्र० नं० ३८९-३९३)।

अन्तःकरणरूप उपशम—आगामी कालमें उदय आने योग्य कर्म परमाणुओंको आगे पीछे उदय आने योग्य कर देना, (जै०सि०प्र० नं० ३७४)।

अन्तःकोटाकोटि—एक करोड़से ऊपर और कोटाकोटी (करोड़×करोड़) से नीचे मध्यकी संख्या, (श्रा० प्र० ६१)।

अन्तःकोटाकोटि काल या सागर—ऊपर लि० काल या सागर।

अन्त्यऊ—संध्याके पहले जो भोजन हो, व्यालू (श्रा० प्र० ७७)।

अन्ध—पांचवें नरकका चौथा पटल व इन्द्रक विल। इसकी दिशाओंमें २४ व विदिशाओंमें २० विल श्रेणीबद्ध हैं (ह० पृ० ३४-३८-४१)।

अन्धकवृष्णि—श्री नेमिनाथके पिता राजा समुद्रविजयका दूसरा नाम (भ० भा० पृ० ३७) यदुवंशमें राजा शूरकके पुत्र अन्धकवृष्णि उनसे व सुभद्रा स्त्रीसे १० पुत्र हुए—एक समुद्रविजय (नेमिनाथजीके पिता), अक्षोभ्य, स्तिमित सागर, हिमवान, विजय, अचल, धारण, पूरण, अभिचन्द्र, वसुदेव (श्रीकृष्णके पिता) (हरि० पृ० २०३)।

अन्ध्र—राजा कि्ष्कंधका छोटा भाई, जिसको

अशनिवेग विद्याधरने युद्धमें मारा (इ० ति० २ भा० पृ० ९७), अंध्रदेश, जगन्नाथपुरीके नीचे (आ०पा० पृ० ३७), पांचवे नरकके अंतिम पटलसे दूसरे पटलका इन्द्रकविला, (गो०जी०गा० ५२९)।

अन्धेन्द्रा–देखो शब्द अन्ध्र पांचवे नर्कके अंतिम पटलसे दूसरे पटल अर्थात् चौथे इन्द्रकविला (त्रि० गा० १९८)।

अन्नगदेव–चालुक्य नरेश आहवमल्लका जैन सेनापति नागदेव व उसकी दानचिन्तामणि पत्नी अत्तिमव्वेका पुत्र। इस अत्तिमव्वेका पिता रत्नकवि बड़ा प्रसिद्ध कर्नाटक जैन कवि सं० ई० ९४९ में जन्मा था (क० जै० क० नं० १६)।

अन्नपाननिरोध–अहिंसा अणुव्रतका पांचवा अतीचार, पशु व मानव जो अपने आधीन हों उनका खानपान रोक देना (सर्वा० अ० ७ सू० २५)।

अन्नप्राशन क्रिया, मंत्र, संस्कार–गर्भान्वय ५३ क्रियाओंमें दसवां संस्कार। जब बालक जन्मसे ७–८ या ९ मासका होजावे तब उसको अन्नके आहारका प्रारम्भ कराया जावे। इस दिन पूजा व होम पीठिकाके मंत्रोंके साथ करके नीचे लिखे मंत्रोंसे बालकपर अक्षत डाल उसके योग्य वस्त्र पहराकर अन्न शुरू करावे। "दिव्यामृत भागी भव, विजयामृत भागी भव, अक्षीरामृत भागी भव। घरमें मंगल गीत हों, (गृ० पृ० ३१ अ० ४)।

अन्यत्व भावना या अनुप्रेक्षा–शरीरादिको, कर्मबंधको व रागद्वेषादिको आत्माके यथार्थ स्वभावसे भिन्न चिन्तवन करना। बारह भावनाओंमें ५वीं भावना (सर्वा० अ० ९ सू० ७)।

अन्यदृष्टि प्रशंसा–सम्यग्दर्शनका चौथा अतीचार, मिथ्यादृष्टि या मिथ्या मतधारीकी मिथ्या श्रद्धा व उसके मिथ्याज्ञान व चारित्रकी मनसे सराहना करनी (सर्वा० अ० ७ सू० २३)।

अन्यदृष्टि संस्तव–मिथ्यादृष्टिके मिथ्या श्रद्धान ज्ञान चारित्रकी वचनोंसे स्तुति करनी (सर्वा० अ० ७ सू० २३)।

अन्यमत सार संग्रह–मुद्रित पुस्तक।

अन्यानुपरोधिता–दूसरेको वास करते हुए न रोकना, इसका दूसरा नाम परोपरोधाकरण है, अचौर्य व्रतकी चौथी भावना है (हरि०पु० ५२६)

अन्योन्याभाव–एक द्रव्यकी दो भिन्न२ वर्तमान पर्यायोंका एक दूसरेमें न होना। जैसे पुद्गल द्रव्यकी घट व पट दो पर्याय हों उनमेंसे घटका पटमें व पटका घटमें अभाव है (जै० सि० प्र० नं० १८४)।

अन्योन्याभ्यस्तराशि–देखो शब्द "अंतिम गुणहानि"।

अन्वयदत्ति (सकलदत्ति)–जब गृहस्थ श्रावक नौमी परिग्रहविरति प्रतिमाको धारण करता है तब अपनी सर्व परिग्रहको अपने पुत्रको या अन्योंको दे डालता है (सा० अ० ७ श्लो० २४)

अन्वय दृष्टांत–जहां साधनकी मौजूदगीमें साध्यकी मौजूदगी दिखाई जाय। जैसे रसोईघरमें धूम होनेपर अग्निका होना दिखाना (जै०सि०प्र० नं० ६९)।

अन्वय दृष्टान्ताभास–जो अन्वय दृष्टांत ठीक न हो। उसके तीन भेद हैं (१) साध्य विकल, (२) साधन विकल, (३) उभय विकल। जिस दृष्टांतमें साध्य ठीक न हो जैसे कहना शब्द अपौरुषेय है जैसे इंद्रियसुख–यह इंद्रियसुखका दृष्टांत साध्य है व गलत है क्योंकि वह पुरुषकृत होता है। इसलिये अपौरुषेयकी सिद्धि करनेके लिये ठीक नहीं है। अन्यथा कहना शब्द अपौरुषेय है जैसे परमाणु। इसमें परमाणु मूर्तीक है तथा शब्दको अमूर्तीक मानते हैं जो उसे अपौरुषेय कहते हैं। यहां साधनका दृष्टांत गलत है क्योंकि अमूर्तीकके लिये मूर्तीक साधनका दृष्टांत ठीक नहीं है। अन्यथा कहना शब्द अपौरुषेय है जैसे घट यहां साधन व साध्य दोनों नहीं मिलते क्योंकि घट, मूर्तीक है व पुरुषकृत है। अन्वय दृष्टान्ताभासका ऐसा भी उदाहरण हो सक्ता है कि जो अपौरुषेय होता है।

वह अमूर्त होता है, जैसे शब्द। इसका खण्डन होजाता है, क्योंकि बिजली आदि चमकती है, पुरुष कृत नहीं है। परन्तु मूर्तीक है (परी० पृ० ८०–८१ अ० ६ सू० ४०–४२)।

अन्वय द्रव्यार्थिक नय–सर्व गुण पर्यायोंमें जो द्रव्यको अन्वय रूप व लगातर ग्रहण करती है। वह अपेक्षा या दृष्टि (जै० सि० द० पृ० ८)।

अन्वयव्यतिरेकी हेतु–जिस हेतु या साधनमें अन्वय दृष्टांत और व्यतिरेकी दृष्टांत दोनों हों जैसे कहना पर्वतमें अग्नि है, क्योंकि इसमें धूम है। जहां २ धूम है वहां २ अग्नि होती है जैसे रसोईका घर। जहां २ अग्नि नहीं है वहां २ धूम नहीं होता है जैसे तालाव। यहां रसोईघर अन्वय व तालाव व्यतिरेकी दृष्टांत है। (जै० सि० प्र० नं० ७२)

अन्वय व्याप्ति–साधनकी मौजूदगीमें साध्यकी मौजूदगी बताना। जैसे जहां २ धूम होता है वहां २ अग्नि होती है (परी० ४८।३६७)।

अन्वयी–जो सर्व अवस्थाओंमें साथ रहे, गुण।

अंशुमती–इलावर्द्धन नगरके राजा श्रीदत्तकी स्त्री। जिससे जूआमें हारकर श्रीदत्तने अंशमतीके तोतेको मार डाला जिसमें श्रीदत्तको चिढ़ाया था वह तोता मरकर व्यंतरदेव हुआ। जब श्रीदत्त मुनि अवस्थामें ध्यान कर रहे थे तब इस व्यंतरने उपसर्ग किया, श्रीदत्तको केवलज्ञान होगया (आराधनासार पृ० १२४ श्लोक ५१)।

अंशुमान–श्री रिषभदेवके समयमें राजा नमि विद्याधरोंके अधिपतिके पुत्रोंमेंसे एक तेजस्वी पुत्रका नाम (हरि० पु० २९८)। श्रीकृष्णके–पिता वसुदेवकुमारने वेदसामपुरके स्वामी कपिलश्रुतिको जीता। उसकी कन्या कपिलाने विवाह किया। कपिलाका भाई अंशुमान था, उससे वसुदेवकी बहुत प्रीति होगई (हरि० पु० २७४)

अप–नल, १८वां अधिदेवता नक्षत्रोंका (त्रि० गा० ४३५)।

अपकर्ष–घटना, हीन होना (पंचा० पृ० ३२४)।

अपकर्ष काल–परभवके लिये आयु बंध होती है तब भोगी जानेवाली आयुमें दो तिहाई दो तिहाई बीतनेपर आठ दफे जो काल नवीन आयुके बंध-काम आता है सो अपकर्ष काल है। देखो शब्द "अनुपक्रमायुष्क"।

अपकर्षण–कर्मोकी स्थिति जो पड़ चुकी हो व जो अनुभाग पड़ चुका हो उसमें कम होजाना, (च० श० छन्द ३९)।

अपकाय–जल काय, जिसमेंसे जीव निकल गया मात्र पानी पानी रह गया, प्राशुक पानी, जीव रहित अचित्त जल।

अपकायिक–जीव सहित जल काय–सचित्त जल (सर्वा० अ० २ सू० १३)।

अपकायिक जाति नाम कर्म–इसके अनेक भेद हैं। जैसे नीहार जाति, हिम जाति, घनोदक जाति, शुद्धोदक जाति। इन कर्मोंके उदयसे जीव उस जातिमें उत्पन्न होता है (रा० सू० पृ० १८२)।

अपगत–अवाय, निश्चय।

अपगत वेद–जहां वेद नोकषायका बिलकुल उदय न हो। पुरुष वेदका परिणाम तिनकेकी अग्निके समान, स्त्री वेदीकी कंडेकी अग्नि समान, नपुंसक वेदीका ईंटके पजावाकी अग्निके समान होते हैं। ऐसे भाववेदका अभाव अनिवृत्तिकरण नौमे गुणस्थानके अपगतवेद भाग व अवेद भागसे होजाता है। आगे फिर कभी भी वेदका उदय नहीं होता है। (गो० जी० गा० २७६)

अपगत संज्ञ–भ्रष्ट मुनि, जो सम्यग्ज्ञानादिकी संज्ञासे नष्ट हों, चारित्र रहित हों, जिन वचनके ज्ञानसे शून्य हों, संसारिक सुखमें आसक्त हों। (भ० पृ० १३९)।

अपगम–अवाय, निश्चय।

अपघात–स्वयं अपने प्राणोंका घात कषाय-भावसे कर डालना–वर्तमान दुःखोंको न सह

सकनेके कारणसे विष आदिसे अपनेको मारडालना, आत्मवध। (पुरु० श्लो० १७८)

अपनोद-
अपनुक्त- } अवाय, निश्चय होना।

अपदर्शन-नील पर्वतके नौमें कूटस्थानका नाम, वे नौ हैं-सिद्ध, नील, पूर्वविदेह, सीता, कीर्त्ति, नरकांता, अपरविदेह, रम्यक, अपदर्शन, (त्रि० गा० ७२६)।

अपध्यान-खोटा ध्यान, दूसरेकी हारजीत, दूसरेका वध, बन्ध, अंगछेद, धनहरण आदि बुरा चिन्तवन। यह अनर्थदण्डमें पहला भेद है। अपध्यान करना वृथा पापबंध करना है। तीसरे गुण व्रतमें (सर्वा० अ० ७ सू० २१)।

अपमृत्यु-समाधिमरण रहित मरण, आर्त व रौद्रध्यानसे मरण, आहार व मैथुन व परिग्रहकी ममतासे व कायरतासे या भयसे मरण, बालमरण, मिथ्यादृष्टिका मरण, दुर्गतिमरण (मू० गा० ६०)।

अपर विदेह-पश्चिम विदेह, जंबूद्वीपमें पूर्व व पश्चिम ऐसे दो विदेह सुमेरु पर्वतके दोनों तरफ पूर्व व पश्चिमको होते हैं। हरएकमें १६ देश होते हैं। धातुकी खंडमें २ पूर्व, २ पश्चिम व पुष्करार्द्धमें भी २ पूर्व, २ पश्चिम विदेह होते हैं। १० पूर्व पश्चिम विदेहोंमें १६० देश होते हैं; निषिद्ध पर्वतका नौमा व नील पर्वतका सातवां कूट (त्रि० गा० ७२५-७२६)।

अपराजित-(१) पांच अनुत्तर विमान जो ऊर्द्धलोकमें १६ स्वर्ग, ९ ग्रैवेयिक व ९ अनुदिशके ऊपर हैं उनका चौथा विमान (सर्वा० अ० ४ सू० १९); (२) पंच णमोकार मंत्र-अर्थात् णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं। (सं० नित्य नियम पूजा। (३) ऋषभदेव तीर्थंकरके पूर्वभवमें जब वे वज्रजंघ राजा थे तब उनका सेनापति अकंपन था, उसके पिताका नाम अपराजित था (आदि० पर्व ८ श्लो० २१६)। (४) विजयार्द्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणिमें २६वां अपराजित नगर (आदि० पर्व १९ श्लोक ४८)। (५) एक पक्षका नाम अपराजित। चार दिशाके चार पक्ष होते हैं। विजय, वैजयंत, जयंत, अपराजित (प्रति० पृ० ७७)। (६) रुचक महाद्वीपमें रुचक पर्वतपर आठ उत्तर दिशाके कूटोंमें चौथा कूट (त्रि० गा० ९५३)। (७) जंबूद्वीप और लवण समुद्रके मध्यमें जो प्राकार (कोट) है उसके उत्तर दिशाके द्वारका नाम अपराजित है (त्रि० गा० ८९२)। (८) भगवान अरहनाथको मुनिपदमें प्रथम आहार करानेवाले चक्रपुरके राजा अपराजित (इति० द्वि०पृ० २१)। (९) श्री नेमिनाथ भगवानका जीव अपने भवसे चौथे भव पहले अपराजित राजा था। यह जंबूद्वीपके पश्चिम विदेहमें सुगंधिला देशका राजा था। समाधिमरणकर १६ वें स्वर्गका इन्द्र हुआ (उत्तर पु० पृ० ४४८)। (१०) अपराजित नामका हलायुध जो श्री रामचन्द्र बलभद्रके पास था (उत्तर पु० पृ० ४३०। (११) भगवानके समवसरणकी रचनामें जो उत्तर दिशाका द्वार होता है उसे अपराजित कहते हैं (धर्म० पृ० ४५ श्लो० १८५)। (१२) ऋषभदेवके पुत्र जयसेनका पहला तीसरा भव अपराजित (आदि० पृ० १७६१)। (१३) पोदनापुरके राजा अपराजित जिनको वसुदेवजीके पुत्र गजकुमारने जीता (आ० पृ० १८१)। (१४) ऋषभदेवजीके ८४ गणधरोंमेंसे ३४ वां गणधर (हरि० पृ० १६६)। (१५) जरासंधका भाई अपराजित जिनसे ३४६ दफे यादवोंसे युद्ध करके विजय लाभ न कर सका, अंतमें श्रीकृष्णके बाणोंसे मरा (हरि० पृ० ३७९)। (१६) छट्ठे तीर्थंकर श्री पद्मप्रभके पूर्व दूसरे भवके राजाका नाम अपराजित (हरि० पृ० ५६५)। (१७) १७ वें तीर्थंकर अरहनाथको प्रथम आहारदान देने वाले (हरि० पृ० ५६९)।

अपराजिता-समवसरणमें जो दिव्य नगर बनता है उसका नाम (हरि० पृ० ५१[illegible])। (२) १३ वें रुचकवर महाद्वीपमें रुचिकवर पर्वत पर के पूर्व दिशाके

अरिष्टकूटपर निवास करनेवाली देवी (हरि.पृ.८९) (३) रुचक पर्वतकी विदिशा दक्षिणोत्तरमें रत्नोच्चय कूटपर निवास करनेवाली देवी (हरि० पृ० ९०), (४) विदेहक्षेत्रकी २७ वीं नगरीका नाम (त्रि० गा० ७१९), (५) विदेहक्षेत्रकी ११वीं नगरीका नाम (त्रि० गा० ७१३), (६) नंदीश्वर द्वीपमें पश्चिम दिशाकी एक वापिका (त्रि० गा० ९७०)। समवशरणमें एक वापिकाका नाम (धर्म० श्लो० ११६ पृ० ४३), सातवें बलदेव नंदमित्रकी माताका नाम (इति० २ भा० पृ० ३९)।

अपराजिताष्टक-अपराजिता देवीको जलादि अष्टक देना (प्र० सा० पृ० ८०)।

अपरांत-दूसरे अग्रायणी पूर्वके १४ वस्तु अधिकारोंमें दूसरे वस्तु अधिकारका नाम (ह० पृ० १४७)

अपरिग्रह-परिग्रहका न होना; परिग्रह त्याग।

अपरिग्रहीतेत्वरिका-विना विवाही हुई कुमारी या वेश्या जो व्यभिचारिणी स्त्री हो।-गमन, ऐसी स्त्रीके साथ व्यवहार रखना सो स्वदारसंतोषव्रतका तीसरा अतीचार है। (सर्वा० २८।७ सू०)

अपरिणत दोष-साधुओंके आहार सम्बन्धी १० अशन दोषोंमें ८ वां दोष। तिलोंके धोनेका जल, चावलका जल, गर्म होकर ठंढा जल, चनेका जल, तुषका जल, हरड़ा आदिसे मिला जल जो अपने वर्ण रस गंधको पलटा न हो उसे लेना। (मू० गा० ४७३) ऐसी वस्तिका जो आने जानेसे मर्दन की हुई न हो (भ० पृ० ९६)।

अपरिवर्तमान परिणाम-जीवके जो परिणाम समय समयमें बढ़ते ही जांय या घटते ही जांय ऐसे संक्लेश रूप या विशुद्ध रूप परिणाम (गो० क० गा० १७७)।

अपरिशेष-प्रत्याख्यानके १० भेदोंमेंसे ७ वां भेद (मू० गा० ६३८)।

अपरोपरोधाकरण-अचौर्यव्रतकी तीसरी भावना, अन्यको जानेसे नहीं रोकना।

अपर्याप्त-पूर्ण न होना, जो पर्याप्तियोंको पूरा न करें।

अपर्याप्तक-जो जीव पर्याप्तियोंको पूर्ण नहीं करें। ऐसे जीवोंको जो तिर्यंच व मनुष्योंमें ही होते हैं लब्धि अपर्याप्तक या लब्ध्यपर्याप्तक कहते हैं। इनके जन्मको क्षुद्र भव कहते हैं जिसकी स्थिति एक उछ्वासके अठारहवां भाग मात्र होती है। ४८ मिनटमें या एक मुहूर्तमें ३७७३ उछ्वास होते हैं। कोई जीव लगातार क्षुद्रभाव धारण करे तो उत्कृष्टपने ६६३३६ जन्म एक अंतर्मुहूर्तमें अर्थात् $\frac{६६३३६}{१८}$=३६८५$\frac{१}{३}$ उछ्वास (नाड़ी फड़कन) में धारण करे उनमें भी लगातार ६६१३२ भव एकेंद्रियोंके, ८० भव द्वेंद्रियोंके, ६० भव तेंद्रियोंके, ४० भव चौंद्रियोंके, ८ असैनी पंचेंद्रियोंके, ८ सैनीपंचेद्रिय तिर्यंचके ८ मनुष्यके। इन एकेंद्रियोंमेंसे १ पृथ्वी सूक्ष्म, २ पृथ्वी बादर, ३ जल सूक्ष्म, ४ जल बादर, ५ अग्नि सूक्ष्म, ६ अग्नि बादर, ७ वायु सूक्ष्म, ८ वायु बादर, ९ साधारण वनस्पति सूक्ष्म, १० साधारण वनस्पति बादर, ११ प्रत्येक वनस्पति। इन ११ भेदोंमेंसे हरएकके लगातार ६०१२क्षुद्र-भव धारण करें, (गो० जी० १२२-१२४)।

अपर्याप्ति नामकर्म-आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छवास, भाषा और मन इन छः पर्याप्तिओंको जिस नामकर्मके उदयसे पूर्ण न किया जावे। अर्थात् इन छः भावोंकी शक्तिको जो पूर्ण कर सकें वे पर्याप्त जीव कहलाते हैं। जब यह जीव कहीं जन्म लेने जाता है तब आहारक आदि वर्गणाओंको ग्रहण करता है। उन पुद्गलोंमें खल (मोटा) रस (पतला) रूप परिणमावनेकी शक्ति जो आत्माके हो उसे आहार पर्याप्ति, फिर उन हीको शरीररूप या इन्द्रियरूप या श्वासोच्छ्वास रूप व भाषा वर्गणाको भाषारूप व मनोवर्गणाको द्रव्य मनरूप परिणमावनेकी शक्ति जो आत्मामें हो सो क्रमसे शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास, भाषा और मनपर्याप्ति है। एकेन्द्रियके चार, द्वेन्द्रियसे असैनी पंचेन्द्रिय तक

पांच व सैनी पंचेन्द्रियके छः होती हैं। इन सबकी शक्तिकी पूर्णताका काल मिलकरके भी अलग २ भी अंतर्मुहूर्तसे अधिक नहीं है। जो पर्याप्ति पूर्ण करेगा परन्तु जबतक वह शरीर पर्याप्तिको पूर्ण न करले तबतक वह निर्वृत्ति अपर्याप्त या निर्वृत्यपर्याप्त जीव कहलाते हैं (गो०जी०गा० ११९–१२१)।

अपवर्त्त–उलटना।

अपवर्तन–घटना।

अपवर्तन घात–कदलीघात, अकालमरण–भोगी जानेवाली आयुका घट जाना (गो०क०गा०६४३)

अपवर्तनोद्वर्तनकरण–संज्वलन चार कषायके अनुभागमेंसे जब प्रथम अनुभाग कांडकका घात हो जावे, तब फिर अपगत वेदी अनिवृत्तिकरणवाला जीव इनने ४ कषायोंके अनुभागको कम करे तब क्रोधसे लगाकर लोभ पर्यंत अनन्तगुण घटता या लोभसे लगाकर क्रोध तक अनन्तगुण बधता जो अनुभाग सो (लब्धि० गा० ४६२)।

अपवर्त्यायु–कदलीघात मरण, भुज्यमान आयुका घट जाना। कर्मभूमिके मनुष्य व तिर्यंचके ऐसा अकाल मरण विष शस्त्रादिसे सम्भव है। देखो शब्द 'अनपवर्त्यायु' व 'अनुपक्रमायुष्क' (त्रि० ६९६)।

अपवाद त्याग–अपवाद निवृत्ति–अपूर्ण त्याग, जहां मन, वचन, काय व कृतकारित अनुमोदनासे नौ कोटिरूप त्याग हो सो औत्सर्गिक या उत्सर्ग त्याग है जिनमें इनसे कम थोड़ा या बहुत त्याग हो वह अपवाद त्याग है (पुरु० श्लो० ७६)।

अपवाद मार्ग–शुद्धोपयोग रूप मुनि धर्मका साधक मार्ग, वह सराग संयम जहां शुद्धोपयोगके साधक आहारविहार कमण्डल पीछी, शिष्यादिका ग्रहण त्यागयुक्त शुभोपयोग हो (श्रा० पृ० २६०)

अपवाद लिंग–उत्कृष्ट श्रावक या क्षुल्लक ऐलकका भेष जो मुनिरूप उत्सर्ग लिंगसे छोटा हो–वानप्रस्थ (धर्म० पृ० २६९)।

अपवाद लिंगी–अपवाद लिंगको धारणनेवाला क्षुल्लक व ऐलक।

अपवाय–
अपविद्धि–
अपव्याध– } अवाय, निश्चय होना।

अपशब्द–कुशब्द,गालीगलौज, धर्मविरुद्ध शब्द।

अपशब्द खंडन–शुभचंद्र भ० (सं० १६८०) कृत एक सं० ग्रंथ। (दि० जैन नं० ३३४)

अपहरण–दूर करदेना।

अपहरण संयम व अपहृत संयम–उपकरणों-मेंसे द्वेंद्रियादि जीवोंको दूर करदेना। संयमके १७ भेद हैं जो वीर्याचारकी रक्षार्थ किये जाते हैं। पांच प्रकार स्थावर व द्वेंद्रिय, तेन्द्रिय, चौन्द्रिय, पंचेन्द्रिय व इस तरह ९ प्रकारके जीवोंकी रक्षा ९ भेद हैं। सूके तृण आदिका छेदन न करना वह अजीव रक्षाका १ भेद ऐसे १० भेद ये हुए–७ भेद हैं–१ अप्रतिलेख–पीछीसे द्रव्यका शोधन। २ दुष्प्रतिलेख–यत्न पूर्वक प्रमाद रहित शोधन। ३ उपेक्षा–उपकरणादिको प्रतिदिन देख लेना। ४ अपहरण–५ मन–संयम, ६ वचन संयम, ७ काय संयम। (मू० गाथा ४१६–४१७)

अपात्र–जो दान देने योग्य न हों। जिनके न तो सम्यग्दर्शन हो न बाहरी चारित्र ही यथार्थ हो। (धर्म० पृ० १८२)

अपान–दूषित वायुका बाहर निकलना।

अपात्र दान–सम्यग्दर्शन व चारित्र रहितको दान देना।

अपायविचय–धर्मध्यानका दूसरा भेद। अपने व अन्य जीवोंके कर्मोंका नाश कैसे हो सो विचारना। इन जीवोंका मिथ्यादर्शन ज्ञानचारित्र कैसे दूर हो ऐसा विचारना (सर्वा० अ० ९ सू० ३६)।

अपाय–नाश।

अपायोपाय विदर्शी–आचार्यका एक गुण जिससे वे गुरु शिष्योंको रत्नत्रयके नाशके कारणोंको व उसकी रक्षाके उपायोंको बताते हैं (भ.पृ. १७२)

अपारमार्थिक प्रत्यक्ष–सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष

जैसे मतिज्ञान, जो इंद्रिय व मनकी सहायतासे पदार्थको स्पष्ट जाने।

अपिंड प्रकृति–नाम कर्मकी ९३ प्रकृतियोंमेंसे २८ प्रकृतियां जो एक एक ही हैं–१ अगुरुलघु, २ उपघात, ३ परघात, ४ आतप, ५ उद्योत, ६ उछ्वास, ७ निर्माण, ८ प्रत्येक शरीर, ९ साधारण शरीर, १० त्रस, ११ वादर, १२ सुभग, १३ दुर्भग, १४ सुस्वर, १५ दुस्वर, १६ शुभ, १७ अशुभ, १८ सूक्ष्म, १९ वादर, २० पर्याप्ति, २१ अपर्याप्ति, २२ स्थिर, २३ अस्थिर, २४ आदेय, २५ अनादेय, २६ यशकीर्ति, २७ अयशकीर्ति, २८ तीर्थंकर प्रकृति। इनमें पिंड प्रकृतिके भेद ६५ मिलानेसे ९३ प्रकृतियें होती हैं–वे भेद हैं। गति ४, जाति ५, शरीर ५, अंगोपांग ३, विहायोगति २, बंधन ५, संघात ५, संस्थान ६, संहनन ६, स्पर्श ८, रस ५, गंध २, वर्ण ५, आनुपूर्वी ४=६५ देखो (प्र० जि० अ शब्द "अघातिया कर्म" पृ० ८१)।

अपुनर्भव–मोक्ष, फिर भवका नहीं धारण।

अपुनरुक्त अक्षर–जो अक्षर दुबारा नहीं आवे। अक्षरात्मक श्रुतज्ञानमें जितने जिनवाणीके अक्षर अ आदि ६४ अक्षरोंके संयोगादि करनेसे बनते हैं वे सब अपुनरुक्त हैं। किसी अर्थको प्रगट करनेके लिये जिन अक्षरोंको बारबार कहा जाय वे पुनरुक्त हैं। (गो० जी० गाथा ३१६) देखो शब्द 'अक्षर' (प्र० जि० पृ० ३१)।

अपुनरुक्त अक्षरात्मक श्रुतज्ञान–जिनवाणीके अपुनरुक्त अक्षरोंके द्वारा कहा गया अंग प्रविष्ट व अंग बाह्यरूप सम्पूर्ण श्रुतज्ञान। देखो शब्द "अंग प्रविष्ट" श्रुतज्ञान। "अंग बाह्य श्रुतज्ञान" (प्र० जि० पृ० ११९–१२९)

अपूर्ण सम्यग्ज्ञान–सम्यग्दृष्टीके ज्ञान लेकर क्षीण मोह गुणस्थानी मुनिका ज्ञान।

अपूर्व स्पर्द्धक–कर्म वर्गणाओंके समूह रूप स्पर्द्धक जिनको अनिवृत्तिकरणके परिणामोंसे अपूर्व रूप कर दिया जावे। नौमें गुणस्थानमें जितने कर्मकी शक्ति समूह रूप स्पर्द्धक होते हैं उनके अनंतवें भागको अपूर्व स्पर्द्धक कर दिया जाता है। (गो० जी० गा० ५९)

अपूर्वकरण–जिस करण या परिणाम समूहमें उत्तरोत्तर अपूर्व ही अपूर्व परिणाम होते जावें अर्थात भिन्न समयवर्ती जीवोंके परिणाम सदा विसदृश ही हों और एक समयवर्ती जीवोंके परिणाम सदृश भी हों और विसदृश भी हों। आठवां गुणस्थान। अधःकरण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरणमें इन तीन कब्धियोंमें दूसरी लब्धि। देखो शब्द 'अधःकरण'

अपूर्वार्थ–जिस पदार्थको पहले निश्चय न किया हो (परी० अ० १ सू० ४)।

अपूर्वकरणोपशमक–आठवें गुणस्थान वरती उपशम श्रेणीका साधु।

अपेत–अवाय, निश्चय होना।

अपृथक् विक्रिया–अपने शरीरको ही अनेक रूपोंमें बदलना, दूसरा शरीर न बना सकना। ऐसी विक्रिया करनेकी शक्ति कर्मभूमिके साधारण तिर्यंच व मानवोंके व नारकियोंके होती है। जहां मूल शरीरको रखते हुए उससे जुदे अनेक शरीर बनाए जासकें सो पृथक् विक्रिया है। इसे सब देव, व भोगभूमिके मनुष्य व तिर्यंच व कर्मभूमिके चक्रवर्ती कर सक्ते हैं। विक्रियामें आत्माके प्रदेश मूल शरीरमें रहते हुए फैलकर एक व अनेक शरीरोंमें हो जाते हैं (गो० जी० गा० २६०)।

अप्रज्ञापनीय पदार्थ–अनभिलाप्य पदार्थ, जो पदार्थ वचनोंसे न कहे जांय, मात्र केवलज्ञान हीके गोचर हों (गो० जी० गा० ३३४)।

अप्रणति–वचन–अपनेसे जो गुणादिमें श्रेष्ठ हो उसको नम्र वचन न कहना। छठे सत्यप्रवाद पूर्वमें १२ तरहके वचनोंके भेद हैं। (१) अभ्याख्यान वचन–हिंसा करनेका उपदेश। (२) कलह वचन–लड़ाई झगड़ेके वचन। (३) पैशून्य वचन–चुगली करना। (४) अबद्ध प्रलाप वचन–

मात्र वकवाद करना। (५) रत्युत्पादक वचन–राग बढ़ानेवाले वचन। (६) अरत्युत्पादक वचन–द्वेषकारी वचन। (७) वंचनासूचक वचन–कुमार्ग प्रेरक वचन। (८) निकृति वचन–कपटमय वचन। (९) अप्रणति वचन। (१०) मोषवचन–जिससे लोग चोरी करने लग जावें। (११) सम्यग्दर्शन वचन–श्रद्धान निर्मल करने वाले वचन। (१२) मिथ्यादर्शन वचन–श्रद्धान बिगाड़नेवाले वचन। (हरि० पृ० १४८)

अप्रतिघात या अप्रतीघात–जिनकी किसी मूर्तीक पदार्थसे रुकावट न हो। ऐसे कार्मण शरीर व तैजस शरीर हैं। (सर्वा० अ० २ सू० ४०)

अप्रतिघात विक्रिया ऋद्धि–पर्वतके बीचमेंसे आकाशकी तरह जाने आनेकी शक्ति जिससे पर्वत रुकावट न कर सके। (भग० पृ० ५२२)

अप्रतिपाति–नहीं छूटनेवाला–विपुलमति मनःपर्ययज्ञान केवलज्ञान होने तक नहीं छूटता है, इसी तरह परमावधि व सर्वावधि ज्ञान भी नहीं छूटते हैं। (गो० जी० गा० ३७५)

अप्रतिलेख–संयम–पीछीसे द्रव्योंका शोधन (मू० गा० ४१६–४१७)।

अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति–वह प्रत्येक वनस्पति जिसके आश्रय साधारण शरीरधारी निगोद न रहें। देखो शब्द "अनन्तकाय"।

अप्रतिष्ठित वनस्पति–देखो ऊपरका शब्द।

अतिष्ठित शरीर–जिन शरीरोंके आश्रय साधारण वनस्पतिकाय या निगोद शरीर न रहे वे आठ हैं–१ पृथ्वीकायिक, २ जलकायिक, ३ अग्निकायिक, ४ वायुकायिक, ५ केवली अरहंतका शरीर, आहारक शरीर मुनिका, ७ देवोंका शरीर, ८ नारकियोंका शरीर। अन्य सर्व जीवोंके शरीरोंमें निगोद होते हैं। अर्थात् सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति द्वेंद्रिय, तेंद्रिय, चौंद्रिय, पंचेंद्रिय, तिर्यंच व आहारक केवली विना मनुष्य इनके शरीरोंके आश्रय साधारण वनस्पति होती है। (गो०जी०गा० २००)।

अप्रतिष्ठित स्थान–सातवें नर्ककी पृथ्वीका इन्द्रक बिल (त्रि० गा० १५९) इसको अप्रतिष्ठान भी कहते हैं (हरि० पृ० ३४)।

अप्रतिहत चक्रेश्वरीदेवी–श्री रिषभदेवकी भक्त शासनदेवी (प्रति० पृ० ७१)।

अप्रतिहत दर्शन–अखण्ड दर्शन, अनंतदर्शन।

अप्रत्यक्ष–जो आतमा द्वारा सीधा न जाना जावे, परोक्ष, जो इन्द्रिय व मनकी सहायतासे जाना जावे, स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान, आगम उसके भेद हैं (परी० अ० ३ सू० १–८)।

अप्रत्यक्ष उपचार विनय–परोक्ष उपचार विनय–श्री तीर्थंकर, मंदिर, प्रतिमा, आचार्य, गुरु, साधु आदिके सामने न होते हुए भाव सहित उनको मन, वचन कायसे नमस्कार करना, उनकी स्तुति करना, उनकी आज्ञा पालना। (चा० पृ० १४२)

अप्रत्यवेक्षित–विना देखे हुए।

अप्रत्यवेक्षित निक्षेपाधिकरण–विना देखे हुए किसी पदार्थको रख देना, यह अजीवाधिकरणका एक भेद है। (सर्वा० अ० ६ सू० ९)

अप्रत्यवेक्षित अप्रमार्जित आदान या अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितादान–विना देखे हुए व विना झाड़े हुए पूजाके उपकरण शास्त्र व वस्त्रादिका उठाना, यह प्रोषधोपवास शिक्षाव्रतका दूसरा अतीचार है। (सर्वा० अ० ७ सू० ३४)

अप्रत्यवेक्षित अप्रमार्जित उपसर्ग या अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितोत्सर्ग–विना देखे हुए व विना झाड़े हुए भूमिपर मूत्र मल आदिका क्षेपण करना। यह प्रोषधोपवास शिक्षाव्रतका पहला अतिचार है। (सर्वा० अ० ७ सू० ३४)

अप्रत्यवेक्षित अप्रमार्जितसंस्तरोपक्रमण–विना देखे व विना झाड़े चटाई आदिका बिछाना। यह प्रोषधोपवास शिक्षाव्रतका तीसरा अतीचार है। (सर्वा० अ० ७ सू० ३४)

अप्रत्याख्यान–कुछ त्याग, एक देश त्याग, अपूर्ण त्याग, थोड़ा चारित्र। (प्र० श्लो० १२५)

अप्रत्याख्यान क्रिया—संयमको घात करनेवाली क्रियाओंको न त्यागना। यह आस्रवकी २५ क्रियाओंमेंसे अंतिम क्रिया है (सर्वा० अ० ६ श्लो० ५)

अप्रत्याख्यानावरण कषाय—जो क्रोध, मान, माया या लोभ देश चारित्र या श्रावकके एक देश त्यागको न होने दे, देश त्यागको आवरण करे। (सर्वा० अ० ८ सू० ९)।

अप्रत्युपेक्षित दोष—वस्तुओंको उचित समयपर न शोधना, साधुको प्रभातकाल व अपराह्नकाल संस्तर व उपकरण सोधना उचित है, प्रमादसे काल व्यतीत हुये करना (भ० पृ० ३७८)।

अप्रथग्भूत—जो अलग न होसके।

अप्रभावना—जैनधर्मकी प्रभावना न करनी, जैन धर्मके प्रकाशमें असावधानता करनी। यह सम्यक्तके २५ दोषोंमेंसे एक है।

अप्रमत्त—प्रमादी न होना, आत्मानुभवमें लीन रहना।

अप्रमत्त गुणस्थान—१४ गुणस्थानोंमेंसे या जीवके परिणामोंकी उन्नतिरूप श्रेणियोंमेंसे सातवां गुणस्थान। जब अन्य कषायोंका उदय न हो किन्तु केवल संज्वलन कषाय और हास्यादि नोकषायोंका मंद उदय हो तब अप्रमत्त गुणका दरजा होता है।

अप्रमत्तविरत या संयत—अप्रमत्त गुणस्थानमें रहनेवाला साधु। इस गुणस्थानमें साधु सर्व प्रमादोंसे रहित होता है, व्रत, गुण, शीलसे मंडित होता है व धर्मध्यानमें लीन होता है। इसका काल अंतर्मुहूर्तसे अधिक नहीं है, एक अंतर्मुहूर्त पीछे यातो साधु छठे प्रमत्त गुणस्थानमें आवे या आठवेंमें चढ़ जावे। जो उपशम श्रेणी व क्षपक श्रेणीके ८ वें गुणस्थानमें न चढ़के वारवार छठेमें आवे सातवेमें जावे वह स्वस्थान अप्रमत्तविरत है। तथा जो श्रेणी चढ़नेके सन्मुख हो और तीन करणलब्धिमेंसे अधःकरण लब्धिको प्राप्त हो सो सातिशय अप्रमत्त विरत है। (गो० जी० ४५–४८)

अप्रमाणदोष—अल्प भूमिमें शय्या आसन होता हो तौभी अधिक भूमिको रोक लेना। यह साधुके वसतिका सम्बन्धी ४६ दोषोंमें एक दोष है। (भ० पृ० ९६) इसे प्रमाणातिरेक भी कहते हैं।

अप्रमार्जित—विना झाड़े हुए।

अप्रवीचार—मैथुन सेवनका न होना। १६ स्वर्गके ऊपरके अहमिन्द्रोंमें कामकी वेदना नहीं होती है। (सर्वा० अ० ४ सू० ९)

अप्रशस्त अघातिया कर्म—अघातिया कर्मकी अशुभ प्रकृतियां—जैसे असातावेदनीय, अशुभ नाम, अशुभ आयु, नीच गोत्र तथा उत्तर प्रकृतियां—१ असातावेदनीय, २ नरक आयु, ३ नीच गोत्र, ४ नरक गति, ५ तिर्यंच गति, ६–९ एकेंद्रियादि चार जाति, १०–१४ न्यग्रोध परिमंडलादि ५ संस्थान, १५–१९ वज्रनाराचादि ५ संहनन, २०–३९ अप्रशस्त २० वर्णादि, ४० नरक गत्यानुपूर्वी, ४१ तिर्यंच गत्यानुपूर्वी, ४२ उपघात, ४३ अप्रशस्त विहायोगति, ४४ स्थावर, ४५ सूक्ष्म, ४६ अपर्याप्ति, ४७ साधारण, ४८ अस्थिर, ४९ अशुभ, ५० दुर्भग, ५१ दुःखी, ५२ अनादेय, ५३ अयशकीर्ति। यदि स्पर्शादि ४ ही गिने तो १६ कम होकर ३७ रह जायगी। यदि ४ वर्णादि न गिने तो ३३ रह जायगी (देखो प्र० जि० शब्द "अघातिया कर्म" पृ० ८४) (सर्वा०अ० ८ सू० २६)।

अप्रशस्त निदान—खोटी पापरूप आगेके लिये इच्छा करना। इसके दो भेद हैं—१—भोगार्थ निदान भोगोंके लिये इच्छा करना, २—मानार्थ निदान—मान बड़ाई पानेके लिये इच्छा करना (सा० पृ० ३१३), अभिमान करके उत्तम पद चक्रवर्त्यादिके चाहना (ग० पृ० ३८२)।

अप्रशस्त ध्यान—अशुभ ध्यान—संसारके कारण रूप खोटे ध्यान—आर्त और रौद्रध्यान (सर्वा० अ० ९ सू० २९)।

अप्रशस्त विहायोगतिनाम कर्म—नाम कर्मकी

एक प्रकृति, जिसके उदयसे आकाशमें गमन असुहावना हो (सर्वा० अ० ८ सू० ११)।

अप्रसिद्ध–देखो "असिद्ध"।

अप्रसेनिका–कुशील–ऐसे भ्रष्ट मुनि जो विद्या मंत्र औषधि और लोगोंको रागी करनेवाले प्रयोगोंसे लोगोंको प्रसन्न करे (भ० पृ० ६६९)।

अप्राप्यकारी इंद्रियां–जो इंद्रियां पदार्थोंको विना स्पर्श किये दूरसे जाने ऐसी चक्षु इंद्रिय है तथा मन नो इंद्रिय है। स्पर्शन, रसना, घ्राण और कर्ण ये चार इंद्रियां प्राप्तकारी हैं, पदार्थको स्पर्श करके जानती हैं। सर्वा० अ० १ सू० १९)

अप्राशुक–सचित्त, जो एकेन्द्रिय जीव सहित हो, जो एकेन्द्रियकायिक वनस्पति आदि सूख गया हो, अग्निकरि पचा हो व घरडी कोल्हू आदि यंत्र करि छिन्न किया हो या भस्मीभूत किया हो व कषायला द्रव्य लवण आदिसे मिला हो सो द्रव्य प्राशुक है, अचित है, जैसे गर्म जल, लवंग आदिसे रंग बदला हुआ जल, सूखी मेवा, रंधा हुआ साग आदि उसको प्राशुक कहते हैं। उससे विरुद्ध अप्राशुक है। (गृ० पृ० १८९ अ० ११ वां)

अप्रिय वचन–अरति करानेवाला, भय देनेवाला, खेद करानेवाला, वैर व शोक व कलह करानेवाला व मनको संतापित करनेवाला वचन। असत्यके चार भेद हैं–१ जो वस्तु हो उसको नहीं है ऐसा कहना। २ जो वस्तु नहीं है उसको है ऐसा कहना। ३ जिस स्वरूप वस्तु हो उससे विरुद्ध कहना। ४ गर्हित, पाप सहित व अप्रिय वचन कहना। (पुरु० श्लोक ९१–९८)

अप्सरा–देवी–देवांगना, नृत्यकारिणी देवी। (स० भा० पृ० ९०)

अब्ज–कमल।

अबद्धायु (अबद्धायुष्क)–जिन जीवोंके आगामी आयुका बंध न हुआ हो (गो० क० गा० ३६९) जिनके बन्ध होगया हो उनको बद्धायु कहते हैं।

अबध्यत्वाधिकार–दूसरेके द्वारा बन्धन करने योग्य होनेका अधिकार, व्रती द्विजोंके १० अधिकारोंमेंसे सातवां (आदि०प० ४० श्लोक १७९....)

अबला–स्त्री, अनाथ स्त्री, विद्युतप्रभ गजदंत पर्वतके स्वस्तिककूटमें रहनेवाली व्यंतरदेवी (त्रि० गा० ७४२)।

अबाधित–जो दूसरे प्रमाणसे बाधित न हो। जैसे अग्निका ठंडापन प्रत्यक्ष प्रमाणसे बाधित है। परन्तु उसमें उष्णपना अबाधित है (जै० सि० प्र० न० ३९)।

अम्बर तिलक–विजयार्द्धकी उत्तर श्रेणीमें २९ वां नगर (त्रि० गा० ७०९)।

अम्बा–व्यंतर जातिके इन्द्रोंमें १९ वें इन्द्रकी एक महत्तरी गणिकादेवी (त्रि० गा० २७८)।

अम्बावरीष असुर–असुर जातिके देव जो संक्लेश व अशुभ परिणामके धारी होते हैं। और तीसरे नर्क तक जाकर नारकियोंको परस्पर लड़ाकर कष्ट देते हैं (सर्वा० अ० ३ सू० ५)।

अबुद्धिपूर्वक निर्जरा–जो कर्मोंका झड़ना अपने आप फल देकर निरंतर स्वयं होता रहता है इसको अकुशलमूला भी कहते हैं। इससे कुछ कल्याण नहीं होता फिर नवीन कर्मका बन्ध होजाता है। (सर्वा० जयचंद पृ० ६७७)।

अब्बहुल भाग–पहले नर्ककी भूमि–रत्नप्रभा पृथ्वीके तीन भाग हैं। पहला खर भाग १६००० योजन मोटा है, दूसरा पंक भाग ८४००० योजन मोटा है, तीसरा अब्बहुल भाग ८०००० योजन मोटा है (त्रि० गा० १४६)।

अम्बुवात–भाफ मिश्रित वायु।

अब्रह्म–ब्रह्मचर्यका न होना, मैथुन भाव, स्त्री सेवन भाव, कामविकार। अब्रह्मके १० भेद हैं–१. स्त्री विषयाभिलाष–स्त्रीकी चाहका होना, २ वस्तिविमोक्ष–कामसे वीर्यका छूटना, ३ वृष्याहार सेवन व प्रणीतरस सेवन–कामोदीपक रस व आहार खाना, ४ संसक्त द्रव्यसेवन–स्त्री व कामी पुरुषके संसर्गके शय्या आसन आदिका सेवन,

५ इंद्रियावलोकन–स्त्रियोंको रागभावसे देखना, ६ सत्कार–स्त्रियोंका रागभावसे आदर करना, ७ सस्कार–शृंगार करना, ८ अतीत स्मरण–पिछले भोगोंको याद करना, ९ अनागताभिलाष–आगामीके भोगोंका स्मरण, १० इष्टविषयसेवन–स्वछंद होकर इष्टविषयसेवना (भ० पृ० ३०६–७)।

अभक्ष्य–देखो शब्द "अखाद्य" (प्र० जि० पृ० ४४) जो वस्तु खाने योग्य न हो। जो जैनी हो उसे मांस, मदिरा व मधुका त्याग अवश्य करना चाहिये। त्रस जीवोंका घात मांस व मधु खानेसे होता है, तथा प्रमादकी वृद्धि मदिरा लेनेसे होती है। इसके सिवाय जो भोगोपभोग परिमाणव्रतको पालें वे ऐसे फलोंको भी जिनके खानेमें स्वाद तो थोड़ा हो और एकेंद्रिय जीवोंकी बहुत हिंसा हो। जैसे सचित्त मूली, अदरक (शृंगवेर), मक्खन (मक्खन जिस समय बनता हो उसको तपाकर ।॥ घंटेके भीतर घी बना लेना चाहिये वह खानेयोग्य है), नीमके फूल, केतकी गोवी आदिके फूल। जो वस्तु शुद्ध होनेपर भी रोगकारक हो वह भी न खानी चाहिये तथा जो सेवनेयोग्य न हो, जैसे राल, मूत्र, मल आदि व समाजके रिवाजके विरुद्ध व देशके रिवाजके विरुद्ध भोजनपान वे भी अभक्ष्य हैं। जो फलादि निगोद (अनन्तकाय) सहित हों (देखो "अप्रतिष्ठित प्रत्येक" शब्द) (रत्न० श्लो० ८४, ८५, ८६)। हरएक वस्तुकी मर्यादा भारतवर्षके मौसमकी अपेक्षासे नियत है। उसके बाहर खानेसे उसमें न दिखनेवाले कीट पड़ जाते हैं वह सड़ने लगती है इसलिये अभक्ष्य है। मर्यादा इसतरह है–कढी, खिचड़ी, दाल, भात आदि पानी सहित नर्म रसोईकी मर्यादा दो पहरकी। पुआ, पूरी, रोटी, मठिया आदि, जिनमें जलका अंश अधिक हो, दिनभरके लाडू, घेवर, पेड़ा, बरफी, बून्दी, सुहाल, मठरा आदिकी आठ पहर। पानी विना घी व शक्कर व अन्नसे बनाई मिठाईकी मर्यादा पिसे हुए आटेकी मर्यादाके समान है जो वर्षातमें ३ दिन, गर्मीमें ५ दिन व जाड़ेमें ७ दिनकी है। दूधको दोहकर व छानकर ०॥। घंटेके भीतर यातो पीले या उसे औटने रखदे तब उसकी मर्यादा ८ पहरकी है। गर्म जल डालकर तैयार की हुई छाछकी मर्यादा ४ पहरकी व कच्चे जलसे बनी छाछकी २ घड़ीकी है। दहीकी मर्यादा औटे हुए दूधसे जमनेपर ८ पहरकी है। कच्चे पानीकी मर्यादा छाननेपर दो घड़ीकी है। फिर पीछे छानना उचित है। लौंग, इलायची, चंदन, राख, नोन आदि कसायला द्रव्यका चूरा छने पानीमें मिलानेसे जब उसका वर्ण, गंध आदि बदल जावे तो मर्यादा २ पहरकी है। न औटे हुए परंतु गर्म जलकी मर्यादा ४ पहरकी व औटे हुएकी ८ पहरकी है। ३ घण्टेका पहर व २४ मिनिटकी घड़ी होती है। (गृ० अ० ७) बूरा जो साफ किया जावे। उसकी मर्यादा जाड़ेमें १ मास, गर्मीमें १५ दिन व वर्षातमें ७ दिनकी है। घी, गुड़, तेल आदिकी मर्यादा स्वाद न विगड़ने तक है। पिसे हुए मसाले आदिकी मर्यादा आटेके बराबर है। बूरा, मिश्री, खारक आदि मिष्ट द्रव्यसे मिले हुए दहीकी मर्यादा दो घड़ीकी। गुड़के साथ दही या छाछ खाना अभक्ष्य है। (श्रावक० पृ० १०४)। मुरब्बा व आचारकी मर्यादा ८ पहरकी है। त्याग–अभक्ष्यका छोड़ देना। त्यागी–अभक्ष्यका न खानेवाला।

अभय–निर्भय, सात भयरहित। (१) इसलोक भय–लोग क्या कहेंगे ? (२) परलोक भय–परलोकमें दुःख मिलनेका भय। (३) वेदना भय–रोग होनेका भय। (४) अरक्षा भय–कोई रक्षक नहीं है ऐसा भय। (५) अगुप्त भय–मेरा माल कहीं चोरी न चला जावे। (६) मरण भय–कहीं मरण न होजावे। (७) अकस्मात् भय–कहीं छत न गिर पड़े आदि–; राजा समुद्रविजयके पुत्र अरिष्टनेमिके भाई (हरि० ४९७)।

अभयकीर्ति–सं० १६६४ के जैनाचार्य जाति पोड़वांड़ (दि० ग्रं० नं० १२)।

अभयकुमार–राजा श्रेणिकके पुत्र मोक्षगामी नंदिश्री ब्राह्मणीसे जन्मे थे (अ० मा० पृ० ३४९)

अभयघोष–आचार्य जिनके पास मघवा तीसरे चक्रवर्तीने दीक्षा ली (इ० द्वि० पृ० १२)। (२) काकन्दीके राजा, जिसने एक कछुवेके चारों पांव काट डाले थे वह मरके इसहीके चंडवेग पुत्र हुआ। जब अभयघोष मुनि होकर एक दफे विहार करते हुए काकन्दीके वनमें आकर तप कर रहे थे तब पूर्व वैरसे इसके पुत्र चंडवेगने मुनिको घोर उपसर्ग किया, वह केवलज्ञानी होकर मोक्ष गए। (आरा० कथा नं० ६७)। (३) श्री ऋषभदेवके पूर्व भवमें जब वे सुविधिराजकुमार थे तब अभयघोष चक्रवर्तीने अपने मामाकी कन्या मनोरमाको विवाहा था। यह अभयघोष फिर साधु होगए। (आदि० पृ० ३४९ पर्व १०)।

अभयङ्कर–प्राणियोंकी रक्षा करने व करानेवाला (अ० मा० पृ० ३४९)।

अभयंकरा–वह पालकी जिसपर १७वें तीर्थंकर कुंथुनाथ दीक्षा समय बैठे थे (अ०मा०पृ०३४९)

अभयचन्द्र–(१) सं० ९७९ अयोध्यापुरीके एक प्रसिद्ध श्रावक (दि० जै० नं० १०), (२) गोमटसारकी मंदप्रबोधिनी नामकी टीकाके कर्ता (गो० कर्मकांड छोटा भूमिका)।

अभयदत्ति (दान)–दुखी प्राणियोंकी दयापूर्वक मन वचन कायकी शुद्धिसे रक्षा करना (चा० पृ० ४४)।-धर्मके पात्रोंको आश्रय देना।

अभयनंदि–गोमटसार कर्मकांडके कर्ता (सं० ७७९) नेमिचन्द्रके श्रुतगुरु (गो०क०गा० ४०८), बृहत् जैनेन्द्र व्याकरणके कर्ता (दि०ग्रं० नं०१३)।

अभयभद्र–श्री महावीरस्वामीके मोक्ष जानेके बाद ५६५ वर्ष पीछे ११८ वर्षके भीतर आचारांगके पाठी ४ आचार्य हुए–सुभद्र, अभयभद्र, जयबाहु, लोहाचार्य (श्रुतावतार पृ० १४)।

अभयसेन–षट्खंड सिद्धांतके ज्ञाता आचार्य (हरि० पृ० ६२९)।

अभयसूरि–कर्णाटक जैनाचार्य बल्लालनरेश व चारुकीर्ति पंडितके समकालीन (सं० १११७) (कर्णा० नं० ३९)।

अभव्य–(१) स्वभाव–तीन कालमें भी किसी द्रव्यके स्वभावका अन्य द्रव्यके स्वभावमें न पलटनेका स्वभाव (आ० प० पृ० १६१) यह एक साधारण स्वभाव है। द्रव्योंके साधारण स्वभाव ११ हैं–(१) अस्तिस्वभाव, (२) नास्तिस्वभाव, (३) नित्य स्वभाव, (४) अनित्य स्वभाव, (५) एक स्वभाव, (६) अनेक स्वभाव, (७) भेद स्वभाव, (८) अभेद स्वभाव, (९) भव्य स्वभाव, (१०) अभव्य स्वभाव, (११) परम स्वभाव।

(२) जीव–जो संसारसे निकलकर कभी मोक्ष न जासकेंगे। (गो० जी० गा० ५५७) (३) राशि–जघन्य युक्तानन्तकी गणना प्रमाण अभव्य जीव राशि है (गो० जी० गा० ५६०)।

अभव्यत्व भाव–(पारणामिक भाव) सम्यग्दर्शनादि मोक्षमार्गकी प्राप्ति न होने योग्य भाव (सर्वा० अ० २ सू० ७)।

अभव्य राशि–देखो शब्द "अभव्य"।

अभव्य सिद्ध–जो कभी सिद्ध न होंगे। देखो "अभव्य"।

अभव्यसेन-एक द्रव्यलिंगी मुनि रेवती राणी मथुराके समयमें जिस मुनिकी परीक्षा क्षुल्लक चन्द्रप्रभ विद्याधरने की थी (कथाकोष रेवती नं० ९)।

अभाव–एक पदार्थकी दूसरे पदार्थमें गैर मौजूदगी या न होना। इसके चार भेद हैं–(१) प्रागभाव–वर्तमान पर्यायका पूर्व पर्यायमें अभाव, जैसे मिट्टीके पिंडमें घटका अभाव. (२) प्रध्वंसाभाव–आगामी पर्यायमें वर्तमान पर्यायका अभाव, जैसे कपालमें घटका न होना, (३) अन्योन्याभाव–पुद्गल द्रव्यकी एक वर्तमान पर्यायमें दूसरे पुद्गल द्रव्यकी वर्तमान पर्यायका न होना, जैसे घटमें

पटका व पटमें घटका अभाव, (४) अत्यन्ताभाव—एक द्रव्यमें दूसरे द्रव्यका अभाव, जैसे जीवमें पुद्गलका (जै० सि० प्र० नं० १८०–१८९)।

अभाव भाव—भविष्य स्थूल पर्यायका वर्तमानमें प्रारम्भ होना। जैसे—देवगतिके लिये मनुष्य गतिमें कर्म बांधना (पंचास्तिकाय)।

अभाषका मनुष्य—गूँगे कुभोगभूमिवाले मनुष्य देखो शब्द "अन्तर्य मनुष्य" (त्रि० गा० ९१६)।

अभाषात्मक शब्द—जो शब्द कोई भाषा रूप न हों। इसके दो भेद हैं (१) प्रायोगिक—जो मानवोंके प्रयोगसे शब्द बजें वे चार तरहके हैं। (क) तत—चमड़ेसे मढ़े हुए भेरी ढोल आदि (ख) वितत—तारसे बजनेवाले सितारादि, (ग) घन—चोटसे बजनेवाले घंटा आदि, (घ) सिषिर—हवासे बजनेवाले बांसरी शंख आदि, (१) वैस्रसिक—पुद्गलोंके संघट्टसे निकलनेवाले शब्द जैसे मेघगर्जन, बिजली, तड़कन आदि (सर्वा० अ०५ सू० २४)।

अभिगत चारित्रार्य—चारित्रको पालनेवाले वे साधु जो दूसरेके उपदेश विना ही चारित्र मोहके उपशम या क्षयसे शुद्ध चारित्र भावको पहुंच गए। दूसरे वे हैं जो उपदेशसे पहुंचे उनको अनभिगत चारित्रार्य कहते हैं (सर्वा० पृ० ३३१) जयचंद।

अभिग्रह—

अभिघट दोष—साधुओंके आहारदानके लिये दातारको बचाने योग्य उद्गम दोषोंमेंसे १२वां दोष। इसके दो भेद हैं एक देश व सर्व देश। एक देश अभिघटके दो भेद हैं—(१) आचिन्न—पंक्तिबन्ध तीन या सात घरोंसे आया अन्न भात आदि ग्रहण योग्य है, (२) अनाचिन्न—उल्टे घरोंसे ऐसे ७ मेंसे भी लाया हुआ या आठवें आदिसे लाया हुआ भात आदि भोजन सो ग्रहणयोग्य नहीं है। सर्वाभिघट के चार भेद हैं-(१) स्वग्राम—एक ग्राममें ही एक मुहल्लेसे दूसरेमें लेजाना, (२) परग्राम—दूसरे ग्रामसे लाना, (३) स्वदेश—अपने देशमें कहींसे लाना, (४) परदेश—परदेशसे कहींसे लाना। ये सब लेनेयोग्य नहीं हैं। (मू० गा० ४३८–४४०)।

अभिचन्द्र—(१) भरतकी इस अवसर्पिणीके तीसरे कालमें प्रसिद्ध १० वां कुलकर जिसके सामने प्रजा सन्तानोंको चंद्रमाके सामने करके खिलाती थी। इसकी आयु पल्यका हजार कोड़वां भाग थी (हरि० पृ० १०९), (२) हरिवंशमें—अजका अर्थ माताके स्नेहसे बकरा करनेवाले राजा वसुका पिता, जिसने उग्रवंशी वसुमतीसे विवाह किया था (हरि० पृ० १९४), (३) यदुवंशमें—अंधकवृष्णिके पुत्र, वसुदेवजीके बड़े भाई (हरि० पृ० २०४)।

अभिजया—समवसरणमें सप्तवर्ण वनकी एक वापिकाका नाम (हरि० पृ० ५०७)।

अभिजित—२० वां नक्षत्र। कुल २८ नक्षत्र होते हैं—१ कृतिका, २ रोहिणी, ३ मृगशीर्षा, ४ आर्द्रा, ५ पुनर्वसु, ६ पुष्य, ७ अश्लेषा, ८ मघा, ९ पूर्वाफाल्गुनी, १० उत्तराफाल्गुनी, ११ हस्त, १२ चित्रा, १३ स्वाति, १४ विशाखा, १५ अनुराधा, १६ ज्येष्ठा, १७ मूल, १८ पूर्वाषाढा, १९ उत्तराषाढा, २० अभिजित, २१ श्रवण, २२ धनिष्ठा, २३ शतभिषक, २४ पूर्वाभाद्रपदा, २५ उत्तराभद्रपदा, २६ रेवती, २७ अश्विनी, २८ भरणी। (त्रि० गा० ४३२–४३३)।

अभिधान मुक्तावली कोष—विश्वलोचन कोष जैनाचार्य श्री धरसेन कृत, मुद्रित निर्णयसागर सन् १९२२।

अभिधान रत्नमाला—प्राकृत कोष।

अभिधान संग्रह—प्राकृत कोष।

अभिन—

अभिनन्दन—भरतक्षेत्रके वर्तमान चौथे तीर्थंकर।

अभिनव (निघण्टु)—कर्णाटक जैन कवि मंगराज द्वि० (ई० सन् १३१४) लिखित कोष—इसको मंगराज निघण्टु भी कहते हैं (क० नं० ६६) (२) गृहस्थ—मल्लिनाथ पुराण कर्णाटकीके कर्ता (दि० ग्र० नं० १४), (३) पंप—(सन् ११०५) इनका

दूसरा नाम नागचन्द्र था। यह कर्णाटकी प्रसिद्ध कवि होगए हैं। इनके सम्पादित रामायण, मल्लिनाथ-पुराण, प्रसिद्ध हैं। इनको भारतीकर्णपूर, कविता मनोहर, साहित्यविद्याधर, साहित्य सर्वज्ञ, सूक्ति-मुक्तावतंस उपाधियां थीं (क० नं २६) यह बड़े धनवान थे। बीजापुरमें मल्लिनाथका विशाल मंदिर बनवाया था। (४) श्रुतमुनि-(सन् १३६९) कर्णाटक जैन कवि मल्लिसेन सूरिकृत सज्जनचित्त-वल्लभके कनड़ी टीकाकार (क० नं० ७०), (५) शर्ववर्म-कर्णाटक जैन कवि नागवर्म, यह चालुक्य वंशी राजा जगदेकमल्ल (११३९-११४९)के समयमें हुआ है। यह राजाका सेनापति था। इसने काव्या-वलोकन, कर्णाटकभाषाभूषण तथा वस्तुकोष लिखे हैं—कर्णाटक भाषाभूषण श्रेष्ठ व्याकरण माना जाता है। (क० नं० १९), (६) वादि-विद्यानंदि १६ वीं शताब्दीके कर्णाटकी कवि, (७) विद्यानंदि—कर्णाटक कवि काव्यसारके कर्ता, (८) वाग्देवी—कंति कर्णाटकी स्त्री कवि। इसने द्वारसमुद्रके वल्लालराजा विष्णुवर्द्धनकी सभामें अभिनवपंपसे विवाद किया था, यह राजमंत्रीकी पोती थी।

अभिनिबोध—मतिज्ञानका एक नाम, अनुमान ज्ञान। चिह्नको देखकर चिह्नवालेका ज्ञान कर लेना जैसे धूएँको देखकर अग्निका ज्ञान (सर्वा० अ० १ सू० १३), इन्द्रिय व मनके द्वारा सन्मुख हो नियम रूप पदार्थका जानना, जैसे स्पर्शनसे स्पर्श हीका रसनासे रस हीका ज्ञान (गो०जी०गा० ३०६)।

अभिन्न दशपूर्व—सूत्रोंके ४ भेद—(१) गणधर कथित, (२) प्रत्येकबुद्ध कथित, (३) श्रुतकेवली कथित, (४) अभिन्न दशपूर्व कथित (मू.गा. २७७)।

अभिन्न दशपूर्वी—विद्यानुवाद नाम दशम पूर्व पढ़के जो सराग न हो ऐसे निर्ग्रंथ साधु (च०श० नं० ११९)।

अभिन्न संधि—८८ ग्रहोंमें २०वें ग्रहका नाम (त्रि० गा० ३६६)।

अभिमन्यु—(कुमार) राष्ट्रकूट वंशके गुजरातमें राज्य करनेवाले चार प्रसिद्ध राजाओंमें नं० ४ के राजा सन् ईस्वी ४५० (बंबई स्मा० पृ० १९६)।

अभिमान—घमण्ड, हरिवंशमें श्री मुनिसुव्रत-नाथके पीछे राजा वसुके पीछेके एक राजा (हरि० पृ० २०४)।

अभिमानिनी भाषा—अपने गुण प्रगट करना, दूसरेके दोष कहना व कुल जातिरूप बलादिका अभिमान लिये वचन कहना (भग० पृ० ३९५)।

अभिमान मेरु—अपभ्रंश भाषाके महाकवि, महा-पुराण आदिके कर्ता पुष्पदंतका एक नाम (दि० जैन खास अंक पृ० ७१ वर्ष १८)।

अभिप्रेत—वादीन प्रतिवादी जिसे सिद्ध करना चाहे, इष्ट।

अभियोग—दास कर्म, वाहनादि बन जाना। (त्रि० गा० ५३१) साधु यदि रसादिकमें आसक्त होके तंत्र मंत्र भूत कर्म करे व हास्यसे आश्चर्य उपजावे सो क्रिया (मू० गा० ६५)।

अभियोग देवदुर्गति—जो साधु अभियोग कर्मसे देवगतिमें जाकर अभियोग काम करनेवाले देव होते हैं उनकी गति।

अभिराम—रमणीक, सुन्दर। देवराय—सन् ई० ९०२ में कर्णाटक कवि आदिपंपके पिताका नाम।

अभिलाप्य—प्रज्ञापनीय—कथन करनेयोग्य पदार्थ। केवलज्ञान गोचर जीवादिक पदार्थोंका अनंतवां भाग। मात्र पदार्थ प्रज्ञापनीय होता है। अर्थात् दिव्यध्व-निसे कहने योग्य है। तथा उसका अनंतवां भाग मात्र द्वादशांग श्रुतमें व्याख्यान करने योग्य है। (गो० जी० गा० ३३४)।

अभिलाषा—कांक्षा, इच्छा—यह तीन तरहकी होती है—(१) इस लोकमें सम्पदा मिलनेकी, (२) परलोकमें सम्पदा मिलनेकी, (३) कुधर्मकी। निःकां-क्षित अंगवालेके यह अभिलाषा नहीं होती है। (मू० गा० २४९)।

अभिवन्दन—विनय, नमस्कार। मुनिको नमोस्तु

कहके दंडवत् करना चाहिये । ब्रह्मचारियोंके लिये वंदना कहना चाहिये व सातमीसे ११वीं तक हाथ जोड़ते हुए अधिक २ मस्तक झुकाना चाहिये । आर्यिकाओंको वंदामि कहके झुककर वंदना करना चाहिये। साधर्मी श्रावकोंको परस्पर इच्छाकार कहना चाहिये । मुनि श्रावकोंको धर्मवृद्धि कहके आशीर्वाद देंगे व अजैनोंको धर्मलाभ कहेंगे । आर्यिका भी इसी तरह धर्मवृद्धि व धर्म लाभ कहें । ब्रह्मचारीगण पुण्यवृद्धि हो या दर्शनविशुद्धि हो ऐसा कहते हैं । लौकिकमें परस्पर जुहारु करना चाहिये (सागार० ६ श्लो० १२), पद्धति–वंदनाकी रीति।

अभिवृद्धि–२९ वां अधिदेवता २९वें नक्षत्रका (त्रि० गा० ४३९) ।

अभिषङ्ग–लोभ (रा० सु० पृ० १८९) ।

अभिषव–कामोद्दीपक पदार्थ पारस, कांजी आदि व खीर आदि पौष्टिक पदार्थ ।

अभिषवाहार–अभिषवका आहार करना, भोगोपभोग परिमाण शिक्षाव्रतका चौथा अतीचार (सर्वा० अ० ७ सु० ३९) (सा० अ० ५ श्लोक २०)।

अभिषेक–न्हवन, जिन प्रतिमाका स्नान व प्रक्षाल करना । मुनिको दीक्षा देते समय जो पारिव्राज्य क्रिया होती है उसमें शुभ मुहूर्तमें किसी भव्यको मुनि दीक्षा दी जाती है तब आचार्य २७ बातोंसे दीक्षा लेनेवालेका लक्षण जानते हैं । वे हैं– १ जाति, २ मूर्ति, ३ लक्षण, ४ सुन्दरता, ५ प्रभा, ६ मण्डल, ७ चक्र, ८ अभिषेक, ९ नायता, १० सिंहासन, ११ वस्त्र, १२ छत्र, १३ चमर, १४ घोषणा, १५ अशोक वृक्ष, १६ निधि, १७ गृहशोभा, १८ अवगाहन, १९ क्षेत्र, २० आज्ञा, २१ सभा, २२ कीर्ति, २३ वंद्यता, २४ वाहन, २५ भाषा, २६ आहार, २७ सुख । इनको सूत्रपद कहते हैं (आ० प० ३९ श्लो० १६३) ।

अभिषेक वन्दना–चल प्रतिमाकी अभिषेक वंदना होती है । अर्थात् अभिषेक पूर्वक वंदना होती है (चा० पृ० १५३) ।

अभीक्ष्ण–निरन्तर, प्रतिक्षण, नित्य ।

अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग–निरन्तर जीवादि पदार्थोंके विचारमें अर्थात् सम्यग्ज्ञानमें उपयोगको जोड़े रखना । यह तीर्थंकर नाम कर्मको बांधनेवाली १६ कारण भावनाओंमेंसे चौथी भावना है (सर्वा० अ० ६ सू० २४) ।

अभूतार्थनय–असत्यार्थनय, व्यवहारनय । वह अपेक्षा या दृष्टि जिससे प्रयोजनवश किसी पदार्थको जैसा वह असलमें है वैसा न कहकर औरका और कहना । जैसे जीव निश्चयसे शुद्ध वीतरागी अमूर्तीक हैं तौभी कर्मसंयोग व शरीर सम्बन्धके निमित्तसे उसको संसारी, अशुद्ध, रागी, द्वेषी, एकेंद्रियादि कहना सो अभूतार्थनयकी अपेक्षासे कहा जासक्ता है (पुरु० श्लो० ५) ।

अभेद्य–जो भेदा छेदा न जासके, चक्रवर्तीके पास जो कवच होता है उसका नाम (इति० प्र० पृ० ६०) ।

अभोज्य गेह प्रवेश अन्तराय–साधुके पालने योग्य ३२ अन्तरायोंमें २१ वां अन्तराय–चाण्डालादिके न खानेयोग्य गृहमें प्रवेश होजाना । ऐसा यदि हो तो साधु उस दिन अन्तराय मानके भोजन न करेंगे (मू० गा० ४९८) ।

अभ्यन्तर उपकरण इंद्रिय–हरएक द्रव्य इंद्रियकी रक्षाका जो अंग हो उसको उपकरण कहते हैं उसके दो भेद हैं–१ अभ्यंतर–भीतरी, २ बाह्य–बाहरी जैसा आंखका भीतरी उपकरण पुतलीके आसपास काला, शुक्ल मण्डल है, बाहरी उपकरण पलकें आदि हैं (सर्वा० अ० २ सू० १७) ।

अभ्यन्तर उपधित्याग–अंतरंग परिग्रहका त्याग । मिथ्यात्व, क्रोधादि कषाय ४, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुंवेद, नपुंसकवेद ये ९ नोकषाय, कुल १४ प्रकार अन्तरंग परिग्रह है । यह व्युत्सर्ग नाम पांचवें अंतरंगतपका भेद है (सर्वा० अ० ९ सू० २६) ।

अभ्यन्तरतप–जिस तपसे मनको नियम रूप

रखनेकी अधिक मुख्यता हो। इसके ६ भेद हैं–१ प्रायश्चित्त, २ विनय, ३ वैयावृत्य, ४ स्वाध्याय, ५ व्युत्सर्ग, ६ ध्यान (सर्वा० अ० ९ सू० २०)।

अभ्यन्तर निर्वृत्ति इन्द्रिय–द्रव्य इंद्रियकी खास रचनाको निवृत्ति कहते हैं। उसके दो भेद हैं– अभ्यंतर निवृत्ति अर्थात् अंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण आत्माके प्रदेशोंका चक्षु आदि इंद्रियोंके आकाररूप होजाना, २ बाह्य निवृत्ति। अर्थात् नाम-कर्मके उदयसे पुद्गलोंका इंद्रियके आकार होजाना। श्रोत्र इन्द्रियका आकार जौकी नालीके समान, चक्षुका मसूरकी दालके समान, घ्राणका कदंबके फूलके समान, जिह्वाका खुरपाके आकारके समान व स्पर्श इंद्रियका अनेक प्रकार शरीरके आकार समान आकार होता है। (गो० जीव० गाथा० १७१)

अभ्यंतर परिग्रह–भीतरी मूर्छाभाव–यह १४ प्रकार हैं। देखो शब्द "अभ्यंतर उपधित्याग"।

अभ्यंतर पारिषद देव–इन्द्रकी तीन सभाएँ होती हैं–अभ्यंतर परिषद उसके सभासद आठसै (८००) पारिषद देव होते हैं। मध्य सभाके एक हजार व बाहरी सभाके बारहसै पारिषद देव होते हैं (त्रि० गा० २७९)।

अभ्यंतर व्युत्सर्ग
अभ्यंतरोपधि व्युत्सर्ग } "देखो अभ्यंतरउपधि त्याग"

अभ्यवहरण–एषणा समिति–साधु दोष टालके गृहस्थका दिया हुआ वह भोजन ले जो उसने अपने ही कुटुम्बके लिये बनाया हो (चा० पृ० ७२)।

अभ्याख्यान वचन–१२ प्रकारके असत्य वचनोंमेंसे पहला असत्य वचन, हिंसा आदिके करनेवाले वचन कहना व हिंसादि न करनेवालेको हिंसादि करनेका उपदेश देना (हरि० पृ० १४८)।

अभ्यागत–मुनिको अतिथि कहते हैं जिनने किसी खास पर्व वा तिथिका आग्रह उपवासादिमें त्याग दिया है उनके सिवाय अन्य सर्व पात्रोंको अभ्यागत कहते हैं (सागार० अ० ५ श्लो० ४२), पाहुना, मिहमान।

अभ्यासी श्रावक–पाक्षिक श्रावक, व्रतका अभ्यास करनेवाला श्रावक।

अभ्युदयावह–तीर्थंकरके समवसरणकी रचनामें जो दिव्यपुर बनता है उसका नाम (हरि० पृ० ५११)

अभ्र–सौधर्म ईशान स्वर्गोंमें ३१ पटलोंके ३१ इन्द्रक हैं उनमेंसे २१वें इन्द्रकका नाम (त्रि० गा० ४६५), आकाश।

अभ्रदेव-एक गृहस्थ थे जिन्होंने व्रतोद्योतन श्रावकाचार रचा है (दि० ग्रं० नं० १५)।

अभ्रावकाश–बाहरी आवरण व छाया रहित प्रवेश, उसमें योग या ध्यान धरना सो अभ्रावकाश योग है। उसमें शयन करना सो अभ्रावकाश शयन है (मू० गा० ९२४ भगवान पृ० ९१)।

अमनस्क–असैनी, मन रहित जीव, एकेंद्रियसे चार इंद्रिय तक सब मन रहित होते हैं। कुछ पंचेन्द्रिय तिर्यंच भी असैनी होते हैं। जो जीव हितकर शिक्षा न ग्रहण कर सकें, उपदेश न समझ सकें, संकेत या इशारा न समझ सकें, कार्य अकार्यको व उसके हानि व लाभकी तर्कणा सहित विचार न कर सकें। व नामसे बुलानेपर न आसकें वे असंज्ञी मन रहित जीव होते हैं (गो० जी० गाथा ६६१-६६२)।

अमम–देखो शब्द "अंक विद्या" (प्र० जि० पृ० १०४) ८४ लाख अममांगोंका एक अमम (ह० पृ० १००) ममता रहित।

अममांग–८४ लाख अटटोंका एक अममांग (ह० पृ० १००) देखो शब्द "अंक विद्या" (प्र० जि० पृ० १०४)।

अमर–देवता, सुर, मोक्ष अवस्था २–हरिवंशके राजाओंमें सूर्यका पुत्र (ह० पृ० १९४), अमर-कङ्कापुरी–अंगदेशकी एक नगरी धातकी खण्डद्वीपके पूर्व भरतमें (हरि० पृ० ४८३) जहां नारदजी द्रोपदीको उठा लेगए थे और राजा पद्मनाभने उसके शीलका खण्डन करना चाहा। परन्तु द्रोपदी शीलमें दृढ़ रही। कृष्णजी उसे लेआए।

अमरकीर्ति–भट्टारक–स्वयंभू व भट्टारक नाम-

स्तोत्रके टीकाकार (दि० ग्रं० नं० १६)। कर्णाटक जैन कवि वृत्ति विलास (सन् ११६०) का गुरु अमरकीर्ति (कल० क० नं० ३९)।

अमरकोष—अमरसिंह रचित एक प्रसिद्ध कोष। इसपर प्रसिद्ध पंडित आशाधर (वि० सं० १३वीं शताब्दि) ने क्रिया कलाप टीका लिखी है (दि० ग्रं० नं० ३९), कर्णाटकी कवि नाचिराजने (स० ई० १३००) कनड़ भाषामें "नाचिराजीय" नामकी व्याख्या लिखी है।

अमरचन्द—(भट्टारक)।

अमरचंद—दीवान जैपुर-पंडित टोडरमलजीको विद्याभ्यास करानेवाले जिन्होंने मोक्षमार्ग प्रकाशक लिखा है।

अमरचंद—ओसवाल, बीकानेरके ओसवाल जैन सूरतसिंहके समय (सन् १७८७-१८२३) भटनेरका युद्ध विजय किया तब इनको दीवानपद दिया गया। (जै० हि० जि० ११ पृ० ८४३)

अमरणस्थान—जीवके वे गुणस्थान जिनमें मरण नहीं होता है। वे हैं मिश्र तीसरा गुणस्थान, क्षीणकषाय १२वां गुणस्थान तथा सयोगकेवली तेरहवां गुणस्थान (च० छंद ८२)।

अमरदेव—

अमरपद—मोक्ष पद, अविनाशी पद। सौधर्म इन्द्र व उनकी शची इन्द्राणी, सोम आदि चार लोकपाल, सनत्कुमार आदि दक्षिण इन्द्र, सर्वलौकांतिकदेव, सर्व सर्वार्थसिद्धिके अहमिंद्र, एक मनुष्य जन्म ले निर्वाणको जाते हैं (त्रि० गा० ४८)

अमरप्रभ—(अमलप्रभ)—भरतके गत चौवीसीमें ८ वें तीर्थंकर, २—वानरवंशी एक राजा (इति० २ पृ० ९६)।

अमरलोक—सिद्धक्षेत्र, जहां मुक्तिप्राप्त आत्माएं विराजती हैं। देवलोक, स्वर्गपुरी, देवलोक या ऊर्ध्वलोकमें ८४,९७०२३ विमानोंमें इतने ही अकृत्रिम जिन मंदिर हैं। (त्रि० गा० ४९१)

अमरसिंह—अमरकोषके कर्ता।

अमरसी—चित्तौड़के महाराणाके मंत्री वच्छराज जैनके पोते (शिक्षा० पृ० ६४६)।

अमरा—तीर्थंकरके समवशरणके दिव्यपुरका एक नाम (हरि० पृ० ५११)।

अमराक्ष—राक्षस वंशके एक राजा (इ० २ पृ०५३)

अमरावती—स्वर्गपुरी, सौधर्म इन्द्रके रहनेका नगर (त्रि० गा० ५१५) वरारकी मुख्य नगरी—यहांसे भातकुली तथा मुक्तागिरिजीकी यात्राको जाया जाता है। इस जिलेमें कुण्डनपुर क्षेत्र वर्धा नदीके तटपर आर्वीसे ६ मील पश्चिम व धामणगांव स्टेशनसे १२ मील है। इसका नाम कौंड़िरामपुर था। यही विदर्भ देशके राजा भीष्मकी राज्यधानी थी। यहींसे श्रीकृष्णजी रुक्मिणीको लेगए थे। यहां प्राचीन दि० जैन मंदिर है (तीर्थयात्रा दर्पण पृ० ६१)।

अमरावर्त्त—पांडवोंके धनुर्विद्याके गुरु द्रोणाचार्य भार्गव वंशमें थे। भार्गवकी परम्परामें चौथा शिष्य यह था—१ भार्गव, २ आत्रेय, ३ कौथिम, ४ अमरावर्त्त, ५ शित, ६ नामदेव, ७ कायिष्ठल, ८ जगत स्यामा, ९ सरवर, १० शरासन, ११ रावण, १२ विद्रावण, १३ द्रोणाचार्य, १४ अश्वत्थामा (ह० पृ० ४२१)।

अमरेन्द्रकीर्ति—भट्टारक सं० १७४४।

अमरेश्वर—इन्द्र, परमात्मा, सिद्ध, एक तीर्थस्थान जहां मालवाके राजा अर्जुनवर्मदेवने वि० सं० १२७२में एक दानपत्र दिया था। यह भोपालमें है। यही समय पं० आशाधरजीका है। यह मालवाके नालछा स्थानपर ठहरे। (विद्वद्रत्न मा० पृ० १०२)।

अमल—श्री नेमिनाथजीके पिता समुद्रविजयके एक मंत्री। (ह० पृ० ४६७), निर्मल, पाप रहित, शुद्ध, मुक्त जीव।

अमलप्रभ—(अमरप्रभ) भरतकी गत चौवीसीमें ८ वें तीर्थंकर।

अमितिगति—(१) भवनवासी देवोंके दिक्कुमार जातिके इन्द्र (त्रि० गा० २११)। (२) इंद्रकी अनेक जातिमें घोड़ोंकी सेनाके प्रधान (त्रि० गा०

४९७)। (३) आचार्य (वि० सं० १०५०) इन्होंने सुभाषित रत्नसंदोह, धर्मपरीक्षा, श्रावकाचार, पंचसंग्रह, सामायिक पाठ लघु, सामायिक पाठ बृहत्, योगसार, सार्द्धद्वय द्वीप प्रज्ञप्ति, जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, चंद्र प्रज्ञप्ति, व्याख्या प्रज्ञप्ति, आदि ग्रन्थ रचे हैं पिछले चार मुद्रित नहीं हुए हैं। (दि० ग्रं० नं० १७)। (४) चारुदत्त चरित्रमें एक विद्याधर चारण मुनि (ह० पृ० २४८)। (५) श्रीकृष्णके पिता वसुदेवजीके पुत्र, गंधर्वसेना रानीसे (ह० ४९७)।

अमितिगति श्रावकाचार–अमितिगति आचार्यकृत श्रावकाचार। देखो ऊपरका शब्द–मुद्रित है।

अमितिगतिसूरि–देखो "अमितिगति आचार्य"

अमितिगतीन्द्र–दिक्कुमार भवनवासी देवोंके इन्द्र। (त्रि० गा० २११)

अमिततेज–श्री ऋषभदेवके पूर्वभव वज्रजंघके भवमें वज्रजंघकी छोटी बहन अनुंधरी वज्रदंत चक्रवर्तीके पुत्र अमिततेजको विवाही गई थी (आदि० पृ० २६२७ पर्व ८)। भरतके गत चौथे कालमें २४ कामदेव हुए उनमेंसे दूसरे कामदेव (जैन बालगुटका पृ० ९)

अमितप्रभ–श्री कृष्णके पिता वसुदेवजीके पुत्र, बालचंदा रानीसे (हरि० पृ० ४९७)

अमितमती–एक आर्यिकाका नाम जिसके पास सेठ कुवेरमित्रकी भानजी। गुणवती और यशस्वतीने दीक्षा ली, जयकुमार सुलोचनाका पूर्वभव। (आदि० पर्व ४६ पृ० १६६७)

अमितवाहन–भवनवासीकी दिक्कुमार जातिके दूसरे इन्द्र (त्रि० गा० २११)

अमितवाहनेन्द्र–दिक्कुमार भवनवासी देवोंके इन्द्र (त्रि० गा० २११)।

अमित विजय–

अमितवेग–(१) हनूमानजीका दूसरा नाम, अंजनाका पुत्र, (२) विजयार्द्धकी अचेलक नगरीका स्वामी रावणके समय (इति० २ पृ० १६३) (इति० २ पृ० १९८)।

अमितसेन–हरिवंश पुराणके कर्ता जिनसेनके गुरु भाई बड़े तपस्वी १०० वर्षकी आयु (ह० पृ० ६२९)।

अमीझरा पार्श्वनाथ–अतिशय क्षेत्र। बम्बई प्रांतकी महीकांठा एजन्सीमें ईडरसे १० मील। यहां चतुर्थकालकी श्री पार्श्वनाथकी मूर्ति है। इसे बड़ाली पार्श्वनाथ भी कहते हैं (ब० स्मा० पृ० ३९)।

अमुक्तक–१२३४ उपवास चारित्र शुद्धिके होते हैं, उनमें अचौर्य व्रतके ७२ होते हैं। मन, वचन, काय व कृतकारित अनुमोदना इसतरह नौ रूपसे आठ प्रकार चोरीका त्याग। १ ग्राम, २ अरण्य, ३ खल, ४ एकांत, ५ अन्यत्र, ६ उपधि, ७ अमुक्तक, ८ पृष्ठ ग्रहण। (हरि० पृ० ३५६)

अमूढ़दृष्टि–सम्यक्तका चौथा अंग। मूढ़ताईसे किसी कुशास्त्र, कुधर्म व कुदेवमें रुचि न लाना। (पु० श्लो० २६)।

अमूर्तत्व–अमूर्तिकपना, वर्णादिरहितपना।

अमूर्तिक–जिसमें स्पर्श, रस, गंध, वर्ण न हो, अरूपी, (सर्वा० अ० सू० ४)

अमृत–भरतचक्रीके पीनेकी वस्तु (इ० १ पृ०७०)

अमृतचन्द्र आचार्य–(वि० सं० ९६२) श्री कुन्दकुन्दाचार्यके समयसार, प्रवचनसार व पंचास्तिकायके संस्कृत टीकाकार। पुरुषार्थसिद्धुपाय, तत्वार्थसारके कर्ता–ये सब ग्रन्थ मुद्रित हैं। (दि० ग्रं० नं० १९)

अमृतधानी–तीर्थंकरके समवसरणके दिव्यपुरका एक नाम (ह० पृ० ५११)

अमृतपुर–विजयार्धकी दक्षिण श्रेणीकी एक राजधानी (इ० २ पृ० १२६)

अमृतपंडित–व्रतकथाकोषके कर्ता (दि० ग्रं० नं० १८)

अमृतप्रभ–श्री नेमिनाथ तीर्थंकरके पिता समुद्रविजय आदि १० भाई थे उनमेंसे नौमे भाई अभिचन्द्रके एक पुत्र (हरि० पृ० १५७)

अमृत रसायन—चक्रवर्तीके रसोइयेका नाम (इति० २ पृ० २८)

अमृतवती—इक्ष्वाकुवंशी राजा सुकौशलका पुत्र हिरण्यगर्भ उसकी स्त्री राजा हरिकी पुत्री (प० पु० पृ० ४२८)

अमृतवेग—राक्षसवंशी एक राजा। (इ०२पृ०५४)

अमृतस्नान—"ॐ ह्रीं" अमृते अमृतोद्भवे अमृतवर्षिणि अमृतां स्रावय स्रावय सं सं क्लीं २ ब्लूं २ द्रां द्रां द्रीं द्रीं द्रावय२ सं हं झ्वीं क्ष्वीं हंसः स्वाहा" इस मंत्रको पढ़कर जलसे शरीरपर छींटे देवें। (प्रति० अ० २)।

अमृताशीति—योगेन्द्रदेव कृत सं० मुद्रित ग्रन्थ (मा० ग्रं० नं २१)।

अमृताश्रवी ऋद्धि—तपके बलसे साधुओंको यह शक्ति होजाती है कि जिनके हाथपर रक्खा हुआ कैसा भी आहार अमृतमय होजाता है। अथवा जिनके वचन अमृतकी तरह संतोषित करें। (भग० पृ० ६८४)।

अमृषा—सत्य वचन। इसके १० भेद हैं—जनपद, संमत, स्थापना, नाम, रूप, प्रतीति, संभावना, व्यवहार, भाव, उपमा देखो शब्द "अमृत" (मू० गा० ३०८)।

अमेध्य अंतराय (दोष)—साधुका चरण अशुचि वस्तुसे लिप्त होजाय तब भोजन न करें। ३२ अंतरायोंमें दूसरा है। (मू० गा० ४९६)।

अमोघ—(१) नौग्रैवेयिकमेंसे दूसरे ग्रैवेयिकके इन्द्रकका नाम (त्रि० गा० ४६८); (२) रुचक द्विपके रुचक पर्वतके पश्चिम दिशाके पहले कूटका नाम (त्रि० गा० ९५१); (३) चक्रवर्तीका एक अपूर्व बानका नाम (आ० पृ० १३३४); (४) बलदेवके पास एक तीक्ष्ण बाणका नाम (उ० पु० पृ० ४२०)।

अमोघा—नारायणके पासकी एक शक्ति। (ह० पृ० ४८२)।

अमोघ दर्शन—चंदन वनका एक राजा वसुदेवजीके जीवनमें जो तपस्वी होगया था (ह० पृ० ३०४)।

अमोघ मुखी—लक्ष्मण ८वें नारायणके पासकी शक्तिका नाम (उ० पु० पृ० ४३१)।

अमोघवर्ष—देखो शब्द 'अकाल वर्ष' (प्र० जि० पृ० १७)। यह आदिपुराणके कर्ता श्री जिनसेनाचार्यका शिष्य था। यह राष्ट्रकूट वंशका प्रसिद्ध राजा था। इसका नाम नृपतुंगदेव व सार्वदेव भी प्रसिद्ध है। यह बड़ा विद्वान था, संस्कृत व कनड़ीमें अनेक ग्रन्थ बनाए हैं, संस्कृतमें प्रश्नोत्तर रत्नमाला व कनड़ीमें कविराज मार्ग अलंकार ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। यह भी अन्तमें मुनि होगया। हैदराबाद निजाम राज्यका मलखेड़ (प्राचीन नाम मलियाद्री) इसकी राजधानी थी। इसे मान्यखेड़ भी कहते हैं। ईस्वी सन् ८२४ से ८७७ तक राज्य किया। तथा इसको सार्व दुर्लभ, श्रीवल्लभ, लक्ष्मीवल्लभ व वल्लभ स्कन्ध भी कहते थे। यही अमोघवर्ष प्रथम था। अरबके मुसलमानोंने इसकी बड़ी प्रशंसा लिखी है। वे इसे वल्लभराज कहते थे। इसका राज्य दक्षिण व गुजरातमें था। सन् ८१९में व्यापारी सुलेमानने राष्ट्रकूटोंके इस राजाको दुनियाके बड़े राजाओंमें चौथा नम्बर दिया है। अरबोंने राष्ट्रकूटोंके राज्यके सम्बन्धमें लिखा है 'राष्ट्रकूटवंशके राजा बड़े दयालु तथा उदार थे। इस बातके बहुत प्रमाण हैं। इनके राज्यमें मालको जोखम न थी, चोरी या लूटका पता न था। व्यापारकी बड़ी उत्तेजना दीजाती थी। परदेशी लोगोंके साथ बड़े विचार व सन्मानके साथ व्यवहार किया जाता था। राष्ट्रकूटोंका राज्य बहुत विशाल था। घनी वस्ती थी, व्यापारसे भरपूर था व उपजाऊ था। लोग अधिकतर शाकाहारपर रहते थे। चावल, चना, मटर आदि उनका नित्यका भोजन था। सुलेमान लिखता है कि गुजरातके लोग पक्के संयमी थे, मदिरा तथा ताड़ी काममें नहीं लेते थे।" (२) द्वितीय सन् ९१८ में राष्ट्रकूटवंशमें

हुआ। (ब० स्मा० पृ० २, ११७, ११८, १२६, १६१, १७६, १९८, २००, २१४) (विद्वद्रत्नमाला पृ० ७९-८१) श्री जिनसेनाचार्यके शिष्य गुणभद्राचार्यने राजा अमोघवर्षकी प्रशंसामें लिखा है-

"यस्य प्रांशुनखांशुजालविसरद्धारान्तराविर्भव-
त्पादाम्भोजरजः पिशंगमुकुटप्रत्यग्ररत्नद्युतिः ॥
संस्मर्ता स्वममोघवर्षनृपतिः पूतोऽहमद्येत्यलं ।
स श्रीमान् जिनसेनपूज्यभगवत्पादो जगन्मंगलम् ॥"
(उ० पु० पर्व ७७ श्लो० ९)

भावार्थ-महाराजा अमोघवर्ष श्री जिनसेन स्वामीके चरणकमलोंमें मस्तकको रखकर आपको पवित्र मानते थे और उनका सदा स्मरण किया करते थे। प्रश्नोत्तर रत्नमालाके नीचेके श्लोकसे प्रगट है कि यह अमोघवर्ष मुनि होगये थे।

"विवेकात्यक्तराज्येन राज्ञेयं रत्नमालिका ।
रचितामोघवर्षेण सुधियां सदलंकृतिः ॥

अर्थात्-जिसने राज्य छोड़के मुनिपद धारा उस राजा अमोघवर्षने रत्नमाला रची है।

अमोघ विजया-जब रावणने कैलाश उठाया था और पीछे जिनेन्द्रकी भक्ति की थी उससे प्रसन्न हो धरणेन्द्रने जो शक्ति रावणको दी थी उसका नाम (इ० २ पृ० ६९)।

अमोघवृत्ति न्यास-प्रभाचंद्रकृत (सं० १३१६) (दि० जैन नं० १८८)।

अम्ब-आम्रफल, खट्टी छाछ, डालकर बनाया हुआ पदार्थ (अ० मा० ३९ पृ० ४०)।

अम्बद्र-एक ब्राह्मण तापसी, जम्बूद्वीपके भरतमें भावी तीर्थंकर २२वेंके पूर्वभवका नाम (अ० मा० पृ० ४०)।

अम्बदेव-चंदेरीके राठोर राजा खरहत्थसिंह (वि० सं० ११७०) का पुत्र-इसीकी सन्तान चोरड़िया गोत्रवाले कहलाए (शिक्षा० पृ० ६२७)।

अम्बर्णा-भरत चक्रीकी दिग्विजयमें मार्गमें पड़नेवाली एक नदी (इ० १ पृ० ८९)।

अम्बरतिलक-विजयार्द्धकी उत्तर श्रेणीकी उनतीसवीं नगरी (त्रि० गा० ७०९)।

अम्बरीष-(अम्बर्षि)-भट्ठी। नारकियों द्वारा भट्ठीमें पकानेकी क्रिया (अ० भा० पृ० ४१)।

अम्बा-माता, श्री नेमिनाथ तीर्थंकरकी भक्त शासनदेवी (अ० भा० पृ० ४१)।

अम्बाबाई-कोल्हापुरमें अम्बाबाईका मंदिर, यह मूलमें जैन लोगोंका था। भीतर गुम्बजोंपर पद्मासन नग्न जैन मूर्तियां हैं (ब० स्मा० पृ० १९९)।

अम्बालिका-हरिवंशमें राजा धृतराजकी रानी (ह० पृ० ४३०)।

अम्बिका-हरिवंशमें राजा धृतराजकी रानी (ह० पृ० ४३०)।

अम्बिका कल्प-शुभचंद्रकृत (सं० १६८०में)

अम्बिकादेवी-पांचवें नारायण पुरुषसिंहकी माता (ब० इ० २ पृ० ११)।

अम्बुदावर्त-पर्वतका नाम, जहां श्रीकृष्णकी पटरानी सत्यभामाके पूर्वभवके जीव हरिवाहन राजपुत्रने चारण मुनि श्री धर्म और अनन्तवीर्यके पास दिगम्बरी दीक्षा धारण की व संक्लेश परिणामोंसे मरकर सत्यभामा हुआ (हरि० पृ० ५५६)।

अम्भोधि-श्री नेमिनाथके पिता समुद्रविजयके एक भाई अक्षोभ्यका एक पुत्र (ह०पृ० ४५७)।

अयन-तीन ऋतुओंका ६ मासका काल (ह० पृ० १००)।

अयर्णा-भरत चक्रीकी दिग्विजयके मार्गकी नदी (ई० १ पृ० ८९)।

अयशःकीर्ति (अयशः) नाम कर्म-नाम कर्मकी वह प्रकृति जिसके उदयसे अयश फैले। (सर्वा० अ० ८ सू० ११)।

अयाचा- } **अयाचना**- } नहीं मांगना, मुनिके सहनेयोग्य बाईसवीं परीषहोंमेंसे चौदहवीं परीषह। क्षुधा व तृषासे अति पीड़ित होनेपर भी आहारादिका मुखसे व संकेतसे नहीं मांगना। भिक्षा कालमें भी बिजली चमत्कारवत् जाना। मन दरिद्रता रखना (सर्वा० अ० ९ सू० ९)।

अयुत–पांचके घनको दस हजारसे गुणा करनेपर साढ़े बारह लाख (त्रि० गा० ५०४)।

अयोग–मन वचन कायका न चलना, आत्माके प्रदेशोंका सकम्प न होना। कर्म व नोकर्म आकर्षणके लिये जीवकी योग्य शक्तिका न चलना।

अयोग केवली–१४वें गुणस्थानवर्ती।

अयोग केवली गुणस्थान, अयोग गुणस्थान–चौदहवां गुणस्थान, सिद्ध गति प्राप्त करनेसे पहले। इसका काल उतना है जितनी देर अ–इ–उ–ऋ ऌ ये पांच लघु अक्षर बोले जावें। इस दरजेमें अरहंत परमात्माके कोई कर्म या नोकर्मका आस्रव नहीं होता है। पूर्ण १८००० शीलके स्वामीपनेको प्राप्त हैं (गो० जी० गा० ६५)–इस गुणस्थानके अंतमें दो समयोंके भीतर पहले समयमें ७२ कर्मप्रकृति आनेमें १३ कर्मप्रकृतिका क्षयकर सिद्ध हो जाते हैं। फिर कोई कर्म बाकी नहीं रहता है। सिद्धपदमें अचिन्त्य अव्याबाध सुखका आस्वादन करते हैं। (इ० ए० ५०४)।

अयोग चारित्र–वह चारित्र जो १४वें अयोग गुणस्थानमें प्राप्त होता है। यहां योगोंका हलनचलन नहीं होता है। पूर्ण यथाख्यात चारित्र, पूर्ण वीतराग चारित्र। (सर्वा० भा० जयचंद ए० ७०६)।

अयोगिन (अयोगी)–१४ वें गुणस्थानवर्ती केवली।

अयोध्य–जिसमें शत्रुकी सेना प्रवेश न कर सके (अ० भा० ए० १४)।

अयोध्या–(१) तीर्थंकरके समवशरणके दिव्यपुरका एक नाम (इ० ए० ५११), (२) जम्बूद्वीपके विदेहक्षेत्रमें ३२ देशमें ३२ मुख्य नगरियां हैं, जहां चक्रवर्तीकी राजधानी होती हैं उनमें ३१ वीं नगरी (त्रि० गा० ७१५), (३) भरतकी मुख्य नगरी जिसको विनीता भी कहते हैं, जहां इस कालमें श्री रिषभ, अजित, अभिनन्दन, सुमति व अनंत ये पांच तीर्थंकर जन्मे। हुंडावसर्पिणीके कारण यहां अबके पांच ही तीर्थंकर जन्मे वैसे यह नियम है कि सदा ही इसीमें अनादिकालसे तीर्थंकर जन्म धारण करते हैं व धारण करते रहेंगे (पुरु० भाषा ए० ४४०)।

अयोनिज–जो उग न सके ऐसा धान्य।

अयोनि भूत बीज–गेहूं आदि बीजोंमें जब उगनेकी शक्ति नहीं रहती है तब उसे अयोनि भूत बीज कहते हैं। सूखा होनेपर भी जबतक उगनेकी शक्ति रहती है तबतक वह योनिभूत बीज है। (गो० जी० गा० १८७)।

अय्यपारव–जिनेन्द्र कल्याणाभ्युदय सं० ग्रन्थ (सं० १३१९)के रचयिता।

अर–(१) वर्तमान चौवीसीमें १८ वें तीर्थंकर, (२) आगामी १२ वें तीर्थंकर (त्रि० गा० ८७४) (३) वर्तमान ७ वें चक्रवर्ती (त्रि० गा० ८१५), (४) १४ वें कामदेव।

अरक्षा भय–मेरा कोई रक्षक नहीं है ऐसा भय करना। सम्यग्दृष्टीको ७ भय नहीं होते उनमें तीसरा भय।

अरजस्का–विजयार्द्धकी दक्षिण श्रेणीका २० वां नगर (त्रि० गा० ६९८)।

अरजा–विदेहक्षेत्रकी ३२ मुख्य नगरियोंमें २१वीं नगरी (त्रि० गा० ७१४) नन्दीश्वरद्वीपमें दक्षिण दिशाकी एक वापिका (त्रि०गा० ९६९)।

अरंजय–श्री रिषभदेवके समयमें विजयार्द्धके स्वामी विनमि विद्याधरके एक पुत्रका नाम (इ०ए० २९७)।

अरण्य-जंगल; (२) श्री दशरथके पिता, रामचन्द्रके प्रपिता, यह दशरथको राज्य देकर मुनि हुए (ई० २ ए० ८४)।

अरति–वह नोकषाय या अल्प कषाय जिसके उदयसे इन्द्रियोंके विषयोंमें उत्साह न हो। मन न लगे (सर्वा० अ० ८ सू० ९) (२) सातवीं परीषह जिसे साधु जीतते हैं, अरतिके कारणोंके होनेपर भी अरति भाव नहीं लाते (सर्वा० अ० ९ सू० ९)।

अरत्युत्पादक वचन–यह वचन जिसके सुननेसे अरति व विषयोंमें अप्रीति भाव उत्पन्न होजावे (ह० पृ० १४८)।

अरत्री–समवसरणके दिव्यपुरका एक नाम (ह० पृ० ५११)।

अरविन्द–मरुभूत कमठ मंत्रियोंका स्वामी राजा।

अरनाथ–देखो शब्द "अर"।

अरपाक–मदरास प्रांतमें कांजीवरम स्टेशनसे तिरुपारथी कुनरम् होते हुऐ ९ मीलपर एक गाम जहां २००० वर्षका प्राचीन दि० जैन मंदिर है। प्रतिमा ऋषभदेवकी दर्शनीय है। यह प्राचीन स्थान है। बौद्धोंके भी मंदिर हैं (या० द० पृ० २०७)।

अरस भोजन–स्वाद न लेकर भोजन करना, घी, तेल, दूध, दही, मीठा, निमक इन छः रसोंको त्याग कर भोजन करना (भग० पृ० ८८)।

अरहदास सेठ–अंतिमकेवली श्रीजंबूकुमारके पिता।

अरहन्त–पूजने योग्य, अर्ह धातु पूजामें है–तथा अ से प्रयोजन अरि–शत्रु मोहनी कर्म और अंतराय कर्म, र से मतलब रज अर्थात ज्ञानावरण और दर्शनावरण उसको हन्त–नाश करनेवाले इस तरह अरहन्तसे मतलब हुआ कि चार घातियाकर्मोंको नाश करनेवाले (मू. गा. ५०५)।

अरहंतदेव–
अरहंतपद–
अरहंत परमेष्ठी– } जो साधु चार घातिया कर्मोंका नाश कर केवलज्ञान, केवलदर्शन, क्षायिक सम्यक्त, क्षायिक चारित्र, अनन्तबल, अनन्तवीर्य तथा अनंतसुख प्राप्त करके अरहंतपदमें होजाते हैं वे ही अरहंतदेव या अरहंत परमेष्ठी कहलाते हैं। वे शरीर सहित होते हैं इसलिये आर्यखंडमें विहार करके धर्मोपदेश देते हैं। तीर्थंकर अरहंतके समवसरण होता है, साधारण अरहंतके गंधकुटी होती है। जैन लोग अरहंतपदको आत्मशुद्धिके लिये पूजते हैं।

अरहंत पासाकेवली–पंडित विनोदीलाल कृत सं०में व पं० वृन्दावन (सं० १९०५) अग्रवाल कृत छन्दमें (दि० जै० १२९–१३१)।

अरहन्त प्रतिमा–अरहंत परमेष्ठीकी ध्यानमय प्रतिमा या मूर्ति धातु या पाषाणकी–इस प्रतिमामें छत्र, चमर, सिंहासन, भामण्डलादि प्रातिहार्य भी साथ बने होते हैं। जिनमें यह प्रातिहार्य न हों वह सिद्धकी प्रतिमा है (जयसेन प्रतिष्ठापाठ श्लोक १८०–१८१)।

अरहन्त भक्ति–अरहंत परमेष्ठीकी भक्ति, भाव विशुद्ध करके करना। पूजा व स्तवन करना। यह १६ कारण भावनामें १० वीं भावना है (सर्वा० अ० ६ सू० २४)।

अरहंत मूर्ति–देखो "अरहंत प्रतिमा।"

अरहन्त सिद्ध–छः अक्षरी मंत्र, इसका जप किया जाता है।

अरि–शत्रु, रामलक्ष्मणादि बाणविद्याके गुरु (इ० २ पृ० ८७)।

अरिंजय–विजयार्द्धकी दक्षिण श्रेणीकी १२ वीं नगरी (त्रि० गा० ६९७)।

(२) अरहनाथ भगवानके तीर्थकालमें परशुरामके पिता जमदग्निकी स्त्री रेणुपतीके बड़े भाई मुनि (इ० २ पृ० २९)।

(३) श्री शांतिनाथ तीर्थंकरका जीव पूर्वभवमें राजा श्रीषेण था। इसने अरिंजय मुनिको आहार दान दिया था (सा० अ० २ श्लोक ७०)।

(४) नेमनाथस्वामीके पूर्वभवमें एक राजा (उ० अ० ३४ श्लोक १८)।

(५) भरतचक्रीके सेनापति जयकुमारके रथका नाम (आ० पर्व ४४ श्लोक ३२०)। (६) भरतचक्रीका पुत्र जिन्होंने जयकुमारके साथ दीक्षा ली। (आ० प० ४७ श्लो० २८१)।

अरिन्दम–भरतचक्रीका पुत्र जिसने जयकुमारके साथ दीक्षा ली (आ० प० ४७ पृ० २८१) (२) मुनि जिनके पास राजा अर्चिमालीने दीक्षा ली। वसुदेवके समयमें (हरि० पृ० २२२) (३) श्री रिषभदेवके समयमें विजयार्द्धका स्वामी विद्याधर विनमिके एक पुत्रका नाम (ह० पृ० २५०) (४)

श्री अजितनाथ तीर्थंकर और सुपार्श्वनाथ तीर्थंकरके पूर्वजन्मके गुरु जिनके पास दीक्षा ली। (ह० पु० ६६९)।

अरिमर्दन–रावणके राक्षसवंशी पुराने राजाओंमेंसे एक (ई० २ पु० ५४)।

अरिष्ट–पाप, (२) पांचवे स्वर्गमें लौकांतिक देवोंके दक्षिण दिशाका विमान (सर्वा० अ० ४ सु० २५ (३) केतु ग्रह जो सूर्यके विमानके नीचे गमन करता है व छः मासमें एक दफे उसे आच्छादन करता है तब ग्रहण पड़ता है (त्रि० गा० ३३९) (४) ब्रह्मब्रह्मोत्तर स्वर्गोंमें पहला इन्द्रक विमान (त्रि० गा० ४६७) (५) अरिष्ट संज्ञाधारक लौकांतिक देवोंके दक्षिणके विमानोंके देव ११०११ हैं। इनकी आयु नौ सागरकी होती है (त्रि०गा० ५३६–५४०)। (६) रुचकवर पर्वतका एक कूट (ह० पु० ८९)

अरिष्टनेमि–२२वें तीर्थंकर राजा समुद्रविजयके पुत्र (ह० पु० ४९६), (२) हरिवंशमें पुराने तक राजाका नाम (ह० पु० १९४), (३) धर्मतीर्थंकरके मुख्य गणधर (ह० पु० ६७६)।

अरिष्टनेमिपुराण–मुद्रित है।

अरिष्टपुर–एक नगरी, जिसके राजा रोचनकी कन्या रोहिणीको वसुदेवजीने विवाहा (ह.पु.३१२)

अरिष्टपुरी–विदेह देशकी ३२ मुख्य नगरीमेंसे चौथी नगरी (त्रि० गा० ७१२)।

अरिष्टयसा–इन्द्रकी अनीक जातिकी गंधर्वसेनाका अधिकारी पुरुषवेदी महत्तरदेव (त्रि.गा.४९६)

अरिष्टसेन–धर्मनाथ १५ वें वर्तमान तीर्थंकरके मुख्य गणधर (ह० पु० ५७६), (२) भरतक्षेत्रमें आगामी होनेवाले १२वें चक्रवर्ती (त्रि.गा. ८७८)

अरिष्टा–पांचवें नर्कका नाम (त्रि०गा० १४५), (२) विदेहकी ३२ मुख्य नगरीमें तीसरीका नाम (त्रि० गा० ७१२)।

अरिसंत्रास–राक्षस वंशके एक राजा (इ० २ पु० ५४)।

अरिहन्त–देखो शब्द "अरहंत"। आत्माके स्वभावके शत्रु चार घातिया कर्म हैं उनको नाश करनेवाले।

अरुण–(१) लौकांतिक देवोंमें पंचम स्वर्गके दक्षिण दिशाके विमान (सर्वा० अ० ४–२५), (२) सौधर्म ऐशान स्वर्गोंका छठा इन्द्रक (त्रि० गा० ४६४), (३) अरुण विमानोंमें लौकांतिकदेव ७००७ हैं (त्रि० गा० ५३५), (४) अरुणवरद्वीपका स्वामी व्यंतरदेव (त्रि० गा० ९६४), (५) अरुण महाद्वीप व समुद्र नौमा।

अरुणप्रभ–अरुणवरद्वीपका स्वामी व्यन्तरदेव (त्रि० गा० ९६९)।

अरुणमणि–अजितपुराणके कर्ता एक पण्डित (दि० ग्रं० नं० २०)।

अरुणवर–नौमा महाद्वीप व महासमुद्र (त्रि० गा० ३०४)।

अरुणाभासवर–दसवां महाद्वीप व समुद्र (त्रि० गा० ३०४)।

अरुणी–विजयार्द्धकी उत्तर श्रेणीमें द्वितीय नगरी (त्रि० गा० ७०२)।

अरुन–भरत चक्रीकी दिग्विजयमें मार्गकी एक नदी (इ० १ पु० ८८)।

अरूपा–रूपरहित।

अर्क–सूर्य।

अर्ककीर्ति–भरत चक्रवर्तीके पुत्र जिसने सुलोचनाके लिये जयकुमारसे युद्ध किया। (इति० १ पु० ७२) (२) राष्ट्रकूटवंशी राजा प्रभुतवर्ष द्वि०ने विजयकीर्तिके शिष्य अर्ककीर्ति मुनिको शिलाग्रामके जिन मंदिरके लिये साका ७३५ में पांच ग्राम दिये (विद्व० पु० ४२)।

अर्ककुमार–(भानुकुमार) कृष्णका तीसरा पुत्र।

अर्कचूड़–राक्षसवंशी प्रसिद्ध राजा (इ० २ पु० ५२)

अर्कजटी–विद्याधर जिसके पुत्र रत्नजटीने रावणसे सीता छुड़ानेका प्रयत्न किया।

अर्कप्रभ—विद्याधर राजा रश्मिवेग मुनि होकर कापिष्ठ स्वर्गमें अर्कप्रभ नामका देव हुआ। (इ० २ पृ० २९९)

अर्करक्ष—भानुरक्ष—राक्षस वंशका एक राजा। (इ० २ पृ० ९३)।

अर्कराज—श्री धर्मनाथ तीर्थंकरके पिता।

अर्कवंश—सूर्यवंश, जिसमें ऋषभदेव आदि हुए।

अर्घ—आठ द्रव्य—जल, चंदन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप, फल इनको मिलाकर चढ़ाना।

अर्चन—(अर्चा) पूजा करना, श्रीजिनेन्द्रकी पूजा जल चंदनादि आठ द्रव्यसे की जाती है। पूजाके छः भेद हैं—(१) नामपूजा—जिनेन्द्र भगवानका नाम लेकर पूजना। (२) स्थापना पूजा—मूर्तिमें जिनेन्द्रकी स्थापना करके मूर्तिद्वारा पूजना (३) द्रव्यपूजा—श्री अरहंत भगवानके शरीरकी व शरीर सहित आत्माकी पूजा करना। (४) क्षेत्रपूजा—जहां जहां गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान व निर्वाणकल्याणक हों वहां जाकर उन पवित्र क्षेत्रोंकी पूजा करना। (५) कालपूजा—जिन तिथियोंमें व समयोंमें तीर्थंकरोंके कल्याणक हुए हों व अन्य नंदीश्वर दशलाक्षणी आदि पर्वके दिनोंमें पूजन करना सो कालपूजा है। (६) भावपूजा—गुणोंका स्मरण करना। (धर्म स० श्रा० पृ० २२७–२३१)।

अर्चि—प्रथम अनुदिश प्रमाण; किरण, अग्निका फुलगारा (अ० भा० पृ० ८६)।

अर्चिमालिनी—नौ अनुदिश विमानोंमें दूसरा विमान। वे ९ हैं। १—अर्च, २—अर्चिमालिनी, ३—वैर, ४—वैरोचन, ये चार दिशाके हैं—सोम, सोमरूप, अंक, स्फाटिक ये चार विदिशाके हैं। आदित्य—यह इंद्रक विमान है (त्रि० गा० ४५६)।

अर्चिमाली—(१) वसुदेव कुमारको कुंजरावर्त नामके विजयार्द्धके नगरमें ले जानेवाला विद्याधर (ह० पृ० २२१), (२) किन्नरोद्गीत नगरका स्वामी राजा अर्चिमाली विद्याधर, वसुदेवको विवाहनेवाले श्यामाके पिता अशनिवेगके पिता (हरि० पृ० २२१)।

अर्चिष्मान—भरतेशका एक पुत्र (इ.पृ.४७६)

अर्जिका—आर्या श्राविका, ११ प्रतिमाधारी जो एक पीछी व कमंडलव एक सारी सफेद रखती है। भिक्षासे हाथमें बैठकर भोजन करती है, केश-लोंच करती है (श्रा० पृ० २५१)।

अर्जुन—(१) बहु बीजक वृक्षविशेष, इसकी छाल सफेद होती है उनमेंसे दूध निकलता है, पत्ते अनीदार, लम्बे और गोल होते हैं। (२) एक जातिका घास, (३) सफेद रंग, (४) सफेद सोना, (५) राजा पांडुका तीसरा पुत्र, (६) (अ० भा० पृ० ११४)।

अर्जुनदेव—मालवाकी धारा नगरीमें पं० आशाधरके समकालीन (वि० सं० १२४९) पण्डित (विद्व० पृ० ९४), (२) अनहिलवाड़ा पाटन गुजरातका वाघेलवंशी राजा नं० ९ (१२६२–१२७४) (ब० स्मा० पृ० २१२)।

अर्जुनप्रभ—श्रीरामके भाई लक्ष्मण नारायणका एक पुत्र (इ० २ पृ० १३७)।

अर्जुनवर्मा—राजा भोज मालवाकी परम्परामें ८ वां राजा (वि० सं० १२६७) (विद्व० पृ० ९९)।

अर्जुनी—विजयार्द्धकी उत्तर श्रेणीकी प्रथम नगरी (त्रि० गा० ७०१)।

अर्णराज—अनहिलवाड़ा पाटन गुजरातका वाघेलवंशी दूसरा राजा (सन् ११७०–१२००) (ब० स्मा० पृ० २११)।

अर्थ—प्रयोजन, धन, [illegible] [illegible], यथार्थ, निवृत्ति पदार्थ जो निश्चय किया जाय। अग्रायणी पूर्वका आठवां वस्तु अधिकार (द० पृ० १४७)।

अर्थ अवग्रह—व्यक्त पदार्थका ग्रहण। मतिज्ञान दर्शन पूर्वक होता है। इन्द्रिय व पदार्थका सम्बन्ध सो दर्शन है। उसके पीछे जो ऐसा ज्ञान ग्रहण हो कि जिससे हम पदार्थका निश्चय कर सकें वह अर्थ अवग्रह है। जहां ऐसा अस्पष्ट ग्रहण हो कि यह क्या पदार्थ है ऐसा न [illegible] [illegible] [illegible] अव-

ग्रह हैं। अर्थ अवग्रहके २८८ भेद होते हैं। (देखो प्र० जि० पृ० २२९ "अट्ठाइस मतिज्ञान भेद")

अर्थ कथा—धनादि सम्बन्धी दूसरी विकथा २५ विकथा होती हैं। १—स्त्रीकथा, २—अर्थकथा, ३—भोजन कथा, ४—राज कथा, ५—चोर कथा, ६—वैरकथा, ७—पर पाखंड कथा, ८—देश कथा, ९—भाषा कथा (कहानी आदि) १०—गुणबंध कथा (गुणको रोकनेवाली), ११—देवी कथा, १२—निष्ठुर कथा, १३—परपैशून्य कथा (चुगली), १४—कंदर्प कथा (कामभोगकी), १५—देशकालानुचित कथा, १६—भंड कथा, १७—मूर्ख कथा, १८—आत्मप्रशंसा कथा, १९—परपरिवाद कथा (पर निंदा), २०—परजुगुप्सा कथा, २१—परक्रीड़ा कथा, २२—कलह कथा, २३—परिग्रह कथा, २४—कृष्यारंभ कथा, २५—संगीतवादित्रादि कथा । (गो० जी० गा० ४४)

अर्थ गुणपर्याय—प्रदेशत्वगुणके सिवाय अन्य समस्त गुणोंका विकार या उनकी अवस्था या परिणति विशेष। इसके दो भेद हैं। (१) स्वभाव अर्थ पर्याय—जो कर्मके उदय विना स्वभावसे हो, जैसे जीवकी केवलज्ञानपर्याय। (२) विभाव अर्थ पर्याय—जो कर्मके निमित्तसे हो, जैसे जीवके रागद्वेषादि भाव (जैन सि० प्र० नं० १५४—१५५) ।

प्रदेशत्व गुणके विकारको वा आकार पलटनेको व्यंजन पर्याय कहते हैं—जीव और पुद्गल दो द्रव्योंमें अर्थ पर्याय और व्यंजन पर्याय दोनों होती हैं, जब कि धर्म, अधर्म आकाश व कालमें मात्र स्वभाव अर्थ पर्याय ही होती हैं। (आ० प० पृ० १५६) ।

अर्थ दर्शन—वह सम्यग्दर्शन जो वचनोंके विस्तार सुने विना अर्थके समझनेसे पैदा हो। (सर्वा० भाषा० जयचंद अ० ३ पृ० ३६) ।

अर्थ दर्शनवान् आर्य—वह सम्यग्दृष्टी आर्य जीव जिसको वचनोंके विस्तारको सुने विना अर्थके समझनेसे सम्यक्त हो। (सर्वा० भा० जयचंद अ० ३ सू० ३६) ।

अर्थनय—जो नय अर्थ अर्थात् वस्तुकी प्रधानताको लेकर प्रवर्तती है। इसीके चार भेद हैं—नैगम नय, संग्रह नय, व्यवहार नय और ऋजु सूत्र नय। (जै० सि० द० पृ० १०)

अर्थनिमित्त विनय—अपने प्रयोजनके लिये हाथ जोड़ना। विनय पांच प्रकार है। १—लोकानुवृत्ति विनय—आसनसे उठना, हाथ जोड़ना, आसन देना, स्वागत करना, सामर्थ्यके अनुसार देवता पूजा करना, किसी पुरुषके वचनके अनुकूल बोलना, उसके अभिप्रायके अनुकूल बोलना, देश व काल योग्य द्रव्य देना। २—अर्थविनय—अपने प्रयोजनके लिये विनय करना, ३ कामतंत्र—कामपुरुषार्थके निमित्त विनय करना, ४ भयविनय—भयसे विनय करना, ५ मोक्ष विनय—सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र तप व व्यवहार या उपचार विनय करना (मू० गा० ५८०—५८४) ।

अर्थपद—जिन अक्षरोंके समूहसे किसी विशेष अर्थको जाना जावे। जैसे कहा—अग्निको लाओ यह अर्थपद है। पद तीन प्रकार हैं। १—अर्थपद, २—प्रमाण पद—जिस पदमें अक्षरोंकी संख्या नियत हो जैसे अनुष्टुप छन्दमें चार पद, हरएक आठ अक्षरके होते हैं। ३—मध्यमपद—१६३४,८३,०७,८८८ अपुनरुक्त अक्षरोंका समूह (गो०जी० गा० ३३६)

अर्थपर्याय—देखो " अर्थगुणपर्याय " ।

अर्थपर्याय नैगमनय—जो नय अर्थपर्यायका संकल्प करे। जैसे कहना कि प्राणीके सुखसंवेदन है वह क्षणध्वंसी है। यहां सुखका वेदना अर्थपर्याय है सो विशेष्य है। क्षणध्वंसी ऐसा जो सत्ताका अर्थपर्याय है सो विशेषण है। (सर्वा० जग० पृ० ४९७ अ० १)

अर्थ प्रकाश—नंदिसंघके प्रभाचंद्र (वि० सं० ४५३) कृत।

अर्थ प्रकाशिका—पं० सदासुखजी जयपुर नि० कृत तत्वार्थसूत्रकी भाषाटीका पढ़ने योग्य मुद्रित है।

अर्थ व्यंजन पर्याय नैगमनय—जो नय अर्थ

पर्याय सहित व्यंजन पर्यायका संकल्प करे। जैसे कहना कि धर्मात्मामें सुख जीवीपना है। यहां सुख तो अर्थ पर्याय है जीवित रहना व्यंजन पर्याय है, पहला विशेषण है दूसरा विशेष्य है (सर्वा० अ० ० पृ० ४९८)।

अर्थ शब्दाचार–उभयाचार, शब्द और अर्थ दोनोंकी शुद्धता करनी। सम्यग्ज्ञानके ८ अंगोंमें तीसरा अंक (श्रा० पृ० ७२)।

अर्थशास्त्र–वह शास्त्र जिसमें धनकी प्राप्तिके उपायोंका वर्णन हो।

अर्थशुद्धि–शब्दोंका अर्थ शुद्ध करना–सम्यग्ज्ञानका दूसरा अंग (ह० पृ० ६१२)।

अर्थ समग्रह–देखो "अर्थ शुद्धि"

अर्थ सम्यक्त–देखो "अर्थ दर्शन"

अर्थ संक्रान्ति–एक पदार्थसे दूसरे पदार्थपर बदल जाना। शुक्लध्यानमें अबुद्धि पूर्वक उपयोग एक पदार्थसे दूसरे पदार्थपर जाता है। जैसे आत्मा छोड़के उसके भिन्न२ गुणोंकी तरफ पलट जाना। जैसे सुख, ज्ञान, चारित्र आदिपर व उसकी भिन्न२ पर्यायोंपर चल जाना (सर्वा० अ० ९ सु० ४४)।

अर्थसंदृष्टि–अनेक प्रकार संकेत जिनसे किसी पदार्थका स्वरूप प्रगट किया जाय। अंकसंदृष्टिमें १–२–३ आदि अंकोंके संकेतसे बताया जाता है। जहां वास्तविक दाष्टांतरूप भाव प्रगट किया जाय वह वर्णन अर्थसंदृष्टि है या अंकके सिवाय अन्य प्रकारका समझाना अर्थसंदृष्टि है। देखो शब्द "अंकसंदृष्टि" (प्र० जि० पृ० ११३) (गो० क० गाथा गा० २२९)।

अर्थसिद्धा–वर्तमान चौथे तीर्थंकर अभिनन्दनकी पालकीका नाम, जिसपर चढ़कर योग धारनेको वनमें गए (ह० पृ० ५६८)।

अर्थाक्षर श्रुतज्ञान–देखो "अक्षरज्ञान" (प्र० जि० पृ० ४०)–वह श्रुतज्ञान जो संपूर्ण श्रुतज्ञानका संख्यातवां भाग मात्र है। अर्थात् भाव श्रुतज्ञान रूप एक अक्षरसे होनेवाला ज्ञान (गो० जी० गा० ३३३), (२) द्रव्य श्रुतज्ञानके १८ भेद हैं उनमें पहला भेद। अक्ष-कर्ण इंद्रियको कहते हैं उसको जो ज्ञान द्वारकरि अपना स्वरूप दे सो अक्षर है। "अक्षाय ददाति ददाति स्वम् अर्पयति इति अक्षरं" ऐसे कुल द्रव्य श्रुतज्ञानके अपुनरुक्त अक्षर एक कम एक दृष्टि प्रमाण है (गो० जी० गा० ३४९)।

अर्थाचार–शब्दके यथार्थ अर्थको समझना। यह सम्यग्ज्ञानका दूसरा अंग है (श्रा० ७२)।

अर्थानुशासन–देव संघके विनयकुमारस्वामी कृत (दि० जैन नं० २०६)।

अर्थापत्ति–मान लेना कि ऐसा ही होगा। मीमांसक पृथक् प्रमाण मानते हैं।

अर्थावग्रह–देखो शब्द "अर्थ अवग्रह" (गो० जी० गा० ३०७)।

अर्थोद्भव सम्यग्दर्शन–देखो "अर्थदर्शन"।

अर्थोपसम्पत्–सूत्रोंके अर्थके लिये यत्न करना (मू० गा० १४४)।

अर्द्ध कथानक–पंडित बनारसीदास (सम्वत् १६९३) कृत।

अर्द्ध कल्की (उपकल्की)–श्री महावीरस्वामीके पीछे पंचमकालमें एक २ हजार वर्ष पीछे एक एक कल्की राजा होता है। उसके मध्यमें ५०० वर्ष पीछे एक एक उपकल्की या अर्द्धकल्की होता है। ये राजा जैनधर्मके नाशक व विरोधक होते हैं (त्रि० गा० ८५७)।

अर्द्ध चक्री (चक्रवर्ती)–नारायण यह एक पद है जो भरतक्षेत्रके ६ खण्डोंमेंसे दक्षिण तरफके ३ खण्डोंके स्वामी होते हैं। इस अवसर्पिणी कालके चौथे दुखमा सुखमा कालमें ९ नारायण होगए हैं। १ त्रिपृष्ट, २ द्विपृष्ट, ३ स्वयंभू, ४ पुरुषोत्तम, ५ पुरुषसिंह, ६ पुरुष पुण्डरीक, ७ पुरुषदत्त, ८ लक्ष्मण, ९ कृष्ण–ये सब मोक्षगामी होते हैं। किसी अन्य भवसे आगामी मोक्ष जानेवाले होते हैं। जैसे त्रिपृष्ट नारायणका जीव श्री महावीरस्वामी होकर

मोक्ष गया। यह नारायण १६००० राजाओंका स्वामी होता है। प्रतिनारायण भी अर्द्धचक्री होते हैं, वे पहले तीन खण्डका साधनकर स्वामी होते हैं। उनहीका घात कर नारायण राज्य लेते हैं। ये भी नौ हुए हैं। ये भी आगामी मोक्ष जांयगे। जो ९ इस कालमें हुए हैं वे हैं—१ अश्वग्रीव, २ तारक, ३ मेरक, ४ निशुम्भ, ५ मधुकैटभ, ६ वलि, ७ प्रहरण, ८ रावण, ९ जरासंघ (त्रि०गा० ८२५—८२०, ६८५)।

अर्द्धचन्द्र—रावणसे युद्ध करते हुए रामचंद्रकी सेनाका एक प्रसिद्ध योद्धा (इ० २ पृ० १२२)।

अर्धचंद्राकार तिलक—अर्ध चंद्रके आकार तिलक करना। जैनमतमें गृहस्थके छः प्रकार तिलक हैं—

१—अर्ध चंद्राकार, २—छत्रत्रयके आकार, ३—मानस्तंभके आकार, ४—सिंहासनके आकार, ५—धर्मचक्रके आकार, ६—व धर्मचक्रसे छोटा आकार। अर्ध चंद्राकार पांडुक शिलाका संकल्प है। इनमेंसे अर्ध चंद्राकार व छत्रत्रय क्षत्रियोंके लिये, ब्राह्मणोंके लिये छत्र, मानस्तंभ और सिंहासन, वैश्योंके लिये छत्र और मानस्तंभ व सत् शूद्रोंको चक्रके आकार तिलक करना चाहिये (च० स० नं० १३४)।

अर्द्धच्छेद—जिस संख्याको आधा करते हुए अंतमें एक रह जाय। अथवा जितनीवार २ लिखनेसे वह संख्या आजावे उतने अर्द्धच्छेद होते हैं। जैसे २×२×२×२=१६ इस तरह ४ अर्द्धच्छेद हुए। तव जितनी वार ऐसा आधा आधा किया उतने अर्द्धच्छेद उस संख्यामें होते हैं जैसे १६के अर्द्धच्छेद चार होंगे। १६ के आधे ८, ८ के आधे ४, ४ के आधे, २, २ के आधे १ (त्रि० गा० ६७)।

अर्द्धनाराच संहनन—वह कर्म जिसके उदयसे हाडोंकी संधि अर्द्धकीलित हो। पूरी कीलित न हो (जै० सि० प्र० २९५)।

अर्द्धनेमि—कनडी नेमिनाथ पुराणका नाम जिसको वीर बल्लाल नरेश (सन् ११७१—१२१९) के मंत्री पद्मनाभकी प्रेरणासे प्रसिद्ध कवि नेमीचंद्रने रचा। (क० नं० ३७)।

अर्द्ध पद्मासन या अर्द्ध पर्यंकासन—जहां दाहने पावको जांघके ऊपर और बाएँ पगको जांघके नीचे रक्खा जाय, सीधा नाशाग्र बाएं हाथपर दाहना हाथ रखकर बैठा जाय। यह ध्यानका एक आसन है (श्रा० पृ० १४९)।

अर्द्धपुद्गल परावर्तनकाल या परिवर्तनकाल—संसारमें भ्रमण पांच तरहसे होता है। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव तथा भाव। जितना काल एक द्रव्य अर्थात् पुद्गल द्वारा भ्रमणमें लगता है उसका आधा काल। द्रव्य परिवर्तन दो प्रकारका है। १-नोकर्म द्रव्य परिवर्तन, २—कर्म द्रव्य परिवर्तन—औदारिक, वैक्रियिक, आहारक तीन शरीर और आहारादि छः पर्याप्तिके योग्य जो पुद्गलोंके स्कंध एक जीवने किसी एक समयमें ग्रहण किये उनमें जैसा स्निग्ध रूक्ष वर्ण गंध आदि तीव्र मंद मध्यम भाव हैं व वे जितने हैं उनको ध्यानमें रखले, ये ही पुद्गल दूसरे आदि समयोंमें खिरते जांयगे वही जीव दूसरे आदि समयोंमें अग्रहीत जो पहले समयमें नहीं ग्रहण किये थे उनको अनन्तवार ग्रहण करे फिर अनन्तवार मिश्रको ग्रहण करे। अर्थात् अग्रहीतके साथ ग्रहीतमेंसे झड़े हुए इन दोनोंको मिला हुआ ग्रहण करे, इनके मध्यमें अनन्तवार, अनन्तवार ग्रहीतको भी ग्रहण करे, इस तरह करते करते जब ऐसा समय आवे कि पहले समयमें जसे स्पर्श, रस, गंध, वर्णवाले पुद्गल ग्रहण किये थे व जितनी उनकी संख्या थी उतनी संख्यावाले व वैसे ही पुद्गल ग्रहण करे तबतक जो काल बीते वह नोकर्म द्रव्य परिवर्तनका काल है। किसी एक समयमें किसी जीवने आठ प्रकार कर्म बन्ध योग्य पुद्गल कर्म ग्रहण किये वे एक समय एक आवली बाद झड़ने लगे। यहां भी पहले विधान कर अग्रहीत, ग्रहीत, मिश्र अनन्तवार ग्रहण करते करते जब ऐसा समय आवे कि पहले समयमें जैसे स्पर्श, रस, गन्ध, वर्णवाले कर्म

पुद्गल ग्रहण किये थे व जितनी उनकी संख्या थी उतनी संख्यावाले व वैसे ही कर्म पुद्गल ग्रहण करे तबतक जो काल बीते सो कर्म द्रव्य परिवर्तन काल है। नोकर्म और कर्म परिवर्तनका जोड़रूप काल एक द्रव्य या पुद्गल परिवर्तनका है। (सर्वा०अ० २ सू० १०) जिस जीवको इस अर्द्ध पुद्गल परिवर्तन कालसे अधिक काल मोक्ष नहीं होना है उसको सम्यग्दर्शनका लाभ नहीं होता है। सम्यक्ती जीव इतने कालसे अधिक संसार अवस्थामें नहीं रह सक्ता है।

अर्द्ध मंडलीक–दो हजार राजाओंका स्वामी (त्रि० गा० ६८५) देखो शब्द "अधिराज"।

अर्द्ध मागधिभाषा–भगवान तीर्थंकरकी दिव्य-ध्वनि, देवकृत एक अतिशय देखो "अतिशय"।

अर्द्धमिथ्यात्व–सम्यक् मिथ्यात्व-सम्यग्दर्शन और मिथ्यादर्शनका मिला हुआ भाव।

अर्द्धरथी–युद्धकी सेनाके अधिपति। समस्त योद्धाओंमें जो मुख्य होते हैं उनको अतिरथी कहते हैं। उनके नीचे जो मुख्य होते हैं उनको महारथी। उनके नीचे जो मुख्य होते हैं उनको समरथी। उनके नीचे जो मुख्य होते हैं उनको अर्द्धरथी। उनके नीचे जो मुख्य होते हैं उनको रथी कहते हैं। जरासंधसे लड़ते हुए श्रीकृष्णकी सेनामें कृष्णजी, बलदेव व रथनेमि अतिरथी थे। राजा समुद्रविजय, वसुदेव, युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन आदि महारथी थे। शंबुकुमारादि समरथी थे, विराट्, भानु आदि अर्धरथी थे, इनके अतिरिक्त सब राजा रथी थे (ह० पृ० ४६८–४६९)।

अर्द्ध स्थंभ–ऊर्द्ध लोकके आकारको मध्यमें छेद कर बीचका एक राजू उसका आधा आधा राजू दोनों तरफ रखना तथा दोनों तरफके बाकी क्षेत्रको तहां ऊपर व नीचेके क्षेत्रको उलटा सुलटा रखके, चौकोर क्षेत्र होय सो मध्यमें रखिये, वह अर्द्ध स्तम्भ क्षेत्र है। (त्रि० गा० ११८)

अर्द्धेन्द्रा–पांचवें नर्ककी पृथ्वीका चौथा इन्द्रक-बिल (त्रि० गो० १५८)

अर्पाक्कम्–देखो 'अरपाक' अतिशयक्षेत्र मदरास।

अर्पित–मुख्य, प्रधान, एक पदार्थमें कई स्वभाव हों उनमेंसे एकको मुख्य अर्थात् अर्पित करते हैं तब दूसरेको अनर्पित अर्थात् गौण करते हैं। जैसे एक मानव पिता व पुत्र दोनों रूप है। जब उसका पितापना वर्णन करेंगे तब पितापना मुख्य होजायगा और पुत्रपना गौण रहेगा। यह सूत्र श्री उमास्वामी महाराजका है–"अर्पितानर्पितसिद्धेः" सू० ३२।अ० ५ इससे प्रगट है कि विक्रम सं० ८१में जब पट्टावलीके अनुसार श्री उमास्वामी हुए हैं तब स्याद्वादका सिद्धांत माना जाता था। इस सूत्रसे ही प्रगट झलक रहा है। जैन सिद्धांत रिषभदेवके समयमें भी प्रतिपादन होता था। तब भी स्याद्वाद होना चाहिये। अन्यथा वस्तुका अनेकांत स्वरूप कथन नहीं किया जासक्ता (देखो सर्वा०)।

अर्यमा–१० वें नक्षत्रका अधिदेवता (त्रि० गा० ४३४)

अर्ह–भगवती आराधना ग्रन्थमें सविचार भक्त प्रत्याख्यानके ४० अधिकार हैं उनमें पहला अधिकार अर्ह है। जिसमें यह बताया है कि भक्तप्रत्याख्यान समाधिमरणके योग्य कौनसा साधु होता योग्य है। जो साधु असाध्य रोगसे पीड़ित हो, जरा ग्रसित हो, जिससे संयम न पल सके; देव, मनुष्य, पशु व अचेतन कृत उपसर्ग पड़े, दुर्भिक्ष आन पड़े, वनमें मार्ग भूल जाय, नेत्र जिसका दुर्बल हो, ईर्यापथ शुद्धि न कर सके, कर्णसे सुन न सके, जंघा बल-रहित हो खड़ा आहार न ले सके; इत्यादि कारणोंसे साधु या देशव्रती श्रावक व अविरत सम्यक्त्वी समाधिमरण करें। इस मरणमें [illegible] भोजनका क्रमशः त्याग किया जाता है। (भ० पृ० २४–२६)

अर्हद्गुण सम्पत्ति व्रत–जिनगुण सम्पत्ति व्रत (जा० पृ० १४३)। इस व्रतकी विधि यह है कि

इसमें त्रेसठ उपवास व त्रेसठ पारणा करे। १२६ दिनमें यह तप होता है, इसका फल तीर्थंकरपद है। ६३ उपवासका विवरण यह है कि गर्भादि पंचकल्याणकोंके ५, चौतीस अतिशयोंकी अपेक्षा ३४, ८ प्रातिहार्योंकी अपेक्षा ८, १६ कारणकी अपेक्षा १६, कुल मिलके ६३ हुए (ह० पृ० ३६०)।

अर्हत—अरहंत, सयोग व अयोग केवली परमात्मा, पूजने योग्य। देखो शब्द "अरहंत"।

अर्हत पासाकेवली—देखो शब्द "अरहंत पासा केवली"।

अर्हत पूजा—श्री अरहंत भगवानकी भक्ति करना, देखो शब्द "अर्चन"।

अर्हत् प्रचार—वल्लभी वंशसे शासित वलेह या वल्लभी नगरमें जो भावनगरसे पश्चिम २० मील है व सत्रुंजय पर्वतसे उत्तर २५ मील है, वहांका हाल चीन यात्री हुईनिसांगने (सन् ६४०में) लिखा है कि वहां १००से ऊपर करोड़पति थे। यहां साधुओंके ६००० आश्रम थे। यहां क्षत्री राजा ध्रुवपद राज्य करता था जो मालवाके शिलादित्यका भतीजा था। इसने बौद्धोंके लिये "अर्हत प्रचार" नामका मठ बनवा दिया था। वहां बौद्ध साधु गुणमति तथा स्थिरमति रहते थे, जिन्होंने अनेक शास्त्र बनाए। (ब० स्मा० पृ० १८९)।

अर्हत् प्रवचन—प्रभाचन्द्र आचार्य विरचित संस्कृत सूत्र पांच अध्यायमें मुद्रित (माणिक० ग्रं० नं० २१ पृ० ११४)।

अर्हत भक्ति—अर्हद्भक्ति–१६ कारण भावनामें १० वीं भावना–श्री अर्हंतके गुणोंका स्मरण व पूजन व स्तवन भाव शुद्धिपूर्वक करना (सर्वा० अ० ६ सू० २४)।

अर्हद्दत्ता—अंग पूर्वदेशके ज्ञाता अर्थात अंग पूर्वज्ञानके कुछ भागके ज्ञाता मुनि–श्री महावीरस्वामीके मुक्ति गये पीछे १२ वर्ष पीछे गौतमस्वामी, फिर १२ वर्ष पीछे सुधर्माचार्य, फिर ३८ वर्ष पीछे जम्बूस्वामी मोक्ष गए। फिर १०० वर्षके भीतर पांच श्रुतकेवली हुए। श्री विष्णु मुनि, नंदिमित्र, अपराजित, गोवर्द्धन, भद्रबाहु, फिर १८३ वर्षमें ११ अंग व १० पूर्वके पाठी ११ महामुनि हुए। १–विशाखदत्त, २–प्रौष्ठिल, ३–क्षत्रिय, ४–जयसेन, ५–नागसेन, ६–सिद्धार्थ, ७–धृतिषेण, ८–विजयसेन, ९ बुद्धिमान, १०–गंगदेव, ११ धर्मसेन। फिर २२० वर्षमें ११ अंगके ज्ञाता पांच मुनि नक्षत्र, जयपाल, पांडु, द्रुमसेन, कंसाचार्य हुए। फिर ११८ वर्षमें चार मुनि आचारांगके ज्ञाता हुए–सुभद्र, अभयभद्र, जयबाहु, लोहाचार्य। यहांतक महावीर स्वामीके मोक्षसे लेकर ६२+१००+१८३+२२०+११८=६८३ वर्ष होगए फिर चार मुनि आरातीय हुए–अर्थात् अंग पूर्वके कुछ भागके ज्ञाता हुए। विनयधर, श्रीदत्त, शिवदत्त और अर्हद्दत्त (श्रुतावतार कथा पं० लालाराम पृ० १३)।

अर्हद्दास—श्री रामचन्द्रके समयमें अयोध्याके एक मुख्य सेठ जिनसे सुव्रत मुनिका आगमन सुनकर रामने जाकर मुनिव्रत धारण किये। (ह० २ पृ० १५३)। (२) श्री नेमिनाथ तीर्थंकरके पांचवे भवमें राजा अपराजित थे। उनके पिता अर्हद्दास थे जो मोक्ष गए (ह० पृ० ३३७)। (३) भट्ट कवि या अर्हद्दास कर्णाटक जैन कवि (ई० सन् १३००) गंगवंशी राजा भारसिंहका सेनापति काउमरसके वंशमें जन्मा, जैन ब्राह्मण–जिन नगरपति, गिरिनगराधीश्वर उपाधिधारी–काउमरसकी १५ वीं पीढीमें नागकुमार हुआ उसका यह पुत्र था। इसने अट्ठ मत नाम कनडी ज्योतिषग्रन्थ रचा (क० नं० ६०)। (४) अर्हद्दास श्रेष्ठी पंडित आशाधरका शिष्य (वि० सं० १२६९) मुनिसुव्रतकाव्य, भव्य जन कंठाभरण व जीवन्धर चम्पू इन संस्कृत ग्रंथोंके कर्ता (दि० ग्रं० नं० २१)।

अर्हद्बलि—श्री वीर भगवानके मोक्ष जानेके बाद ६८३ वर्ष पीछे कई आरातीय आचार्य अंग पूर्व देशके एक भागके ज्ञाता थे, उनमें यह प्रसिद्ध

हुए। ये प्रत्येक ९ वर्षके अन्तमें १०० योजन क्षेत्रमें निवास करनेवाले मुनियोंको एकत्र करके युग प्रतिक्रमण कराते थे। इन्होंने मुनिके संघ भेद स्थापित किये। वे हैं नंदि, वीर, अपराजित, देव, सेन, भद्र, गुणधर, गुप्त, चंद्र आदि। (श्रुता० कथा पृ० १९)।

अर्हद्भक्त–राक्षस वंशका एक प्रसिद्ध राजा (इ० २ पृ० ९४)।

अर्हदासी–श्री शांतिनाथ तीर्थंकरके समवसरणमें मुख्य श्राविका (इ० २ पृ० १७)।

अर्हन्–पुजने योग्य, देखो शब्द "अरहंत"।

अर्हनन्दि–(१) प्राकृत शब्दानुशासनके कर्ता महाकवि त्रिविक्रमके गुरु अर्हनंदि त्रैविद्य मुनि (विद्व० पृ० ४९)।

(२) कुमुदेन्द्र कर्णाटक कवि (ई० सन् १२७९) के पितृव्य (बड़े काका) अर्हनंदिवृति, इस कविने रामायण बनाई है (क० नं० ९७)।

(३) कोल्हापुर राज्यके बमनी ग्राममें शाका १०७३ का लेख शिलाहार राजा विजयादित्यका यह वहांके जैन मंदिरपर है, इसमें माघनंदि सिद्धांतदेवके शिष्य अर्हनंदि सिद्धांतदेवका कथन है (व० स्मा० पृ० १९४)।

अर्हन्त–देखो शब्द "अरहंत"।

अलका–विजयार्द्धकी उत्तर श्रेणीमें २७वां नगर (त्रि० गा० ७०४), (२) सेठ सुदष्टिकी स्त्री जिसने वसुदेव व देवकीसे उत्पन्न पुत्रोंको पाला (ह० पृ० ३६३)।

अलक्ष्य–जिसका लक्षण किया जाय उसे लक्ष्य कहते हैं। उस लक्ष्यके सिवाय दूसरे पदार्थोंको उस लक्ष्यकी अपेक्षा अलक्ष्य कहते हैं (जै० सि० प्र० नं० ११)।

अलङ्कर्मीण निर्यापक–जो संसारसमुद्रसे तारनेके लिये समर्थ हैं ऐसे सुस्थित आचार्य, निश्चयनयसे शुद्ध स्वात्मानुभूति परिणामके सन्मुख आत्मा (सागा० अ० ८ श्लोक १११)।

अलङ्कार–गहना, मण्डन, आभरण, परिष्कार, शृंगार, उपमा आदि गुण (वि० कोष पृ० ३१७)।

अलङ्कार चिंतामणि–अलङ्कारका ग्रंथ अजितसेनाचार्यकृत पद्मराज पंडित द्वारा बंगलोरसे प्रकाशित (विद्व० पृ० ४४)।

अलंकार शास्त्रकार–शंखवर्म नामके कर्णाटक जैन कविका नाम। रुद्रभद्रने इनकी स्तुति की है। (क० नं० २९)

अलंकारोदय नगरी–श्री अजितनाथ तीर्थंकरके समयमें पूर्णघनके पुत्र मेघवाहनको प्रसन्न होकर राक्षस जातिके देवोंके इन्द्र भीम और सुभीमने लंका और पाताललंकाका राज्य दिया। उस पाताललंकामें एक अलंकारोदय नगर १२१॥ योजन १॥ कला चौड़ा था (इ० २ पृ० ९३)

अलम्बूपा–सौधर्मादि स्वर्गोंमें होनेवाली चौथी गणिका महत्तरीका नाम। हर स्वर्गमें चार होती हैं–कामा, कामिनी, पद्मगन्धा, अलम्बूपा। (त्रि० गा० ५०६)

अलंभूपा–रुचक गिरिपर उत्तर दिशाके पहले कूटपर वसनेवाली देवी (त्रि० गा० ९९४) इसको अलंबुसा भी कहते हैं (ह० पृ० ३८७ व ११८)

अलाभ परीषह–२२ परीषहोंमें १९वीं, जिसको मुनि समभावसे सहते हैं। कहीं भिक्षाको गए और भिक्षाका लाभ न हुआ या अंतराय आगया तो खेद न मानना। (सर्वा० अ० ९ सू० ९)

अलाभविजय–देखो शब्द "अलाभपरीषह"।

अलिंगग्रहण–जो किसी इन्द्रियसे ग्रहणमें न आवे।

अलुब्धत्व–लोभ न होना–दातार गृहस्थमें सात गुणोंमेंसे तीसरा गुण–दान देनेवालेमें श्रद्धा, शक्ति, निर्लोभीपना, भक्ति, ज्ञान, दया व क्षमा होने चाहिये (चा० पृ० २६) पुरु० श्लो० १६९ में सात गुण कहे हैं–इस लोकके फलकी इच्छा न होना, क्षमा, कपटरहितपना, ईर्षा न होना, विषाद न होना, प्रसन्न रहना, अहंकार न होना।

अलेपिपान–वह पीनेकी वस्तु जो हाथमें नहीं चिपकती हो (ध० सं० अ० १ श्लो० ६६)।

अलेपी–जो पान हाथोंमें न चिपके (सा० अ० ८ श्लो० ९७)।

अलेपड़ पान–वह पीनेकी वस्तु जो हाथोंमें न चिपके (भ० पृ० २६७)।

अलेश्य–वे परमात्मा जिनको कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म, शुक्ल ये छः लेश्याएं या छः प्रकारके भाव नहीं पाए जाते हैं। ऐसे १४ गुणस्थानवर्ती अयोग केवली तथा सिद्ध भगवान। (गो० जी० गा० ५५५)।

अलोक–अलोकाकाश–यह लोक छः द्रव्योंसे सर्वत्र भरा है, आकाश अनंत है, उसके मध्य भागमें लोक है, वहां सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव सर्वत्र हैं, वादर एकेन्द्रियादि पंचेंद्रिय तक आधारमें हैं। पुद्गल परमाणु व स्कंध सर्वत्र भरे हैं। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय एक एक होकर सर्वत्र व्यापक हैं। कालाणु असंख्यात हैं, लोकके एक२ प्रदेशपर एक२ है। लोकके बाहर जितना मात्र आकाश है वह अलोक है (पंचा० गा० ३–६)।

अलोक नगर–वह नगर जहां आठवें नारदकी माता कुर्मीने पुत्रको प्रसवकर वनमें छोड़ इन्द्रमालिनी आर्यिकाके पास दीक्षा ली (इ० २ पृ० ७७)

अलोकाकाश–देखो शब्द "अलोक"।

अलौकिक–जो लौकिक–प्रचलित व्यवहारसे विलक्षण हो, आश्चर्यकारक, अतिशयरूप।

अलौकिक गणित–वह गणित जो लौकिक साधारण गणितसे भिन्न प्रकारका हो। देखो लोकोत्तर गणनाके भेद (प्र० जि० पृ० ९०–१०३ तथा १०९ से ११४ तक)।

अलौकिक धर्म–वह धर्म जिससे मोक्षका ही साधन हो।

अलौकिक मार्ग–वह मार्ग जिससे मोक्षका साधन हो।

अलौकिक शरण–संसारमें शरण दो प्रकारका है। (१) लौकिक–(२) अलौकिक या लोकोत्तर। हरएकके तीन तीन भेद हैं–जीव, अजीव, मिश्र। राजा आदि लौकिक जीव शरण हैं, कोट शहर पनाह आदि लौकिक अजीव शरण हैं। कोट खाई सहित गांव व नगर, देश आदि लौकिक मिश्र शरण हैं। अरहंत आदि पंचपरमेष्ठी लोकोत्तर जीव शरण हैं। अरहंत आदिके प्रतिबिम्ब लोकोत्तर अजीव शरण हैं। धर्म व शास्त्रादि उपकरण सहित साधुसमुदाय लोकोत्तर मिश्र शरण हैं (चारि० पृ० १६९)।

अलौकिक शुद्धि–शुद्धि या पवित्रता दो प्रकारकी है। लोकोत्तर या अलौकिक और लौकिक। अपने निर्मल आत्मध्यानसे कर्मकलंक धोना यह लोकोत्तर पवित्रता है। इसके साधन रत्नत्रय धर्म व उनके धारक देव, शास्त्र, गुरु, निर्वाणभूमि, मंदिर आदि हैं। लौकिक शुद्धि काल, अग्नि, मिट्टी, गोमय, जल, अज्ञान, निर्विचिकित्सा भस्मके भेदसे ८ प्रकार है। (चारि० पृ० १८०)

अल्प आयु (अल्पायु)–थोड़ी आयु–सबसे कम आयु लब्ध्यपर्याप्तक जीवकी होती है। एक उच्छ्वासके १८ वें भाग, देखो शब्द "अपर्याप्त"।

अल्प आरंभ (अल्पारंभ)-संतोषपूर्वक न्याय सहित आजीविकाका साधन व अन्य गृहारंभादि। यह मनुष्यायुके बंधका कारण है (सर्वा० अ० ६ पृ० १७)।

अल्प आरम्भी (अल्पारम्मी)–संतोषपूर्वक व न्यायपूर्वक थोड़ा आरम्भ करनेवाला।

अल्प गजदन्त–जिनकी लम्बाई थोड़ी हो उन्हें अल्प गजदन्त पर्वत अर्थात् हाथीके दांत समान आकारधारी पर्वत कहते हैं। जंबूद्वीपमें सुमेरुपर्वतके पास चार कोनेमें चार गजदंत समान लंबाईको धरे हैं। हरएककी लम्बाई ३०२०९$\frac{6}{19}$ योजन व धातुकी खण्डमें भी चार गजदंत हैं। दो तो लवणोदधि तरफ हैं जिनकी लम्बाई अल्प है। अर्थात् ३५६२२७ योजन है व दो कालोद समुद्र तरफ हैं उनकी लम्बाई ५६९२५९ योजन है। यह दो

महा गजदन्त हैं। पुष्करादिके कालोद समुद्र तरफ दो गजदन्त अल्प लम्बाई लिये हैं। अर्थात् १६२६११६ योजन हैं। ये अल्प गजदन्त हैं। दो गजदन्त मानुषोत्तरकी तरफ बड़े गजदन्त हैं। इनकी लम्बाई २०८२२१९ योजन है (त्रि० गा० ७९६-७९७)।

अल्पतर बंध-कर्मोंका बंध तीन प्रकार होता है-(१) भुजाकार बन्ध-थोड़ी कर्म प्रकृतिको बांध करके पीछे अधिक कर्म प्रकृतिको बांधे। जैसे उपशांत मोह ११वें गुणस्थानमें एक वेदनीय कर्मका बन्ध था वहांसे १०वेंमें आया तब छः कर्मका बंध होने लगा, मोह व आयुके सिवाय नौवेंमें लौटा तब ७का बंध होने लगा, आयु सिवाय। ८वेंमें सातका था नीचे उतरके अल्पबंधके समय आठकर्मका बन्ध हुआ। (२) अल्पतरबन्ध-पहले बहुत कर्मप्रकृतिको बांधे फिर कम कमको बांधे। जैसे सातवेंमें ८ कर्मका बंध होता था। यदि ८वें गुणस्थानमें गया तो सातका रह गया। सूक्ष्मसांपरायमें छःका ही बंध रहा, ११वेंमें गया तो एकका ही रहा। (३) अवस्थित-जहां बन्ध समय समय प्रति बराबर कर्मप्रकृतियोंका हो वह अवस्थित है। (गो० क० गाथा ४५३-४६९)।

अल्प परिग्रह-संतोष पूर्वक व न्यायपूर्वक परिग्रह रखना व ममता अधिक न रखना। इससे मनुष्यायुका बंध होता है (सर्वा० अ० ६ सू० १७)।

अल्प परिग्रही-थोड़ी ममता रखनेवाला। संतोषपूर्वक थोड़ा परिग्रह रखनेवाला।

अल्प बहुत्व-एक दूसरेकी अपेक्षा कम व अधिक कहना। जीवादि पदार्थोंके भाषणमें आठ तरहसे विचारना चाहिये। (१) सत्-है या नहीं (२) संख्या-गणना क्या है, (३) क्षेत्र-वर्तमान कालमें निवास, (४) स्पर्श-कहांतक स्पर्शकी शक्ति, (५) काल-मर्यादा, (६) अंतर-एक अवस्थाका होकर फिर उसी अवस्थाको पाना, बीचका काल अंतर है, (७) भाव-पदार्थका स्वरूप या लक्षण (८) अल्प बहुत्व-थोड़े हैं या अधिक हैं (सर्वा० अ० १ सू० ८)।

अल्पबहुत्व विधान-सूक्ष्मसांपराय गुणस्थानमें थोड़ा बहुत विधान यह है कि अन्तर्मुहूर्त जो इसका काल है, उसमें असंख्यातवां भाग कर अधिक इस गुणस्थानके प्रथम समयमें मोहकी गुणश्रेणीका काल है फिर संख्यात गुणा अंतरायाम है फिर उससे संख्यात गुणा मोहका प्रथम स्थितिकांडक आयाम है, उससे संख्यात गुणा इस गुणस्थानके प्रथम समयमें स्थितिसत्व है (ल० गा० ५९२)

अल्प सावद्यकर्मार्य-जिसमें पापबंध हो या आरंभी हिंसा हो ऐसे कर्मोंको सावद्यकर्म कहते हैं वे छः हैं। (१) असि कर्म-शस्त्रादि कर्म। (२) मषि कर्म-आय व्ययादि लिखना। (३) कृषि कर्म-खेतीका विधान। (४) वाणिज्य कर्म-धान्य कपासादिका व्यापार। (५) शिल्प कर्म-लुहार, सुनार, कुम्हारादिके कर्म। (६) विद्या कर्म-चित्राम, गणित, गाना, बजाना आदि। इन छः कर्मोंसे यथायोग्य कम व संतोषपूर्वक वर्तनेवाले देशविरती पंचम गुणस्थानवर्ती श्रावक अल्प सावद्यकर्मार्य हैं। (सर्वा० भा० जयचन्द पृ० ३३१ अ० ३ सू० ३६)

अल्पज्ञ-छद्मस्थ, जो सर्वज्ञ न हो, कमज्ञानी।

अल्पज्ञान-कम ज्ञान, क्षायोपशमिकज्ञान, अशुद्ध ज्ञान, सर्व ज्ञान न होना।

अल्पज्ञानी-छद्मस्थ, कम ज्ञानी।

अल्हण-एक खंडेलवाल मुखिया जिसके पुत्र पापा साधुकी प्रेरणासे पं० आशाधरने वि० सं० १२८५में जिन यज्ञ कल्प ग्रन्थ परमारकुलके मुकुट देवपाल उर्फ साहसमल्ल राजाके राज्यमें नलकच्छपुरमें नेमिनाथ चैत्यालयमें पूर्ण किया। (विद्व० पृ० १०९)

अवक्तव्य-जिसका कथन न होसके। एक पदार्थमें अनेक स्वभाव होते हैं उनका एक साथ कथन नहीं होसक्ता। जैसे वस्तुमें नित्यपना तथा अनित्यपना दोनों हैं, परन्तु शब्दोंमें शक्ति नहीं है कि दोनोंको एक साथ कहा जासके। इसलिये एक अवक्तव्य धर्म भी वस्तुमें है (आ० न० १५)।

अवक्तव्य गुणवृद्धि–जीवोंकी जघन्य अवगाहनामें जितने प्रदेश होते हैं उनपर संख्यातगुणी व असंख्यात गुणी वृद्धि करते हुए जहां ऐसी अवगाहना हो जिसमें संख्यात व असंख्यातका गुणकार नहीं संभव हो वहां अवक्तव्य गुणवृद्धि होती है। (गो० जी० गा० १०२) जैसे एक दफे संख्यात गुणवृद्धि करनेपर जब दूसरी वृद्धि न हो बीचमें एक एक प्रदेशकी वृद्धि सो अवक्तव्य गुणवृद्धि है।

अवक्तव्य बन्ध–जहां किसी कर्मकी उत्तर प्रकृतिका बांधना बिलकुल बन्द होगया था फिर पीछे बांधने लगे। उस बन्धको अवक्तव्य बन्ध कहते हैं। जैसे उपशांत मोह गुणस्थानमें, एक साता वेदनीयका ही बंध था, जब दसवें गुणस्थानमें आवे तब ज्ञानावरणादिका बंध करे (गो० क० गा० ४५३–४६९)।

अवक्तव्य वृद्धि–जीवोंकी जघन्य अवगाहनापर चार स्थान पतित वृद्धि होती है। संख्यात भागवृद्धि, असंख्यात भाग वृद्धि, संख्यात गुणवृद्धि, असंख्यात गुणवृद्धि। इनके मध्यमें जो वृद्धि होना। (गो०जी० गा० १०२)।

अवक्तव्य भागवृद्धि–जीवोंकी जघन्य अवगाहनामें जितने प्रदेश होते हैं उनपर संख्यात भाग व असंख्यात भाग वृद्धि करते हुए जहां संख्यात भाग व असंख्यात भाग न संभव हो किंतु वृद्धि हो ऐसी जहां अवगाहना हो वहां अवक्तव्य भागवृद्धि होजाती है (गो० जी० गा० १०२)।

अवक्रांत विक्रांत–पहले नर्ककी पृथ्वीमें १३-वां इन्द्रकविल।

अवगम–धारणा।

अवगाढ़–दृढ़, मजबूत।

अवगाढ़ दर्शन (रुचिवान) आर्य–वह सम्यग्दृष्टी भव्यजीव जिनका श्रद्धान आचारांग आदि द्वादशांगके ज्ञानसे दृढ़ होगया हो (भ.पृ.९१७)।

अवगाढ़ सम्यक्त–वह श्रद्धान जो द्वादशांगके ज्ञानसे दृढ़ हो।

अवगाह–यह एक प्रतिजीवी गुण है। परतंत्रताके अभावको कहते हैं। जहां एक सिद्ध विराजमान हैं वहां अन्य सिद्ध भी अवकाश पासके हैं बाधा नहीं होती है। यह गुण आयुकर्मके नाशसे उत्पन्न होता है (जै०सि० प्र० नं० २४१)।

आकाशका विशेष गुण जो सर्व द्रव्योंको स्थान देता है (गो० जी० गा० ६०५)।

अवगाहन–स्थान देना–आकाशका विशेष गुण।

अवगाहनत्व–सिद्धोंका एक प्रतिजीवी गुण–देखो "अवगाह"।

अवगाहना–संसारी जीव जिन शरीरोंको धारण करते हैं उनके आकार। जीव भी शरीर प्रमाण आकारका होके रहता है। सबसे छोटा शरीर व जीवकी अवगाहना सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक जीवकी होती है। जब वह किसी पर्यायमें सीधा विना मुड़े जाके पैदा होता है तब उसके पैदा होनेके तीसरे समयमें ऐसी जघन्य अवगाहना घनांगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण होती है। इससे अधिकर अवगाहना अन्य जीवोंको होती है। सबसे बड़ी अवगाहना स्वयंभूरमण नामके अंत समुद्रके मध्य जो महामत्स्य होता है उसकी होती है। यह १००० योजन लम्बा ५०० योजन चौड़ा २५० योजन ऊँचा होता है। (गो० जी० गाथा ९४–९५)।

अवग्रह–इंद्रिय और पदार्थके योग्य स्थानमें रहनेपर सामान्य प्रतिभास या झलकको दर्शन कहते हैं। जैसे आंखके सामने कोई पदार्थ आया तब जो दोनोंका सम्बन्ध होते हुए जो कुछ हुआ वह दर्शन है। फिर यह दिखा कि यह सफेद वस्तु है सो अवग्रह ज्ञान मतिज्ञानका एक भेद है। (देखो "अट्ठाईस मतिज्ञानके भेद" प्र० जि० पृ० २२५)

अवतार क्रिया–अजैनको जैनकी दीक्षा देते हुए पहली क्रिया। एक अजैन किसी जैन मुनि या गृहस्थाचार्यके पास जाकर प्रार्थना करता है कि उसे निर्दोष धर्मका स्वरूप कहिये, तब गुरु उसको जैन धर्म समझाते हैं। इस समय उसका गर्भ जैनधर्ममें

हुआ–गुरु उसके माता पिता हुए (गृ०च०अ० ९)

अवतंश–उत्तरकुरुमें एक दिग्गज पर्वतका नाम (त्रि० गा० ६६२)।

अवतंसा–किन्नर जातिके व्यंतर देवोंके इन्द्रकी एक वल्लभिका देवांगनाका नाम (त्रि०गा० २९८)।

अवतंसिका–चक्रवर्तीकी रत्नमालाका नाम (इ० १ पृ० ६०)।

अवधारणा– } अवग्रह धारणा।
अवधारण– } अवग्रह।

अवधि–अवधान, मर्यादा, हद्द, द्रव्य, क्षेत्रकाल, भावकी अपेक्षा किसी मर्यादा तक (सर्वा० अ० १ सू० ९)।

अवधि दर्शन–अवधिज्ञानसे पहले होनेवाला सामान्य अवलोकन (जै०सि०प्र० नं० २१४)।

अवधि दर्शनावरण–वह कर्म प्रकृति जो अवधिदर्शनको न होने दे।

अवधि मरण–मरणका तीसरा भेद–जैसा मरण वर्तमान पर्यायका हो वैसा ही आगामी पर्यायका होना। जो प्रकृति स्थिति अनुभाग प्रदेश आगामीके लिये वैसा ही बांधे जैसा अब उदय है सो सर्वावधि मरण है व जो एक देश बंध उदय हो वह देशावधि मरण है (भ० पृ० १०)।

अवधि स्थान–अप्रतिष्ठित स्थान, सातवें नरक पृथ्वीका इन्द्रकविल (त्रि० गा० १९९)।

अवधिज्ञान–जो ज्ञान द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी मर्यादा लिये रूपी पदार्थको स्पष्ट व प्रत्यक्ष जाने (जै० सि० प्र० नं० १२)। इस ज्ञानके लिये इंद्रिय तथा मनकी सहायता नहीं लेनी पड़ती है। देव नारकियोंको अवधिज्ञान जन्मसे ही होता है। इसको भव प्रत्यय कहते हैं। यह ज्ञान भरत ऐरावतके तीर्थंकरोंके भी जन्मसे होता है। इसका प्रकाश सर्व आत्म प्रदेशोंमें अवधिज्ञानावरण व वीर्यांतरायके क्षयोपशमसे होता है। यह देशावधि ही है। पर्याप्त मनुष्य व संज्ञी पंचेंद्रिय पर्याप्त तिर्यंचोंको सम्यग्दर्शन तथा तपके द्वारा नाभिसे ऊपर किसी अंगमें शंख, चक्र, कमल, वज्र, साथिया, माछला, कलश आदि चिह्नयुक्त आत्म प्रदेशोंमें अवधिज्ञानावरण व वीर्यांतरायके क्षयोपशमसे होता है। वह गुणप्रत्यय या क्षयोपशम निमित्त है। यह देशावधि, परमावधि व सर्वावधि तीनों प्रकारसे होता है। देशावधिका विषय थोड़ा है और यह छूट भी जाता है। परमावधि मध्यम भेदरूप और सर्वावधि एक उत्कृष्ट भेदरूप ही होता है। ये दोनों तद्भव मोक्षगामीके ही होते हैं। देशावधि व परमावधिके कमती बढ़ती द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावको जाननेकी अपेक्षा असंख्यात भेद हैं। परन्तु सर्वावधिका एक ही भेद है (श्रा० श्रृ० ६७–६८) यह अवधिज्ञान पुद्गल द्रव्य और उसके द्वारा संसारी आत्माको भी जान सक्ता है। स्वर्गोंके देवोंमें पहले व दूसरे स्वर्गवाले पहले नर्क तक, तीसरे चौथे स्वर्गवाले दूसरे नर्क तक, पांचवेंसे आठवें स्वर्ग तकके देव तीसरे नर्क तक, नौवेंसे १०वें तकके चौथे नर्कतक, १३वेंसे १६वें तकके पांचवें नर्क तक, नौग्रैवेयकवाले छठे नर्क तक, ९ अनुदिश तथा पांच अनुत्तरवाले सातवें नर्क तकका अवधिज्ञान रखते हैं। ऊपरेको सब देव अपने विमानोंके ध्वजादण्ड तक जानते हैं। पांच अनुत्तरवाले सर्व त्रसनाड़ीको अवधिसे जानते हैं (त्रि० ५२७)।

अवधिज्ञान ऋद्धि–अवधिज्ञानकी शक्ति।

अवधिज्ञानावरण–वह कार्य जो अवधिज्ञानको रोके।

अवधि ज्ञानी–अवधिज्ञानका स्वामी। चारों गतिवाले होसक्ते हैं।

अवध्यप्रलाप वचन–जिस वचनमें बकवाद ही बकवाद हो, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष पुरुषार्थका उपदेशक वचन न हो (इ० पृ० १४८)।

अवध्या–विदेह देशमें ३२वीं मुख्य राजधानी (त्रि० गा० ७१२)।

अवनति–भूमिको स्पर्श कर नमस्कार करना। (मू० गा० ६०१)।

अवनिपाल कथा—राजाओंके सम्बंधमें विकथा। विकथा चार प्रकारकी है—स्त्री कथा, भोजन कथा, राष्ट्रकथा व राजकथा ये कथाएँ संयम विरुद्ध होती हैं (गो० गा० ३४)।

अवनी शयनव्रत—क्षितिशयनव्रत—भूमिमें शयन करनेका व्रत, जीव बाधारहित, अल्पसंस्तर रहित, असंजमीके गमन रहित, गुप्तभूमिके प्रदेशमें दंडेके समान या धनुषके समान एक पसवाड़ेसे सोना। यह साधुके २८ मूलगुणमें २५ वां मूलगुण है। (मू० गा० ३ व ३२)।

अवन्ति देश—मालवा देश।

अवन्ति नगरी—मालवाकी राज्यधानी उज्जैन।

अवन्तिकामा—भरत चक्रीकी दिग्विजय करनेके मध्यकी नदी (इ० १ पृ० ८९)।

अवंतिराज—श्री महावीरस्वामीके समय प्रसिद्ध राजा पालकका पिता (ह० पृ० ५८२), (२) ७०५ शाकमें पूर्वदिशामें अवंतिराजका राज्य था (ह० पृ० ६२७)।

अवंति सुन्दरी—वसुदेवजीकी एक स्त्री (ह०पृ० ३१२) जिससे सुमुख, दुर्मुख और महारथ पुत्र हुए (ह० पृ० ४५७)।

अवपीड़क गुण—निर्यापकाचार्यका छठा अवपीड़कगुण। यदि कोई दोषी शिष्य अपने दोषकी आलोचना न करे—छिपावे तो आचार्य उसको वचनोंसे पीड़ा देकर उसका दोष उससे बाहर निकलवावें (भ० पृ० १७६)।

अववोध—धारणा।

अवमान—चुल्लू आदिसे माप करना। लौकिकमान छः प्रकारका है। १ मान—पाई माणी आदिसे अन्नादिका प्रमाण करना, २ उन्मान—तराजू आदिसे तौलना, ३ अवमान—४ गणिमान—एक दो आदि गिनती करना, ५ प्रतिमान—गुँजा आदिसे रत्ती मासा आदि प्रमाण करना, ६ तत्प्रतिमान—घोड़े आदिको देखकर मोल करना (त्रि० गा० १०)।

अवमोदर्य—बाह्य दूसरा तप—संयमसिद्धि, निद्रा-दोष शमन, संतोष व स्वाध्याय आदि ध्यानकी सुखसे सिद्धिके लिये भूखसे कम खाना। पुरुषका स्वाभाविक आहार बत्तीस ग्रास होता है, उसमेंसे एक दो चार आदि कमती लेना (मू०गा०३५०)। अपने लिये स्वभावसे जितना भोजन चाहिये उससे चौथाई भाग कम आहार लेना या १ ग्रास आदि कम लेना (च० पृ० १२९)।

अवद्य—निंदनीक।

अवरोहक—गिरनेवाला, नीचे दरजेमें आनेवाला।

अवरोहक उपविष्ट दंड समुद्घात—
अवरोहक स्थिति दंड समुद्घात—
अवरोहक उपविष्ट कपाट „
अवरोहक स्थित कपाट समुद्घात—
} मूल शरीरको न छोड़कर आत्माके प्रदेशोंका फैलकर बाहर निकलना सो समुद्घात है। केवल समुद्घात तब होता है जब आयु कर्मकी स्थिति कम हो और वेदनीय, नाम व गोत्रकी स्थिति ज्यादा हो। तब जो बैठे हुए आसनसे करना सो उपविष्ट है। खड़े आसनसे करना स्थित है। पहले समयमें दंडके समान आत्माके प्रदेश प्रतरांगुल करि गुणित जगतश्रेणी प्रमाण होते हैं। फिर दूसरे समयमें सूर्यंगुल मात्र जगत् प्रतर प्रमाण प्रदेश फैलते हैं कपाटके समान। तीसरे समयमें वातवलयको छोड़कर सर्वलोकमें प्रतर समान फैलते हैं। चौथे समयमें सर्व लोकमें फैल जाते हैं। इसे आरोहक कहते हैं। फिर प्रदेश सिकुड़ते हैं तब अवरोहक कहलाता है। पांचवें समयमें सिकुड़कर प्रतर समान रह जाते हैं, छठे समयमें कपाट समान होजाते हैं, सातवें समयमें फिर दंड समान होजाते हैं, आठवें समयमें फिर शरीर प्रमाण जैसे थे वैसे होजाते हैं (गो० गा० ६५०-६६८)।

अवरोही—उतरनेवाला, (२) गानविद्यामें स्वरोंका उतार (ह० पृ० २२८)।

अवर्ग अंक—देखो शब्द "अकृति अंक" (प्र० जि० पृ० २०)। वह अंक जिसका जो किसी पूर्णांकका वर्ग न हो अर्थात् जिसका वर्गमूल कोई

पूर्णांक न हो। जैसे २, ३, ५, ६, ७, ८, १०, ११, १२, १३, १४, १५, १७, १९ इत्यादि।

अवर्ग धारा–देखो शब्द "अकृति धारा" (प्र० जि० पृ० २०)। सर्व अंकोंमें १ से लेकर उत्कृष्ट अनन्तानंत तक वे सर्व अंक जिनका वर्गमूल कोई पूर्ण अंक न हो। जैसे २,३,५,६,७ आदि (त्रि.गा.५९)

अवर्गमातृकाधारा या अवर्गमूलधारा–देखो शब्द "अकृतिमातृकाधारा" (प्र० जि० पृ० २१) १से उत्कृष्ट अनंतानंतकी पूर्ण संख्यामेंसे केवल वे अंक जिनका वर्ग करनेसे केवलज्ञानसे अधिक प्रमाण होजाय। जैसे यदि १६ को केवलज्ञान माना जाय तो इसका वर्गमूल ४ तब ५, ६, ७, ८, ९, १०, ११, १२, १३, १४, १५, १६ ये सब स्थान अवर्ग मातृकाके हैं। (त्रि० गा० ६३)

अवर्गमूल–वह अंक जिसका वर्ग कोई अंक न हो। अर्थात् केवलज्ञानसे बढ़ जावे।

अवर्णवाद–केवली भगवान, जिनवाणी, जैन संघ, जिन धर्म व चार प्रकार देवोंमें मिथ्या दोष लगाना कि देवता लोग मांस खाते हैं। साधु तो मैले रहते हैं, जिन धर्मसेवी असुर होते हैं इत्यादि। इससे दर्शन मोहनीय कर्मका आस्रव होता है। (सर्वा० अ० ६ सू० १३)

अवर्ता–सुदर्शनके पूर्वविदेह संबंधी पांचवां देश।

अवलम्ब ब्रह्मचारी–जो क्षुल्लक रूप धारण करके आगमका अभ्यास करें। फिर घरमें आकरके रहें। (गृ० अ० १२)

अवसंज्ञादि–(अवसन्नासन्न) अनंतानंत परमाणुओंका समूहरूप स्कन्ध (ह० पृ० १००) देखो शब्द "अंकविद्या" (प्र० जि० पृ० १०४ १०९)

अवसन्न–अपसन्न, मार्गसे गिरा हुआ।

अवसन्न मुनि–वह मुनि जो अयोग्य सेवनके कारण मुनिसंघसे बाहर कर दिया जावे। (भग० पृ० ३९६)

अवसन्नासन्न–देखो शब्द "अवसंज्ञादि"।

अवसर्पिणी काल–भरत व ऐरावतका कालका परिवर्तन होता है। जिस १० कोड़ाकोड़ी सागरके कालमें क्रमसे शरीरकी ऊँचाई, आयु, शरीरका बल घटता जावे। इसके छः भेद हैं–(१) सुषमसुषम ४ कोड़ाकोड़ी सागरका। (२) सुषम–३ कोड़ाकोड़ी सागरका। (३) सुषम दुःषम–२ को० को० सागरका। (४) दुःषम सुषम–१ को० को० सागर ४२००० वर्ष कम। (५) दुःषम–२१००० वर्षका। (६) दुःषम दुःषम–२१००० वर्षका। पहले तीन कालोंमें भोगभूमि रहती है। फिर कर्मभूमि रहती है, यह परिवर्तन भरत व ऐरावतके आर्यखण्डमें ही होता है। भरत व ऐरावतमें जो ५ म्लेच्छ खण्ड हैं व मध्यमें विजयार्द्ध है वहां सदा चतुर्थकालके समान कर्मभूमि रहती है। वहां जब आर्यखंडमें पहला आदिकाल चलता है तब वहां चौथे कालकी आदिकी स्थिति रहती है फिर घटती जाती है। जब आर्यखंडमें पांचवां व छठा काल होता है तब वहां चौथे कालकी अंतकी स्थिति होती है। (त्रि० गा० ७७९–८८३–७८०–७८१)।

अवस्था–पर्याय, दशा, हालत।

अवस्थान–ठहरना, धारणा।

अवस्थान इंद्रक–सातवें नर्कका इंद्रक (च० छं० ७१)।

अवस्थित–स्थिर, कायम, जो एकसी दशा चली जावे।

अवस्थित काल–जो काल या जमाना बराबर स्थिर या एकसा वर्ता करे। जम्बूद्वीपके उत्तरकुरु, देवकुरुमें उत्तम भोगभूमि सुषम सुषम कालकी, हरि व रम्यक क्षेत्रोंमें मध्यम भोगभूमि सुषम कालकी, हैमवत और हैरण्यवतमें जघन्य भोगभूमि सुषम दुषम कालकी व विदेहोंमें कर्मभूमि दुषम सुषम कालकी सदा रहती है–दशा अवस्थित है। भरत व ऐरावतके समान परिवर्तनकालकी स्थिति नहीं है। (त्रि० गा० ८८२)

अवस्थित अवधिज्ञान–जो अवधिज्ञान एकसा रहे घटे बढ़े नहीं (गो० गा० ३७२)।

अवस्थित बंध-जो कर्मका बंध पहले समयमें होता था वही दूसरे समयमें बंधे। जैसे आठका बंध था। फिर आठका बंधे, सातका बंध था फिर सातका बंधे, छहका बंध था फिर छःका बंधे। एकका बंध था फिर एकका बंध है। यह अवस्थित बन्ध मूल आठ कर्मप्रकृतियोंकी अपेक्षा चार तरहका है। उत्तर प्रकृतियोंकी अपेक्षा तेतीस तरहका है। २० तरहका भुजाकार ११ तरहका अल्पतर २ तरहका अवक्तव्य इन सब ३३में जब जितनी प्रकृति पहले समय बांधे उतनी ही दूसरे समय बांधे तब ३३ ही भेद हुए (गो० क० गा० ४९३-४७०)।

अवस्थितोग्रतप-तप ऋद्धिके उग्रतप ऋद्धिके दो भेद हैं-उग्रोग्रतप, अवस्थितोग्र तप। जो मुनि १ उपवास १ पारणा करे फिर दो उपवास १ पारणा करे, फिर तीन उपवास १ पारणा करे। इस तरह आगे आगे एक एक उपवास बढ़ाता हुआ जीवन पर्यंत करे सो उग्रोग्रतप ऋद्धि है। जो मुनि ऐसा करे कि दीक्षा लेते समय १ उपवास पारणा किया था वैसा कुछ काल करता रहे। फिर कुछ दिन दो उपवास व १ पारणा करता रहे। फिर तीन उपवास १ पारणा कुछ दिन तक करे। इस तरह छः उपवास तक करे, फिर आठ आठ उपवास पारणा करे। कुछ दिन बाद दस दस उपवास पारणा करे इस तरह जीवन पर्यंत बढ़ाता हुआ विहार करता रहे कभी भी उपवासकी संख्या कम न करे सो अवस्थितोग्रतप है (चा० पृ० २०७-२०८)।

अवात्सल्य-धर्मात्माओंसे प्रीतिभाव न रखना। सम्यक्तके २५ दोषोंमेंसे ७वां दोष (गृ० अ० ७)।

अबाधित-जिसके बाधा न हो, जो दूसरे प्रमाणसे बाधित या खण्डन न हो, न्याय शास्त्रमें जिसको साधन करना हो, ऐसा साध्य वह अबाधित होना चाहिये। जैसे अग्निका ठंडापन प्रत्यक्ष प्रमाणसे बाधित है, यह ठंडापन साध्य नहीं हो सक्ता (जै० सि० प्र० नं० ३९)।

अवान्तर सत्ता-किसी विवक्षित (जिसको कहना चाहता हो) पदार्थकी सत्ता या मौजूदगी (जै० सि० प्र० नं० १९३), सत्ताके दो भेद हैं-१ सत्ता सामान्य या महासत्ता अर्थात् सर्व विश्वकी एक सत्ता, २ सत्ता विशेष या अवान्तर सत्ता या किसी एक पदार्थकी सत्ता (पंचा० श्लो० २०-२१)।

अवाय-इंद्रिय या मनके द्वारा ग्रहण किये हुए पदार्थमें दर्शनके पीछे अवग्रह। उसके पीछे ईहा ज्ञान होता है जो निश्चयकी तरफ झुकता होता है वही ज्ञान जब मजबूत या पक्का या निश्चित हो जाता है उसे अवाय मतिज्ञान कहते हैं। जैसे यह घोड़ा ही शब्द है (जै० सि० प्र० नं० २०२)।

अविग्रहागति-कुटिलता या मोड़े रहित सीधी गति मुक्त जीवकी या संसारी जीवकी जिसको सीधा ही जाकर विना मोड़े लिये पैदा होना है। इसमें मध्यमें कोई समय नहीं लगता है, दूसरे समयमें ही पहुंच जाता है। पुद्गल परमाणु भी दूसरे समयमें चौदेराजू लोकके अन्त तक पहुंच सक्ता है (सर्वा० अ० २ सू० २७-२९)।

अविचार भक्त प्रत्याख्यान मरण-अल्प शक्तिधारी मुनिको जब आयुका बहुत काल न बाकी रहे, और मरण शीघ्र आजाय उस समयपर किया हुआ। समाधिमरण-इसके तीन भेद हैं १ निरुद्ध-अपने ही गणमें समाधिमरण करे। पर गणमें न जापके, २ निरुद्धतर-यदि कोई पशु आदिका उपसर्ग आजाय तब अपने निकट कोई आचार्यादि हो उनसे आलोचना करके समाधिमरण करे, ३ परम निरुद्ध-ऐसा उपसर्ग आजाय कि बोल न सके तो अपने मनमें ही पंचपरमेष्टीका स्मरण करके समाधिमरण करे (भ० पृ० ९८१-९८४)।

अविचार समाधिमरण-किसी भी श्रावकादिको अचानक उपसर्ग आजाय, आग लग जाय, सर्प काट खाय, वनमें मार्ग भूल जाय तब आत्मध्यानमें लीन हो मरण करे। यदि निश्चय हो तो आमरण चार प्रकारका आहार त्यागे। नहीं तो जबतक उपसर्ग न टले व इतने समयतक नियम लेलें (श्रा० पृ० २३४)।

अविद्या-वंशानामा दूसरे नरकका तप्त इन्द्रकका दिशाका एक श्रेणीबद्ध बिल (त्रि० गा० १६०) अज्ञान; मिथ्याज्ञान ।

अविनाभाव सम्बन्ध-जहां २ साधन (हेतु) हो वहां २ साध्यका होना और जहां २ साध्य न हो वहां २ साधनका भी न होना । जैसे जहां २ धूम है वहां २ अग्नि है, जहां अग्नि नहीं है वहां धूम नहीं है (जै० सि० प्र० नं० ३९) ।

अविनाशी पद-मोक्ष, निर्वाण ।

अविनीति-पश्चिम गंगवंशका छठा जैन राजा द्वितीय नाम परमेश्वर। यह अपने पहले राजा माधवकी बहनका लड़का, कदम्बवंशीय कृष्णवर्मनका पुत्र था । इसी वंशका बीसवां राजा गंगगांगेय बुटुग हुआ था उसकी स्त्री दिवलम्बाने सन् ९३८ सुंदी ताः रोन जिला धाड़वाड़में एक जैन मंदिर बनवाया था व छः आर्यिकाओंका समाधिमरण कराया था । मंदिरमें शिलालेख सं० में है (ब० स्मा० पृ० १२७-१२८) ।

अविपाकजा-अविपाक निर्जरा-कर्मोंका अपने नियत विपाक समयके पूर्व तप आदि द्वारा व अन्य कारणसे उदयकी आवलीमें लाकर विना फल भोगे या फल भोगकर खिरा देना (सर्वा० अ० ८ सू० २३) ।

अविभाग प्रतिच्छेद-शक्तिका अविभागी अंश, गुणका व शक्तिका वह अंश जिसका दूसरा भाग न होसके । (जै० सि० प्र० नं० ३८२; कर्मोंकी फलदानशक्ति या अनुभाग होता है उसका अविभागी अंश । असंख्यात लोक प्रमाण अविभाग प्रतिच्छेदका एक वर्ग होता है । वर्गोंका समूह सो वर्गणा । वर्गणाका समूह सो कर्म स्पर्द्धक (गो० क० का० गा० २२६) ।

अविरत-जो अहिंसादि पंच पापका नियमानुसार त्यागी न हो, जो पांच इंद्रिय व मनका वश करनेवाला व त्रस स्थावरकी हिंसाका त्यागी हो ।

अविरत गुणस्थान- **अविरत सम्यक्त**- **अविरत सम्यक्त गुणस्थान**- **अविरत सम्यग्दृष्टी**- संसारी जीवोंके १४ गुणस्थान होते हैं उनमेंसे ४ गुणस्थान जिसमें अविरत सम्यक्त होता है । अर्थात् सम्यग्दर्शन तो होता है, परन्तु चारित्र नहीं होता है । जो जीव इंद्रियोंके विषयोंसे विरक्त न हो न त्रस स्थावर हिंसासे विरक्त हो, परन्तु जिनेन्द्रके अनुसार ही तत्त्वोंका श्रद्धान करता है वह चौथा गुणस्थान धारी अविरत सम्यग्दृष्टी है । परन्तु दयाभाव, धर्मप्रेम, संसारसे वैराग्य, आस्तिक्यभाव, शांत परिणाम आदि गुणोंसे युक्त होता है (गो० जी० गा० २९) ।

अविरति-हिंसादि पांच पापोंसे न छूटना ।

अविरुद्धानुपलब्धि-देखो शब्द 'अनुपलब्धि' ।

अविरुद्धोपलब्धि-जहां साध्यकी विधिमें साधककी प्राप्ति हो । जो विधिकी साधक हो । इसके छः भेद हैं-(१) व्याप्य, (२) कार्य, (३) कारण, (४) पूर्वचर, (५) उत्तरचर, (६) सहचर ।

व्याप्यका उदाहरण-शब्द परिणमनशील है क्योंकि किया हुआ है । यहां किया हुआपना हेतु व्याप्य है जो परिणामी व्यापकमें मौजूद है । कार्यका उदाहरण-इस प्राणीमें बुद्धि क्योंकि बुद्धिके कार्य वचन आदि पाए जाते हैं यहां बुद्धि साध्य है, वचन कार्य अविरुद्ध उपलब्धि साधन है। कारणका उदाहरण-यहां छाया है क्योंकि छत्र मौजूद है, यहां छायाका साधक छत्र अविरुद्ध कारण प्राप्त है । पूर्वचरका उदाहरण-एक मुहूर्तबाद रोहिणीका उदय होगा क्योंकि कृत्तिकाका उदय हो रहा है । यहां कृत्तिका पूर्वचर हेतु है । उत्तरचरका उदाहरण-एक महूर्त पहले ही भरणीका उदय होगया है; क्योंकि कृत्तिकाका उदय होरहा है। यहां कृत्तिका उदय उत्तरचर हेतु है । सहचरका उदाहरण-इस आममें रूप है, क्योंकि रस पाया जाता है । यहां रूपका सहचर हेतु रस है । (परीक्षामुख हु० परि० सू० ५९-७०) ।

अविवाहित तीर्थंकर–वर्तमान चौवीसीमें श्री वासपूज्य १२ वें, मल्लिनाथ १९ वें, नेमिनाथ बाईसवें, पार्श्वनाथ २३ वें और श्री महावीरस्वामी २४वें इन पांच तीर्थंकरोंने विवाह नहीं किया था–कुमार अवस्थामें दीक्षा ली थी।

अविसम्वाद–साधर्मी भाइयोंसे यह मेरा है यह तेरा है ऐसी धार्मिक वस्तुओंके सम्बन्धमें झगड़ा नहीं करना, झगड़ा करनेसे धर्मका लोप होता है इससे यह भावना मानेसे चोरीका दोष बचता है, अचौर्य व्रतकी पांचवीं भावना (सर्वा० अ० ७ सू० ६)

अवीक्षितमाश–पदार्थोंको विना देखे हुए खाना (सागार० अ० ६ श्लोक २०) यह भी भोगोपभोग परिमाण व्रतका एक अतीचार है।

अवृद्धिक ऋणदोष–साधुओंको आहार देनेके लिये भोजनकी सामग्री दूसरेसे कर्ज लाकर देना व उसे पीछे उतनी ही देना सो अवृद्धिक ऋण दोष है। तथा जितनी लाया हो उससे अधिक देना सवृद्धिक ऋण दोष है। इसे प्राभृश्य दोष भी कहते हैं (मू० गा० ४३६)।

अव्यक्त–जो प्रगट न हो–गुप्त हो, स्पष्ट न हो।

अव्यक्त अवग्रह–व्यंजनावग्रह, जहां स्पर्शन, रसना, घ्राण व कर्ण इंद्रिय द्वारा अव्यक्त अवग्रहको जिससे यह न जान सके कि यह क्या वस्तु है, मात्र विलकुल अस्पष्ट कुछ मालूम हो जिससे आगे ईहा आदि न कर सके (सर्वा० अ० १ सू० १८)।

अव्यक्त दोष–गुरुके सामने दोष कहने अर्थात आलोचना करनेके १० दोषोंमें नौमा दोष। जो कोई संघमें अज्ञानी मुनि हो। चारित्र व अवस्था कर बालक हो, उसके पास अपने व्रतका लगा दोष कहकर ऐसा माने कि मैंने अपने सर्व दोषकी आलोचना कर दी। जो अज्ञानीको आलोचना करे वह अव्यक्त दोष है (भ० पृ० २४१)।

अव्यय–जिसका नाश न हो।

अव्याप्ति दोष–लक्षके एक देशमें लक्षणके रहनेसे–जैसे पशु उसे कहते हैं जिसके सींग हो। सींगपना लक्षण कुछ पशुओंमें तो हैं कुछमें नहीं है इसलिये यह लक्षण अव्याप्ति दोष सहित है। सब पशुओंमें नहीं पाया जाता है। (जै० सि० प्र० नं० ९)

अव्याप्ति वाद–प्रभादेवस्वामी कृत (दि० जै० नं० १९०)।

अव्याघाति–जो रुके नहीं।

अव्याबाध–साता और असाता वेदनीयके नाशसे जो आकुलताका अभाव होना यह जीवका प्रतिजीवी गुण है (जै० सि० प्र० नं० २४०) (२) पांचवें ब्रह्मस्वर्गमें लौकांतिक देवोंके उत्तर दिशाके विमानोंका नाम (सर्वा० अ० ४ सू० २५)।

अव्याबाधत्व–सिद्धोंका प्रतिजीवी गुण–देखो "अव्याबाध"।

अव्युत्पन्न–जो पदार्थ जाना हुआ न हो (परी० सू० २१/३), जो किसी विषयमें जानकार न हो।

अब्रह्म–मैथुन कर्म, चारित्र मोहके उदयसे स्त्री पुरुषमें राग परिणामोंके आवेशमें आकर परस्पर स्पर्श करनेकी इच्छा। अहिंसादि धर्म जिसके पालते हुए बढ़ते हैं उसको ब्रह्म या ब्रह्मचर्य कहते हैं उस ब्रह्मचर्यका न होना सो अब्रह्म है (सर्वा. अ. ७ सू. १६)।

अब्बहुल भाग–रत्नप्रभा पहली पृथ्वीका तीसरा भाग अस्सी हजार योजन मोटा, इसमें प्रथम नर्कके बिल हैं (त्रि० गा० १४६–१४८)।

अशककीर्ति–भट्टारक, सं० १५२९में चंद्रप्रभपुराण व शांतिनाथ पुराणके कर्ता (दि० ग्रं० नं० २२)

अशक्य अन्तराय–जिन जीवोंके भोजनमें पड़ते ही किसी भी प्रकार जीवित निकल नहीं सके ऐसे एक जीवके पड़ जानेसे अंतराय हो जाता है (मु० मृ० श्रा० मि० २ पृ० ७५)।

असग कवि–वर्धमान काव्य व उसकी टीकाके कर्ता।

अशन दोष–मुनियोंको आहार लेते हुए भोजन सम्बंधी १० दोष बचाने चाहिये। (१) शंकित–यह शंका आजाय कि यह भात आदि लेने योग्य है कि नहीं व शंका न मिटे। (२) म्रक्षित–

चिकने हाथ व पात्र तथा कड़छीसे भात आदि दिया जावे। (३) निक्षिप्त–सचित्त पृथ्वी, जल, अग्नि, वनस्पति बीज व त्रस जीवके ऊपर रक्खा हुआ आहार हो, (४) विहित–सचित्त व अप्राशुक वस्तुसे या भारी प्राशुक वस्तुसे ढका हुआ उघाड़ कर दिया जावे, (५) संव्यवहरण–पात्रादिको शीघ्रतासे उठाकर विना देखे भोजन पान दे उसे साधु ले, (६) दायक–दातार योग्य न हो उनसे ले। वे अयोग्य दातार हैं–मद पीनेवाला, रोगी, मुरदा डालकर आया हो, नपुंसक, वस्त्रादि ओढ़े न हो, प्रसूतिका स्त्री, मूत्र आदि करके आया हो, मूर्छित हो, वमन किया हो, लोहू सहित हो, दासी, अर्जिका व रक्त पटिका हो, अंग मर्दन करनेवाली अति भोली, अधिक बुडढी, झूंठे मुह, पांच माससे अधिक गर्भवाली, अंधी, ऊँची जगह बैठकरदे, नीची जगह बैठ करदे, मुँहसे आग जलाती हो, काठको आगमें देती हो, राखसे अग्नि बुझाती हो, गोबरादिसे भीति लीपती हो, स्नान करती हो, दुध पिलाते हुए बालकको छोड़कर आई हो। (७) उन्मिश्र दोष–मट्टी, अप्राशुक जल, पान, फूल, फल आदि हरी, जौ गेहूं द्वीद्रियाक त्रस जीव इनसे मिला हुआ आहार, (८) अपरिणत–तिलका, चावलका, चनेका व तुषका व हरड़के चूर्ण आदिका जल व गर्म होके ठंडा जल जिसका स्वाद न बदला हो, (९) लिप्त–अप्राशुक जलसे भीगे हुए हाथ या पात्र या गेरु, हरताल, खडिया, मैनशिल, चावलका चूर्ण आदिसे व कच्चे शाकसे लिप्त हाथसे भोजन दे, (१०) व्यक्त–बहुत भोजनको थोड़ा करके भोजन करे, छाछ आदिसे झरते हुए हाथसे भोजनको व किसी आहारको छोड़कर दूसरा लेवे (मू० गा० ४६२–४७५)।

अशन शुद्धि–आहार शुद्धि–उद्गम, उत्पादन, अशन, संयोजन, प्रमाण, अंगार, धूम, कारण। इन आठ दोषोंसे रहित भोजन लेना–पिंडशुद्धि भी कहते हैं (मू० गा० ४२१)।

अशनिजव–व्यंतरोंमें महोरग जातिके देव दश प्रकारके होते हैं उनमें सातवां भेद (त्रि.गा.२६१)

अशनिवेग–वानरवंशी राजा किहिकंधके गलेमें जब श्रीमालाने वरमाला डाली तब विजयार्द्ध दक्षिण श्रेणीके रत्नपुरका राजा अशनिवेगका पुत्र विजयसिंह क्रोधित हुआ, श्री मुनिसुव्रतनाथके समयमें (इ० २ पृ० ९७)। (२) विजयार्द्धकी दक्षिण श्रेणीका नगर किन्नरोद्गीतपरका राजा अर्चिमाला उसका पुत्र, जिसकी कन्या श्यामा थी जिसको वसुदेवजीने व्याहा था (ह० पृ० २२१)। (३) कृष्णके मित्र विद्याधर राजा जो जरासंधके साथ युद्ध करनेमें कृष्णके मददगार हुए (ह. पृ. ४७१)।

अशय्याराधिनी–एक विद्याका नाम जिसे धरणेन्द्रने श्री रिषभदेवके समयमें नमि विनमि विद्याधरको प्रदान की (ह० पृ० २९६)।

अशरण–जहां कोई रक्षक न हो–शरणविनाका।

अशरण भावना– } बारह भावनाओंमें दूसरी
अशरणानुप्रेक्षा– } भावना। ऐसा बार बार

चिंतवन करना कि जन्म, जरा, मरण व तीव्र रोग व कर्मोदयसे कोई बचानेवाला नहीं है। कोई मित्र, स्वामी, पुत्र, सेवक, रक्षक आदि बचा नहीं सक्ते। श्री पंचपरमेष्टीका स्मरण या आत्मध्यान ही एक शरण है (सर्वा० अ० ९ सू० ७)।

अशरीर–शरीर रहित सिद्ध परमात्मा, निकल परमात्मा।

अशीतिक–अंग बाह्य श्रुतका १४ प्रकीर्णक (गृ० द्र० सं० पृ० १६९ गाथा ४२); निपिद्धिका भी कहते हैं।

अशुचि–अपवित्र, (२) व्यंतरोंमें पिशाच जातिके १४ भेद हैं उनमेंसे छठा भेद (त्रि.गा.२७१)

अशुचित्व–अपवित्रता, मलीनता, (२) दो प्रकारकी है–(१) लौकिक अशुचित्व–जिससे लोक व्यवहारमें अशुचिता मानी जावे वह अशुचि आठ तरहसे मिटती है; काल, अग्नि, पवन, भस्म, मिट्टी, गोबर, जल, ज्ञान। (२) अलौकिक अशु-

चित्व–कर्म कलंकसे व रागभावसे आत्माका मलीनपना सो शुद्ध स्वरूपमें तिष्टनेसे मिटता है (सर्वा० जग० पृ० ६७५)।

अशुचित्वानुप्रेक्षा– } बारह भावनाओंमें छठी
अशुचि भावना– } भावना। यह चिंतवन करना कि यह शरीर अशुचि है, शुक्र शोणितसे बना है, दुर्गंध व घृणित पदार्थोंसे भरा है, यह स्नानादिसे शुद्ध नहीं होसक्ता। शरीर अशुचि है परन्तु जीव अत्यन्त पवित्र है, रत्नत्रय स्वरूप है, आत्मा ही भवतारक है। (सर्वा० अ० ९ सू० ७)

अशुद्ध–मैला, अपवित्र, कर्मबंध सहित।

अशुद्ध जीव–संसारी जीव, कर्मबंध सहित जीव, शरीर सहित जीव।

अशुद्ध द्रव्य नैगमनय–जो अशुद्ध द्रव्यका संकल्प करे, जैसे कहना कि यह गुणवान है सो द्रव्य है। (सर्वा० जग० टीका पृ० ४९७)।

अशुद्ध द्रव्य व्यञ्जन पर्याय नैगमनय–जो अशुद्ध द्रव्यके आकारका संकल्प करे, जैसे जीव है सो गुणी है (सर्वा० ज० पृ. ४९८)।

अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय–वह अपेक्षा जो अशुद्ध द्रव्यको ग्रहण करे।

अशुद्ध द्रव्य अर्थपर्याय नैगम नय–जो नय अशुद्ध द्रव्यकी पर्यायका संकल्प करे जैसे कहना कि विषयी जीव है सो एक क्षण सुखी है। यहां जीव तो अशुद्ध द्रव्य है, सुख है सो अर्थ पर्याय है। (सर्वा०ज० पृ० ४९८)।

अशुद्ध निश्चयनय–जिस नयसे अशुद्ध स्वभाव वर्णन हो जैसे जीवको मतिज्ञानादिका कर्ता कहना (सर्वा०ज० पृ० ४९४)।

अशुद्ध परिणाम–जीवका अशुद्ध भाव, शुभ व अशुभ भाव।

अशुद्ध पुद्गल द्रव्य–बंध प्राप्त पुद्गल स्कंध (पंचा० दर्पण पृ० ३२९)।

अशुद्ध प्रशस्तनिदान–संसारका कारण रूप ऐसी अच्छी इच्छा आगामीके लिये करना जैसे उत्तम जाति, कुल आदिका चाहना (सागार० अ० ४ श्लोक १)।

अशुद्ध भाव–शुभ, तथा अशुभ जीवके परिणाम।

अशुद्ध सद्भूत व्यवहार नय–अशुद्ध गुण गुणीका या अशुद्ध पर्याय और पर्यायवानका भेद करना जिस नयसे हो। जैसे संसारी जीवको देवपर्याय। (सर्वा० ज० पृ० ४९६)

अशुद्ध आचरण–राग सहित आचरण।

अशुद्धि–शुद्धिका न होना, मलीनता। देखो "अशुचित्व"।

अशुद्धोपयोग–आत्माका भाव जो शुद्ध वीतराग न हो किंतु शुभ व अशुभ रूप हो।

अशुभ आयु–नरक आयु।

अशुभ आस्रव–अशुभ भाव जिनसे पापकर्मोंका आना हो। मन वचन कायका अशुभ वर्तन, दूसरेका वध चिन्तना, ईर्षा रखना, बुरा विचारना अशुभ मनोयोग है। असत्य, कठोर, असभ्य वचन कहना अशुभ वचन योग है। हिंसा, चोरी, मैथुन करना आदि अशुभ काययोग है। इन भावोंसे ज्ञानावरणादि चार घातिय कर्म तथा असाता वेदनीय, अशुभ आयु, अशुभ नाम, नीचगोत्रके बंध योग्य कर्म वर्गणाओंका आना होता है (सर्वा.अ.६सू.३)

अशुभ उपयोग–आत्माका भाव अशुभ आशय सहित होना।

अशुभ कर्म–पापकर्म प्रकृति–ज्ञानावरणकी ५, दर्शनावरणकी ९, मोहनीय कर्मकी २८, अंतरायकी ५ ये ४७ घातीयकी अशुभ प्रकृतियां हैं व अघातियकी ५३ सब १०० प्रकृतियां अशुभ कर्म हैं देखो "अप्रशस्त अघातिया कर्म"। (२) अशुभ या खोटा काम।

अशुभ काययोग–शरीरका अशुभ कार्योंमें चलाना।

अशुभ गति–नरक गति व तिर्यंच गति जहां अशुभ अवस्थाएं होती हैं।

अशुभ तैजस–क्रोधवश साधुके बाएं कंधेसे

तैजस शरीर सहित आत्मप्रदेशोंका फैलना जो नगरादिको व साधुको भस्म कर देता है।

अशुभ ध्यान–खोटे ध्यान जो संसारके कारण हैं। जिनसे पापकर्म बंधे–आर्तध्यान जिसमें दुःखरूप परिणाम हों, रौद्रध्यान जिसमें दुष्ट आशय रूप भाव हों अशुभ ध्यान हैं (सर्वा० अ० ९ सू० २८)

अशुभ नामकर्म–नामकर्मकी ९३ प्रकृतियोंमेंसे पापप्रकृतियां देखो "अप्रशस्त अघातिया कर्म"।

अशुभ परिणाम–पाप बंधकारक भाव।

अशुभ पात्र–जिनको धर्मबुद्धिसे दान दिया जाय। वे पात्र हैं जो सम्यग्दर्शन सहित हैं। वे सुपात्र हैं। उनके सिवाय जो सम्यग्दर्शन रहित परन्तु जिनागमके अनुसार गृहस्थ या मुनिका चारित्र पालते हैं व व्यवहार सम्यग्दृष्टी हैं वे कुपात्र हैं। ये अशुभ पात्र हैं तथापि दान देनेयोग्य हैं। जो श्रद्धान व चारित्र दोनोंसे शून्य हैं वे दान देनेयोग्य नहीं। अपात्र हैं ये भी अशुभ पात्र हैं। (ध० सं० अ० ८ श्लो० १११-११७-११८)।

अशुभ प्रकृति–पाप कर्म या अशुभ कर्म दो २ अशुभ कर्म।

अशुभ भाव–पापकर्मबंधकारक भाव।

अशुभ मनोयोग–मनको परके वधमें, ईर्षामें, द्वेषमें बुराईमें प्रवर्ताना।

अशुभ लेश्या–क्रोध, मान, माया, लोभ कषायोंसे रंगी हुई मन, वचन, काय योगोंकी प्रवृत्ति लेश्या है। उसके छः भेद हैं–कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म, शुक्ल। उनमें पहली तीन अशुभ हैं। "लिंपति एतया" इति लेश्या। जिससे जीव पाप तथा पुण्यसे लिपै वह लेश्या है। इन छः प्रकार लेश्याके भावोंका एक दृष्टान्त है—

एक२ लेश्यावाले छः पथिक फल खानेके इच्छुक वनमें एक फलीभूत वृक्षको देखकर ऐसा चितवन करते हैं–कृष्ण लेश्यावाला जड़मूलसे वृक्षको उखाड़ने चाहता है, नील लेश्यावाला जड़को छोड़ पेड़को काटना चाहता है, कापोत लेश्यावाला वृक्षकी बड़ी शाखाओंको छेदना चाहता है, पीत लेश्यावाला फल लगे छोटी शाखाओंको तोड़ना चाहता हैं, पद्मलेश्यावाला मात्र फलोंको तोड़ना चाहता है व शुक्ल लेश्यावाला भूमिपर आपसे गिरे हुए फलोंको खाना चाहता है। कृष्ण लेश्यावाला दयारहित, मंदवचन बोलनेवाला व वैरको नहीं छोड़नेवाला व सर्वनाश करनेवाला स्वच्छंद, अति विषयलम्पटी, मानी व आलसी होता है। नीललेश्यावाला अतिनिद्रालु, धनका अतिवांछक व ठगनेवाला होता है। कापोतलेश्यावाला परनिन्दक, शोकी, ईर्षावान, आत्मप्रशंसा वांछक, खुशामद पसंद, कार्य अकार्य विचार रहित होता है। ये तीन अशुभ भाववाले हैं–पीतलेश्यावाला विवेकी दयादानमें प्रीतिवंत कोमल परिणामी होता है, पद्मलेश्यावाला त्यागी, साधुसेवामें लीन शुभ कार्यमें विशेष विशेष उद्यमी होता है व शुक्ललेश्यावाला वैरागी, समदर्शी, सहनशील व शांत परिणामी होता है (गो० जी० गा० ४८९-४९०, ५०७-५०८ से ५१७ तक)।

अशुभ वचनयोग– } अशुभ कार्योंमें वचनका
अशुभ वाग्योग– } प्रवर्तना।

अशुभ श्रुत–वह शास्त्र या उपदेश जिसके सुननेसे जीवका अकल्याण हो। राग व द्वेष बढ़े। यह अनर्थदंडका एक भेद है (चा० पृ० ८१७)।

अशुभ श्रोता–

कथा सुननेवाले श्रोता १४ प्रकारके होते हैं—

(१) मिट्टीके समान–सुनते हुए कोमल हों फिर कठोर होजावें। (२) चालनीके समान–जो गुणोंको छोड़कर औगुण लेवें। (३) बकरेके समान–जो काम भावमें चित्त रक्खें। (४) बिल्लीके समान–जो दुष्ट व घातक स्वभाव रक्खें। (५) तोतेके समान–जो स्वयं न समझके जैसा कोई कहे वैसा करें। (६)–बगुलाके समान–जो बाहरसे भद्र परिणामी भीतरसे मलीन। (७) पाषाणके समान–जो कभी नहीं पसीजें। (८)

सर्पके समान—जो अमृतको विष समान ग्रहण करें। (९) गायके समान—जो थोड़ा सुनकर बहुत लाभ लें। (१०) हंसके समान—जो सार पदार्थको ग्रहण करें। (११) भैंसेके समान—जो सभामें उपद्रव करें। (१२) फूटे घड़ेके समान—जिनमें उपदेश ठहरे ही नहीं। (१३) डांसके समान—जो सभाको व्याकुल करदें। (१४) जोंकके समान—जो गुणोंको छोड़कर औगुण ग्रहण करें। इनमें जो गाय व हंसके समान हैं वे उत्तम हैं, मिट्टी व तोतेके समान हैं वे मध्यम हैं। शेष १० प्रकारके अधम या अशुभ श्रोता हैं। (आ० पर्व १)।

अशुभोपदेश—पापका उपदेश, अनर्थ दंडका एक भेद। इसके चार भेद हैं (१) क्लेशवाणिज्योपदेश—दासी दासको वेचनेका उपदेश, (२) तिर्यग्वाणिज्योपदेश—गाय भैंस घोड़े आदिका वेचनेका उपदेश। (३) वधकोपदेश—हिरण आदि पशु मारनेका उपदेश, (४) आरंभकोपदेश-किसान आदिको नाना प्रकारका आरम्भका उपदेश देना। (चा० पृ० १६–१७)।

अशुभोपयोग—पापके आनेका कारण भाव—जैसे प्रमाद बहुलाचर्या—बहुत प्रमाद व असावधानी सहित काम करना जिससे जीवघातादि पाप हों, कालुष्य—चित्तकी क्रोध, मान, माया, लोभकी तीव्रतासे मलीनता, विषयोंमें लोलुपता, दूसरोंको दुःख देना, दूसरोंकी निन्दा करनी, चार संज्ञा—आहार, भय, मैथुन व परिग्रहमें लीनता। तीन लेश्या—कृष्ण, नील, कापोत अशुभ लेश्याके भाव, इन्द्रियवशता—इन्द्रियोंके आधीन रहना। आर्त-रौद्रध्यान, दुःप्रयुक्त ज्ञान—खोटे मार्गमें लगाया हुआ ज्ञान। मोह—मूर्छा (पंचा.गा.१३९–१४०)।

अंशुमान—श्री रिषभदेवके समान विजयार्द्धके विद्याधर राजा नमिका पुत्र (ह० पृ० २९८) (२) वसुदेवकी स्त्री कपिलाका भाई (ह०पृ०२७४)।

अशेष परम तत्व विचार—भावसेन कृविकृत (दि० जै० नं० २०७)।

अशोक—(१) एक प्रातिहार्य अशोक वृक्ष जो श्री अरहंत परमेष्ठीके होता है। (२) किन्नरादि व्यंतर देवोंके यहां चैत्य वृक्ष जिनके मूलमें एक एक दिशामें चार चार प्रतिमाएं होती हैं। (त्रि० गा० २९३–२९४); (३) जिन स्वर्गोंके इन्द्र जिन विमानोंमें रहते हैं उनके चारों तरफ चार विमान होते हैं उनमेंसे एक दिशाके विमानका नाम (त्रि० गा० ४८४) (४) देवोंके नगरके बाहर इस नामका बनखण्ड होता है (त्रि० गा० ५०२) (५) नंदीश्वर द्वीपकी वापिकाके चारों तरफ चार वन होते हैं। एकका नाम (त्रि० ९७२)। (६) जंबूद्वीपकी वेदीके चार तरफ चार द्वार हैं उनमें विजय द्वारका स्वामी विजयदेव है उसके नगरसे २५ योजनकी दूरीपर अशोक वन है व अशोक वनकी उत्तर और पूर्व दिशामें अशोक नामका नगर है (ह० पृ० ७४)। (७) समवशरणकी रचनामें नाट्यशालाके आगे पूर्व दिशामें अशोकवन है उसमें अशोकवृक्ष है (ह० पृ० ५०७)। (८) कृष्णकी चौथी पटरानी सुसीमाके पूर्वभवमें राजा अशोककी कन्या श्रीकांता हुई। (ह० पृ० ५६०)।

अशोकदत्ता—द्रौपदीके पूर्वभवमें एक धनदेव वैश्यकी स्त्री (ह० पृ० ६१५)।

अशोका—पांडवोंके परदेश भ्रमणमें राजा प्रचंड वाहनकी कथा। युधिष्ठिरको चाहनेवाली (ह० पृ० ४३५) (२) विदेहकी एक प्रसिद्ध राजधानी (ह० पृ० ६६) (३) समवशरणकी रचनामें एक वापिकाका नाम (स० मं० द्वि० अ० ११६) (४) विजयार्द्धकी उत्तरश्रेणीकी २४ वीं नगरी (त्रि० गा० ७०४)।

अश्मक—ऋषभदेवके समयमें भरतकी दक्षिण दिशाका एक देश (ह० पृ० १३७)।

अश्रुपात अंतराय—साधुको ३२ अंतरायोंमेंसे छठा अंतराय। दुःखसे आंसू निकलते देखकर भोजन न करना (मू० गा० ४९५)।

अश्व–२७वें नक्षत्रका अधिदेवता (त्रि० गा० ४३९)।

अश्वकण्ठ–आगामी कालके भरतके प्रसिद्ध चौथे प्रतिनारायण (त्रि० गा० ८८०)

अश्वकर्ण करण–जैसे घोड़ेका कान मध्यप्रदेशसे आदि पर्यंत क्रमसे घटता होता है उसी तरह जहां चार संज्वलन कषायके अनुभागको घटाते हुए प्रथम अनुभाग कांडकके घातके पीछे क्रोध आदि लोभ पर्यंत कषायका अनुभाग क्रमसे घोड़ेके कानके समान घटता ही चला जाय वह अश्वकर्ण करण है। (क० गा० ४६२)

अश्वक्रांता–कर्मपरमाणुओंकी अनुभाग शक्तिको घटानेकी क्रिया।

अश्वग्रीव–भरतका वर्तमान चौथे कालमें प्रसिद्ध पहिला प्रतिनारायण (त्रि०गा० ८२८); (२) भरतका आगामी ७वां प्रतिनारायण (त्रि०गा० ८८०)

अश्वत्थ–असुरकुमारादि भवनवासियोंके प्रथम चैत्यवृक्षका नाम (त्रि० गा० २१४)।

अश्वत्थामा–द्रोणाचार्यका पुत्र (ह०पु०४२१)

अश्वधर्मा–राक्षसवंशी विद्याधरोंका एक राजा (इ० २ पु० ९२)

अश्व ध्वज–राक्षसवंशी विद्याधरोंका एक राजा (इ० २ पु० ५८)

अश्वपुरी–विदेहक्षेत्रकी एक राजधानी (त्रि० गा० ७१४)।

अश्वराज–(आसकरण) आबूके प्रसिद्ध जैन मंदिर बनवानेवले वस्तुपाल तेजपालके पिता (शिक्षा पृ० ६७१)।

अश्वसेन–(१) श्री पार्श्वनाथ तीर्थंकरके पिता, बनारसके राजा (२) वसुदेवकी स्त्री अश्वसेनाके पुत्र (ह० पु० ४५७)।

अश्वसेना–वसुदेवकी स्त्री (ह० पु० ४५७)।

अश्व स्थान–१२वां ग्रह (त्रि० गा० ३६४)।

अश्वाय–राक्षसवंशी एक विद्याधर राजा (इ० २ पृ० ९२)

अश्विनी–द्रोणाचार्यकी स्त्री (ह०पु० ४२१)।

अष्ट अगद ऋद्धि–आठ औषधि ऋद्धि–तपके बलसे साधुओंको विशेष शक्ति उत्पन्न होजाती है। आठ भेद हैं (१) आमर्श–असाध्य भी रोग मुनिके पाद आदि स्पर्शसे दूर हो (२) क्ष्वेल–साधुका थूक ही लग जाय तो रोग मिट जाय (३) जल्ल–साधुका पसीना लगनेसे रोग मिटे (४) मल–नाक कान नेत्र दांतके मलसे ही रोग दूर हो, (५) विट्–मल मूत्रके लगनेसे रोग मिटे, (६) सर्वौषधि–मुनिके अंगसे स्पर्शी पवनसे रोग मिटे, (७) आस्याविष–तीव्र जहरका अपहार जिनके मुखमें जानेसे विषरहित हो, (८) दृष्ट्यविष–जिनके देखने मात्र करि तीव्र जहर दूर होजावे। (सर्वा० अ० ३ सूत्र ३६)।

अष्ट अनुयोग–पुलाकादि पांच तरहके मुनियोंका विचार आठ रीतियोंसे साधना होता है। (१) संयम–सामायिकादि चारित्रमें कितना पुलाक, बकुश, कुशील, निग्रन्थ, स्नातकके संभव है। (२) श्रुत–शास्त्रका ज्ञान कितना२ संभव है। (३) प्रतिसेवना–उपकरण व शिष्यादिमें राग है व नहीं। (४) तीर्थ–तीर्थंकर है या सामान्य केवली है। (५) लिंग–भेष क्या है? (६) लेश्या–भावलेश्या क्या२ संभव है? (७) उपपाद–शरीर छोड़नेपर कौन कितने स्वर्गतक जाता है। (८) स्थान–संयमके स्थान कितने संभव हैं (सर्वा० अ० ९ सू० ४७)

अष्ट अंग–शरीरके (देखो प्र० जि० पृ० ८० नोट नं० १), (२) अष्ट अंग सम्यग्दर्शनके–(१) निःशंकित–शंका या भय न करना। (२) निःकांक्षित–भोगोंकी इच्छा न करना। (३) निर्विचिकित्सित–घृणा न करना। (४) अमूढ़ दृष्टि–मूढ़तासे कोई धर्म न सेवना। (५) उपगूहन–अपने गुण ढकाना (६) स्थितिकरण–धर्ममें स्थिर करना। (७) वात्सल्य–धर्मात्माओंमें प्रेम करना। (८) प्रभावना–धर्मकी महिमा प्रगट करनी। (३) आठ अंग ज्ञानाचारके (१) शब्दशुद्धि, (२) अर्थ-

अष्टांग नमस्कार—दो भुजा, दो पग, नितम्ब, पीठ, उदर व मस्तक इन आठ अंगोंसे नमस्कार करना।

अष्टांग हृदय—वाग्भट्टकृत वैद्यक ग्रंथ छपा है।

अष्टांग हृदय टीका—पं० आशाधरकृत (दि० जैन ग्रं० नं० २९)

अष्टांगहृदयोद्योतिनी टीका—पं० आशाधरने अष्टांग हृदयपर सं० टीका लिखी (विद्व०पृ०१०९)

अष्टांगोपाख्यान—मेधावी पंडित कृत (दि० जैन ग्रं० नं० २३८)।

अष्टादशक्षयोपशमिक भाव—४ ज्ञान केवल विना ३ अज्ञान ३ दर्शन केवल विना, ५ लब्धियां दानादि, १ क्षयोपशम सम्यक्त, क्षयोपशमचारित्र, संयमासंयम (सर्वा० अ० २ सू० ५)।

अष्टादश जन्म मरण—१ श्वास (नाडी फडकन काल)में १८ वार जन्म मरण लब्धपर्याप्तक निगोद जीव करता है।

अष्टादश जीव समास—पृथ्वी, जल, तेज, वायु, नित्यनिगोद साधारण वनस्पति, इतरनिगोद साधारण वनस्पति ये छः सूक्ष्म व बादरके भेदसे १२ हुए। प्रत्येक वनस्पति द्वेंद्रिय, तेंद्रिय, चौंद्रिय, असैनी पंचेंद्रिय, सैनी पंचेंद्रिय। हम संसारी जीवोंको इन १८ भेदोंमें बांट सक्ते हैं (गो० जी०गा० ७६)

अष्टादश दोष—अरहंतके १८ दोष नहीं होते हैं। (१) क्षुधा, (२) तृषा, (३) भय, (४) द्वेष (५) राग, (६) मोह, (७) चिन्ता, (८) बुढ़ापा, (९) रोग, (१०) मरण, (११) पसीना, (१२) खेद, (१३) मद, (१४) रति, (१५) आश्चर्य, (१६) जन्म, (१७) निद्रा, (१८) विषाद। (आप्त० श्लो० १५–१६)

अष्टादश द्रव्यश्रुत—देखो शब्द "अक्षर समास ज्ञान" (प्र० जि० पृ० ४० नोट ३) अक्षरज्ञानसे पूर्व समासज्ञान तक।

अष्टादश धान्य—(१) गेहूं, (२) चावल, (३) जव, (४) सरसों, (५) उड़द, (६) मूंग, (७) स्यामाक (मसूर), (८) कंगु, (९) तिल, (१०) कोदव, (११) राजमाषा, (१२) कीनाश, (१३) ताल, (१४) मथवैणव, (१५) मोढ़कीय, (१६) सिम्बा, (१७) कुलथि (१८) चणकादि बीज। (गृ० अ० ८ परि० प्रमाण)

अष्टादश बुद्धि ऋद्धि—तपके बलसे साधुओंको वो ऋद्धियें होती हैं। बुद्धिऋद्धि १८ प्रकार है (१) केवलज्ञान, (२) अवधिज्ञान, (३) मनःपर्ययज्ञान, (४) बीजबुद्धि—एक बीजपदसे अनेक पदके अर्थोंका ज्ञान, (५) कोष्ठबुद्धि—जैसा जाना होवे कोठेमें रक्खेकी तरह उसी तरह याद रक्खें। (६) पदानुसारित्व—किसी ग्रन्थका आदि, मध्य या अंतका एक पदका अर्थ सुनके सर्व ग्रंथका अर्थ जान लेना। (७) संभिन्नश्रोतृत्व—१२ योजन लम्बे व ९ योजन चौड़े चक्रवर्तीके कटकमें होनेवाले मानव व पशुओंके शब्द एक साथ अलग २ सुन लेना। (८) दूरास्वादन समर्थता—बहुत दूरसे रसके स्वादको ले सकें, ९ योजनसे बाहर भी, (९) दूर घ्राण समर्थता—९ योजनसे भी बाहरकी गंध जाननेकी शक्ति (१०) दूर दर्शन समर्थता—४७२६३$\frac{7}{20}$ योजनसे भी दूरकी वस्तु देखनेकी शक्ति। (११) दूर स्पर्शन समर्थता—नौ योजनसे भी दूर वस्तुको स्पर्श सकें। (१२) दूर श्रवण समर्थता—१२ योजनसे भी अधिक शब्द सुन सकें। (१३) दश पूर्वित्व—१४ पूर्वमेंसे १० पूर्वतकका ज्ञान। (१४) चतुर्दश पूर्वित्व—सम्पूर्ण श्रुतका ज्ञान। (१५) अष्टांग महानिमित्तज्ञाता—१ अंतरीक्ष (आकाशके नक्षत्रोंसे जानना), २ भौम—(पृथिवीकी कठोरता आदिसे जान लेना), ३ अंग—(अंग-उपंगको देखकर दुःख सुख जानना), ४ स्वर—(शब्दके सुननेसे जानना), ५ व्यंजन—(तिल मसारो आदि चिन्होंसे जानना), ६ लक्षण—(स्वस्तिक, झारी, कलश आदि लक्षणोंसे जानना), ७ छिन्न—(फटे वस्त्रादिसे पहचानना), ८ स्वप्न—(स्वास्थ्य पुरुषके स्वप्नोंका अच्छा बुरा

फल बताना)। (१६) प्रज्ञाश्रवणत्व-विशेष बुद्धिकी प्रगटता, द्वादशांग बिना पढ़े भी सूक्ष्म तत्वको जान लेना। (१७) प्रत्येक बुद्धता-परके उपदेश बिना ही ज्ञान व संयमकी दृढ़ता। (१८) वादित्व-वादमें उन्हें कोई जीत न सके (भग० पृ० ५१७-५२१)

अष्टादश मिश्रभाव-देखो 'अष्टादश क्षयोपशमिक भाव'।

अष्टादशलिपि-१ ब्राह्मी, २ यवनानी, ३ दशोत्तरिका, ४ खरोष्ट्रिका, ५ पुष्करसारिका, ६ पार्वतिका, ७ उत्तरकुरुका, ८ अक्षर पुस्तिका, ९ भौमवद्दिका, १० विक्षेपिका, ११ निक्षेपिका, १२ अंक, १३ गणित, १४ गंधर्व, १५ आदर्शक, १६ माहेश्वर, १७ द्राविड़ी, १८ बोलिंदी लिपि (पन्नवना सूत्र चौथा उपांग-विश्वकोष पृष्ठ ६०)।

अष्टादशश्रेणी-एक राजा १८ श्रेणियोंका स्वामी होता है-(१) सेनापति, (२) गणकपति-ज्योतिषी, (३) वणिकपति, (४) दण्डपति, (५) मंत्री, (६) महत्तर-कुलमें बड़ा, (७) तलवर-कोतवाल, (८) से (११) चार वर्ण क्षत्रियादि, (१२) से (१५) चार प्रकार सेना-हाथी, घोड़े, रथ, प्यादे, (१६) पुरोहित, (१७) अमात्य-देश अधिकारी, (१८) महा अमात्य-सर्व राज्य कार्य अधिकारी (त्रि.गा. ६८३)

अष्टादशसहस्र मैथुन भेद-देखो (प्र० जि० पृ० २४७)।

अष्टादशसहस्र ब्रह्मचर्य दोष-देखो ऊपरका शब्द।

अष्टादशसहस्र शील-देखो (प्र० जि० पृ० २४९)।

अष्टादशसहस्र शीलांगकोष्टक-,, पृ० २५०

अष्टाह्निका यज्ञ, मह, पूजा-देखो "अठाईपूजा" (प्र० जि० पृ० २३३)।

अष्टाह्निका कथा-देखो अठाईव्रत कथा (प्र० जि० पृ० २३९)।

अष्टाह्निका पर्व-देखो "अठाईपर्व" (प्र० जि० पृ० २३३)।

अष्टाह्निका व्रत-देखो अठाईव्रत (प्र० जि० पृ० २३६)।

अष्टाह्निका व्रतोद्यापन-देखो अठाईव्रत उद्यापन (प्र० जि० पृ० २३९)।

अष्टाह्निका सर्वतोभद्रचतुर्मुख पूजा-मुकुटबद्ध राजा लोग चार दरवाजेका मंडप बनाकर बीचमें चार प्रतिमा विराजमानकर जो अष्टाह्निकाकी पूजा करते हैं (सा० अ० २ श्लो० २७)।

अष्टापद-कैलाश पर्वत जहांसे ऋषभदेव मोक्ष गए।

अष्टाविंशति इन्द्रिय विजय-इंद्रिय संयममें पांच इंद्रिय व मनके २८ विषय रोकने चाहिये। स्पर्शनके ८, रसनाके ५, घ्राणके २, चक्षुके ५, कर्णके गानके षड्ज आदि सात स्वर। (मू० गा० ४१८) मनकी संकल्प विकल्प। प्र० जि० पृ० २२२)।

अष्टाविंशति नक्षत्र-देखो "अट्ठाईस नक्षत्र" (प्र० जि० पृ० २२२)।

अष्टाविंशतिप्ररूपणा-देखो अट्ठाईस प्ररूपणा (प्र० जि० पृ० २२३)।

अष्टाविंशतिभाव-देखो "अट्ठाईस भाव" (प्र० जि० पृ० २२४)।

अष्टाविंशति मतिज्ञान भेद-देखो अट्ठाईस मतिज्ञान भेद (प्र० जि० पृ० २२५)।

अष्टाविंशति मूलगुण-देखो अट्ठाईस मूलगुण (प्र० जि० पृ० २२६)।

अष्टाविंशति मोहनीय कर्म-देखो अट्ठाईस मोहनीय कर्म (प्र० जि० पृ० २२७)।

अष्टाविंशति विषय-देखो अट्ठाईस इन्द्रिय विषय (प्र० जि० पृ० २२२)।

अष्टाविंशति श्रेणीबद्ध सुन्दर चिन्ह-देखो अट्ठाईस श्रेणीबद्ध चिन्ह पृ० २२८ प्र० जि०।

अष्टाशीति गृह–देखो "अठासीगृह" प्र० जि० पृ० २९१।

अष्टोपांग–आठ अँग जो दो पग, दो बाहु, १ नितम्ब, १ पेट, १ पीठ, १ मस्तक हैं उनके भीतर रहनेवाले छोटे २ अँग उपांग कहलाते हैं जैसे आंख, नाक, अंगुली आदि (गो०क०गा०२८)

असंक्षेपाद्धा–सबसे थोड़ा काल, आयु कर्मके बंधनके पीछे उदय आनेका सबसे कम काल या आबाधा या अंतर जो आवलीका असंख्यातवां भाग प्रमाण है। कोई जीव मरणके होनेमें एक समय कम मुहूर्त्त प्रमाण आयु बाकी रहनेपर या एक समय और आवलीका असंख्यातवां भाग प्रमाण आयु बाकी रहनेपर परभवके लिये आयु बांधता है उसकी अपेक्षा इतना थोड़ा काल है। अर्थात बंधनेके पीछे इस असंक्षपाद्धा काल पीछे परभवकी आयुका उदय अवश्य होगा (गो०क०गा०१९८)।

असंख्यात–देखो शब्द "अंकगणना" प्र०जि० पृ० ८६।

असंख्यात गुणहानि–किसीमें किसीका असंख्यात गुण घटाना।

असंख्यात गुणवृद्धि–किसीमें किसीका असंख्यात गुण बढ़ाना।

असंख्यात प्रदेशी–एक अविभागी पुद्गलका परमाणु जितना स्थान आकाशका घेरता है, उसको प्रदेश कहते हैं, उस प्रदेशसे द्रव्योंकी माप की जाय तो एक जीव द्रव्य, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय व लोकाकाश ये चारों लोकके बराबर असंख्यात प्रदेश रखनेवाले द्रव्य हैं। एक जीव भी केवल समुद्घातके समय लोकभरमें फैलता है, शेष समयमें शरीराकार रहता है व समुद्घातोंमें कुछ दूर तक फैलता है।

असंख्यात भाग वृद्धि–हानि–किसी अंकको किसी असंख्यातसे भाग देनेपर जितना आवे उतना किसी संख्या उसीमें जोड़ देना। छः प्रकारकी वृद्धि होती है, छः प्रकारकी हानि होती है। उनके नाम हैं–अनंत भाग वृद्धि, असंख्यात भाग वृद्धि, संख्यात भाग वृद्धि, संख्यात गुण वृद्धि, असंख्यात गुण वृद्धि, अनंत गुण वृद्धि। फिर छः हानि हैं अनंत भाग हानि, असंख्यात भाग हानि, संख्यात भाग हानि, संख्यात गुण हानि, असंख्यात गुण हानि, अनंत गुण हानि। द्रव्योंमें स्वभाव सदृश पर्याय अगुरुलघुगुणके आश्रय होती है। अगुरुलघुगुणके अंशोंमें यह वृद्धि हानि हुआ करती है इसीसे सर्व द्रव्य सदा परिणमनशील रहते ही हैं (अ० प०)।

असंख्याताणु वर्गणा–पुद्गलका एक स्कन्ध (molecule) जिसमें असंख्यात परमाणु मिलकर बंधरूप एकमेक होगए हो (गो०जी०गा०५९३)।

असंख्याता संख्यात–एक गणना। देखो अंक गणना (प्र० जि० पृ० ८६)।

असंख्येय वर्षायु–असंख्यात वर्षकी आयु रखनेवाले भोगभूमिके मनुष्य या पशु–इनकी आयु खण्डन नहीं होती है (सर्वा० अ० २ सू० ५३)।

असंग कवि–वर्धमान काव्य व टीकाके कर्ता (दि० ग्रं० नं० २३)।

असंग–परिग्रह त्याग। ममत्वका न होना, अंतरंग व बहिरंग परिग्रहका त्याग (मू० गा० ९)।

असणी घोष–रावणके योद्धाओंमेंसे एक (इति. २ पृ० १२०)।

असत्–मिथ्या, अवास्तविक, अभाव, जो कभी नहीं था।

असती पोष–दूसरे जीवोंके घातक कुत्ता बिल्ली आदिका पालन अथवा दास दासियोंका पालन (सा० अ० ५ श्लो० २१–२३)।

असत्य–प्रमाद सहित अहितकारी बातका कहना। इसके ४ भेद हैं–(१) जो वस्तु हो उसे नहीं कहना, (२) जो वस्तु न हो उसे हां कहना, (३) वस्तु हो कुछ, कहना कुछ, (४) गर्हित पाप सहित, अप्रिय वचन कहना (पुरु. श्लो. ९१–९८)।

असत्यकाय योग—असत्यके अभिप्राय सहित कायसे चेष्टा करना।

असत्य त्याग—असत्य मन वचन कायकी प्रवृत्तिका त्याग।

असत्य मनोयोग—मनमें असत्य विचार करना तब आत्म प्रदेशका सकंप होना।

असत्य वचन—अप्रशस्त व अशुभ वचन कहना।

असत्य वचनयोग—असत्य वचन द्वारा आत्म-प्रदेशका सकंप होना।

असत्यानन्द रौद्रध्यान—असत्य कहने कहलानेमें व असत्यकी अनुमोदना करनेमें दुष्टभाव रखना।

असत्य अव्रत—असत्यका त्याग न करना।

असत्यासत्य—बहुत असत्य। जो अपना पदार्थ नहीं है उसके लिये प्रतिज्ञा करना कि कल तुझे दूंगा (सागा० अ० ४ श्लोक ४३)।

असद्भाव स्थापना—अतदाकार स्थापना, जिस वस्तुमें ठीक आकार न झलके उसमें किसीकी स्थापना करना। जैसे सतरञ्जकी गोटोंमें हाथी, घोड़ेकी स्थापना।

असद्भाव स्थापना पूजा—पूजा करते हुए कमलगट्टा, अक्षत, मिट्टीके पिंड आदिमें किसी अरहंत व सिद्ध आदिकी स्थापना करके पूजा करनी। ऐसी पूजा वर्तमान हुंडावसर्पिणी कालमें मना है (श्र० सं० अ० ९ श्लोक ९०)।

असद्भूत व्यवहारनय—जो मिले हुए पदार्थोंको अभेदरूप ग्रहण करे जैसे यह शरीर मेरा है अथवा मिट्टीके घड़ेको घीका घड़ा कहना (जै० सि० प्र० नं० १०३)।

असद्वेद्य—असाता वेदनीय कर्म जिसके फलसे असाता मालूम होनेका निमित्त प्राप्त होजाता है।

असपत्न ज्ञान—जो ज्ञान केवलज्ञान होने तक छूटे नहीं। जैसे विपुलमति मनःपर्ययज्ञान।

असमर्थ कारण—एक कार्यके लिये भिन्न२ प्रत्येक सामग्रीको असमर्थ कारण कहते हैं। यह कार्यका नियामक नहीं है (जै० सि० प्र० नं० ४०५)।

असमर्थ पक्ष—जो स्वयं असमर्थ है वह कार्यको नहीं कर सक्ता। चाहे जितने कारण मिलो (परी० ६१–६)।

असमान परिणमन—जिस परिणमन या पर्याय पलटनमें वस्तु एक आकारको छोड़कर दूसरे आकारको धारण करले। जैसे सोनेके कड़ेसे अंगूठी बन जाना, मनुष्यका बालकसे युवान होना (पु० २१९१)

असमान परिणमनशील पर्याय—जो अवस्था असमान परिणमनसे हो, जैसे मनुष्यका देव होजाना।

असमीक्ष्याधिकरण अतीचार—अनर्थदण्डका चौथा अतीचार। विना विचार किये प्रयोजनसे अधिक कार्य करना (सा० अ० ५ श्लो० १२)।

असंप्राप्तासृपाटिका संहनन—जिस नामकर्मके उदयसे जुदे२ हाड़ नसोंसे बंधे हुए हों, परस्पर कीले न हों (जै० सि० प्र० नं० २९७)।

असंभव दोष—लक्ष्यमें लक्षणकी असंभवता अर्थात किसी भी तरह संभव न होना (जै० सि० प्र० नं० १२)।

असंभ्रांत—पहले नर्कका सातवां पाथड़ा (ह० पृ० ३४)।

असंयत—संयमका न होना।

असंयत गुणस्थान—वे जीवोंके भावोंके दरजे जहां संयम संभव नहीं है, ऐसे पहले ४ गुणस्थान मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र और अविरत सम्यग्दर्शन।

असंयत सम्यग्दृष्टि—चौथा गुणस्थानवर्ती सम्यग्दृष्टी जीव जो संयमका नियम नहीं पाल रहा है।

असंयम—संयमका न होना—संयम दो प्रकारका है। इंद्रिय संयम—पांच इंद्रिय व मनका वश रखना, प्राणि संयम—पृथ्वी आदि छः कायोंके जीवोंकी रक्षा करना।

असंयमवर्द्धिनीक्रिया—वे क्रियाएं या आचरण जिनसे असंयम बढ़े, इंद्रिय चंचल हों व कषायकी वृद्धि हो।

असंयमी—संयमको न पालनेवाला।

असंसार–मोक्ष जहां परमामृत सुखकी प्राप्ति होती है।

असंज्ञी–मन रहित असैनी जीव, जो हित ग्रहण अहित त्यजनरूप शिक्षा न लेसकें, संकेत न समझ सकें, कार्य अकार्यके लाभ हानिकी मीमांसा न कर सकें, चार इंद्रिय तक सब असैनी होते हैं, पांच इंद्रियवाले पशुओंमें भी कोई २ असैनी होते हैं (गो० जी० गा० ६६१)।

असर्वपर्याय–जिसमें सर्व पर्याय न हों।

असहमत संगम–बारिष्टर चम्पतरायकृत हिंदीमें एक पुस्तक, जिसमें अन्य मतसे मुकाबला करके जैन मतकी उत्तमता बताई है।

असाता–दुःख, सुखका न होना।

असाता वेदनीय कर्म–वह वेदनीय कर्म जिसके निमित्तसे असाता या दुःखका कारण मिले।

असाधारण नियम–विशेष नियम। जैसे भरत ऐरावतके तीर्थंकर जन्मसे मति श्रुत अवधि तीन ज्ञानके धारी होते हैं।

असावद्य कर्म–जिसमें पापका कारण आरम्भादि कर्म बिलकुल न हो जैसे महाव्रती मुनिकी क्रिया।

असावद्य कर्मार्य–सकलव्रती मुनि जो गृहस्थ सम्बंधी कोई आरम्भ नहीं करते हैं (सर्वा० अ० ३ सू० ३६)।

असि–तलवार।

असि आ उसा–एक पांच अक्षरकी जाप–इसमें हरएक अक्षर अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु इन पांच परमेष्टियोंमें पहला है।

असि कर्म–शस्त्रादिके द्वारा क्षत्रीकी आजीविका करना।

असिकर्म आर्य–जो क्षत्री धनुष्य आदि शस्त्रके प्रयोगमें प्रवीण हों।

असिरत्न–चक्रवर्तीकी तलवार।

असिक्थ–कांजी, जिसमें मांडके छूत न हों ऐसे मांड आदि पेय पदार्थ। (सा० अ० ८ श्लो० ५७), जो चिकना न हो ऐसा पेय पदार्थ (धर्म० श्लोक ६६ अ० १०) चावल रहित मांड (भ० पृ० २६७)।

असित पर्वत–एक पर्वत जहां वसुदेवकुमार राजा गंधारकी पुत्री प्रभावतीको लेकर गए (हरि० पृ० ३२२) वहां नीलंयशाको कुमारने परणा था (ह० पृ० २६०)।

असिद्ध–संसारी जीव, जिसका निश्चय न हो, व जो दूसरे प्रमाणसे सिद्ध न हो (जै० सि० प्र० नं० ४०), जिसे सिद्ध करना हो, जो सिद्ध न हो, जिसमें संशय हो, विपरीत ज्ञान हो व अनध्यवसाय हो (परी० २१–३)।

असिद्ध हेतु–जो हेतु सिद्ध न हो।

असिद्ध हेत्वाभास–जिस हेतुके अभावका निश्चय हो। व उसके होनेमें संदेह हो जैसे कहना-शब्द नित्य है क्योंकि नेत्रका विषय है। यह हेत्वाभास है क्योंकि शब्द कर्णका विषय है, नेत्रका विषय नहीं है (जै० सि० प्र० नं० ४४)।

असुर–कल्पवासी देवके सिवाय तीन प्रकारके देव भवनवासी व्यंतर और ज्योतिषी।

असुरकुमार–भवनवासी देवोंके १० भेदोंमें पहला भेद जिनका निवास पहली पृथ्वीके खरभागमें होता है। इनके मुकुटोंमें चूडामणि रत्नका चिह्न होता है। इनमें दो इन्द्र होते हैं–दक्षिणेन्द्रके चौंतीस लाख और उत्तरेन्द्रके तीस लाख भवन होते हैं। उनके सात प्रकारकी सेना होती है-भैंसा, घोड़ा, रथ, हाथी, प्यादा, गंधर्व व नृत्यकी। इनकी उत्कृष्ट आयु १ सागर वर्षकी होती है (त्रि०गा० २०९–२४०)।

असुर देव दुर्गति–जो जीव तप व चारित्र पालते हुए दुष्टपना करे, क्रोधी, अभिमानी, मायाचारी हो व क्लेशित परिणाम करे व वैरभाव रक्खे वह जीव मरकर असुर जातिके अम्ब अम्बरीष नाम भवनवासी देवोंमें पैदा होता है (मू.गा. ६८)

असुर संगीत—वह नगर जिसका राजा मय था जिसकी पुत्री मंदोदरीका विवाह रावणसे हुआ (इति० २ पृ० ६३)।

असैनी जीव—मन रहित जीव। देखो शब्द 'असंज्ञी'।

असैनी पंचेन्द्रिय—वे पंचेन्द्रिय जीव जिनके मन नहीं होता है जैसे कोई२ जातिके पानीके सर्प आदि।

असंक्षेपाद्धा—आयु कर्मकी आबाधाका जघन्य काल—आवलीका असंख्यातवां भाग प्रमाण। कोई जीव परभवके लिये आयु अपनी भोगे जानेवाली आयुमें कमसे कम इतना काल शेष रहनेपर बांधता है। (गो० क० गा० १५८)।

असंग महाव्रत—परिग्रह त्याग महाव्रत—मुनि १४ प्रकार अंतरंग व १० प्रकार बाहरी परिग्रहका त्याग कर देते हैं (मू० गा० ९)।

अस्ति—किसी वस्तुका होना। हरएक पदार्थ अपने द्रव्य क्षेत्र काल भावकी अपेक्षा अस्तिरूप है, सत् है या भाव रूप है। जैसे घड़ा अपने घड़ेपनेकी अपेक्षा है तब हम कहते हैं—स्यात् घटः अस्ति अर्थात् किसी अपेक्षासे अर्थात् अपने घटपनेकी अपेक्षासे घट है या घटकी मौजूदगी है।

अस्ति अवक्तव्य—हरएक पदार्थ एक ही समयमें अस्तिरूप है। अपने द्रव्यादिकी अपेक्षासे तथा तब ही वह नास्ति रूप है पर द्रव्यादिकी अपेक्षासे अर्थात् घड़ेमें घड़े पनेका अस्तित्व है या होना या भाव है परन्तु उस घड़ेके सिवाय अन्य सर्व पदार्थोंका उस घड़ेमें अभाव है या नास्ति है। इस तरह अस्ति व नास्ति या भाव या अभाव दोनों स्वभाव एक ही समयमें है तथापि एक साथ वचनसे कहे नहीं जासके इसलिये अवक्तव्य है। अवक्तव्य होनेपर भी अपने द्रव्यादिकी अपेक्षा अस्तिपना अवश्य है इस बातको अस्ति अवक्तव्य झलकाता है।

अस्तिकाय—जो बहुप्रदेशी द्रव्य हैं उनको अस्तिकाय कहते हैं—जैसे जीव, पुद्गल, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाश। काल अस्तिकाय नहीं है क्योंकि कालाणु आकाशके एक२ प्रदेशमें अलग २ रत्नकी राशिके समान रहते हैं वे कभी मिलते नहीं। जितनी आकाशकी जगहको एक अविभागी पुद्गल परमाणु घेरता है उसको प्रदेश कहते हैं, काल सिवाय पांच द्रव्योंके बहुप्रदेश होते हैं इसलिये वे अस्तिकाय हैं।

अस्ति नास्ति—द्रव्यमें अपने द्रव्यादिकी अपेक्षा अस्तिपना है व परकी अपेक्षा नास्तिपना है। दोनोंको कहना अस्ति नास्ति है। देखो अस्ति अवक्तव्य।

अस्ति नास्ति अवक्तव्य—द्रव्यमें अस्ति व नास्ति दोनों एक कालमें हैं परन्तु एक साथ कहे नहीं जासके इसलिये द्रव्य अवक्तव्य है तथापि अपनी अपेक्षा अस्ति व परकी अपेक्षा नास्तिरूप है। पदार्थोंमें दो विरोधी स्वभावोंको समझानेकी सात रीतियां या भंग हैं। जैसे घटमें अपनी अपेक्षा अस्ति स्वभाव है, परकी अपेक्षा नास्ति स्वभाव है तब इनको सात तरहसे कहेंगे—

१—स्यात् अस्ति घटः—अपनी अपेक्षासे घट है।

२—स्यात् नास्ति घटः—परकी अपेक्षासे घट नहीं है। अर्थात् घटमें और सब अन्यका अभाव है।

३—स्यात् अस्तिनास्ति घटः—किसी अपेक्षासे घटमें अस्ति व नास्ति दोनों स्वभाव हैं।

४—स्यात् अवक्तव्यं—यद्यपि घटमें एक साथ दोनों स्वभाव हैं। तथापि एक साथ वचनसे कहे नहीं जासके।

५—स्यात् अस्ति अवक्तव्यं च—किसी अपेक्षासे यद्यपि घट अवक्तव्य है तथापि अपनी अपेक्षा है जरूर।

६—स्यात् नास्ति अवक्तव्यं च—किसी अपेक्षा यद्यपि घट अवक्तव्य है। तथापि परकी अपेक्षा नास्ति है जरूर।

७—स्यात् अस्ति नास्ति अवक्तव्यं च—किसी अपेक्षा यद्यपि घट अवक्तव्य है, तथापि अस्ति व नास्ति दोनों स्वभाव हैं जरूर।

अस्ति नास्ति प्रवाद पूर्व–बारहवें दृष्टिप्रवाद अँगमें १४ पूर्व होते हैं उनमेंसे चौथे पूर्वका नाम। इसमें सात अंगोंसे जीवादि वस्तुका स्वरूप है। इसके ६० लाख पद हैं।

अस्तित्वगुण–द्रव्योंका एक सामान्यगुण। जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्यका कभी नाश न हो, द्रव्य सदा पाया जावे। (जै० सि० प्र० नं० ११८)

अस्तेय–चोरीका त्याग–प्रमाद भावसे दूसरेकी वस्तु विना दी हुई लेना।

अस्तेय अणुव्रत–स्थूल चोरीका त्याग, जिन वस्तुओंकी सर्वसाधारणमें लेनेकी मनाई नहीं है जैसे–जल, मिट्टी, तिनका आदि। इनके सिवाय किसीकी पड़ी हुई, भूली गई, रक्खी हुई वस्तुको विना कहे ले लेनेका त्याग–यह श्रावकका तीसरा अणुव्रत है। देखो "अचौर्य अणुव्रत"।

अस्त्रविद्या–शस्त्र आदि चलानेकी कुशलता।

अस्थान कवि–सभाकवि–कर्णाटक कवि जैन सन् ई० १३८९ में वाजि वंशके भारद्वाज गोत्रमें उत्पन्न मधुर पुष्करानके पुत्र हरिहररायका सभाकवि था (क० नं० ७१)।

अस्थितिकरण–सम्यग्दर्शनका छठा अंग स्थितिकरण है उसका न पालना। आपको व अन्यको धर्ममें शिथिल होते हुए दृढ़ न करना।

अस्थिर नाम कर्म–नाम कर्मकी वह प्रकृति जिसके उदयसे शरीरकी धातु उपधातु स्थिर न हो।

अस्नानव्रत–जैन साधुके २८ मूलगुणोंमें एक। जैन साधु जलसे स्नान नहीं करते, उबटन नहीं लगाते जिससे प्राणियोंकी रक्षा हो व इंद्रिय संयम हो। उनका शरीर व्रतोंके आचरणसे सदा पवित्र रहता है (मू० गा० ३१)।

अस्वसंविदित–आत्मज्ञानका जिससे बोध न हो ऐसा ज्ञान-स्वानुभव विहीन ज्ञान।

अस्सी-८० का अंक।

अहंकार–घमंड–शरीरादिमें आत्मबुद्धि।

अहमिन्द्र–१६ स्वर्गके ऊपर ९ ग्रैवेयिक, ९ अनुदिश व ५ अनुत्तरमें जो देव होते हैं उनको अहमिंद्र कहते हैं। वे सब बराबरके होते हैं–छोटा बड़ापना नहीं होता है। उनके देवियें भी नहीं होती हैं।

अहिछत (अहिक्षेत्र)–अतिशयक्षेत्र बरेलीके पास आंवला या करेंगी स्टेशनसे ७-८ मील। यहांपरे श्री पार्श्वनाथ स्वामीको कमठके जीवने उपसर्ग किया था ऐसा प्रसिद्ध है व यहीं केवलज्ञान प्राप्त हुआ था। यहां जैन राजाओंने दीर्घकाल तक राज्य किया है। किला है व प्राचीन जिन प्रतिमाएं मिलती हैं।

अहिछत विधान–पं० आशाराम कृत भाषामें (दि० जै० ग्रं० नं० ९)।

अहित भीरुत्व–दुखदाई क्रियाओंसे भय खाना।

अहिलक (ऐलक) (अइलक)–११ वीं प्रतिमाधारी उद्दिष्ट त्यागी श्रावक जो एक लंगोट मात्र रखते हैं, केशोंका लोच करते हैं, हाथमें बैठकर आहार करते हैं (गृ० अ० १७)।

अर्हद्बल्याचार्य–पूर्व देशके पुराद्वर्द्धन पुरवासी जो अंग पूर्व देशके एक देशके जाननेवाले थे इन्होंने मुनियोंके संघ स्थापित किये–नंदि, अपराजित, देव, सेन, गुप्त आदि (श्रुता० ए० १९)।

अहिंसा–प्रमादसे प्राणोंका घात करना, अहिंसा दो प्रकारकी है–एक अंतरंग, दूसरी बहिरंग। अपने आत्मामें रागद्वेषादि भावोंका न होने देना अंतरंग हिंसा है। अपने व दूसरेके प्राणोंकी रक्षा करना बाहरी हिंसा है। आयु, श्वासोच्छ्वास, इन्द्रिय व बल ये चार बाहरी प्राण हैं इनका घात न करना बाहरी हिंसा है। क्रोधादि कषाय सहित मन वचन काय होनेसे ही हिंसा होती है। कषाय रहित भाव रखना अहिंसा है। प्राण सब १० होते हैं। पांच इन्द्रिय, मन वचन काय तीन बल, आयु व श्वासोच्छ्वास इनमेंसे एकेन्द्रिय वृक्षादिके चार प्राण होते हैं–स्पर्श इन्द्रिय, काय बल, आयु, श्वासोच्छ्वास। द्वेन्द्रियके छः होते हैं–रसना इंद्रिय व वचन बल बढ़ जाते हैं।

तेन्द्रियके सात प्राण होते हैं–एक घ्राण इंद्रिय बढ़ जाती है। चौन्द्रियोंके आठ प्राण होते हैं–एक आंख इंद्रिय बढ़ जाती है। मन रहित पंचेन्द्रियोंके नौ प्राण होते हैं–एक कर्ण इंद्रिय बढ़ जाती है। मन सहित पंचेन्द्रियोंके दश प्राण होते हैं–मन बल बढ़ जाता है। जितने अधिक प्राण होंगे व जितने बलवान प्राण होंगे उनके घातमें कषाय भाव भी वैसा ही प्रायः अधिक होता है। इससे अधिक प्राणोंके अधिक बलवान प्राणोंके घातमें अधिक हानि होनेसे अधिक हिंसा है। कम प्राणोंके व कम मूल्यवान प्राणोंके घातमें कम हानि होनेसे कम हिंसा है (पुरु० श्लोक ४२–९०)।

अहिंसा व्रतोपवास–चौदह जीव समासमें संसारी जीव विभक्त हैं। सूक्ष्म एकेंद्रिय, बादर एकेंद्रिय, द्वेंद्रिय, तेंद्रिय, चौंद्रिय, असैनी पंचेंद्रिय, सैनी पंचेंद्रिय। ये सात पर्याप्त और सात अपर्याप्त इन १४ जीव समासोंकी नौ तरहसे हिंसा न करना अर्थात मन, वचन, कायसे करना नहीं, कराना नहीं, अनुमोदना करना नहीं। इस तरह १४×९= १२६ भेद होते हैं इसलिये इस अहिंसाव्रतके १२६ उपवास व १२६ पारणा करना चाहिये। अर्थात लगातार २९२ दिनमें इस व्रतको पूर्ण करना चाहिये (ह० पु० ३९५–३९६)।

अहिंसा अणुव्रत–अहिंसा व्रतको पूर्णपने गृह त्यागी महाव्रती आरम्भ परिग्रह रहित साधु ही पाल सक्ते हैं। गृहस्थ श्रावक यथाशक्ति पाल सक्ता है, इसलिये उसके अणुव्रत कहलाता है। गृहस्थ श्रावक संकल्प करके या इरादा करके द्वेंद्रियादि त्रस जन्तुओंकी हिंसाका त्यागी होता है। यदि कोई (१००) रु० भी दे और कहे कि एक चींटीको मार डालो तो ऐसी हिंसा नहीं करेगा। स्थावर जल वृक्षादिकी हिंसाको उसे नित्य खानपानादिके हेतु करना पड़ता है। उसमें भी कम हिंसा करता है, वृथा स्थावरोंको भी नहीं सताता है। वृथा पानी फेंकता नहीं वृक्ष काटता नहीं, भूमि खोदता नहीं, आरंभी त्रस हिंसाका त्यागी वह नियमसे सातवीं ब्रह्मचर्य प्रतिमातक नहीं होसकता है, आठमी आरंभत्याग प्रतिमासे आरंभी त्रस हिंसाका त्यागी होजाता है। गृहस्थको तीन तरहसे आरंभी हिंसा करनी पड़ जाती है–(१) उद्यममें–असि, मसि, कृषि, शिल्प, वाणिज्य, विद्या द्वारा आजीविका करनेमें हिंसा करना न चाहते हुए भी हिंसा होजाती है, (२) गृहारंभमें–मकान, वापी, बागीचा लगाने व खानपानका प्रबंध करनेमें, (३) विरोधमें–यदि कोई चोर, डाकू, शत्रु अपनी सम्पत्ति, देश व अपनेपर आक्रमण करे तो गृहस्थ उनसे अपनी रक्षा करेगा। यदि शस्त्रसे उनको प्रहार करना पड़ेगा तौभी वह करके रक्षा करेगा। इस तरहकी आरंभी हिंसाका त्यागी साधारण गृहस्थ नहीं होसक्ता। (गृ० स० ८)।

अहिंसा भावना–अहिंसाव्रतके पालनेके लिये पांच भावनाएँ होती हैं–(१) वचनगुप्ति–वचनकी सम्हाल, (२) मनोगुप्ति–मनको हिंसात्मक भावोंसे बचाना, (३) ईर्या समिति–चार हाथ जमीन आगे देखकर चलना, (४) आदाननिक्षेपण समिति–कोई वस्तु देखभालकर रखना, उठाना, (५) आलोकित पान भोजन–खानपान देखभाल कर करना (सर्वा० अ० ७ सू० ४)।

अहिंसा परमो धर्मः यतो धर्मस्ततो जयः–जैनियोंमें इन शब्दोंका बहुत प्रचार है। रथोत्सवमें ऐसे शब्दोंके तोरण बनवाकर निकालते हैं, इनका अर्थ यह है–अहिंसा सबसे बड़ा धर्म है, जितना यह धर्म होगा उतनी ही आत्माकी जय होगी।

अहिंसा दिग्दर्शन–एक पुस्तक हिंदीमें जिसे श्वेतांबर जैनाचार्य विजयधर्मसूरिने रचा है।

अहीन्द्र वर–(द्वीप, समुद्र) अंतके स्वयंभूरमण समुद्र व द्वीपसे पहला द्वीप व समुद्र (त्रि.गा.३०६)

अहेर–शिकार।

अहोरात्रि–दिनरात।

अज्ञान भाव–बिना जाने व बिना इरादेके कोई काम होजाना।

अज्ञान–ज्ञानका कम होना, केवलज्ञान न होना, मिथ्याज्ञान या मिथ्यादर्शन सहित ज्ञान। वे तीन हैं–कुमति, कुश्रुत, कुअवधि (विभंग ज्ञान)-मिथ्यात्वी जीव कारण विपर्यय, स्वरूप विपर्यय व भेदाभेद विपर्यय इन ज्ञान उल्टे भावोंको रखता है। वस्त्रको वस्त्र जानते हुए भी सम्यग्दृष्टी पुद्गलकी पर्याय जानता है, मिथ्यादृष्टी अपनी कल्पनासे ईश्वरको कारण मान सक्ता है व उसे ब्रह्महीका अंश मान सक्ता है। (गो॰ गा॰ ३०१)।

अज्ञान तप–मिथ्याज्ञान सहित व आत्मज्ञान या सम्यक्त रहित तप।

अज्ञान तिमिर भास्कर–एक पुस्तक मुद्रित।

अज्ञान परीषह–तप आदि करते हुए यदि विशेष ज्ञान न हो तो उस खेदको न होने देना (सर्वा॰ अ॰ ९ सू॰ ९)।

अज्ञान मिथ्यात्व–धर्मके तत्वोंको विना समझे हुए देखादेखी मान लेना। हित अहितकी परीक्षा न करना (सर्वा॰ अ॰ ८ सू॰ १)।

अज्ञानवादी–६७–जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष इन नौ पदार्थोंको ७ भंगोंसे गुणा करनेपर ६३ भेद ये भए। अर्थात जीव अस्तिरूप है ऐसा कौन जाने, जीव नास्ति रूप है ऐसा कौन जाने, जीव अस्तिनास्ति रूप है ऐसा कौन जाने, जीव अवक्तव्य है ऐसा कौन जाने, जीव अस्ति अवक्तव्य है! जीव नास्ति अवक्तव्य है, जीव अस्तिनास्ति अवक्तव्य है ऐसा कौन जाने, जैसे जीव सम्बंधमें ७ प्रकार अज्ञान हैं वैसे ही अन्य आठ पदार्थोंके सम्बन्धमें हैं ऐसे ६३ भेद ये भए। चार भेद ये हैं कि शुद्ध पदार्थ अस्ति ऐसा कौन जाने, शुद्ध पदार्थ नास्ति ऐसा कौन जाने, शुद्ध पदार्थ अस्तिनास्ति ऐसा कौन जाने, शुद्ध पदार्थ अवक्तव्य ऐसा कौन जाने। इस तरह चार ये मिलकर ६७ भेद अज्ञानवादीके हैं (गो॰ क॰ गा॰ ८८६–८८७)।

आ

आउट लाइन्स आफ जैनिज्म–इंग्रेजीमें जैन धर्मको बतानेवाली पुस्तक जिसको बाबू जुगमंदरलाल एम॰ ए॰ जज हाईकोर्ट इंदौरने रचा।

आकार–हर वस्तु कुछ न कुछ आकाशको घेरती है वही हरएक वस्तुका आकार है इसलिये जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल सबमें आकार है, पुद्गलमें मूर्तीक है, अन्योंमें अमूर्तीक हैं।

आकार योनि–स्त्रियोंमें तीन प्रकारके योनियोंके आकार होते हैं जहां जीव आकर उपजता है। शंखावर्त योनि जो शंखके समान हो, कूर्मोन्नत योनि–जो कछुवेके समान ऊँची हो, वंशपत्र योनि–जो बांसपत्रके समान हो। शंखावर्त योनिमें नियमसे गर्भ नहीं रहता है व रहे तो नष्ट हो। कूर्मोन्नतमें तीर्थंकर, चक्रवर्ती, नारायण, प्रतिनारायण, बलदेव उपजते हैं। वंशपत्र योनिमें ये महापुरुष नहीं उपजते हैं, साधारण जन पैदा होते हैं (गो.जी.८१–८२)।

आकाश–एक अमूर्तीक अखंड द्रव्य है जो सर्व द्रव्योंको अवगाह या स्थान देता है। इसके दो भेद हैं। लोकाकाश–जहां जीव, पुद्गल, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय व काल द्रव्य पाए जावें। इसके सिवाय जो चारों तरफ खाली आकाश अनंत है वह अलोकाकाश है।

आकाश गता चूलिका–दृष्टिवाद बारहवें अंगमें पांचवी चूलिका जिसमें आकाशमें गमन आदिके कारण भूत मंत्र तंत्रादिका प्ररूपण है इसके पद २०९८९२०० दो करोड़ नौलाख नवासी हजार दोसौ हैं।

आकाशगामिनी ऋद्धि–वह शक्ति जिससे पर्यंकासन बैठे व खड़े चरणोंको उठाए व रक्खे विना आकाशमें गमन होजाय (भ॰ पृ॰ ५२१)।

आकाशपंचमीव्रत–भादों सुदी ५ को प्रोषध सहित उपवास करे, इस तरह पांच वर्षतक करे फिर शक्ति अनुसार उद्यापन करे (कि॰कि॰पृ॰ ११२)

आकाश भूत–भूत जातिके व्यंतरोंका सातवां द। वे सात प्रकार हैं–सुरूप, प्रतिरूप, भूतोत्तम, विभूत, प्रतिछिन्न, महाभूत, आकाशभूत (त्रि० गा० २६९)।

आकाशोत्पन्न व्यन्तर–जो व्यंतर मध्यलोकमें रहते हैं उनमेंका एक भेद–पृथ्वीसे १ हाथ ऊपर नीचोपपाद–फिर दश हजार हाथ ऊँचे दिग्वासी, फिर दश हजार हाथ ऊपर अन्तरवासी–फिर दस हजार हाथ ऊँचे कूष्मांड–फिर बीस हजार हाथ ऊँचे उत्पन्न हैं। फिर २० हजार हाथ ऊँचे अनुत्पन्न हैं। फिर २० हजार हाथ ऊँचे प्रमाणक हैं फिर २० हजार हाथ ऊँचे गन्ध हैं फिर २० हजार हाथ ऊँचे महागन्ध हैं फिर २० हजार हाथ ऊँचे भुजंग हैं, फिर २० हजार हाथ ऊंचे प्रीतिक हैं फिर २० हजार हाथ ऊँचे आकाशोत्पन्न हैं। इन आकाशोत्पन्नकी आयु आध पल्य प्रमाण है (त्रि० गा० २९१–२९२–२९३)।

आकम्पित दोष–साधु अपने दोषोंकी आलोचना आचार्यसे करे उसमें यह पहला दोष न लगावे। उपकरण आदि दे करके व वंदना विशेष करके ऐसा चाहे गुरु मेरे ऊपर दया करें तो दंड कम देंगे इस भावसे दोष कहे यह मायाचार सहित आलोचना दोषको नहीं दूर करता है जैसे कोई विष पीकर जीवना चाहे वैसे इस दोष सहित आलोचना है (भ० पृ० २२९)।

आकिंचन्य महाव्रत–परिग्रह त्याग महाव्रत जिसमें सर्व परिग्रहको छोड़ा जावे व यह विचार किया जावे कि मैं शुद्ध आत्मा हूं और मुझसे सब पर हैं। दशलाक्षणी धर्ममें यह नौमा धर्म है।

आकिंचन्यकी ५ भावना–परिग्रहत्यागव्रतकी पांच भावनाएं ये हैं कि पांचों इन्द्रियोंके विषय मनोज्ञ या अमनोज्ञ मिलें उनमें राग द्वेष न करना (सर्वा० अ० ७–८)।

आक्रंदन–दुःखसे आंसू बहाकर प्रगट रोना। इससे असाता वेदनीय कर्मका बंध होता है (सर्वा० अ० ६–११)।

आक्रोश परीषह–मुनिको यदि कोई दुष्ट गालियां दें व निन्दा करें तो उस सबको कषाय न लाकर सहना १२वीं परीषह है (सर्वा.अ.९–९)।

आक्षेपिणी–कथा–जो सत्यमार्गको प्रतिपादन करे।

आखड़ी–प्रतिज्ञा, नियम।

आगत–कौन जीव कहांसे आकर उपजता है। नारकी मर करके नरक व देवगतिमें नहीं उपजते, किंतु मनुष्य या तिर्यंच गति हीमें उपजते हैं। मनुष्य व तिर्यंच मरकर नरक व देवगतिमें जासके हैं। देवगतिसे भी कोई नरकमें नहीं जाता न देव पैदा होता है वे मनुष्य व तिर्यंच होंगे। असैनी पंचेंद्री पहिले नरकसे आगे नहीं जाते, सरीसृप दूसरे नर्कतक, पक्षी तीसरे तक, सर्प चौथे तक, सिंह पांचवें तक, स्त्री छठे तक, कर्मभूमिका मनुष्य व तिर्यंच मत्स्य सातवें तक पैदा होते हैं। भोगभूमिके जीव देव ही होते हैं। निरंतर नरकको जावे तो पहलेमें बीचमें और होकर आठ वार, दूसरेमें सात वार, तीसरेमें छः वार, चौथेमें पांच वार, पांचवेमें चार वार, छठेमें तीन वार व सातवें नरकमें दोवार तक जावे। जो जीव सातवेंसे आता है वह पशु होता है उसे सातवें व अन्य किसी नरकमें एकवार फिर जाना ही पड़ता है उसे व्रत नहीं होते हैं। छठेसे निकलकर मुनि नहीं होसक्ता है, पांचवेंसे निकलकर मुनि होसक्ता है। परन्तु मोक्ष नहीं जा सक्ता है। चौथेसे निकलकर मोक्ष जासक्ता है। परन्तु तीर्थंकर नहीं होता है, पहले दूसरे तीसरे नर्कसे निकलकर तीर्थंकर होसक्ते हैं। नरकसे निकले हुए चक्रवर्ती, बलभद्र, नारायण व प्रतिनारायण नहीं होते। सूक्ष्म वायु व अग्निकायवाले मरकर तिर्यंच ही होते हैं। पृथ्वी, जल व वनस्पतिकायवाले, द्वेंद्रिय, तेंद्रिय, चौन्द्रिय, असैनी पंचेंद्रिय व मनुष्य, सैनी पशु ये परस्पर एक दूसरेमें जाकर पैदा होसके हैं। मिथ्यादृष्टी जीव सैनी व असैनी मरकर [illegible] व भवनवासी व ज्योतिषी होसक्ते हैं। [illegible]

तापसी ज्योतिषी देव होसक्ते हैं। परिव्राजक सन्यासी पांचवें स्वर्गतक आजीवक साधु १२ वें स्वर्गतक जासक्ते हैं। व्रती तिर्यंच बारहवें स्वर्गतक व सम्यक्ती मानव बारहवें स्वर्गतक श्रावक मानव १६वें स्वर्गतक व निर्ग्रंथ मुनि मिथ्यादृष्टी अभव्य भी ९ ग्रैवेयिक तक जासक्ते हैं। मुनि मोक्ष या सर्वार्थसिद्धितक जासक्ते हैं। दूसरे स्वर्गतकके देव मरकर एकेन्द्रिय होसक्ते हैं। बारहवें स्वर्गतकके तिर्यंच व मानव उसके ऊपरके देव सब मानव ही होते हैं। सर्वार्थसिद्धिवाले व लौकांतिकदेव, लोकपाल, इन्द्राणी शची, सौधर्मेन्द्र व दक्षिणेन्द्र सब एक भव लेकर मोक्ष जाते हैं। नौ अनुदिश व चार अनुत्तवाले दो भव मानवका लेकर मोक्ष जाते हैं। (सि० द० ए० ९६ व तत्वार्थसार अ० २) जो जिन लिंग मुनिका रखकर कपट करते हैं व वैद्य मंत्र यंत्र ज्योतिषसे आजीविका करते हैं व अभिमान करते हैं व आहारादि संज्ञा रखते हैं व विवाह सम्बंध मिलाते हैं, सम्यक्त नाश करते हैं। दोष गुरुसे नहीं कहते हैं, अन्यको मिथ्या दोष लगावे, मौन छोड़ भोजन करें, जो पंचाग्नि तप करते हैं व जो सम्यक्त रहित कुपात्रोंको दान देते हैं वे कुभोग भूमिके कुमानुषोंमें पैदा होते हैं (त्रि० गा० ९२२-२४)।

आगम—शास्त्र—जिनवाणी।

आगम द्रव्यकर्म निक्षेप—जो जीव द्रव्यकर्मके शास्त्रका जाननेवाला हो परन्तु वर्तमान कालमें उसका उपयोग अन्यत्र हो (गो० क० गा० ५४)।

आगम द्रव्य निक्षेप—जो जीव किसी शास्त्रका ज्ञाता हो परन्तु उपयोग उधर न हो (सि० द० ए० १३)।

आगम प्रमाण—जो बात सर्वज्ञ प्रणीत आगमसे व परम्परा वीतरागी आचार्य कृत यथार्थ आगमसे सिद्ध हो। सूक्ष्म व दूरवर्ती व भूतकाल व भावी कालके पदार्थका निश्चय यथार्थ आगमसे ही होता है। इससे आगमका निश्चय कर लेंगे।

आगम बाधित—शास्त्रसे जिसका साध्य बाधाको पावे। जैसे कहना पाप सुखको देनेवाला है क्योंकि वह कर्म है। जो जो कर्म होते हैं वे सुख देनेवाले होते हैं जैसे पुण्य कर्म। इसमें शास्त्रसे बाधा नहीं है, क्योंकि शास्त्रमें पापको दुःख देनेवाला लिखा है (जै० सि० प्र० नं० ६७)।

आगमभाव निक्षेप—जो जिस शास्त्रको जानता हो उधर उपयोग भी लगा रहा हो (सि० द० ए० १४)।

आगमोक्त—जो बात आगममें कही गई हो।

आगाल—दूसरी स्थितिके कर्म निषेकोंकी स्थितिको घटाकर प्रथम स्थितिके निषेकोंमें मिलाना (ल० गा० ८८)।

आचमन—इसकी विधि यह है कि दाहने हाथकी चारों अंगूलियोंको फैलाकर अंगूठोंको ऊपरकी ओर ऊंचा खड़ा रक्खे और फिर तर्जनी अंगुलीको नमाकर अँगूठेकी जड़से लगा लेवे। शेष तीनों अँगुलियां लँबी खुली रहने दे इससे हथेलीमें गड्ढा होजायगा। इस गड्ढेमें उड़द प्रमाण जल लेकर नीचेका मंत्र पढ़ता हुआ उस जलको मुखमें डाले ऐसा तीन वार करे। इसका अभिप्राय यह है कि मुखकरि शुद्ध हो—मंत्र=ॐ ह्रीं क्ष्वीं लां यं हः पः क्षीं क्ष्वीं क्ष्वीं स्वः (कि० प्र० ए० १६)।

आचाम्ल—विना पकी हुई कांजी मिलाकर भात (सा० अ० ५-३५)। प्रमाणीक अल्प आहार (भ० ए० ११८)।

आचार—आचरण, चारित्र। आचार पांच प्रकारका होता है। १ दर्शनाचार—निःशंकितादि आठ अंग सहित सम्यग्दर्शनकी पालना। २ ज्ञानाचार—काल विनय आदि आठ अँग सहित ज्ञानका आराधन करना। ३—चारित्राचार—५ महाव्रत ५ समिति व ३ गुप्तिको भलेप्रकार पालना। ४ तपाचार—१२ प्रकार तपको पालना। ५ वीर्याचार—अपनी शक्तिको न छिपाकर उत्साह पूर्वक साधन करना (सा० अ० ७।३४)।

आचार सार—वीरनंदि (वि० सं० ९९६) कृत मुनि आचरण ग्रन्थ मुद्रित।

आचारांग—जिनवाणीके १२ अँगोंमें पहला अँग जिसमें मुनि आचारका कथन है जो मोक्षमार्गमें सहाई है। कैसे बैठना, सोना, आहार करना आदि विधि वर्णित है, इसके १८००० मध्यम पद हैं (गो० जी० ३९६–३९८)।

आचारांगसूत्र—श्वेतांबर जैन ग्रन्थ जो सरस्वती भवन बम्बईमें है।

आचार्य—जो साधुओंको दीक्षा शिक्षा देकर चारित्र आचरण करावें व स्वयं ५ प्रकार आचार पालें (सर्वा० अ० ९–२४)।

आचार्य भक्ति—१६ कारण भावनामें १२वीं भावना—आचार्यकी भक्ति करना (सर्वा.अ.६।२४)।

आचार्य विनय—आचार्यकी अंतरंग व बहिरंग विनय करना, उनको आते देख उठ खड़ा होना, नमस्कार करना, उनकी आज्ञा मानना।

आचेलक्य—चेल वस्त्रको कहते हैं। मुनि कपास, वाट, रेशम, सन, टाट, छाल आदि व मृग व्याघ्रादिसे उत्पन्न मृग छालादिसे शरीरको नहीं ढकते। नग्न रहना (श्रा० पृ० २७१), कड़े आदि आभूषण पहरना, संयमके विनाशक द्रव्य न रखना (मू० गा० ३०)।

आजीवन दोष—जो मुनि अपना कुल, जाति, ऐश्वर्य व महिमा प्रगट करके वस्तिका ग्रहण करे (भ० पृ० ९९)।

आजीवी षट्कर्म—गृहस्थोंके पैसा पैदा करनेके छः कर्म कर्मभूमिकी आदिसे श्री आदिनाथ भगवानने बताए हैं–१ असि (शस्त्र विद्या), २ मसि (लेखन), ३ कृषि, ४ वाणिज्य, ५ शिल्प, ६ विद्या।

आताप—धूप, सूर्यकी प्रभा जो उष्ण होती है।

आताप नामकर्म—नामकर्मकी वह प्रकृति जिसके उदयसे सूर्यके विमानमें पृथ्वीकायिक जीवोंके ऐसा शरीर होता है जो स्वयं तो उष्ण न हो परन्तु दूसरोंको उष्ण लगे (सर्वा० अ० ८–११)।

आतापन योग—धूपमें खड़े या बैठकर ध्यान करना।

आत्मख्याति समयसार—श्री कुन्दकुन्दाचार्य कृत प्राकृत समयसार पर संस्कृतमें श्री अमृतचंद्र आचार्य कृत टीका। उसपर पंडित जयचन्द जैपुर कृत हिन्दी टीका दोनों मुद्रित हैं।

आत्मतत्त्व—जीवतत्त्व। चेतना लक्षणधारी।

आत्मधर्म—एक पुस्तक हिन्दीमें ब्र० सीतलप्रसादजीकृत जिसमें आत्मा व आत्माके ध्यानका विवेचन है। मुद्रित है।

आत्मप्रबोध—एक संस्कृतकी पुस्तक। आत्माका अच्छा विवेचन है, कुमार कविकृत मुद्रित है।

आत्मप्रवाद पूर्व—दृष्टिवाद अंगमें १४ पूर्वोंमेंसे सातवां पूर्व, जिसमें आत्माका विस्तारसे विवेचन है। इसके २६ करोड़ मध्यम पद हैं (गो.जी.गा.३६६)।

आत्मभूत लक्षण—जो लक्षण वस्तुके स्वरूपमें मिला हो उससे भिन्न न होसके जैसे आगका लक्षण उष्णपना, जीवका लक्षण चेतना (जै. सि. प्र. नं. ४)

आत्मरक्ष देव—देवोंमें वे देव जो इन्द्रके अंगकी रक्षा करें। १० पदवियोंमेंसे पांचवी पदवी (सर्वा० अ० ४–४)।

आत्मरक्षित—लौकांतिक देवोंका एक भेद जो तुषित और अव्याबाध भेदोंके अंतरालमें रहते हैं (त्रि० गा० ५३८)।

आत्मलिंग—चैतन्य स्वरूप, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख और दुःख संसारी आत्माके चिह्न हैं इनसे संसारी आत्मा पहचाना जाता है (द० पृ० ५१७)

आत्मवाद—एकांत मतोंमें एक मत जो मानता है कि एक ही महात्मा है सो ही पुरुष है देव है सर्व विषे व्यापक है, सर्वांगपने अगम्य है, चेतना सहित है, निर्गुण है, परम उत्कृष्ट है ऐसे एक आत्मा ही करि सबको मानना सो आत्मवाद है। (गो० क० गा० ८८१)।

आत्मवादी—एक आत्मा हीको माननेवाले।

आत्मविचार—आत्माके यथार्थ स्वरूपका विचार।

आत्मसिद्धि–कवि राजचंद्र गुजरात जैन शता-वधानी कृत गुजरातीमें आत्माकी सिद्धिका ग्रन्थ पठनीय । इसका इंग्रेजीमें भी उल्था होगया है ।

आत्मज्ञान–आत्माके स्वरूपका ज्ञान ।

आत्मा–जीव, चैतन्य, अतति, परिणमति, जानाति इति । जो एक ही समयमें परिणमन करे व जाने सो आत्मा ।

आत्मानुशासन–श्री गुणभद्राचार्यकृत संस्कृतमें वैराग्यका ग्रंथ । हिन्दी टीका पं० टोडरमलजी व पं० वंशीधरजीकृत दोनों मुद्रित हैं । इंग्रेजीमें भी उल्था बा०जुगमन्धरलाल कृत मुद्रित है ।

आत्मानन्द जैन शिक्षावली–अम्बाला ट्रैक्ट सोसायटी द्वारा मुद्रित हिन्दीमें ।

आत्मानन्द सोपान–आत्माकी उन्नति सम्बन्धी एक पुस्तिका ब्र० सीतलप्रसादकृत मुद्रित है ।

आत्मोपलब्धि–आत्माकी शुद्ध अवस्थाकी प्राप्ति-मोक्षका लाभ ।

आदर–सन्मान, एक व्यंतरदेव जिसके मंदिर जम्बूवृक्षकी शाखा पर हैं (त्रि० गा० ६४९) ।

आदर्श जीवन–हिंदीमें ट्रैक्ट अम्बाला जैन सभा द्वारा प्रगट ।

आदान निक्षेपण–समिति–शास्त्र, पीछी, कमं-डल, शरीर आदि यत्नसे देखकर रखना उठाना यह अहिंसाव्रतकी चौथी भावना है व ५ समितियोंमें चौथी समिति है (मू० गा० १४) ।

आदित्य–सूर्य, लौकांतिक देवोंका दूसरा भेद (सर्वा० अ० ४।२५); नौ अनुदिशमें इन्द्रक विमा-नका नाम (त्रि० गा० ४६९) ।

आदित्यवार कथा–रविवारका जो व्रत करते हैं वे इस कथाको पढ़ते हैं ।

आदित्यवार व्रत–यह व्रत आषाढ़ सुदीमें अंतिम रविवारको फिर श्रावण व भादोंके चार चार रविवारको ऐसे वर्षमें ९ रविवारको ९ वर्ष तक किया जाता है, उत्तम प्रोषधोपवास करे, आमिल ले जघन्य एकासन करे, चौथे एक भुक्ति करे । संयम शील पाले, पार्श्वनाथ पूजे । फिर उद्यापन करे । शक्ति न हो दूना व्रत करे अथवा एक वर्षमें ४८ रविवार करे तौभी व्रत पूरा होता है (कि.क्रिया.ए. १२७)

आदिनाथ–ऋषभदेव–भरतक्षेत्रमें वर्तमान चौ-वीसीमें प्रथम तीर्थंकर ।

आदिनाथ स्तोत्र–श्री मानतुंगकृत भक्तामर-स्तोत्र सं० भाषा पांडे हेमराज व पं० नाथूराम आदि कृत मुद्रित हैं ।

आदि नित्य पर्यायार्थिक नय–जो पर्याय कर्मोंके नाशसे उत्पन्न हो व अविनाशी हो उसको ग्रहण करनेवाली नय । जैसे सिद्धपर्याय नित्य है उसको कहे (सि० द० पृ० ८) ।

आदि पम्प–कर्णाटक जैन कवि (ई० सन् ९०२) पुलिगेरीके चालुक्य राजा अरिकेशरीके दरबारी कवि व सेनापति थे, श्रेष्ठ कवि थे । आदिपुराण व भारत-चम्पू दो ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं । पम्पका आदिपुराण गद्य पद्यमय बड़ा ही श्रेष्ठ व ललित ग्रंथ है । १६ परिच्छेद हैं । इनकी उपाधियां थीं–सरस्वती मणि-हार, संसारसारोदय, कविता गुणार्णव, पुराणकवि । चम्पू ग्रन्थमें १४ आश्वास हैं । इस ग्रन्थसे प्रसन्न हो अरिकेशरीने कविको धर्मपुर ग्राम इनाममें दिया था । इनके गुरु श्री देवेन्द्रमुनि थे (क० नं० १४)

आदिपुराण–महापुराण–श्री जिनसेनाचार्यकृत (सं० ७५१) सं० ग्रंथ अपूर्ण फिर उनके शिष्य गुणभद्राचार्यने पूर्ण किया । ४७ अध्याय हैं । महान सुन्दर कविता है । भाषामें पं० दौलतराम जैपुरी व पं० लालारामकृत है । सं० व भाषा मुद्रित है ।

आदिपुराण समीक्षा–बाबू सूरजभान वकील कृत हिंदीमें मुद्रित है ।

आदिपुराण समीक्षाकी परीक्षा–पं० लाला-रामकृत हिंदीमें मुद्रित है ।

आदिपुरुष–इस अवसर्पिणी कालकी कर्मभूमिके आदि नेता श्री ऋषभदेव प्रथम तीर्थंकर ।

आदि ब्रह्मा–आदिनाथ भगवान जिन्होंने कर्म-भूमिका मार्ग चलाया ।

आदिसागर—वर्तमान दि० जैन मुनि बाहुबलि पर्वत स्टे० हातकलिंगरा (कोल्हापुर राज्य)।

आदीश जिन—आदिनाथ प्रथम तीर्थंकर।

आदीश्वर—आदिनाथ प्रथम तीर्थंकर।

आदेय नामकर्म—जिस प्रकृतिके उदयसे प्रभावान शरीर हो (सर्वा० अ० ८–११)।

आदेश—अपेक्षा, मार्गणा, विस्तार। जहां जीवोंको ढूंढा जावे या देखा जावे सो मार्गणा है। यह १४ होती हैं। गाथा—गई इंदिये च काये जोगे वेदे कसाय णाणेय। संयम दंसण लेस्सा भविया सम्मत्त सण्णि आहारे॥ १–चार गति, २–पांच इंद्रिय, ३–छः काय, ४–पंद्रह योग, ५–तीन वेद, ६–चार या २५ कषाय, ७–आठ ज्ञान, ८–सात संयम, ९–चार दर्शन, १०–छः लेश्या, ११–दो भव्य, १२–छः सम्यक्त, १३–दो संज्ञी, १४–दो आहारक, (गो० जी० गा० ३)।

आदेश दोष—उद्दिष्ट दोषका एक भेद। आज हमारे यहां तपस्वी, परिव्राजक भोजनके लिये आवेंगे उन सबके लिये भोजन दूंगा। ऐसे विचार कर किया हुआ अन्न सो आदेश दोष है। ऐसा भोजन मुनिको देना योग्य नहीं। जो मुनि जानकर ले तो उसे भी दोष लगे। जो भोजन गृहस्थीने आपके कुटुंबके निमित्त किया हो और साधु आजाय तो भोजनदान करे (भ० ए० १०२३)।

आद्यन्त मरण—जो वर्तमान पर्यायका स्थिति आदिक जैसा उदय था वैसा आगेकी पर्यायका सर्व प्रकारसे व एक देशसे बंध व उदय नहीं हो (भ० ए० ९)।

आधिकरणिकी क्रिया—हिंसाके उपकरण ग्रहण करना। आस्रवकी २५ क्रियाओंमेंसे पांचवीं क्रिया (सर्वा० अ० ६–५)।

आनत—तेरहवें स्वर्गका नाम; (त्रि०गा० ४५३) पहला इंद्रक जो आनतादि ४ स्वर्गोंमें है छः इन्द्रक हैं (त्रि० गा० ४६८)।

आनति—मुनिको आहारदान कराते हुए नौ प्रकार भक्तिमें पांचवीं भक्ति। पूजाके पीछे नमस्कार करना। वे ९ भक्तिये हैं। १–प्रतिग्रह–अन्न आहारपानी शुद्ध, तिष्ठत तिष्ठत तिष्ठत, ऐसा कहकर पड़गाहना, २ उच्च स्थान–घरमें लेजा ऊँचे आसनपर विराजमान करना, ३–अंघ्रिप्रछालन–चरणकमल धोना व जलको मस्तकपर चढ़ाना, ४ अर्चा–अष्ट द्रव्योंसे पूजना, ५ आनति–नमस्कार, ६ मनशुद्धि–आर्त व रौद्रध्यान न करना, ७ वचनशुद्धि–कठोर वचन न कहना, ८ कायशुद्धि–शुद्ध शरीर कपड़ेसे ढका हुआ विनय युक्त रखना, ९ अन्नशुद्धि–शुद्धाहार मुनिको देना (सा० अ० ५–४५)।

आनयन—देशविरति नाम दूसरे गुणव्रतका पहला अतीचार। अपने नियम किये हुए स्थानके बाहरसे कुछ मंगाना (सर्वा० अ० ७–३१)।

आनन्द—सुख, आल्हाद, गंधमादन नाम गजदंतपर सातवां कूट (त्रि० गा० ७४१)।

आनीक—सेना बननेवाले देवोंकी जाति–सात तरहके भेद होते हैं। एक२ भेदमें सात२ कक्ष या सेना होती हैं। असुरकुमार भवनवासियोंके भैंसा, घोड़ा, रथ, हाथी, प्यादा, गंधर्व व नर्तकी ऐसी सात प्रकार सेना होती है। नागकुमारादिमें–सर्प, गरुड़, हाथी, माछला, ऊँट, सूअर, सिंह, पालकी, घोड़ा, ऐसे पहले भेदमें अंतर है–असुर कुमारमें पहली सेना भैंसोंकी है तब नागकुमारोंमें सर्पकी, विद्युतकुमारोंमें गरुड़ोंकी इत्यादि। शेष छः भेद सब में समान हैं। व्यंतरोंके सात आनीक हैं–हाथी, घोड़ा, प्यादा, रथ, गंधर्व, नर्तकी, वृषभ। कल्पवासियोंमें वृषभ, घोड़ा, रथ, हाथी, प्यादा, गन्धर्व, नर्तकी ऐसे भेद हैं (त्रि० गा० [illegible], [illegible], २८०, २३२, २३३, २२४)।

आनुपूर्वी—इसका पांच प्रकार है। १ आनुपूर्वी–चारों प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग अनुयोगोंको क्रमसे कहना या उल्टा कहना

द्रव्यानुयोग आदि। इन दोनोंमेंसे कोई प्रकार गिनना आनुपूर्वी है। २ नाम-ग्रंथका रखना, ३ प्रमाण ग्रन्थ कितना बड़ा होगा, ४ अभिधेय-शास्त्रमें जो कथन किया जावे, ५ अर्थ अधिकार-जीव अजीव नौ पदार्थका कथन हो। (महा० पर्व २।१०४)।

आनुपूर्वी नामकर्म-नामकर्मकी वह प्रकृति जिसके उदयसे जबतक विग्रह गतिमें जीव रहे व दूसरी गतिको न पहुंचे तबतक आत्माका आकार पूर्व शरीरके समान रहे। उसके चार भेद हैं-नरक, तिर्यंच, मनुष्य, देव। यदि कोई मनुष्य मरा वह देव होनेको जारहा है तब उसके देव गत्यानुपूर्वीका उदय रहेगा व मध्यमें मनुष्यका आकार रहेगा। (सर्वा० अ० ८।११)।

आन्दोलकरण-नौमे सवेद अनिवृत्तिकरण गुणस्थानके पीछे अपगत वेदी होय तब संज्वलन क्रोध मान माया लोभका अनुभाग क्रोधसे लोभतक अनंतगुणा घटता होता है या लोभसे क्रोधतक अनंतगुणा बधता होता है। इस तरहकी अनुभागकी रचनाके तीन नाम प्रसिद्ध हैं-१ अपवर्तोद्वर्तन करण, २ अश्वकर्ण करण, ३ आन्दोल करण (ल० गा० ४६२)।

आपपादिक लिंग-परिग्रह सहित भेष या चिह्न। आर्यिकाएं एक सारी रखती हैं, इसलिये उनका लिंग अपवादिक है। ये ही आर्यिकाएं समाधिमरणके समय यदि एकांत वसतिका हो सारीको भी त्यागकर औत्सर्गिक लिंग या नग्न दिगम्बर लिंग भी धार सक्ती हैं। पुरुष भी जो आपवादिक लिंगधारी श्रावक हो मरण समय नग्न होसक्ता है (सा० अ० ८ श्लो० ३९)।

आप्त-पूजने योग्य अरहंतदेव, जिनमें तीन गुण हों-१ अठारह दोष रहित वीतराग हों, २ सर्वज्ञ हों, ३ हितोपदेशी हों (रत्न० श्लोक ५)।

आप्तवचन-जिनवाणी, सर्वज्ञकी दिव्यध्वनि, जिनशास्त्र।

आप्त परीक्षा-विद्यानंदि स्वामीकृत संस्कृतमें मुद्रित ग्रन्थ।

आप्त मीमांसा-देवागम स्तोत्र समंतभद्राचार्य कृत-अनेकांतका अच्छा स्वरूप। संस्कृतमें इसकी बड़ी टीका अष्ट सहस्री विद्यानंदि कृत व आप्तशती अकलंकदेव कृत है। मुद्रित है।

आप्त स्वरूप-संस्कृत ग्रन्थ ६४ श्लोक, मुद्रित माणकचंद ग्रंथमाला नं० २१।

आपृच्छनी भाषा-अनुभय वचन (जिसको सत्य या असत्य कुछ नहीं कह सक्ते)के ८ भेद हैं उसमें चौथा भेद। ऐसा प्रश्न करना यह क्या है। इतनी मात्र भाषा आपृच्छनी है (गो० जी० २२५)।

आपृच्छा-मुनियोंके आचरणमें औधिक समाचार १० प्रकार है, उसमें छठा भेद। अपने पठन आदि कार्योंके आरम्भ करनेमें गुरु आदिको वंदनापूर्वक प्रश्न करना (मू० गा० १२५) तथा व्रतपूर्वक आतापनादि योग ग्रहणमें व आहार करने व अन्य ग्रामादि व जानेमें नमस्कारपूर्वक आचार्यादिसे पूछना, उनके कहे अनुसार करना (मू० गा० १३५)।

आबाधा कांडक-उत्कृष्ट आबाधा (जबतक कर्मबंध पीछे उदय न आवे) का जो प्रमाण हो उसका भाग कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिको दिया जावे जो प्रमाण आवे सो आबाधा कांडक है। अर्थात् जो प्रमाण आवे उतनी स्थितिके भेदोंमें एकरूप आबाधा पाइये। (गो० क० गा० १४७)।

आबाधाकाल-कर्म प्रकृतिका बंध गए पीछे जबतक उदयरूप व उदीरणा रूप वह कर्म प्रकृति न हो तबतकका काल। अपने ठीक समयपर फल देने रूप होना सो उदय है। बिना ही काल आए अपक्व कर्मका पचना सो उदीरणा है। आयु कर्मके सिवाय ७ कर्मोंकी आबाधाका नियम एक कोड़ाकोड़ी सागरकी स्थितिपर १०० वर्ष है। ९२९-९२१९२½ सागरमें एक मुहूर्त या ४८ मिनट आबाधा होगी। आयुकर्म बंधनेके पीछे जब दूसरी

गतिको जाता है वहांतक उदय नहीं आती है। इसकी उत्कृष्ट आबाधा एक कोड़ पूर्वका तीसरा भाग है व जघन्य असंक्षपाद्धा या आवलीका असंख्यातवां भाग है। (गो० क० गा० १५७–१५८) उदीरणाकी अपेक्षा सातों कर्मोंकी एक आवली अबाधा है। (गो० क० गा० १५९)

आबाधा भेद–उत्कृष्ट आबाधामेंसे जघन्य आबाधाको घटाए जितना काल हो उतने समयोंमें एक मिलानेसे आबाधाके सर्व भेद निकलते हैं। जैसे १० समय उत्कृष्ट व २ समय जघन्य आबाधा थी तो आबाधाके भेद ९ हुए। (गो०क०गा० १५०)

आबाधावली–कर्मबंध होनेके समयसे एक आवली तक उदीरणा व उदय आदि नहीं होता है। उसे बंधावली, अचलावली या आबाधावली कहते हैं। (ल० पृ० २८)।

आबू–अतिशय क्षेत्र, राजपूतानामें सिरोही राज्यमें एक बहुत ऊँचा पर्वत जिसपर विमलशाह व तेजपाल वस्तुपालके निर्मापित करोड़ों रुपयोंके खर्चके बने संगममरकी कारीगरीके दर्शनीय जैन मंदिर हैं। श्वेताम्बर मंदिरोंके साथमें दि० जैन मंदिर भीतर है व बाहर भी दि० जैन मंदिर व धर्मशाला है। आबूरोड स्टेशनसे मोटरद्वारा पर्वतपर जाना होता है।

आबूके जैन मंदिरोंके निर्माता–अम्बाला शहर जैन सभा द्वारा प्रकाशित ट्रैक्ट नं० १५४।

आभास–मिथ्या, भ्रम।

आभिनिबोधिक ज्ञान–मतिज्ञान, जो ज्ञान इंद्रिय व मन द्वारा अपने जाननेयोग्य नियमित पदार्थको सीधा जाने। जैसे स्पर्शन इंद्रिय स्पर्श हीको, रसना इंद्रिय रस हीको, घ्राण गंध हीको, इस तरह नियमसे जानते हैं। यह सामनेके स्थूल विषयोंको ही जानता है। इसके ३३६ भेद हैं। अभिके अर्थ अभिमुख या सन्मुख है, निके अर्थ नियमित अर्थ उसका बोध अर्थात् जानना सो आभिनिबोध है। यह ज्ञान जिससे हो वह आभिनिबोधिक मतिज्ञान है (गो० जी० गा० ३०६)।

आभियोग्य देव–देवोंका एक पद जिस पदके धारक हाथी, घोड़ा, आदि वाहन बन जानेका काम करते हैं। इन्हींमेंसे ऐरावत हाथी बनता है (त्रि० गा० २२३–२२४)।

आभियोग्य भावना–जिन्होंने मानुष्य पर्यायमें पाप क्रियाओंमें दासत्वपनेका काम किया है वैसी भावना की है वे १६ स्वर्गतक आभियोग्य जातिके देव पैदा होते हैं। जो साधु रसादिकमें आसक्त होके तंत्र मंत्र भूत कर्मादिक बहुत भाव करते हैं और हास्य सहित आश्चर्यकारी बातें करते हैं वे अपने भावोंसे मरकर इस जातिके देवोंमें पैदा होते हैं (मूला० गा० ६९)।

आभ्यन्तर उपकरण–द्रव्येंद्रियकी रक्षा करनेवाला भीतरी अंग जैसे आंखकी पुतलीका रक्षक काला व सफेद मण्डल। बाहरी पलकादि बाह्य उपकरण है (सर्वा० अ० २–१७)।

आभ्यन्तर क्रिया–एक स्थानसे दूसरे स्थानपर गमन करनेको क्रिया कहते हैं। उसके दो निमित्त हैं। आभ्यंतर व बाह्य। द्रव्यमें जो क्रियारूप परिणमनेकी शक्ति है वह अभ्यंतर क्रिया है। उस शक्तिके होते हुए बाहरी निमित्त वर्ग द्रव्य आदिके होते हुए क्रिया होती है। (रा० अ० ५)

आम्नाय–परम्परासे चला आया मार्ग; शब्द व अर्थको शुद्धतासे घोखकर कंठस्थ करना। (सर्वा० अ० ९–२५) यह स्वाध्यायतपका चौथा भेद है।

आमंत्रणी भाषा–यह ८ प्रकार अनुभय वचनमें पहली भाषा है। बुलानेवाला वचन, जैसे कहना कि हे देवदत्त यहां आओ। (गो० गा० २२५)

आमर्शन–शरीरके एक किसी भागको स्पर्श करना (भ० पृ० [illegible])

आमर्षौषधिऋद्धि–[illegible] साधुओंमें यह ऋद्धि जिनके छूनेसे उनके हाथ पग आदि अंगोंका स्पर्शन रोगीके रोगका नाश करे। ([illegible])

आमिष–मांस-इन्द्रियको [illegible]।

आम्रवन–आमोंका वन; नंदीश्वर आठवें द्वीपमें वापीके चार तरफ चार वन एक लाख योजन लम्बे व ५० हजार योजन चोड़े होते हैं उनमें एक आम्रवन है (त्रि० गा० ९७२)।

आम्लरस नामकर्म–वह नामकर्म जिसके उदयसे प्राणीके शरीरमें खट्टा रस हो (सर्वा० अ० ८।११)।

आयाम–लम्बाई; कालके समयोंका प्रमाण, ऊपर २ रचना हो उनके प्रमाणको भी आयाम कहते हैं जैसे स्थितिके प्रमाणको स्थिति आयाम; स्थितिकांडकके निषेकोंका प्रमाण स्थितिकांडक आयाम; जितने निषेकोंका अंतरकरणमें अभाव करे वह अंतरायाम। गुणश्रेणिके निषेकोंका प्रमाण गुणश्रेणि आयाम (ल० पृ० २६)।

आयु–उम्र। उत्कृष्ट आयु इस तरह है–शुद्ध पृथ्वीकायिकका बारह हजार वर्ष; पाषाण आदि खर पृथ्वीकायिकका बाईस हजार वर्ष; जलकायिकका सात हजार वर्ष; तेजकायिकका तीन दिन; वातकायिकका तीन हजार वर्ष; वनस्पतिकायिकका दस हजार वर्ष; द्वेन्द्रियका बारह वर्ष; तेन्द्रियका ४९ दिन; चौन्द्रियका छह मास; मत्स्य व कर्मभूमिके पंचेंद्रिय सैनी मनुष्य व तिर्यंचका एक कोटि पूर्व वर्ष, पक्षियोंका बहत्तर हजार वर्ष, सर्पादिका बयालीस हजार वर्ष। सर्व ही कर्मभूमि सम्बन्धी तिर्यंच व मनुष्यकी जघन्य आयु अंतर्मुहूर्त या एक श्वासके अठारहवें भाग है। भोगभूमि तिर्यंच व मनुष्योंकी आयु तीन, दो व एक पल्यकी है। नारकियोंकी व देवोंकी उत्कृष्ट आयु तेतीस सागर व जघन्य दस हजार वर्ष है (त्रि० २२८...)।

आयु कर्म–वह कर्म जिससे नारकादि चार गतियोंमें जाए व रुका रहे " एति अनेन नारकादि भवन् इति आयुः।" (सर्वा० अ० ८–४) जैसे काठका खोड़ा अपने छिद्रमें जिसका पग आया हो उसकी वहां ही स्थिति कराता है वैसे आयु कर्म जिस गति सम्बंधी उदयरूप होता है वहीं जीवकी स्थिति कराता है (गो० क० गा० ११)।

आयु बन्ध–एक संसारी जीव किसी आयुको भोगता हुआ परभवके लिये एक कोई आयु बांधता है। देव व नारकी अपनी आयुमें छः मास व भोगभूमियां नौ मास शेष रहनेपर व कर्मभूमिके मानव व तिर्यंच अपनी आयुके तीसरा भाग शेष रहनेपर आयु बंध करते हैं। हरएकको आठ अपकर्ष कालमें या अंतमें आयुबंधका अवसर आता है। देखो शब्द "अनुपक्रमायुष्क" (गो० क० गा० ६३९....)

आरणस्वर्ग–१५वां स्वर्ग (त्रि० गा० ४५२) यह इन्द्रकका नाम भी है (त्रि० गा० ४६८)।

आरता–दीपक आदि लेकर आरती करनी।

आरती–रात्रिको या सायंकालको दीप धूपसे जिनेन्द्रका पूजन करना (क्र०म०पृ० ६ फु० नोट)

आरतीसंग्रह–हिन्दीमें मुद्रित पुस्तक।

आरा–चौथे नर्कका पहला इन्द्रकबिल। (त्रि० गा० १५७)

आरातीय–आचार्य।

आराधना–भक्ति, सेवा, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, सम्यक्तप ये चार आराधनाएं हैं। (सं० ९९७)

आराधना कथाकोष–ब्र० नेमिदत्तकृत सं० हिंदी टीकाकार पं० उदयलाल काशलीवाल। तीन भागमें मुद्रित, ११४ कथाएं बहुत उपयोगी हैं।

आराधनासार–प्राकृत देवसेनाचार्यकृत, इसकी संस्कृत टीका रत्नकीर्तिदेव कृत उत्तम है। हिन्दी टीका पं० गजाधरलाल शास्त्री कृत मुद्रित है। चार आराधनाका अच्छा कथन है।

आरंभ–अनेक तरहके मन वचन कायसे व्यापार आदि कार्य करना। अजीवाधिकरणका एक भेद।

आरंभ त्याग प्रतिमा–श्रावककी ११ प्रतिमाओंमेंसे आठवीं प्रतिमा या श्रेणी, जब कृषि वाणिज्य आदिका त्याग कर दिया जाता है। संतोषसे श्रावक

रहता हुआ धर्मसाधन करता है, सांसारिक आरंभी हिंसाका त्यागी होजाता है। सातवीं तक आरंभी हिंसा होसक्ती थी। यहां निमंत्रित होनेपर अपने घरमें या पर घरमें संतोषपूर्वक भोजन करता है। यह वाहनादि पर चढ़नेका आरंभ भी त्याग देता है। रसोई आदि बनानेका आरंभ भी न करता है न कराता है (गृ० अ० १४)।

आरंभी हिंसा—वह हिंसा जो हिंसाके संकल्पसे न हो किन्तु गृहस्थके असि, मसि, कृषि, वाणिज्य शिल्प, विद्याकर्म करते हुए, विरोधियोंसे अपनी व अपने धन व देशकी रक्षा करते हुए व गृह प्रबंध करते हुए होजाती है (सा० अ० २ श्लोक ८२)।

आरोहक—वे देव जो वृषभादि बने हुए आभियोग्य जातिके देवोंपर सवारी करते हैं (त्रि.गा. ५०१)

आर्जवा—श्री ऋषभदेवके पूर्वभवमें जब वह राजा वज्रजंघ थे तब उनके पूर्वजन्मके पुरोहित रुषितका जीव अपराजित सेनापति और आर्जवाके पुत्र अकंपन सेनापति हुआ (आ० प० ८।२१६)।

आर्त्तध्यान—"ऋतं दुःखं अर्दनम् अर्तिः वा तत्र भवम् आर्तम्" दुःखमई भावसे होनेवाला ध्यान। यह चार प्रकारका है—१ अनिष्ट संयोगज—मनको न रुचनेवाले पदार्थके सम्बन्ध होनेपर उसके वियोगकी चिन्ता। २ इष्ट वियोगज—मनको रोचक चेतन व अचेतन पदार्थके वियोग होनेपर शोक। ३ वेदनाजनित—रोगजनित पीड़ासे खेद करना। ४ निदान—आगामी भोगोंकी वांछाका चिंतवन करना (सर्वा० अ० ९।२८)।

आर्य—सज्जन, आर्यखंडनिवासी मानव या पशु; जो गुणोंके धारी हों; वे दो तरहके हैं। ऋद्धि प्राप्त आर्य, जिनको बुद्धि, विक्रिया, तप, बल, औषधि, रस व अक्षीण ऋद्धियें सिद्ध हों, अनृद्धि प्राप्त आर्य वे पांच तरहके हैं। १—क्षेत्र आर्य, २—जात्यार्य, ३—कर्मार्य, ४—चारित्रार्य, ५—दर्शनार्य। अर्थात् १—आर्यखंडवासी, २—उत्तम लोकमान्य, ३—उत्तम अल्प पापवाले कर्मसे आजीविका करनेवाले, ४ उत्तम चारित्र सम्यक्त सहित पालनेवाले, सम्यग्दर्शनको रखनेवाले (सर्वा० अ० ३—३६)।

आर्यखण्ड—भरत व ऐरावत व विदेहके देशोंमें छः छः खण्ड हैं, उनमें एक आर्य खण्ड है, पांच म्लेच्छ खण्ड हैं। आर्यखण्डमें तीर्थंकरादि महापुरुष होते हैं। मुनि व श्रावक धर्म व जिनधर्मकी प्रवृत्ति होती है। म्लेच्छ खण्डोंमें धर्मका प्रचार नहीं होता है। आर्यखण्डके भीतर उपसमुद्र भी होता है। एक एक मुख्य राज्यधानी होती है जैसे भरतमें अयोध्या। भरत व ऐरावतके आर्यखण्डमें ही उत्सर्पिणी व अवसर्पिणीके छहोंकाल पलटते रहते हैं। इनके म्लेच्छ खण्डोंमें व विजयार्द्धपर चौथे कालकी रचनामें ही हानि वृद्धि हुआ करती है। अवसर्पिणीमें आदिसे अंत तक हानि होती है। कुल आर्यखण्ड ढाईद्वीपमें १७० हैं (त्रि० गा० ७११—८८३)।

आर्यभ्रम निराकरण—पुस्तक मुद्रित।

आर्य भ्रमोच्छेदन— "

आर्य मत लीला— "

आर्य संशयोन्मूल— "

आर्यिका—(आर्जिका, आर्या)—ग्यारह प्रतिमाके व्रत पालनेवाली ऐलकके समान आचरण करनेवाली एक सफेद सारी, पीछी, कमंडल शास्त्र रक्खे, बैठकर हाथमें भोजन करे। आर्यिका जब वंदनाको जावे तब आचार्यसे ५ हाथ, उपाध्यायसे ६ हाथ तथा साधुसे ७ हाथ दूरसे वंदना करे। पिछाड़ी बैठे, अगाड़ी न बैठे। गौके समान बैठकर वंदना करे।

आर्यिकाएं अकेली न रहें, दो तीन साथ रहें, योग्य स्थानमें ठहरें, भिक्षा कालमें बड़ी आर्जिकाको पूछकर अन्य आर्जिकाओंके साथ जावें। भिक्षावृत्तिमें ऐलकके समान भिक्षा ले। इनको घरके काम न करना चाहिये (मू० १८७...)।

आर्जव धर्म (आर्जव धर्म)—कपटका अभाव होकर जहां सरल भाव हो, मन वचन कायका सरल प्रवृत्ति, योगोंका वक्र न होना (सर्वा० अ० ९।६)।

आर्योंका तत्वज्ञान–मुद्रित

आर्योंका प्रलय– ,,

आलम्बन शुद्धि–ईर्यापथ शुद्धिका एक भेद। विना प्रयोजन मकान बाग आदि देखनेके लिये गमन नहीं करे, गुरु, तीर्थ, चैत्य, यति वंदनाके लिये, शास्त्र सुननेके लिये, ध्यानयोग्य क्षेत्र देखनेके लिये, वैय्यावृत्यके लिये, आहार व नीहार व विहारके लिये गमन करना सो आलम्बन शुद्धि है (भ० पृ० २७३)।

आलाप–आभाषण, किसी खास बातको कहना, विशेष कहना, गोमटसारकी २० प्ररूपणामें विशेष स्थानोंको कहना (गो० जी० गा० ७०६)।

आलाबु–तूम्बी।

आलोकितपान भोजन–अहिंसाव्रतकी पांचवीं भावना, देखके भोजन करना (सर्वा० अ० ७।४)।

आलोचना–गुरुके पास अपराधोंको कहना, सो सात प्रकार है–दैवसिक, रात्रिक, ईर्यापथिक, पाक्षिक, चातुर्मासिक, सांवत्सरिक, उत्तमार्थ। शुद्ध भावसे दोषोंको कहना चाहिये, कपट न रखना चाहिये। आलोचना करनेसे भावोंकी शुद्धि होती है। इसे आलुंचन, विकृति करण व भाव शुद्धि भी कहते हैं (मू० गा० ६१९–६२१)।

आलोचना दोष–आलोचना करनेवाला शिष्य साधु–१० दोष न लगावे–(१) आकम्पित–गुरुको वंदनादि करके उनको अनुकम्पा उपजाय फिर दोष कहे, २ अनुमानित–गुरुको ऐसा जतलावे कि मैं निर्बल हूं जिससे दण्ड कम मिले ऐसे भाव सहित कहे, ३ दृष्ट–जो दोष दूसरेने देखा हो उसे कहे, विना देखा न कहे, ४ बादर–मोटे २ दोषोंको बतावे, सूक्ष्मोंको छिपावे। ५ सूक्ष्म–छोटे२ दोषोंको कहे, बड़े दोषोंको छिपावे। ६ छन्न–गुरुसे पूछे कि ऐसा दोष कोई करे तो क्या दण्ड होता है। ऐसा जानकर प्रायश्चित्त ले ले, अपना दोष न कहे ७ शब्दाकुलित–जब गुरुके पास बहुत लोग जमा हो व प्रतिक्रमण पाठ आदि होता हो तब अपना दोष कहे जिससे गुरुको यथावत् प्रगट न हो, ८ बहुजन–अपने गुरुसे प्रायश्चित्त लेकर उसपर श्रद्धान न करता हुआ अन्य आचार्यसे पूछे कि ऐसे अपराधका क्या प्रायश्चित्त है, ९ अव्यक्त–अज्ञानी मुनिसे आलोचना करके संतोष मानले, १० तत्सेवी–सदोषी मुनिके पास आलोचना करे कि जिससे अल्प दंड मिले (भ० पृ० २३९–२४२)।

आलोचना पाठ–भाषाछन्दमें एक पाठ मुद्रित।

आलोचना प्रायश्चित्त–कोई अपराध ऐसा होता है जो गुरुके पास अपना दोष कहनेसे ही शुद्धि होजाती है (सर्वा० अ० ९।२२)।

आलोचना शुद्धि–आलोचना करके अपने दोषको मिटाना।

आवर्जित करण–जो केवली केवल समुद्घात करते हैं उसके पहले अंतर्मुहूर्त काल तक यह करण होता है। इसमें स्वस्थान केवलीके गुणश्रेणि आयामसे गुणश्रेणि आयाम संख्यात गुण कम है परन्तु अपकर्षण द्रव्य स्वस्थान केवलीके द्रव्यसे असंख्यात गुणा है। इसके पीछे दंडकपायादि समुद्घात होता है (ल० गा० ६२१–६२२)।

आवर्त्त–सामायिक करनेके समय व दर्शन करते समय जब प्रदक्षिणा देते हैं तब हर तरफ तीन आवर्त्त करते हैं। जोड़े हुए हाथोंको अपनी बाईं तरफसे दाहनी तरफ लेजाना सो एक आवर्त्त है।

आवर्त्ता–विदेह क्षेत्रमें सीतानदीके उत्तरतट भद्रसाल वेदीसे लगाकर जो आठ देश हैं उनमें पांचमा देश (त्रि० गा० ६८७)।

आवली–जघन्ययुक्ता असंख्यात समयोंका एक आवलीकाल होता है (सि० द० पृ० ७०) एक आवलीकालमें जितने निषेक या कर्म वर्गणा समूह समय समय झड़ते हैं उनको भी आवली कहते हैं (ल० पृ० २८)।

आवश्यककर्म–जो क्रिया नित्य करनी आवश्यक हो। मुनियोंकी छः क्रियाएं हैं–(१) सामायिक, (२) चौवीस तीर्थंकर स्तवन, (३) पंचपरमेष्टी आदिको

वंदना, (४) प्रतिक्रमण–अपने दोषोंको अपने आप प्रगट करना व आचार्यादिसे प्रगट करना। दोषको शोधना (५) प्रत्याख्यान–आगामी कालके लिये दोषोंका त्यागना (६) कायोत्सर्ग–२५, २७ या १०८ उछ्वास तक शरीरसे ममत्व त्यागना। गृहस्थोंके छः जरूरी काम हैं–१ देवपूजा, २ गुरु भक्ति, ३ स्वाध्याय, ४ संयम, ५ तप, ६ दान।

आवश्यका परिहाणि–मुनि व श्रावकको अपनी नित्यकी आवश्यकीय क्रियाओंको न त्यागना। नित्य करना। यह १६ कारण भावनामें १४ वीं भावना है (सर्वा० अ० ६–२४)।

आवागमन–भव भवमें भ्रमण करना।

आवागमन स्थान–देखो शब्द "आगत"।

आवास–व्यंतरके भवनोंका नाम, जो द्रह, पर्वत व वृक्षमें होते हैं ये मध्य लोककी पृथ्वीसे ऊँचे होते हैं, जो नीचे होते हैं उन्हें भवन व जो सम-भूमिमें होते हैं उन्हें भवनपुर कहते हैं (त्रि०गा० २९४–२९५)।

आविद्र–भ्रमण करता हुआ, घूमता हुआ।

आवीचिका मरण–जो आयु कर्मका उदय समय२ होकर घटता है। यह आवीचि कहिये समुद्रमें तरंगकी तरह उदय हो होकर पूर्ण होता जाता है इसे समय२ मरण भी कहते हैं (भ. पृ. १०)।

आशकरण–भाषा कवि, नेमिचंद्रिका छन्दोंबद्धके कर्ता (दि० जैन नं० ६–४१)।

आशा–तृष्णा, चाह।

आशाधर–पंडित गृहस्थ बघेरवाल जाति। यह नागौरके निकट सवालक्ष देशके मंडलकर नगरमें जन्मे थे, वहां सांभरका राज्य भी शामिल था। इनका जन्म वि० सं० १२३५ में हुआ होगा। सं० १३०० में उन्होंने अनगार धर्मामृतकी भव्य कुमुदचंद्रिका टीका पूर्ण की थी। यह बड़े विद्वान थे। इनके बनाए बहुतसे ग्रन्थ संस्कृतमें हैं। जैसे–सागारधर्मामृत व इष्टोपदेश टीका, प्रतिष्ठासार, अष्टांगहृदय टीका, रत्नत्रय विधान, अध्यात्मरहस्य, भरताभ्युदय, चम्पूकाव्य आदि (दि०जै० नं० २९ व सा० भूमिका प्रथम भाग)।

आशाराम–पं० भाषा कवि–समवशरण पूजा व अहिछत्र विधानके कर्ता (दि० जैन नं० ५।४१)

आशिका–पूजाके करनेके पीछे बचे हुए अक्षत शेषा कहलाते हैं उनको पूजा करनेवाले अपने विनय पात्रोंके पास लेजाते हैं उनको वे हाथ जोड़कर विनय सहित लेते हैं और अपने मस्तकपर रखते हैं इस हीको आशिका कहते हैं। विनय करना आशिका मस्तक चढ़ाना है (अ० प० ४३।१७७ १७८)।

आशीविष–पश्चिम विदेह सीतोदा नदीके दक्षिण तटमें भद्रसालवनकी वेदीसे आगे क्रमसे चार वक्षार पर्वत हैं उनमेंसे तीसरा पर्वत (त्रि.गा. ६६८)।

आश्रम–चार हैं, ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, भिक्षु या सन्यास। जो ब्रह्मचर्य पालते हुए विद्याभ्यास करें वह ब्रह्मचर्य आश्रम है। जो नित्य क्रिया करते हुए गृहस्थ धर्म पालते हैं वे गृहस्थ हैं, उनके दो भेद हैं–एक जाति क्षत्रिय जैसे क्षत्रिय, ब्राह्मण वैश्य और शूद्र, दूसरे तीर्थ क्षत्रिय, ३ वानप्रस्थ जो खंडवस्त्र धारकर तप करते हैं, ४ भिक्षु जो दिगंबर मुनि हैं। (सा० अ० ७।२० छठी प्रतिमा तक गृहस्थ, सातमीसे ११ वीं प्रतिमातक वानप्रस्थ होते हैं (श्रा० पृ० २५६)।

आष्टाह्निकमह पूजा–आष्टाह्निकाके दिनोंमें जो महा पूजा की जाय। कार्तिक, फागुन व आषाढ़के अंत आठ दिनोंमें (सा० अ० ११८)।

आष्टे (श्री विघ्नहर पार्श्वनाथ)–निजाम हैदराबाद रियासतमें दुधनी स्टेशनके पास कालेजसे करीब १६ मील–यहां प्राचीन जिनालय है। पार्श्व-नाथकी मूर्ति २ फुट ऊंची नीचे फणकी है। पद्मा-सन। मंदिरका जीर्णोद्धार शक सं० १२८में बारह शिलालेखसे प्रगटता है। दिगंबर सेठ हीराचंद नेमचंदने कुछ वर्ष हुए जीर्णोद्धार कराया था। (तीर्थयात्रा दर्शन पृ० २१६)।

आसन्न भव्य-जो भव्य थोड़े भव धरकर मोक्ष होगा, निकट भव्य (सा० अ० १-६)।

आसन्न मरण-जो जैन साधु संघसे भ्रष्ट हो बाहर निकल गया ऐसे पार्श्वनाथ, स्वछंद, कुशील व संसक्त साधुका मरण (भ० पृ० ११)।

आसन (निषद्या) परीषह-बैठनेके कष्टको समतासे सहना। मुनि कुछ काल तक एक नियमित आसनसे बैठते हैं उस समय पशु आदिसे भय न करना व उपसर्ग पड़े तो सहना (सर्वा. अ. ९-९)

आसादन (आसादना)-ज्ञानावरणीय व दर्शनावरणीय कर्मके आस्रवका कारण। दूसरा कोई सच्चे ज्ञानको प्रकाश करना चाहता हो उसको वचन व कायसे मना कर देना (सर्वा०अ० ६।१०)।

आसिका-मुनियोंका आचार या समाचार उसका चौथा भेद। ठहरनेकी जगहसे निकलते हुए देवता, गृहस्थ आदिसे पूछकर गमन करना अथवा पाप क्रियादिकसे मनको रोकना (मू० गा० १२६) नवीन स्थानोंमें प्रवेश करते समय वहांसे रहनेवालोंसे पूछकर प्रवेश करना व सम्यग्दर्शनादिमें थिर भाव सो निषेधिका समाचार है। मुनि पर्वत गुफा आदि निर्जन स्थानोंमें प्रवेश करते समय निषेधिका करें व निकलते समय आसिका करें (मू.गा. १३४)

आसुरी भावना-जो मुनि तप करते दुष्ट हो, क्रोधी हो, अभिमानी हो, मायाचारी हो, क्लेशित भाव रखता हो, वैर बढ़ाता हो वह आसुरी भावनावाला है। वह मरकर असुर जातिके अंबर अंबरीष नाम भवनवासियोंमें पैदा होता है (मू० गा० ६८)

आस्तिक-जो परलोक, पुण्य पाप, आत्मामें श्रद्धा रखता हो।

आस्तिकप्रकाश-एक ट्रैक्ट।

आस्तिक्य गुण-सम्यग्दृष्टीमें प्रशम, संवेग, अनुकम्पा, आस्तिक्य चार गुण होते हैं। सच्चे देव, शास्त्र, गुरु व सात तत्वोंमें श्रद्धा बुद्धि (सा० अ० १४ नोट)।

आस्थान मंडप-सभा मंडप। अकृत्रिम जिन मंदिरोंमें चौकोर मणिमय चौसठ योजन चौड़ा सोलह योजन ऊँचा होता है (त्रि० गा० ९९७)।

आस्यविषऋद्धि या आस्याविषऋद्धि-जिन साधुओंके मुखमें प्राप्त हुआ विष भी अमृत होजावे व जिनके मुखके वचन सुननेसे महान विष उतर जावे वे साधु इस ऋद्धिके धारक होते हैं (भ० पृ० २३)

आस्रव-यह सात तत्वोंमें तीसरा तत्व है। आत्मामें एक योग शक्ति है वह मन वचन कायकी क्रियाके निमित्तसे जब आत्माके प्रदेश सकम्प होते हैं तब काम करती है। यही कर्मवर्गणाओंको खींचती है। इसीलिये मन वचन कायकी क्रियाको आस्रव कहते हैं। शुभ मन वचन काय योग पुण्यके व अशुभ पापके आस्रवके कारण हैं। (सर्वा० अ० ६-१-२), कषाय सहित जीवके साम्परायिक (संसारका कारण) व कषाय रहित जीवके ईर्यापथ आस्रव होता है, जो कर्म आए व चले गये उनमें स्थिति नहीं पड़ती है।

आस्रवद्वार या भेद-कर्मवर्गणाके आनेके द्वार पांच मिथ्यात्व-एकांत, विपरीत, संशय, विनय, अज्ञान। अविरति १२-पांच इंद्रिय व मनको वश न रखना व छः कषायके जीवोंकी दया न पालना। कषाय २५-अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान, संज्वलन ऐसे चार चार क्रोध, मान, माया, लोभ व नौ नोकषाय-जैसे हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद। योग १५-मन, वचनके चार चार-सत्य, असत्य, उभय, अनुभय व सात कायके-औदारिक व औदारिक मिश्र, वैक्रियक व वैक्रियिक मिश्र, आहारक व आहारक मिश्र व कार्मण। ये ५+१२+२५ +१५=५७ आश्रव द्वार या भेद हैं। (भ० पृ० ५२६)।

आस्रव त्रिभङ्गी-ग्रन्थ संस्कृतमें।

आस्रव भावना व आस्रवानुप्रेक्षा-बारह भावनाओंमें ७वीं भावना-आस्रवका स्वरूप विचा-

रना। ये कर्मोंका आना विषय कषायसे होता है इनको रोकना चाहिये (सर्वा० अ० ९-७)।

आहनिक-एक अध्यायका भाग।

आहार्य विपर्यय-दूसरेके उपदेशसे विपरीत शास्त्रज्ञानका ग्रहण।

आहार-भोजन। चार प्रकारका है-खाद्य (जिससे पेट भरे), स्वाद्य (इलायची आदि), लेह्य (चांटने योग्य), पेय (पीने योग्य) १४वीं मार्गणा। औदारिक, वैक्रियिक व आहारक इन शरीर नामा नामकर्मोंमेंसे किसी एकके उदय करके उन शरीररूप व वचन रूप व द्रव्य मनरूप होने योग्य नोकर्म वर्गणा। अर्थात् आहारक, भाषा व मनोवर्गणाओंका ग्रहण करना आहार है (गो० जी० ६२४)।

आहार पर्याप्ति-जब कोई जीव एक शरीरसे दूसरे शरीरमें जाता है तब वह औदारिक, या वैक्रियिक या आहारक शरीररूप होने योग्य आहारक वर्गणाको, भाषा वर्गणाको व मनोवर्गणाको, एकेंद्रिय मात्र आहारक वर्गणाओंको द्वेन्द्रियादिक सब भाषा वर्गणाको भी व मनवाले मनोवर्गणाको भी ग्रहण करते हैं, उन पुद्गल स्कन्धोंमें खल अर्थात मोटे रूप रस अर्थात पतले रूप कर देनेकी जो आत्मामें शक्ति पर्याप्ति नाम कर्मके उदयसे पैदा होती है उसे आहार पर्याप्ति कहते हैं (गो.जी.गा. ११९)।

आहार संज्ञा-आहार करनेकी इच्छा यह सामान्यसे सब संसारी जीवोंके पाई जाती है, इस इच्छाके पैदा होनेके बाहरी कारण हैं-(१) विशेष भोजन देखना, (२) आहारकी याद करना व आहारकी बात सुनना, (३) उदरका खाली होना। अंतरंग कारण असाता वेदनीयका तीव्र उदय या उदीरणा है (गो० जी० गा० १३५)।

आहारक-विग्रह गतिवाले चारों गतिके जीव, प्रतर व लोकपूरणरूप केवल समुद्घातवाले सयोगी जिन व सर्व अयोगी १४वें गुणस्थानी जिन अनाहारक होते हैं बाकी सब दरपनम आहारक होते हैं (गो० ६६६)।

आहारक अङ्गोपांग-वह नाम कर्म जिसके उदयसे मुनियोंके मस्तकसे जो आहारक शरीर निकलता है उसमें अंगोपांग होते हैं (सर्वा. अ. ८-११)

आहारक ऋद्धि-छठे प्रमत्त गुणस्थानी मुनिको आहारक शरीरको बनानेकी शक्ति जो आहारक नाम कर्मके उदयसे होती है।

आहारककाय योग-प्रमत्त छठे गुणस्थानी मुनिके आहारक शरीर नामकर्मके उदयसे आहारक वर्गणासे आहारक शरीर बनता है। ढाईद्वीपमें तीर्थयात्राके लिये असंयम दूर करनेके लिये किसी शंकाके दूर करनेके लिये जहां अपने जानेकी शक्ति न हो वहां यह शरीर जाता है, केवली श्रुतकेवलीके दर्शन करनेसे संशय मिट जाता है। यह रसादि सात धातुसे रहित है, बड़ा सुन्दर है। सफेद वर्ण है, एक हाथ प्रमाण या २४ व्यवहार अँगुल प्रमाण है। यह मुनिके मस्तकसे निकलता है, यह कहीं रुकता नहीं है। इसकी स्थिति उत्कृष्ट व जघन्य अंतर्मुहूर्त है। आहारक शरीरके काम करते हुए जो आत्माके प्रदेश सकम्प होते हैं उसे आहारक काययोग कहते हैं। इस शरीरके निमित्तसे मुनि अपनी शंकाको आहरति अर्थात् दूर करता है व सूक्ष्म अर्थको आहरति-अर्थात् ग्रहण करता है इसलिये इसे आहारक कहते हैं (गो०जी०गा०२३५-२३९) कोई साधु आहारक योग होते हुए मरण भी कर जाता है।

आहारक जीव-देखो शब्द "आहारक"।

आहारक मार्गणा या आहार मार्गणा-१४वी मार्गणा जिसमें जीवोंके आहारक व अनाहारकका कथन है (गो० जी० गा० ६६४)।

आहारक मिश्र काययोग-आहारक शरीरके बननेमें एक अन्तर्मुहूर्त लगता है। जबतक वह पूर्ण न हो अर्थात जबतक आहारक वर्गणारूप पुद्गल स्कन्ध आहारक शरीररूप नहीं परिणमा तबतक आहारक मिश्रयोग होता है। उस समय आहारक

वर्गणाके साथ औदारिक शरीर रूप वर्गणाके मिलापसे आत्माके प्रदेशोंका चञ्चलपना होता है वह आहारक मिश्र काययोग है (गो. जी. गा. २४०)

आहारक बन्धन नामकर्म–वह नाम कर्म जिससे आहारक शरीर बननेके लिये आहारक वर्गणाएँ परस्पर मिल जाती हैं (सर्वा० अ० ८–११)।

आहारक वर्गणा–वह पुद्गल स्कन्ध जिनसे औदारिक, वैक्रियिक व आहारक ये तीन ही शरीर बनते हैं।

आहारक शरीर नामकर्म–वह नामकर्म जिससे आहारक शरीर बनता है। देखो शब्द आहारक काय योग (सर्वा० अ० ८–११)।

आहारक संघात नामकर्म–वह कर्म जिससे आहारक शरीरको बननेके लिये आहारक वर्गणाएं परस्पर छिद्र रहित मिल जाती हैं (सर्वा० अ० ८।११)।

आहारदान–अन्नादि आहारका भक्तिपूर्वक देना आहार पात्रदान है। दयासे दुःखित भुक्षितको देना आहारकरुणादान है।

आहारदोष–जहां मुनियोंको दान दिया जाय वहां ४६ दोष आहारके बचने चाहिये। इनके सिवाय अधःकर्म दोष साधु न करे अर्थात् स्वयं वह छः कायकी विराधना करके भोजन उपजावे या करावे या करतेकी अनुमोदना करे ऐसा दोष न लगावे। ४६ दोषोंमें १६ उद्गम दोष हैं, १६ उत्पादन दोष हैं, १४ आहार संबंधी दोष हैं–

१६ उद्गम दोष–(१) औद्देशिक दोष या उद्दिष्ट दोष–जो भोजन जैन साधु व अन्य साधुके निमित्त बनाया गया हो, (२) अध्यधि दोष–मुनिको आते देख भोजन तय्यार करना व भोजन अधिक बढ़ाना, (३) पूति दोष–प्राशुक भोजनमें अप्राशुक भोजन मिलाना या यह संकल्प करना कि इस चूल्हे आदिसे पका भोजन पहले साधुको देंगे, (४) मिश्र दोष–संयमीके साथ अन्य भेषियों व गृहस्थोंको देनेका उद्देश करे, (५) स्थापित दोष–जहां पकाया था वहांसे आहारको दूसरे भाजनमें रखकर अन्य स्थानमें व दूसरेके घरमें रखकर देना इसमें भी साधुके अर्थ उद्देश्य है, (६) बलि दोष–यक्ष नागादिकी पूजा निमित्त किया हुआ भोजन बना हुआ साधुको देवे, (७) प्रावर्तित दोष–पड़गाहे पीछे कालकी हानि व वृद्धि करके दान देना व नवधा भक्तिमें शीघ्रता व विलम्ब करना, (८) अविष्करण दोष–अन्धेरा जान मण्डप आदिको दीपकसे प्रकाशरूप करना, (९) क्रीत दोष–बदलेमें वस्तु लाकर देना, (१०) प्राभृष्य दोष–उधार लाकर देना, (११) परिवर्तक दोष–अपनी वस्तु घटिया देकर बढ़िया वस्तु लाकर देना, (१२) अभिघट दोष–देशांतरसे आई वस्तु देना, (१३) उद्भिन्न दोष–बंधी व मोहर लगी हुई वस्तुको खोल कर देना, (१४) मालारोहण दोष–ऊपरकी मंजिलसे वस्तु लाकर देना, (१५) अच्छेद्य दोष–दूसरेको भय दिखाकर दान करना, (१६) अनीशार्थ दोष–असमर्थ बन चाहनेवाला दातार दान देवे।

उत्पादन दोष १६–ये दोष पात्रके आश्रय हैं (१) धात्री दोष–गृहस्थको मंडन क्रीडनादिके लिये धायके बुलानेका उपदेश देकर आहार ले, (२) दूत दोष–दूसरेके संदेशेको कहकर आहार ले, (३) निमित्त दोष–अष्टांग निमित्त ज्योतिषादि बताकर आहार ले, (४) आजीवक दोष–अपना जाति कुल व महात्म्य बताय आहार ले, (५) वनीपक दोष–दातारके अनुकूल बातें कर आहार ले, (६) चिकित्सा दोष–औषधि बताये, (७) से (१०) क्रोध, मान, माया, लोभसे लेना, (११) पूर्व स्तुति–भोजनके पहले दाताकी स्तुति करे, (१२) पश्चात् स्तुति–भोजनके पीछे स्तुति करे, (१३) विद्या दोष–विद्या बताकर व आशा दिलाकर भोजन ले, (१४) मंत्र दोष–मंत्र बताकर भोजन ले, (१५) चूर्ण दोष–चूर्ण आदि बतावे, (१६) मूल कर्मदोष–वशीकरण बतावे।

(१०) अशन दोष-(१) शंकित-यह लेने योग्य है या नहीं, शंकापर भी लेले, (२) म्रक्षित-चिकने हाथ या वर्तनपर रक्खा भोजन ले, (३) निक्षिप्त-सचित्तपर धरा ले, (४) पिहित-सचित्तसे ढका ले, (५) संव्यवहरण-वस्त्र विना संभाले व विना भोजनको देखे दे, (६) दायक-सूतकादि युक्त अशुद्ध आहार ले, (७) उन्मिश्र-सचित्तसे मिला ले, (८) अपरिणत-पूर्णनपका व ठीक प्राशुक न हुआ जलादि ले, (९) लिप्त दोष-गेरू हरताल आदि अप्राशुक वस्तुसे लिप्त वर्तन या हाथमें दिया ले, (१०) त्यक्त-हाथसे गिरते हुए ले व हाथमें आया हुआ छोड़ अन्य आहार ले।

चार दोष और हैं-(१) संयोजना दोष-ठंढा भोजन गरम जलमें व ठंढा जल गरम भोजनमें मिला, (२) प्रमाण दोष-मात्राको उल्लँघनकर भोजन करना, (३) अंगार दोष-अति तृष्णासे लेना, (४) धूम दोष-भोजनकी निन्दा करता लेना। इस तरह १६ उद्गम +१६ उत्पादन +१० अशन+४ संयोजनादि=४६ आहार दोष हैं (मू.गा. ४७५ से ४७७)

आहार शुद्धि-मुनिको ४६ दोष रहित आहार लेना यह शुद्धि है (मू०गा० ४२२) पिंड शुद्धि।

आहनीय कुंड-होमके लिये तीन कुंड बनाए जाते हैं, (१) चौखूंटा-गार्हपत्य-यहां तीर्थंकरके निर्वाणकी अग्निकी स्थापना है, (२) त्रिकोण-आहनीय-यहां गणधरोंके निर्वाणकी अग्निकी स्थास्थापना है। (३) अर्द्धचंद्राकार-दक्षिणावर्त्त-यहां सामान्य केवलीके निर्वाणकी अग्निकी स्थापना है (गृ० अ० ४)।

आह्वानन-पूजनके पहले स्थापनमें पूज्यके विनयके लिये आह्वानन, स्थापन व सन्निधीकरण करते हैं। इसका भाव यह है आइये आइये, विराजिये विराजिये मेरे निकट या दिलमें होजाइये। इसीलिये कहते हैं अत्र अवतर अवतर संवौषट् "यह आह्वानन है।" "अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः" यह स्थापन है। अत्र मम सन्निहितो भव भव, वषट्" यह सन्निधीकरण है। संवौषट्, ठः ठः, वषट् यह मंत्राक्षर हैं-ये विनयके सूचक हैं।

आक्षेपिणी कथा-धर्मका स्वरूप बतानेवाली मतिज्ञानादिका व सामायिकादि चारित्रका स्वरूप झलकानेवाली कथा (भ० पृ० २९९)।

आज्ञापनी अनुभय वचन-ऐसा वचन जिससे आज्ञा सूचित हो जैसे कहना "तू इस कामको कर" यह ८ प्रकार अनुभय वचनका दूसरा भेद है।

आज्ञाविचय-धर्मध्यानका (गो० जी० गा० २२९) पहला भेद-जिसमें सूक्ष्म पदार्थोंको मति अल्प होनेसे समझमें न आनेपर सर्वज्ञके आगमकी आज्ञानुसार विचारना व तत्त्वोंका स्वरूप सर्वज्ञकी आगमकी आज्ञानुसार प्रकाश करना (सर्वा० अ० ९-३६)।

आज्ञाव्यापादिकी क्रिया-आगमकी यथार्थ आज्ञाके अनुसार किसी क्रियाको आप प्रमादवश यथार्थ न कर सक्ता हो तो उसका स्वरूप भी औरका और आज्ञा विरुद्ध कहना। यह आस्रवकी २५ क्रियाओंमें १९वीं क्रिया (सर्वा० अ० ६-५)।

आज्ञा सम्यक्त-जो सम्यक्त वीतराग सर्वज्ञकी आज्ञानुसार श्रद्धा करनेसे हो कि भगवान असत्य कहनेवाले नहीं होसक्ते (भ० पृ० ९१७)।

इ

इक्षुवर-सातवां द्वीप व समुद्र।

इक्ष्वाकु वंश-यह वंश जिसमें श्री ऋषभदेव भगवान हुए, इसीमें श्री रामचन्द्रादि हुए। इस वंशका नाम इक्ष्वाकु इसलिये पड़ा कि भगवानने प्रजाको सबसे पहले ईखके रसके संग्रह करनेका उपदेश दिया इससे भगवान इक्ष्वाकु कहलाए और इसीके कारण उनके वंशका नाम इक्ष्वाकु वंश प्रसिद्ध हुआ (इति० वं० १ पृ० २६)।

इंगिनी मरण-जो साधु संघसे निकलकर एक ही एकांत स्थानमें बाहर समाधिमरण करे, [illegible]

चार प्रकारका आहारका त्याग करे तथा अपने शरीरसे अपना उपचार तो करे परन्तु दूसरेसे अपनी सेवा न करावे । उपसर्ग पड़े तो अपना उपचार आप भी न करे—समतासे सहे । इसे वज्र-व्रषभ नाराच, वज्र नाराच व नाराच इन तीन संहननका धारी करता है (भ० पृ० ९८९) ।

इच्छा—चाहना; रुचक द्वीपके रुचक पर्वतपर दक्षिण दिशाके स्फटिक कूटपर इच्छा नाम देवी रहती है (त्रि० गा० ९९०) ।

इच्छाकार—मुनियोंके समाचारका पहला भेद । सम्यग्दर्शनादि शुद्ध परिणाम वा व्रतादिक शुभ परि-णामोंमें हर्ष होना अपनी इच्छासे प्रवर्तना (भ०गा० १२६); व्रती श्रावक व विरक्त श्रावक आपसमें इच्छाकार करें (श्रा० पृ० २४९) ।

इच्छानुलोमनी भाषा—आठ अनुभय वचनोंमें आठवां भेद—इच्छानुसार करनेकी भाषा जैसे "जैसे यह है तैसे मुझको भी होना चाहिये" (गो० जी० गा० २२५) ।

इच्छामि—व्रती श्रावक व विरक्त श्रावक व ग्यारहवीं प्रतिमावाले आपसमें इच्छामि कहें कि मैं आपके गुणोंको चाहता हूं (श्रा० पृ० २४९) ।

इज्या—पूजा, अर्हंत आदिकी भक्ति—यह पूजा नित्य, आष्टाह्निक, चतुर्मुख, कल्पद्रुम, ऐंद्रध्वज—पांच तरहकी है । जो पूजा रोज की जाय वह नित्य पूजा है । २ अष्टाह्निका पूजा जो कार्तिक फाल्गुन आषाढ़में अंतके आठ दिन की जाती है । मुकुटबद्ध राजाओं द्वारा जो महापूजा की जाय सो चतुर्मुख पूजा है । जो इच्छाके अनुसार मांगनेवालोंको दान देते हुए महापूजा की जाय, सो कल्पवृक्ष पूजा है । इन्द्र द्वारा की गई महापूजा ऐंद्रध्वज पूजा है (सा० अ० १-१८) ।

इतर निगोद—जो नित्य निगोदसे निकलकर अन्य पर्याय या जन्म धरकर फिर निगोदमें जाते हैं । चतुर्गति निगोद भी इसे कहते हैं (गो० जी० गा० १९७) ।

इतरेतराभाव—अन्योन्याभाव—पुद्गल द्रव्यकी एक वर्तमान पर्यायमें दूसरे पुद्गलकी वर्तमान पर्यायका अभाव होना । जैसे घटमें पटका अभाव व पटमें घटका अभाव (जै० सि०प्र० नं०१८४) ।

इतरेतराश्रय—दोष, अन्योन्याश्रय—कारणका कार्यके व कार्यका उसी कारणके आश्रय होना यह दोष है । जैसे जिस वृक्षका बीज हो उसी बीजसे वही वृक्ष होना यह असंभव है, इसलिये दोष है ।

इत्वरिका अपरिग्रहीतागमन—बिना विवाही व्यभिचारिणी स्त्रीसे हास्यादि संबन्ध रखना, यह ब्रह्मचर्य अणुव्रतका तीसरा अतीचार है । (सर्वा० अ० ७-२८)

इत्वरिका परिग्रहीता गमन—विवाही हुई व्य-भिचारिणी स्त्रीसे हास्यादि संबन्ध रखना यह ब्रह्म-चर्य अणुव्रतका दूसरा अतीचार है । (सर्वा० अ० ७-२८)

इन्द्र—आत्मा; देवोंका स्वामी राजा तुल्य; सौ इन्द्र प्रसिद्ध हैं जो भगवानको नमस्कार करते हैं । भवनवासी देवोंके ४०, व्यन्तर देवोंके ३२, कल्प-वासी देवोंके २४, ज्योतिषियोंके चंद्रमा सूर्य २, मानवोंमें चक्रवर्ती राजा, पशुओंमें अष्टापद । राव-णका शत्रु जो अपनेको इन्द्र तुल्य मानता था ।

इन्द्रक—मध्यके विमान व नरकोंके मध्यके बिले स्वर्गोंमें पहले युगलमें ३१, दूसरेमें ७, तीसरेमें ४, चौथेमें २, पांचवेमें १, छठेमें १, सातवें आठवें युगलमें ६=५२ इन्द्रक १६ स्वर्गोंमें हैं और ग्रैवेयिकमें ९, नौ अनुदिशमें १, पांच अनुत्तरमें १ ऐसे कुल ६३ इन्द्रक ऊर्ध्वलोकके विमानोंमें हैं (त्रि० गा० ४६२) ।

इनमें पहला सौधर्म ईशान स्वर्गका इन्द्रक ऋतु ढाईद्वीप प्रमाण पैंतालीस लाख योजन चौड़ा है व अंतका सर्वार्थसिद्धि जम्बूद्वीप समान १ लाख योजन चौड़ा है ।

सात नरकोंमें इन्द्रक बिले हैं—पहलेमें १३, दूस-

रेमें ११, तीसरेमें ९, चौथेमें ७, पांचवेमें ५, छठेमें ३, सातवेंमें १, कुल ४९ इंद्रकविले हैं। पहले नरकका पहला इन्द्रक सीमंत ढाईद्वीप प्रमाण ४५ लाख योजन चौड़ा है। व अंतका अप्रतिष्ठित जम्बूद्वीप समान १ लाख योजन चौड़ा है। (त्रि० गा० १५३ व १६९)

इन्द्रजीत–रावणका पुत्र जो बड़वानीसे मुक्त हुए।

इन्द्रदेव–सं०मदनपराजय नाटकके कर्ता आचार्य।

इन्द्रध्वजपूजा–इन्द्रद्वारा करी पूजा।

इन्द्रनन्दि–नंदिसंघके आचार्य सं० ९९९, इन्द्रनंदि संहिता, प्रतिष्ठापाठ, औषधिकल्प, मातृका यंत्र, पूजा आदिके कर्ता (दि० ग्रं० नं० २६); मुनि नीतिसार व समयभूषणके कर्ता (दि० ग्रं० नं० २७); भट्टारक धर्मप्रबोध, प्रायश्चित्त आदिके कर्ता (दि० ग्रं० नं० २८); यतिपति श्रुतावतारके कर्ता (श्रा० ए० २४)।

इन्द्रवाम देव–त्रैलोक्य दीपक, त्रैलोक्य चरित्र व त्रैलोक्य दर्पणके कर्ता (दि०ग्रं० नं० २९)।

इन्द्रराज–इस पंचमकालके अंतमें भरतमें इन्द्रराज आचार्यका शिष्य वीरांगद अंतका साधु होगा (त्रि० गा० ८५८)।

इन्द्राणी–इन्द्रकी स्त्री–शची।

इन्द्रिय–इन्द्र नाम आत्मा उसका लिंग अर्थात् उसके पहचाननेका चिन्ह; इन्द्र नामकर्मको कहते हैं। उनके उदयसे बनी हुई (सर्वा० अ० १।१४) अहमिंद्रोंके समान जो स्वतंत्र हो अपना अपना काम करें। इन्द्रिय दो प्रकार है, द्रव्येंद्रिय, भावेंद्रिय। इंद्रियकी रचना व उसकी रक्षाके अंगको द्रव्येंद्रिय कहते हैं व जाननेकी शक्ति व उपयोगको भावेंद्रिय कहते हैं। एकेंद्रियोंके एक स्पर्शनेंद्रिय होती है, द्वेंद्रिय जीवोंके स्पर्शन व रसना, तेंद्रिय जीवोंके स्पर्शन रसना, घ्राण, चौंद्रिय जीवोंके स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु–पंचेंद्रियोंके स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु व कर्ण होते हैं (गो०जी० १६४।१६५–१६६)।

इन्द्रिय आकार–चक्षुइंद्रियका आकार मसूरकी दालके समान है, कर्णका जौकी नालीके आकार है, नाकका कदंबके फूलके आकार है, जिह्वाका खुरपाके आकार है, स्पर्शनका अनेक प्रकार है (गो० जी० गा० १७१)।

इन्द्रिय निग्रह–इंद्रियोंको अपने आधीन रखना।

इन्द्रिय पर्याप्ति–यथायोग्य द्रव्येंद्रियोंके स्थानरूप प्रदेशोंसे वर्णादिक ग्रहण रूप उपयोगकी शक्तिकी प्राप्ति जो पर्याप्त जीवोंके एक अंतर्मुहूर्तमें पूरी होती है (गो० जी० गा० ११९)।

इन्द्रिय मुण्ड–पांचों इंद्रियोंका मुण्डना, अपने२ विषयोंके व्यापारको छुड़ाना (मू० गा० १२१)।

इंद्रिय विवेक–इंद्रिय विषयोंसे वैराग्य।

इंद्रिय विषय–स्पर्शन इंद्रियका विषय। आठ प्रकारका स्पर्श है। रसनाका पांच तरहका रस है, घ्राणका दो तरह गंध है, चक्षुका पांच तरहका वर्ण है। कर्णका सात स्वर गानेके हैं। एकेंद्रिय जीवोंके स्पर्शन इंद्रियका विषय चारसौ धनुष है। यही विषय द्वेन्द्रिय आदि असैनी पंचेन्द्रिय तकके दूना दूना है। इतने क्षेत्र दूरके विषयको पाकर स्पर्श द्वारा जान सके। द्वेंद्रियके रसनाका विषय चौसठ धनुष है, असैनी पंचेंद्रियतक दूना दूना है। तेन्द्रियके घ्राणका विषय सौ धनुष है। आगे दूना दूना असैनी पंचेंद्रिय तक है, चौंद्रियके नेत्रका विषय २९५४ योजन है। इससे दूना असैनी पंचेंद्रियके है, असैनी पंचेंद्रियके श्रोत्रका विषय आठ हजार धनुष है। सैनी पंचेंद्रियके स्पर्शन, रसना व घ्राण उत्कृष्ट विषय नौ नौ योजन है। नेत्रका सैंतालीस हजार दोसौ तरेसठ योजन व साठ योजनका बीसवां भाग (४७२६३ $\frac{7}{20}$) है। कर्णका विषय बारह योजन उत्कृष्ट है। (गो० जी० गा० १६८–१६९)

इन्द्रियावलोकन [illegible]–[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] (श्रा० ए० २०७)।

इम्मोर्टैलिटी एन्ड ज्वाय–इंग्रेजीमें एक पुस्तक जीव अमरत्व व आनन्दपर बारि० चम्पतराय कृत मुद्रित।

इला–भरतके हिमवत् कुलाचलपर ग्यारहवें कूटका नाम (त्रि० गा० ७२१)। रुचक पर्वतके पश्चिम दिशाके अमोघकूटमें वसनेवाली देवी। (त्रि० गा० ९५२)

इष्ट–वादि व प्रतिवादी सिद्ध करना चाहे।

इष्ट छत्तीसी–पंचपरमेष्टीके गुणोंको बतानेवाली हिन्दीमें कविता मुद्रित।

इष्ट वियोग–इष्ट व मनको पसंद चेतन अचेतन पदार्थका बिछुड़ जाना।

इष्ट वियोगज आर्तध्यान–इष्ट पदार्थके वियोग होनेपर वारवार शोच करना–दूसरा आर्तध्यान है (सर्वा० अ० ९।३१)

इष्ट विषयसेवन अब्रह्म–मर्यादारहित इच्छाके अनुसार कामसेवनके भावसे जाना आना, खाना पीना, संगति करना, बैठना, उठना आदि (भ०पृ० ३०७)

इष्टोपदेश–पूज्यपाद आचार्यकृत सं०में अध्यात्मिक ग्रंथ टीका सं०में पं० आशाधरकृत व भाषामें ब्र० सीतलप्रसाद कृत मुद्रित।

इष्वाकार पर्वत–धातुकी खंड व पुष्करार्द्धमें दो दो पर्वत हैं–ये दक्षिण व उत्तर हैं जो वहांकी रचनाको दो विभागमें प्रत्येक मेरु सम्बन्धी बांट देते हैं। हरएक द्वीपमें दो दो मेरु भरत ऐरावतादि हैं। ये सुवर्णके रंगके हैं। हरएकमें चार चार कूट हैं। पूर्व पश्चिममें हजार योजन चौड़े हैं, चारसौ योजन ऊँचे हैं, दक्षिण व उत्तर अपने द्वीपके व्यास समान क्रमसे चार व आठ योजन लम्बे हैं (त्रि० गा० ९६२ व ९२५)।

इन्साइट इन्टू जैनिज्म–ऋषभदास वकील मेरठ कृत इंग्रेजीमें जैन धर्मोपदेश मुद्रित।

इहलोक भय–इस लोकका भय करना कि यदि ऐसा करूँगा तो लोक क्या करेंगे इत्यादि।

ई

ईतभीत–संकट व भय–सात ईति हैं।

१ अति वृष्टि–मर्यादा रहित वर्षा होना, २ अनावृष्टि–वर्षाका न होना, ३ मूसकोंका अन्धक होना, ४ टीड़ी दलका होना, ५ सूवोंका अधिक पैदा होना, ६ अपनी सेनाका खेतोंपर जाना, ७ परकी सेनाका खेतोंपर जाना। सात भय हैं–१ इहलोक भय, २ परलोक भय–परलोकमें मालूम नहीं कहां पैदा हूंगा, ३ वेदना भय–रोग कहीं न होजाय, ४ अरक्षा भय–कोई मेरा रक्षक नहीं, क्या करूँ, ५ अगुप्ति भय–कोई माल मेरा चुरा न ले जावे, ६ मरण भय–कहीं मर न जाऊँ, ७ अकस्मात भय–कहीं मकान गिर न पड़े। डूब न जाऊँ आदि (त्रि० गा० ६८०)।

ईर्यापथ आस्रव–जो कर्म वर्गणा मात्र योगोंसे आवे कषायका उदय न हो वह एक समय स्थिति रूप रहकर चली जाती है ठहरती नहीं, यह ११वें बारहवें व तेरहवें गुणस्थानोंमें होता है (सर्वा० अ० ६–४)।

ईर्यापथ क्रिया–आस्रवकी २५ क्रियाओंमेंसे पांचवी। देखकर चलना।

ईर्यापथ शुद्धि–भूमि चार हाथ आगे देखकर चलना। उस चलनेमें जो दोष होगया हो उसको अच्छी तरह शुद्ध करना, प्रतिक्रमण करना। गृहस्थ श्रावकको मंदिर जाते हुए भूमि देखकर जाना चाहिये (सा० अ० ६।११)।

ईर्यासमिति–जीवदयाके लिये चार हाथ आगे देखकर चलना, यह मुनियोंकी पांच समितियोंमें पहली है व अहिंसाव्रतकी तीसरी भावना है (सर्वा० अ० ९।५ व अ० ७।४)।

ईषत् प्राग्भारा–तीन लोकके मस्तकपर आठमी भूमि है। सात भूमि रत्नप्रभा आदि नीचे हैं। यह पृथ्वी एक राजू चौड़ी, सात राजू लम्बी व आठ योजन मोटी है। इसीके मध्यमें सफेद रंगकी छत्रके

आकार ढाईद्वीप प्रमाण ४५ लाख योजन चौड़ी गोल सिद्ध शिला है, यह मध्यमें आठ योजन है फिर अंतपर्यंत घटती गई है। ऊपर तल समान है नीचेसे घट बढ़ है। अंतमें थोड़ा मोटा है जैसे ऊँचा रक्खा हुआ कटोरा होता है वैसे है, इसी सिद्ध शिलाकी सीधमें तनुवातवलयमें लोकशिखरपर सिद्ध भगवान विराजते हैं (त्रि. गा. ५५६-५५८) यह पृथ्वी शाश्वत् रहती है, सर्वार्थसिद्धि विमानसे बारह योजन ऊँची है। इस पृथ्वीके ऊपर बड़े दो कोस मोटी घनोदधि पवन है, फिर बड़े एक कोस मोटी घन पवन है फिर बड़े १५७५ धनुष मोटी तनु पवन है इसी वातवलयके अंतमें उत्कृष्ट छोटे पांचसे पचीस धनुष व जघन्य साढ़े तीन हाथके आकार धरे सिद्ध भगवान अचल तिष्ठते हैं (म.पृ. ६२९)

ईशान इन्द्र—सौ धर्म ईशानके उत्तर दिशाके श्रेणीबद्ध विमानमें ईशान नामका दूसरा कल्पवासी इन्द्र रहता है।

ईशान स्वर्ग—दूसरा स्वर्ग—स्वर्गकी देवियां दूसरे स्वर्ग तक ही पैदा होती हैं। इस स्वर्गमें ४ लाख बिमान देवियोंके उपजनेके हैं।

ईश्वर—परम ऐश्वर्य अनंतज्ञानादि धारी सिद्ध या अरहंत परमात्मा जो सर्वज्ञ व वीतराग हैं, कृतकृत्य हैं, न कुछ बनाते न बिगाड़ते हैं, अपने आत्मानंदमें मगन हैं।

ईश्वरका कर्तव्य—ट्रेक्ट, अंबाला शहर जैन सभा द्वारा मुद्रित।

ईश्वरवाद—वह एकांत मत जो ऐसा मानता है कि यह आत्मा ज्ञान रहित व अनाथ है, कुछ करनेको समर्थ नहीं है। इस आत्माके सुख दुःख स्वर्ग नरक आदिमें गमनादिक सर्व ईश्वरका किया होता है। सर्व कार्य ईश्वरकृत मानना (गो०क०गा० ८८०)

ईश्वरवादी—जो ईश्वरवाद मतको माननेवाले हैं, जो ईश्वरको कर्ता व फलदाता मानते हैं।

ईश्वरास्तित्व—एक ट्रेक्ट अम्बाला शहर जैन सभा द्वारा मुद्रित।

ईषत्संक्लेश परिणाम—कर्मोंकी स्थितिबन्धको कारण कषायरूप अध्यवसाय स्थान होता है उनमें उत्कृष्ट स्थितिको कारण असंख्यातलोक प्रमाण परिणाम हैं उनके पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण खंड किये जावें तब अंतके खंडमें जो परिणाम बहुत कषायरूप पाइये तिनको उत्कृष्ट संक्लेश कहिये। प्रथम खंडमें जो परिणाम थोड़े कषायरूप पाइये उनको ईषत संक्लेश कहिये। दोनों खंडोंके बीच जो खंड हैं उनके परिणामोंको मुख्य संक्लेश कहिये (गो० क० गा० १३८)

ईहा—मतिज्ञानके चार भेदोंमेंसे दूसरा भेद दर्शन इन्द्रिय व पदार्थके संबन्धके समय होता है उसके पीछे जो कुछ ग्रहण होता है वह अवग्रह है, उसके पीछे उसके विशेष जाननेकी उत्कंठा सो ईहा है। ईहामें जैसा वह पदार्थ उस तरफ झुकता हुआ ज्ञान होता है ढीला ज्ञान है जैसे दूरसे कबूतर देखा तब इतना ज्ञान कि कबूतर मालूम होता है। यह ईहा ज्ञान है। कबूतर ही है यह उसके पीछे होनेवाला अवायज्ञान है (सर्वा० अ० १।१५)।

उ

उक्त—कहा हुआ पदार्थ।

उग्रवंश—भरतके प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेवके समयमें स्थापित। काश्यप राजा प्रथम उग्रवंशी हुआ (इ० १ ए० ३९)।

उग्रसेन—श्री नेमिनाथ तीर्थंकरकी मांग राजुलके पिता।

उग्राचार्य—कनकद्वीप व कल्याणकारक वैद्यके कर्ता (दि० ग्रं० नं० ३२)।

उग्रादित्याचार्य—सिंघनृप महाराज राम निर्णेद वैद्यकके कर्ता (दि० ग्रं० नं० ३२)।

उच्च गोत्र—वह कर्म जिसके उदयसे लोक पूजित व लोक मान्य कुलोंमें जन्म हो (सर्वा.अ. ८।१२)

उच्छादन—छिपाना।

उच्छ्वास—स्वास्थ्य युक्त पुरुषकी निकलती स्वासकी नाड़ीका चलना। स्वस्थ पुरुषकी नाड़ीका सम-

यकी एक आवली होती है, संख्यात आवलीका उच्छ्वास होता है सात उच्छ्वासका एक स्तोक, सात स्तोकका एक लव–साढ़े अड़तीस लवकी एक नाली या घड़ी, दो घड़ीका एक महूर्त्त । इसलिये एक महूर्त्त या ४८ मिनटमें ७×७×$_2$×२=३७७३ उछ्वास होते हैं अर्थात् एक मिनटमें ७८‾ उछ्वास होंगे (गो० जी० गा० ५७४–५७५)।

उछ्वास नाम कर्म–वह नाम कर्म जिसके उदयसे उछ्वास चलता है (सर्वा० अ० ८।११)।

उच्छिष्टावली–कर्मोंकी स्थिति घटते घटते जो आवली मात्र स्थिति शेष रह जावे (ल०पृ० २८) इस आवलीके पीछे उस कर्मकी स्थिति विलकुल नहीं रहती है ।

उज्वलित–तीसरे नर्ककी पृथ्वीका सातवां इन्द्रकविला (त्रि० गा० १५७)।

उज्जह दोप–समाधिमरण करानेवाला निर्यापक साधु, यदि अकेला हो और वह आहारादिको जावे तो समाधिमरण करनेवाले साधुका मन विचलित होजावे तो धर्मका बड़ा अपयश हो। ऐसा दोष सो उज्जह दोप है (भ० पृ० २६१)।

उणादि प्रत्यय–बंबई ऐलक पन्नालाल दि०जैन सरस्वती भवनमें ग्रन्थ ।

उत्कृष्ट अनन्त–अनंतानंत, केवलज्ञानके अविभाग प्रतिच्छेद इतने हैं। देखो शब्द "अंक" (प्र० जि० पृ० ९७)।

उत्कृष्ट असंख्यात संख्यात–देखो शब्द 'अंक' (प्र० जि० पृ० ९५)।

उत्कृष्ट आयु–सबसे अधिक आयु देव व नारकियोंमें तेतीस सागर है व मानव तथा तिर्यंचोंमें तीन पल्य है। कर्मभूमिमें एक कोड़ पूर्व वर्ष है।

उत्कृष्ट कर्मस्थिति–आठ कर्मोंमें मोहनीयकी सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर, ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय व अंतरायकी तीस कोड़ाकोड़ी सागर, नाम व गोत्रकी बीस कोड़ाकोड़ी सागर व आयुकर्मकी तेतीस सागर है (सर्वा० अ० ८।१४–१७)।

उत्कृष्ट क्षायिकलब्धि–केवलज्ञानकी प्राप्ति जिसमें उत्कृष्ट संख्या अविभाग प्रतिच्छेदोंकी होती है। (त्रि० गा० ७२)

उत्कृष्ट परीनंत–देखो शब्द 'अंक' (प्र० जि० पृ० ९६)

उत्कृष्ट परीतासंख्यात– " " ९३

उत्कृष्ट युक्तानंत– " " ९६

उत्कृष्ट युक्तासंख्यात– " " ९५

उत्कृष्ट श्रावक–ग्यारह प्रतिमाधारी क्षुल्लक तथा ऐलक जिसको उद्दिष्ट भोजनका त्याग होता है। जो भिक्षा वृत्तिसे दिनमें एकवार भोजनपान करते हैं। क्षुल्लक पात्रमें व ऐलक हाथमें बैठकर करते हैं–पहली सब प्रतिमाओंके नियम पालते हैं (गृ.अ.१७)

उत्कृष्ट संख्यात–देखो शब्द "अंक" (प्र० जि० पृ० १९०)

उत्कर्षण–कर्मोंकी स्थिति व अनुभागको बढ़ाना। (गो० क० गा० ४३८)।

उत्तम क्षमा–गाली सुननेपर व कष्ट पानेपर भी क्रोध न करना, पूर्ण क्षमा भाव रखना। दशलक्षण धर्मका पहला भेद है (सर्वा० अ० ९।६)।

उत्तम श्रावक–देखो "उत्कृष्ट श्रावक" श्रावककी ११ प्रतिमा व श्रेणियां हैं–१ से ६ तक जघन्य श्रावक हैं, ७ से ९ तक मध्यम हैं, १० व ११ प्रतिमाधारी उत्तम हैं (गृ० अ० ८)।

उत्तम संहनन–हाड़ोंकी शक्ति छः प्रकारकी होती हैं उनमें तीन प्रथम उत्तम हैं। १ वज्रऋषभ नाराच संहनन–जिसमें हीरेके समान दृढ़ नसें, कीले व हाड़ हों। २ वज्रनाराच संहनन–जिसमें वज्र समान कीले व हाड हो। ३ नाराच संहनन–जिसमें हाड़ोंकी संधिमें दोनों ओर कीले हों, ऐसे संहननधारी साधु अंतर्मुहूर्त तक लगातार ध्यान कर सक्ते हैं (सर्वा० अ० ९।२७)।

उत्तमा–यक्ष जातिके व्यंतरोंके इन्द्र पूर्णभद्रकी मुख्य देवीका नाम (त्रि० गा० २६६)।

उत्तमार्थ प्रतिक्रमण—जन्मपर्यंत लगे हुए दोषोंकी शुद्धि करना (मू० गा० १२०)।

उत्तमार्थ मरण—उत्तम प्रयोजन जो मोक्ष उसका साधक मरण समाधिमरण। जहां समताभावसे आत्मध्यान करते हुए मरण हो (भ० पृ० २६३)।

उत्तर कर्म प्रकृति—मूल कर्म आठ हैं उनकी भेदरूप १४८ या १९८ कर्म प्रकृतियां हैं। ज्ञानावरणकी ५, दर्शनावरणकी ९, वेदनीयकी २, मोहनीयकी २८, आयुकी ४, नामकी ९३ या १०३, गोत्रकी २, व अंतरायकी ५। नाम कर्ममें व शरीरके स्थानमें १५ शरीर नाम कर्म लेनेसे १०३ होती हैं (सर्वा० अ० ८-५)।

उत्तर कुरु—यह उत्तम भोगभूमि विदेहके भीतर उत्तर ओर है जहां तीन पल्य धारी युगलिया उत्पन्न होते हैं (त्रि० गा० ६९३) इसका क्षेत्र धनुषाकार है। दो गजदंतके बीच जितनी कुलाचलकी लम्बाई वह जीवा है। जीवा व मेरुके बीचका क्षेत्र है सो बाण है। यहां सुखमा सुखमा काल वर्तता है। (त्रि० गा० ३९७-८८२); सीता नदीका दूसरा द्रह (त्रि० गा० ६९७); गंधमादन गजदंत या तीसरा कूट (त्रि० गा० ७४१)।

उत्तर कौरव—माल्यवान गजदंतपर तीसरा कूट (त्रि० गा० ७३८)।

उत्तर गुण—मुनिके मूलगुण २८ व उत्तर गुण ८४ लाख होते हैं। हिंसा, असत्य, चोरी, कुशील, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ, भय, अरति, रति, जुगुप्सा, मन चञ्चलता, वचन चंचलता, काय चंचलता, मिथ्यादर्शन, प्रमाद, पैशून्य, अज्ञान, इंद्रियोंका वश करना, ये २१ दोष हैं। इनको अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतीचार व अनाचारसे गुणना तब ८४ हुए। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, साधारण वनस्पति, प्रत्येक वनस्पति, द्वेंद्रिय, तेंद्रिय, चौंद्रिय, पंचेंद्रिय, इन १०को आपसमें गुणा करनेसे १०० भेद होते हैं। ८४को १००से गुणा करो, ८४०० हुए, इनको १० शील विराधनासे गुणा करे, १ स्त्री संसर्ग, २ पुष्टाहार, ३ गंधमाला, ४ कोमल शैया आसन, ५ आभूषण, ६ गीत वादित्र, ७ धनसंग्रह, ८ कुशील संगति, ९ राजसेवा, १० रात्रिगमन तब ८४००० भेद हुए। इनको १० आलोचना दोषसे गुणा करे, वे हैं आकंपित, अनुमानित, दृष्ट, बादर, सूक्ष्म, प्रच्छन्न, शब्दाकुलित, बहुजन, अव्यक्त, तत्सेवी, तब ८ लाख ४० हजार भेद हुए। इनको १० शुद्धिरूप प्रायश्चित्तसे गुणा करे। वे हैं आलोचना, प्रतिक्रमण, उभय, विवेक, व्युत्सर्ग, तप, छेद, मूल, परिहार, श्रद्धान। तब ८४ लाख भेद मुनि चारित्रके होते हैं (मू० गा० १०२४-१०३१)

श्रावकके मूलगुण आठ होते हैं, वे यदि श्री समंतभद्राचार्यके अनुसार लिये जावें तो स्थूलरूपसे अहिंसादि पांच अणुव्रत व मद्य, मांस, मधुका त्याग है। इनके उत्तर गुण अतीचार रहित पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, दिग्विरति, देशविरति व अनर्थदण्डत्याग विरति व चार शिक्षाव्रत—सामायिक, प्रोषधोपवास, भोगोपभोग परिमाण व अतिथि संविभाग इन १२ व्रतोंको शुद्ध पालना है (श्रा. अ. १-४)

उत्तर गुण निर्वर्तना अधिकरण—निर्वर्तना रचनाको कहते हैं, उसके दो भेद हैं, मूलगुण निर्वर्तना—शरीर, वचन, मन, व श्वासोच्छ्वासका बनना, उत्तर गुण निर्वर्तना—काठकी चौकी, चित्र, मूर्ति, मकान आदि जो पदार्थ शरीरादिसे बने। ये दोनों अजीवाधिकरणके भेद हैं, इनके आधारसे कर्मोंका शुभ या अशुभ आस्रव होता है (सर्वा. अ. ६-९)

उत्तरचर—पूर्व जो होगया है उसकी अनुमानसे सिद्धि, जैसे एक मुहूर्त पहले ही भरणीका उदय हो गया है। क्योंकि अब कृत्तिकाका उदय होरहा है (प० मु० ३-६९)।

उत्तर कर्णाली—दिगम्बर जैन सरस्वती भवन बम्बईका एक ग्रन्थ।

उत्तरपुराण—श्री गुणभद्राचार्य कृत संस्कृतमें

श्री अजित तीर्थंकरसे, श्री महावीर तीर्थंकर तक चरित्र भाषा पं० लालारामजी कृत, दोनों मुद्रित हैं।

उत्तर प्रत्यय–प्रत्यय आस्रवको कहते हैं। कर्मोंके आनेके कारण मूल भाव चार हैं–मिथ्यादर्शन, अविरति, कषाय, योग। इनके उत्तर भेद सत्तावन हैं वे उत्तर प्रत्यय हैं। ५ मिथ्यात्व–एकांत, विनय, संशय, विपरीत, अज्ञान +१२ अविरति, ५ इंद्रिय व मनको वश न रखना, व ६ कायकी दया न पालनी +२५ कषाय–अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ, अप्रत्याख्यानावरणी क्रोधादि ४, प्रत्याख्यानावरण क्रोधादि ४, संज्वलन क्रोधादि ४, नौ नोकषाय, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगप्सा, स्त्रीवेद, पुंवेद, नपुंसकवेद +१५ योग–सत्य, असत्य, उभय, अनुभय मन व वचनके ८ तथा ७ कायके औदारिक, औदारिक मिश्र, वैक्रियिक व वैक्रियिक मिश्र, आहारक मिश्र व कार्मण। इस तरह ५+१२+२५+१५=५७ उत्तर आश्रव या प्रत्यय होते हैं (गो० क० गा० ७८६)।

उत्तराध्ययन–अंग बाह्यके १४ प्रकीर्णकोंमें आठवां। इसमें चार प्रकार उपसर्ग २२ परीषह सहनेका विधान व फल व प्रश्नोंके उत्तर हैं (गो० जी० गा० ३६७), श्वेतांबर जैनोंमें प्राकृतका एक ग्रन्थ।

उत्तरार्द्ध ऐरावतकूट–ऐरावत क्षेत्रके विजयार्द्ध पर्वतपर दूसरा कूट (त्रि० गा० ७३३)।

उत्तरार्द्ध भरतकूट–भरतक्षेत्रके विजयार्द्ध पर्वतपर आठवां कूट (त्रि० गा० ७३३)।

उत्तरेन्द्र–भवनवासी देवोंमें १० जातिके दो२ इन्द्र हैं। पहले दस इन्द्र दक्षिणेन्द्र कहलाते हैं पिछले १० उत्तरेन्द्र कहलाते हैं वे हैं–१ वैरोचन, असुरेन्द्र, २ धरणानंद नागेन्द्र, ३ वेणुधारी सुवर्णेंद्र, ४ वशिष्ट द्वीपेन्द्र, ५ जलकांत उदधि इन्द्र, ६ महाघोष विद्युत इन्द्र, ७ हरिकांत स्तनित इन्द्र, ८ अमितवाहन दिक् इन्द्र, ९ अग्निवाहन अग्नि इन्द्र, १० प्रभंजन वात इन्द्र (त्रि. गा. २१०–२११)। व्यंतर आठ प्रकारके हैं उनमें भी दो२ इन्द्र हैं। पिछले हरएकके उत्तरेन्द्र हैं उनके नाम क्रमसे हैं–१ किन्नरोंमें किन्नर, २ किंपुरुषोंमें महापुरुष, ३ अतिकाय महोरगोंमें, ४ गीतवशा गंधर्वोंमें, ५ पूर्णभद्र यक्षोंमें, ६ महाभीम राक्षसोंमें, ७ प्रतिरूप भूतोंमें, ८ महाकाल पिशाचोंमें (त्रि० गा० २७४–२७५), १६ स्वर्गोंमें १२ इन्द्र हैं उनमें पहले ४ अंतके ४ स्वर्गोंमें दो२ इन्द्र हैं। दो२ में पहले २ दक्षिणेन्द्र दूसरे २ उत्तरेन्द्र हैं। वे हैं–१ ईशान इन्द्र, २ माहेन्द्र, ३ प्राणत, ४ अच्युत। बीचके आठ स्वर्गोंमें दो स्वर्गका एक इन्द्र है, वहां दक्षिण व उत्तर इन्द्रकी कल्पना नहीं है (त्रि. गा. ४७६) तथापि इन ४ इन्द्रोंमें भी लांतव इन्द्र, शतार इन्द्र उत्तरेन्द्र हैं (त्रि० गा० ४८३)।

उत्तरोत्तर कर्म प्रकृति–१४८ उत्तर प्रकृतियोंके भी भेद प्रभेद।

उत्थितोत्थित कायोत्सर्ग–खड़े हुए ही धर्मध्यान और शुक्लध्यानका चिंतवन करना (मू. गा. ६७४)।

उत्थित निविष्ट कायोत्सर्ग–खड़े हुए ही आर्त्त–रौद्र इन दो खोटे ध्यानोंको चिंतवन करना (मू० गा० ६७५)।

उत्पन्न व्यन्तर–पृथ्वीसे पचास हजार एक हाथ ऊपर रहनेवाले व्यंतर (त्रि० गा० २९२–३) इनकी आयु पचास हजार वर्षकी होती है।

उत्पल गुल्मा–सुमेरु पर्वतके नंदनवनमें अग्नि दिशासे लगाय चारों विदिशामें चार चार बावड़ी हैं, उनमेंसे पहलीका नाम (त्रि० गा० ६२८)।

उत्पला–नंदनवनमें अग्नि दिशासे लगाय जो चार चार बावड़ी विदिशाओंमें हैं उनमें तीसरी बावड़ी (त्रि०गा० ६२८) पिशाच व्यंतरोंके इन्द्र महाकालकी एक वल्लभिकाका नाम (त्रि. गा. २७२)

उत्पलोव्दकला–नंदनवनमें अग्नि दिशासे लगाय जो चार चार बावड़ी विदिशामें हैं उनमें चौथी बावड़ी (त्रि० गा० ६२८)।

उत्पाद—उत्पत्ति, पैदाइश; द्रव्यमें नवीन पर्यायकी उत्पत्ति। जैसे सुवर्णका कड़ा तोड़कर बाली बनाई। यहां कड़ेका व्यय या नाश हुआ, बालीका उत्पाद हुआ, तथापि सोना वही ध्रौव्य या कायम है। द्रव्यमें उत्पाद व्यय ध्रौव्यके तीन स्वभाव सदा पाए जाते हैं (सर्वा० अ० ५–३०)।

उत्पाद पूर्व—दृष्टिवाद नाम १२वें अँगमें १४ पूर्व होते हैं। उनमेंसे पहला पूर्व, इसमें उत्पाद व्यय ध्रौव्यका कथन है। तीन काल अपेक्षा इसके ९ भेद भए जैसे उपजा था उपजे है, उपजेगा, नष्ट भया, नष्ट होता है, नष्ट होगा। स्थिर था स्थिर है, स्थिर रहेगा। ऐसे नौ भेद भए, ऐसे नौप्रकार द्रव्य भया। इस प्रत्येकको नौ नौ स्वभावोंसे कहना। अर्थात् हरएकमें तीन काल अपेक्षा उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य लगाना। ऐसे ८१ भेदोंसे द्रव्यका स्वरूप वर्णित है। इसके एक करोड़ मध्यमपद हैं (गो०जी० गा० ३६९)।

उत्पादन दोष—भोजन पैदा करनेवाले दोष—साधु ४६ दोष रहित आहार करते हैं उनमें १६ वे दोष हैं, देखो शब्द "आहार दोष"।

उत्पाद व्यय सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय—जो नय उत्पाद व्यय सहित सत्ताको ग्रहण करके एक समयमें तीन पनेको ग्रहण करता है। जैसे द्रव्य एक समयमें उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्त है। (सि० द० पृ० ८)।

उत्संज्ञा संज्ञा—अनंतानंत परमाणुका समूह।

उत्सर्ग—त्याग, मलमूत्र त्याग।

उत्सर्ग मार्ग—जैन मुनियोंके चारित्रके दो भेद हैं—१ उत्सर्ग मार्ग—जहां पूर्ण त्याग होकर शुद्धोपयोगरूप परम वीतराग संयम हो, २ अपवाद मार्ग—जहां शुद्धोपयोगके बाहरी साधक आहार-विहार, निहार, पठन पाठन आदि शुभोपयोग रूप सराग संयम हो (प्रा० पृ० २६०); जिस चारित्रको मन वचन काय, कृत कारित अनुमोदनासे नौ कोटि शुद्ध पाला जाय वह उत्सर्ग मार्ग है। इससे कम हो वह अपवाद मार्ग है। जैसे हिंसाको नौ प्रकार त्यागना उत्सर्ग मार्ग है। इससे कम विचित्र रूप त्यागना अपवाद मार्ग है (पु० श्लोक ७६)।

उत्सर्ग लिंग—शुद्धतासे जिनके मुनिका चारित्र हो, अंतरंगमें भी सामायिक चारित्र हो बाहरमें भी यथार्थ साधुका द्रव्य लिंग हो। लिंग शुद्धि सहित त्याग (मू० ७७३–७७७)।

उत्सर्पिणीकाल—ढाईद्वीपमें पांच भरत व पांच ऐरावतमें आर्यखंडके भीतर उत्सर्पिणी व अवसर्पिणीके छः छः काल पलटते हैं। जिस कालमें तिष्ठे जीवोंके क्रमसे शरीरकी ऊँचाई, आयु, शरीरका बल बढ़ता जाय वह उत्सर्पिणी है, जहां घटता जाय वह अवसर्पिणी है। अवसर्पिणीमें जो छः काल होते हैं उनसे उलटे इसमें होते हैं। देखो शब्द "अवसर्पिणी काल।" यहां भरतमें अवसर्पिणीका दुःखमा नामक पंचमकाल चल रहा है। इसके बाद छठा काल लगेगा। फिर उत्सर्पिणीका प्रारम्भ होगा। उसके तीसरे कालमें अर्थात् दुःखमा सुखमामें जो ४२००० वर्ष कम एक कोड़ाकोड़ी सागरका होगा, राजा श्रेणिकका जीव महापद्म पहला तीर्थंकर व अनंतवीर्य चौबीसवां तीर्थंकर होगा (त्रि० गा० ७७९–८६८)।

उत्सेध—गहराई; वेध; (त्रि० गा० १९–१७)

उत्सेध अंगुल—उत्तमभूमि वालोंके आठ बालाग्रकी एक लीख व आठ लीखका एक सरसों, आठ सरसोंका एक जौ, आठ जौका एक उत्सेधांगुल। इसी अंगुलसे चार गतिके जीवोंका शरीर, देवोंके नगर व मंदिर आदिका परिमाण होता है। इससे पांचसौ गुणा प्रमाणांगुल होता है (सि. द. प्र. ६९)

उदक—जल, रावण आदिके अंतरोंके चार भेद हैं उनमें चौथा भेद (त्रि० गा० २६७); लवण समुद्रके दक्षिण दिशा मध्यकी पातालके दोनों तरफ दो पर्वत हैं उनमें पहलेका नाम (त्रि०गा०९०६); लवणसमुद्रकी पश्चिम दिशा मध्यकी पातालकी दोनों

तरफ जो पर्वत है उनमेंसे शंख पर्वतपर उदक नाम व्यंतर रहता है (त्रि० गा० ९०७)।

उदकवास–लवण समुद्रकी दक्षिण दिशा संबंधी पातालकी दूसरी तरफ जो पर्वत है उसका नाम (त्रि० गा० ९०६); लवण समुद्रकी पश्चिम दिशा सम्बन्धी पातालके महाशँख पर्वतपर रहनेवाला व्यंतरदेव (त्रि० गा० ९०७)।

उदङ्क–भरतकी भविष्य चौबीसीमें होनेवाले आठवें तीर्थंकर (त्रि० गा० ८७४)।

उदधिकुमार–भवनवासी देवोंमें पांचवां भेद उनके दो इन्द्र हैं जलप्रभ और जलकांत, इनके यहां चैत्य वृक्षका नाम वेतस है। इनके भवन ७६ लाख हैं। इनमें हरएकमें अकृत्रिम जिन मंदिर हैं। ये भवन रत्नप्रभा पृथ्वीके पहले खर भागमें हैं। उनके मुकुटोंमें मछलीका चिह्न है (त्रि० गा० २०९–२१०–२१३–२१७–२२१)।

उदम्बर–क्षीर वृक्ष, जिन वृक्षोंके तोड़नेसे दूध निकलता है। जैसे–वड़, पीपर, गूलर आदि (सा० अ० २–२)।

उदम्बर फल–वड़, पीपल, गूलर, पाकर व अंजीरके फल, क्षीरवृक्षके फल (सा० अ० २–२)।

उदय–स्थितिको पूरी करके अपने पकनेके समयपर कर्मका फल होना (जै. सि. प्र. नँ० ३७०) द्रव्य क्षेत्र कालादिके निमित्तसे कर्मोंका फल देना (सर्वा० अ० २–१), ८८ ग्रहोंमें ज्योतिषियोंके भीतर १९वां ग्रहका नाम (त्रि० गा० ३६९)।

उदयचंद्र–रत्नकरण्ड श्रावकाचारकी हिन्दी वचनिकाके खंडेलवाल कर्ता (दि० ग्रं० नं० ८।४८)।

उदय त्रिभंगी–कर्मोंका उदय कहते हुए १४ गुणस्थानों व १४ मार्गणाओंमें तीन बातें बताना। (१) उदयाभाव या अनुदय–जिन कर्म प्रकृतियोंका यहां उदय नहीं है। (२) उदय–जिनका उदय है। (३) उदय व्युच्छित्ति–जिनका उदय यहीं तक है आगे न होगा।

उदय प्रभदेवसूरि–व्यवहारचर्याके कर्ता (दि० ग्रं० नं० ४००)।

उदयलाल कासलीवाल–आराधना कथाकोष आदिके भाषाकर्ता पंडित (वीर सं० २४४०)।

उदय व्युच्छिति–उदयका आगे अभाव या न होना। जिस गुणस्थानमें जितनी प्रकृतियोंकी उदय व्युच्छिति हो उनका उदय उसी गुणस्थान तक है उसके ऊपर गुणस्थानोंमें नहीं है (गो.क.गा. २६२)।

उदयाभावी क्षय–विना फल दिये आत्मासे कर्मका सम्बन्ध छूट जाना (जै.सि. प्र. नं० ३८४)।

उदयावली–वर्तमान समयसे लगाय आवली मात्र काल तक उदय आनेयोग्य कर्मोंके निषेक (ल० पृ० १२)।

उदयादि गुणश्रेणी आयाम–किसी कर्मप्रकृतिके सर्व निषेकोंको अपकर्षण (घटाने) भागहारका भाग देनेपर जो एक भाग आया वह अपकृष्ट द्रव्य या घटनेयोग्य द्रव्य है। इसमेंसे कुछ परमाणु उदयावलीमें मिलाए कुछ गुणश्रेणी आयाममें मिलाए बाकी उपरितन स्थितिमें मिलावे। वर्तमान उदयावलीके ऊपर अंतर्मुहूर्त तकके जो निषेक उनको गुणश्रेणी आयाम कहते हैं। उसके ऊपरके निषेकोंको उपरितन स्थिति कहते हैं। इनमें अंतके आवली मात्र निषेकमें द्रव्य नहीं मिलाया जाता है जिसको अति स्थापनावली कहते हैं। यहां उदयादिमें गुणश्रेणी आयाम गर्भित है–(ल० पृ० ११–२२)

उदराग्नि प्रशमन भिक्षा–मुनिभिक्षाका दृष्टांत जैसे जलती हुई अग्निको जलसे बुझाते हैं वैसे मुनि रस व नीरस भोजनसे क्षुधा शांत करते हैं (श्रा० पृ० २७७)।

उदाहरण–व्याप्तिपूर्वक दृष्टांत कहना, जैसे जहां २ धूम है वहां२ अग्नि है। जैसे रसोईघर। व जहां अग्नि नहीं है वहां धूम नहीं है जैसे तालाव (जै० सि० प्र० नं० ६२)।

उदासीन श्रावक–विरक्त श्रावक; वे श्रावक जिन्होंने घर छोड़ दिया है (सा.अ.३–६ पृ.२१८)

उदीरणा–स्थिति विना पूरी किये ही कर्मोंका फल देना (जै० सि० प्र० नं० ३७१)।

विनाही काल आए अपक्व कर्मका पचना (गो० क० गा० १५९)।

उदीरणा मरण–विष शस्त्रादिके निमित्तसे कर्मभूमिके मनुष्य व तिर्यंचोंका अपनी बांधी हुई आयुकी स्थितिके पहले ही आयु कर्मके निषेक झड़ जानेसे मर जाना; कदलीघात मरण, जैसे तेलसे भरा प्रदीप पवनके योगसे बुझ जाय तैसे पूर्ण आयुका छेद निमित्त मिलनेसे होजाय। देव नारकी भोगभूमिया व चरम देहधारीके उदय मरण है। पूरी आयु भोगके मरते हैं (चर्चा समाधान नं० १००)।

उदीरणा व्युच्छित्ति–जिन कर्मोंकी उदीरणा किसी गुणस्थान तक हो आगे न हों। उदीरणाका अभाव (गो० क० गा० २८१)।

उद्गम दोष–मुनियोंके आहारमें ४६ दोष न लगने चाहिये, उनमें १६ उद्गम दोष, देखो 'आहार दोष' (मू० गा० ४२३)।

उद्दायन राजा–यह निर्विचिकित्सा अंगमें प्रसिद्ध हुए। रौरवक नगरके राजा थे। रानी प्रभावती। दोनों सम्यक्ती थे। एक देवने परीक्षार्थ नया मुनिभेष बनाकर आहार लिया, कई दफे वमन किया, दोनोंने ग्लानि न की, बहुत सेवा की, तब देवने सम्यक्ती जान प्रतिष्ठा की (आ० कथा नं० ८)।

उद्दिष्ट–जिसका विचार किया हो, उद्देश बांधा हो। नियत की हुई। किसी अक्षको घरके संख्याका लाना जैसे प्रमादोंके कथनमें प्रमाद ८० हैं। ४ विकथा ×४ कषाय × ५ इंद्रिय ×१ निद्रा ×१ स्नेह=८० अस्सी भंग होंगे। जैसे स्नेहवान निद्रालु स्पर्शनेंद्रिय वशीभूत क्रोधी स्त्रीकथा आलापी भंग नं० १; स्नेहवान निद्रालु रसनाइंद्रियके वशीभूत स्त्रीकथालापी भंग नं० २; स्नेहवान् निद्रालु घ्राणइं० क्रोधी स्त्रीक० भंग नं० ३; स्ने० नि० चक्षुइं० क्रोधी स्त्री० भंग नं० ४; स्नेह० नि० श्रोत्रइं० क्रोधी स्त्री० भंग नं० ५। क्रोधके स्थानमें मान माया लोभ पलटनेसे २० भंग हुए। अब स्त्रीकथाको पलटके भक्तकथा फिर राष्ट्रकथा फिर राज कथा ऐसे २०, २० भंग सब ८० भंग हुए। उद्दिष्ट लानेका अर्थात् कौनसा प्रमाद है। ऐसा बतानेका नियम यह है कि पहले १को रखके फिर इंद्रिय पांचसे गुणे, उनमेंसे जिन इंद्रियोंको आगेकी न गिना हो उनकी संख्याको घटादे, जो बचे उसको कषाय चारसे गुणे, उनमें आगे न कहे हुए कषायोंकी संख्याको घटादे, जो बचे उसको चार विकथासे गुणे, फिर आगे न कही हुई विकथाकी संख्या घटादे, जो बचे उतने नम्बरका प्रमाद होगा। उदाहरण जैसे किसीने पूछा कि राष्ट्र कथालापी लोभी स्पर्शनेंद्रियके वशीभूत निद्रालु स्नेहवान कौनसा आलाप है? तब ऊपरके नियमसे करना–१×५=५–४ इंद्रिय=१=१×४ कषाय=४–० क्योंकि लोभके आगे कोई कषाय नहीं है तब ४ हुए ४×४ विकथा=१६–१ कथा राज कथा=१५। उत्तर हुआ कि यह पंद्रह नं०का आलाप है, यह उद्दिष्ट है।

इसी तरह ऊपर कहा नं० १ का भंगका उद्दिष्ट निकाले। अर्थात् स्नेहवान निद्रालु स्पर्शनेंद्रिय वशीभूत क्रोधी स्त्री कथालापी। १×४ विकथा=४–३ विकथा=१–१×४ कषाय=४–३ कषाय=१×५ इंद्रिय=५, ५–४ इंद्रिय=१। इस तरह यह पहले नं०का आलाप हुआ, यही उद्दिष्ट है (गो० जी० गा० ४२)।

उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा–११ वीं प्रतिमा–जिसमें अपने निमित्त किये भोजन लेनेका त्याग होता है। यह प्रतिमावाला पहली प्रतिमाओंके नियम पालता है। भिक्षासे भोजन करता है, देखो शब्द 'उत्कृष्ट श्रावक' (र० क० १०)।

उद्दिष्ट दोष– } साधुके उद्देशसे किया हुआ
उद्देश दोष– } भोजन साधुको देना। उद्दिष्ट दोषके चार भेद हैं–

१ उद्देशदोष–जान इसको जो कोई भेषी वा

गृहस्थी भोजनको आवेंगे सब हीको दूंगा। इस उद्देशसे किया भोजन। २ समुद्देश—आज हमारे यहां कोई पाखंडी आवेंगे सबको दूंगा इस भावसे किया भोजन। ३ आदेशदोष—आज हमारे यहां श्रमण तथा तपस्वी परीव्राजक भोजनको आएंगे तिनको दूंगा इस भावसे किया भोजन। ४ समादेश—आज कोई निर्ग्रंथ साधु आवेंगे उनको दूँगा ऐसा उद्देश कर किया भोजन। (भ०पृ० १०२।३) जो कोई वस्तिका मुनिके वास्ते करे करावे व करतेको भला जाने ऐसी वस्तिकामें ठहराना उद्देश दोष है (भ० पृ० ९३)।

उद्धारपल्य—देखो शब्द 'अंकविद्या' (बृ० जि० पृ० १०७)।

उद्धारसागर—देखो शब्द 'अंकविद्या' (बृ०जि० पृ० १०८)।

उद्भावन—प्रकाश करना।

उद्भिन्न दोष—जो वस्तिका ईंटोंसे व मट्टीसे या कांटोंके झाड़से या पाषाणसे व कपाटसे बंद रक्खी हो फिर मुनिके निमित्त उघाड़ दे वह स्थगित या उद्भिन्न दोष है (भ० पृ० ९४) मट्टी लाख आदिसे ढका हुआ आहार उघाड़कर मुनिको दे सो १२ वां उद्गम दोष है (मू० गा० ४४१)।

उद्भ्रांत—पहले नर्ककी रत्नप्रभा पृथ्वीका पांचवा इंद्रक बिला (त्रि० गा० १५४)।

उद्यापन—किसी व्रतके पूर्ण होनेपर विशेष पूजा व दान करना।

उद्योत नामकर्म—नामकर्मकी वह प्रकृति जिसके उदयसे शरीरमें उद्योत हो, जैसे चंद्र विमानके पृथिवीकायिक जीवके (सर्वा० अ० ८।११)।

उद्योत शुद्धि—मुनि मार्गमें चार हाथ भूमि देखकर चलते हुए सूर्यके प्रकाशमें जब साफ भूमि देखने लग जावे तब चलें—रात्रिमें न चलें व दीपक व चंद्रके उद्योतमें न चलें। सूत्रकी आज्ञा प्रमाण अंतरंग ज्ञानका उद्योत बाहर सूर्यका उद्योत करके गमन करना (भ० पृ० २७२)।

उद्वेलन—जैसे रस्सीको बटा था वैसे पीछा बट देकर उवेडना वैसे जिन कर्म प्रकृतियोंका बंध किया था उनको अन्य प्रकृतियोंमें प्राप्त करके नाश करना। मात्र १३ प्रकृतियोंकी उद्वेलना होती है। आहारकद्विक, सम्यक्त मोहिनी, मिश्र मोहनी, देवगति वा आनुपूर्वी, नरक गति वा आनुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर वा अंगोपांग, मनुष्यगति वा आनुपूर्वी, उच्च गोत्र (गो. क. गा. ३५०—३५१)

उद्वेलन संक्रमण—उद्वेलन ११ प्रकृतियोंमेंके किसीके परमाणुओंको उद्वेलन भागहारका भाग देकर एक भाग मात्र परमाणुओंको अन्य प्रकृतिरूप परिणमा देना (ल० पृ० १४)।

उन्मत्त जला—सीता नदीके दक्षिण तटपर तीसरी विभङ्गा नदी (त्रि० गा० ६६७)।

उन्मग्न जला—विजयार्द्ध पर्वतके पूर्व गुफा मध्यके कुण्डसे निकलकर दो योजन चौड़ी होकर महागंगाको स्पर्श करके प्रवेश करती है। इस नदीको उन्मग्न इसलिये कहते हैं कि यह अपने जलमें पड़े हुए भारी भी द्रव्यको नहीं डुबाती है, ऊपर तट हीको प्राप्त करती है (त्रि० गा० ५९३—५९४)।

उन्मान—लौकिक मानके छः भेदोंमें दूसरा भेद। तराजू आदिसे तौलना (त्रि० गा० ९—१०)।

उन्मिश्र दोष—मुनिके ठहरनेकी वस्तिका जो स्थावर चींटी खटमल आदिसे मिली हुई हो (भ० पृ० ९६)।

उपकरण—पात्र; जो अंग इंद्रियकी रचनाकी रक्षा करे जैसे आंखके पलक बाहरी उपकरण हैं व पुतलीके पास काला सफेद मंडल भीतरी उपकरण है (जै० सि० प्र० नं० २८०।२८१)।

उपकरण बकुश—जिन साधुओंकी अभिलाषा पीछी कमंडल शास्त्रकी शोभा बढ़ानेकी हो (द० पृ० ६१४)।

उपकरण संयोजनाधिकरण—ठण्डे वर्तनमें गर्म चीज डालना, गर्ममें ठंडी डालना आदि (सर्वा० अ० ६।९)।

उपकेश—देखो शब्द "ओसवाल"।

उपकल्की—अवसर्पिणीके इस पंचमकालमें अंतिम तीर्थंकर मोक्ष जानेके पीछे हजार हजार वर्ष पीछे कल्की राजा व उनके मध्यमें ५०० वर्ष पीछे एक एक उपकल्की राजा होते हैं (सि०द०पृ० १२०)

उपक्रम—जिस पदार्थके निरूपण करनेकी प्रतिज्ञा की है। श्रोताओंको उसका स्वरूप समझा देना उपक्रम है। दूसरा नाम उपोद्घात भी है, इसके ५ भेद हैं। १ आनुपूर्वी—क्रमसे प्रथमानुयोग आदि चारको गिनना, चाहे पहलेसे चाहे उल्टा; २ नाम—ग्रन्थका नाम रखना; ३ प्रमाण—श्लोक व अक्षर संख्या नियत करना; ४ अभिधेय—ग्रन्थका कथन ५ अर्थाधिकार—जीवाजीव नव पदार्थ कथन। (आ० प० २।१०४)।

उपगूहन (उपबृंहण)—सम्यग्दर्शनके आठ अंगोंमेंसे पांचवां अंग। अपने आत्माके गुणोंको बढ़ाना व दूसरोंके दोषोंको प्रकाश न करना (पु० श्लो० २७)।

उपग्रह—उपकार।

उपघात नामकर्म—जिस कर्मके उदयसे अपने अंगोंसे अपना घात हो (जै० सि० प्र० नं० ३०४)।

उपचरित असद्भूत व्यवहारनय—अमति भिन्न पदार्थोंको अभेदरूप ग्रहण करे या अपने माने जैसे हाथी, घोड़ा, महल मेरे हैं (जै० सि० प्र० नं० १०४)।

उपचरित महाव्रती—जो श्रावक दिग्विरतिमें दस दिशाकी मर्यादा कर लेता है व मर्यादाके बाहर कोई पापारम्भ नहीं करता है, इसलिये उसकी अपेक्षा वह महाव्रती तुल्य है अर्थात् वह उपचरित महाव्रती है (पु० श्लो० १३८)।

उपचरित व्यवहारनय—देखो "उप० असद० व्यवहारनय।"

उपचार विनय—आचार्यादिको व देवशास्त्रको शरीरसे व वचनोंसे विनय करना, खड़ा होना, हाथ जोड़ना, उच्च विराजना आदि (सर्वा० अ० ९।२३)।

उपदेश शतक—दि० जैन सरस्वती भवन बंबईमें एक ग्रन्थ।

उपदेश सम्यक्त—तीर्थंकर चक्रवर्ती आदिके चरित्रके उपदेशसे जो सम्यक्त हो (भ०पृ० ९१७)।

उपधानाचार—स्मरण सहित व सावधान सहित शास्त्र पढ़ना (श्रा० पृ० ७२) सम्यग्ज्ञानके ८ अंगोंमेंसे छठा अंग।

उपधि विवेक—धर्मोपकरण शास्त्र कमंडल पीछी विना अन्य शस्त्र वस्त्र आभूषण वाहनादि उपकरणोंको मन वचन कायसे ग्रहणका त्याग (भ० पृ० ७२)।

उपनय—पक्ष और साधनमें दृष्टांतकी सदृशता दिखाना। जैसे यह पर्वत भी वैसा ही धूमवान है (जै० सि० प्र० नं० ६७) व्यवहारनय (सि० द० पृ० ६)।

उपनयन ब्रह्मचारी—जो बालक उपनीति संस्कारके पीछे गुरुकुलमें रहकर जनेऊ रखता हुआ आगमका अभ्यास करे। पीछे गृह धर्ममें रह सके (ग्र० अ० १३)।

उपनयन संस्कार— } यह बालकोंके लिये १४वां
उपनीति क्रिया— } संस्कार है। जब बालक ८ वर्षका होजाय तब या उसके पीछे जनेऊ संस्कार कराना रत्नत्रय अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्रका चिह्न—तीन तारका जनेऊ पहराना। हिंसादि पांच स्थूल पापके त्यागका उपदेश देना, जबतक विद्या पढ़े ब्रह्मचर्य पाले, सादगीसे जीवन बितावे (गृ० अ० ४)।

उपपाद—उत्पत्ति, जन्म।

उपपाद ग्रह—स्वर्गोंमें देवकी उत्पत्तिका स्थान। यह मानस्तम्भके पास आठ योजन चौड़ा लम्बा होता है (त्रि० गा० ५२२)।

उपपाद जन्म—संसारी जीवोंमें देवनारकियोंका जन्म। देवोंका बैठे हुए शय्यासे व नारकियोंका ऊंटके मुखाकार कुम्भोंसे अन्तर्मुहूर्तमें पूर्ण शरीर उनके

उपजना (गो० जी० गा० ८३) इनकी योनि अचित्त होती है।

उपपाद योगस्थान—जो योगोंका स्थान अर्थात् आत्माके प्रदेशोंका सकम्प नवीन शरीर धरनेके पहले समयमें होता है। जो वक्रगतिसे मुड़कर जन्म लेता है उसके जघन्य होता है। जो जीव सीधा विना मुड़े पैदा होता है उसके उत्कृष्ट होता है। (गो० क० गा० ११९)

उपबृंहण—आत्मगुणोंको बढ़ाना, उपगूहन अंग।

उपभोग—जो वस्त्र, आभूषण आदि बराबर भोगनेमें आवे (र० श्लो० ८३)।

उपभोगपरिभोगानर्थक्य—जितनेसे मतलब निकले उससे अधिक भोग व उपभोगके पदार्थ संग्रह करना व लेना। यह अनर्थ दंड विरतिका पांचवा अतीचार है। (सर्वा० अ० ७।३२)

उपभोगान्तराय कर्म—वह अंतरायकर्मका भेद जो उपभोग पदार्थोंके उपभोगमें विघ्न डाले। पदार्थोंको भोगनेकी इच्छा करे पर भोग न सके। (सर्वा०)

उपभोग क्षायिक—अनन्त उपभोग।

उपमामान—लोकोत्तरमानके चार भेद हैं—द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव। द्रव्यमानके दो भेद हैं—संख्याप्रमाण व उपमाप्रमाण। संख्याप्रमाणके २६ प्रकार भेद हैं, उपमाप्रमाणके आठ भेद हैं। पल्य, सागर, सूच्यंगुल, प्रतरांगुल, घनांगुल, जगच्छ्रेणी, जगत्प्रतर, घनलोक। देखो शब्द अंकविद्या (प्र० जि० ए० १०६)

उपमासत्य—सत्य वचनके १० भेद हैं, उनमें १० वां भेद। जो किसी प्रसिद्ध पदार्थकी समानता किसी पदार्थको देकर वचन कहा जाय जैसे पल्योपम, सागरोपम—उपमामान उपमासत्य है। (गो० जी० गा० २२४)

उपमितिभवप्रपंचा कथा—बम्बई जैन ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालयसे प्रगट। इसमें संसारका चरित्र अच्छे ढंगसे श्वे० जैनाचार्यने दिखाया है।

उपयोग—चेतनाकी परिणति, यही जीवका लक्षण है। इसके दो भेद हैं—सामान्य निराकारग्राही दर्शन है, विशेष जाननेवाला ज्ञानोपयोग है। दर्शनके चार भेद हैं—चक्षु, अचक्षु, अवधि, केवल। ज्ञान आठ प्रकार हैं—मति, श्रुत, अवधि, सुज्ञान व कुज्ञान ६, मनपर्यय व केवल। जानने योग्य पदार्थोंके लिये जो जीवका परिणाम विशेष वर्तता है (गो० जी० गा० ६७२)। उपयोग सब शुद्ध व अशुद्ध जीवोंमें पाया जाता है परन्तु किसी भी अजीवद्रव्यमें नहीं पाया जाता है तथा यह अनुभव गोचर है। हम नित्य देखते सुनते आदि हैं यह सब उपयोग है। इससे पहचाना जाता है कि जीवकी सत्ता है। जहां जीव होगा वहां उपयोग होगा। इसलिये उपयोग जीवका लक्षण है।

उपयोग शुद्धि—ईर्यासमितिको पालते हुए जैन साधुओंको निर्दयता रहित, धर्मध्यानमें लीन, १२ भावना विचारते, आहारका लाभ व स्वादादिको न चिंतवन करते, अभिमानादि दोषरहित गमन करना (भ० ए० ३७२)

उपयोगिता क्रिया—अजैनको जैनधर्मकी दीक्षा देनेवाली दीक्षान्वय क्रियामें जो ४८ हैं उनमें ८वीं क्रिया। दीक्षित जैनी जो स्थानलाभ क्रियामें जैन मतसे अलंकृत होचुका है। हर अष्टमी व चौदसको उपवास करता है। रात्रि धर्मध्यानमें विताता है। (गृ० अ० ९)

उपरितन स्थिति—किसी कर्मके सर्व निषेकोंको अपकर्षण भागहारका भाग देनेपर जो एक भाग मात्र परमाणु रहे उसको अपकृष्ट द्रव्य कहते हैं। उनमेंसे कुछ परमाणु वर्तमान समयसे उदयमें आनेवाली आवली मात्र कालके द्रव्यमें मिलावे। कुछ द्रव्य जो उसके ऊपर गुणश्रेणी आयाम अन्तर्मुहूर्त तक होता है, उसमें असंख्यातगुणा निषेक प्रतिक्रमसे मिलावे, शेष द्रव्यको उसके ऊपरकी सर्व स्थिति सम्बन्धी निषेकोंमें मिलावे। इन ऊपरकी स्थिति सम्बन्धी निषेकोंको उपरितन स्थिति कहते हैं (क० ए० २१)।

उपवास–जहां पांचों इंद्रियां अपने २ विषयोंके रागसे छूटकर धार्मिक भावोंमें वर्से उसको उपवास कहते हैं "शब्दादिग्रहणं प्रति निवृत्तौत्सुक्यानि पंचापीन्द्रियाण्युपेत्य तस्मिन् वसंति इति उपवासः" अथवा–खाद्य, स्वाद्य, लेह्य, पेय चार तरहका आहारका (सर्वा० अ० ७) उपवासके दिन शृंगाररूप स्नानादि न करना चाहिये। भगवानकी पूजा व सामायिकादि करे। उत्तम उपवास १६ पहर–पहले व अंतके दिन एकासन बीचमें उपवास। मध्यममें इसी बीचमें पानी ले या १४ पहरका करे। जघन्य १६ पहरके बीचमें पानी सिवाय एकासन भी करे या १२ पहर करे। जैसे सप्तमीकी सांझसे नौमीके प्रातःतक। १४ पहरमें सप्तमीको १ पहर दिनसे छोडे १ पहर दिन चढ़े नौमीतक। तीन घंटाका एक पहर होता है। उपवासके दिन विषय व क्रोधादि कषाय व आहार छोडे। यदि कषाय व विषय न त्यागे हों व धर्मध्यान न किया हो तो वह मात्र लंघन है। (गृ० अ० ८)

उपविष्टोत्थित कायोत्सर्ग–जहां बैठे आसनसे धर्मध्यान व शुक्लध्यान किया जावे।
(मू० गा० ६७६)

उपविष्ट निविष्ट–जहां बैठे आसनसे आर्त व रौद्रध्यान किया जाय (मू० गा० ६७७)

उपलब्धि-प्राप्ति, विधि या निषेध रूप हेतुसे किसी साध्यको सिद्ध करना।

उपशम–द्रव्य क्षेत्र काल भावके निमित्तसे कर्मकी शक्तिकी अप्रगटता या कर्मोंका फल न देना किन्तु सत्तामें बैठे रहना। कुछ कालके लिये दबे रहना। इसके दो भेद हैं (१) अंतःकरण उपशम–आगामी कालमें उदय आने योग्य कर्म परमाणुओंको आगे पीछे उदय आने योग्य कर देना। (२) सदवस्थारूप उपशम–वर्तमान कालको छोडकर आगामी कालमें उदय आने योग्य कर्मोंको सत्तामें रहना। (जै० सि० प्र० नं० २५१–२५४–२५५)

उपशम द्रव्य–जिन कर्म परमाणुओंको उदय आनेके अयोग्य कर दिया (ल० पृ० २६)

उपशम योग्य काल–सम्यक्तमोहनी और मिश्रमोहनीकी जो स्थिति पहले बांधी थी सो सत्तारूप त्रसके उसे ९ सागर प्रमाण हो व एकेंद्रियकी पल्यका असंख्यातवां भाग कम १ सागर प्रमाण रहे वहांतक वेदक योग्य काल है, उसके ऊपर जो सत्तारूप स्थिति कम हो तो उपशम योग्य काल है। (गो० क० गा० ६१९)

उपशम श्रेणी–आठवां अपूर्वकरण गुणस्थान, नौमा अनिवृत्तिकरण, दसवां सूक्ष्म लोभ, ग्यारहवां उपशांत मोह। इनमें जब अनंतानुबंधीको छोडकर शेष २१ प्रकृति चारित्र मोहनीयकी जहां मात्र उपशम की जावें, नाश न हों। उपशम श्रेणीसे साधु अंतर्मुहूर्त पीछे अवश्य गिरता है, सातवें या नीचे आजाता है या मरता है तो चौथेमें आता है। इस उपशम श्रेणीमें एक जीव मात्र चार वार चढ़ सक्ता है, फिर क्षपकश्रेणी ही चढ़े। (गो० क० गा० ६१९)

उपशम सम्यक्त–आत्मा व अनात्माका भेद ज्ञानपूर्वक जो श्रद्धा यथार्थ हो वह सम्यक्त है। अनादि मिथ्यादृष्टिके चार अनन्तानुबंधी कषाय तथा मिथ्यात्व इन पांचके तथा सादि मिथ्यादृष्टीके इन पांचके अथवा सम्यक्त मोहनी और मिश्रमोहनी मिलाकर सात प्रकृतिके उपशमसे जो पैदा हो इसका काल अंतर्मुहूर्तसे अधिक नहीं है। यही मोक्षमार्गका प्रारम्भ है। जब भव्य जीवको अधिकसे अधिक एक अर्द्ध पुद्गल परिवर्तन काल शेष रहता है तब ही यह उपशम होता है। इसको सैनी ही बुद्धिमान चार गतिके प्राप्त कर सके हैं। अंतर्मुहूर्त पीछे यातो सम्यक्त मोहनीके उदयसे वेदक सम्यक्त होजाता है या मिथ्यात्वके उदयसे मिथ्यात्व गुण० में। मात्र अनंतानुबंधी कोई एकके उदयसे सासादन गुण० में, या मिश्रके उदयसे मिश्र

गुण० में आजाता है। यहां स्वानुभव होजाता है। (सर्वा० अ० २-३)

उपशमावली-जिस आवलीमें कर्मका उपशम हो (ल० पृ० २९)

उपशांत-दबजाना, ठंडा होजाना, फल न होना।

उपशान्तकरण-जो कर्म उदयावलीमें प्राप्त करनेको असमर्थ हों अर्थात उदय न आवें, दबे रहें। (गो० क० गा० ४४०)

उपशांत कषाय या उपशांत मोह-११ वां गुणस्थान जहां सर्व मोहकर्म एक अंतमुहूर्तके लिये उपशम रूप या दबा रहता है, फिर अवश्य सूक्ष्म लोभका उदय आनेसे साधु १० वेंमें गिरता है या मरकर चौथेमें जाता है। (गो० जी० गा० ६१)

उपस्थापना प्रायश्चित्त-किसी साधुका ऐसा अपराध हो जिससे उसकी पहली दीक्षा छेदकर फिर दीक्षा दी जावे। (सर्वा० अ० ९-२२)

उपसर्ग-साधुओंको तप करते हुए कोई देव, मानव या पशु या किसी अचेतन पदार्थ तुफान आदिके द्वारा कष्ट मिले। साधु समतासे जीतते हैं।

उपसंपत-साधुओंका १० प्रकार औधिक समाचार होता है उसमें १० वां-गुरु आदिसे कहना मैं आपका ही हूं, ऐसा कहकर उनकी आज्ञा या सम्मतिके अनुकूल आचरण करना (मू० गा० १२८) गुरुओंको आत्म समर्पण करना। यह व्यवहार, विनय, क्षेत्र, मार्ग, सुखदुःख, व सूत्रमें करना चाहिये। अन्य संघसे आए मुनिका आदर करना विनयोपसंपत है। जिस क्षेत्रमें रहनेसे चारित्र बढ़े वहां ठहरना क्षेत्रोपसंपत है, मार्गकी कुशल परस्पर पूछना मार्गोपसंपत है, सुख दुःखमें सहाय पहुंचाना सुख दुःखोपसंपत् है शास्त्रके विचारके लिये यत्न करना सूत्रोपसंपत है (मू० १२९-१४४)

उपात्त-उखाड़के फेंकनेवाला, कर्म व नोकर्मको दूर करके शुद्ध होता हुआ।

उपादान कारण-जो पदार्थ स्वयं कार्य रूप परिणमे जैसे-घटकी उत्पत्तिमें मिट्टी। अनादिकालसे द्रव्यमें जो पर्यायोंका प्रवाह चल रहा है उसमें पहले समयकी पर्याय उपादान कारण है पीछेकी उत्तर क्षणकी पर्याय कार्य है। जैसे गेहूंसे आटा, आटेसे रोटी बनाई। यहां आटेका उपादान कारण गेहूँ, रोटीका उपादान कारण आटा है। (जै० सि० प्र० नं० ४०८)

उपाधि-संसारसे मोह।

उपाध्याय-मुनि संघमें जो मुनि विशेष विद्वान हों व अन्यको शास्त्र पढ़ावें।

उपाध्याय वैय्यावृत्य-शास्त्र पढ़ानेवाले साधुकी सेवा करना। सर्वा० अ० ९-२४)

उपासकाध्ययन अंग-द्वादशांग वाणीमें सातवां अंग जिसमें उपासक जो दान व पूजासे संघकी सेवा करें ऐसे श्रावकोंकी ११ प्रतिमा, व्रत, शील, आचार, क्रिया, मंत्रादिकका प्ररूपण है। इसमें ११ लाख ७० हजार पद हैं। (गो० जी० गा० ३५७)

उपासना तत्व-पं० जुगलकिशोर मुखतार कृत जैन पूजाके प्रयोजनपर, मुद्रित पुस्तक।

उपेक्षा-वैराग्य, सम्बन्ध न रखना।

उपेक्षा संयम-उपकरणादिको प्रतिदिन देख लेना कि इसमें जीव तो नहीं है। वीतराग मय संयम। (मू० गा० ४१६-१७)

उपोद्घात-देखो शब्द "उपक्रम"

उभय मनोयोग-एक साथ सत्य व असत्यरूप पदार्थके ज्ञान उपजावनेकी शक्तिरूप जो भावमन उससे जो प्रवर्तनरूप योग (गो० जी० गा० २१८)

उभय वचन योग-सत्य या असत्य ऐसे मिश्रित पदार्थमें वचन प्रवृत्तिका कारण जो भाव वचन उससे प्रवर्तनरूप योग (गो० जी० गा० २२०)

उमास्वामी या उमास्वाति-श्री कुन्दकुन्दाचार्यके शिष्य (वि० सं० ७६)-मोक्षशास्त्र तत्वार्थसूत्रके कर्ता। (दि० ग्रं० नं० ३४)

उमास्वामी (लघु) पंच नमस्कार स्तवन व श्रावकाचारके कर्ता (दि० ग्रं० नं० ३५)

उष्ण परीसह–तीव्र गर्मीका कष्ट शांतभावसे साधुओं द्वारा सहना। (सर्वा० अ० ९–९)

उष्ण स्पर्श नामकर्म–वह नामकर्मकी प्रकृति जिससे शरीर उष्ण हो। (सर्वा० अ० ८–११)

ऊ

ऊनोदर–(अवमोदर्य) तप–दूसरा बाह्य तप, संयम सिद्धि, दोष शांति, संतोष व तप सिद्धिके लिये भूखसे कम खाना। पुरुषका स्वाभाविक आहार बत्तीस ग्रास है, उससे एक दो आदि ग्रास कम लेना (मू० गा० ३५०) स्त्रीका भोजन अट्ठाईस ग्रास प्रमाण होता है। एक हजार चावलका प्रमाण एक ग्रासका है। इसलिये ३२००० चावल पुरुषका व १८००० चावल स्त्रीका आहार होता है, उससे कम लेना। (अ० पृ० ८७)

ऊमर फल–गूलर फल, इसमें भुनगे उड़ते रहते हैं।

ऊर्जयंत तीर्थ–श्री गिरनार पर्वत काठियावाड़में जहांसे श्री नेमिनाथ तीर्थंकर व शंवु व अनिरुद्ध कुमार व ७२ करोड़ मुनि मुक्त गए हैं

ऊर्ध्व अतिक्रम (ऊर्ध्व भाग व्यतिक्रम)–दिग्विरतिका पहला अतीचार। ऊपर जानेकी जो मर्यादा की गई उसको अज्ञान व प्रमादसे लांघकर आगे चले जाना। (सर्वा० अ० ७–३०)

ऊर्ध्वगति–शुद्ध जीव ठीक ऊपरको जाकर लोकशिखरपर विराजता है। ऊपर गमन जीवका स्वभाव है।

ऊर्ध्वलोक–मृदंगके आकार है, यह लोक १४ राजू ऊंचा है। सुमेरु पर्वतकी जड़ १००० योजन नीचे है। वहांकी चित्रा पृथ्वीसे नीचे सात राजू अधोलोक है। ऊपर सात राजू ऊंचा ऊर्ध्वलोक है। मेरु पर्वतके नीचे चित्रा पृथ्वीसे दूसरे ईशान स्वर्ग तक १॥ राजू फिर चौथे स्वर्ग तक १॥ राजू फिर ब्रह्मोत्तर छठे तक ॥ राजू, ३॥ राजू ऊपर जानेपर विस्तार पांच राजू है। मध्यलोकके यहां विस्तार एक राजू है। छट्टेसे आठवें स्वर्ग तक ऊंचा आध राजू। आठवेंसे १० वें तक आध राजू। दसवेंसे बारहवें तक आध राजू। १२ वेंसे १४ वें तक आध राजू। १४ वेंसे १६ वें तक आध राजू। सोलहवें स्वर्गसे सिद्धलोक तक १ राजू है। वहां लोकका विस्तार भी एक राजू है। दक्षिण उत्तर लम्बा सब जगह सात राजू है। ऊर्ध्वलोकका घन क्षेत्रफल दो भागोंसे निकालना चाहिये। मध्यलोकसे पांच राजू जहां चौड़ा व ३॥ राजू ऊंचा है वहांतक ऐसा ही दूसरी तरफ अंततक बराबर है सो मध्यलोकसे पांच राजू तक होगा।

$$५+१ \times \frac{७}{२} \times \frac{७}{२} = \frac{६ \times ७ \times ७}{४} = \frac{१४७}{२}$$ घन राजू।

इतना ही दूसरी तरफ है तब कुल १४७ घन राजू भया। अधोलोक १९६ घन राजू है। जैसे $७ \times १ \times ७ \times \frac{७}{२} = \frac{८ \times ७ \times ७}{२} = १९६$ कुल ३४३ घन राजू क्षेत्र है। ऊर्ध्वलोकमें ही मध्यलोक गर्भित है इसमें १६ स्वर्ग+नौग्रैवेयिक+९ अनुदिश+५ अनुत्तर ऐसे कुल १९ विमान भूमि हैं। ऊपर शिखरपर सिद्धक्षेत्र है। (ह० पृ० २१)

ऊर्मिमालिनी पश्चिम विदेहके सीतोदा नदीके तटमें तीसरी विभंगा नदी। (त्रि० गा० ६६९)

ऊहा=ईहा मतिज्ञान।

ऋ

ऋग्वेदके बनानेवाले ऋषि–[illegible] हिंदीमें मुद्रित।

ऋजुमति मनःपर्यय ज्ञान–जो ज्ञान [illegible] सहायता बिना आत्मा ही दूसरेके मनमें [illegible] पदार्थको [illegible] मनःपर्यय [illegible] इसके दो भेद हैं–पहला ऋजुमति [illegible]

सो । ऋजी अर्थात् सरल है मति अर्थात् ज्ञान जिसमें । त्रिकाल सम्बंधी पुद्गल द्रव्यको वर्तमान कालमें कोई जीव चिंतवन करता है उस रूपी पदार्थको ऋजुमति जानता है तथा त्रिकाल संबंधी पुद्गल द्रव्यको किसीने पहले चिंतवन किया था अब करता है, आगामी करेगा उस सबको जान सके सो विपुलमति है । यह मनःपर्यय ज्ञान जहां द्रव्य मनके प्रदेश हैं वहांपर उपजता है । सर्व अंगसे नहीं होता है । यह ज्ञान ऋद्धिधारी संयमी मुनिको छठे गुणस्थानसे १२वें तक होता है। यह ऋजुमति ज्ञान छूट भी जाता है । दूसरा केवलज्ञान तक रहता है । द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी मर्यादा कर चिंतवन किये पुद्गलको या पुद्गल सहित संसारी जीवको यह ज्ञान जानता है। यह ऋजुमति ज्ञान जघन्य औदारिक शरीरके निर्जरारूप एक समयके द्रव्यको व उत्कृष्ट नेत्र इंद्रियकी निर्जरारूप एक समयके द्रव्यको जाने । क्षेत्रापेक्षा जघन्य ३ या ९ कोश तक व उत्कृष्ट ३ या ९ योजन तक । काल अपेक्षा जघन्य दो तीन भव आगे पीछे उत्कृष्ट सात आठ भाव आगे पीछे। भावकी अपेक्षा जघन्य आवलीके असंख्यातवें भागको, उत्कृष्ट उससे असंख्यात गुणे आवलीके असंख्यातवें भागको जाने (गो० जी० गा० ४३८)।

ऋजुसूत्र नय—जो दृष्टि भूत, भविष्य पर्यायको न ध्यानमें लेकर वर्तमान पर्याय मात्रको ग्रहण करे। जैसे मनुष्यपर्यायमें मनुष्यजीव (जै.सि.प्र.नं. ९७)।

ऋण दोष—प्राभृष्य दोष—दूसरेसे उधार लाकर साधुको आहार देना (मू० गा० ४३६)।

ऋजु विमान—पहले सौधर्म स्वर्गका पहला इंद्रक जो ढाईद्वीपके बराबर ४५ लाख योजन चौड़ा है ।

ऋद्धि—धन; विशेष शक्तियें जो तपके द्वारा साधुओंको प्राप्त होजाती हैं । वे आठ तरहकी होती हैं—बुद्धि, क्रिया, विक्रिया, तप, बल, औषधि, रस, क्षेत्र । (भ० ए० ९१७)

ऋद्धि गारव—धन व ऋद्धि आदिमें अधिक होनेपर आपको बड़ा मानना अहंकार करना। (भ० ए० ९२७)

ऋद्धि प्राप्तार्य—सात या आठ प्रकार ऋद्धियोंको रखनेवाले जैन साधु (सर्वा० अ० ३–३६)

ऋद्धीश—सौधर्म ईशान स्वर्गका १३ वां इन्द्रक विमान । (त्रि० गा० ४६४)

ऋषभ—प्रथम तीर्थंकर वर्तमान चौवीसी भरत । इक्ष्वाकु कुल शिरोमणि श्री आदिनाथ; नाभिराजाके पुत्र । तीसरे कालके तीन वर्ष ८॥ मास शेष रहे तब निर्वाण हुए । (त्रि०, गा० ८१२).

ऋषभदास—निगोत्या—एक जैन पंडित जिन्होंने नन्दलाल छावड़ासे मिलकर मूलाचारकी हिंदी भाषा की । (दि० ग्रं० नं० ९–४१)

ऋषभाचल—देखो शब्द "वृषभाचल ।"

ऋषि—वे साधु जिनको ऋद्धियें सिद्ध हों । चार भेद हैं १ राजर्षि—जिनको विक्रिया व अक्षीण ऋद्धि हो । २ ब्रह्मर्षि—जिनको बुद्धि व औषध ऋद्धि हो । ३ देवर्षि—जिनको आकाशगामिनी ऋद्धि हो । ४ परमर्षि—जो केवलज्ञानी अर्हंत हों। (सा० अ० ७–२१–२२)

ऋषिकेश—चतुर्मुख पूजाके कर्ता आचार्य ।

ऋषिपुत्र—निमित्त ज्योतिष शास्त्र कर्ता आचार्य (दि० ग्रं० नं० ३६)

ऋषि मण्डल पूजा—संस्कृतमें प्रसिद्ध है ।

ऋषि मण्डल मंत्रतंत्र— ,, में मुद्रित है ।

ऋषि मण्डल स्तोत्र— ,, प्रसिद्ध

ए

एकट्ठी—दोके अंकको छः दफे वर्ग करनेसे जो संख्या आवे वह होगी । १८,४४,६७,४४,०७, ३७,०९,५५,१६१६ (त्रि० गा० ६६)

एक जटि—८८ ग्रहोंमें ७४ वां ग्रह ज्योतिषी देव (त्रि० गा० ३६९) ।

एकत्व—एकता, सदृशता, बराबरी, अकेलापन ।

एकत्व अनुप्रेक्षा—देखो एकत्व भावना ।

एकत्व प्रत्यभिज्ञान—स्मृति (याद) और प्रत्यक्ष

क्रियावादी १८०, अक्रियावादी, ८४, अज्ञानवादी ६७, वैनयिकवादी ३२ = ३६३।

क्रियावादीके १८० भेद–आपसे अस्ति, परसे अस्ति, नित्यतासे अस्ति, अनित्यतासे अस्ति, इनको जीवादि नौ पदार्थोंसे गुणना तब ३६ भेद हुए इनको काल, ईश्वर, आत्मा, नियती, स्वभाव इन पांच अपेक्षा विचारना तब पांचसे गुणने पर १८० भेद हुए। जैसे काल ही सब कर्ता है, ईश्वर ही सब करता है ऐसे भेद होजांयगे। जैसे जीवका अस्तिपना आपसे ईश्वर द्वारा है।

अक्रियावादी ८४–अपनेसे या परसे नहीं है इन दोको जीवादि सात तत्वोंसे गुणना तब १४ भेद हुए। काल, ईश्वर, आत्मा, नियति, स्वभाव अपेक्षा इनको विचारना तब ७० भेद हुए। तथा नहीं है इसको सात तत्वोंमें नियति व काल अपेक्षा लगानेसे १४ भेद हुए, सब मिल ८४ हुए। भाव यह है कि इन सबको नहीं मानना।

अज्ञानवादी ६७–अस्ति, नास्ति, अस्ति नास्ति, अवक्तव्य, अस्ति अवक्तव्य, नास्ति अवक्तव्य, अस्तिनास्ति अवक्तव्य, इन सात भंगोंको जीवादि नौ पदार्थोंपर लगानेसे ६३ भेद ये हुए अर्थात कौनजाने जीव है या नहीं है आदि तथा शुद्ध पदार्थको चार तरह विचारना अस्ति, नास्ति, अस्तिनास्ति, अवक्तव्य। इस तरह इन चारमें ६३ मिलके ६७ भेद हुए। इन बातोंमें अज्ञान रखना।

वैनयिक ३२–देव, राजा, ज्ञानी, यति, बूढ़ा, बालक, माता, पिता इन ८को मन, बचन, काय व धनसे विनय करनेको ही धर्म मानना। ये८×४=३२ भेद हुए। (गो० क० ६७६) कुल ३६३ भेद एकान्तके हैं।

एकांत वृद्धि–देश संयत पंचम गुणस्थानके प्रथम समयसे लगाकर अंतर्मुहूर्त पर्यंत अनंतगुणी विशुद्धताका बढ़ना। (ल० गा० १७४)

एकांतानुवृद्धि योगस्थान या एकांत वृद्धि योगस्थान–आत्माके प्रदेशोंके हिलनेको द्रव्ययोग कहते हैं। इन हीसे भावयोग काम करता है। जो कर्म व नोकर्मको खींचता है। योगोंके भेद या स्थान तीन तरहके होते हैं—

(१) उपपाद–नवीन भवमें जानेपर पहले समयमें जो योगस्थान हो, (२) शरीरपर्याप्तिको पूर्ण होनेके प्रथम समयसे लेकर लगातार अपनी आयुके अंत समय पर्यंत जो योगस्थान हों वे परिणाम योगस्थान हैं। (३) नवीन शरीर धारणके दूसरे समयसे लेकर एक समय कम शरीर पर्याप्तिके अंतर्मुहूर्त समय तक जो योगस्थान हों वे एकांतानुवृद्धि हैं अर्थात ऊपर दोनोंके मध्यमें जो हों। (गो० क० गा० २१८–२२१)

एकावली यष्टि–जो लड़ी केवल मोतियोंसे बनाई जाती है, उसे सूत्र भी कहते हैं। (आ० पृ० १९३)

एकावली तप–इस तपमें २४ उपवास व १४ पारणा लगातार ४८ दिनों होते हैं (ह०पृ० ३४१)

एकावली व्रत–शुक्ल प्रतिपदा, शुक्ल पंचमी, शुक्ल अष्टमी, शुक्ल चौदस, कृष्ण चौथ, कृष्ण अष्टमी, कृष्ण चौदस ऐसे सात उपवास एक एक मासमें करके १२मासमें ८४ उपवास पूर्ण करे, फिर उद्यापन शक्ति अनुसार करे(कि० क्रि० पृ० ११६)

एकेन्द्रिय–वे संसारी जीव जिनके एक स्पर्श इंद्रिय मात्र हो जैसे पृथ्वीकायिक, जलकायिक,अग्निकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक इन पांचोंमें जबतक जीव रहता है तबतक वे सचित्त, फिर जीव निकल जानेपर यह अचित्त कहलाते हैं। एकेंद्रिय जीव छूकरके जानते हैं व इसीसे काम करते हैं इनके स्पर्शइंद्रिय, शरीरबल, आयु, श्वासोच्छ्वास ऐसे चार प्राण होते हैं।

एकेन्द्रिय जाति नामकर्म–यह नामकर्म जिसके उदयसे जीव एकेंद्रिय जातिमें पैदा हो। (सर्वा० अ० ८–११)

एपिग्रेफिक श्रवणबेलगोला–इंग्रेजीमें पुस्तक जिसमें जैनबद्री या गोम्मटस्वामी श्रवणबेल-

गोला (मैसूर) के मंदिर व शिलालेखोंका कथन है, मुद्रित है।

एकेन्द्रिय भेद—एकेंद्रिय जीवोंके ४२ भेद हैं—पृथ्वी, जल, तेज, वायु, नित्य निगोद, साधारण वनस्पति, इतर निगोद सा० वं०। इन छः के सूक्ष्म व बादरकी अपेक्षा १२ भेद हुए। प्रत्येक वनस्पति सप्रतिष्ठित और अप्रतिष्ठित भेदसे दो प्रकार ऐसे १४ प्रकार हरएक पर्याप्त, निर्वृत्यपर्याप्त, व लब्ध्य प्रर्याप्त इसतरह ४२ भेद हुए। (जै० सि० प्र० ९४–९७)

एवंभूत नय—जिस शब्दका जिस क्रियारूप अर्थ हो उसी क्रियारूप परिणमे पदार्थको जो ग्रहण करे। जैसे वैद्यको वैद्यक करते समय ही वैद्य कहना। (जै० सि० प्र० नं० १००)

एषणा दोष—मुनिके आहार सम्बन्धी दोष देखो "आहार दोष"

एषणा समिति—शुद्ध भोजन ४६ दोष व ३२ अंतराय टालकर मुनिद्वारा लेना। यह तीसरी समिति है। (सर्वा० अ० ९–९)

एलाचार्य—श्री कुन्दकुन्दाचार्यका एक नाम।

एलाचार्य भट्टारक—ज्वालामालिनी कल्पके कर्ता। (दि० ग्र० नं० ३९)

ऐ

ऐतिहासिक स्त्रियाँ—पंडिता चंदाबाई जैन आरा कृत स्त्री शिक्षाकी पुस्तक, मुद्रित।

ऐंद्रध्वज पूजा—इन्द्र द्वारा रची गई महापूजा।

ऐरावत क्षेत्र—जम्बूद्वीपका सातवां क्षेत्र। उत्तरमें ढाईद्वीपमें पांच ऐरावत हैं। वहां भरतक्षेत्रके समान कर्मभूमि रहती है। चौथे कालमें चौबीस तीर्थंकर होते हैं। (त्रि.गा. ५६४–७७९–८८१–८८३)

२–स्वर्गोंके दक्षिण इन्द्रोंमें चौथे इन्द्रकी सेनाके प्रधान पुरुष नायक (त्रि० गा० ४९६)

३–सीतानदी सम्बन्धी चौथा द्रह। (त्रि०गा० ६५७)

४–शिखरी कुलाचल पर नौमा कूट। (त्रि० गा० ७२९)

ऐलक—उत्कृष्ट श्रावक ग्यारह प्रतिमाधारी जो एक लंगोट मात्र रखते हैं व भिक्षासे बैठकर भोजन करते हैं, मुनि धर्मके अभ्यासी हैं। (गृ० अ० १७)

ऐशान—दूसरे स्वर्गका नाम।

ऐहिक फलानपेक्षा—दातारका पहला गुण कि वह इस लोकके फलकी इच्छा न करे कि मुझे धन व पुत्र हो व यश हो। (पु० श्लो० १६९)

ओ

ओघ=गुणस्थान जो १४ होते हैं (गो० जी० गा० ३)

ओं, ओम, ओं, ॐ—पांच परमेष्ठी वाचक मंत्र। अरहंतका प्रथम अक्षर अ, सिद्ध अशरीर हैं पहला अक्षर अ, आचार्यका पहला अक्षर आ; उपाध्यायका पहला अक्षर उ, साधुको मुनि कहते हैं पहला अक्षर म्; सब मिलकर अ+अ+आ+उ+म्=ॐ या ओम, (द्रव्य संग्रह; ज्ञानार्णव क० ३८) प्रणव मंत्र, पदस्थ ध्यानमें इस मंत्रको दो भौंहोंके बीचमें व अन्यत्र विराजमान करके ध्यान किया जाता है।

ओंकार मुद्रा—अनामिका, कनिष्ठा और अंगूठेसे नाक पकड़ना। (क्रिया मं० पृ० ८७ नोट)

औ

औद्देशिक दोष—देखो "उद्दिष्ट दोष"

औघिक समाचार—मुनिके योग्य योग्य आचरण। इसके १० भेद हैं (१) इच्छाकार—सम्यग्दर्शन व व्रतादि आचरणमें हर्ष सहित प्रवर्तना। (२) मिथ्याकार—जो व्रतादिमें अतिचार हों उनको मिथ्या कहना। (३) तथाकार—सूत्रके अर्थको जैसा ही मानना जैसा कहा है। (४) आसिका—रहनेकी जगहसे जाते समय देवता व गृहस्थ आदिसे पूछकर जाना या पाप क्रियासे हटना। (५) निषेधिका—नवीन स्थानमें घुसते समय वहांके निवासियोंसे

पूछकर जाना या सम्यग्दर्शनादिमें स्थिरभाव रखना। (६) आपृच्छा-ग्रंथ पठनादि कार्यके आरंभमें गुरुसे पूछना (७) प्रतिपृच्छा-साधर्मी साधु व गुरुसे दिये हुए पुस्तकादिको, फिर लेनेके अभिप्रायसे पूछना। (८) छंदन-ग्रहण किये हुए पुस्तकादिको देनेवालेके अभिप्रायके अनुकूल रखना। (९) नियंत्रणा-नहीं लिए हुए अन्य द्रव्यको प्रयोजनके लिये सत्कार पूर्वक, याचना व विनयसे रखना। (१०) उपसंपद-गुरुकुलमें मैं आपका हूं ऐसा कहकर उनके अनुकूल आचरण करना। (मू० गा० १२५-१२८)

औत्सर्गिक मंत्र-पीठिकाके सात प्रकारके मंत्र जो हरएक गर्भाधानादि क्रियाके प्रारम्भमें होम करते समय पढ़े जाते हैं। (आ० प० ४०-२१६) इन मंत्रोंसे सिद्ध भगवानकी पूजा है। (आ० प० ४०-७७) वे सात प्रकार हैं। (१) पीठिका मंत्र (२) जाति मंत्र (३) निस्तारक मंत्र (४) ऋषि मंत्र (५) सुरेन्द्र मंत्र (६) परमराजादि मंत्र (७) परमेष्ठि मंत्र (गृ० अ० ४)

औत्सर्गिक लिंग-दिगम्बर चिह्न, वस्त्रादि त्याग कर मुनिवत् होजाना। स्त्रियां भी समाधिमरणके समय एकांतमें मुनिवत् होसक्ती हैं (सा० अ० ८-३९) अपने आत्म द्रव्यमें स्थिर होना, शुद्धोपयोगमई होना।

औदयिक भाव-जीवके वे भाव जो कर्मोंके उदयके अनुकूल होते हैं वे २१ प्रकारके मुख्य हैं। गति ४+कषाय ४+वेद ३+१मिथ्या दर्शन +१ अज्ञान +१असंयत +१असिद्ध + लेश्या ६ (सर्वा० अ० २-६)

औदारिक अंगोपांग नामकर्म-जिस कर्मके उदयसे औदारिक शरीरमें अंग व उपंग बने (सर्वा० अ० ८-११)

औदारिक काययोग-औदारिक शरीर नामकर्मके उदयसे उपजा औदारिक काय उसके निमित्त आत्म प्रदेशोंका चंचल होना जिससे कर्म व नो कर्म ग्रहणकी शक्तिका काम करना। (गो० जी० गा० २३०)

औदारिक मिश्रकाययोग-औदारिक शरीर जबतक पूर्ण न हो अर्थात् शरीर धारणके पीछे शरीर पर्याप्तिके पूर्ण न होनेतक यह योग होता है, इसमें औदारिकके साथ कार्माणयोगका मिश्रण है, ऐसे मिश्र शरीरके निमित्त आत्माका चंचलपना जिससे कर्म नो कर्म ग्रहणकी शक्तिका काम करना। (गो० जी० गा० २३१)

औदारिक शरीर नामकर्म-वह कर्मप्रकृति जिससे औदारिक शरीरके योग्य आहार वर्गणाका ग्रहण होकर शरीर बने। (सर्वा० अ० ८-११)

औदारिक बन्धन नामकर्म-वह कर्मप्रकृति जिससे औदारिक शरीर निमित्त आई हुई आहार-वर्गणाका परस्पर बंध न हो। (सर्वा० अ० ८-११)

औदारिक संघात नामकर्म-वह कर्मप्रकृति जिसके निमित्तसे औदारिक शरीर निमित्त आई हुई वर्गणा परस्पर छिद्र रहित मिल जावें। (सर्वा० अ० ८-११)

औपपादिक-जो उपपाद जन्मसे पैदा हों देव व नारकी।

औपशमिक चारित्र-सर्व कषायोंको उपशम करते हुए जो आत्मामें स्थितिरूप आचरण। यह उपशम श्रेणीमें आठवेंसे ग्यारहवें गुणस्थान तक होता है। (सर्वा० अ० २)

औपशमिक भाव-मोहनीय कर्मके उपशम या उदय न आनेसे जो निर्मल भाव हो इसीके दो भेद हैं-औपशमिक सम्यक्त व औ० चारित्र। (सर्वा० अ० २-१)

औपशमिक सम्यग्दर्शन -या सम्यक्त-अनंतानुबंधी चार कषाय और मिथ्यात्त या मिथ्यात्व, मिश्र और मोहनीय इन पांच प्रकृतियोंके अथवा सात प्रकृतियोंके उपशमसे जो अन्तर्मुहूर्तके लिये सम्यग्दर्शन हो। (सर्वा० अ० २-३)

औम तिथि-तिथिका घटना। जहां उदयमें

उदयमें तीन मुहुर्त या छः घडी तिथि न हो वहां वह तिथि घटी मानी जायगी तब पहले दिन उस तिथिको मानके उपवासादि करना चाहिये। जैसे अष्टमी तीन मुहूर्तसे कम है तो सप्तमीको व्रत करना चाहिये। अष्टमीको जितनी घडी अष्टमी हो उतने काल पीछे पारणा करे, सप्तमीका उपवास करके दूसरे दिन छः घडीसे जितनी कम अष्टमी हो उतनी घडी पीछे भोजन ले अर्थात् वहांतक अष्टमी माने (च० प्र० न० ११८)

औषध ऋद्धि–देखो 'अंगद ऋद्धि' (प्र० जि० पृ० ९०) यह ८ प्रकार है (१) आमर्श-औ० ऋ० साधुओंके अंग स्पर्शसे रोग नाश हो, (२) क्ष्वेल-औ०ऋ० उनके कफ लगनेसे रोग नाश हो, (३) जल्ल०–उनके पसीनेके लगनेसे रोग नाश हो, (४) मल०–उनके कर्ण, दंत व नासिका मलसे रोग नाश हों, (५) विट्–उनके बिष्टाके स्पर्शसे रोग नाश हो, (६) सर्वौषधि–जिनके अंग उपंगको स्पर्श करनेवाली पवनसे रोग नाश हो, (७) आस्याविष–जिनके मुखमें प्राप्त विष निर्विष होजाय व जिनके वचन सुननेसे विष उतर जावे, (८) दृष्टयविष–जिनके देखने मात्रसे विष उतर जावे (भ० पृ० ५२३)।

औषधिदान–रोग दूर करनेके लिये शुद्ध प्राशुक व पवित्र दवाई धर्मात्मा पात्रोंको या दुःखितोंको दयासे देना।

औषधी–विदेहोंके बत्तीस देशोंमें ३२ राज्यधानी हैं उनमें सातवीं राज्यधानी (त्रि.गा. ७१२)

औस्तुभास–लवण समुद्रके बडवामुख आदि दिशा सम्बन्धी पातालोंके दोनों तरफ एक२ पर्वत है। पूर्वदिशाके पातालकी पश्चिम दिशामें पर्वतका नाम (त्रि०गा० ९०५–९०६) वहांपर जो व्यंतर रहता है उसका भी नाम औस्तुभास है।

अं

अंग–शरीर; शरीरमें आठ अंग हैं। १–मस्तक, १ पीठ, १ पेट, २ भुजा, २ गोडे, १ नितंब; जिनवाणीके १२ अंग हैं देखो शब्द "अङ्ग" (प्र० जि० पृ० ११६)।

अंगोपांग–देखो शब्द "अङ्गोपांग" (प्र० जि० पृ० १३५)

अंथऊ–ब्याल्‌, संध्याके पहलेका भोजन। बुंदेलखंडमें इस शब्दका रिवाज है।

अंशुमान–अरिष्टपुरके स्वामी हिरण्यनाभ राजासे उत्पन्न रोहिणी कन्याके स्वयंवरमें उपस्थित एक राजा (ह० पृ० ३१५)

क

कचयव–ज्योतिषके ८८ ग्रहोंमें छठा ग्रह। (त्रि० गा० ३६३)

कच्छ–माल्यवान गजदंत पर चौथा कूट (त्रि० गा० ७३८); महाराज ऋषभदेव तीर्थंकरके श्वसुर।

कच्छा–विदेह क्षेत्रके ३२ देशोंमें पहला देश, (त्रि० गा० ६८७)। विदेहके चित्रकूट व क्षार पर दूसरा कूट। (त्रि० गा० ७४३)

कच्छकावती–विदेह क्षेत्रके ३२ देशोंमें चौथा। (त्रि० गा० ६८७)

कज्जलप्रभा–सुमेरु पर्वतके नंदनवनमें आठवीं वापिका। (त्रि० गा० ६२९)

कज्जला–सुमेरु पर्वतके नंदनवनमें सातवीं वापिका। (त्रि० गा० ६२९)

कटु रस नामकर्म–जिसके उदयसे शरीरमें कटु रस हो। (सर्वा० अ० ८–११)

कठूमर–पांच उदम्बर फलोंमें पांचवां अंजीर फल।

कठोर स्पर्श नामकर्म–जिसके उदयसे शरीरका स्पर्श कठोर हो। (सर्वा० अ० ८–११)

कथा–जिससे धर्मका लाभ हो ऐसी कथा–यह चार प्रकार है–(१) आक्षेपिणी–[illegible] स्वरूप बतानेवाली, (२) विक्षेपिणी–[illegible] व परमत [illegible] वस्तु स्वरूप बतानेवाली, (३) संवेजिनी–ज्ञान चारित्र, वीर्य, भावनाके द्वारा

शक्तिकी संपदा या फलका कथन जिसमें हो, (४) निर्वेदिनी–वैराग्य उत्पन्न करनेवाली (अ.पृ. २९९)

कथंचित–स्यात्; किसी अपेक्षासे जैसे स्यात अस्ति=किसी अपेक्षासे वस्तु है। अर्थात स्वद्रव्य क्षेत्र काल भावकी अपेक्षासे वस्तुमें अस्तिपना है; स्यात् नास्ति=किसी अपेक्षासे अर्थात् परद्रव्यादि चतुष्टयकी अपेक्षा वस्तुमें नास्तिपना है।

कदम्ब–गंधर्व, व्यंतरोंके १० भेदोंमें पांचवा भेद (त्रि० गा० २६३)।

कदम्बक–लवण समुद्रके पश्चिम दिशाके पाताकका नाम (त्रि० गा० ८९७)।

कदलीघात–अकालमृत्यु, विष शस्त्रादि विशेष कारणोंसे कर्मभूमिके मानव तिर्यंचोंका आयु कर्मकी उदीरणा व शीघ्र अपने नियत समयसे पहले खिर जानेसे मरण होना। देखो शब्द "अपवर्त्यायु"।

कनक–सुवर्ण; ज्योतिषके "ग्रहोंमें तीसरा ग्रह" (त्रि० गा० ३६३) भरतके आगामी उत्सर्पिणीकालके दूसरे दुःखमाकालमें १६ कुलकर होंगे पहला कुलकर (त्रि० गा० ८७१); कुंडलद्वीपके कुण्डल पर्वतपर २० कूटोंमें तीसरा कूट (त्रि० गा० ९४९) रुचकद्वीपके रुचक पर्वतपर पूर्वके आठ कूटोंमें पहला कूट (त्रि० गा० ९४८); छठे घृत महासमुद्रका स्वामी व्यंतर (त्रि० गा० ९६४)

कनककीर्ति–भट्टारक, अष्टान्हिकोद्यापनादिके कर्ता। (दि० ग्रं० नं० ४०)

कनकचित्रा–रुचकपर्वतके भीतरी पश्चिम स्वयंप्रभ कूटपर वसनेवाली देवी। यह तीर्थंकरके जन्मकालमें माताकी सेवा करती है। (त्रि. गा. ९१८)

कनकध्वज–भरतके आगामी उत्सर्पिणीकालमें दूसरे कालमें १६ कुलकर होंगे उनमें चौथा कुलकर। (त्रि० गा० ८७१)

कनकनंदि भट्टारक–ज्ञानसूर्योदय नाटक प्राकृतके कर्ता। (दि० ग्रं० नं० ४१)

कनकनंदि मुनि–गोम्मटसार कर्मकांडके टीकाकार। (दि० ग्रं० नं० ४२)

कनकपुंगव–भरतके आगामी उत्सर्पिणी दूसरे दुःखमाकालमें १६ कुलकर होंगे उनमें पांचवां। (त्रि० गा० ८७१)

कनकप्रभ–भरतके आगामी उत्सर्पिणी कालके दूसरे दुःखमाकालमें १६ कुलकर होंगे उनमें दूसरा कुलकर (त्रि० गा० ७१) कुण्डल पर्वतपर चौथा कूट (त्रि० गा० ९४९) छठे घृत महासमुद्रका स्वामी व्यंतर (त्रि० गा० ९६४)।

कनक प्रभा–राक्षस व्यंतरके इन्द्र महाभीमकी वल्लभिकादेवी (त्रि० गा० २६८)।

कनकमाला–असुरकुमार भवनवासी देवोंके इन्द्र वैरोचनकी पांचवी ज्येष्ठदेवी (त्रि० गा० २३६)

कनकराज–भरतके आगामी उत्सर्पिणीके दूसरे दुःखम कालमें १६ कुलकर होंगे उनमें तीसरा कुलकर (त्रि० गा० ८७१)।

कनक रूप्य–सुवर्ण चांदी–परिग्रह। परिग्रह प्रमाण अणुव्रतमें तीसरा अतीचार कि प्रमाणमेंसे एकको बढ़ाकर दूसरेको घटा देना (सा. ४–६४)।

कनकश्री–असुरकुमार भवनवासीके वैरोचन इन्द्रकी चौथी ज्येष्ठ देवी (त्रि० गा० २३६)।

कनकसेन कवि–ज्ञान सूर्योदय नाटकके कर्ता (दि० ग्रं० नं० ४३)।

कनक संस्थान–ज्योतिषके ८८ ग्रहोंमें चौथा ग्रह (त्रि० गा० ३६३)।

कनका–रुचक पर्वतके भीतरी पूर्व कूट विमलप्रभपर रहनेवाली देवी (त्रि० गा० ९१७)।

कनकावली व्रत–एक वर्षमें ७२ उपवास करे, किसी मासकी सुदी पड़िवा, सुदी पंचमी, सुदी दशमी, वदी दोज, वदी छठ वदी, बारस इसतरह एक मासमें छः उपवास करे। सुदीसे प्रारंभ करे। (कि० कि० पृ० ११७)।

कन्ति–कर्णाटक स्त्री जैन कवि। यह बड़ी सुन्दर कविता करती थी, छंद अलंकार व्याकरणादिमें कुशल थी। इसकी उपाधि थी अभिनय वाग्देवी। यह द्वारसमुद्रके विष्णुवर्द्धनकी सभामें

जाती थी। यह राजमंत्री धर्मचन्द्रकी कन्या थी, यह पंपके समय ई० ९७३के लगभग हुई है। (क० नं० २७)

कन्दमूल-आलू, घुइयां, शकरकन्दी आदि जो भूमिके नीचे होते हैं, इनमें प्रायः अनंतकाय होते हैं इसीसे आलू टुकड़े करनेपर बोदिया जाता है। एक कायमें अनंत एकेन्द्रिय जीव हों उनको अनंतकाय कहते हैं। सप्रतिष्ठित वनस्पति अनंतकाय सहित होती है। जो सम भंग होजावे, तोड़नेसे ऊगे आदि उनकी पहचान है। देखो शब्द 'अनंतकाय'।

कंदर्प-शील रहित उपद्रवरूप परिणाम या हास्य सहित भंड वचन बोलना, यह अनर्थदण्ड-विरतिका प्रथम अतिचार है। (सर्वा० अ० ७-३२)

कंदर्प देव-खोटे परिणामधारी देव।

कंदर्प भावना-जो साधु स्वयं असत्य बोलता व दूसरोंको असत्य सिखाता, राग भावकी तीव्रता सहित शील रहित परिणाम रखता व भंड वचन बोलता। उसके यह भावना होती है जिससे मरकर कंदर्प देवोंमें पैदा होता है। (मू० गा० ६४)

कन्यादान-योग्य कन्याको योग्य वरके साथ देव व पंचोंकी साक्षी पूर्वक विवाहना। (सा० अ० २-५०७)

कपिलापुरी-श्री विमलनाथ तीर्थंकरका जन्म-नगर, फर्रूखाबाद जिलेमें स्टेशनसे ८ मील है। संयुक्त प्रांतमें है। यहां भगवानके चार कल्याणक हुए हैं, मंदिर व धर्मशाला है। चैत्र मासमें मेला होता है। (तीर्थयात्रा० पृ० ६)

कमण्डल-धातु व काठका एक तरहका लोटा जिसमें प्रासुक पानी रहता है। क्षुल्लक धातुका व ऐलक तथा जैन मुनि काठका कमण्डल रखते हैं।

कमलप्रभा-पिशाच व्यंतरोंके काल इन्द्रकी दूसरी वल्लभिका (त्रि० गा० २७२)।

कमलभव-कर्णाटक शांतिनाथ पुराणके कर्ता सन् ११२९ में हुए। इनके गुरु माघनंदि यति थे, इनकी उपाधि कविकंजगर्भ व सूक्तिसंदर्भ गर्भ है (क० नं० ९१)।

कमला-पिशाच व्यन्तरोंके काल इन्द्रकी पहली वल्लभिका (त्रि० गा० २७२)।

कम्पलानगरी-देखो शब्द "कपिलापुरी"

करण-समय समय अनन्तगुणा भावोंकी निर्म-लता होना जिनसे मोहका उपशम या क्षय हो। देखो शब्द अधःकरण (गो० क० गा० ८९७)

करण चूलिका-यह दश प्रकार है-(१) बन्ध-रागद्वेष मोहादि भावोंसे नवीन पुद्गल कर्मोंका आठ कर्मरूप होकर आत्मासे एकक्षेत्रा-वगाह रूप सम्बन्ध करना, (२) उत्कर्षण-कर्मोंमें जो स्थिति व अनुभाग पहले था उसको बढ़ा देना (३) संक्रमण-जो कर्मकी उत्तर प्रकृति बंधी थी उसके परमाणुओंको अन्य उत्तर प्रकृति रूप कर देना, बदल देना, (४) अपकर्षण-कर्मोंमें जो स्थिति या अनुभाग पहले था उसको घटा देना, (५) उदीरणा-उदयकी आवलीसे बाहरके कर्मके द्रव्यकी स्थिति घटाकर उदयावलीमें मिलाना अर्थात् बिना समय कर्मोंको उदयमें लाना, (६) सत्व-बंधे हुए कर्म पुद्गलोंको आत्माके प्रदेशोंमें ठहरना, (७) उदय-कर्मोंका अपनी स्थिति पूरी होनेपर या ठीक समयपर पकके उदय आना फिर झड़ जाना, (८) उपशांत-जो कर्म कुछ कालके लिये उदयके अयोग्य कर दिया जाय, (९) निधत्ति-जो कर्म न तो अपने समयसे पहले उदय होसकता और न संक्रमण हो-सके, (१०) निकाचित जो कर्म न तो पहले उदय हो, न संक्रमण हो, न उसमें उत्कर्षण तथा अपकर्षण हो सके। (गो० क० गा० ४३९-४४०)

करणलब्धि-करण परिणामोंकी प्राप्ति। देखो शब्द "अधःकरण"।

कराल-भूत जातिके व्यंतरोंके प्रतिरूप इन्द्रकी महत्तरीदेवीका नाम (त्रि० गा० २७८)।

करिकाण्ठ-ज्योतिषके ८८ ग्रहोंमें ७२, ७३ ग्रह (त्रि० गा० ३६६)।

करुणाष्टक—एक स्तुति।

करकंडु राजा—धाराशिव (वर्तमान उसमानाबाद जि० शोलापुर) के पर्वतकी गुफाओंमें श्री पार्श्वनाथकी ९ हाथ पद्मासन मूर्तिको विराजमान करानेवाले राजाने तीन गुफा मंदिर अपने, अपनी मा व बालदेवके नामसे बनवाकर प्रतिष्ठा की। अभी भी ये गुफाके मंदिर मौजूद हैं। प्रतिमा बड़ी भव्य दर्शनीय है। येडसी स्टेशन जो बारसी लाइनमें है उससे १०–१२ मील धाराशिव नगर है। (आराधना कथा नं० ११२)।

कर्ण पिशाचिनी मंत्र यंत्र विद्या—हकार, सकार, तीकारके ऊपर विन्दु रखके सकार और हकारके बीचमें तीं अक्षरको लिखे, उसके चारों कोनोंमें चार ॐकार लिखे। दक्षिण वामभागकी तरफ माया बीजक ह्रींको लिखे। यंत्र ऐसा बनावे।

ओं				ओं
ह्रीं	सं	तीं	हं	ह्रीं
ओं				ओं

इसका मंत्र है—"ॐ जोगे भग्गे तच्चे मुदे भविस्से, अक्खे, पक्खे, जिण पार्श्वे श्री ह्रीं स्त्रीं कर्णपिशाचिनि नमः।"

इस विद्याको साधनेवाला ब्रह्मचर्य धरकर यंत्रको सामने रखकर बारह हजार चमेलीके फूलोंसे मंत्र जपे फिर रातको विधि सहित बारहसौ आहूति अग्निमें दे तब यह विद्या सिद्ध हो। ऊपरको नेत्र करके जो साधक ओं रूप अनाहत अक्षरसे वेढी हुई इस विद्याको ध्यानपूर्वक जपता है। वह जागृत व शयन दोनोंमें शुभ अशुभ सुनता है व देखता है। जो उपवास करके ओं ह्रीं आदि पंच नमस्कार मंत्र जपते हुए सोजावे व सोते हुए मुनि व गाय आदिको देखे तो शुभ फल कहे। यदि शकुन शास्त्रके अनुसार अशुभ वस्तुओंको देखे तो अशुभ फल कहे। (प्र० सा० ५०१–२–३)

कर्ण वन्ध क्रिया मंत्र—जब बालक १ व ३ वर्षका होजावे तब मुण्डन कराया जावे। उसी समय कान बींधे जासकते हैं। नीचे लिखा मंत्र पढ़कर कर्ण छिदावे "ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं—(यहां नामले) बालकस्य कर्णनासावेधनं करोमि असि आ उसा स्वाहा।" (ग्रं० अ० ४–१२वां संस्कार)।

कर्णाटक भारत चम्पू—सन् ई० ९०२में प्रसिद्ध कर्णाटक कवि आदि पंप रचित। इसमें पाण्डवोंके जन्मसे लेकर कौरवोंके वध तकका वर्णन १४ आश्वासोंमें बहुत कवितापूर्ण है। राजा अरिकेसरीने प्रसन्न हो इसे धर्मपुर ग्राम इनाम दिया (क. नं. १४)।

कर्णानुयोग—वे जैन शास्त्र जिनमें लोककी माप गणित, व कर्मबंधका हिसाब आदि दिया हो।

कर्णाटक शब्दानुशासन—कनड़ीका व्याकरण अकलंक कृत। मुद्रित है, बहुत प्रसिद्ध है। दि० जैन सरस्वती भवन बंबईमें है।

कर्तव्य कौमुदी—ब्यावर राजपूतानासे मुद्रित एक नीतिपूर्ण हिन्दी ग्रन्थ।

कर्म—काम; जो कर्मवर्गणारूप पुद्गलके स्कन्ध जीवके रागद्वेषादिक परिणामोंके निमित्तसे जीवके साथ बंधकर ज्ञानावरणादि रूप होजाते हैं, बंधनेके पहले कर्मवर्गणा कहलाते हैं। बंधनेपर इन ही को कर्म कहते हैं। इनकी द्रव्यकर्म भी संज्ञा है। इनहीं कर्मोंके फलसे जो जीवके अशुद्ध रागादि भाव होते हैं उनको भाव कर्म तथा जो शरीरादि बाहरी पदार्थ प्राप्त होते हैं उनको द्रव्यकर्म, नोकर्म, कहते हैं (जै.सि.प.नं०२४७) इस द्रव्यकर्मके मूल भेद आठ हैं, १ ज्ञानावरण—जो ज्ञानको ढके, इसके ५ भेद हैं, २ दर्शनावरण—जो दर्शन गुणको ढके, इसके ९ भेद हैं, ३ वेदनीय—जो सुख या दुःख अनुभव करानेका निमित्त बनावें, इसके २ भेद हैं, ४—मोहनीय—जिससे जीव अपने स्वरूपमें न रहकर परमें मोहित हो व रागद्वेष करे, इसके २८ भेद हैं, ५ आयु—जिससे नरकादि ४ गतियोंमें जाकर कैद रहे, इसके ४ भेद हैं, ६ नाम—जो नाना गतियोंमें शरीरादिकी रचना कराकर अनेक नामोंसे बुलवावे। इसके ९३भेद हैं, ७ गोत्र—जिसके उदयसे ऊँचा या नीचा कहा जावे। इसके दो भेद हैं,

८ अन्तराय-जो दान लाभादि व बल प्रकाशमें विघ्न करे इसके ५ भेद हैं।

सब १४८ (५+९+२+२८+४+९३+२+५ =१४८) भेद हैं। नामकर्मके १०३ भेद लेनेसे १५८ भेद भी होते हैं।

१४८ प्रकृतिके नाम हैं—

५ ज्ञानावरण-मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, केवलज्ञान।

९ दर्शनावरण-चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, केवलदर्शन, निद्रा, निद्रा निद्रा, प्रचला, प्रचला प्रचला स्त्यानगृद्धि।

२ वेदनीय-सातावेदनीय, असातावेदनीय।

२८ मोहनीय-दर्शन मोहनीय ३-मिथ्यात्व, सम्यक् मिथ्यात्व, सम्यक्त। चारित्र मोहनीय २५—१६ कषाय अनंतानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ, अप्रत्याख्यानावरण क्रोधादि ४, प्रत्याख्यानावरण क्रोधादि ४, संज्वलन क्रोधादि ४। ९ नोकषाय-हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुंवेद, नपुंसकवेद।

४ आयु-नारक, तिर्यंच, मनुष्य, देव।

९३ नाम-गति ४ +जाति इंद्रिय ५ +५ शरीर औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस, कार्मण +५ बन्धन +५ संघात +१ निर्माण +३ अंगोपांग-औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, +६ संस्थान समचतुरस्र, न्यग्रोधपरिमण्डल, स्वाति, कुब्जक, वामन, हुंडक +६ संहनन-वज्रवृषभनाराच सं०, नाराच सं०, अर्द्धनाराच सं०, कीलिक सं०, असंप्राप्तासृपाटिका सं० +स्पर्श ८ +रस ५ +गन्ध २ +वर्ण ५ +४ आनुपूर्वी--नरक, तिर्यंच, मनुष्य, देव + अगुरुलघु + उपघात + परघात + आतप + उद्योत + उच्छ्वास + प्रशस्त विहायोगति + अप्रशस्त विहा० + प्रत्येक शरीर + साधारण + त्रस + स्थावर + सुभग + दुर्भग + सुस्वर + दुःस्वर + शुभ + अशुभ + सूक्ष्म + बादर + पर्याप्ति + अपर्याप्ति + स्थिर + अस्थिर + आदेय + अनादेय + यशःकीर्ति + अयशःकीर्ति + तीर्थंकर, २ गोत्र-उच्च, नीच।

५ अन्तराय-दानांतराय, लाभांतराय, भोगांतराय, उपभोगांतराय, वीर्यांतराय, कुल १४८ (सर्वा० अ० ८, ४-५)।

कर्म अवस्था-तीन तरहकी होती है। बंध-उनका बंधना, सत्व-बंध करके आत्माके प्रदेशोंमें स्थिति तक ठहरे रहना, उदय-अपने समयपर झड़ना। (गो० क० गा० ८८)

कर्मआर्य-(कर्मार्य) तीन प्रकार हैं-१ सावद्य कर्मार्य-जो गृहस्थ बहुत पापरूप आजीविका असि (शस्त्र), मसि (लेखन), कृषि, वाणिज्य, शिल्प, विद्यासे करें, २ अल्प सावद्य कर्मार्य-अणुव्रतधारी श्रावक जो न्यायरूप छः कर्मसे आजीविका करें व अल्प संतोषपूर्वक करें, ३ असावद्य कर्मार्य-जो पापरूप न करें ऐसे निर्ग्रंथ मुनि। (म० प्र० ९१५-९१६)

कर्मकांड-गोम्मटसार कर्मकांड श्री नेमिचंद्र सिद्धांतचक्रवर्ती कृत। इसमें कर्मोंके बंध, उदय, सत्ताका ९७१ गाथाओंमें विस्तारसे कथन है। सं० टीका केशववर्णी कृत, भाषा टीका पं० टोडरमल कृत मुद्रित है।

कर्मचूर व्रत या कर्मक्षय व्रत-इस व्रतमें १४८ उपवास १४८ पारणा करे, २९६ दिनोंमें पूरा करे। यह कर्म नाशक तप है। (ह० पृ० ३६०)

कर्मचेतना-राग द्वेष सहित कार्य करनेके ध्यानमें तन्मय होना। जैसे रसोई बनाना, मकान बनाना आदि कार्योंमें लीन होना। (पंचास्तिकाय गा. ३८)

कर्म तद् व्यतिरिक्त नो आगम द्रव्य निक्षेप-जिस कर्मको जो अवस्था निक्षेप पदार्थकी उत्पत्तिको निमित्तभूत हो उस ही अवस्थाको प्राप्त वह कर्म निक्षेप्य पदार्थका यह निक्षेप कहलाता है। (सि० द० पृ० १४)

कर्मनिर्जरणी व्रत-आषाढ़ सुदी १४, श्रावण सुदी १४, भादों सुदी १४, कार्तीक सुदी १४ के

चार उपवास क्रमसे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, सम्यक्तपके हेतुसे एक वर्षके भीतर करे।
(क्रि० क्रि० पृ० १२७)

कर्म परिवर्तन या कर्मद्रव्य परिवर्तन–एक जीवने किसी एक समयमें आठ कर्म बांधने योग्य पुद्गल ग्रहण किये व द्वितीयादि समयोंमें निर्जराको प्राप्त होंगे फिर वह अनंतवार अग्रहीत, ग्रहीत, मिश्र, द्रव्यकर्म पुद्गलोंको जीव ग्रहण करता हुआ जब ऐसा समय आवे कि पहले उस समयमें जिस प्रकारके व जितनी संख्याके कर्म पुद्गल ग्रहण किये थे वैसे ही ग्रहण करे कुछ अंतर न पड़े, ऐसा अवसर अनंतकालमें आता है। इतने कालको एक कर्म द्रव्य परिवर्तन कहते हैं। (गो० जी० ५६९ व सर्वा० अ० २–१० या श्रा० पृ० २३९)

कर्म प्रकृति–देखो 'कर्म'

कर्म प्रत्यय–आठ कर्मोंके आस्रव या आनेके कारण। मूलकारण मिथ्यात्व–श्रद्धा ठीक न होना, २ अविरति–संयम न होना, ३ कषाय–क्रोधादि, ४ योग–आत्माके प्रदेशोंका मन, वचन, काय द्वारा कम्पन–इनके उत्तर भेद ५७ हैं। मिथ्यात्व पांच तरहका–एकांत, संशय, विनय, विपरीत, अज्ञान। अविरतिके १२ भेद हैं, ५ इंद्रिय व मनका वश न करना व पृथ्वी आदि ६ कायकी दया न पालना। कषायके २५ भेद हैं, १६ कषाय, नौ हास्यादि नोकषाय, १५ योग, मनके ४, वचनके ४, कायके ७" ५+१२+२५+१५=५७ (गो० क० गा० ८–८६)

कर्मप्रवाद पूर्व–१४ पूर्वोंमें आठवां पूर्व, जिसमें ज्ञानावरणादि कर्मोंका बंध, उदय, उदीरणा, सत्ता आदिका कथन है। इसके एक करोड़ ८० लाख मध्यम पद हैं। (गो० जी० गा० ३६५–३६६)

कर्मफल चेतना–कर्मोंके फल दुःख सुखका अनुभव करना।

कर्मबन्ध–जीव और कर्मवर्गणाओंका परस्पर एकक्षेत्रावगाह सम्बन्ध होना। प्रवाहकी अपेक्षा कर्मोंका बन्ध अनादिसे है, विशेष कर्मबंधकी अपेक्षा सादि है। (सि० द० पृ० ७६)

कर्मभूमि–जहां असि, मसि, कृषि, वाणिज्य, शिल्प, विद्या कर्मोंसे आजीविका हो; अथवा जहां मोक्षका साधक संयम व धर्म पाला जासके। ढाई द्वीपमें पांच भरत, पांच ऐरावत, पांच विदेहोंमें कुल १५ कर्म भूमि हैं। विदेहमें सदा चौथा काल रहता है व मोक्षमार्ग सदा चलता है। भरत ऐरावतमें जब चौथा काल होता है तब मोक्षमार्ग चलता है पांचवेंका जन्मा मोक्ष नहीं जाता। (सर्वा. अ.३–३७)

कर्मभूमिज–जो मानव या तिर्यंच कर्मभूमिमें पैदा हों।

कर्मभूमिज म्लेच्छ–५ भरत, ५ ऐरावत तथा १६० विदेहोंमें, १७० आर्यखंड, ८५० म्लेच्छखंड हैं। इनमें पैदा होनेवाले म्लेच्छ इसी लिये कहलाते हैं कि वे असि, मसि आदि कर्म तो करते हैं परंतु धर्म साधन नहीं कर सके तथा आर्यखंडमें भी शक, यवन, शवर, पुलिन्द आदि म्लेच्छ हैं।
(सर्वा० अ० ३–३६)

कर्मयोग–कर्मोंके उदयसे ही आत्माके प्रदेशोंका कम्पन होना।

कर्मण–कर्मकी वर्गणाएँ।

कर्म वर्गणा–अनंत परमाणुओंका स्कंध जो लोकमें व्याप्त हैं। जीवकी योग शक्ति जब कर्मोंके उदयसे काम करती है तब यह स्वयं खिंच आते हैं व जीवके भावोंके अनुसार कर्मरूप होकर बन्ध जाते हैं। पुद्गल द्रव्यकी २३ प्रकारकी वर्गणाएँ होती हैं जिनमें परमाणु संख्या अधिक २ होती है। यह १२ वीं है (गो. जी. गा. ५९४)।

कर्मस्थिति–कर्म जब बन्धते हैं तब उनमें कषायोंके अनुसार समयकी मर्यादा पड़ती है। आयु सिवाय सात कर्मोंकी स्थिति अधिक कषाय होनेपर अधिक व कम होनेपर कम पड़ेगी। आयुमें तीव्र कषाय होनेसे नर्ककी अधिक व अन्य तीनकी कम व मन्द कषाय होनेसे नर्ककी कम व देव, मानव व तिर्यंच आयुकी अधिक पड़ेगी।

कर्मोपाधि निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिकनय—जो कर्मबन्ध सहित संसारी जीवको शुद्ध ग्रहण करे। जैसे संसारी जीव द्रव्य दृष्टिसे शुद्ध हैं (सि.द. पृ. ७)

कर्मोपाधि सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय—जो जीवमें अशुद्ध भावोंको माने जैसे जीवको क्रोधी मानी आदि कहना। (सि० द० पृ० ७)

कला—२० काष्ठा १ काष्ठा १५ निमिष (चक्षुटिपकार)

कला प व्याकरण—जैनाचार्यकृत व्याकरण जिसका बंगालमें अधिक प्रचार है।

कलेवर—ज्योतिषके ८८ ग्रहोंमें १८ वां ग्रह (त्रि. गा. ३६५)।

कल्की—श्री महावीर भगवानके निर्वाणके १००० वर्ष पीछे पहला कल्की राजा होता है। इस तरह इस दुःखमा कालमें हजार हजार वर्षके पीछे एक एक कल्की होते हैं, बीचमें उप कल्की भी होते रहते हैं। वे जैनधर्मके विरोधी होते हैं। पहला कल्की चतुर्मुख हुआ है। अन्तका जलमंथन होगा (त्रि. गा. ८५१–८५७–८५८)।

कल्प—स्वर्ग। १६ स्वर्ग हैं वहीं इन्द्र, सामानिक, आदि बड़े छोटे भेद हैं फिर सब ग्रैवेयिकादिमें अहमिंद्र होते हैं। इससे कल्पातीत कहलाते हैं। वे कल्प हैं—१ सौधर्म, २—ईशान, ३—सनत्कुमार, ४ माहेन्द्र, इन हरएकमें एक एक इन्द्र है। ५ ब्रह्म, ६ ब्रह्मोत्तर इन दोमें एक इन्द्र है। ७ लांतव ८ कापिष्ट इनमें भी एक इन्द्र है। ९ शुक्र, १० महाशुक्र इनमें भी एक इन्द्र है, ११ शतार, १२ सहस्रार इनमें भी एक इन्द्र है, १३ आनत, १४ प्राणत, १५ आरण, १६ अच्युत, इनमें हरएकमें एक इन्द्र है कुल इन्द्र १२ हैं। (त्रि० ४४८–४५४)

कल्पकाल—बीस कोड़ाकोड़ी सागरका अवसर्पिणी व उत्सर्पिणी प्रत्येक दस को० को० सागरका, हरएकमें छः काल होते हैं, अवसर्पिणीमें पहला ४, दूसरा ३, तीसरा २, चौथा ४२००० वर्ष कम १ कोड़ाकोड़ी सागरका, पांचवा २१०००वर्ष, छठा २१००० वर्ष। उत्सर्पिणीमें इससे उल्टा है। (सर्वा० अ० ३–२७)

कल्पद्रुम (वृक्ष) पूजा—याचकोंकी इच्छानुसार दान करते हुए चक्रवर्ती राजाओं द्वारा जो अरहंतदेवकी पूजा। (सा० अ० २–२०)

कल्पवासी—१६ स्वर्गोंमें रहनेवाले देव।

कल्पवृक्ष—ये पृथ्वीकायिक भोग भूमिमें होते हैं। उनकी दश जातियां हैं। इनसे भोगभूमिवासी इच्छानुसार पदार्थ प्राप्त करते हैं। वे १० हैं—

१ मद्यांग—अनेक प्रकार पौष्टिक रसोंको देनेवाले।

२ वादित्रांग—अनेक प्रकारके बाजोंको देनेवाले।

३ भूषणांग—अनेक प्रकार आभूषणोंको देनेवाले।

४ मालांग—पुष्पोंकी अनेक तरहकी मालाएँ देनेवाले।

५ दीपांग—मणिमय दीपोंसे शोभित होते हैं।

६ ज्योतिरंग—अपनी कांतिसे सदा प्रकाशरूप रहनेवाले।

७ गृहांग—अनेक प्रकारके मकान स्थापन करनेवाले।

८ भोजनांग—अमृत समान स्वादिष्ट भोजन देनेवाले।

९ भाजनांग—अनेक प्रकारके बर्तन देनेवाले।

१० वस्त्रांग—अनेक प्रकारके वस्त्र देनेवाले।

ये कल्पवृक्ष न तो वनस्पति हैं न देवोंने स्थापन किये हैं। किन्तु केवल पृथ्वीका सार अर्थात् भूगर्भके रस विशेष सार पदार्थ ही कल्पवृक्षरूप व भोजन वस्त्र वादित्र आदि पदार्थरूप परिणत होजाते हैं। यह उनका भिन्न भिन्न स्वभाव है। (ज्ञा. पं. ९–३२–४९)।

कल्प व्यवहार—अंग बाह्य जिनवाणीमें १४ प्रकीर्णक हैं उनमें नौवां प्रकीर्णक। कल्प नाम योग्य आचरण, जिसमें मुनीश्वरोंके योग्य आचरणका विधान हो (गो. जी. गा. ३६७–३६८)।

कल्पातीत—१६ स्वर्गोंसे ऊपर नौ ग्रैवेयिक नौ अनुदिश पांच अनुत्तरवासी अहमिंद्र जहां होते वहांकी कल्पना नहीं है। (त्रि० सा० ४५५)

कल्पांतकाल—अवसर्पिणीके अंतका काल जब भरत व ऐरावतमें ४८ दिन घोर पवनादि चलती है आर्यखण्डकी रचना बिगड जाती है फिर ४९ दिन अच्छी वृष्टि होकर रचना जमने लगती है।

कल्पोपपन्न—१६ स्वर्गवासी देव।

कल्प्याकल्प्य—अंग बाह्य वाणीके १४ प्रकीर्णकोंमेंसे दसवां जिसमें द्रव्य क्षेत्र काल भावोंके अनुसार साधुके योग्य व अयोग्य आचरणका वर्णन है। गो० जी० ३६७–३६८)

कल्याणालोयणा—श्री अजित ब्र० कृत प्राकृतमें ५४ गाथाओंमें आलोचना पाठ। (माणिक० ग्रन्थ० न० २१)

कल्याणकिर्ति—मूलाचारकी सं० टीकाके कर्ता आचार्य। (दि० ग्र० नं० ४९)

कल्याणमंदिर—कुमुदचंद्रस्वामी कृत सं० में पार्श्वस्तुति। भाषा छंद व टीका मुद्रित है।

कल्याणवाद पूर्व—१२ वें दृष्टिवाद अंगमें १४ पूर्वोमेंसे ११ वां पूर्व, जिसमें तीर्थंकरोंके व चक्रवर्ती आदिके गर्भ जन्म आदिके उत्सवोंका व उनके कारण १६ कारण भावना तप आदिका व ज्योतिष गमन व शकुनफल आदिका वर्णन है। इसके मध्यम पद छव्वीस कोड़ है (गो.जी. ३६९–६६)

कवलचन्द्रायण व्रत—यह व्रत एक मासमें पूर्ण होता है। अमावसको उपवास करे फिर पड़िवाको एक ग्रास खाय, दोयजको दो, तीजको तीन इस तरह पूर्णिमा तक एक एक बढ़ता १५ ग्रास ले। फिर कृष्ण पक्षकी पड़िवाको १४ ग्रास ले, दोजको १३ इस तरह घटाता हुआ, चौदसको एक ग्रास ले। मावसके दिन पारणा करे व्रत पूर्ण हो। ग्रास इतना ले जो मुखमें आसके व हाथसे न गिरे। बीचमें पानी भी नहीं ले। पानीका ग्रास भी गिनतीमें आयगा। मासभर धर्म सेवे, जिन पूजा करे शील पाले (कि. क्रिया. ए. १२३)

कवलाहार—मुखमें कवल या ग्रास देकर ही भोजन करना।

कवि परमेष्ठी—(कवि परमेश्वर) कनड़ीके प्रसिद्ध कवि। आदिपपने बड़ी प्रशंसा की है। आदिपुराणमें जिनसेनजीने गुण गाए हैं। वागर्थ संग्रह पुराणके कर्ता। इनको कवि परमेश्वर कहते हैं। इनके बनाए गद्य किसी ग्रन्थके आधारपर जिनसेनजीने आदिपुराण रचा है। (क० नं० ९)

कषाय—जिनके कारण संसारी जीवोंके ज्ञानावरणादि कर्मरूपी क्षेत्र कृषति संवारा जाय व फल देने योग्य किया जाय। क्योंकि कषाय ही सर्व कर्मोंको बांधनेवाले हैं व फल दिलानेवाले हैं अथवा कषंति, हिंसंति, घ्नंति इति कषायाः। जो आत्माके शुद्ध वीतराग भावकी हिंसा करें उनको मैला करदें वे मूलमें चार हैं-क्रोध, मान, माया, लोभ। उनमें हरएकके चार२ भेद हैं।

अनन्तानुबंधी—जो सम्यग्दर्शन व स्वरूपाचरण चारित्रको घातें। अप्रत्याख्यानावरण—जो अ अर्थात ईषत कुछ प्रत्याख्यान अर्थात त्याग श्रावकके देश व्रतको न होने दें। प्रत्याख्यानावरण—जो पूर्ण त्याग मुनिव्रतको न होने दें। संज्वलन—जो पूर्ण या यथाख्यात चारित्रको न होनेदें। (गो. जी. गा. २८२–२८३)

कषाय कुशील—वे मुनि जिनके संज्वलन कषायका उदय होता है। यह १० वें गुणस्थानतकके धारी होते हैं (श्रा० ए० २६०)

कषाय दोष—साधु द्वारा यदि कोई वसतिका (ठहरनेका स्थान) क्रोधादि कषाय द्वारा प्राप्त किया जाय उसमें कषाय दोष है। (त्रि० ए० ९९)

कषाय मार्गणा—जहां जीवोंको ढूंढा जावे उसे मार्गणा कहते हैं। सर्व संसारी जीवोंके क्रोध-मान माया लाभ पाए जाते हैं जो सम्यग्दृष्टि होकर उन्नति करते उनके १० वें गुणस्थानमें मात्र लोभ रह जाता है फिर आगे कषायका उदय नहीं रहता है। क्षिण मोह आदि सिद्ध भगवान तक पूर्ण कषायके सम्बन्ध रहित वीतरागी होते हैं।

कषाय भेद—कषायके १६ भेद हैं देखो—

"कषाय नौ नोकषाय–हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुंवेद, नपुंसक वेद मिलाकर कुल २९ भेद होते हैं।

कषायला रसनाम कर्म–जिस कर्मके उदयसे शरीरमें कषायला रस हो। (सर्वा० अ० ८–११)

कषाय विवेक–कषायके त्यागमें सावधानी। उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव व शौच धर्मसे कषायको जीतना। जैसे क्रोधावेशमें कठोर वचन बोलना। आप पूज्यपना रखकर जगतकी निन्दा करनी, कहना कुछ करना, कुछ अति लंपटतासे अयोग्य विषय सेवना, इनका विवेक जैन साधुके होता है। (भ० प्र० ७१)

कषाय वेदनीय–१६ प्रकार कषाय कर्म, देखो "कषाय"।

कषाय समुद्घात–क्रोधादि कषायके आवेशमें मूल शरीरमें रहते हुए आत्माके प्रदेशोंका फैलकर बाहर निकलना फिर भीतर समा जाना। वेदना या कषाय समुद्घातमें आत्माके प्रदेश मूल शरीरसे बाहर जावें तो एक या दो या तीन प्रदेशसे लेकर उत्कृष्ट मूल शरीरसे चौड़ाईमें तिगुना क्षेत्र व ऊँचाईमें मूल शरीर मात्र रोके सो इसका घनफल मूल शरीरसे नौगुणा क्षेत्र भया। इससे अधिक बाहर न जावें। (गो० जी० गा० ५४१)

कषाय स्थान–कषायोंके स्थान शक्ति या फल देनेकी सामर्थ्यकी अपेक्षा चार हैं। तीव्रतर, तीव्र, मंद, मंदतर, अनुभागरूप या उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, अजघन्य, जघन्य, अनुभागरूप। चारों कषायोंके चार स्थानोंके दृष्टांत नीचे प्रकार हैं—

कषाय	तीव्रतर	तीव्र	मंद	मंदतर
क्रोध	पाषाण भेद सम घने कालतक रहे	पृथ्वी भेद सम कठिनतासे मिटे	धूल रेखा सम देरमें मिटे	जलरेखा सम तुर्त मिट जाय
मान	पाषाण सम अति कठोर	हड्डी सम कठोर	काठ सम	बेतके समान नम्र
माया	बांसकी जड़ समान वक्र	मेढ़ेके सींग सम वक्र	गोमूत्र सम वक्र	गायके खुरका चिन्ह सम वक्र
लोभ	किरमिचके रंग सम गाढ़ा	पहियेके चाकके मैल सम	शरीरका मैल सम	हलदीके रंग सम जल्दी मिटे

छः लेश्याओंकी अपेक्षा चौदह भेद हैं। उनका वर्णन नीचेके नकशेसे प्रगट होगा।

लेश्या अपेक्षा कषायके १४ स्थान।

नं०	कषाय स्थान	लेश्या
१	उत्कृष्ट शिला सम	कृष्ण लेश्या
२	अनुत्कृष्ट भूमि सम	कृष्ण
३	,,	कृष्ण, नील
४	,,	कृष्ण, नील, कापोत
५	,,	कृष्ण, नील, कापोत, पीत
६	,,	कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म
७	,,	कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म, शुक्ल
८	अजघन्य धूलि रेखा सम	कृष्णादि ६
९	,,	नील आदि ५
१०	,,	कापोत आदि ४
११	,,	पीत, पद्म, शुक्ल
१२	,,	पद्म, शुक्ल
१३	,,	शुक्ल
१४	जघन्य जल रेखा सम	शुक्ल

आयु बंध स्थान २० का नकशा।

शक्ति स्थान	लेश्या स्थान १४	आयु बंधा बंध स्थान
शल भेद समान	१ कृष्ण	० अबंध
		१ नरकायु
पृथ्वी भेद समान	१ कृष्ण	१ नरकायु
	२ कृष्ण नील	१ नरकायु
	३ कृष्ण नील कापोत	२ नरक व तिर्यंच आयु
	४ कृष्णादि ४	३ नरक तिर्यंच मनुष्य आयु
	५ कृष्णादि ५	४ सर्व आयु
	६ कृष्णादि ६	४ सर्व आयु
धूलि रेखा समान	कृष्णादि ६	४ सर्व
		३ म. दे. ति.
		२ म. दे.
	कृष्ण बिना ५	१ देवायु
	कृष्ण नील बिना ४	१ देवायु
	पीतादि ३	१ देवायु
		०
	पद्म शुक्ल	० ०
	शुक्ल	० ०
जल रेखा समान	शुक्ल	० अबंध

(गो० जी० गा० २९०–२९६)

कषायाध्यवसाय स्थान–कषायके अंश जो कर्मोंकी स्थिति पड़नेमें कारण हैं।

कंचनबाई––दानवीर सरसेठ हुकमचंद इन्दौरकी धर्मपत्नी, जिनके नामसे इन्दौरमें श्राविकाश्रम है।

कंस–ज्योतिषके ८८ ग्रहोंमें १६ वां ग्रह (त्रि० गा० ३६४)

कंस वर्ण–ज्योतिषके ८८ ग्रहोंमें १९ वां ग्रह (त्रि० गा० ३६४)

का

काकिणी रत्न–चक्रवर्तीके १४ रत्नोंमें ७ वां अचेतन जो सूर्यसम ज्योति करता है। (त्रि० गा० ६८२)

कांक्षा–वांछा, इंद्रिय भोगोंकी इच्छा। यह सम्यक्तका दूसरा अतीचार है (सर्वा० अ० ७-२३); पहले घम्मा नरकका पूर्व श्रेणीका बिला। (त्रि० गा० १९९)

काष्ठा–१९ निमिष (पलक मारना)।

काञ्चन-पहले स्वर्गका नौमा इन्द्रक विमान (त्रि० गा० ४६४)। सौमनस गजदंतपर सातवां कूट (त्रि० गा० ७३९) इसपर सुमित्रा नाम व्यंतरदेवी बसती है (त्रि० गा० ७४२; रुचकगिरके पूर्व दिशाका दूसरा कूट (त्रि० गा० ९४८)

कांचनगिरि–जम्बूद्वीपमें २०० हैं। यमकगिरि जहां नदीका तट है वहांसे ९०० योजन आगे मेरुकी तरफ सीता सीतोदामें एक एक द्रह है उस द्रहसे ५०० योजन आगे और एक द्रह है, ऐसे पांच पांच द्रह देवकुरु उत्तरकुरुमें व सीता सीतोदा नदीमें पांच पांच द्रह। कुल २० द्रह हैं। हरएक द्रहके दोनों तरफ पांच पांच कांचन पर्वत सौ योजन ऊँचे हैं इस तरह कुल २०० कांचन गिर हैं (त्रि० गा० ६५६ ६५९ ७२१)

कां जकाहार-छाछ का भोजन (प्र. अ. ८)

कांजी–छाछमें जौ चावल के आटेको मिलाकर खाना। (सा० अ० ३–११)

कांडक—बहुत समयोंमें जो कर्म द्रव्य पल्टे। (गो० क० गा० ४१२)

कांडक घात—नाश करने योग्य कर्मके द्रव्यको जिनकी स्थिति घटाई हो तो अन्तके आवली मात्र निषेकोंको छोड़कर अन्य सर्व शेष स्थितिके निषेकोंमें मिला देना। इसको कांडोत्करण भी कहते हैं। (ल० पृ० २०)

कांडक द्रव्य—जितने कर्मके निषेकोंको स्थिति घटाकर अन्यमें मिलाया जाता है (ला.पृ. १९-२१) अर्थात् स्थिति कांडकके निषेकोंके परमाणु।

कांडक विधान—जितने कर्मोंकी स्थिति घटाई हो उनको शेष स्थितिके निषेकोंमें मिलानेकी क्रिया। (ल० पृ० २०)

कांडोत्करण—देखो "कांडक घात"।

कांडोत्करण काल—एक कांडकके घातका काल (ल० पृ० २८)

कातंत्र—जैनाचार्यकृत व्याकरण, मुद्रित है।

कांदर्पदेव दुर्गति—जो साधु मिथ्या वचन बोलता हुआ रागभावकी तीव्रतासे हास्यादि कंदर्प भाव करता है वह कंदर्प देवोंमें पैदा होता है (मू.गा.६४)

कापिष्ठ—आठवां स्वर्ग (त्रि० गा० ४५२)

कापोत लेश्या—तीन अशुभ परिणामोंमें जघन्य अशुभ भाव। जो शोक, भय, ईर्षा, परनिंदा करे, अपनी प्रशंसा करे, दूसरेसे अपना गुण सुन हर्षित हो, अहंकाररूप हो, दूसरेके यशको नाश करने वाला हो। जैसे-एक मनुष्य आमको खाना चाहता हुआ जड़से कृष्ण लेश्याके समान, धड़से नील लेश्याके समान, न काटकर बड़ी २ शाखाओंको काटे (सा. स. ३) यह भाव लेश्या है। कबूतरके रंगके समान भूरे रंगकी द्रव्य लेश्या होती है।

काम—जो चित्तको अच्छा लगे, सो प्रेम और सम्भोग करनेमें अच्छा मान पड़े ऐसी सुन्दर इच्छा या न्यायपूर्वक पांच [illegible] इच्छा। (सा.अ.२-५९) यह गृहस्थका तीसरा पुरुषार्थ है।

कामताप्रसाद—इटैके माटिके हि० जैन मुदक जो 'वीर'के सम्पादक हैं व भगवान महावीर आदि अनेक पुस्तकोंके रचयिता हैं। अलीगंज जि० एटा निवासी हैं व इतिहास खोजी हैं।

काम तीव्राभिनिवेश—ब्रह्मचर्य अणुव्रतका ५ वां अतीचार। काम सेवनका तीव्र भाव रखना। (सर्वा० अ० ७-२८)

कामदेव—यह बड़े सुन्दर होते हैं। गत अव-सर्पिणीके चौथे कालमें भारतमें २४ कामदेव महा-पुरुष हुए इनमेंसे कुछ तो उस ही भवमें मोक्ष गए, कुछ आगामी अवश्य मोक्ष जांयगे। (१) बाहुबलि, (२) अमिततेज, (३) श्रीधर, (४) दशभद्र, (५) प्रसेनजित, (६) चंद्रवर्ण, (७) अग्नि मुक्ति, (८) सनत्कुमार चक्री, (९) वत्सराज, (१०) कनकप्रभ, (११) मेघवर्ण, (१२) शांतिनाथ तीर्थंकर, (१३) कुन्थुनाथ तीर्थंकर, (१४) अरनाथ तीर्थंकर, (१५) विजयराज, (१६) श्रीचंद्र, (१७) राजा नल, (१८) हनुमान (१९) बलराजा, (२०) वसुदेव, (२१) प्रद्युम्नकुमार, (२२) नागकुमार, (२३) श्रीपाल, (२४) जंबूस्वामी केवली। (जैन बालगुटका पृ० ९)

कामधर—लौकांतिक देवोंका एक भेद, जिनके विमान अरुण और गर्दतोय जातिके देवोंके मध्यमें हैं (त्रि० गा० ५३८)

काम पुष्प—विजयार्धकी दक्षिण श्रेणीमें २६ वां नगर।

कामवेग—कामभाव चित्तमें होनेसे १० वेग होसक्ते हैं (१) सोच करे-चिन्तवे, (२) देखनेकी अति इच्छा हो, (३) दीर्घ निश्वास पड़के, (४) शरीरमें ज्वर हो, (५) अंग जलने लगे, (६) भोजन न रुचे, (७) मूर्छा आजाय, (८) उन्मत्त होजाय, (९) प्राण संदेह हो, (१०) मरण होजावे। (भ० पृ० ३११)

कामसार कल्पा—[illegible]

[illegible] इसमें १६ [illegible] हैं। इनमेंसे [illegible] २६

हजार योजन मोटी है। इसमें भवनवासी व व्यंतर देव रहते हैं। (त्रि० गा० १४७)

काम कामिनी } स्वर्गोंमें महत्तरी देवी। (त्रि० गा० ५०६)

काय-बहु प्रदेशी जिसमें एक प्रदेशसे अधिक क्षेत्र हो ऐसे जीव, पुद्गल, धर्म अधर्म आकाश ये पांच द्रव्य; शरीर छः प्रकारके होते हैं। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति व त्रस। जो त्रस स्थावर नामकर्मके उदयसे जीवोंके होते हैं, जहां पुद्गल स्कंध संचयरूप हों " चीयतेति " ऐसे पांच शरीर हैं। औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस, कार्मण। (गो० जी० गा० १८१-व ६२०)

कायक्लेश तप-छठा बाहरी तप-शरीरको वश रखनेके लिये धूपमें, वृक्ष मूलमें, नदी तटमें, नाना आसनोंसे योगाभ्यास करना, शरीर क्लेशको क्लेश न समझना। (सर्वा० अ० ९-१९)

कायगुप्ति-शरीरके हलन चलनको वश रखना, उसे विषयोंकी प्रवृत्तिमें न लेजाना, शरीर निश्चल रखना। (सर्वा० अ० ९-४)

कायत्व-बहुप्रदेशीपना।

काय दुःप्रणिधान-सामायिक शिक्षा व्रतका तीसरा अतीचार, सामायिक करते हुए शरीरका दुष्टरूप प्रवर्तना, आलस्य या निद्रारूप होजाना, आसनको चलाचल करना, ध्यानमें न लगाना। (सर्वा० अ० ७-३३)

काय निसर्गाधिकरण-कर्मोंके आस्रवका आधार ११ वां अजीवाधिकरण शरीरका व्यवहार करना (सर्वा० अ० ६-९)

काय योग-शरीरकी क्रियाके निमित्तसे आत्माके प्रदेशोंमें चचलता होकर कर्म व नोकर्म ग्रहणकी शक्तिका काम करना। ये ७ प्रकार हैं औदारिक काययोग, औदारिक मिश्र काययोग, वैक्रियिक काययोग, वैक्रियिक मिश्र काययोग, आहारक काय योग, आहारक मिश्र काययोग, कार्माण काययोग। (गो० जी० गा० २३०)

कायिकी क्रिया-२५ क्रियामेंसे छठी क्रिया जो आस्रवकी कारण है। दुष्ट भावसे हानिका उद्यम करना। (सर्वा० अ० ६-५)

कायोत्सर्ग-मुनियोंका छठा आवश्यक। शरीर आदिसे ममता त्यागकर आत्माके सन्मुख होना। उत्कृष्ट कायोत्सर्ग एक वर्षका, जघन्य अंतर्मुहूर्त, नौ णमोकार मंत्रको २७ श्वासोछ्वासमें पढ़ना इतनी देरका एक कायोत्सर्ग प्रसिद्ध है। ग्रंथादि आरम्भ, पूर्ण स्वाध्याय वेदनामें मुनि २७ उछ्वासका कायोत्सर्ग करते हैं। चलके आकर व दीर्घ शंका व लघुशंकामें २५ उछ्वासका कायोत्सर्ग हैं, खड़ा आसन जिसमें दोनों बाहु लम्बी हो पग चार अंगुलके अंतरसे सम हों, सब अंग सीधा निश्चल हो ऐसा आसन (मू० ६४८)

कायोत्सर्ग दोष-कायोत्सर्ग करनेवालेको ३२ दोष बचाने चाहिये। जैसे भौंहोंको टेढा करना, लम्बा मुख करना मस्तक हिलाना, भीतरसे लग जाना आदि। (मू० गा० ६६८-६६९)

कायोत्सर्ग तप-व्युत्सर्गतप, अंतरंग पांचवां तप। शरीरादिसे ममता छोड़कर आत्मामें एकतान होना।

कारंजा-जिला अकोलामें जैनियोंका मुख्य स्थान है। जहां काष्ठासंघ, बलात्कार गण व सेन गणकी-तीन भट्टारकोंकी गद्दी हैं। प्राचीन शास्त्र भंडार व मूर्तियें हैं। महावीर ब्रह्मचर्याश्रम है। वीरसेन भट्टारक वृद्ध अध्यात्म विद्याके विशारद वास करते हैं।

कारण-कार्यकी उत्पादक सामग्रीका होना। इसके दो भेद हैं। समर्थ कारण-पूर्ण कारणोंका होना जिसके पीछे कार्य नियमसे होजाता है। असमर्थ कारण-एक कार्यको भिन्न२ या अपूर्ण कारण-वह कार्यको उत्पन्न नहीं कर सक्ता। हरएक कार्यके लिये उपादान और निमित्त कारणकी जरूरत है। जो पदार्थ स्वयं कार्यरूप होजावे वह उपादान कारण है। उसके सहायकोंको निमित्त कारण कहते हैं। जैसे मिट्टीसे घड़ा बना इसमें मिट्टी

उपादान कारण है । चाक आदि निमित्त कारण हैं। (जै० सि० प्र० नं० ४०२-४०८)

कारण विपर्यय-कार्यके कारणको और और समझना ।

कारुण्य भावना-दुःखी प्राणियोंका दुःख दूर हो ऐसा वारवार विचारना। (सर्वा० अ० ७-११)

कार्तिकेय स्वामी-स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा प्राकृतके कर्ता । (दि० ग्र० नं० ४६)

कार्मणकाय-ज्ञानावरणादि आठ कर्मोंका शरीर जो सर्व संसारी जीवोंके हरसमय साथ रहता है ।

कार्मणकाययोग-कार्मण शरीर नाम कर्मके उदयसे जो कार्मण शरीर हो, इसके निमित्तसे आत्माके कर्म ग्रहण शक्तिको धरे, प्रदेशोंका चंचलपना (गो० जी० गा० २४१) यह योग विग्रह गतिमें होता है तथा केवली समुद्घातमें प्रतरद्वय व लोक पूर्णमें होता है ।

कार्मण वर्गणा-देखो " कर्म वर्गणा " ।

कार्मण बन्धन नाम कर्म-जिसके उदयसे कर्म वर्गणा जो कार्मण शरीरके लिये आई हो वह परस्पर मिलें । (सर्वा० अ० ८-११)

कार्मण शरीर नामकर्म-जिसके उदयसे कार्मण शरीर योग्य वर्गणा खिंचे व शरीर बने । (सर्वा० अ० ८-११)

कार्मण संघात-जिसके उदयसे कार्मण वर्गणा परस्पर छेद रहित शरीर बनाते हुए मिल जावें । (सर्वा० अ० ८-११)

कार्य-कारणका फल ।

कार्य पात्र-धर्म, अर्थ, काम इन तीन पुरुषार्थोंमें सहायता देनेवाले । (सा० अ० २-५०)

काव्यमाला-सं० प्रथम गुच्छक, निर्णयसागर बम्बईका मुद्रित जिसमें जैन ग्रंथ कई हैं ।

काल-समय; काल द्रव्य जो सर्व जीवादि द्रव्योंकी पर्याय पलटनेमें निमित्त है व लोकाकाशमें एक एक प्रदेशपर भिन्न १ कालाणु रूपसे फैला है । असंख्यात द्रव्य है, ज्योतिषके ८८ ग्रहोंमें ३८ वां ग्रह (त्रि० गा० ३६६) व ४२ वां ग्रह (त्रि० गा० ३६७); चक्रवर्तीकी नौनिधियोंमें एक निधि जो छः ऋतु योग्य वस्तु देती है । (त्रि० गा० ६८८); पांचवे नारद भरतके गत चौथे कालमें हुए । (त्रि० गा० ८३४) कालोदधिका स्वामी व्यंतरदेव । (त्रि० गा० ९६२); उत्सर्पिणी व अवसर्पिणीके छः छः काल । हरएक दस कोड़ाकोड़ी सागर । देखो शब्द " अवसर्पिणी काल " ।

काल केतु-ज्योतिषके ८८ ग्रहोंमें ३९ वां ग्रह । (त्रि० गा० ३६६)

काल परिवर्तन-५च परिवर्तनोंमें तीसरा । कोई जीव उत्सर्पिणीके पहले समयमें पैदा हो वह आयु पूरी करके मरेगा, वही जीव दूसरी किसी उत्सर्पिणीके दूसरे समयमें पैदा हो फिर मरे फिर किसी उ०के तीसरे समयमें पैदा हो, इस तरह उत्स० के १० कोड़ाकोड़ी सागरके समयोंका क्रमसे जन्म लेकर पूर्ण करे तैसे ही अवसर्पिणीके १० कोड़ाकोड़ी समयोंको क्रमसे जन्म लेकर पूरा करे फिर इसी तरह क्रमसे मरण करके भी दोनों कालोंके समयोंको पूरा करे, जितना अनन्तकाल लगे वह एक काल परिवर्तन है । (सर्वा० अ० २-१०)

काललब्धि-किसी कार्यके होनेके समयकी प्राप्ति । सम्यग्दर्शनके लिये अर्द्ध पुद्गल परिवर्तन काल मोक्ष जानेमें शेष रहना काललब्धि है । इससे अधिक काल जिसके लिये संसार होगा उसके सम्यक्त न होगा । (सर्वा० अ० २-३)

काल लोकोत्तरमान-जघन्य एक समय उत्कृष्ट सर्व काल । (त्रि० गा० ११)

कालवाद-एकांत अपयार्थमत जो ऐसा मानता है कि काल ही सर्वको उपजाता है, काल ही सर्वका नाश करता है । सोतेको काल ही जगाता है, कालके ठगनेको कोई समर्थ नहीं । ऐसे वचनोंसे कालहीसे सबका होना मानना (गो० क० गा० ८७९)

कालवादी-कालवादके माननेवाले ।

कालविकाल-ज्योतिषके ८८ ग्रहोंमें पहला ग्रह। (त्रि० गा० ३६३)

कालाचार-सम्यग्ज्ञानके आठ अँगोंमें चौथा। योग्य कालमें शास्त्र पढ़ना, गोसर्गकाल (दोपहरके दो घडी पहले व प्रातःकालके दो घडी पीछे) प्रदोष काल (दोपहरके दो घडी पीछे व संध्याके २ घडी पहले व संध्याके दो घडी पीछे व अर्ध रात्रिके २ घडी पहले), विरात्रिकाल (आधी रातके २ घडी पीछे और प्रातःकालके दो घडी पहले), इनके सिवाय दिग्दाह, उल्कापात, इन्द्रधनुष, सूर्य चन्द्र ग्रहण, तूफान, भूकम्पादि उत्पातोंके समय सिद्धांत ग्रन्थोंका पठन पाठन वर्जित है। स्तोत्र आराधना, धर्मकथादि ग्रन्थोंका पठन पाठन वर्जित नहीं है। (श्रा० पृ० ७१)

कालाणु-निश्चय काल द्रव्य जो रत्नराशिवत भिन्न २ एक एक आकाशके प्रदेशपर है।

कालातिक्रम-मुनि आदि पात्रोंको दान देते हुए कालका उल्लंघन कर देना, देर लगा देना। यह अतिथि संविभाग चौथे शिक्षाव्रतका पांचवां अतीचार है। (सर्वा० ७-३६)

कालिन्दी-पांचवें दक्षिणेन्द्रकी पट्ट देवी। (त्रि० गा० ५१०)

कालुष्य-मलीन विचार।

कालोदधि-धातुकी खंडके चारों तरफ वेढ़ा हुआ महा समुद्र, जो आठ लाख योजन चौड़ा है। इसके स्वामी काल, महाकाल, व्यंतरदेव हैं। (त्रि० गा० ९६२)

काशीदास-सम्यक्त कौमुदी छन्दोबद्धके कर्ता (दि० ग्र० नं० ११-४१)

काष्ठासंघ-वि० सं० ७५३ से नंदीतट ग्राममें श्री कुमारसेन मुनिने मूल संघसे अलग होकर स्थापित किया। यह कुमारसेन जिनसेनाचार्य (आदिपुराणके कर्ता) के शिष्य विनयसेन आचार्यके शिष्य थे। (दर्शनसार गा० ३०-३९), कोई कहते हैं कि लोहाचार्यने वि० सं० ४ में स्थापित किया।

कि

किष्कु-एक हाथ।

किन्नर-व्यंतर देवोंका पहला भेद, उनमें भी किन्नर नामका भेद है। (त्रि.गा. २२८-२५७)

किन्नरकिन्नर-किन्नर व्यंतरोंका पांचवा भेद। (त्रि० गा० २५७)

किन्नर कांत-किन्नर इन्द्रका दक्षिणमें नगर। (त्रि० गा० २८४)

किन्नरगीत-विजयार्द्धकी उत्तरश्रेणीमें दूसरा नगर (त्रि० गा० ६९८)

किन्नरपुर-किन्नर इन्द्रका मध्यमें नगर (त्रि० गाथा २८४)

किन्नरप्रभ-किन्नर इन्द्रका पूर्वमें नगर (त्रि० गा० २८४)

किन्नर मध्य-किन्नर इन्द्रका उत्तरमें नगर। (त्रि० गा० २८४)

किन्नरावर्त-किन्नर इन्द्रका पश्चिममें नगर। (त्रि० गा० २८४)

किन्नरोत्तम-किन्नर व्यंतरोंका आठवां भेद। (त्रि० गा० २५७)

किनामित-विजयार्द्धकी उत्तर श्रेणीमें पहला नगर। (त्रि० गा० ६९६)

किंपुरुष-किन्नर व्यन्तरोंका पहला भेद (त्रि० गाथा २५७) दूसरा मूल भेद व्यंतरोंका, उनके भी १० भेद हैं।

किलकिल-विजयार्द्धकी उत्तर श्रेणीमें छठा नगर। (त्रि० गा० ७०१)

किल्विषिकदेव-देवोंमें १० पदवियां होती हैं उनमें सबसे छोटे पदधारी देव जो गवैयोंके समान हों (त्रि० गा० २२४) जो मनुष्य गाजाबजाना करके आजिविका करते हों वे अपने योग्य शुभ भावोंसे किल्विष जातिके देव सातवें स्वर्गतक होते हैं। (त्रि० गा० ५४१)

की

की आफ नोलेज–बा॰ ष्टर चम्पतराय कृत इंग्रेजीमें जैन धर्मके महत्वको दर्शानेवाला ग्रन्थ, मुद्रित है।

कीर्ति–नीलकुलाचलके केसरि द्रहके कमलवत द्वीपमें रहनेवाली देवी (सर्वा॰ अ॰ ३–१९) यह ईशान इन्द्रकी आज्ञामें रहनेवाली देवी है। (त्रि॰ गा॰ ५७७)

कीर्तिवर्मा–कर्णाटक जैन कवि (सन् ११२९) चालुक्यवंशी राजा त्रैलोक्यमलका पुत्र, गो वैद्य वैद्यक ग्रंथका कर्ता। (क॰ न॰ ३०)

कीलक (कीलित) संहनन–नाम कर्म। वह कर्म जिसके उदयसे ऐसी हड्डी हों जो परस्पर कीलित हों। (सर्वा॰ अ॰ ८–११)

कु

कुगुरु–जो परिग्रहधारी, आरम्भ करने वाले, मिथ्या तत्वके श्रद्धानी साधु हों, जिनमें पांच अहिंसादि महाव्रत न हों। सुगुरु वे हैं जो इंद्रिय विषयोंकी आशासे रहित, आरंभ परिग्रह रहित, व आत्मज्ञान व ध्यानमें लीन हों। (र० श्लोक १०)

कुंड–द्रह, जैसे जंबूद्वीपके छ कुलाचल पर्वतों पर पद्म आदि छः कुण्ड हैं। (देखो पृ॰ जि॰ पृ॰ १९७ शब्द अढ़ाई द्वीप)

कुंडनपुर–प्राचीन नाम कौंडिन्यपुर विदर्भदेशकी राजधानी, जहांसे श्रीकृष्ण रुक्मणिको हर लाए थे। जिला अमरावती वर्धा नदीके तटपर आर्वीसे ६ व धामणगांव ष्टेशनसे ११ मील जैन मंदिर है, प्राचीन मूर्ति पार्श्वनाथ। (या॰ द॰ पृ॰ ६२)

कुंडल–सतारा जिलेमें औंध रियासत, कुण्डल ष्टेशनसे २ मील प्राचीन मंदिर पार्श्वनाथ। ग्रामके पास पर्वतपर दो मंदिर गिरी और झरी पार्श्वनाथके नामसे प्रसिद्ध हैं। श्रावणमें मेला होता है (या॰ द॰ पृ॰ २४८)

कुण्डलगिरि–ग्यारहवां महान् द्वीपमें पर्वत ७५००० योजन ऊँचा, इसपर बीस कूट हैं, चारमें जिन मंदिर हैं। (त्रि॰ गा॰ ९३)

कुण्डलद्वीप–ग्यारहवां महाद्वीप।

कुण्डलपुर–बिहारमें राजग्रहके पास जहां नालंदा बौद्ध महाविद्यालय था। श्री महावीरस्वामीका जन्म स्थान मानके तीर्थ माना जाता है, जैन मंदिर है। दमोह जिलेसे २० मील मध्य प्रदेशमें पर्वतका आकार कुण्डलरूप है, ५९ जिन मंदिर हैं। श्री महावीरस्वामीकी प्राचीन मूर्ति पद्मासन ४॥ गज ऊँची दर्शनीय है। (या॰ द॰ पृ॰ ४७)

कुण्डलवर–११ वां द्वीप तथा समुद्र (त्रि॰ गा॰ ३०४)

कुणक या कुणिक–श्री महावीरस्वामीके समयमें राजा श्रेणिकका पुत्र कुणिक। (श्रेणिकचरित्र)

कुन्ती–युधिष्ठिर आदि पांडवोंकी माता।

श्री कुन्थुनाथ–भरतके १७ वें वर्तमान तीर्थंकर, छठे चक्रवर्ती व तेरहवें कामदेव।

कुंथलगिरि–सिद्धक्षेत्र जिला उसमानाबाद (निजामस्टेट) बारसी टाउन स्टेशनसे १ मील, यहांसे श्री देशभूषण कुलभूषण मुनि श्री रामचन्द्रके समयमें केवली होकर मोक्ष पधारे हैं। पर्वतपर १० मंदिर हैं। (या॰ द॰ पृ॰ २४८)

कुदान–जो सम्यक व चारित्र रहित पात्र हैं उनको दान देना व सोनाचांदी, स्त्री, पशु आदिका दान देना।

कुदेव–सर्वज्ञ वीतराग हितोपदेशी अर्हंतदेवके सिवाय रागी द्वेषी सब देव। (रत्न॰ श्लो॰ [illegible])

कुंद–विजयार्द्धकी उत्तर श्रेणीमें [illegible] नगर (त्रि॰ गा॰ [illegible])

कुंदकुंद–[illegible] ([illegible] न॰ ६८)

कुन्दकुन्दाचार्य–वि॰ सं॰ ४९ [illegible] प्रसिद्ध बड़े योगाभ्यासी [illegible] नाम श्री महावीर स्वामीके [illegible]

नाम पांच प्रसिद्ध थे। पद्मनंदि, एलाचार्य, गृद्धपिच्छ, वक्रग्रीव, कुन्दकुन्द, देखो प्र० जि० पृ० ११८-९९ पंचास्तिकाय, प्रवचनसार, समयसार, नियमसार आदि बहुतसे तत्वज्ञान पूर्ण प्राकृत ग्रंथोंके कर्ता। (दि० ग्र० नं० ४७) यह विदेह क्षेत्रमें सीमंधरस्वामीके उपदेशको सुनकर आए थे। (दर्शनसार गा० ४३)

कुधर्म—वीतराग सर्वज्ञ प्रणीत धर्म व सम्यग्दर्शन ज्ञानचारित्रमय धर्मके सिवाय रागद्वेष वर्द्धक व एकांत मत (रत्नकरण्ड श्राव० ३)

कुप्य—वस्त्रादि परिग्रह। (सर्वा. अ. ७-२९)

कुब्जक संस्थान—कर्म, जिस कर्मके उदयसे शरीर कुबड़ा हो (सर्वा० अ० ८-११)

कुभोग भूमि-लवण समुद्र व कालोदधि समुद्रमें ९६ अंतर्द्वीप हैं जिनमें युगलिये एक पल्यके आयु धारक पैदा होते हैं, कोई लम्बकर्ण, कोई घोड़ामुख, कुत्ता मुख आदि। वे मरकर देवगतिमें जाते हैं। सम्यक्त रहित चारित्र पालनेवाले कुपात्रोंके दानके फलसे यहां पैदा होते हैं। (सि. द. पृ. १०३)

कुमनुष्य द्वीप-लवण समुद्रकी दिशामें ४ विदिशामें ४ व अंतरदिशामें ८ हिमवन कुलाचल, शिखरी कुलाचल, भरत विजयार्द्ध, ऐरावत विजयार्द्ध इनके दोनों तटपर ८, इसतरह अभ्यंतर तटमें २४, ऐसे ही बाहरी तटमें २४। कुल लवण समुद्र सम्बन्धी ४८ द्वीप हैं, ऐसे ही कालोदधिमें ४८ हैं। ९६ द्वीपोंमें कुमानव अश्वमुखादि पैदा होते हैं। वहां कुभोग भूमि है। (त्रि० गा० ९१३)

कुमरण—समाधिमरणके विना मरना, आर्त व रौद्रध्यान सहित मरना।

कुमार कवि—हस्तिमल्लि कविका भाई आत्म प्रबोधका कर्ता। (दि० ग्र० ४०३)

कुमारनन्दि—न्यायविजय व भूपाल चतुर्विंशतिके कर्ता। (दि० ग्र० नं० ९९)

कुमारपाल—अणहिल्लपाटण गुजरातका सौलंकी वंशका जैन राजा (सन् ११४३-११७४) श्वे० आचार्य हेमचन्द्र इसीके समयमें भये हैं। सिद्ध हेम व्याकरणादि बहुत ग्रन्थ रचे। (बम्बई जैन स्मा० पृ० २१०)

कुमारविन्दु—जिन संहिताके कर्ता (दि० ग्र० नं० ४०२)

कुमारसेन—संहिताके कर्ता सं० ७७० में हुए (दि० ग्र० नं० ९१)

कुमुद—रुचक पर्वतपर दक्षिण दिशाका तीसरा कूट (त्रि० गा० ९९०) विदेह क्षेत्रमें सीतोदा नदीके दक्षिण तटपर सातवां देश (त्रि० गा० ६८९); पश्चिम भद्रसालमें दिग्गज पर्वत जिसपर इसी नामका देव रहता है (त्रि० गा० ६६२); विजयार्द्धकी उत्तर श्रेणीमें ३१ वां नगर। (त्रि० गा० ७००)

कुमुदचन्द (कुमुदेन्दु)—कल्याण मंदिर स्तोत्र व षट्दर्शन समुच्चयके कर्ता, द्वि० नाम सिद्धसेन दिवाकर (दि० ग्र० नं० ४९)

कुम्भकर्ण—रावणके भाई बड़े जैनधर्मी महात्मा जो बडवाणी पर्वत (बावनगजा) से मोक्ष गए हैं (निर्वाणकाण्ड)

कुमुदप्रभा—सुमेरुपर्वतके नन्दनवनमें १६ वीं वावड़ी (त्रि० गा० ६२९)

कुमुदा—सुमेरुपर्वतके नन्दनवनमें १९वीं वावड़ी (त्रि० गा० ६२९)

कुरु—विदेह क्षेत्रमें देव कुरु व उत्तर कुरु जहां उत्तम भोग भूमि है।

कुल—एक गुरुके शिष्य साधु (द० पृ० ६१२); जितने प्रकारके संसारी जीव पैदा होते हैं उनको कुल कहते हैं—वे इस प्रकार हैं—

पृथ्वीकायिक जीवोंके	२२	लाख	कोड़
जल ,,	७	,,	,,
तेज ,,	३	,,	,,
वायु ,,	७	,,	,,
दो इंद्रिय जीवोंके	७	,,	,,
तेंद्रिय ,,	८	,,	,,
चौंद्रिय ,,	९	,,	,,

वनस्पतिकायिकोंके	२८	लाख कोड़
जलचर पंचेन्द्रियोंके	१२॥	,, ,,
पक्षियोंके	१२	,, ,,
चौपदोंके	१०	,, ,,
सरीसृप	९	,, ,,
देवोंके	२६	,, ,,
नारकीके	२५	,, ,,
मानवोंके	१२	,, ,,
सब	१९७॥	लाख करोड़

(गो० जी० गा० ११३–११७)

कुलकर—महान पुरुष जो प्रजाको मार्ग बताते हैं मनु भी कहते हैं। हरएक अवसर्पिणी व उत्सर्पिणीकी कर्मभूमिकी आदि तीर्थंकरोंके जन्म पहले होते हैं। इस भरतक्षेत्रके गत तीसरे कालमें जब पल्यका ८ वां भाग बाकी रहे तब कुलकर एक दूसरेके पीछे नीचे प्रकार हुए। १ प्रतिश्रुति, २ सम्मति, ३ क्षेमंकर, ४ क्षेमंधर, ५ सीमंकर, ६ सीमंधर, ७ विमलवाहन, ८ चक्षुष्मान, ९ यशस्वी, १० अभिचन्द्र, ११ चन्द्राभ, १२ मरुदेव, १३ प्रसेनजित, १४ नाभिराजा, १५ श्री ऋषभदेव तीर्थंकर, १६ भरतचक्री। ये पूर्वजन्ममें मनुष्यायु बांधकर क्षायिक सम्यक्त पाचुके होते हैं। कोई अवधिज्ञान व कोई जातिस्मरण रखते हैं।

(त्रि० गा० ७९१–७९४)

कुलगिरि—कुलाचल पर्वत हिमवन, महाहिमवन आदि जंबूद्वीपमें छः हैं। (त्रि० गा० ७२४)

कुलकोड़—१९७॥ लाख कोड़ कुल देखो "कुल"

कुलचर्या क्रिया—१९ वीं कर्त्रन्वय क्रिया, गृहस्थ घरमें कुलका आचरण पाले। पूजा, दान, स्वाध्याय, संयम, तप, पाले व असि आदि कर्मोंसे आजीविका करे। (गृ० अ० १८)

कुल पुत्र—भविष्य भरत चौबीस तीर्थंकरोंमें सातवें तीर्थंकर। (त्रि० गा० ८७३)

कुलमद—अपने पिता, पितामह आदिके ऐश्वर्यको याद कर घमण्ड करना। यह सम्यक्तका दोष है।

कुलाचल—जंबूद्वीपमें ६ कुलाचल पर्वत हैं जिन्होंने उसके सात विभाग क्षेत्ररूप किये हैं, ये पर्वत बराबर समुद्र तक लम्बे हैं व तीन अपने दक्षिणके क्षेत्रसे दूने चौड़े हैं व विदेहके उधर तीन अपने उत्तरके क्षेत्रसे दूने चौड़े हैं। भरतकी चौड़ाई ५२६$\frac{6}{19}$ योजन है तब हिमवन प्रथम कुलाचलकी १०५२$\frac{12}{19}$ योजन हैं। वे हैं—हिमवन, महाहिमवन, निषेध, नील, रुक्मि, शिखरी। धातुकी खण्डमें १२ व पुष्करार्धमें १२ हैं (त्रि० गा० ५६५) (देखो प्र० जि० पृ० २९७–१)।

कुंवरपाल—पं० बनारसीदास कृत सूक्त मुक्तावलीके छन्द रचे। (दि० ग्रं० नं० १०–८१)

कुरु—वंश, चन्द्रवंश, श्री ऋषभदेवके समयमें हुए। इनके मुखिया राजा सोम श्रेयांश हस्तनापुरवासी। (ह० पृ० १६९);

कुवाद—३६३ प्रकार एकांतमत-देखो "एकांतवाद"

कुबेर—इन्द्रके उत्तर दिशाका लोकपाल। यह एक भव ले मोक्ष जाता है। (त्रि० गा० २२८)

कुबेरदत्त—हरिषेण चक्रवर्तीके समय मलयदेशके रत्नपुरका प्रसिद्ध सेठ। (ह० १ ए० ५०)

कुव्यसन—खोटी आदत, सात प्रकार जुआ खेलना, मांस खाना, मदिरा पीना, शिकार खेलना, चोरी करना, वेश्या सेवन, परस्त्री सेवन।

कुव्यसन अतीचार—सात व्यसनोंके दोष बताये। दर्शन प्रतिमाधारीके लिये दोष टालना नियमित है।

अतीचार जूआ—बिना पैसेके शर्त लगाना, हारजीत करना, ताशादि खेलना।

अतीचार मांस—चमड़ेके बर्तनमें रक्खा घी, तेल, हींग आदि न ले तथा [illegible] आदि भोजन करे, [illegible] न [illegible]।

अतीचार मदिरा—[illegible] न [illegible]। [illegible] ८ पहरके [illegible] [illegible] न लेना।

अतीचार वेश्या–वेश्यानृत्य देखना व संगति करना ।

अतीचार शिकार–मूर्ति व चित्रोंको कषायसे न फाडना ।

अतीचार चोरी–अन्यायसे अपने कुलमें द्रव्य ले लेना ।

अतीचार परस्त्री–कन्या आदिको हरना नहीं (सा० अ० ३–१९)।

कुश–रामचन्द्रजीके पुत्र ।

कुशगवर–१९ वां महाद्वीप मध्य लोकमें (त्रि० गा० ३९९)।

कुशास्त्र–जो शास्त्र प्रत्यक्ष परोक्ष प्रमाणसे बाधिक न हो, आप्त सर्वज्ञ वीतरागकी परम्परासे कहा हुआ हो, तत्वोपदेश कर्ता हो व सर्व हितकारी हो वह सुशास्त्र है । इसके सिवाय कुशास्त्र हैं । (रत्न० श्लोक ९);

कुशील–शील या ब्रह्मचर्य न पालना, स्वभावमें न रहना ।

कुशील त्याग अणुव्रत–गृहस्थको विवाहिता स्त्रीमें सन्तोष रखना, परस्त्री वेश्यादिका त्याग करना ।

कुशील मुनि–प्रतिसेवना कुशील । जो मूलगुण व उत्तरगुण पालते परन्तु उत्तरगुणोंमें दोष लगते । दूसरे कषाय कुशील जिनके संज्वलन कषाय मात्र होती । १० वें गुणस्थान तक (श्रा० पृ० २६०); खोटे या भ्रष्ट मुनि वे अनेक प्रकार हैं । जैसे–(१) विद्याके चमत्कारसे कौतुक दिखावे वे कौतुक कुशील, (२) जो मंत्र यंत्र कर वशीकरण करें वे भूतिकर्मकुशील, (३) जो लोगोंकी महिमा करके भिक्षा करावें सो आजीवकुशील, (४) जो ज्योतिष करके भिक्षा न खावें सो निर्मल कुशील–(च० पृ० ९६९)

कुज्ञान–मिथ्यादर्शन सहित तीन ज्ञान, कुमति, कुश्रुत व कुअवधि या विभंगा अवधि ।

कू

कूटलेख क्रिया–ठगनेके लिये असत्य लेख लिखना, सत्य अणुव्रतका तीसरा अतीचार (सर्वा० अ० ७।२६)

कूर्मोन्नति योनि–स्त्रीकी योनि जो कछुवेकी पीठके समान ऊँची हो इसीमें तीर्थंकर चक्री आदि महान पुरुष पैदा होते हैं । (गो० जी०गा० ८२)

कूष्मांड–मध्य लोकमें रहनेवाले भवदारोंमें चौथा भेद । यह पृथ्वीसे तीस हजार एक हाथ ऊपर रहते हैं। इनकी ४० हजार वर्षकी आयु है । (त्रि० गा० २९२–२९१)

पिशाच जाति व्यन्तरोंके २४ प्रकारोंमें पहला भेद (त्रि० गा० २७१)

कृ

कृतकृत्य–कृतार्थ–जिनको कुछ करना शेष नहीं रहा ऐसे सिद्ध भगवान् ।

कृतचित्रा–रावणकी पुत्री कनकप्रभा स्त्रीसे (इ० २ पृ० ७३);

कृतकृत्य छद्मस्थ–क्षीण कषाय नाम बारहवां गुणस्थानवर्ती साधु महात्मा जब दूसरे शुक्लध्यानके बलसे ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय इन तीन घातिया कर्मोंके निषेकोंकी स्थितिको घटाता हुआ जब अन्तमें स्थितिकांडक घात कर चुके मात्र उदयावलीका द्रव्य ही रह जाय, जो समय २ उदय आकर झड़ेगा। फिर केवलज्ञान पैदा होगा तब उसको कृतकृत्य छद्मस्थ कहते हैं । (क० गा० ६०२);

कृतकृत्य वेदक सम्यग्दृष्टी–जो वेदक सम्यग्दृष्टी जीव केवली या श्रुतकेवलीके पाद मूलमें हो या स्वयं कर्मभूमिमें उपजा तीर्थंकर हो वह दर्शनमोहनीयके नाशका प्रारम्भ करनेवाला होता है सो जहांतक अधःकरणके प्रारम्भ समयसे लगाकर मिथ्यात्व और मिश्रके कर्म द्रव्यको सम्यक प्रकृति रूप बदलता है (एक अंतर्मुहूर्त तक), तबतक मार-

स्मक कहलाता है फिर उसके पीछेके समयसे लेकर क्षायिक सम्यक्त ग्रहणके पहले समयतक वह जीव निष्ठापक कहलाता है। निष्ठापकको कृतकृत्य वेदक सम्यग्दृष्टी कहते हैं। यदि देवगति बांधी हो तो यह जीव देवगतिमें, मनुष्य या तिर्यंच बांधी हो तो भोगभूमिमें, नरकगति बांधी हो तो पहले नर्कमें जाकर यह कृतकृत्य वेदक सम्यग्दृष्टी निष्ठापन करके क्षायिक सम्यक्ती होता है, कृतकृत्य वेदकके मात्र सम्यक्त प्रकृतिका द्रव्य नाश करनेको रह जाता है इसके कालके चार अंतर्मुहूर्त किये जाय जो पहलेमें मरे तो देव हो, दूसरेमें मरे तो देव या मनुष्य हो, तीसरेमें मरे तो देव, मनुष्य या तिर्यंच हो, चौथेमें मरे तो चारों ही गतिमें जावे। (ल० गा० ११०-१११-१४६)

कृतवीर्य-श्री अरहनाथ तीर्थंकरके समयमें राजा सहस्रबाहुका पुत्र जमदग्नि तपस्वीकी गौको यह बलपूर्वक लेआया और जमदग्निको मार डाला। तब जमदग्निके पुत्र परशुरामने सहस्रबाहु और कृतवीर्यको मारा (इ० २ पृ० २२-२९)

कृति-तीन आदिकी गणना जिसमें वर्गमूलको घटाकर बाकी जो बचे उसका वर्ग किया जाय तो वह बढ़े जैसे तीनमें संभवता वर्गमूल एकको घटाया तब दो रहे दोका वर्ग चारसो तीनसे बढ़ गया। यह लक्षण तीन आदिमें संभव है। (त्रि० गा० १६); वर्ग;

कृति कर्म-अंग बाह्यके १४ प्रकीर्णकोंमें छठा-इसमें नित्य नैमित्तिक क्रियाका वर्णन है। (गो० जी० पृ० १९०।८)

कृतिधारा-(वर्गधारा) एक चार आदि केवल ज्ञान तक कृतिधारा होती है। [illegible] केवलज्ञानके प्रथम वर्गमूल तक जो वर्गमूल [illegible] वर्ग करनेपर जो राशि हो जो [illegible] है। यदि १६ को केवलज्ञान मानें तो [illegible] होंगे। १, ४, ८, १६ क्योंकि [illegible]

पहला स्थान, २ का वर्ग ४ दूसरा, ३ का वर्ग ९ तीसरा, ४ का वर्ग १६। (त्रि० गा० ५२)

कृति मातृकाधारी (वर्ग मातृकाधारा)-कृतिधारामें जितने वर्गस्थान होंगे-१ से लेकर केवलज्ञानके वर्गमूल तक सबका वर्ग होसकता है। ये सब स्थान कृति मातृकाधारा हैं। यदि केवलज्ञानको १६ मानें तब इसके स्थान होंगे। १, २, ३, ४ (त्रि० गा० ६०);

कृतमाल-भरतके विजयार्द्धके तामिश्र कूटपर रहनेवाला व्यन्तरदेव। (त्रि० गा० ७३९);

कृतान्तवक्र-रामचन्द्रजीका सेनापति जो तप-कर स्वर्ग गया था व जो रामचन्द्रजीको समझाने आया, जब लक्ष्मणकी मृत्युसे वे शोकित होरहे थे। इसीने ही वैराग्य उत्पन्न कराया। इसीने सीताजीको रामचन्द्रजीकी आज्ञासे वनमें छोड़ा था। (इ० ९ पृ० १३४);

कृष्ण-नौमें नारायण गत भरत अवसर्पिणीके। यह आगामी भरतकी चौबीसीमें निर्मल नामके १६ वें तीर्थंकर होंगे। (त्रि० गा० ८७४);

कृष्णदास ब्रह्मचारी-सं० विमलनाथ, मुनिसुव्रतपुराणके कर्ता (काष्ठासंघी) (दि. ग्र. नं. ९२);

कृष्ण लेश्या-सबसे खराब परिणाम जो जड़-मूलसे नाश करना चाहे, दुराग्रही, निर्दयी, कठोर, लम्पट, पापासक्त (सा० अ० ३-१); काला रंग द्रव्य लेश्या।

कृष्णवर्ण नामकर्म-जिसके उदयसे शरीरका वर्ण काला हो। (सर्वा० अ० ८।११)

कृष्णा-[illegible] [illegible] (त्रि० गा० [illegible])

[illegible]

[illegible]

[illegible] ([illegible])

के

केवली—अरहंत भगवान १३वें व १४वें गुणस्थानवर्ती छः मास आठ समयमें सयोगकेवली कुल आठ लाख ९८ वें हजार पांचसौ दो ८९८५०२ एकत्र होसक्ते हैं। (गो० गा० ६२९);

केसरि—जम्बूद्वीपके भीतर छठे कुलाचल शिखरीपर छठा द्रह (त्रि० गा० ५६७);

केकई—दशरथकी स्त्री, भरतकी माता।

केतलदेवी—चालुक्यवंशी महाराज त्रैलोक्यमल्लकी स्त्री। कीर्तिवर्मा करणाटक जैन कविकी माता (सन् ११२९) इसने बहुतसे जैन मंदिर बनवाए व जैनधर्मकी प्रभावना की। (क० नं० ३०)

केतु—ज्योतिषके ८८ ग्रहोंमें ७७ वां ग्रह। (त्रि० गा० ३७०)

केतुमति—किन्नर व्यंतर देवोंके इंद्रकी दूसरी वल्लभिकादेवी (त्रि० गा० २९८) अंजना हनूमानकी माताकी सास।

केवल दर्शन—अनंत दर्शन सर्व पदार्थोंको एक ही साथ देखनेकी शक्ति, जो अर्हंत केवलीके दर्शनावरणीय कर्मके नाशसे पेदा होता है।

केवलदर्शनावरण कर्म—वह कर्म जो केवलदर्शनको रोके। (सर्वा० अ० ८–११)

केवललब्धि—नौ प्रकार क्षायिक भावोंकी प्राप्ति जो सयोगी जिन अर्हंतके १३ वें गुणस्थानमें हो जाती है। १ अनंतज्ञान, २ अनंत दर्शन, ३ अनंत दान, ४ अनंत लाभ, ५ अनंत भोग, ६ अनंत उपभोग, ७ अनंत वीर्य ८ क्षायिकचारित्र, ९ क्षायिकचारित्र। (गो० जी० गा० ६३)

केवल व्यतिरेकी हेतु—जिस हेतु या साधनमें केवल व्यतिरेक या अभाव रूप दृष्टांत पाया जावे जैसे जीवित शरीरमें आत्मा है क्योंकि इसमें श्वासोछ्वास है। जहां२ आत्मा नहीं होता वहां२ श्वासोछ्वास नहीं होता जैसे चौकी (जै० सि० प्र० नं० ७१)।

केवलज्ञान, केवलज्ञान ऋद्धि—पूर्ण ज्ञानकी शक्ति, सर्वज्ञपना जो एक समयमें त्रिकालवर्ती सर्व पदार्थोंके गुणपर्यायोंको जानता है।

केवलज्ञानगम्य—जो सूक्ष्मादि पदार्थ या भाव केवलज्ञानसे प्रत्यक्ष जान सकें जैसे अमूर्तीक द्रव्य आत्मा आदि।

केवलज्ञानावरण कर्म—वह कर्म जो केवलज्ञानको रोके। (सर्वा० अ० ८–६);

केवलज्ञानी—सर्वज्ञ भगवान् परमात्मा अर्हन्त व सिद्ध।

केवलान्वयी हेतु—जिस हेतुमें मात्र अन्वय या भावरूप दृष्टांत हो। जैसे जीव अनेकांत स्वरूप है। क्योंकि सत्स्वरूप है। जो जो सत्स्वरूप होता है वह २ अनेकांत स्वरूप होता है जैसे पुद्गलादिक।

केवलि मंत्र—"ॐ ह्रीं अर्हं अर्हंत सिद्ध सयोग केवलिभ्यः स्वाहा।" (प्र० सा० पृ० १०);

केवलिमरण—केवली भगवानका शरीर त्यागकर मुक्त होना। (भ० पृ० १३);

केवलि समुद्घात—जो अधिकसे अधिक छः महीना आयुमें बाकी रहनेपर केवलज्ञानी होते हैं वे नियमसे केवलि समुद्घात करते हैं। जिनके छः माससे अधिक आयु हो वे करें या न करें। जब आयुकी स्थिति तो अन्तर्मुहूर्त हो तथा वेदनीय नाम, गोत्र, तीन कर्मोंकी स्थिति अधिक हो। तब उन तीनकी स्थिति आयुकी स्थितिके बराबर करनेको समुद्घात कहते हैं। जैसे-गीला वस्त्र फैलानेसे जल्दी सूख जाता है वैसे समुद्घातसे तीन कर्मोंकी स्थिति घट जाती है। जो केवली कायोत्सर्ग रूप खड़े समुद्घात करते हैं उनके आत्माके प्रदेश फैलकर दंड रूपसे एक ही समयमें बारह अंगुल प्रमाण मोटे वातवलयकी मोटाईको छोड़कर कुछ कम चौदा राजूमें फैलते हैं, दंडके आकार होजाते हैं, जो बैठ करें तो देहसे तिगुणा मोटा कुछ कम १४ राजू दंडाकार फैलते हैं।

दूसरे समयमें वे ही प्रदेश कपाटके आकार फैलते हैं। वातवलयको छोड़कर यदि पूर्व सन्मुख हों तो दक्षिण उत्तर कपाट करें। यदि उत्तर सन्मुख हों तो पूर्व पश्चिम कपाट करें। खड़ेके बारह अंगुल मोटा बैठके शरीरसे तीगुना मोटा प्रदेश रहते हैं। तीसरे समयमें प्रतर रूपसे सर्व आत्मप्रदेश वातवलयको छोड़कर सर्व लोकमें फैलते हैं। चौथे समयमें वातवलयको भी लेकर सर्व लोकमें फैल जाते हैं। लोक पूरण होजाते हैं फिर पलटते हैं। पांचवे समयमें प्रतररूप होते हैं। छठेमें कपाटरूप, सातवेमें दंडरूप आठवेमें मूल देहरूप। (भ० प्र० ६२९)

केवली–सर्वज्ञ वीतराग अरहंत परमात्मा।

केशरिया–अतिशयक्षेत्र। उदयपुर स्टेटमें उदयपुरसे ४० मील ग्राम धुलेव। बहुत विशाल मंदिर है। इसके पाषाणके कोटको सागवाडा निवासी दि० जैन हूमड सेठ धनजी करणने सं० १८६३ में बनवाया था। श्री रिषभदेवकी मूर्ति श्यामवर्ण ६ फुट ऊँची पद्मासन दिगम्बरी मुख्य मंदिरमें है। जैन लोग केशर बहुत चढ़ाते हैं इससे प्रतिमा या क्षेत्रका नाम केशरियाजी पड़ गया है। अन्य बहुतसे जिनमंदिर कोटके भीतर हैं। (ती० या० द० प्र० १२९)

केशरीविक्रम या केशरीसिंह–सातवें नारायणदत्तके मामा विद्याधर, इन्होंने सिंहवाहनी व गरुड वाहिनी विद्याएँ नारायणदत्त व बलदेव नंदिमित्रको दी। (ह० २ ह० ३६)

केशलोंच–जैन साधु व ऐलक आवककी व्यवस्था किया। साधुके २८ मूलगुणोंमें २१ वां मूलगुण दो या तीन या चार मास पीछे उत्कृष्ट मध्यम, जघन्य रूपसे प्रतिक्रमण व उपवास सहित अपने ही हाथसे मस्तक डाढी मूछके केश उपाड़ना। इससे स्वाधीनता, दीन वृत्ति अभाव व शरीरका निर्ममत्व सिद्ध होता है (मू० गा० २९):

केशवाणिज्य–दास, दासी, पशु आदिकी बेचके आजीविका करना। (सा० अ० ५–२२):

केशव–नारायण। प्रत्येक अवसर्पिणी उत्सर्पिणीमें नौ होते हैं।

केशवचंद्राचार्य–वि. सं. १२६। (दि. ग्रं. ५३)

केशवराज–शब्दमणि व्याकरण व शब्दमणिदर्पण टीकाके कर्ता। (दि० ग्र० नं० ४४८)

केशववर्णी–गोम्मटसारकी संस्कृत टीकाके कर्ता जिसे उन्होंने वि० सं० १२२७ ज्येष्ठ सुदी ९ को पूर्ण की। (दि० ग्र० नं० ५४)

केशवसेन–मुनिसुव्रत पुराण, कर्णामृत पुराण, चतुर्विंशति स्तोत्र, यमकबन्ध आदिके कर्ता। (दि० ग्र० नं० ५६)

केशवाप कर्म या संस्कार–बालक १२ वां संस्कार। जब बालकके केश बढ़ जावें २ व ४ वर्षका हो तब मुंडन कराया जावे। होम पूजा करके भगवानके गंधोदकसे केश गीले करके चोटी सहित केश मुंडवावें फिर गंधजलसे स्नान करा वस्त्र पहना मुनिराजके पास या जिन मंदिर लेजावे। चोटीके स्थानपर साथिया किया जावे। मंत्र व विधि देखो। (गृ० अ० ४);

केशियण्ण–कर्णाटक कवि (सन् १२००) सिद्धप्रायोपगमनका कर्ता। (दि० ग्रं० नं० ४५);

केशिराज–कर्णाटक जैन कवि (सन् १२६०) सूक्ति सुधार्णवके कर्ता मल्लिकार्जुनका पुत्र। होयसाल वंशी राजा नरसिंहके कटकोपाध्याय सुमनोबाणका दौहित्र [illegible]। चोलपालक चरित्र, सुभद्राहरण, प्रबोधचंद्र, [illegible] आदिका कर्ता। (क० जै० २८)

केसरीसिंह पं०–[illegible] के कर्ता (दि० ग्र० नं० ६०)

केसरीसिंह [illegible]–[illegible] के कर्ता (दि० ग्र० नं० १२–२१)

कै

कैलाश यात्रा–एक छोटी पुस्तक जिसमें [illegible] [illegible] [illegible] है। मुद्रित है।

कैलाश-पर्वत हिमालयका भाग तिब्बतमें जहांसे श्री रिषभदेव भगवान प्रथम तीर्थंकर मोक्ष गए हैं व उनके पुत्र भरतचक्रवर्तीने ७२ चैत्यालय बनवाए थे; विजयार्द्धकी उत्तरश्रेणी, तीसरा नगर। (त्रि० गा० ७०२)

को

कोकिला पंचमी व्रत-आषाढ वदी पंचमीसे लेकर कार्तिक तक प्रति पंचमीको प्रोषध उपवास करें शील पाले पांच वर्ष तक करे (कि. क्रि. ए. १२१)

कोड़ाकोड़ी-(कोटाकोटि) एक करोडको एक करोडसे गुणाकरनेपर १००००००००००००००० आएंगे।

कोण्डेश-एक राजा जो पूर्वजन्ममें गोविन्द ग्वाल था व जिसने जिन शास्त्रकी भक्ति की थी वह मुनि होके श्रुतकेवली हुए। शास्त्रदानमें प्रसिद्ध हुए। (आ० कथा० नं० १११)

कोमल स्पर्श नामकर्म-वह कर्म जिसके उदयसे शरीर कोमल हो। (सर्वा० अ० ८-११)

कोश-ज्योतिषके ८८ ग्रहोंमें १४ वां ग्रह। (त्रि० गा० ३६४)

कौ

कौत्कुच्य अतिचार-भंड वचन सहित कायकी कुचेष्टा करना। अनर्थदंड विरतिका दूसरा अतीचार। (सर्वा० अ० ७-३२)

कौनफ्लुएन्स आफ आपोजिट्स-वारिष्टर चम्पतराय कृत अंग्रेजीमें अन्य धर्मोसे मुकाबला करते हुए जैनधर्मकी महिमा। मुद्रित।

कौमार-कातंत्र व कलाप व्याकरणका दूसरा नाम श्री शिववर्माचार्यकृत (जैनमित्र अं० १७ वर्ष ९)

कौसल्या-श्री रामचन्द्रकी माता।

कौसाम्बी-अतिशय क्षेत्र। यहां श्री पद्मप्रभु वर्तमान छठे तीर्थंकरका जन्म स्थान व तप स्थान है। अलाहाबादसे १६ कोस गढवाहा ग्राम है। फफोसीसे ४ मील। (या० द० ए० ९)

कौस्तुभ-लवणसमुद्रमें पूर्व दिशाके पातालकी पूर्व दिशामें पर्वत (त्रि० गा० ९०९)

कं

कंस-ज्योतिषके ८८ ग्रहोंमें १६ वां ग्रह। (त्रि० गा० ३६४)

कंसवर्ण-ज्योतिषके ८८ ग्रहोंमें १९वां ग्रह। (त्रि० गा० ३६४)

कंसाचार्य-श्री महावीरस्वामीके मुक्ति गए पीछे ३४५ वर्ष बाद २२० वर्षमें ग्यारह अंगके ज्ञाता पांच मुनि हुए उनमें पांचवें (श्रुतक० ए. ११)

क्या ईश्वर जगतकर्ता है-एक मुद्रित ट्रेक्ट है।

क्रमभावी विशेष-पर्याय क्रमसे होनेवाला वस्तुका विशेष (जै० सि० द० नं० ७९);

क्रिया-६-पूजा, दान, तप, संयम, स्वाध्याय, श्रावकोंके करने योग्य (सा० अ० १-१८)

क्रिया-५३-श्रावकोंके करने योग्य ८ मूलगुण + ५ अणुव्रत + ३ गुणव्रत + ४ शिक्षाव्रत + १२ तप + १ सम्यग्दर्शन + ११ प्रतिमा + ४ दान + १ जल गालन + १ रात्रि भोजन त्याग + ३ सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र=५३ (कि. क्रि. ए. ४);

क्रिया गर्भान्वय-५३ गर्भाधानादि जो जन्मके जैनके लिये करना उचित है, ये निर्वाणतक है। (आदि० पर्व ३८-३९-४०);

क्रिया दीक्षान्वय ४८-जो दीक्षित जैनीके लिये हैं। (आदि०पर्व ३८-३९-४०);

क्रिया कर्त्रन्वय-७-ये श्रेष्ट मोक्षमार्गके आराधनके फलरूप की जाती हैं। सज्जाति, सद्गृहित्व, पारिव्राज्य, सुरेन्द्रता, साम्राज्य, परमार्हत्य, निर्वाण (आदि० पर्व ३८-३९-४०);

क्रिया २५-कर्मोके आस्रवकी कारणभूत क्रियाएं। वे नीचे प्रकार हैं—

१. सम्यक्त्व क्रिया-सुदेवादिकी पूजा करनी।
२. मिथ्यात्व क्रिया-कुदेवादिकी पूजा करनी।
३. प्रयोग क्रिया-काय आदिसे गमनागमन।

४. समादान क्रिया–संयमी होकर संयमके खण्डनकी तरफ झुकाव ।

५. ईर्यापथ क्रिया–भूमि देखकर चलना ।

६. प्रादोषिकी क्रिया–क्रोधके आवेशमें वर्तना ।

७. कायिकी क्रिया–दुष्टतासे काम करना ।

८. आधिकरणिकी क्रिया–हिंसाके उपकरण रखना ।

९. पारित्वापिकी क्रिया–प्राणियोंको संताप उपजाना ।

१०. प्राणातिपातिकी क्रिया–प्राण हरण करना ।

११. दर्शन क्रिया–रागसे मनोहर रूप देखना ।

१२. स्पर्शन क्रिया–रागसे मनोज्ञ वस्तु छूना ।

१३. प्रात्ययिकी क्रिया–इंद्रिय विषयोंके अपूर्व २ साधन बनाना ।

१४. समन्तान्नपातन क्रिया–स्त्री पुरुष व पशुके स्थानमें मल मूत्र करना ।

१५. अनाभोग क्रिया–विना देखे विना झाड़े शरीरादि रखना ।

१६. स्वहस्त क्रिया–दूसरेके करने योग्य कामको आप करना ।

१७. निसर्ग क्रिया–पापके कार्योंकी आज्ञा करना ।

१८. विदारण क्रिया–दूसरेके पापाचरणको प्रकाशना ।

१९. आज्ञा व्यापादिकी क्रिया–कषायवश आगमके अनुसार स्वयं न चलनेपर ऐसा ही आगममें है यह कहना ।

२०. अनाकांक्षा क्रिया–शठता व आलस्यसे शास्त्रोक्त विधिमें अनादर करना ।

२१. प्रारम्भ क्रिया–छेदन भेदन करना, कराना आदि ।

२२. पारिग्राहिकी क्रिया–परिग्रहकी रक्षामें सावधान करना ।

२३. माया क्रिया–कपटसे ज्ञान व श्रद्धानमें वर्तना ।

२४. मिथ्यादर्शन क्रिया–अन्य मिथ्यात्वकी क्रिया करनेवालेकी प्रशंसा करना ।

२५. अप्रत्याख्यान क्रिया–त्याग नहीं करना, संयम न धारना । (सर्वा० अ० ६–५)

क्रियाकोप–दौलतराम व किशनसिंहकृत छंद-बद्ध । पं० किशनसिंह पाटनीकृत सं० १७८४में, दौलतरामने १७९१ में रचा ।

क्रियाऋद्धि–दो प्रकार है । १ चारणत्व–इसके भेद हैं १ जलचारण–जलमें थलवत जाना, जीव न मरें । २ जंघाचारण–भूमिसे ४ अंगुल ऊँचा जांघको उठाए चले जाना, ३ तंतुचारण–तंतुपर चलना, तंतु टूटे नहीं, ४ पुष्प चारण–पुष्पपर बाधा रहित चलना, ५ पत्र चारण–पत्रोंपर बाधा रहित जाना, ६ श्रेणी चारण–आकाशकी श्रेणीमें चलना, ७ अग्नि शिखा चारण–अग्निशिखापर बाधा रहित चलना, ८ आकाशगामित्व–कायोत्सर्ग व पद्मासन आसनसे ही आकाशमें चले जाना । (श० प्र० १२१)

क्रियावादी–१८० प्रकार एकांतमत देखो "एकांतवाद ।"

क्रियाविशाल पूर्व–द्वादशांग वाणी १४ पूर्वोंमेंसे ११ वां पूर्व । इसमें [illegible] व उनके कारण व ज्योतिषचक्रका [illegible] है । २६ करोड़ पद हैं । (गो० जी० गा० [illegible])

[illegible] (मू० गा० [illegible])

क्षीण कषाय–देखो "[illegible]"

क्षीण मोह? [illegible] (सर्वा० [illegible])

क्षौरवर? [illegible] गा० [illegible]

क्ष

क्षण–सबसे जघन्य काल एक समय। जबतक पुद्गलका अविभागी परमाणु एक कालाणुसे निकटवर्ती कालाणुपर अति मंद गतिसे जाता है तब जो काल लगता है वह समय है या क्षण है। यह व्यवहार काल है निश्चय कालकी पर्याय है।

(गो० जी० गा० ५७३)

क्षत्रचूड़ामणि–सं० में जीवन्धरकुमार चरित्र।

क्षत्रिय–जो रक्षा करे, हानिसे बचावे। असिकर्म करके आजीविका करनेवाले।

क्षपकश्रेणी–गुणस्थानोंमें जब जीव उन्नति करते हुए जाता है तब जहां चारित्रमोहनीयका नाश किया जाता है वह श्रेणी। इसके चार गुणस्थान हैं। ८ वां अपूर्वकरण, ९ वां अनिवृत्तिकरण, १० वां सूक्ष्म लोभ, १२ वां क्षीणमोह। क्षपकश्रेणी चढ़नेवाले ११ वें गुणस्थानको स्पर्श नहीं करता है।

क्षपण–उपवास (भ० पृ० ४२६)

क्षपणासार–ग्रंथ प्राकृत, श्री नेमिचंद्र सिद्धांतचक्रवर्ती कृत। कर्मोंके नाशका उपाय वर्णित है। संस्कृत व हिंदी टीका सहित मुद्रित है।

क्षपणक–जैन मुनि। राजा विक्रमादित्यकी सभामें नौ रत्नमेंसे एक रत्न। प्रसिद्ध कवि। (भारतीय चरिताम्बुध पृ० ११३)।

क्षय–नाश, दूर होजाना, झड़ जाना।

क्षयतिथि–देखो "औमतिथि"

क्षयदेश–कर्मके क्षय होनेका अंतिम स्थान; जो कर्म प्रकृतिरूप होकर विनशती है, ऐसी परमुखोदयी प्रकृतिका अन्त कांडककी अन्त फालि तक क्षय देश है व जो अपने ही रूप उदय होकर विनश जाती हैं ऐसी स्वमुखोदयी उनका एक एक समय अधिक आवली प्रमाण काल क्षयदेश है। (गो० क० कां० गा० ४४५-४४६)।

क्षयोपशम–जहां सर्व घाती कर्म स्पर्द्धकोंका उदयाभाव क्षय हो। अर्थात् उस समय आनेवाले कर्मोंका विना रस दिये झड़ना हो। व जो सत्तामें हैं उनका उपशम हो तथा देश घाती कर्मोंका उदय हो उस समयकी अवस्था।

क्षयोपशम निमित्तक अवधिज्ञान–जो अवधिज्ञान सम्यक्त व संयमके निमित्तसे अवधिज्ञानावरणके क्षयोपशमसे पैदा हो। (सर्वा. अ. २-१२)। देखो शब्द "अवधिज्ञान" इसके छः भेद हैं–

(१) अनुगामी–जो अन्य क्षेत्र या भवमें साथ जावे।

(२) अननुगामी–जो अन्य क्षेत्र या भवमें साथ न जावे।

(३) वर्द्धमान–जो बढ़ता जावे।

(४) हीयमान–जो घटता जावे।

(५) अवस्थित–जो जैसाका तैसा रहे।

(६) अनवस्थित–जो कभी बढ़े व कभी घटे।

क्षयोपशम लब्धि–जो चार गतिमें कोई भी जीव मिथ्यात्वी सैनी, पर्याप्त, मन्दकषायरूप, व ज्ञानोपयोगी हो तथा जिसके अशुभ कर्म ज्ञानावरणादिके समूहका अनुभाग समय समय अनन्तगुण घटता अनुक्रमसे उदय आवे उस समय यह लब्धि होती है। उपशम सम्यक्तके लिये पहली शक्ति यह चाहिये, फिर विशुद्धि, देशना, प्रायोग्य व करणलब्धि क्रमसे होसकती हैं। (ल० गा० ३-४)

क्षान्ति–क्षमा, क्रोधको जीतना, इससे साता वेदनीयका आस्रव होता है। (सर्वा. अ. ६-१२)

क्षायिक–किसी कर्मके क्षयसे होनेवाली अवस्था।

क्षायिक चारित्र–चारित्र या वीतरागता जो सर्व मोहनीय कर्मके क्षयसे प्रगट हो। यह क्षपकश्रेणीमें होता है। बारहवें गुणस्थानसे बिलकुल पूर्ण होता है। और सिद्धोंमें भी रहता है (सर्वा• अ० २-४)

क्षायिकदान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य–अंतराय कर्मके नाशसे केवली अर्हंत भगवानके ये पांच गुण प्रगट होते हैं। इनका उदाहरण है–केवलीके

द्वारा सब प्राणियोंका अभयदान है व ज्ञानदान होता है यह क्षायिक दान है, केवलीके शरीरको बल प्रदानकी कारण परम शुभ अनन्त आहारक वर्गणाएं समय २ उनके शरीरको सम्बन्ध करती हैं यह क्षायिक लाभ है। पुष्पवृष्टि आदि समवसरणमें होती है यह क्षायिक भोग है, सिंहासन छत्रादि प्रगट होते हैं यह क्षायिक उपभोग है। अनंत बल प्रगट होता है यह अनन्त वीर्य है। वास्तवमें आत्माको ही निज दत्त दान, आत्म सुख लाभ, आत्म सुख भोग व आत्म सुख उपभोग व अनन्त बल ये ही पांच लब्धियां हैं (सर्वा० अ० २–४)

क्षायिक भाव–चार घातिया कर्मोंके क्षयसे जो भाव नौ प्रकार केवलीके होते हैं। अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, क्षायिक दानादि ५, क्षायिक सम्यग्दर्शन, क्षायिक चारित्र। (सर्वा० अ० २–४)

क्षायिक सम्यग्दर्शन या सम्यक्त–जो सम्यग्दर्शन या आत्म प्रतीति अनंतानुबंधी चार कषाय तथा मिथ्यात्व, सम्यक् मिथ्यात्व, सम्यक्त प्रकृति इन सात कर्मोंके क्षयसे प्रगट हो। यह अविनाशी है। चौथे अविरत सम्यक्त गुणस्थानसे लेकर सातवें तक किसीमें पैदा होसक्ता है। ऐसे सम्यक्तवाला जीव उसी भवसे या नरक व देवायुबांधी हो तो तीसरे भवसे तथा मनुष्य या तिर्यंच आयु बांधी हो तो चौथे भवसे मुक्त होजाता है। (गो० जी० गा० ६४६);

क्षायिकसम्यग्दृष्टि–क्षायिक सम्यक्तधारी जीव।

क्षायिकज्ञान–ज्ञानावरण कर्मके सर्वथा क्षयसे जो केवलज्ञान प्राप्त हो, यह ज्ञान बिना क्रमके आत्मा हीके द्वारा सहज ही तीन लोक व अलोकके सर्व द्रव्य गुण पर्यायोंको जानता है। (सर्वा० अ० १–९);

क्षायोपशमिक भाव–मिश्र भाव–देखो शब्द "क्षयोपशम" कर्मोंके क्षयोपशमसे जो भाव हों वे १८ प्रकारके हैं—

४–ज्ञान–मति श्रुत, अवधि, मनःपर्यय।

३–अज्ञान–कुमति, कुश्रुत, कुअवधि।

३–दर्शन–चक्षु, अचक्षु, अवधि।

५–लब्धि–क्षायोपशमिक–दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य।

१–क्षायोपशमिक सम्यक्त, १–क्षायोपशमिक चारित्र, १–संयमासंयम (देशव्रत)=१८ (सर्वा० अ० २–५);

क्षायोपशमिक लब्धि–दानांतराय आदिके क्षयोपशमसे जो थोड़ा दान देनेका उत्साह, थोड़ा लाभ, थोड़ा भोग, थोड़ा उपभोग, थोड़ा आत्मबल प्रगट हो सो क्रमसे क्षायोपशमिक दान, लाभ भोग, उपभोग, वीर्य है। (सर्वा० अ० २–५);

क्षायोपशमिक सम्यक्त या वेदक सम्यक्त–जो तत्वार्थ श्रद्धान अनंतानुबंधी चार कषायका उपशम या विसंयोजन होते व मिथ्यात्व व मिश्र प्रकृतियोंके उपशम या क्षयसे होते व सम्यक्त मोहनीयके उदयसे हो। यह कुछ मलीन होता है उसमें चल, मल, अगाढ़ दोष लगते हैं। यहां सम्यक्त प्रकृतिका फल वेदा जाता है इसलिये इसको वेदक कहते हैं। सम्यक्त प्रकृति देश घातीका उदय होता है व वर्तमान सर्व घाती अनन्तानुबन्धी आदिका उपशम या क्षय होता है व ऊपरके इन कर्मोंका सत्तारूप उपशम रहता है इसलिये इसे क्षायोपशमिक कहते हैं। चल दोष वह है जिससे अपने श्रद्धानमें भी तरंगकी तरह चंचलता हो। जैसे अपने बनाए मंदिर व [illegible] अपेक्षा अधिक श्रद्धा रखनी। मलदोष–में शंका, कांक्षा, विचिकित्सा, मिथ्यादृष्टि, प्रशंसा व संस्तव ये पांच अतीचार लग जाते हैं। अगाढ़ दोष–में गाढ़ता न हो, सर्व अर्हंत समान हैं तौ भी [illegible] कारिक [illegible]। [illegible] ही कुछ दोष है। (गो० जी० गा० २५);

क्षायोपशमिक या वेदक सम्यग्दृष्टि–क्षायोपशमिक सम्यक्तधारी जीव।

क्षायोपशमिक ज्ञान—ज्ञानावरणीय कर्मके क्षयोपशमसे होनेवाला ज्ञान । मति, श्रुत, अवधि व मनःपर्यय (सर्वा० अ० २-९);

क्षारराशि—ज्योतिपके ८८ ग्रहोंमें २२वां ग्रह (त्रि० गा० ३६९);

क्षारोदा—पश्चिम विदेह सीतोदा नदीके तटपर भद्रसालकी वेदीके आगे पहली विभङ्गा नदी । (त्रि० गा० ६६८);

क्षितिशयन—भूमिशयन, साधुके २८ मूलगुणोंमेंसे १९ वां मूलगुण । जीव रहित, अल्प संस्तर रहित असंयमीके गमन रहित । गुप्तभूमिके प्रदेशमें दंडेके समान वा धनुषके समान एक पसवाड़ेसे सोना । (मू० गा० ३२);

क्षिप्र—शीघ्र; शीघ्र गमन करनेवाली वस्तुका जानना क्षिप्र अवग्रहादि है । (सर्वा० १-१६)

क्षीणकषाय—, क्षीणमोह— } जहां कषाय नाश होगए हैं ऐसा बारहवां गुणस्थान ।

क्षीरकदम्ब—धवल प्रदेशके स्वस्तिकावती नगरीका राजपुरोहित । राजा वसुका गुरु पर्वतका पिता । यह मुनि होगया तब पर्वतने नारदसे अज शब्दके अर्थपर विवाद करके वसुसे बकरा अर्थ कहलाया व पर्वतने पशुयज्ञकी प्रवृत्तिकी (द० २ पृ० ४३);

क्षीर वृक्ष—दूध जिनसे निकले ऐसे गूलरादिके वृक्ष । (सा० अ० २-१); उदम्बर;

क्षीरवर—महाद्वीप व समुद्र पांचवा ।

क्षीरसागर—पांचवां महासमुद्र जिसका जल दूधके समान है । इसमें त्रस जंतु नहीं होते इस ही जलसे सुमेरु पर्वतपर तीर्थंकरोंका न्हवन इन्द्रादि देव करते हैं ।

क्षुत या क्षुधा परीषह—भूखकी बाधा होनेपर भी मुनि द्वारा समताभावसे सहना । (सर्वा० अ० ९-१९);

क्षुल्लक—ग्यारहवीं उद्दिष्ट त्याग प्रतिमाधारी श्रावक जो एक लंगोट व एक ऐसी चद्दर रखते हैं जिससे पूर्ण अंग न ढके भिक्षा द्वारा एकवार भोजनपान करते हैं । कोई भिक्षाके पात्रमें कई घरोंसे भोजन एकत्र कर अन्तके घरमें, खालेते हैं, फिर पात्रको साफ करके रखते हैं । कोई भिक्षाका पात्र नहीं रखते हैं, किसी एक घरमें पड़गाहे जानेपर भोजन बैठकर पात्रमें कर लेते हैं । केशोंको कतराते हैं । शेष सब नियम पहली प्रतिमाओंके पालते हैं । पीछी, अहिंसाके लिये व कमण्डल शौचके जलके लिये रखते हैं । (सा०अ० ७-३८ अ०गृ० अं० १७) छोटे या लघु (त्रि० गा० ६१७);

क्षेत्र—अन्न उत्पन्न होनेवाली भूमि । इसके तीन भेद हैं—१ सेतु—जो कूए वापिकादिसे सींचे जावें, २ केतु—जो वर्षाके जलसे सींचे जावे, ३ उभय—जो दोनोंसे सींचे जावे । (सा० अ० ४-६४);

क्षेत्र आर्य—भरत, ऐरावत व विदेहोंके १७० आर्यखण्ड निवासी मानव (सर्वा० अ० ३-३६);

क्षेत्र उपसम्पत्—मुनिका इस क्षेत्रमें रहना जहां संयम व तपकी वृद्धि हो । (मू० गा० १४१);

क्षेत्र ऋद्धि—दो प्रकार है—(१) अक्षीण महानस—जिस पात्रसे गृहस्थ ऋद्धिधारी मुनिको आहार दे उसमें इतना सामान भोजनका बढ़ जावे जो चक्रीका कटक भी जीम सके (२) अक्षीण महालय ऋद्धि—जहां ऋद्धिधारी मुनीश्वर बैठे वहां जो कोई जितने आवें उन सबको बाधा रहित स्थान होजावे । (भ० पृ० ९२४),

क्षेत्र परिवर्तन—पांच परिवर्तनोंका दूसरा भेद—इसके दो भेद हैं—(१)स्वक्षेत्र परिवर्तन—कोई संसारी जीव सूक्ष्म लब्ध्यपर्याप्तक निगोदियाकी जघन्य आयु सांसका छठारहवां भाग मात्र धरकर म । वहां घनांगुलका असंख्यातवां भाग प्रदेश रोके, फिर उससे एक प्रदेश बढ़ती अवगाहनाका शरीर धरे । फिर क्रमसे दो प्रदेश फिर तीन प्रदेश बढ़ती इस तरह अनुक्रमसे बढ़ती बढ़ती महामत्स्यकी उत्कृष्ट अवगाहना (१००० योजन लम्बा) का शरीर धरे,

सर्व अवगाहनाके भेदोंके क्रमसे प्राप्त हो जितना काल लगे वह स्वक्षेत्र प० है।

२–परक्षेत्र परिवर्तन–सूक्ष्म लब्ध्यपर्याप्तके निगोदिया घनांगुलके असंख्यातवां भाग अवगाहना-का शरीर धरकर लोकाकाशके मध्य जो मेरुके नीचे आठ प्रदेश हैं उनको मध्यमें लेकर जन्मे। सांसके अठारहमें भाग आयु पाय मरे वही जीव फिर वहीं उतनी ही अवगाहनाका शरीर धारे। ऐसे क्रमसे उतनीवार धारे जितने प्रदेश घनांगुलके असंख्या-तवें भाग प्रमाण जघन्य अवगाहनामें हैं। फिर उससे निकटवर्ती एक प्रदेशको रोककर उपजे इस तरह एक एक प्रदेश क्रमसे रोकता रोकता लोका-काशके सर्व प्रदेशोंको अपना जन्म क्षेत्र बनाले। जितना काल लगे सो परक्षेत्र परिवर्तन है। दोनोंका जोड़ सो इस क्षेत्र परिवर्तनका काल है। (गो० जी० गा० ५६०);

क्षेत्र लोकोत्तर मान–जघन्य एक प्रदेश उत्कृष्ट सर्व आकाश। (त्रि० गा० ११);

क्षेत्र विपाकी कर्म प्रकृति–नरक, देव, तिर्यंच व मनुष्य गत्यानुपूर्वी ये चार प्रकृति जिनके उद-यसे विग्रह गतिमें जीवका आकार पूर्व शरीर प्रमाण बना रहता है। (जै० सि० प्र० नं० ३४९);

क्षेत्र वृद्धि अतीचार–दिग्विरतिका चौथा अ-तीचार। क्षेत्रकी जो मर्यादा जन्म पर्यंत कर चुका है उसमें एक तरफ बढ़ा लेना, दूसरी तरफ घटा देना। (सर्वा० अ० ७–३०);

क्षेमंकर–लौकांतिक देवोंका एक भेद जो अंत-रालमें है, (त्रि० गा० ५३७); विजयार्द्धकी दक्षिण श्रेणीमें ६४ वां नगर, (त्रि० गा० ७००); भर-तके गत तीसरे कालके अन्तमें प्रसिद्ध तीसरे कुल-कर, (त्रि० गा० ७९१); ज्योतिष ८८ ग्रहोंमें ६१ वां ग्रह। (त्रि० गा० ६६);

क्षेमंधर–भरतके गत तीसरे कालमें प्रसिद्ध चौथे कुलकर, (त्रि० गा० ७९३);

क्षेमचरी–विजयार्द्धकी दक्षिण श्रेणीमें २२ वां नगर। (त्रि० गा० ६९८);

क्षेमपुरी–विदेहकी दूसरी राजधानी। (त्रि० गा० ७१२);

क्षेमराज–णमोकार ध्यानार्णव (१४४६ श्लोक) के कर्ता। (दि० ग्रं० नं० ४०४);

क्षेमा–विदेहकी पहली राजधानी (त्रि. ७१२)

क्षौद्रवर–सातवां महाद्वीप व समुद्र (त्रि.गा.३०४)

ख

खड्गपुरी–विदेह क्षेत्रकी ३० वीं नगरी।
(त्रि० गा० ७१५)

खड्गा–विदेह क्षेत्रकी चौथी नगरी।
(त्रि० गा० ७१२)

खड्गासन–कायोत्सर्ग, दोनों हाथ लम्बे लट-काके चार अंगुलके अंतरसे पगोंको रखकर सीधा ध्यानरूप खड़े होना।

खड्गसेन–पंडित नारनौलवालेने आगरामें सं० १७१३ में त्रिलोक दर्पण छन्द बन्द रचे। (दि० ग्रं० नं० १४–४१);

खड्गसेन गृहस्थ–आशाधर कृत सहस्रनाम पूजा व त्रिलोकदर्पण कथाके कर्ता। (दि०ग्रं० नं० ९१);

खड़ी–दूसरे नरककी पृथ्वीमें पांचवां इन्द्रक बिला।

खड़िका–दूसरे नरककी पृथ्वीमें छठा इन्द्रक बिला। (त्रि० गा० १५५)

खंडगिरि–उड़ीसामें कटकसे तीसरा स्टेशन। भुवनेश्वरसे ९ मील–पहाड़ी इसमें कई गुफाओंमें १५० जैन मूर्तियां हैं। कई गुफायें मुनियोंके ध्यान करनेकी हैं। खारवेलके नामवाली शिलालेख भी हैं जैसे 'आचार्य कुलचन्द्र कृत' '[illegible] शुभचंद्र [illegible] ([illegible] पृ० ९१२)। [illegible] सन् ई० पू० १६० वर्ष होसक्ता है। इसकी हाथी गुफा है

खंड प्रपात–विजयार्द्ध पर्वतकी गुफा।
(त्रि० गा० १९१)

खदिरसार—एक भीलोंका राजा जिसने मांसका त्याग किया था (सा० अ० २-९) श्रेणिकराजाका तीसरा पूर्वभव (उ० पु० प० ७४ श्लो० ३८६)

खरकर्म-अत्यन्त पापरूप काम, क्रूर व्यापार वे १५ हैं—

(१) वनजीविका—वृक्षोंको कटाकर वेचना।

(२) अग्निजीविका—कोयले ईंट आदि बनानेकी जीविका।

(३) अनोजीविका या शकटजीविका—गाड़ी आदि बनवाकर व जोतकर जीविका करना।

(४) स्फोटजीविका-वारूद आदि बनाकर वेचना।

(५) भाटकजीविका-गाड़ी घोड़े आदिसे बोझा ढोकर जीविका।

(६) यंत्रपीडन-यंत्रोंको चलाना जैसे कोल्हूसे तेल।

(७) निर्लांछन-शरीरके अंग छेदना जैसे बैलकी नाक।

(८) असती दोष-बिल्ली कुत्ता पालना व दासदासी पालकर भाड़ा उपजाना।

(९) सद:शोष-तालावका सुखवाना।

(१०) दवप्रद-अग्नि लगवाना।

(११) विषवाणिज्य-विषादि द्रव्य वेचना।

(१२) लाक्षा-वाणिज्य-लाख आदि वेचना।

(१३) दंतवाणिज्य-हाथी दांत वेचना।

(१४) केश वाणिज्य-दासी दास पशु वेचना।

(१५) रस वाणिज्य-मक्खन, मधु आदि वेचना। (सा० अ० ५।२१-२३)

खरभाग—रत्नप्रभा पहली पृथ्वी जो अधोलोककी है उसका पहला भाग सोलह हजार योजन मोटा है। इसके १६ भाग हैं। हरएक १००० योजन मोटा है वे हैं—१ चित्रा, २ वज्रा, ३ वडूर्या, ४लोहिता, ५ कामसार कल्पा, ६ गोमेधा, ७ प्रवाला, ८ ज्योतिरसा, ९ अंजना, १० अंजनमूलिका, ११ अंका, १२ स्फटिका, १३ चंदना, १४ सर्वार्थिका, १५ वकुला, १६ शैला। सुमेरु पर्वतकी जड़ चित्रा पृथ्वीके अंत तक चली गई है जो १००० एक हजार योजन है। ऊपर नीचेके चित्रा व शैलाको छोडकर शेष १४ भागोंमें असुरकुमारको छोड़कर नौ प्रकार भवनवासी व राक्षसोंको छोडकर सात प्रकार व्यंतरोंके निवास हैं (त्रि० गा० १४६)

खात फल—क्षेत्रफलको गहराईसे गुणनेपर खात फल होता है। जैसे एक कुँड १ लाख योजन व्यासका है व एक हजार योजन गहरा है तब परिधि तीन लाख व क्षेत्रफल $\frac{100000}{4} \times 300000$ होगा इसको १००० से गुणनेपर खात फल होगा $\frac{30000000000000}{4}$ योजन। (त्रि० गा० १७)

खुशाल—पंडित। मुक्तावली उद्यापन आदिके कर्ता (दि० ग्र० नं० ५९);

खुशालचन्द्र—पं०। सद्भाषितावली छन्दके कर्ता सं० १७७३ (दि० ग्र० नं० १६);

खुशालचन्द काला—सांगानेरी (१७८०) हरिवंशपुराण, यशोधरचरित्र, पद्मपुराण, उत्तरपुराण, धन्यकुमारचरित्र, जंबूचरित्र आदिके पद्यमें रचयिता। (दि० ग्र० नं० १५);

खूबचन्द—पं०—अनगार धर्मामृत, तत्वार्थाधिगमसूत्र आदिके भाषा कर्ता, गोपालदास दि० जैन सिद्धांत विद्यालय मोरेना (ग्वालियर) के मंत्री।

खेट—नदी और पर्वतसे वेष्टित वसती। (त्रि० गा० ६७६);

खेतसी—पं०। जंबूचरित्र व सम्यक्त कौमुदीको छन्दमें रचयिता। (दि० ग्र० नं० १७);

खर्वट—पर्वतसे वेष्टित वसती (त्रि०गा० ६७६)

ग

गगनचन्द्र—सुग्रीवके भाई वालीके दीक्षा गुरु। (ह० २ पृ० ६७);

गगनचरी—विजयार्द्धकी दक्षिण श्रेणीमें सत्ताइसवां नगर (त्रि० गा० ६९९);

गगननन्दन–विजयार्द्धकी उत्तर श्रेणीमें तेइसवां नगर (त्रि॰ गा॰ ७०४);

गगनवल्लभ–विजयार्द्धकी उत्तर श्रेणीमें तेतीसवां नगर। (त्रि॰ गा॰ ३०६);

गंगकीर्ति–आचार्य ११९९ (दि.ग्र.नं॰ ६०)

गंगदेव–कवि श्रावक प्रायश्चित्तके कर्ता। (दि॰ ग्र॰ नं॰ ६१);

गंगादास–सम्मेदविलास, सम्मेदशिखर पूजा आदिके कर्ता। (दि॰ ग्र॰ नं॰ ६२);

गंगानदी–महागंगा नदी जो भरतके हिमवन् पर्वतके पद्मद्रहके पूर्व वज्रद्वारसे निकलकर पर्वतपर पांचसौ योजन जाकर, पर्वतपर गंगा नामा कूट है उसको आध योजन छोड़ मुड़कर दक्षिण दिशाकी तरफ चलकर ५२३ योजन आध कोश जाय तटपर गई, वहां जीह्विका नामा मणिमई प्रणाली है। जो दो कोश लम्बीकुँची गौमुख है। छः योजन एक कोश चौड़ी है। इसके द्वारसे पर्वतसे पड़ी पचीस योजन हिमवत्की छोड दश योजनकी चौड़ाईके लिये पर्वतके मूलमें जो कुँड दस योजन गहरा व साठ योजन चौड़ा गोल है उसमें पड़ती है। उस कुण्डके मध्य जलसे ऊपर आध योजन ऊँचा योजन चौड़ा गोल टापू है। उसके मध्य दश योजन ऊँचा पर्वत है। उसपर श्री देवीका मंदिर है। उस मंदिरके ऊपर कमलासनपर श्रीजिनबिम्ब है उसपर गंगानदीका जल पडता है। इस कुण्डसे निकल दक्षिण दिशा सुधी जाय विजयार्द्धकी खण्डप्रपात गुफाको कुतप देहलीके नीचे होकर गुफामें प्रवेशकर आठ योजन चौड़ी होकर उस गुफाके उत्तरद्वारकी दिहलीके नीचे होकर गुफासे बाहर निकलती है। वहां गुफाके दो कुण्डोंसे निकली हुई उनमग्न व निमग्न नामी नदियें गंगामें मिलती हैं। फिर यह गंगा दक्षिण भरतके आधे भागमें सीधी दक्षिणको गई सो ११९$\frac{3}{38}$ योजन गई फिर मुड़कर पूर्व दिशा सन्मुख होकर जंबूद्वीपके कोटका मागध नामा द्वारके भीतर होकर लवणसमुद्रमें पड़ी है। जब गंगा नदी निकलती है तब सवा छ योजन चौड़ी होती है। इसका दश गुणा साढ़े बासठ योजन होकर समुद्रमें गिरती है (त्रि॰ गा॰ ५८२....) ऐसी दो दो गंगा नदी धातुकी खंड व पुष्करार्द्धमें भी हैं, विस्तारमें अंतर है, यह नदी अकृत्रिम है सदा ऐसी बहा करती हैं।

गच्छ–सात मुनियोंका समूह (मू॰गा॰ १५३)

गज–सौधर्म ईसान स्वर्गोंमें उनतीसवां इन्द्रक विमान (त्रि॰ गा॰ ४६६)

गजकुमार–वसुदेवजीका पुत्र अंतमें मुनि हुए उपसर्गसह स्वर्ग गए।

गजदन्त–मेरुकी चार विदिशाओंमें हाथीके दांतके आकार चार पर्वत हैं–माल्यवान, महासौमनस, विद्युप्रभ, गंधमादन। ये पर्वत मेरुपर्वत व नील व निषिद्ध कुलाचलोंको स्पर्शते हैं (त्रि. गा. ६६३–६६४) इनपर क्रमसे ईशान दिशासे लगाय नव सात, नव सात कूट हैं, (त्रि. गा. ७३७) पांच मेरु सम्बन्धी ढाईद्वीपमें बीस गजदंत हैं। इनके मध्यमें दोनों तरफ सुमेरुके उत्तम भोगभूमि है।

गजपन्था–तीर्थ, दि॰जैन सिद्धक्षेत्र। बंबई प्रांत नासिक स्टेशनसे ९ मील व नासिक शहरसे ४मील। उत्तरको मसरूल गामसे १ मील४००फुट ऊँचा है। यहांसे आठ कोड़ि मुनि व बलभद्रादिने मोक्ष पाई है। ऊपर चरणचिह्न हैं व गुफाओंमें प्राचीन दि.जैन मूर्तियां अंकित हैं नीचे मंदिर व धर्मशाला हैं (या॰ द॰ पृ॰ २९१);

गण–तीन मुनियोंका समूह (मू. गा. १५५) वृद्ध मुनियोंका समुदाय (ह॰ पृ॰ ६१२);

गणग्रह क्रिया–दीक्षान्वय क्रिया चौथी। नया दीक्षित जैनी अपने घरसे पूर्व स्थापित अन्य देवताओंकी मूर्तियोंको अन्य स्थानमें पधरावे। रागी देवोंको विदाकर वीतराग देवकी पूजा व स्थापना करे। (गृ॰ अ॰ ६)

गणकपति–ज्योतिषियोंका नायक (त्रि.गा.६८३)

गणधर—गणेश, मुनियोंके स्वामी—चौवीस तीर्थंकरोंके १४९१ गणधर हुए हैं। ये सब मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय चार ज्ञानधारी व मोक्ष जाते हैं। २४ तीर्थंकरोंके गणधरोंकी संख्या व मुख्य गणधर—

तीर्थंकर नं०	संख्या	मुख्य गणधर
१ ऋषभ	८४	वृषभसेन
२ अजित	९०	सिंहसेन
३ संभव	१०५	चारुदत्त
४ अभिनंदन	१०३	वज्र
५ सुमति	११६	चमर
६ पद्मप्रभ	१११	वज्र चमर
७ सुपार्श्व	९५	बलि
८ चंद्रप्रभ	९३	दत्तक
९ पुष्पदंत	८८	वैदभि
१० शीतल	८१	अनगार
११ श्रेयांस	७७	कुन्थु
१२ वासुपूज्य	६६	सुधर्म
१३ विमल	५५	मंदरार्य
१४ अनंत	५०	जय
१५ धर्म	४३	अरिष्टनेमि
१६ शान्ति	३६	चक्रायुध
१७ कुन्थु	३५	स्वयंभु
१८ अर	३०	कुन्थु
१९ मल्लि	२८	विशाखाचार्य
२० मुनिसुव्रत	१८	मल्लि
२१ नमि	१७	सोमक
२२ नेमि	११	वरदत्त
२३ पार्श्व	१०	स्वयंभू
२४ महावीर	११	गौतम (इन्द्रभूति)
कुल गणधर	१४५२	

(ह० ए०५७५–५७६)

गणवद्ध—चक्री निधि और रत्नोंकी रक्षा करनेवाले १६००० गणबद्ध जातिके व्यंतरदेव (ह.ए.६८)

गणाधिप—धर्माचार्य; गृहस्थाचार्य (सा० अ० ९–९१)

गणिका महत्तरी—देवोंमें एक एक इन्द्र प्रति दो दो होती हैं जो प्रसन्न करनेवाली देवी होती हैं। आध पल्यकी आयु होती है। (त्रि० गा० २७९)

गणित—लौकिक पारलौकिक देखो शब्द "अंक विद्या" (प्र० जि० ए० १०४)

गणितसार संग्रह—श्री महावीराचार्य गणधर चक्रवर्ती रचित सन् ८१४–८७८ दक्षिण भारतमें राजा अमोघवर्ष नृपतुंग राष्ट्रकूटवंशीके समयमें देखो (प्र० जि० ए० ८६ नोट) मुद्रित है।

गणिमान—लौकिकमान। एक दो तीन चार आदि गणना। (त्रि० गा० ९)

गतागत—देखो शब्द "आगत"।

गत चौवीसी—भरतके भूतकाल २४ तीर्थंकरोंके नाम—१ निर्वाण, २ सागर, ३ महासाधु, ४ विमलप्रभ, ५ श्रीधर, ६ सुदत्त, ७ अमलप्रभ, ८ उद्धर, ९ अंगिर, १० सन्मति, ११ सिंधुनाथ, १२ कुसुमांजलि, १३ शिवगण, १४ उत्साह, १५ ज्ञानेश्वर, १६ परमेश्वर, १७ विमलेश्वर, १८ यशोधर, १९ कृष्णमति, २० ज्ञानमति, २१ शुद्धमति, २२ श्रीभद्र, २३ अतिक्रांत, २४ शांति। (जैन बालगुटका)।

गतशोकी—नन्दीश्वर द्वीपमें दक्षिण दिशाकी चौथी पावड़ी (त्रि. गा. ९६९);

गति-गति नामके उदयसे जो पर्याय हो, गम्यते "प्राप्यते जीवेन इति गतिः" जो जीवके द्वारा प्राप्त की जाय। जिसके कारण गतिमें जीव जाते हैं। गति चार हैं—१ नरकगति यानारत गति अर्थात नारकी वहां पीड़ित हो, रति नहीं करते या निरय गति अयः अर्थात् पुण्य कर्मसे रहित ऐसी गति, २ तिर्यंचगति—जहां तिरोभव जो मायारूप परिणाम उनको अचंति अर्थात प्राप्त हो। एकेंद्रियसे लेकर पंचेन्द्रिय पशु आदि, ३ मनुष्यगति—जो नित्य मनन करें, मन जिनका उत्कृष्ट हो, ४ देवगति—जो दीव्यंति अर्थात् क्रीड़ा करें, हर्ष करें। (गो० जी० गा० १४६–१५१); गमन, क्षेत्रसे क्षेत्रांतर जाना। (गो० जी० ६०५);

गतिगमन—लेश्या या कषाय रहित योग प्रवृत्ति रूप भाव जैसे मरते समय होते हैं वैसे ही पापोंका जहां संयोग होता है उसी गतिमें, जीव जाता है—

लेश्या भेदसे		कहां जाता है
(१) उत्कृष्ट शुक्ल लेश्या		सर्वार्थसिद्धि
(२) जघन्य ,, ,,		शतार सहस्रार स्वर्गमें
(३) मध्यम ,, ,,		इन दोनोंके मध्य
(४) उत्कृष्ट पद्म लेश्या		सहस्रार स्वर्ग
(५) जघन्य ,,		सनत्कुमार माहेन्द्र स्वर्ग
(६) मध्यम ,,		इन दोनोंके मध्यमें
(७) उत्कृष्ट पीत लेश्या		सनत्कुमार माहेन्द्र स्वर्ग
(८) जघन्य ,,		सौधर्म ईशान
(९) मध्यम ,,		इन दोनोंके मध्यमें
(१०) उत्कृष्ट कृष्ण लेश्या		सातवां नरकका इंद्रक
(११) जघन्य ,,		पांचमा नरक, अंतइंद्रक
(१२) मध्यम ,,		दोनोंके मध्यमें
(१३) उत्कृष्ट नील लेश्या		पांचवा नरकका अंतसे पहला इन्द्रक
(१४) जघन्य ,,		तीसरा नरकका अंत इंद्रक विला
(१५) मध्यम ,,		दोनोंके मध्यमें
(१६) उत्कृष्ट कापोत लेश्या		तीसरा नरकका अंतसे पहला इंद्रक
(१७) जघन्य ,,		पहला नरक पहला इंद्रक
(१८) मध्यम ,,		दोनोंके मध्यमें

(गो० जी० गा० ५२०-५२६)

गतिनाम कर्म—वह कर्म जिसके उदयसे चार गतिमेंसे किसीमें जावे ।

गतिपरिणाम—गमनका स्वभाव जीवका ऊपर जानेका ।

गति मार्गणा—चार गतियोंमें यदि ढूंढा जावे तो सर्व संसारी जीव मिल जावेंगे ।

गद्यचिंतामणि—जीवन्धर चरित्र सं० में मनोहर गद्य । मुद्रित ।

गन्ध—मध्य लोकमें रहनेवाले व्यंतरोंकी जाति जो १ लाख दस हजार एक हाथ पृथ्वीसे ऊपर वसते हैं, इनकी आयु अस्सी हजार वर्षकी होती है । (त्रि० गा० २९१-३) सातवें क्षौद्र समुद्रका स्वामी व्यंतरदेव (त्रि० गा० ९६४)

गन्धकुटी—चैत्यालयका मध्य भाग जहां प्रतिमा विराजमान होती है । समवसरणमें अर्हंतके विराजनेका स्थान सदा गंध युक्त रहता है इससे उसे गंधकुटी कहते हैं । (सा० अ० ६-१४)

गन्ध नाम कर्म—जिसके उदयसे शरीरमें गंध हो ।

गन्धमादन—जंबूद्वीपमें मेरुकी विदिशामें एक गजदंत (त्रि० गा० ६६३) इसपर सात कूट हैं । एक कूटका भी नाम है ।

गन्धमालिनी—विदेहका बत्तीसवां देश जो सीतोदा नदीके उत्तर तटपर है; गंध मादनगजदंतका एक कूट । (त्रि० गा० ७४१)

गन्धर्व—व्यंतर देवोंमें चौथा भेद । इनकी भी दश जातियें हैं—१ हाहा, २ हूहू, ३ नारद, ४ तुंबुरु, ५ कदंब, ६ वासव, ७ महास्वर, ८ गीतरति, ९ गीतयशा, १० दैवत, (त्रि० गा० २६३) मेरु पर्वतके नंदनवनमें एक भवनका नाम (त्रि० गा० ६१९) विजयार्द्धकी उत्तर श्रेणीमें छत्तीसवां नगर (त्रि० गा० ७०५)

गन्धर्व सेना—पाटलीपुत्रके राजा गंधर्वदत्तकी कन्या गानमें बड़ी चतुर थी । इसने यह अहंकार किया जो मुझे जीत लेगा, उसके साथ विवाह करूंगी । एक पांचाल उपाध्याय ५०० शिष्यों सहित गया । व महेलके पास रातको तीन चार बजे ऐसा मधुर गान किया कि गंधर्वसेनाकी आंख खुली । वह गानके वशीभूत हो दौड़कर आने लगी, तो उसका पग फिसल गया और जमीनपर गिरकर मर गई । यह कर्णइन्द्रियकी विषयलंपटताका दृष्टांत है ।

(आ० कथा० नं० ५९)

गन्धवती—शिखरी कुलाचलपर नौमा कूट । (त्रि० गा० ७२९)

गन्धहस्त महाभाष्य—श्री समंतभद्राचार्य कृत ८४००० श्लोक तत्वार्थसूत्र टीका—इसका संकेत मिलता है, ग्रंथका पता नहीं।

गन्धा—विदेहका २९ वां देश सीतोदाके उत्तर तट।

गंधिला—विदेहका ३१ वां देश।सीतोदाके उत्तर तट। (त्रि० गा० ६९०);

गन्धोदक—सुगंधित प्रासुक जल, चंदन, केशर मिश्रित, जिससे श्री तीर्थंकर भगवानकी प्रतिमाका न्हवन हो वही फिर भक्तोंसे नमन किया जाता है व मस्तक व नेत्रमें लगाया जाता है।

गम्भीर—महोरग जातिके व्यंतरोंकी एक जाति (त्रि० गा० २६१);

गम्भीर मालिनी—सीतोदा नदीके उत्तर तट एक विभङ्गा नदी। (त्रि० गा० ६६९);

गरुड़—सुपर्णकुमार भवनवासी देवोंमें तीसरा भेद; सौधर्म ईशान स्वर्गमें १८वां इंद्रक (त्रि.गा.४६६)

गरुड़ध्वज—विजयार्द्धकी दक्षिण श्रेणीमें ८ वां नगर (त्रि० गा० ६९७)

गर्तपूर्ण भिक्षावृत्ति—जैन साधुओंकी भिक्षाकी रीति। जैसे कोई घरमें गड्ढा हो उसको पाषाण धूलसे भरकर बराबर किया जाता है उसी तरह साधु उदररूप खाड़ेको जैसे तैसे रस नीरस शुद्ध आहारसे भरते हैं (त्रि० पृ०, ११६)

गर्दतोय—लौकांतिक देवोंका पांचवां भेद। ये देव पांचवें स्वर्गके अन्तमें रहते हैं।

गर्भज—जो पशु या मानव माताके रज व पिताके वीर्यके सम्बन्धसे पैदा हो।

गर्भजन्म—माताके रज व पिताके वीर्यसे प्राप्त गर्भद्वारा जन्मना। इसके तीन भेद हैं—१ जरायुज—जो मांसकी झिल्लीसे वेढ़े पैदा हों। २ अंडज—जो अंडोंसे पैदा हों। ३ पोत—जो दोनों रहित पैदा होते ही चलने लग जावें। (सर्वा० अ० २।३३)

गर्भाधान क्रिया व संस्कार—गर्भान्वय ५३ क्रियाओंमें पहला संस्कार। पुरुष स्त्री सम्भोगकी इच्छासे स्त्रीके रजस्वला होनेके पांचवें दिन या छठे दिन दोनों स्नान कर, शुद्ध वस्त्र पहनकर अरहंतकी पूजा करें फिर घर जाकर होम व पूजा करें, दान करें, दिनभर आनन्दसे वितावें, रात्रिको पुत्रोत्पत्तिकी इच्छासे सम्भोग करें। मंत्रादि देखो (गृ. अ. ४);

गर्हा—अपनेमें गुण होते हुए भी अपनी निंदा अपने मनमें करते रहना यह सम्यक्तीका लक्षण है। (गृ० अ० ७);

गलितावशेष—गलितावशेष गुणश्रेणिके प्रारम्भ करनेको प्रथम समयमें जो गुणश्रेणि आयामका प्रमाण था उसमें हरएक समय व्यतीत होते हुए द्वितीयादि समयोंमें गुणश्रेणि अयात्र क्रमसे एक एक निषेक घटती होना सो गलितावशेष है। (ल.पृ.२२)

गलितावशेष गुणश्रेणी—उदयकी आवलीके बाहर जो गुणश्रेणी आयाम हैं। जहां द्रव्य असंख्यात १ गुणा क्रमरूप मिलाया जाता है सो गुणश्रेणी है उसमें जो गलितावशेष हो अवस्थित न हो (ल.पृ.२१)

गा

गाधवती—सीता नदीके उत्तर तटपर पहिली विभङ्गा नदी (त्रि० गा० ६६७);

गारव—अहंकार, सम्यग्दृष्टी गारव नहीं करता है। यह गारव तीन प्रकार है—१ ऋद्धि गारव—ऋद्धि सिद्ध हों व धन अधिक हो तो बड़ा मानके अहंकार करना, २ रसगारव—मुझे रसीला भोजन मिलता है! मैं बड़ा पुण्यवान हूं। ३ सातगारव—मैं सातामें सदा रहता हूं, मेरे बराबर पुण्यवान कोई नहीं। (भ० पृ० ११७);

गार्हपत्य (कुण्ड)—होम करते हुए जो तीर्थंकरकी निर्वाणकी अग्निका स्थापनारूप चौखुंटा बनाया जाता है इसे प्रणीताग्नि कहते हैं (गृ०अ० ४);

गि

गिरनार—श्री नेमिनाथ स्वामीका मोक्ष कल्याणकका पर्वत काठियावाड़में देखो "ऊर्जयन्त"।

गिरनार महात्म्य–पुस्तक मुद्रित ।

गिरिशिखर–विजयार्द्धकी उत्तर श्रेणीमें ४९वां नगर । (त्रि० गा० ७०८);

गी

गीतयशा–गंधर्व जातिके व्यंतरोंमें नौमा भेद (त्रि. गा. २६३); गंधर्वोंका इन्द्र (त्रि. गा. २६४);

गीतरति–ईशानादि उत्तर इन्द्रोंकी सात प्रकार सेनामें नर्त्तकी सेनाका प्रधान देव (त्रि० गा० ४९७); गंधर्वोंका इन्द्र (त्रि०गा० २६४); गंधर्व जातिके व्यन्तरोंमें ८वां भेद (त्रि.गा. २६३);

गु

गुण–पूरे द्रव्यमें जो व्यापक हो व द्रव्यके साथ सर्व पर्यायोंमें पाया जावे । द्रव्यके साथ सहभावी हो। दो भेद हैं, सामान्यगुण जो सर्व द्रव्योंमें रहे, अस्तित्व आदि । विशेष गुण–जो सब द्रव्योंमें न व्यापें जैसे जीवका चेतना गुण (जै०सि० प्र० नं० ११३–६);

गुणकीर्ति–आचार्य सं० १०३७ (दि० ग्र० नं० ६६);

गुणचन्द्र–आचार्य सं० १०४९ (दि० ग्र० नं० ६७), भट्टारक सं० १२०० जैन पूजा पद्धति आदिके कर्ता । (दि० ग्र० नं० ६८)

गुणधरस्वामी–जयधवल सिद्धांत तथा चूर्ण सिद्धांतकी टीका । (दि० ग्र० नं० ६९)

गुणनंदि–आचार्य सं० २६३, (दि० ग्र० नं० ६३); भट्टारक ऋषि मण्डन विधान आदिके कर्ता । (दि० ग्र० नं० ६४)

गुणभद्र भट्टारक–पूजा कल्प, धन्यकुमार चरि त्रादिके कर्ता । (दि० ग्र० नं० ७२)

गुणभद्राचार्य–त्रिभुवनाचार्यके शिष्य, कुन्देन्दु प्रकाश काव्य व हरिवंशपुराणके कर्ता । (दि०ग्र० नं० ७१)

गुणभद्रस्वामी–जिनसेनाचार्यके शिष्य, आदिपुराणका उत्तर भाग, उत्तरपुराण, आत्मानुशासन, भावसंग्रह, जिनदत्त काव्य आदिके कर्ता । (दि० ग्र० नं० ७०)

गुणभूषण–कवि । भव्यजन चित्तवल्लभ, श्रावकाचार हिन्दी टीका सहित मुद्रित । (दि.ग्र.नं. ७३)

गुणरत्नाचार्य–षट्दर्शन समुच्चयटीका (६००० श्लोक) (दि० ग्र० नं० ७९)

गुणवती–वानरवंशी, वानरद्वीपके राजा अमरप्रभने लंकाके राक्षसवंशी राजाकी कन्या गुणवतीको विवाहा । इस राजाके समयसे बन्दरोंके चिह्न सब ध्वजाओंपर रक्खे गए तबसे वानरवंशी कहलाए । (इ० २ पृ० ५६)

गुणवर्म–कर्णाटक जैन कवि (सन् १०९०) लक्षण ग्रन्थकर्ता । प्रसिद्ध कवि । हरिवंशपुराणका कर्ता (क० नं० २०)

गुणवर्म–कर्णाटक जैन कवि । सन् १२२५ पुष्पदंतपुराणका कर्ता (क० नं० ५७) इसकी उपाधियें हैं । गुणाम्नवनकलहंस, कवितिलक आदि ।

गुणप्रत्यय अवधिज्ञान–देखो "क्षायोपशमिक अवधिज्ञान" ।

गुणयोनि–सर्व ही संसारी जीव जहां जहां जन्म धारण करते हैं उन उत्पत्ति स्थानोंको योनि कहते हैं । वे गुणोंकी अपेक्षा नौ प्रकारकी होती है । येही जीवोंके शरीर ग्रहणका आधाररूप स्थान है । वे नौ हैं–

१ सचित्त–जीव सहित शरीर, २ अचित्त–जीव रहित पुद्गल, ३ मिश्र–सचित्त अचित्त, ४ शीत–पुद्गल, ५ उष्ण–पुद्गल, ६ मिश्र, ७ संवृत–गुप्त पुद्गल, ८ विवृत–प्रगट पुद्गल, ९ मिश्र–संवृत विवृत । हरएक योनिमें तीन गुण होने ही चाहिये, चाहे तो सचित्त हो या अचित्त हो या मिश्र हो; तथा वह शीत हो या उष्ण हो या मिश्र हो, और वह संवृत हो या विवृत हो या मिश्र हो। देवनारकियोंकी योनि अचित्त ही है । गर्भसे पैदा होनेवालोंकी योनि सचित्त अचित्त मिश्ररूप है ।

सन्मूर्छन जन्मवालोंकी योनि सचित्त या अचित्त या मिश्र तीनों तरहकी होती हैं।

देवनारकियोंकी योनि यातो शीत है या उष्ण है। गर्भ व सन्मूर्छन जन्म वालोंकी शीत या उष्ण या मिश्र कोई भी होसक्ती है। जैसे अग्निकायिककी उष्ण ही है, जलकायिककी शीत ही है। देवनारकी व एकेन्द्रियोंकी योनि संवृत ही है। द्वेन्द्रिय, तेन्द्रिय व चौन्द्रिय सन्मूर्छनमें पंचेन्द्रियकी विवृत ही है। गर्भजोंकी नियमसे मिश्र ही है। इसहीके भेद गुणोंकी अपेक्षा ८४ लाख होते हैं।

(गो० जी० गा० ८६-८८)

गुणव्रत—जो व्रत पांच अहिंसादि अणुव्रतोंका फल गुणन रूप बढ़ादें। वे तीन हैं—१ दिग्वरति—जन्म पर्यंतके लिये सांसारिक कार्यके हेतु दस दिशामें जाने व व्यवहार करनेकी मर्यादा बांध लेना, २ देशविरति—नित्य थोड़े कालके लिये उस पहली मर्यादामें घटाकर जाने व व्यवहार करनेकी मर्यादा करना, ३ अनर्थदण्डविरति-वे मतलब पाप नहीं करना। जैसे पापका उपदेश देना, बुराई करनेका व खोटा ध्यान करना, खोटी कथादि सुनना, हिंसाकारी वस्तु मांगे देना, प्रमादसे व असावधानीसे वर्तना, पानी भुँघाना आदि। (सर्वा. अ. ७-२१)

गुणश्रेणी—गुणकार रूप जहां कर्मके निपेकोंमें श्रेणीरूप क्रमसे कर्म द्रव्य दिया जाय। (ल.ए. २६)

गुणश्रेणी आयाम—गुणश्रेणीके कर्म निपेकोंका प्रमाण। (ल० ए० २६)

गुणश्रेणी निर्जरा—सत्तामें रहे हुए कर्म परमाणुओंको काट करके जो द्रव्य गुणश्रेणीमें दिया जाय उस गुण श्रेणीके कालमें समय २ असंख्यात गुणा २ क्रमसे पंक्तिवन्ध निर्जरा होना (म.ए. ५९७)

गुणसंक्रमण—समय समय गुणकारके क्रमसे प्रकृतिके परमाणु पलटिकर अन्य प्रकृतिरूप होना (म० ए० ५९७)

गुणस्थान—मोहनीय आदि कर्मोंके उदय, उपशम, क्षय, क्षयोपशम परिणाम रूप जो अवस्था विशेष उनके होते हुए जो जीवके भाव होते हैं उनसे जीव 'गुण्यंते' अर्थात् पहचाने जाते हैं उन भावोंको गुणस्थान कहते हैं (गो० जी० गा० ८) अथवा मोह और योगके निमित्तसे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्ररूप आत्माके गुणोंकी तारतम्य रूप (चढ़ाव रूप) अवस्था विशेष सो गुणस्थान है। (जै० सि० प्र० नं० ५९१)। ये संसारी जीवोंके भावोंकी श्रेणियां हैं जो मोह और योगके निमित्तसे होती हैं। इनको पार करके जीव सिद्ध होजाता है। वे १४ हैं—१ मिथ्यात्व, २ सासादन, ३ मिश्र, ४ अविरत सम्यग्दृष्टि, ५ देशविरत, ६ प्रमत्त विरत, ७ अप्रमत्त विरत, ८ अपूर्वकरण, ९ अनिवृत्ति करण, १० सूक्ष्म सांपराय, ११ उपशांत मोह, १२ क्षीण मोह, १३ सयोग केवली जिन, १४ अयोग केवली जिन। मोहनीय कर्म २८ प्रकार है—तीन प्रकार दर्शन मोहनीय—मिथ्यात्व, मिश्र, सम्यक्त प्रकृति, २५ प्रकार चारित्र मोहनीय है, ४ अनन्तानुबन्धी कषाय जो सम्यक्तको रोकते हैं, ४ अप्रत्याख्यानावरण कषाय जो श्रावकके देशव्रतको रोकते हैं, ४ प्रत्याख्यानावरण कषाय जो साधुके महाव्रतको रोकते हैं, ४ संज्वलन कषाय व ९ नोकषाय, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुंवेद नपुंसकवेद। ये १३ पूर्ण चारित्रको रोकते हैं।

मन वचन कायके निमित्तसे आत्माके प्रदेशोंका सकम्प होना उससे योग शक्ति काम करके कर्मों व नोकर्मोंको खींचती है वह योग है। पहलेसे बारहवें गुणस्थान तक तो मोह और योग दोनोंका निमित्त है, तेरहवें व चौदहवेंमें मात्र योगका निमित्त है। पहले पांच गुणस्थान गृहस्थोंके होसक्ते हैं। छठेसे बारह तक साधुके ही होते हैं। तेरह व चौदह दो गुणस्थान अर्हंत परमात्माके होते हैं। मिथ्यात्व गुणस्थानमें अनंतानुबंधी और दर्शन मोहनका उदय होता है। अनादिसे जीव मिथ्यात्व गुणस्थानमें है। जब अंतरंग निमित्तोंसे

क्षयोपशम, विशुद्धि, देशना, प्रायोग्य और करण इन पांच लब्धिरूप परिणामोंका प्रकाश होता है तब पहलेसे एकदमसे जीव चौथे दरजेमें आकर सबसे पहले उपशम सम्यग्दृष्टी होता है। यह जीव मात्र एक अंतर्मुहूर्तके लिये अनन्तानुबंधी कषाय चार और मिथ्यात्व इन पांच कर्मप्रकृतियोंको उपशम कर देता है। उनका उदय नहीं होता है।

इस अंतर्मुहूर्तमें मिथ्यात्वके कर्मद्रव्यके तीन भाग होजाते हैं। कुछ कर्म सम्यक्त प्रकृतिरूप कुछ मिश्र रूप कुछ मिथ्यात्व रूप रहते हैं। अंतर्मुहूर्त पीछे यह जीव उपशम सम्यक्त अवश्य छोड़ेगा। यदि सम्यक्त प्रकृतिका उदय होगया तो क्षयोपशम या वेदक सम्यक्त होजायगा। गुणस्थान चौथा ही रहेगा। इस सम्यक्तका काल उत्कृष्ट ६६ सागर है। यदि मिथ्यात्वका उदय आगया तो पहले मिथ्यात्व गुणस्थानमें, यदि अनंतानुबन्धी किसी कषायका उदय आया तो दूसरे सासादनमें, यदि मिश्रका उदय आया तो तीसरे मिश्र गुणस्थानमें आजायगा। सासादन काल जघन्य एक समय उत्कृष्ट छः आवली है। इतना काल उपशम सम्यक्तके अन्तर्मुहूर्तमें शेष रहेगा तब यह दरजा होगा। इसमें सम्यक्त छूट गया, परन्तु मिथ्यात्व आया नहीं। यह नियमसे शीघ्र मिथ्यात्व गुणस्थानमें आजाता है, फिर सादि मिथ्यादृष्टी जीव मिश्रके उदयसे तीसरेमें या फिर अनंतानुबंधी व दर्शन मोहनीयकी तीन इन सातोंको उपशम करके चौथेमें आजाता है। तीसरेमें मिथ्यात्व व सम्यक्तके मिले हुए दही गुड़के मिले स्वादके समान भाव होते हैं। इसका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त ही है। यहांसे फिर मिथ्यात्वमें जासक्ता या चौथेमें आ जाता है।

चौथे गुणस्थानमें क्षयोपशम सम्यक्ती उन सातों प्रकृतियोंका क्षय करके क्षायिक सम्यग्दृष्टी भी हो सक्ता है, नहीं तो सातवें गुणस्थान तक क्षयोपशम सम्यक्त बना रहता है। क्षायिक सम्यक्त चौथेसे सातवें तक किसीमें भी प्राप्त होसकता है। क्षायिक सम्यक्त कभी भी छूटता नहीं है तथा जिसको यह प्राप्त होजाता है वह संसारमें अधिकसे अधिक ३३ सागर दो कोड़ पूर्व (आठ वर्ष और एक अंतर्मुहूर्त कम) वर्ष ही रहेगा फिर अवश्य मोक्ष होगा। यह सम्यक्ती यातो उसी भवसे या तीसरे या चौथेसे अवश्य मोक्ष होगा। चौथे गुणस्थानका भी उत्कृष्ट काल ३३ सागर कुछ वर्ष अधिक है। कोई२ जीव एकदमसे पहलेसे पांचवे व सातवेंमें भी चढ़ जाते हैं। जब अप्रत्याख्यानावरण कषायका भी उपशम होजाता है तब यह जीव पांचवेंमें चौथे या पहलेसे आता है। वहां देशव्रती श्रावक होजाता है। ११ प्रतिमाओंके नियम ऐलक तक इसही गुणस्थानमें होते हैं। इस पांचवें गुणस्थानका काल जघन्य अंतर्मुहूर्त उत्कृष्ट आठ वर्ष एक अंतर्मुहुर्त कम एक कोड़ पूर्व वर्ष है, जो उत्कृष्ट आयु विदेहमें होती है।

जब वही जीव प्रत्याख्यानावरण कषायका भी उपशम कर देता है तब पांचवे या पहलेसे एकदमसे सातवेंमें आता है तब साधुकी ध्यानमई अवस्था होती है। यहां वह अप्रमत्त होता है। यहां संज्वलन चार व नौ नोकषायका मंद उदय होता है। इसका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्तसे अधिक नहीं है। फिर तीव्र संज्वलनके उदयसे छठे प्रमत्त गुणस्थानमें आजाता है। साधुका उपदेश, आहार विहार आदि शरीर व वचनकी क्रिया इस छठे गुणस्थानमें होती है। इसका भी उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, फिर पीछे सातवेंमें आता है। कोई साधु आत्मध्यान विना अन्तर्मुहूर्तसे अधिक नहीं रह सक्ता है। छठा सातवां वारवार बदला करता है।

यहांसे आनेजानेको दो श्रेणियां हैं—एक क्षपक श्रेणी जहां मोहका क्षय किया जाता है। दूसरी उपशम श्रेणी जहां मोहका उपशम किया जाता है। जो उसी भवसे मोक्ष जायगा उसे

अवश्य क्षपकश्रेणीपर चढ़ना होगा। क्षायिक सम्यग्दृष्टी साधु ही इस श्रेणीपर चढ़ता है। चढ़नेके पहले सातवेंमें अधःकरणके अनन्तगुणी विशुद्धताको समय समय बढ़ानेवाले परिणाम होते हैं जिनसे तेरह कषायोंका उदय अति मन्द होजाता है। तब यह अपूर्वकरण लब्धिको पाता है, जहां अंतर्मुहूर्त तक अपूर्व विशुद्ध परिणाम होते हैं। इस ८वें गुणस्थानका इतना ही काल है, फिर अनिवृत्तिकरण लब्धिको पाता है जहां और भी विशुद्ध परिणाम होते हैं। यही अनिवृत्तिकरण नौमा गुणस्थान है। इसका भी काल अंतर्मुहूर्तसे अधिक नहीं है। सातवें गुणस्थान तक धर्मध्यान होता है, आठवेंसे शुक्लध्यान होता है।

पहले शुक्लध्यानके बलसे यह साधु मात्र सूक्ष्म लोभको छोड़कर शेष सर्व कषायको क्षय कर डालता है तब दसवां गुणस्थान होता है। यहां सूक्ष्म लोभको भी क्षय करता है। इसका काल भी अंतर्मुहूर्त है। फिर क्षीणमोह बारहवें गुणस्थान वाला होजाता है। यह साधु ग्यारहवें गुणस्थानको स्पर्श नहीं करता है। बारहवेंका काल भी अंतर्मुहूर्त है। यहां दूसरा शुक्लध्यान होजाता है तब ज्ञानावरण, दर्शनावरण व अन्तराय तीन शेष घातिया कर्मोंका नाश कर सयोगकेवली जिन होजाता है। तेरहवां गुणस्थान होते ही अर्हत् परमात्मा कहलाते हैं। इसका काल जघन्य अंतर्मुहूर्त उत्कृष्ट एक करोड़ पूर्व वर्षमें आठ वर्ष व १ अंतर्मुहूर्त कम है। यहीं उपदेश व विहार होता है। जब अंतर्मुहूर्त शेष रहता है तब सूक्ष्म योग रह जाता है। यह तीसरा शुक्लध्यान है। फिर शीघ्र ही चौदहवें अयोगी जिन गुणस्थानमें आ जाता है। वहां चौथा शुक्लध्यान होता है तब आयु मात्र उतनी रह जाती है जितनी देर अ इ उ ऋ लृ इन पांच लघु अक्षरोंके कहनेमें समय लगे। वहां शेष रहे वेदनी, नाम, गोत्र, आयु इन चार अघातिया कर्मोंका क्षय कर सिद्ध परमात्मा होजाता है।

जो क्षपकश्रेणी नहीं चढ़ता है वह सातवेंसे उपशम श्रेणी उसी प्रकार चढ़ता है। क्षपकश्रेणीमें जहां २ कषायोंका क्षय होता है वहां उपशम श्रेणीमें उपशम होता है। क्षायिक सम्यक्ती भी चढ़ सक्ता है। यदि क्षयोपशमसे क्षायिक नहीं होसका तो सातों कर्मोंका उपशम करके द्वितीयोशम सम्यक्ती होजाता है। यह आठवें नौमें व दसवेंको तयकर सर्व मोहका उपशम करके उपशांत मोह ग्यारहवेंमें आता है। इसके आगे मार्ग नहीं है। इसका भी काल एक अन्तर्मुहूर्त है। फिर कषायके उदय आनेपर क्रमसे गिरता है। सातवेंमें आता है, गिरकर छठेमें भी आजाता है। छठेसे भी क्रमसे या एकदमसे गिरता हुआ पहले तक आजाता है। यदि पांचवेंसे ११ वें तक कोई गुणस्थानवाले मरते हैं तो चौथेमें आकर स्वर्गमें जाते हैं। क्षपकश्रेणी वाला नहीं मरता है।

गुण०	गुणस्थानोंका चढ़ना व गिरना कौन गुण० तक
१	३, ४, ५, ७
२	१,
३	१, ४,
४	१, २, ३, ५, ७,
५	१, २, ३, ४, ७,
६	१, २, ३, ४, ५, ७
७	६, ८, ४
८	७, ९, ४
९	८, १०, ४
१०	९, ११, १२, ४
११	१०, ४
१२	१३,
१३	१४,
१४	सिद्ध

गुणस्थान कर्मरचना—१४८ कर्मप्रकृतियों—बंधकी अपेक्षा १२०=१४८—(१६ वर्णादि+१० बंधन संघात +२ मिश्र सम्यक्त) उदयकी अपेक्षा १२२=(१२०+मिश्र+सम्यक्त)। सत्तामें १४८।

	बन्ध			उदय			सत्ता		
नं०	बंधाभाव	बन्ध	बन्ध व्युच्छिति	उदयाभाव	उदय	उदय व्युच्छिति	सत्ता भाव	सत्ता	सत्ता व्युच्छिति
१	३	११७	१६	५	११७	५	०	१४८	०
२	१९	१०१	२५	११	१११	९	३	१४५	०
३	४६	७४	०	२२	१००	१	१	१४७	०
४	४३	७७	१०	१८	१०४	१७	०	१४८	१
५	५३	६७	४	३५	८७	८	१	१४७	१
६	५७	६३	६	४१	८१	५	२	१४६	०
७	६१	५९	१	४६	७६	४	२	१४६	८
८	६२	५८	३६	५०	७२	६	१०	१३८	०
९	९८	२२	५	५६	६६	६	१०	१३८	३६
१०	१०३	१७	१६	६२	६०	१	४६	१०२	१
११	११९	१	०	६३	५९	२	१०	१३८	०
१२	११९	१	०	६५	५७	१६	४७	१०१	१६
१३	११९	१	०	८०	४२	३०	६३	८५	०
१४	०	१२०	०	११०	१२	१२	६३	८५	८५

व्युच्छिति=आगेके लिये नाश।

नोट—

१. मिथ्यात्वगुण०—में तीर्थङ्कर व आहारक द्विकका बंध नहीं होता; ये तीन और २ मिश्र व सम्यक्त ५ का उदय नहीं; व्युच्छति १६ की। मिथ्यात्व, हुंडक संस्थान, नपुंसकवेद, नरकगति, नरकगत्या०, नरकायु, असं० सं०, एकेंद्रिय ४, स्थावर, सूक्ष्म, आतप, अपर्याप्त, साधारण। उदयव्यु० ५—मिथ्यात्व, आतप, सूक्ष्म अपर्याप्त, साधारण।

२. सासादन—बंध व्यु० २५ (अनं० क० ४ + स्त्यान गृ० + निद्रा२ + प्रचला २ + दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, न्यग्रोध, स्वाति, कुब्जक, वामन, वज्रनाराच, नाराच, अर्द्धनाराच, कीलित, अप्र० विहायोगति, स्त्रीवेद, नीच गोत्र, ति० गति, ति० गत्या, तिर्यंच आयु, व उद्योत); यहां नरक गत्या० का उदय नहीं। उदय व्यु० ९—अनं० ४ + एकेंद्रिय + ४ + स्थावर। ३ का सत्व नहीं तीर्थंकर, आहारकद्विक।

३. मिश्र—यहां मनुष्य व देवायुका भी बन्ध नहीं। उदय—देव मनुष्य तिर्यंच ३ आनुपूर्वीका उदय भी नहीं, परन्तु मिश्रका उदय है। उदयव्यु० १ मिश्र। सत्ता तीर्थंकर नहीं।

४. अविरत सं०—यहां मनुष्य देव आयु व तीर्थंकरका बन्ध होगा। बंध व्यु० १०=(अप्र० ४ + मनुष्य गति + मनुष्य गत्या. + मनुष्य आयु + औदारिक श० + औदारिक अंगो० + वज्रवृषभ-नाराच) उदय—यहां ४ आनुपूर्वी व सम्यक्तका उदय भी होगा। उदय व्यु० १७=(अप्र० ४ + देवगति + देवगत्या. + देवायु + नरकगति + नरकगत्या + नरकायु + वैक्रियिक श० + वैक्रियिक अंगो० + मनुष्य गत्या० + तिर्यंगत्या० + दुर्भग + अनादेय + अयश) सत्ताव्यु० नरकायु।

५. देशविरत—बंध व्यु० ४। प्रत्या० ४। उदय व्यु० ८—(प्रत्या० ४ + तिर्यंचगति + तिर्यंचगत्या. + उद्योत + नीच गोत्र)। सत्ताव्यु०—१ तिर्यंचायु।

६. प्रमत्तविरत—बंध व्यु० ६—(अथिर + अशुभ + असाता + अयश + अरति + शोक)। उदय—आहारक द्विकका भी। उदय व्यु० ५—(आहारक द्विक + निद्रा २ + प्रचला २ + स्त्यान गृद्धि)।

७. अप्रमत्तवि०—यहां आहारकद्विकका बंध भी। बंध व्यु० १—देवायु। उदय व्यु० ४—(सम्यक+अर्द्धनाराच+कीलक + असं० सं) सत्ताव्यु० ८—(अनंतानुबंधी ४ + दर्शन मोहनीय ३ + देवायु)।

८. अपूर्व—बंधव्यु० ३६ (निद्रा + प्रचला + तीर्थङ्कर + निर्माण + प्र० विहा० + पंचे० + तैजस + कार्मण + आहारक द्विक २ + समच० + वैक्रि० २ + देवद्विक २ + स्पर्शादि ४ + अगुरुलघु + उपघात, + परघात + उछ्वास + त्रस + बादर + पर्याप्त + पुंसक, + स्थिर + शुभ + सुभग + सुस्वर + आदेय + हास्य + रति + जुगुप्सा + भय,) उदय व्यु० ६—(हास्य, + रति, + अरति, + शोक, + भय, + जुगुप्सा)।

९. अनिवृत्ति—बंध व्यु० ५—(पुरुषवेद + सं० क्रोध, + मान, + माया,) उदय व्यु० ६ (३ वेद, + संक्रोधादि ३)। सत्ता व्यु० ३६—(तिर्यं० २ + विकलत्रय, ३ + निद्रानिद्रा, + प्रचला प्रचला, + स्त्यान०, + उद्योत, + आतप, + एकेंद्रिय, + साधारण, + सूक्ष्म, + स्थावर, + अप्र० ४ + प्र० ४ + नोक० ९ + सं० क्रोधादि ३ + नरक २)

१०. सूक्ष्म—बन्ध व्यु० १६ + (ज्ञाना० ५ + दर्श० ४ + अंत० ५ + यश, + उच्च गोत्र) उदय व्यु० १ लोभ। सत्ताव्यु० १ परन्तु २

११. उपशांत—उदय व्यु० २ (वज्रनाराच + नाराच) यहां क्षायिक सम्य० की अपेक्षा १३८ का सत्व होगा, ३६ क्षायिकके घटेंगी।

१२. क्षीण मोह—सत्ताव्यु० १६ (ज्ञान ५ + दर्शन ४ + अंत० ५ + निद्रा + प्रचला)

१३. सयोग केवली—यहां तीर्थंकरका भी उदय। उदयव्यु० ३० (वेदनी १ + वज्र वृ० ना० सं० + निर्माण + स्थिर + अस्थिर + शुभ + अशुभ + दुःस्वर + प्र० विहा० + अप्र० विहा० + औदा० २ + तैजस + कार्माण + संस्थान ६ + स्पर्शादि ४ + अगुरुलघु + उपघात + परघात + उछ्वास + प्रत्येक)।

१४. अयोग के०—अंतमें ८५ का नाश।
(जै० सि० प्र० अ० ५)

गुणस्थानोंका विशेष वर्णन गोमट्टसार जीवकांडसे व इनमें १४८ कर्मोंसे किनका उदय, सत्व व बन्ध होता है सो सब गोमट्टसार कर्मकांडसे जानना उचित है।

गुणस्थान क्रमारोह—ग्रंथ। दि० जैन सरस्वती भवन बम्बई।

गुणस्थान जीवसंख्या—

नं. गुण.	उत्कृष्ट पाए जाने वाले जीव
१	अनंतानन्त
२	५२ करोड़ मनुष्य अधिक पल्यके असंख्यातवें भाग
३	१०४ करोड़ मनुष्य अधिक सासादनसे संख्यात गुणे
४	७०० करोड़ मानव अधिक पल्यका असंख्यातवां भाग व मिश्रसे असंख्यात गुणे
५	१३ करोड़ मनुष्य अधिक पल्यका असंख्यातवां भाग
६	५९३९८२०६
७	२९,६,९९,१०३
८	३०४ उप०, ६०८ क्षायिक
९	३०४ उप०, ६०८ ,,
१०	३०४ उप०, ६०८ ,,
११	३०४
१२	६०८
१३	८९८५०२
१४	,,

(गो० जी० गा० ६, १४, ६६२)

गुणनग्रह—शास्त्रादिक अभ्यास करनेके स्थान
(त्रि० गा० १००९)

गुणहानि—गुणाकाररूप हीन हीन द्रव्य जिसमें पाए जावें। जैसे किसी जीवने ६३०० कर्म ४८ समयकी स्थितिवाले बांधे। आबाधा काल न गिनकर इसका बटवारा ६ गुणहानियोंमें होगा, हरएक गुणहानि ८ समयकी होगी। तब पहली गुणहानि

३२०० की, दूसरी १६००, तीसरी ८०० चौथी ४००, पांचवीं २००, छठी १०० की होगी। (जै० सि० प्र० ३८९)

गुणहानि आयाम—एक गुणहानिका समय समूह जैसे ऊपरके दृष्टांतमें ८, प्रत्येक गुणहानिका काल यही होगा। (जै० सि० प्र० ३९०)

गुणहानि स्पर्द्धकशलाका—एक गुणहानिके स्पर्द्धकों या कर्म द्रव्यका समूह जैसे ऊपरके दृष्टांतमें ३२०० या १६०० आदि (क० पृ० ८)

गुणायननन्दि—सं० ११९९में आचार्य (दि० ग्र० नं० ६९)

गुणावा—पटना जिलेमें नवादा स्टेशनसे १॥मील। यहां गौतमस्वामी—श्री महावीरस्वामीके मुख्य गणधरका निर्वाण माना जाता है। चरणचिह्न हैं, मंदिर है (या० द० पृ० २१६)

गुप्ति—जब रामचन्द्र, लक्ष्मण, सीताने दण्डक वनमें मिट्टीके वर्तनोंमें रसोई बनाई थी तब दो चारण मुनिको आहार दिया था, सुगुप्ति और गुप्ति (इ० २ पृ० १०७); मन, वचन, कायको रोककर धर्मध्यानमें रखना। (सर्वा० अ० ९–४)

गुरु—निर्ग्रंथ जैन साधु जो आरम्भ व परिग्रहसे रहित हो विषयोंकी आशासे वर्जित हो व आत्मज्ञान, ध्यान, व तपमें लीन हो। (रत्न. श्लो. १०)

गुरु उपासना (भक्ति)—निर्ग्रंथ साधुओंकी सेवा, उनसे उपदेश ग्रहण, उनका आज्ञानुवर्ती रहना (सा० अ० २–४१)

गुरुपादाष्टक—शांतिदास कृत।

गुरुदत्त—हस्तिनापुरके राजपुत्र। इसने एक सिंहको गुफा बंद करके मार डाला था। यह चँद्रपुरीमें ब्राह्मण पुत्र कपिल हुआ। गुरुदत्त मुनि हो कपिलके खेतमें ध्यान कर रहे थे। कपिलने मुनिको जला दिया, वे केवली हो मोक्ष गए। (आ० क० नम्बर ६९)

गुरुमूढता—जो साधु आरम्भवान परिग्रहवान हों संसारके प्रपंचमें फँसे हों उनका आदर मूढतासे करना। (रत्न० १४)

गुरु स्पर्श नाम कर्म—जिससे शरीर भारी हो। (सर्वा० अ० ८–११)

गुलजारीलाल—पंडित। आत्मविलास पद्यके कर्ता। (दि० ग्र० नं० १८–४१)

गुलाबराय—पंडित। सं० १८४२ इटावामें शिखर विलास पद्यबद्ध मोतीरामके साथ रचा। (दि० ग्र० नं० १९–४१)

गू

गूजरमल—पंडित। दलतावरके साथ जिनदत्त चरित्र पद्य रचा। (दि० ग्र० नं० २०–४८)

गूढ़ दन्त—भरतकी आनेवाली उत्सर्पिणीमें चौथे चक्रवर्ती। (त्रि० गा० ८७७)

गूढब्रह्मचारी—जो कुमार अवस्थासे मुनि होकर मुनियोंके पास विद्याभ्यास करें, फिर असमर्थ होकर व राजादिकी प्रेरणासे गृहस्थमें आजावें। (गृ० अ० १२)

गृ

गृह—घर

गृहत्याग—घरमें रहना छोडकर विरक्त होना।

गृहत्याग क्रिया—गर्भान्वय क्रियाओंमें २२ वी क्रिया—जब गृहस्थ वैराग्यवान हो तब बड़े पुत्रको सर्व गृह भार सौंपे व कहे कि मैंने अपने द्रव्यके तीन भाग किये हैं—एक भाग धर्मके लिये, दूसरा भाग घर खर्चके लिये। तीसरे भागमें मेरे सब पुत्र व पुत्रियोंको बराबर भाग है। तु सबकी रक्षा करना, ऐसा समझाकर घर छोडना कि इस भावसे मुनिदीक्षा धारूँगा। (गृ० अ० १८)

गृहपति—घरका प्रबन्धक, चक्रीका रत्न।

गृहस्थाचार्य—जो गृहस्थोंमें विद्या, बुद्धि, सम्यक् चारित्रादिमें बड़ा हो व धर्मक्रिया कराने वाला हो ऐसा उत्तम गृहस्थ (सा० अ० २–३८); नन्दादि० धर्माचार्य।

गृह स्त्रीधर्म-धर्ममें महिलाओंको धर्मक्रिया पुरुषके समान पालना योग्य है। देखो (गृ० अ० २१) स्त्री भी श्रावककी ११ प्रतिमाओंको पुरुषवत् पाल सक्ती है।

गृहस्थ धर्म योग्य लक्षण-गृहस्थमें १४ गुण होने चाहिये-(१) न्यायसे धन कमावे, (२) गुणवान गुरुओंका भक्त हो, (३) सत्य व मधुरभाषी हो, (४) धर्म, अर्थ व काम पुरुषार्थको एक दूसरेसे हानि न पहुंचाकर साधता हो, (५) योग्य नगर, घर व पत्नी सहित हो, (६) लज्जामान हो, (७) योग्य आहार विहार हो, (८) सज्जनोंकी संगति रक्खे, (९) विचारशील हो, (१०) कृतज्ञ हो, (११) इंद्रियोंको वश रखनेवाला हो, (१२) धर्म विधिको सुनता हो, (१३) दयावान हो, (१४) पापसे भयभीत हो। (सा० अ० १-११)

गृहाश्रम-चार आश्रमोंमें दूसरा आश्रम जहां स्त्री सहित रहकर धर्म, अर्थ, काम पुरुषार्थ सेवन हों, श्रावककी छठी प्रतिमा तक।

गृहीसिता क्रिया-गृहस्थाचार्य बनानेकी क्रिया २० वीं। जो गृहस्थ अपने चारित्र, व यशसे लोकमान्य होजावे व दूसरोंको मार्गमें चला सक्ता हो उसको श्रावकगण यह पद देवें और उसे वर्णोत्तम, महीदेव, सुश्रुत, द्विजसत्तम, निस्तारक, ग्रामपति, माननीय ऐसे नामोंसे कहें (गृ. अ. १८)

गृद्धपिच्छ-श्री कुन्दकुन्दाचार्य मुनि। देखो (प्र० जि० पृ० ११८) यह बात प्रसिद्ध है कि श्री कुन्दकुन्द ध्यानमें श्रीमंधर तीर्थंकर जो विदेहमें हैं उनकी भक्ति करते थे व भावना यह थी कि उनके दर्शन साक्षात मिले। उनके पूर्वजन्मका भाई व्यंतरदेव था। वह उधर आ निकला, उसे पूर्वजन्मका स्मरण हो आया, उसने गुरुको नमस्कार करके पूछा क्या कुछ चिंता है। गुरुने साफ २ कह दिया तब वह व्यंतर कुन्दकुन्द मुनिको उठाकर विदेह लेगया, वे वहां तीन दिन रहे। समवशरणमें धर्मोपदेश सुना, मार्गमें जाते हुए मोरपिच्छी गिर गई थी तब व्यंतरने गीधके पंखोंकी जो जंगलमें मिली, लादी थी तबसे इनका नाम गृद्धपिच्छ प्रसिद्ध है। फिर वही व्यंतर ध्यानके स्थानपर पहुंच गया।

गृद्धपृष्ठ मरण-शस्त्रसे मरना (भ० पृ० १२)

गो

गोकुल-जैन पंडित। सुकुमाल चरित्रके भाषाकार (दि० ग्र० नं० ११-४१)

गोक्षीरफेन-विजयार्द्धकी उत्तर श्रेणीका सैतालीसवां नगर (त्रि० गा० ७०८)

गोचरी भिक्षावृत्ति-साधुओंका भोजन गौके चरनेके समान होना। जैसे गौ बनमें चरती हुई मात्र चरने हीका प्रयोजन रखती है वनकी शोभा आदि नहीं देखती है वैसे साधु मात्र भोजन लेनेसे प्रयोजन रक्खे, बाकी व दातारके सरसामानकी शोभा रागभावसे न देखें। (म. पृ. ११६)

गोत्रकर्म-जिस कर्मसे ऊँचा या नीचा कहा जावे। (सर्वा. अ. ८-४); अनुक्रम परिपाटीसे चला आया आचरण जिसमें हो वह गोत्र। ऐसा गोत्र जिस कर्मके उदयसे हो (गो० क० गा० १३) चार गतिरूप भवहीके आश्रयसे नीचपना या ऊंचपना है (गो० क० गा० १८) इसके दो भेद हैं। उच्च गोत्र, नीच गोत्र। जिसके उदयसे लोकपूजित कुलमें जन्म हो वह उच्च गोत्र है व जिसके उदयसे गर्हित या निन्दनीय कुलमें जन्म हो वह नीच गोत्र है। (सर्वा. अ. ८-११)

गोपालदास बरैया-पंडित। तत्वज्ञानी, जैन सिद्धांत विद्यालय मोरेनाके संस्थापक। जैन सिद्धांत दर्पण, सुशीला उपन्यास, जैनसिद्धांत प्रवेशिका आदिके कर्ता (सं० १९०७)

गोपीलाल-जैन पंडित नागकुमार चरित्रादिके कर्ता (दि. ग्र. नं० २२-४२)

गोवर्द्धनाचार्य-चौथे श्रुतकेवली, श्री महावीर

स्वामीके पीछे ६२ वर्ष बाद १०० वर्षमें पांच श्रुतकेवली हुए।

गोम्मटस्वामी-श्रवणबेलगोला मैसूरमें बड़े पर्वत (ज्येष्ठ) पर श्री बाहुबलि, आदिनाथके पुत्रकी १७ फुट ऊँची मूर्ति तपके समयकी राजा चामुण्डराय कृत प्रतिष्ठित (सन् ९८३) विराजित दर्शनीय है, (मदरास जैन स्मारक पृ० २११)

(१) दूसरी मूर्ति ऐसी ही ४१ फुट ऊँची मंगलोर जिलेके कारकलकी पहाड़ीपर (प्रतिष्ठा सन् १४३१, (२) तीसरी मूर्ति ऐसी ही ३७ फुट ऊँची मंगलोरसे १४ मील येनुरकी पहाड़ीपर है। प्रतिष्ठा (सन् १६०३) (मदरासस्मारक पृ. १२८-१३०)

गोमेदा-पहली रत्नप्रभा पृथ्वीके खर भागकी छठी पृथ्वी, १००० योजन मोटी जहां भवनवासी व्यंतर रहते हैं। (त्रि० गा० १४७)

गोविंद-(कायस्थ) जैन पंडित। पुरुषार्थानुशासन श्रावकाचारका कर्ता। (दि० ग्र० ७६-८)

गौतम गणेश-इन्द्रभूत गौतम मूलमें ब्राह्मण थे, श्री महावीर तीर्थंकरके शिष्य जैन साधु हो सर्व जैन संघके शिरोमणि हुए। महावीरस्वामीके निर्वाण दिन केवलज्ञानी हुये, १२ वर्ष पीछे मोक्ष गए।

गौतम गृहस्थ-प्रतिक्रमण टीका व संबोध पंचासिकाके कर्ता। (दि० ग्र० नं० ७६)

गौतमस्वामी कवि-इष्टोपदेश सटीक, होराज्ञान ज्योतिषके कर्ता। (दि० ग्र० पृ० ३९)

गौरवदास- फफून्द निवासी (सं० १५८१) यशोधरचरित्र पद्यके कर्ता (दि०ग्र०नं० २९-४२)

ग्र

ग्रन्थ-परिग्रह, गांठ, बंध।

ग्रंथि-८८ ज्योतिष ग्रहोंमें ३१ वां ग्रह (त्रि० गा० ३६६)।

ग्रह-नक्षत्र कुल ८८ होते हैं, सूर्य चंद्र आदि। (त्रि० गा० ३६३)

ग्रहण-अवग्रह, जानना, सूर्य या चन्द्रका ग्रहण पड़ना।

ग्रहीत मिथ्यात्व-जो मिथ्या श्रद्धान परके उपदेशसे हो। उसीके पांच भेद हैं-एकांत, संशय, विपरीत, अज्ञान, विनय या ३६३ प्रकार एकांतवाद हैं। सर्वा० अ० ८-१)

ग्राम-जो क्षेत्र बाड़से बेढ़ा हो (त्रि. गा.६७६)

ग्रैवेयिक-१६ स्वर्गके ऊपर नौ ग्रैवेयिक हैं अधोके तीन अवस्तन ग्रै०, मध्यमके तीन मध्यम ग्रै०, ऊपरके तीन उपरिम ग्रै० कहलाते हैं। अधोमें १११, मध्यमें १०७, ऊर्द्धमें ९१ विमान हैं, कुल ३०९ विमान हैं। यहां अहमिन्द्र पैदा होते हैं। मिथ्यादृष्टी जैन साधु यहांतक आकर अहमिंद्र होसक्ते हैं। (त्रि० गा० ४६१, ४९९)

ग्लान मुनि-रोगी मुनि (सर्वा. अ. ९-२४)

घ

घटमान देश सम्बन्धी-जिस श्रावकके व्रतोंका अच्छा अभ्यास हो। (सा० अ० ३-८)

घटमान योगी-जिसको योग या ध्यानका अच्छा अभ्यास हो। (सा० अ० ३-६)

घटा-चौथे नर्ककी पृथ्वीका सातवां इन्द्रक बिला (त्रि० गा० १९८)

घटिका-(घड़ी) २४ मिनिटकी।

घन-दही आदि पीने योग्य गाढ़े पदार्थ। (सा० अ० ८-९७)

घन धारा-घन संख्याका समूह, जैसे एकका घन एक, दोका घन ८, तीनका घन २७। ऐसे घन स्थान केवलके आधे प्रमाण तक होंगे। जैसे यदि केवलज्ञान ६५५३६ हो तो आधा ३२७६८ हुआ। इसका घन मूल ३२ है। इसके ऊपर घन मूल स्थान ३३,३४,३५,३६,३७,३८,३९,४० ऐसे आठ होंगे। इस ८ को ३२ में मिलाए ४० होंगे। इनको आसन्न घनमूल कहते हैं। इसका घन ६४००० होगा सो यही घनधाराका अंतिम स्थान होगा। केवलज्ञान तक घनधाराके स्थान केवलज्ञानके आसन्न घनमूल प्रमाण हैं। (त्रि० गा० ६०)

घन मातृकधारा–१ को आदि लेकर ४० घनमूल तक सर्वस्थान यदि केवलज्ञानको ६५५३६ माना जाय । (त्रि० गा० ६४)

घन वातवलय–(घनोदधि) मोटी हवाका घेरा इसका वर्ण मूंग नामा अन्नके समान है। यह लोकके व हरएक रत्नप्रभा आदि सातवां मोक्ष पृथ्वीके नीचें घनोदधि वातवलय व तनु वातवलयके मध्यमें है। पहले घनोदधि फिर घनवात फिर तनु वातवलय है, फिर आकाश है। घनोदधिमें जलका अंश मिश्रित है, रंग गायके मूत्र समान है। तनु वातवलय नाना रंगका है। लोकाकाशके नीचे दोनों पखवाड़ोंमें एक राजूकी ऊँचाई तक हरएक वातवलय बीस बीस हजार योजन मोटा है। फिर मुटाई पृथ्वीके नीचे व पखवाड़ोंमें घटकर सातवी पृथ्वीके वहां घनोदधिकी सात घनकी पांच व तनुकी चार योजन मुटाई है, फिर क्रमसे घटता घटता मध्यलोक वहां क्रमसे पांच चार तीन योजन रह गया, फिर बढ़ता हुआ पांचवें ब्रह्म स्वर्ग यहां सात पांच चार योजन होगया, फिर घटता हुआ ऊर्द्ध लोकके निकट पांच चार तीन योजन रह गया। लोकके ऊपर तीनोंकी मुटाई क्रमसे दो कोस, १ कोस व कुछ कम एक कोस है। तनु वातवलय १५७५ बड़े धनुष प्रमाण है। (त्रि० गा० १२३)

घनलोक–सर्व लोकाकाश ३४३ घनराजू प्रमाण जगतश्रेणी सात राजू है। उसका घन ३४३ राजू घन लोक है। (सि० द० पृ० ७०)

घनांगुल–अद्धा पल्यकी राशिके अर्द्धच्छेदका फैलाकर एक एकके ऊपर अद्धापल्य रखकर परस्पर ग्रहण करनेसे जितना हो वह सूच्यंगुल है इसका वर्ग प्रतरांगुल इसका घन घनांगुल है। (सि. द. पृ. ७०); देखो शब्द 'अंकविद्या' (प्र.जि.पृ. १०४)

घनोदधि वातवलय–देखो "घन वातवलय"

घर्मा–पहली रत्नप्रभा पृथ्वी जिसके अब्बहुल भागमें पहला नरक है। यह एकलाख अस्सीहजार योजन मोटी है। (त्रि० गा० १४५–१४६)

घाटा–चौथी नरक पृथ्वीका छठा इंद्रकबिला। (त्रि० गा० १५८)

घातकत्व निदान–अपना घातक कषायरूप निदान कि परलोकमें मैं किसीका बुरा करूं आदि। यह भावार्थ निदानमें गर्भित है। (सा. अ. ४–१)

घातायुष्क–जिस जीवने भुज्यमान शरीरमें आगेके लिये देव आयु बांधी हो फिर उसी शरीरमें रहते हुए आठ अपकर्षण कालमें किसीमें परिणामोंके संक्लेश होनेसे जो आयुकी स्थिति घटा दे तो वह घातायुष्क जीव जो सम्यग्दृष्टी हो तो एक अंतर्मुहूर्त कम आधा सागर आयु अधिक किसी नीचेके स्वर्गमें पावे तथा मिथ्यादृष्टी हो तो नीचेके स्वर्गमें पल्यका असंख्यातवां भाग आयु अधिक पावे। ऐसे जीव सौधर्म स्वर्गसे बारहवें सहस्रार स्वर्ग तक पैदा होते हैं इसीलिये वहांतक स्थिति नियत उत्कृष्ट स्थितिसे कुछ अधिक बताई है। (गो० जी० गा० ५५२) जैसे किसीने बीस सागरकी स्थिति आयुकर्मकी बांधी थी फिर परिणाम कम शुभ रहे तो वह १२ वें स्वर्गमें १८ सागर कुछ अधिककी स्थिति पासक्ता है।

घातियाकर्म–जो कर्मप्रकृतियें आत्माके क्षायिक शुद्ध गुण केवलज्ञान, केवल दर्शन, अनंतवीर्य, क्षायिक सम्यक्त, क्षायिक चारित्र व क्षायिक दानादिक तथा मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय ज्ञानादि क्षयोपशम रूप गुण उनको घातें या रोकें। वे कुल चार हैं–ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, अंतराय। (गो० क० गा० १०)

घृतवर–छठा महाद्वीप तथा समुद्र (त्रि० गा० ३०४)

घोट मानयोग स्थान–परिणाम योग स्थान। जो आत्माके प्रदेश चंचल रूप योगस्थान एकसे न रहे, कभी बढ़े व कभी घटें व कभी वैसे रहें, ये स्थान शरीर पर्याप्तिके पूर्ण होनेके समयसे आयु पर्यंत रहते हैं। (गो० क० गा० २२१)

घोष–भवनवासी कुमारोंमें विद्युत्कुमारोंके प्रथम इन्द्र। (त्रि० गा० २१०)

घ्राण इन्द्रिय–नासिका इंद्रिय जिससे दो तरहका गन्ध मालूम हो। देखो शब्द "इंद्रियविषय"

च

चक्र–सनतकुमार माहेन्द्र स्वर्गोंमें अन्तका सातवां इन्द्रक विमान। (त्रि० गा० ४६६)

चक्रधर–चक्रवर्ती राजा।

चक्रपुर (शुक्र)–विजयार्द्धकी दक्षिण श्रेणीमें १९ वां नगर। (त्रि० गा० ६९९)

चक्रपुरी–विदेहमें २९ वीं राजधानी। (त्रि० गा० ७१९)

चक्ररत्न–सुदर्शनचक्र जो चक्रवर्ती व अर्द्ध चक्रीके होता है।

चक्रवर्ति (चक्री)–छः खण्डके पृथ्वीके स्वामी भरत व ऐरावतमें हरएक उत्सर्पिणी व अवसर्पिणीमें जब तीर्थंकर २४ होते हैं तब ये १२ होते हैं। विदेह कुल १६० हैं। वहां यदि उत्कृष्ट हो तो एक समय १६० हों व जघन्य हो तो वीस हों (त्रि० गा० ६८१) चक्रवर्तीकी विभूति ऐसी होती है–

८४ लाख हाथी ८४ लाख रथ ११८ लाख घोड़े	१४ रत्न–चक्र, असि, छत्र, दण्ड, मणि, चर्म, काकिणी, गृहपति, सेनापति

हाथी, घोड़ा, शिल्पी, स्त्री व पुरोहित। नवनिधियें होती हैं। उनके नाम हैं—

(१) कालनिधि–छः ऋतुकी वस्तुदायक, (२) महा कालनिधि–भोजनदाता, (३) पांडुनिधि–अन्नदाता, (४) माणवक निधि–आयुधदाता, (५) शंखनिधि–वादित्रदाता, (६) नैसर्पनिधि–मंदिर दायक, (७) पद्मनिधि–वस्त्रदाता, (८) पिंगल-निधि–आभूषण दाता, (९) रत्ननिधि–रत्नदाता। छानवे हजार स्त्रियें होती हैं, ३२००० मुकुटबद्ध नमन राजा करते हैं। (त्रि० ६८२–६८३)

वर्तमान भरतके १२ चक्री जो गत चौथे कालमें होचुके हैं वे हैं–भरत, सगर, मघवा, सनत्कुमार, शांतिजिन, कुंथुजिन, अरजिन, सुभौम, महापद्म, हरिषेण, जय, ब्रह्मदत्त। भविष्यमें होनेवाले भरतके १२ चक्री–भरत, दीर्घदंत, मुक्तदंत, गूढदंत, श्रीषेण, श्रीभूति, श्रीकांत, पद्म, महापद्म, चित्रवाहन, विमलवाहन, अरिष्टसेन।

(त्रि० गा० ८१५–८७७)

चक्रेश्वरी देवी–श्री ऋषभदेवकी भक्त शासनदेवी। (प्र० सा० पृ० ७१)

चक्षुष्मान–वर्तमान अवसर्पिणीके १४ कुलकरोंमेंसे आठवें कुलकर।

चंचल–पहले सौधर्म ईशान युगलका ग्यारहवां इन्द्रक विमान (त्रि० गा० ४६४)

चन्द्र–प्राकृत लक्षण व्याकरणके कर्ता आचार्य (दि० ग्र० नं० ४०९)

चतुरानुयोग–चार अनुयोग–१ प्रथमानुयोग जिसमें महान पुरुषोंके चरित्र हैं। २ करणानुयोग–जिसमें लोकवर्णन व गणित आदि है। ३ चरणानुयोग–जिसमें मुनि व श्रावकके चारित्रका कथन है। ४ द्रव्यानुयोग–जिसमें जीवादि छः द्रव्यचर्चा हो।

चतुराश्रम–चार आश्रम मानव जीवनके होते हैं। ब्रह्मचर्याश्रम–ब्रह्मचर्य पालते हुए विद्या पढना। गृहस्थाश्रम–गृहस्थमें स्त्रीसहित रह धर्म अर्थ व काम पुरुषार्थ साधना, वानप्रस्थाश्रम–सातमी प्रतिमासे ११वीं तक व्रत पालनेवाले स्त्रीरहित त्यागी। सन्यासाश्रम–निर्ग्रंथ साधु हो तप करनेवाले। (श्रा० पृ० २९६)

चतुरिन्द्रिय जाति कर्म–जिसके उदयसे चार इंद्रिय धारी जंतुओंकी जातिमें पैदा हो।

चतुर्गति–चार गति–नरक, तिर्यंच, देव, मनुष्य।

चतुःरत्न–बलभद्रके पास चार रत्न होते हैं। रत्नोंकी माला, हल, मुसील, गदा (त्रि.गा. ८२९)

चतुर्थ वेला–एक दिन बीचमें भोजन करके तीसरे दिन लेना। एक दिनमें दो दफे भोजन नियत है। जहां पहले दिन एक दफे तीसरे दिन एक दफे बीचके दिन कुछ नहीं। वह चतुर्थ वेला है या एकोपवास। (त्रि० गा० ७८५)

चतुर्दश अतिशय–देखो शब्द "अतिशय"

चतुर्दश कुलकर–गत तीसरे कालमें जब पल्यका आठवां भाग बाकी रहा तबसे कुलकर या महान् पुरुष एकके बहुत काल पीछे दूसरे इस भरतक्षेत्रमें हुए वे हैं–१ प्रतिश्रुति, २ सन्मति, ३ क्षेमंकर, ४ क्षेमंधर, ५ सीमंकर, ६ सीमंधर, ७ विमलवाहन, ८ चक्षुष्मान, ९ यशस्वी, १० अभिचन्द्र, ११ चन्द्राभ, १२, मरुदेव, १३ प्रसेनजित १४ नाभि। ये कुलकर पूर्व जन्ममें विदेहमें क्षायिक सम्यग्दृष्टी होते हैं। सम्यक्त होनेके पहले पात्रदानसे मनुष्यायु बांधी होती है। इनको किनहीको जातिस्मरण होता है, किनहीको अवधिज्ञान होता है। ये अन्य मानवोंको कल्पवृक्षोंके धीरे धीरे नष्ट होनेसे जो अज्ञानसे आकुलता होती है उसे यह समझाकर मेट देते हैं व व्यवहार कैसे करना सो बताते हैं। ऐसे ही कुलकर उत्सर्पिणीके दूसरे दुखमा कालमें जब १००० वर्ष शेष रहेंगे तब होंगे (त्रि.गा. ७९२–३–८७१)

चतुर्दश गुणस्थान–देखो "गुणस्थान"।

चतुर्दश जीवसमास–एकेन्द्रिय सूक्ष्म, एकेन्द्रिय बादर, द्वेंद्रिय, तेंद्रिय, चतुरिंद्रिय, पंचेंद्रिय असैनी, पंचेंद्रिय सैनी ये सात पर्याप्त तथा अपर्याप्त १४ संसारी जीवोंके समुदाय हैं। विग्रहगतिवाले जीव यदि पर्याप्ति कर्मके उदयवाले हैं तो पर्याप्त अन्यथा अपर्याप्तमें गिने जायगे। समान पर्यायरूप धर्मोंसे जीवोंको भिन्न२ एकत्र जहां किया जावे सो समास है। (गो० जी० गा० ७२)

चतुर्दश धारा–देखो "अंकविद्या" (प्र० जि० पृ० १०६)

चतुर्दश नदी–जंबूद्वीपमें १४ महा नदियां हैं–१ गंगा, २ सिंधु, ३ रोहित, ४ रोहितास्या, ५ हरित, ६ हरिकांता, ७ सीता, ८ सीतोदा, ९ नारी, १० नरकांता, ११ सुवर्णकूला, १२ रूप्यकूला, १३ रक्ता, १४ रक्तोदा। इनमेंसे एक एक युगल क्रमसे भरतादि सात क्षेत्रोंमें बहा है। पहला पूर्वको, दूसरा दक्षिणको और लवणोदधि समुद्रमें गिरा है। धातुकी द्वीपमें दुगनी हैं (त्रि.गा.५७८)

चतुर्दश परिग्रह–१४ अंतरङ्ग–क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुंवेद, नपुंसकवेद। १० बाह्य–क्षेत्र, मकान, चांदी, सोना, गाय, भैंसादि, धन, धान्य, दासी दास, कपड़े, बर्तन।

चतुर्दश पूर्व–१२ वें दृष्टिवाद अँगोंमें १४ पूर्व होते हैं उनके नाम व पद नीचे प्रकार हैं—

नाम पूर्व	मध्यमपद संख्या	कथन
१–उत्पाद	एक करोड़	उत्पाद व्यय ध्रौव्य
२–अग्रायणी	९६ लाख	७०० सुनय दुर्नय
३–वीर्यानुप्रवाद	७० लाख	आत्मा अना०वीर्य
४–अस्तिनास्तिप्रवाद	६० ,,	स्याद्वाद
५–ज्ञानप्रवाद	१ कम १करोड	आठ ज्ञान
६–सत्यप्रवाद	१ करोड़ ६	सत्य वचन
७–आत्मप्रवाद	२६ करोड़	आत्मा
८–कर्मप्रवाद	१ क्रोड ८०ला.	कर्मबंधादि
९–प्रत्याख्यान	८४ लाख	त्याग उपवासादि
१०–विद्यानुवाद	१ क. १० ,,	मंत्रयंत्र निमित्त ज्ञान
११–कल्याण	२६ करोड़	पंचकल्याणकादि
१२–प्राणवाय	१३ करोड़	वैद्यकादि
१३–क्रियाविशाल	९ ,,	संगीत छन्दादि
१४–लोकबिंदु सार	१२॥ ,,	तीन लोक

(गो० जी० गा० ३६६)

चतुर्दश प्रकीर्णक–अंग बाह्य श्रुतज्ञानके १४ भेद–

१. सामायिक–सामायिककी विधि आदि।

२–चतुर्विंशति स्तव–२४ तीर्थंकरोंकी स्तुति।

३. वंदना–एक तीर्थंकरकी मुख्यतासे स्तुति।

४. प्रतिक्रमण–प्रमादजन्य दोषोंके दूर करनेका उपाय।

५. वैनयिक–विनयका स्वरूप।

६. कृतिकर्म–नित्य नैमित्तिक क्रिया।

७, दश वैकालिक–मुनिका आचार किस काल कैसे करना।

८. उत्तराध्ययन—उपसर्ग व परीषह सहनेकी विधि।

९. कल्प्य व्यवहार—योग्य आचरणका विधान।

१०. कल्प्याकल्प्य—योग्य अयोग्य व्यवहार निरूपण।

११. महाकल्प्य—महान पुरुषोंके योग्य आचरण।

१२. पुंडरीक—चार देवोंमें उपजनेके साधन।

१३. महा पुंडरीक—इंद्र अहमिंद्र आदिमें उपजनेका साधन।

१४. निषिद्धिका—प्रमाद कृत दोषहरण प्रायश्चित्त। (गो० जी० गा० ३६७-३६८)

चतुर्दश मनु—देखो "चतुर्दश कुलकर"।

चतुर्दश मल दोष—मुनि १४ मल दोष रहित भोजन करते हैं—१ नख, २ केश या रोम, ३ द्वेन्द्रियादि मृतक जीव, ४ हाड़, ५ जव गेहूंका बाहरी भाग कण, ६ कुंड—शालि आदिका भीतरी भाग, ७ पीप, ८ चमड़ा, ९ रुधिर, १० मांस, ११ बीज उगने योग्य, १२ फल, १३ कंद, १४ मूल। (म० पृ० ११३)

चतुर्दश मार्गणा—जिन २ धर्म विशेषोंसे संसारी जीवोंको खोजा जाय। (जै.सि.प.नं.४६८-४६९) वे १४ हैं—(१) ४ गति (२) ५ इंद्रिय (३) ६ काय (४) १५ योग (५) ३ वेद (६) २५ कषाय (७) ८ ज्ञान (८) ७ संयम (९) ४ दर्शन (१०) ६ लेश्या (११) २ भव्यत्व (१२) ६ सम्यक्त, (१३) २ संज्ञित्व (१४) २ आहार।

चतुर्दश रत्न—चक्रवर्तीके १४ रत्न होते हैं—७ चेतन—१ गृहपति, २ सेनापति, ३ शिल्पी, ४ पुरोहित, ५ स्त्री, ६ हाथी, ७ घोड़ा व ७ अचेतन—१ चक्र, २ असि (खडग), ३ छत्र, ४ दंड, ५ मणि, ६ चर्म, ७ कांकिणी (त्रि.गा. ६८२)

इनमेंसे ७ चेतनरत्न विजयार्द्धसे लाए जाते हैं वृषभाचलपर नाम लिखनेवाला कांकिणी रत्न, गुफामें प्रकाश कारक मणिरत्न व जलपर चलवत गमनका कारण चर्मरत्न श्रीदेवीके मंदिरसे लाते हैं। छत्र, दंड, असि, चक्र ये चार आयुधशालामें होते हैं। (त्रि० गा० ८२३)

चतुर्दश राजू—चौदह राजू—यह लोक १४ राजू ऊँचा है। देखो (प्र० त्रि० पृ० ११०)

चतुर्दश विद्या—(१) तंत्र, (२) सामुद्रिक, (३) स्वप्न, (४) ज्योतिष, (५) योग, (६) शिल्प, (७) कोक, (८) अश्व, (९) कृषि, (१०) नाट्य, (११) वास्तु (मकान बनाना), (१२) रसायन, (१३) धनुष्य, (१४) ब्रह्म।

चतुर्निकाय देव—४ प्रकार देवोंके समूह भवनवासी, व्यंतर जो प्रथम पृथ्वीके खर भाग व पंक भागमें रहते व कुछ मध्य लोकमें रहते हैं। ज्योतिषी जो मध्यलोकमें सूर्य चंद्रादि विमानोंमें रहते हैं व कल्पवासी जो स्वर्गोंमें रहते हैं।

चतुःपाद—८८ ज्योतिष ग्रहोंमें २२ वां ग्रह (त्रि०. गा० ३६८)

चतुर्विंशति जिन स्तुति—सरस्वती भवन बंबईमें है।

चतुर्भावना—चार भावनाएं मुनि व गृहस्थको विचारना चाहिये—(१) सर्व प्राणी मात्रपर मैत्रीभाव, (२) गुणवानोंपर प्रमोद भाव, (३) दुःखितोंपर करुणाभाव, (४) अविनयी जीवोंपर मध्यस्थ या उपेक्षा या वैराग्य भाव। (सर्वा० अ० ७-११)

चतुर्मास—चार मास। आषाढ़ सुदी १४से कार्तिक सुदी १४ तक व कार्तिक सुदी १५ तक साधु ऐलक व क्षुल्लक नियमसे एक स्थलपर रहते हैं। शेष श्रावक इच्छानुसार वर्तते हैं।

चतुर्मुख—श्री महावीर स्वामीके मोक्षके १००० वर्ष पीछे प्रथम कल्की ७० वर्ष आयु जो जैन धर्मका विरोधी होता है (त्रि० गा० ८५१)

चतुर्मुख यज्ञ (मह)—महा मुकुटबद्ध राजाओंके द्वारा अर्हतकी महा पूजा, सर्वतोभद्र पूजा। (श्रा० अ० २-१८)

चतुर्मुखी—विजयार्द्धकी दक्षिण श्रेणीमें १८वां नगर। (त्रि० गा० ६९८)

चतुर्विंशति कामदेव–देखो "कामदेव"।

चतुर्विंशति तीर्थंकर–(देखो प्र. जि. पृ. २६९)

चतुर्विंशति तीर्थंकर चिन्ह–वर्तमान भरतके २४ तीर्थंकर चिन्ह हैं–क्रमसे ऋषभ, हाथी, घोडा, बंदर, चकवा, कमल, साथिया, चंद्रमा, नाकू, कल्पवृक्ष, गेंडा, भैंसा, शूकर, सेही, वज्रदण्ड, मृग, बकरी, मछली, कलश, कछवा, कमल, शंख, नाग, सिंह। (जैन बाल गुटका प्रथम भाग)

चतुर्विंशति यक्ष–देखो प्र० जि० पृ० १८१–१

चतुर्विंशति शासनदेवी ,, ,, पृ० १९०–२

चतुर्विंशति स्तव–१४ प्रकीर्णकोंमें दूसरा, देखो चतुर्दश प्रकीर्णक।

चन्दनषष्ठी व्रत–भादवा वदी छठको उपवास छः वर्षतक करे (कि० कि० पृ० ११९)

चन्दना–पहली रत्नपृथ्वीके खरभागमें तेरहवीं पृथ्वी १०००योजन मोटी। यहां भवनवासी व्यंतर रहते हैं (त्रि० गा० १४८); राजा चेटककी पुत्री बाल ब्रह्मचारिणी, श्री महावीरस्वामीके समवशरणमें मुख्य आर्यिका।

चन्द्र–ज्योतिष ग्रह। ढाईद्वीपमें (२ जंबूद्वीप + ४ लवण समुद्र + १२ धातुकी खण्ड + ४२ कालोदधि + ७२ पुष्करार्द्ध)=१३२ कुल चंद्रमा गमनशील हैं। (त्रि० गा० ३४६); सौधर्म ईशान स्वर्गोंका तीसरा इन्द्रक विमान। (त्रि० गा० ४६४); रुचकगिरिमें पश्चिम दिशा सातवां कूट (त्रि० गा. ९९२); लवण समुद्रके आभ्यंतरसे परे अर बाह्य तटसे उरे ४२००० योजन जब ४२००० योजन व्यासको घेरे। विदिशा और अंतर दिशामें द्वीप हैं। चारों विदिशाके दोनों तरफ आठ सूर्य नाम द्वीप हैं। दिशा विदिशाके बीच जो आठ अंतर दिशा उनके दोनों तरफ सोलह चन्द्र नामके द्वीप (त्रि. गा. ९०९); भविष्यमें उत्सर्पिणी कालमें भरतक्षेत्रके प्रथम बलभद्र (त्रि.गा. ८७९); सीता नदी व चौथा द्रह। (त्रि. गा. ६५७)

चन्द्रकीर्ति–भट्टारक। पद्मपुराण, छंदकोष प्राकृत सटीक पूजा कल्प विमान शुद्धि पूजाके कर्ता। (दि० जै० ७८)

चन्द्रगत–सीताके भाई भामण्डलका पालक विद्याधर रथनूपुरका राजा। (इ. २ पृ. ८८)

चन्द्रगिरि–श्रवणबेलगोला (मैसूर) में चिक्क (छोटे) पर्वतका नाम जहां श्री भद्रबाहु श्रुतकेवलीके चरणचिह्न हैं। चन्द्रगुप्त मंदिर आदि १० मंदिर व शिलालेख हैं (म. मैसूर स्मा. पृ. १०८)

चन्द्रगुप्त मौर्य–भारतके सम्राट्–(३२० ई. पूर्व) श्री भद्रबाहु श्रुतकेवलीके शिष्य मुनि। गुरु समाधिमरण करानेके स्मारक चंद्रगिरि श्रवणबेलगोलापर हैं। (म. मैसूर स्मारक पृ. २१९)

चन्द्रधर–भरतक्षेत्रमें आगामी उत्सर्पिणीमें होनेवाले तीसरे बलिभद्र। (त्रि. गा. ८७८)

चन्द्रनखा–रावणकी बहिन जो खरदूषणको विवाही गई थी। (इ. २ पृ. ६०)

चन्द्र परिवार–ज्योतिषी देवोंमें चन्द्र, इन्द्र होता है उसका परिवार यह है। १ सूर्य, ८८ ग्रह, २८ नक्षत्र, तथा ६६९७५ कोड़ाकोड़ी तारे। ऐसे चंद्र ढाईद्वीपमें १३२ हैं। (च. छन्द ३८)

चन्द्रपुर–विजयार्द्धकी दक्षिण दिशामें ४६ वीं नगरी। (त्रि. गा. ७०१)

चन्द्रपुरी (चंद्रावती) श्री चंद्रप्रभ आठवें तीर्थंकरकी जन्मपुरी बनारससे १४ मील गंगा तटपर सारनाथ स्टेशनसे ९ मील। बाबू प्रभुदयालजी आरावालोंका बनवाया हुआ मनोज्ञ जिन मंदिर है। (या. द. पृ. ११)

चन्द्रप्रभ–भरतके वर्तमान ८वें तीर्थंकर जो श्री सम्मेदशिखरसे मोक्ष गए।

चन्द्रप्रभ चरित्र–मुद्रित।

चन्द्रप्रभ पुराण–सरस्वती भवन बम्बईमें है।

चन्द्रप्रभ शतपदि–कनड़ी भाषाका एक ग्रंथ सन् १९७८ का लिखा। (जैन हि. अ. १०२ वर्ष ११ सफा १०)

चंद्र प्रज्ञप्ति–दृष्टिवाद बारहवें अंगमें पहला परिकर्म। इसमें चंद्रमाका गमन परिवादिका वर्णन है। इसके मध्यम पद ३६०५०००० हैं।

(गो० जी० ३६२३)

चंद्रवंश–सोमवंश–ऋषभदेवके पुत्र बाहुबलि उनके पुत्र सोमयशने इस वंशकी स्थापना की।

(ह० पु० १६८)

चंद्रमाल–पश्चिम विदेह सीतोदा नदीके उत्तर तट देवारण्य वेदीसे आगे पहला व क्षार पर्वत।

(त्रि. गा. ६६९)

चन्द्रसागर ब्र०–पांडवपुराण, रामायण व नागकुमार षट्पदीके कर्ता (दि. ग्र. नं. ७९)

चंद्रसेन कवि–केवलज्ञान हुए ज्योतिषके कर्ता।

(दि. ग्र. नं. ७७)

चन्दाबाई–संस्कृतज्ञ पंडिता जैन बालाविश्राम आरा (विहार) की संस्थापिका। स्त्री शिक्षोपयोगी ग्रन्थोंकी कर्ता। 'जैनमहिलादर्श' मासिक पत्रकी संपादिका। बाबू निर्मलकुमारजीकी चाची, हाल मौजूद हैं।

चन्द्रा–देवोंके इंद्रोंमें तीन सभाएं होती हैं। मध्यकी परिषदका नाम (त्रि. गा. २२९)

चंद्राभ–लौकांतिक देवोंका एक भेद जो आदित्य और वह्नि जातिके मध्यमें रहते हैं। (त्रि. गा. ५३७) विजयार्द्धकी दक्षिण श्रेणिका ३६ वां नगर।

(त्रि. गा. ७००)

चन्द्राभा–ज्योतिषी देवोंमें इन्द्र चन्द्रकी पहली पट्ट महादेवी। (त्रि. गा. ४४७)

चमर–भवनवासीके असुरकुमारोंके प्रथम इंद्र (त्रि. गा. २०९) चमरेन्द्रकी ज्येष्ठ देवियां पांच हैं–कृष्णा, सुमेघा, सुका, सुकाढ्या और रत्नी।

(त्रि. गा. २३६)

चमरेन्द्र–देखो "चमर"।

चम्पक–वन, जो नंदीश्वर द्वीपमें वापिकाके तटपर १ लाख योजन लम्बे व आधलाख योजन चौड़े हैं। (त्रि. गा. ९७२)

चम्पतराय बारिष्टर–जैनधर्मके महत्वको बतानेवाली की आफ-नालेज, जैन लॉ, सन्यास धर्म, गृहस्थ धर्म आदि पुस्तकोंके निर्माता व प्रकाशक। अपना जीवन जैनधर्मकी सेवामें बितानेवाले। आप हाल विद्यमान हैं।

चम्पापुरी–(नाथनगर) विहार प्रांत भागलपुरसे ४ मील नाथनगर ष्टेशनसे मिली हुई। वहां श्री वासपूज्य बारहवें वर्तमान भरत तीर्थंकरके गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान चार कल्याणक हुए हैं। दो मंदिर हैं। चरणचिन्ह प्राचीन हैं। यहांसे ॥ मील चम्पानालामें दि० जैन प्राचीन बिम्ब हैं। भादों सुदी ११से १५ तक मेला होता है। (या. द. पृ. २१७)

चम्पाराम–पं० पाटनवाले (सं० १९१६) गौतम परीक्षा, वसुनंदि श्रावकाचार, चर्चासागर, योगसार वचनिकाके कर्ता (दि. ग्र. पृ. २४–४२)

चय–श्रेणी व्यवहार गणितमें समान हानि व वृद्धिका परिमाण (जै. सि. प्र. नं० ३९७) इसका कायदा यह है कि निषेकहार (गुण हानि आयामका दूना) में एक अधिक करके गुण हानिका प्रमाण जोड़कर आधा करे। जो आवे उसको गुण हानि आयामसे गुणा करे। इस गुणन फलका भाग विवक्षित गुण हानिके द्रव्यको देनेसे चय निकलती है। जैसे ३२०० गुणहानिका द्रव्य हो, गुणहानि ६ व उसका आयाम ८ हो तो चय क्या होगी?

$$\frac{3200}{1} \div \frac{8\times2+1\times8}{2} = \frac{3200\times2}{200} = 32 \text{ चय है।}$$

(जैन. सि. प्र. नं. ३९८)

चरणानुयोग–वह जिन शास्त्र जिसमें मुनि व श्रावकका चारित्र लिखा हो।

चरमदेह–अंतिम शरीर, उसीसे मोक्ष होगी।

चरमकालि–कर्मोंकी स्थिति घटाकर कर्म परमाणुओंको जो अंतसमय नीचेके निषेकोंमें मिलाए जावें। (ल. पृ. ९०)

चरमकालि पतन काल–कर्मके द्रव्यकी अंतिम कालिको नीचेके निषेकोंमें मिलानेका अंतिम समय।

(ल. पृ. ९८)

चरम शरीर–अंतिम देह जिससे मोक्ष हो।

चरम शरीरी–उसी भवसे मोक्ष जानेवाला।

चरमोत्तम देह–जो वज्रवृषभ नाराच संहननके धारी त्रेसठ शलाका तीर्थंकर चक्रवर्ती आदिमें उसी भवमें मोक्षगामी हों।, (चर्चा. नं. १००)

चर्चा–चौथे नर्ककी पृथ्वीका चौथा इंद्रक बिला। (त्रि० गा० १९७)

चर्चा शतक–कविवर पं. द्यानतराय कृत १०० छन्द। मुद्रित हैं।

चर्चा समाधान–अनेक चर्चाएं। पं० भूधरदास कृत मुद्रित है, हिन्दीमें।

चर्चासागर–पांडे चम्पालाल कृत संग्रहीत ग्रंथ। जिसमें अनेक आगम विरुद्ध चर्चायें भी हैं।

चर्चासागर समीक्षा–पं० परमेष्ठीदासजी न्यायतीर्थ कृत। इसमें चर्चासागरका युक्ति और प्रमाण पूर्वक खण्डन किया गया है।

चर्मरत्न–चक्रवर्तीके छठा अचेतन रत्न जिसे जलपर बिछादेनेसे थलवत् गमन होता है। (त्रि. गा. ६८२)

चर्या–आचरण; घर छोड़नेके अभ्यासी आवकका आचरण पहली दर्शन प्रतिमासे लेकर अनुमति त्याग प्रतिमा तक। (सा. अ. ३–१९)

चर्या परीषह–मुनिको चलते हुवे थकन हो जाय तो समभावसे सहना। यह नौमी परीषह है। (सर्वा. अ. ९–९)

चल सम्यग्दर्शन–क्षायोपमिक सम्यक्त या वेदक सम्यक्त जिसमें चंचलपना होता है। सम्यक्तमें मलीनता होती है। क्योंकि सम्यक्त प्रकृति दर्शन मोहनीयका उदय है। औपशमिक व क्षायिक सम्यग्दर्शन निर्मल व निश्चल है। (गो. जी. गा. २६)

चलितरस–जिन चीजोंका स्वाद बिगड़ गया हो या जो शास्त्रकी मर्यादासे अधिक कालकी होगई हो, उनमें त्रस जीवोंकी उत्पत्ति होजाती है। जैसे सड़ी नारंगी, बासी रोटी पुरी (आ. पृ. १०२)

चक्षु इंद्रिय–आंख इंद्रिय, आंखके द्वारा जानना।

चक्षु इंद्रिय विषय–देखो शब्द 'इंद्रिय विषय'

चक्षुःदर्शन–आंखके द्वारा पदार्थोंका सामान्य आकार रहित झलकना। आंख व पदार्थका सम्बन्ध होते पहले क्षण जो कुछ हो सो इसके पीछे ही मतिज्ञान होजाता है। (जै. सि. प्र. नं० २१२)

चक्षुःदर्शनावरण कर्म–वह कर्म जिसके उदयसे चक्षुःदर्शन न हो। (सर्वा. अ. ८–७)

चक्षु स्पर्शाध्वान–अयोध्या नगरसे चक्री मध्याह्न समय सूर्य निषिद्धाचलपर उत्तर तटसे १४६२१–$\frac{४७}{३२०}$ योजन उरे आवे। अर्थात अयोध्यासे ही ४७२६३$\frac{७}{२०}$ योजनपर हो तब उसे देख लेते हैं। उत्कृष्ट चक्षुइंद्रियका विषय। (त्रि. गा. ३८९)

चक्षुष्मान–पुष्कर द्वीपके दूसरे बाहरी भागका स्वामी व्यन्तरदेव। (त्रि. गा. ९६२)

चाणक्य–पटनीके राजा नन्दके समय कपिल ब्राह्मणका पुत्र। इसने नन्दको मरवाकर नंदके पुत्र चंद्रगुप्त मौर्यको राजा बनाया व आप बहुत काल मंत्री रहा। अन्तमें महीधर मुनिके उपदेशसे मुनि होकर आचार्य होगया। यह दक्षिणके वनवास देशके क्रौंचपुरमें आकर समाधिमरण करनेको वनमें बैठे थे, अन्य मुनि भी थे, वहां नन्दका बदला लेनेको सुबन्धु मंत्री आया, उसने मुनिसंघके चारों ओर अग्नि जला दी। सबने उपसर्ग सहा व सुगति पाई। (आ. क. नं० ७३)

चामुण्डराय–देखो (प्र. जि. पृ. १८८–१८९–२०९), बड़ा शूरवीर धर्मात्मा महाराजा राचमल्लका मंत्री जिसने श्रवणबेलगोलामें श्री गोमटस्वामीकी मूर्तिकी प्रतिष्टा कराई व नेमचंद सिद्धांत चक्रवर्तीके पास गोमटसारकी कर्नाटकीमें टीका लिखी, जिन मंदिर बनवाए। (गो. क. गा. ९६६–९७१ व म. मैसूर स्मा. पृ. २१९)

चामुण्डराय पुराण–सरस्वती भवन बंबई।

चार चौबीसी पाठ–मुद्रित।

चारण–सुमेरु पर्वतके नंदनवनमें एक अकृत्रिम जिनमंदिरका नाम। (त्रि. गा. ६१९); हरिक्षेत्रके

मध्यमें विजयवान नाभि गिरि है उसपर निवासी व्यंतरदेव । (त्रि. गा. ७१९)

चारण ऋद्धि-तपके बलसे मुनियों द्वारा प्राप्त शक्ति जिससे आकाशमें जासके हैं । " देखो क्रिया ऋद्धि "

चारित्र-संसारके कारणोंको मिटानेके लिये उत्सुक महात्माका सम्यग्ज्ञानी होते हुए कर्मोंके ग्रहणके निमित्त क्रियाओंसे विरक्त होना; आत्माके शुद्ध स्वभावमें रमण करना निश्चय चारित्र है, मुनिका महाव्रतादि चारित्र पालना व्यवहार चारित्र है । इसके पांच भेद हैं—

(१) सामायिक-इंद्रिय दमन व प्राणी रक्षाके साथ आत्मामें समभाव पूर्वक लय होना, (२) छेदोपस्थापना-प्रमादसे अनर्थ होजानेपर उसको दूर करके फिर सामायिकमें स्थिर होना, (३) परिहार विशुद्धि-विशेष संयम जिससे प्राणियोंको बाधा न हो । (४) सूक्ष्म साम्पराय-अति सूक्ष्म कषाय सहित चारित्र जो १०वें गुणस्थानमें होता है, (५) यथाख्यात चारित्र-मोहके उदयके अभाव पूर्ण वीतराग भाव । (सर्वा. अ. ९-१०)

चारित्र आराधना-चारित्रको भलेप्रकार सेवना ।

चारित्र आर्य-चारित्रको पालनेवाले मुनि, इनके दो भेद हैं-१ अभिगत चारित्रार्य-बिना उपदेशके ही आत्मध्यानसे ११ व १२ वें गुणस्थानपर पहुंचनेवाले । २-अनभिगत चारित्रार्य-जो बाहरी उपदेशको पाकर जिनके चारित्र मोह उपशम या क्षय हुआ हो । (त० रा० ७)

चारित्र औपशमिक-जो चारित्रमोहनीयके उपशमसे वीतराग भाव हो ।

चारित्र क्षायिक-जो चारित्रमोहनीयके नाशसे चारित्र हो ।

चारित्र चूडामणि व चूडामणि-कौमार व्याकरण व मंत्र सूत्रामृतीके कर्ता (दि.ग्र.नं० ८१)

चारित्र मोहनीय कर्म-जो आत्माके शांत भाव व वीतराग भावको मलीन करे । इसके १६ कषाय व नौ नोकषाय ऐसे २५ भेद हैं । (सर्वा.अ.८-९)

चारित्र लब्धि-चारित्रकी प्राप्ति । श्रावकके देश चारित्रको मिथ्यादृष्टी या असंयत सम्यग्दृष्टी प्राप्त करता है तथा सकल चारित्र जो मुनि धर्म है उसे ये दोनों एकदमसे तथा देश संयत श्रावक प्राप्त करता है । (ल० गा० १६०)

चारित्र विनय-तत्वको समझकर चारित्र पालनेमें चित्तका उत्साह व आदर । (सर्वा. अ. ९-२३)

चारित्र सार-चामुण्डराय कृत सं० गद्य श्लोक १८७५ सटीक मुद्रित ।

चारित्र सिंह साधु-कातंत्र विभ्रमावचूरिके कर्ता । (दि० ग्र० नं० ४०६)

चारित्र सुन्दर कवि-महिपाल चरित्रके कर्ता । (दि० ग्र० नं० ८२)

चारुकीर्ति-चन्द्रप्रभकाव्य टीका, आदिपुराण, यशोधरचरित्र, नेमि निर्वाण काव्य टीका, पार्श्व निर्वाण काव्य टीकाके कर्ता । (दि. ग्र. नं० ८३)

चारुकीर्ति पंडिताचार्य-गीत वीतराग ५७९ श्लोक (गीतगोविंदके ढंगपर) के कर्ता । (दि० ग्र० नं० ४०६)

चारुदत्त-चम्पापुरके सेठ भानुदत्त और सुभद्राका पुत्र, अन्तमें मुनि हो स्वर्ग गया । (आ० क० नं० ३५)

चारुदत्त चरित्र-मुद्रित ।

चारुनन्दि-आचार्य सं० १२१६ (दि० ग्र० नं० ८४)

चार्ट-सार्द्धधर्म, २४ तीर्थंकर मान, गुणस्थान, पंचपरमेष्टी गुण मुद्रित ।

चिकन्न पंडित-गुणपाठ वैद्यक ग्रन्थ २०००का कर्ता । (दि० ग्र० नं० ८५)

चिकागो प्रश्नोत्तर मुद्रित-इसमें वे प्रश्न हैं जो वीरचंद राघवजी गांधीको आत्मानन्दजी श्वे० साधुने दिये थे ।

चित्र–मेरुके नन्दनवनमें एक जिनमंदिरका नाम। (त्रि० गा० ६१९); सीता नदीके पूर्व तटका पर्वत। (त्रि० गा० ६९४)

चित्रकूट–सीताके उत्तर तटपर पहला वक्षार गिरि, (त्रि० गा० ६६६); इसी पर्वतपर एक कूट (त्रि० गा० ७४३); विजयार्द्धकी दक्षिण श्रेणीमें ३८ वां नगर। (त्रि० गा० ७००)

चित्रगुप्त–भरतकी भविष्यचौवीसीमें १७ वां तीर्थंकर। (त्रि० गा० ८७१)

चित्रगुप्ता–रुचकगिरिमें दक्षिणकूट वैश्रवणपर वसनेवाली देवी। (त्रि० गा० ९९१)

चित्रबन्ध स्तोत्र–मुद्रित।

चित्रलाचरणी–प्रमत्त गुणस्थानवर्ती मुनि जिसका आचरण प्रमाद सहित होता है।
(जै० सि० प्र० नं० ६१९)

चित्रवाहन–भरतके भविष्य चक्रवर्ती ग्यारहवें।
(त्रि० गा० ८७०)

चिदानंद शिवसुन्दरी नाटक–मुद्रित।

चिन्ता–तर्क, निश्चित अविनाभाव विचार जैसे जहां धूआं होगा वहां अग्नि अवश्य होगी। मति ज्ञानका एक नाम (सर्वा० अ० १–१३)

चिंतामणि–प्रसिद्ध एक रत्न, चिंताको मेटने-वाला, एक कवि चिंतामणि व्याकरणके कर्ता।
(दि० ग्रं० नं० ८६)

चिलात पुत्र–राजगृहके राजा श्रेणिकके पिता उपश्रेणिकने भील कन्या तिलकवर्त से व्याह किया उससे उत्पन्न चिलाती पुत्रको राज्य दिया। राज्य न चला सका, श्रेणिक राजा हुआ। तब चिलाती पुत्र श्री मुनिदत्तका शिष्य मुनि होगया था। तप क्रिया व उपसर्ग सहा, मरकर सर्वार्थसिद्धिमें अहमिंद्र हुआ। (आ० क० नं० ७०)

चुन्नीलाल वैनाडा–पं०, तीस चौवीसी पूजा लघु व चौवीसी पूजाके कर्ता। (दि.ग्र.नं. २९–४२)

चूडामणि–विजयार्द्धकी उत्तर श्रेणीमें सातवां नगर। (त्रि० गा० ७०२)

चूर्ण दोष–नेत्रका अंजन व शरीर संस्काररूप चूर्ण आदिकी आशा देकर वस्तिका ठहरनेकी यदि साधु ग्रहण करे। (भ० पृ० ९६)

चूलिका–बारहवें दृष्टिवाद अंगमें चूलिकाके पांच भेद हैं—

(१) जलगता–जिसमें जलमें गमन, अग्नि गमनके मंत्र आदि–२०९८९२०० पद।

(२) स्थलगता–मेरु पर्वत प्रवेश शीघ्र गमनके मंत्रादि–२०९८९२०० पद।

(३) मायागता–इन्द्रजाल विक्रियाके मंत्रादि–२०९८९२०० पद।

(४) रूपगता–नानारूप पलटनेके मंत्रादि–२०९८९२०० पद।

(५) आकाशगता–आकाश गमनके मंत्रादि–२०९८९२०० पद।

जो बात पहले कही हो व न कही हो उसका विशेष चिंतवन करना व कहना (गो.क.गा. ३९८)

चेतन–जाननेवाला आत्मा, जीव।

चेतन कर्म युद्ध–मुद्रित।

चेतनचरित्र– ,,

चेतना–अनुभव, स्वादमें मगनता। उसके तीन भेद हैं। (१) कर्मफलचेतना-कर्मके फल सुख व दुःखका अनुभव करना। (२) कर्म-चेतना–रागद्वेष सहित कार्य करनेमें लीन होना। (३) ज्ञानचेतना–आत्माके निर्मल ज्ञानका स्वाद लेना जो सम्यग्दृष्टीसे प्रारम्भ होकर अर्हंत व सिद्धके पूर्णताको प्राप्त होती है। (पंचाध्यायी द्वि० अ० श्लो० १९३) जीवका गुण विशेष, उसके दो भेद हैं दर्शन और ज्ञान (आलापपद्धति)

चेलका–पहला कल्की जो भरतके पंचमकालमें महावीरस्वामीके १००० वर्ष पीछे हुआ। इस चतु-र्मुखका पुत्र अजितंजय उसकी स्त्रीका नाम।
(त्रि० गा० ८५९)

चेलिनी–सिंधु देशकी विशाला नगरीके प्रसिद्ध जैन राजा चेटककी सात कन्याओंमें पांचवी। पहली

प्रियकारिणी श्री महावीर भगवानकी माता थीं। चेलनी राजा श्रेणिकको विवाही गई। जैन धर्ममें दृढ़ थी इसने अपने पतिको बौद्धमतीसे जैनी बनाया। (आ० क० नं० १८७)

चैत्य-प्रतिमा अरहंत मूर्ति (त्रि. गा. १००२)

चैत्य वृक्ष-वे वृक्ष जिनके नीचे अरहंत प्रतिमा हो जो आठ प्रातिहार्य सहित होती है। (त्रि० गा० १०१२)

चैत्यालय-अरहंतकी प्रतिमाका आलय या मंदिर।

चैनसुख-पं०, जैपुरनिवासी-अकृत्रिम चैत्यपूजा व भजनादिके कर्ता। (दि० ग्रं० नं० २६)

चौबीसठाणा-२४ स्थान-१४ मार्गणा+गुणस्थान+जीवसमास+पर्याप्ति+प्राण+संज्ञा+उपयोग+ध्यान+आस्रव+जाति+कुल=२४।

चौबीस महाराज पूजा-वृन्दावन, मनरंग, रामचंद्र, बखतावर आदिकी प्रसिद्ध है। कई मुद्रित है।

चौबीस दंडक-मुद्रित है, व्यावरमें।

चौबीस ठाणा चर्चा-मुद्रित है।

चौर प्रयोग-चोरीका उपाय बताना, स्तेन प्रयोग, अचौर्य अणुव्रतका पहला अतीचार। (सर्वा० अ. ७-२७)

चौर्य व्यसन-चोरी करनेकी बुरी आदत।

चौर्यानन्द-रौद्रध्यान-चोरी करने, कराने व उसकी अनुमति देते हुए आनन्द मानना, (सर्वा० ९-२९); स्तेयानंद।

चौरार्थादान-चोरीका लाया हुआ माल लेना; यह अचौर्य अणुव्रतका दूसरा अतीचार है। (सर्वा० अ० ७-२९)

चौरासी-मथुरासे १ मील बाहर विशाल दि० जैन मंदिर। यहां चरणचिह्न श्री जंबूस्वामी अन्तिम केवलीके हैं जो वहांसे मोक्ष हुए-श्री महावीरस्वामीके ६२ वर्ष पीछे। (या० द० पृ० १२)

चौरासी लक्ष उत्तरगुण-देखो शब्द 'उत्तरगुण'

चौरासी लक्ष योनि-नौ प्रकार मुख्य योनिके विशेष भेद ८४ लाख इस प्रकार हैं:—

पृथ्वीकायिकोंकी	७ लाख
जल ,,	७ ,,
अग्नि ,,	७ ,,
वायु ,,	७ ,,
नित्य निगोद साधारण वनस्पति	७ ,,
इतर ,, ,, ,,	७ ,,
प्रत्येक वनस्पति	१० ,,
द्वेन्द्रिय	२ ,,
तेन्द्रिय	२ ,,
चौन्द्रिय	२ ,,
पंचेंद्रिय पशु	४ ,,
मानव	१४ ,,
नारकी	४ ,,
देव	४ ,,
(च० छंद ९६)	८४ ,,

चौलि क्रिया-गर्भान्वय क्रियाका १२ वां संस्कार, जिसमें ३ या ४ वर्षके बालकके बाल मुंडाए जाते हैं, देखो विधि व मंत्र। (गृ० अ० ४)

चौसठ ऋद्धि-(देखो प्र० जि० पृ० ४२); (म० पृ० ५१७) पूजा मुद्रित है।

च्यावित शरीर-विष, तीव्र वेदना, रक्त क्षय, तीव्र भय, शस्त्रघात, क्रोधादि संक्लेश भाव, श्वास निरोध, आहार अभाव। इन कारणोंसे जो आयु छिदे व आयु कर्मकी उदीरणा हो सो कदलीघात है। कदलीघात सहित अकालमें जो शरीर छूटे सो च्यावित शरीर है। (गो० क० गा० ५७)

च्युत मरण-} आयु कर्मकी उदीरणा बिना
च्युत शरीर-} अपने समयपर शरीर छूटे। जैसे देव नारकी आदिका। (गो. क. गा. ५६)

छ

छत्रचूडामणि-काव्य, जीवन्धर चरित्र मुद्रित।

छत्रपति-पं० पद्मावती पुरवाल कोटा निवासी द्वादश भावना, मनमोदन पंचासिका पद्य, उपमम-प्राद्य पद, शिक्षाप्रधान पद्यके कर्ता। (सन् १९११) (दि० ग्रं० नं० २७)

छत्रसेन–आराधना कथाकोष, क्रियाकोष पुष्पांजलि उद्यापनके कर्ता। (दि० ग्र० ८०)

छद्मस्थ वाणी–सर्वज्ञ सिवाय अन्यकी वाणी।

छद्मस्थ–सर्वज्ञ होनेके पहलेकी अवस्था, बारहवें क्षीण कषाय गुणस्थानतक। जब स्थितिकांडकका घात होजाता है तब कृतकृत्य छद्मस्थ कहलाता है। फिर वह उदयावलीके बाह्य तिष्ठे तीन घातियाके द्रव्यकी मात्र उदीरणा उस समयतक करता है जब एक समय अधिक आवलीकाल इस गुणास्थानमें बाकी रहता है। (ल० गा० ६०२)

छद्मस्थ वीतराग–ग्यारहवें व बारहवें गुणस्थानवर्ती साधु जो वीतराग तो है परन्तु अल्पज्ञ है। सर्वज्ञ नहीं है। (सर्वा० अ० ९–१०)

छन्न दोष–आलोचनाके १० दोषोंमें छठा दोष जो गुरुसे पूछे ऐसा दोष किसीने किया हो तो क्या प्रायश्चित्त है। ऐसा पूछते पूछते अपने दोषका भी प्रायश्चित्त पूछ ले। शेषको प्रगट रूपसे कहे नहीं। (भ० पृ० २२९)

छप्पन कुमारी देवी–देखो 'षट् पंचाशत कुमारी'

छहढाला–दौलतरामकृत, बुधजनकृत हिंदी मुद्रित

छियालीस गुण–देखो 'षट् चत्वारिंशत् गुण।

छियालीस दोष–आहार, देखो 'आहार दोष'

छियालीस दोष–देखो "वसतिका दोष"

छुल्लक–देखो "क्षुल्लक"।

छुल्लिका–जो स्त्री क्षुल्लकके समान नियम पालती एक सफेद धोती व एक सफेद दुपट्टा रखती है। (श्रा. पृ. २३४)

छेद–प्रायश्चित्तका एक भेद। अपराधी साधुके दीक्षाका समय घटा देना (सर्वा. अ. ९–२२)

छेद पिण्ड–सं०में मुद्रित।

छेद शास्त्र– ,, ,,

छेदोपस्थापना चारित्र–प्रमादसे दोष होनापेपर दूरकर भलेप्रकार विकल्प रहित सामायिकमें तिष्ठना, अर्थात् सामायिक चारित्रको धार यदि कोई पापरूप क्रियाको प्राप्त हो तो उसको प्रायश्चित्त विधिसे छेदन करके आत्माको व्रत धारणादि संयम रूप धर्ममें स्थापन करना। (गो० जी० ४७१)

छोटेलाल–जैसवाल, चौबीसी, पंचकल्याणक, नित्य पूजा व सूत्र पद्यबद्धके कर्ता। (दि० ग्र० नं० २८–४२)

ज

जखडा साधु–धन्यकुमारचरित्रके कर्ता। (दि० ग्र० नं० ८८)

जगतघन–सर्व लोक ३४३ घनराजू।

जगच्छ्रेणी–(जगतश्रेणी)–सात राजू प्रमाण एक प्रदेश मोटी पंक्ति। पल्यके अर्द्धछेदोंको असंख्यातका भाग देकर जो आवे उतने घनांगुल लिख परस्पर गुणनेसे जो आवे। जैसे पल्य १६ माना जावे तो अर्द्धछेद १,२,४,८ ऐसे चार होंगे। गुणसंख्यात २ माना जावे तो भाग देनेपर दो रहे यदि घनांगुल पांच हो तो २×२×२×२×२=३२ जगतश्रेणी होगी। (देखो प० जि० पृ० १०८) (त्रि० गा० ७)

जगजीवन–अग्रवाल पं० आगरा निवासी (संवत् १७७१) बनारसीदास कृत समयसार नाटककी टीका, बनारसी विलासके कर्ता। (दि० ग्र० नं० २९–४१)

जगतकीर्ति–भट्टारक एक भावोद्यापनके कर्ता (दि० ग्र० नं० ९०)

जगत प्रतर–जगत श्रेणीका वर्ग। ७ × ७= ४९ राजू। (देखो प० जि० पृ० १०९)

जगतराय–(सं० १७२१) आगम विलास पद्य, सम्यक्त कौमदी छन्द, पद्मनंद पंचविंशति छंद के कर्ता। (दि० ग्र० नं० ३०–४२)

जगतदेव–स्वप्न चिंतामणिके कर्ता। (दि० ग्र० नं० ९२)

जगन्नाथ पंडित–सुख संधान काव्य, चतुर्विंशति सन्धान काव्य सटीक, पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय

टका, श्रीपाल विदेह चरित्र, सुभूम चरित्रके कर्ता। जिस काव्यमें ७ व २४ प्रकार अर्थ हो वह संधान है। (दि० ग्र० नं० ९४)

जघन्य अनन्तानन्त
जघन्य असंख्यातसंख्यात
जघन्य परीतासंख्यात
जघन्य परीतानन्त
जघन्य युक्तानन्त
जघन्य युक्तासंख्यात
जघन्य संख्यात
} (देखो प्र० भि० ९००००)

जघन्य आयु–एक उछ्वासके अठारहवें भाग क्षुद्रभवकी, मनुष्य व तिर्यंचोंमें, देव व नारकीसे दस दस हजार वर्ष।

जघन्य कर्म स्थिति–वेदनीयकी १२ मुहूर्त, नाम गोत्रकी आठ आठ मुहूर्त, ज्ञानावरणादि पांच कर्मोंकी एक एक अन्तर्मुहूर्त। (सर्वा० अ० ८। १८–१९–२०)

जघन्य गुण–जिस परमाणुमें सबसे स्निग्ध या रूक्ष गुण हों।

जघन्य स्पर्द्धक–कर्मोंमें फल दान शक्तिका जघन्य अंश सो अविभाग प्रतिच्छेद, उसके समूहका नाम वर्ग या परमाणु। समान अविभाग प्रतिच्छेद युक्त वर्गोंके समूहका नाम वर्गणा, जघन्य अनुभाग युक्त परमाणुको जघन्य वर्ग कहते हैं। उनके समूहका नाम जघन्य वर्गणा, जघन्य वर्गसे एक अधिक अविभाग प्रतिच्छेद युक्त जो वर्ग जिनके समूहका नाम द्वितीय वर्गणा। ऐसे क्रमसे एक एक अविभाग प्रतिच्छेद अधिक वर्गोंके समूह रूप वर्गणा होती जाय जबतक जघन्य वर्गसे दूना अविभाग युक्त वर्गोंका समूहरूप वर्गणा न बने। इसके पहले सर्व वर्गणाओंका समूह जघन्य स्पर्द्धक है। जघन्य वर्गसे दूना अविभाग प्रतिच्छेद युक्त वर्ग होगा, उनका समूहरूप वर्गणा द्वितीय स्पर्द्धककी पहली वर्गणा कहलायगी। इस तरह जघन्यसे तिगुणे अविभाग प्रतिच्छेदयुक्त वर्गोंके समूहरूप अनेक वर्गणाओंका समूह तृतीय स्पर्द्धककी पहली वर्गणा है। इसी तरह चौथे आदि स्पर्द्धक हैं। (ला. प्र. ६–७)

जतु–इन्द्रकी तीसरी भीतरी सभाका नाम। (त्रि. गा. २२९)

जन्न–कर्णाटक जैन कवि (सन् १२०९) इसका पिता टांकर होशाला वंशी राजा नरसिंहका सेनापति था, यह चोलकुलके नरसिंहदेव राजाका सभा कवि, सेनानायक व मंत्री था। किले कुलदुर्गमें अनंतनाथका मंदिर व द्वारसमुद्रके विजयी पार्श्वनाथके मंदिरका द्वार बनवाया था। यशोधरचरित्र, अनंतनाथपुराण व शिवाय स्मरतंत्रका कर्ता। (क० नं० ४७)

जनपद सत्य–१० प्रकार सत्यका यह पहला भेद–देशोंमें व्यवहारी लोगोंमें जो वचन जिसके लिये प्रवृत्तिमें आरहा हो वह कहना, जैसे भातको महाराष्ट्र देशमें भातु या भेटू, अंध्रदेशमें वंटक वा मुकुड, कर्णाटकमें कूलु द्राविडमें चोरु कहते हैं। (गो० जी० गा० २२३)

जन्म–नवीन शरीर धारण करना। तीन प्रकार है–१ गर्भज–जो स्त्रीके उदरमें स्त्रीके रुधिर व पुरुषके वीर्यके मिश्रणसे हो। २ उपपादज–जो देवनारकियोंके होता है जो अपने स्थानमें अंतर्मुहूर्तमें वैक्रियिक जातिकी आहारक वर्गणाओंसे युवान सम होजाते हैं। ३ सम्मूर्छन–इन दोनोंके सिवाय सर्व प्रकारके जन्म जैसे एकेन्द्रिय द्वेन्द्रियादिके (सर्वा० अ० २–१०१)

जन्मक्रिया या संस्कार–प्रियोद्भव क्रिया छठी गर्भान्वय क्रिया–जब बालक जन्मता है तब गृहस्थाचार्यद्वारा घरमें पूजा होमादि द्वारा की जाती है, गंधोदकसे बालक छिड़का जाता है, नाभिनाल कटी जाती है। बालकको स्नान कराया जाता है। नाभिनाल पवित्र स्थानमें गाड़ी जाती है। इसके मंत्रादिको देखो। (म० अ० २)

जन्माशौच–बालकोंके जन्मनेपर व्यवहारमें अशुद्धि मानी जाती है, उसको आशौच कहते हैं तब श्री जिनेन्द्रकी पूजा व पात्रदान आदि नहीं

किया जाता है। यह तीन तरहका होता है। स्राव, पात, प्रसूत। जो गर्भ तीसरे या चौथे मास तक गिरे उसे स्राव, पांचवे व छठे मासमें निकले उसे पात, सातवें मासके आगे तकको प्रसूति कहते हैं। स्राव व पातमें मात्र माताको उतने दिनोंका अशौच है जितने मासका गर्भ हो। पिता आदिको स्रावमें स्नान मात्रसे शुद्धि व पातमें एक दिनका अशौच होता है। प्रसूतिमें मावाप व बंधुओंको १० दिनका सूतक होता है। यह साधारण नियम है। (गृ. अ. २३)

जम्बूद्वीप–मध्यलोकमें असंख्यात द्वीप समुद्रोंमें बीचका द्वीप एक लाख महायोजन व्यासवाला गोल कड़ेके आकार है। चारों तरफ लवण समुद्र है बीचमें मेरु पर्वत है। इसमें भरत, हेमवत, हरि, विदेह, रम्यक, हैरण्यवत, ऐरावत सात क्षेत्र हैं। दक्षिणमें भरतक्षेत्र है। इस द्वीपमें १ मेरुपर्वत, ६ हिमवत आदि कुलाचल पर्वत, ४ यमकगिरि-२०० कांचनगिरि, ८ दिग्गज पर्वत, १६ वक्षार-गिरि, ४ गजदंत पर्वत, ३४ विजयार्द्ध, ३४ वृष, भाचल, ४ नाभिगिरि, सब ३११ पर्वत हैं। (१+६+४+२००+८+१६+४+३४+३४+४ =३११) गंगादि नदियोंके पर्वतसे पड़नेके कुण्ड १४ + विभंगा नदीके निकलनेके कुण्ड १२ + गंगा सिंधुके समान दो दो नदी विदेहमें जिनसे उपजी ऐसे कुण्ड ६४ सब ९० कुण्ड हैं। कुला-चलके द्रह ६ + सीता नदीके १० + सीतोदाके १० कुछ २६ द्रह हैं। १७ लाख ९२ हजार कुल परिवार नदी हैं। इनके दोनों तरफ वेदी हैं सो पैंतीस लाख ८४ हजार १८० वेदियां हैं। (त्रि. गा. ७३१); इस द्वीपका स्वामी व लवण समुद्रका स्वामी अनादर और सुस्थित दो व्यन्तरदेव हैं। (त्रि. गा. ९६१)

जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति–(देखो प्र० जि० ए० १२३–१)

जम्बूवृक्ष–जम्बूद्वीपमें पृथ्वीकायमई जामनके वृक्षके आकार रत्नमई उपशाखा व मूंगेके समान वर्णवाले फूलोंको धरे मृदंग समान फल जिसमें हैं यह १० योजन ऊँचा मध्यमें ६ योजन चौड़ा ऊपर ४ योजन चौड़ा है। पृथ्वीमें आध योजन गहरा है। इसकी चार शाखाएं वज्रमई आध योजन चौड़ी व आठ योजन लम्बी हैं। यह मुख्य जम्बू-वृक्षका प्रमाण है। इससे आधा अन्य जम्बूवृक्षका प्रमाण है। नील नामा कुलस्थलके पास दक्षिण समुद्रको जाती सीतानदीके पूर्व मेरुसे ईसान उत्तर कुरु भोगभूमिके क्षेत्रमें जम्बूवृक्षकी थली है। यह तला ५०० योजन व्यासवाला है। इसके परिवार वृक्ष कुल एक लाख ४० हजार एकसौ बीस (त्रि. गा. ६३९–६५०) मुख्य जम्बूवृक्षकी उत्तर दिशा सम्बन्धी शाखापर श्री जिन मंदिर है। शेष तीन शाखाओंपर आदर व अनादर व्यंतरोंके निवास हैं।

जम्बूस्वामी–राजगृहीमें सेठ कुमार। राजा श्रेणिकके समयमें। श्री सुधर्माचार्यके शिष्य हो मुनि हुए। तप कर अंतिम केवली हो मोक्ष पधारे। यह प्रसिद्ध है। उनका मोक्षस्थान मथुरा चौरासी है।

जय–भरतके भविष्य २४ तीर्थंकरोंमें ११ वें तीर्थंकर (त्रि० गा० ८७५) भरतके वर्तमान ११ वें चक्री (त्रि० गा० ८१५) अनंतनाथ १४ वें तीर्थंकरके मुख्य गणधर। (इ. २ ए. ६)

जयकीर्ति–भरतके भविष्य २४ तीर्थंकरोंमें १० वें तीर्थंकर (त्रि० गा० ८७४)

जयकुमार–भरतचक्रवर्तीके सेनापति, सुलोच-नाके पति। मुनि हो ऋषभदेवके ७१ वें गणध हो मोक्ष पधारे। (आ० प० ४७–२४६)

जयचन्दराय छाबड़ा–जयपुरके अनुभवी पं० सर्वार्थसिद्धि वचनिका (सं० १८६१) परीक्षा मुख वचनका (१८६३) द्रव्यसंग्रह (१८६३) स्वामि कार्तिकेय वच० (१८६६में) अष्टपाहुड वचनिका (१८६७) ज्ञानार्णव व० (१८६९) इत्यादिके कर्ता (दि. ग्र. ३१–४२)

जयचन्द–पं०, मिथ्यात्व खण्डन वचनकाके कर्ता । (दि० ग्र० ९२–४२)

जयजिनेन्द्र–उत्तर भारतमें जैनोंमें परस्पर विनयका प्रचार है । जिनेन्द्रकी स्तुतिवाचक शब्द है ।

जयन्त–जंबूद्वीपके कोटमें चार दिशाओंके द्वारोंमें एकका नाम । (त्रि० गा० ८९२); रुचिकगिरीपर उत्तर दिशाका एक कूट (त्रि. गा. ९९३) ८८ ज्योतिष ग्रहोंमें ६७ वां ग्रह (त्रि. गा. ३१९) पांच अनुत्तर विमानोंमें एक श्रेणीबद्ध (त्रि. गा. ४९०)

जयन्ता–विदेहकी १९ वीं मुख्य राज्यधानी (त्रि० गा० ७१९)

जयन्ती–नन्दीश्वर द्वीपकी पश्चिम दिशाकी एक बावड़ी (त्रि० गा० ९६९) रुचकगिरिकी पूर्वदिशाके तपन कूटपर दिक्कुमारीदेवी (त्रि० गा० ९४०); विजयार्द्धकी दक्षिण दिशामें ३२ वां उपनगर । (त्रि० गा० १९९)

जयविलास–ज्ञानार्णवके टीकाकार (दि. ग्र. नं० ९२)

जयवन्त–तत्वार्थ बालबोधके कर्ता । (दि. ग्र. नं० ८९)

जयश्यामा–श्री विमलनाथ तीर्थंकरकी माता । (इ० १ पृ० २)

जयसेन–प्रतिष्ठा पाठ, धर्मरत्नाकरके कर्ता । (दि. ग्र. नं० ३१) श्री महावीरस्वामीके पीछे १६२ वर्ष पीछे ११ अंग १० पूर्वके पाठी ११ महात्माओंमें चौथे (श्रुत पृ. १२) पंचास्तिकाय, प्रवच० व समयसारके संस्कृत टीकाकार आचार्य (दि. ग्र. (पृ. ३६) । श्रावस्तीके राजा यति वृषभाचार्यके पास बौद्धधर्म छोड़ जैन हुआ, जिनमंदिर बनवाए, शिवगुप्त बौद्ध भिक्षुक द्वेष करने लगा व हिमारनामा मानवद्वारा कपटसे राजाको मरवाया व हिमार कपटसे वृषभाचार्यका शिष्य मुनि हो गया जयसेन मुनिराजके दर्शनको आया तब जब गुरु वह दांड देने लगा तब हिमारने इसको मार डाला और भाग गया । (आ० क० नं० ८१)

जयसेना–स्वर्गके उत्तर इन्द्रोंके छठी महादेवी (त्रि० गा० ५११)

जयावह–विजयार्द्धकी उत्तर श्रेणीमें ४२ वां नगर । (त्रि० गा० ७०९)

जरायुज–जो गर्भसे पैदा होनेवाले पशु या मानव मांससे ढके हुए पैदा हों (सर्वा. अ. २–३३)

जरासिंध–नौमें प्रतिनारायण श्री कृष्ण नारायणके शत्रु । (सर्वा० स० अ० ९–३३)

जलकांत–भवनवासी देवोंमें उदधि कुमारोंके इन्द्र । (त्रि. गा. २१०)

जलकाय जलकायिक–जल शरीरधारी एकेंद्रिय जीव । जब वह जल प्रासुक या अचित्त होजाता है जीव चला जाता है तब उसे जलकाय कहते हैं ।

जलकेतु–ज्योतिषके ८८ ग्रहोंमें ७६ वां ग्रह (त्रि० गा० ३६९)

जलगता चूलिका–दृष्टिवाद बारहवें अंगकी पहली चूलिका जिसमें जलपर थलवत चलनेकी विधि है । इसके २०९८९२०० मध्यम पद हैं ।

जलगालन–पानीको गाढ़े दोहरे स्वच्छ कपड़ेसे छानकर पीना; साधारण भाव ३६ अंगुल लम्बा व २४ अंगुल चौड़ा हो उसको दोहरा करके छानना चाहिये । बर्तनके मुंहसे तीन गुणा चौड़ा जरूर हो । छनेमें रहे हुए जन्तु आदि जहांसे पानी भरा है वहीं पहुंचा देना चाहिये । अंदर बड़ी दार लोटेसे पहुंचावें या छने छने पानीसे धोकर भरनेवाले बर्तनमें जमा रक्खे । जब फिर भरे तब उसी बर्तनसे वह पहुंच जावगी । जहां कोई और लवतर न हो वहां छने पानीकी धारसे छनेको कूप बावड़ी आदिमें धो देना चाहिए । यह छना पानी ४८ मिनट चलेगा, फिर दोबारा छानना चाहिये । छानन जमा करना चाहिये । पानी छाननेसे जीवदया पलती है, अपने शरीरकी भी रक्षा होती है । (गृ. पृ. ८१)

जलधारा–नहर, जलोघ, प्रवाह (श्रा० पृ० ८५)

जलप्रभ–भवनवासीके उदधिकुमारोंके इन्द्र। (त्रि. गा. २१०) सौधर्म इन्द्रके एक लोकपाल (त्रि. गा.) ६१६)

जलमंथन–वर्तमान भरतके इस दुखमाकालके अंतमें २१ वाँ कलकी जो भले मार्गका नाशक होगा। (त्रि. गा. ८५७)

जलयात्रा विधान–कलशोंमें जलको नदी कूप बावड़ीसे भरकर लानेका विधान कि जिससे भगवानका अभिषेक किया जावे। (प्र. सा. पृ. ३४)

जवाहरलाल–पं०, सिद्ध क्षेत्र, सम्मेदशिखर, त्रैलोक्यसार, तीन चौवीसी आदिकी पूजाके रचयिता (दि. गृ. नं. ३४–४३)

जसकरण संघ–मल्लिनाथ पुराण आदिके कर्ता दि. गृ. ३९–४९)

जसोधर–देखो "यशोधर"

जगत–देखो शब्द "आगत"।

जाति नामकर्म–जिसके उदयसे एकेंद्रियादि पांच जातिमें पैदा हो (सर्वा० अ० ८–११)

जाति मंत्र–होमके समय पढ़े जानेवाले पीठिकाके मंत्रोंमेंसे गर्भाधानादि संस्कारोंमें पढ़े जाते हैं। (ग्र० अ० ४)

जाति स्मरण–पूर्व जन्मकी बातका स्मरण आ जाना। स्मृति नाम मति ज्ञानका भेद है।

जातार्य–इक्ष्वाकु, भोज आदि उत्तम लोकमान्य कुलोंमें जन्म प्राप्त आर्य (रा. अ. ३–३६)

जाननी–(बोद्धव्या) विदेहकी २८ वीं राज्यधानी। (त्रि. गा. ७८९)

जाप–जपना–१०८ दफे मंत्रको जपना। ध्यानपूर्वक एक एक दानेपर एक एक मंत्र कहना। मालामें १०८ दाने व तीन ऊपरको होते हैं १०८ दफे मंत्र जपे तीन दानोंपर कहे सम्यग्दर्शनाय नमः। सम्यग्ज्ञानाय नमः। सम्यग्चारित्राय नमः। यदि माला न हो तो हाथोंकी उंगलियोंकी निशानियोंसे १०८ दफे जपले।

जाप्य मंत्र–मुख्य सात प्रसिद्ध हैं—

३५ अक्षरी–णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं।"

१६ अक्षरी–"अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्व साधुभ्यो नमः।"

६ अक्षरी–अर्हंत सिद्ध;

५ अक्षरी–अ, सि, आ, उ, सा।

४ अक्षरी–अरहंत, २ अक्षरी-सिद्ध १ अक्षरी ॐ

जिज्ञासा–ईहा, विशेष जाननेकी इच्छा।

जितनाभि–गत चतुर्थकालमें भरतमें प्रसिद्ध नौमे रुद्र (त्रि. गा. ८३६)

जितशत्रु–गत चौथे कालमें भरतमें प्रसिद्ध दूसरे रुद्र। (त्रि. गा. ८३६)

जिन–घातिकर्माणि जयतिस्म इति जिन। जिसने ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अंतराय, मोहनीय इन चार घातीय कर्मोंको जीतलिया हो ऐसा अर्हंत परमात्मा। (गो. जी. गा. १०); जिसने अनंत संसारके कारण अनंतानुबंधी कषाय और मिथ्यात्व कर्मको जीत लिया है ऐसा सम्यग्दृष्टि चौथेसे लेकर अयोगी जिनतक "असंयत सम्यग्दृष्टिनां अयोगानां च कर्मादिजयसंभवात्। (गो. जी. सं. टीका)

जिन आज्ञा–अर्हंतके शास्त्रानुसार उपदेशकी मान्यता।

जिनकल्पी–एकाविहारी जैन साधु।

जिन चैत्यालय–वह आलय या स्थान जहां चैत्य या जिनप्रतिमा प्रतिष्ठित हो।

जिनचन्द्र–आचार्य सं० १४१ (दि.ग्र.नं.९७) अग्रवाल सं० १९०७ धर्मसंग्रह श्रावकाचार व सिद्धांतसार लघु (दि० ग्र० ९६); नाभिराज स्तोत्रके कर्ता (दि० ग्र० नं० ४८८); भद्रबाहु गणीके शिष्य शांतिआचार्य उनका शिष्य जिनचन्द्र उसने श्वेतांबर मत चलाया, विक्रम सं० १३६ वर्ष पीछे (दर्शनसार गा० ११–१२)

जिनदत्त–उज्जैनका एक सेठ जैनधर्मी। इसने सोमशर्मा ब्राह्मणको जैनी बनाया। वह स्वर्गमें गया वहांसे आकर श्रेणिकका पुत्र अभयकुमार मोक्षगामी हुआ। यह भी समाधिसे मर स्वर्गमें देव हुआ। (आ० क० नं० १०३)

जिनदास–पटनेके जिनदत्त सेठका लड़का। एक देवने बहुत भय दिखाया परन्तु इसने जैनधर्म न छोड़ा व कष्ट सहा, एक व्यंतरने रक्षा की। (आ० क० नं० १०९)

जिनदास पांडे–(सं० १६४२) जम्बू चरित्र, छंद, ज्ञानसूर्योदय नाटक छंद, सुगुरुशतक पद आदिके कर्ता। (दि. ग्रं. नं० ३६–५६)

जिनदास ब्रह्मचारी–(सं० १५१० में) हरिवंशपुराण, पद्मपुराण, जम्बूस्वामी चरित्र, धर्म पंचासिका, सार्धद्वयद्वीप पूजादिके कर्ता। (दि. ग्रं. नं० ९७)

जिनदास सूरि–उपासकाध्ययनके कर्ता। (दि. ग्रं. नं० ४०७)

जिन दीक्षा–मुनिका चारित्र धारना, परिग्रह त्यागना।

जिन देव–श्री अरहंत भगवान; आचार्यकारुण्य कालिका व मदनपराजय नाटकके कर्ता। दि. ग्रं. नं. ९९)

जिनधर्म–जिनका कहा हुआ धर्म। जो जीवोंको संसारके दुःखोंसे छुड़ाकर उत्तम आत्मीक सुखमें धारण करे सो धर्म है। वह धर्म जिसे अरहंत या जिनने बताया है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्रमई आत्माका स्वभाव या आत्मध्यान है। (रत्न. श्लो. १३)

जिनधर्म मूलसिद्धांत– (१) यह लोक सत्‌रूप अविनाशी, जीव, पुद्गल, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश व पुद्गलका समुदाय है इससे यह अविनाशी अकृत्रिम है।

(२) संसारी आत्मा अनादिसे प्रवाह रूप पुण्य पापकर्म रूप शरीर सहित है। जिसमें नए परमाणु मिलते रहते हैं पुराने झड़ते रहते हैं।

(३) यह आत्मा आप ही अपने राग द्वेष मोह भावोंसे कर्म परमाणुका संचय करता है। आप ही उनके असरसे फल भोगता है व आप ही अपने वीतरागभावोंसे उनको नाशकर परमात्मा होसक्ता है

(४) शुद्ध आत्माको परमात्मा या ईश्वर कहते हैं। वह आदर्श है, उसकी भक्ति पूजा अपने भावोंको निर्मल करनेके लिये की जाती है। वह न कुछ देता है न प्रसन्न होता है।

(५) आत्मानुभव ही मोक्षमार्ग है, इस हीका साधन त्याग पदमें पूर्ण व गृहस्थमें अपूर्ण होता है इसीसे सुख शांति मिलती है। पुराने कर्म झड़ते हैं नए बन्द होते हैं।

(६) जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष इन सात तत्वोंमें जैनसिद्धांत भरा है।

जिनधर्म गृहस्थ–अनन्तनाथपुराण कर्णाटक भाषाके कर्ता। (दि० ग्रं० नं० १००)

जिनधर्मोच्छेद काल–इस अवसर्पिणी कालमें भरतमें चौथे कालमें पुष्पदंत व शीतल तीर्थंकरके बीचमें पाव पल्य, शीतल व श्रेयांसके मध्यमें आध-पल्य, श्रेयांस व वासुपूज्यके अंतरमें पौन पल्य, वासुपूज्य व विमलके अंतरमें १ पल्य, विमल व अनंतके अंतरमें पौन पल्य, अनन्त व धर्मके अन्तरमें आध पल्य, धर्म व शांतिके अन्तरमें पाव पल्य जिनधर्मका अभाव रहा इसके सिवाय बराबर चलता रहा। (त्रि० गा० ८.४)

जिनधाम–जिन मंदिर जहां अरहंतकी मूर्ति हो।

जिनपालित–श्री पुष्पदन्त मुनिका शिष्य जिसे षट्खंडादि महान ग्रंथोंका रूप सो सूत्र रचाकर भूतबलिके पास भेजा। इसे देखकर उन्होंने ६००० श्लोकोंमें द्रव्य प्ररूपणा अधिकार, फिर महाबंध अधिकार रचा। (श्रु० ध० १९–२०)

जिनपुरन्दर व्रत–यह मात्र चार दिनका है किसी मासमें शुक्ल पड़िवासे अष्टमी तक एक प्रोष-

थोपवास १ पारणा इस तरह करे, जिन पूजामें लीन रहे। (क्रि० क्रि० पृ० ११२)

जिन प्रतिमा—श्री अरहंतकी स्थापनारूप मूर्ति जो उनके वीतराग ध्यानमई स्वरूपको दिखलानेवाली हो।

जिनवाणी—श्री अरहंत भगवानके द्वारा प्रकाशित दिव्यध्वनि उसको सुनकर गणधरोंने द्वादशांग वाणी रची (देखो "अंग प्रविष्ट श्रुतज्ञान" (प्र० जि० पृ० ११९)

जिनबिम्ब—जिन प्रतिमा, मूर्ति।

जिन भक्ति—श्री अरहंतकी पूजा, स्तुति, वंदना भावोंके निर्मल करनेके लिये करना, उनको प्रसन्न करनेके लिये नहीं क्योंकि वे वीतराग हैं।

जिनमत—श्री अरहंतका बताया हुआ धर्म।

जिनमती—लाट देशके गलगोडह नगरके सेठ जिनदत्तकी लड़की जो जिनधर्मके श्रद्धानमें अति दृढ़ थी। उसको कपटसे एक अजैन सेठपुत्र रुद्रदत्तने विवाह लिया। जिनमतीने पतिको जैनी बना लिया। (आ० क० नं० १०६)

जिन मंदिर—श्री अरहंतका मंदिर। यह समवसरणकी नकल है। मंदिर ऐसा चाहिये जहां निर्विघ्नपने पूजा, सामायिक, शास्त्रसभा, स्वाध्याय होसके, चारों तरफ बाग चाहिये जिससे निराकुलता रहे, धर्मध्यानमें विघ्न न हो। (सा० अ० २-४०)

जिन मुखावलोकन व्रत—भादों मासमें करे। सबसे पहले श्री जिनेन्द्रका दर्शन करे, औरका मुख न देखे। रोज एक प्रोषध उपवास एक पारणा एकासन करे। कांजी मात्र ले या एक भुक्त करे। वस्तु संख्या करके जीमे (कि. क्रि. पृ. ११४)

जिन मुद्रा—श्री अरहंतका साक्षात स्वरूप बतानेवाली मूर्ति।

जिन मुनि—त्रिभंगी प्राकृत नागकुमार षट् पद सं० के कर्ता। (दि० ग्रं० नं ९१)

जिन यज्ञ—जिनेन्द्रकी पूजा।

जिन यज्ञ कल्प—प्रतिष्ठापाठ। (प्र. सा. पृ. १) पं० आशाधर कृत।

जिनराज—श्री अरहंतदेव, सब सम्यग्दृष्टी भव्योंके शिरोमणि।

जिनरूपता क्रिया—गर्भान्वयकी २४ वीं क्रिया जिसमें श्रावक वस्त्रादि परिग्रहको छोड़कर मुनि दीक्षा धारण करता है। जैसा रूप नग्न श्री जिनेंद्रका तप लेते वक्त था वैसा रखता है (गृ० अ० १८)

जिन लिंग—जिनका भेष, नग्न दिगंबर रूप। जिसमें मायाचार रहित शुद्ध भावसे महाव्रतोंको पाला जाता है व ध्यानका अभ्यास किया जाता है। जिनलिंगका चिह्न एक मोरके पंखोंकी पीछी है जिससे जीवोंकी रक्षा हो व एक काष्ठका कमंडल है जिसमें शौचको जल हो। आवश्यक्तानुसार शास्त्र रखा जाता है और कोई वस्त्रादि नहीं होता है। श्रावकोंका उत्कृष्ट लिंग ऐलक एक लंगोटी धारी व क्षुल्लक एक लंगोटी व एक खंड वस्त्रधारी है। दोनों पीछी व कमण्डल सहित हैं। श्राविकाओंका उत्कृष्ट भेष आर्यिकाका है जो सफेद सारी व पीछी कमंडल रखती है। (देखो शब्द ऐलक व आर्यिका क्षुल्लक)

जिनवर—श्री जिनेन्द्रदेव, अरहंत भगवान।

जिन वाक्य—जिनवाणी, दिव्यध्वनि, जिनशास्त्र।

जिनसूत्र—जिन आगम, द्वादशांग वाणी।

जिनसेन—आचार्य (सेनसंघ) श्री वीरसेनके शिष्य। सं० ७९१ श्री आदिपुराण सं० अपूर्ण, पार्श्वाभ्युदय काव्यके कर्ता, राजा अमोघवर्ष राष्ट्रकूट वंशीके गुरु। (दि० ग्रं० १०४)

जिनसेन आचार्य—कीर्तिसेनके शिष्य। हरिवंशपुराण सं० के कर्ता शक ७०५ में रचा।

जिनसेन भट्टारक—पार्श्वाभ्युदय काव्य टीका, उपासकाध्ययन सारोद्धार संहिता, सारसंग्रह, त्रिवर्णाचार आदिके कर्ता। (दि० ग्रं० नं० १०९)

जिन स्नपन—जिनेन्द्रका अभिषेक व प्रक्षाल करना।

जिन हर्ष-पं० पाटन निवासी श्रेणिकचरित्र छंदके कर्ता (१७२४)

जिनाचार्य-चतुर्दश गुणस्थान कर्ता ।
(दि० ग्रं० नं० १०१)

जिनालय-जिन मंदिर, चैत्यालय ।

जिनेन्द्र-जिन अर्थात् सम्यग्दृष्टी भव्योंके इन्द्र या स्वामी या प्रधान अर्हत् भगवान ।

जिनेन्द्र गुणसम्पत्ति व्रत-अरहंतके गुणोंको ध्याते हुए १० जन्म १० केवलके अतिशयके कारण २० दशमीको, देवकृत १४ अतिशयके कारण १४ चौदसको, ८ प्रातिहार्यके कारण ८ आठेंको, १६ कारण भावनाके कारण १६ पडिवाको, पांच कल्याणक ५ पंचमीको, इस तरह २० दशमी+ १४ चौदस + ८ अष्टमी + १६ पडिवा + ५ पंचमी=६३ कुल त्रेसठ प्रोषधोपवास करे एक वर्षमें (कि० क्रि० पृ० ११३)

जिनेन्द्रभक्त-सेठ । गौड़देशके तामलिप्ता पुरीवासी । इनके चैत्यालयके छत्रमें एक अमूल्य रत्न था, सुसीमा चोर जैन ब्रह्मचारीका रूप धरके आया व चोरी करके भागा । सेठने उपगूहन अंग पाला । रत्न लेकर एकांतमें उसे समझाकर विदा किया । धर्मकी निंदा न कराई (आ० क० नं० १०)

जिनेन्द्रभूषण-भट्टारक सन् ७१३, जिनेन्द्र महात्म्य, सम्मेदशिखर महात्म्य व फ़तेंदु चरित्रके कर्ता पंडित। चंद्रप्रभ छंदबन्धके कर्ता। (दि० ग्रं० नं० ९८-९९)

जिनेन्द्र मतदर्पण-जैनधर्मकी प्राचीनता दर्शक पुस्तक ब्र० सीतलप्रसादजी कृत मुद्रित ।

जिनेश्वर-जिनेन्द्र, अरहंत, जिन जो सम्यग्दृष्टी भव्य जीव उनके ईश्वर ।

जिवानी-पानी छाननेके पीछे जो छलेमें जंतु आदि रह जाते हैं उनको यत्नसे वहीं पहुंचाना चाहिये जहांसे वे छने गए हों ।

जिह्वा-रसना इन्द्रिय, जबान; दूसरी पृथ्वीके नरकमें आठवां इंद्रकबिला । (त्रि० गा० १९६)

जिह्विक-दूसरी पृथ्वीके नरकमें आठवां इंद्रक-बिला । (त्रि० गा० १९६)

जिह्विका-हिमवन पर्वतके दक्षिण तरफ । वह प्रणाली जिसमें होकर गंगा नदी पर्वतके नीचे गिरती है । वह दो कोश लम्बी, दो कोश मोटी व गौके मुख आकार है । ६। योजन चौड़ी है । (त्रि० गा० ७८४)

जीव-जिसमें चेतना गुण पाया जाय, जो सदा जीता था जीवेगा व जी रहा है । निश्चय प्राण चेतना है । व्यवहारमें संसारी जीवके पांच इंद्रिय, तीन बल, आयु, श्वासोछ्वास ऐसे १० प्राण होते हैं । इन प्राणोंसे शरीरमें जीते हैं, प्राण घातसे मर जाते हैं, शरीर छोड देते हैं, चेतना प्राण कभी नहीं छूटता है । इनमेंसे प्राणोंका विभाग नीचे प्रमाण है—

एकेन्द्रिय जीवोंके प्राण-४ स्पर्शन इंद्रिय, कायबल, आयु, श्वास ।

द्वेन्द्रिय जीवोंके प्राण-६ स्पर्शन इंद्रिय, कायबल, आयु, श्वास, रसनाइन्द्रिय, वचनबल ।

तेंद्रिय जी०-७-६ में घ्राण इंद्रिय और ।

चौन्द्रिय जी०-८-७ में चक्षु ,, और ।

पंचेन्द्रिय असैनी-९-८ में कर्णइंद्रिय और ।

पंचेन्द्रिय सैनी-१०-९ में मन बल और ।

प्रत्येक शरीरमें जीवकी सत्ता भिन्न२ रहती है ।

जीव गत हिंसा-जीवके परिणामोंके आधारसे हिंसा १०८ प्रकार है । संरंभ-विचार करना, समारंभ-उसका प्रबंध करना, आरंभ-उसको करने लगना । ये तीन मन, वचन, कायसे हरएक होता है तब ९ भेद हुए, करना, कराना, अनुमोदनाके कारण २७ भेद हुए । हिंसा क्रोध, मान, माया, व लोभके वशीभूत हो की जासकी है इससे २७×४=१०८ भेद हुए । (देखो प्र० सि० पृ० १९१, १९८, १९९)

जीव गुण–जीवके आत्मस्वरूप गुण जो सदा उसमें पाए जाते हैं। वे साधारण गुण वे हैं जो और द्रव्योंमें भी पए जावें जैसे अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशत्व। विशेष गुण वे हैं जो जीव ही में पाए जावें। जैसे ज्ञान, दर्शन, जीव, वीर्य, सम्यक्त, चारित्र आदि।

जीवत्व–जीवपना। जीवपना अर्थात् चेतनपना सदा ही जीवके साथ रहता है।

जीवदया–सर्व प्राणी मात्रपर दयाका भाव रखना व यथाशक्ति रक्षा करनी व उनका उपकार करना।

जीव द्रव्य–जो सत हो उसको द्रव्य कहते हैं अर्थात् जो सदा पाया जावे। उसमें उत्पाद व्यय ध्रौव्य तीन स्वभाव होते हैं। परिणामोंकी अपेक्षा नया परिणाम होता है। पुराना उसी समय नष्ट होता है तब स्थूल द्रव्य बना रहता है। चेतना लक्षण जीव भी द्रव्य है सदा बना रहता है अवस्थाओंको बदलता है इससे उत्पाद व्यय रूप है।

जीवपद–देखो "जीव स्थान"।

जीवंधरकुमार–महाराज श्रेणिकके समयमें हेमांगद देशके राजपुरके सत्यंधर राजाका व विजया रानीका पुत्र। काष्टांगार मंत्रीके प्रबंधसे सत्यंधरका राज्य गया। जीवन्धरको गंधोत्कट सेठने पाला। इसने अंतमें युद्ध करके काष्टांगारको मारा, देशका स्वामी हुआ, बहुत दिन राज्य करके एक दिन बंदरोंको लडते हुए देखकर वैराग्य हुआ। अपने पुत्र वसुंधरकुमारको राज्य दे श्री वीर भगवानके समवसरणमें जा मुनि हुए। श्री महावीर स्वामीके साथ विहार कर अंतमें केवलज्ञानी हो विपुलाचल पर्वतसे मोक्ष पधारे। (उत्तर पु० पर्व ७५)

जीवविपाकी कर्म–वे हैं जिनका फल मुख्यतासे जीवके ऊपर पड़े। वे सब १४८मेंसे ७८ हैं। घातिया कर्मोंकी ४७, गोत्र २, वेदनीय २ और नामकी २७, (तीर्थंकर, उछ्वास, बादर, सूक्ष्म, पर्याप्ति, अपर्याप्ति, सुस्वर, दुःस्वर, आदेय, अनादेय, प्रशस्त विहायोगति, अप्रशस्त विहायोगति, सुभग, दुर्भग, ४ गति, जाति ५)=७८ (जैन सि० प्र० नं० १४२–२९२)

जीवराज–पं०, बड़नगर निवासी खण्डेलवाल, परमात्मप्रकाश वचनिकाके कर्ता (सन् ७६२) (दि० ग्र० नं० २९–४२)

जीवसुखराय–पं०। ज्ञानसूर्योदय नाटक व वैराग्यशतक छन्द (दि० ग्र० नं० ४०–४४)

जीव समास–जीवोंके रहनेके ठिकाने या जिन२ एक समान जातिमें जीवोंको एकत्र किया जावे। मुख्य ९८ हैं। तिर्यंचके ८५, मनुष्यके ९, नारकीके २, देवोंके २।

एकेन्द्रियके ४२–पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, नित्य निगोद वनस्पति, इतर निगोद वनस्पति। ये छ बादर और सूक्ष्म दो दो भेद रूप होनेसे १२+ प्रत्येक वनस्पति सप्रतिष्ठित + प्रत्येक वनस्पति अप्रतिष्ठित=१४. ये १४ पर्याप्तक, निर्वृत्यपर्याप्तक और लब्ध्यपर्याप्तक ऐसे तीन प्रकार हैं। इससे ४२ भेद हुए।

विकलत्रयके ९–द्वेन्द्रिय, तेंद्रिय, चौंद्रिय। हरएक पर्याप्तक, निर्वृत्यपर्याप्तक, लब्ध्यपर्याप्तक ऐसे ९।

सम्मूर्छन पंचेन्द्रियके १८–जलचर, थलचर, नभचर। तीनों सैनी व असैनी ऐसे छः भए। ये हरएक पर्या०, निर्वृत्य०, लब्ध्य प० ऐसे १८ भेद हुए।

गर्भज पंचेन्द्रियके १६ भेद–कर्मभूमिके जलचर, थलचर, नभचर ये तीन सैनी व असैनी ऐसे ६ भए। इनमें हरएक पर्याप्तक व निर्वृत्यपर्याप्तक ऐसे १२ भेद हुए तथा भोगभूमिके थलचर और नभचर ऐसे हरएक पर्याप्तक व निर्वृत्यपर्याप्तक ऐसे ४ भेद हुए।

मनुष्योंके ९ भेद–आर्यखंड, म्लेच्छखण्ड, भोगभूमि, कुभोगभूमि ये चार प्रकार हरएक पर्याप्तक और निर्वृत्यपर्या० ऐसे आठ गर्भजोंके हुए तथा सम्मूर्छन मनुष्य लब्ध्यपर्याप्तक सहित ९ हुए।

नारकीके दो भेद—नारकी पर्याप्तक और निर्वृत्यपर्याप्तक।

देवोंके दो भेद—पर्याप्तक और निर्वृत्यप०।

जीवस्थान या जीवपद—४२ हैं। ये नामकर्म बंध स्थानोंकी अपेक्षासे हैं वे हैं—१ नारकीपर्याप्त तथा देवपर्याप्त तथा पर्याप्त, सामान्यकेवली, तीर्थंकर केवली, समुद्घात प्राप्त केवली व समुद्घात प्राप्त तीर्थंकर व आहारक ऋद्धिधारी साधु। ये सब सात पर्याप्त हैं और पृथ्वी, अप, तेज, वायु, साधारण वनस्पति ये बादर व सूक्ष्म दो प्रकारसे दश हुए तथा प्रत्येक वनस्पति, द्वेंद्रिय, तेन्द्रिय, चौंद्रिय, असैनी पंचेन्द्रिय, सैनी पंचेन्द्रिय और मनुष्य सब १७ हुए, ये पर्याप्त या अपर्याप्त दोनों होते हैं। इस तरह ३४ ये हुए, ३४ और ७ लेकर ४१ जीव पद हुए। इन प्रकृति रूप नाम कर्मका बंध होता है जैसे नारकी पर्याप्तका ही बंध होगा। (गो० क० गा० ५१९—५२०)

जीवराशि—सर्व जीव समूह।

जीवाधिकरण आस्रव—१०८ भेद देखो जीवगत हिंसा (प्र० जि० पृ० १९३....) व (सर्वा० अ० ६—८)

जीविताशंसा—जीते रहनेकी लालसा रखना। सल्लेखना या समाधिमरणका पहला दोष है। (सर्वा. पृ० ७—७६)

जुगलकिशोर—पं० जुगलकिशोरजी मुख्तार, हाल मौजूद हैं। अच्छे लेखक, साहित्य खोजक हैं। समंतभद्राश्रमके अधिष्ठाता, अनेकांत पत्रके सम्पादक व मेरी भावना आदि पुस्तकोंके रचयिता।

जुगुप्सा—छठी नो कषाय जिसके उदयसे आपने दोष ढकने व परके दोष ग्रहणका भाव होकर ग्लानि हो। (सर्वा० अ० ८—९)

जुहारु—साधारण जैनियोंके परस्पर विनय करनेका शब्द। इसका भाव यह है "जुगादि वृषभो देवः हारकः सर्व संकटान्। रक्षकः सर्व प्राणीनां तस्मात् जुहार उच्यते॥ अर्थ—युगकी आदिमें ऋषभदेव सर्व संकटोंके हरनेवाले व सर्व प्राणियोंकी रक्षा करनेवाले। (जै. ग्रा. गु. भाग २ पृ. १९४)

जूनागढ़—राज्य काठियावाड़में। स्टेशन। यहां शहरमें जैन धर्मशाला व मंदिर है। यहांसे गिरनार तीर्थको जाते हैं। (या० द० पृ० २६९)

जैकोबी—जर्मनके विद्वान्। जैनधर्मके महत्वपर पुस्तकोंको लिखनेवाले। आपको काशी स्याद्वाद महाविद्यालयके सन् १९१३ के उत्सवमें जैनसमाजने जैन दर्शन दिवाकरका पद दिया था।

जैन जेम डिक्शनरी—इंग्रेजीमें स्व० जुगमंदरलाल कृत मुद्रित।

जैन डाईरेक्टरी—स्व० सेठ माणेकचंद पानाचंद आदि द्वारा प्रकाशित। प्रकाशक सेठ ठाकुरदास भगवानदास जौहरी—बम्बई।

जैन तीर्थयात्रा दर्पण—बम्बईके सेठ माणिकचंद पानाचंद आदि द्वारा प्रकाशित। प्रकाशक सेठ ठाकुरदास भगवानदास जौहरी।

जैन तीर्थस्थान—जहांसे तीर्थंकरादि जन्मे हों, तप किया हो व मोक्ष गए हों आदि। इसके दो भेद हैं—सिद्धक्षेत्र—जहांसे मुक्ति पाई हो। इसके सिवाय सब अतिशयक्षेत्र हैं। प्राचीन मंदिरादि सब इसीमें हैं। भारतवर्षमें प्रसिद्ध सिद्धक्षेत्र व अतिशयक्षेत्र नीचे प्रकार हैं—

बंगालबिहार उडीसामें—

(१) सम्मेदशिखर या पार्श्वनाथ हिल—यहांसे सदा २४ तीर्थंकर मोक्ष जाते हैं। इस कालमें २० गए। हजारीबाग जिला, (२) स्टेशन ईसरीसे १२ मील।

(१) मंदारगिरि—भागलपुरसे ३० मील। श्री वासुपूज्यका मोक्षस्थान।

(३) पावापुर—विहारसे ७ मील, श्री महावीर स्वामीका मोक्षस्थान।

(४) राजगृह पंच पहाड़ी—यहां जीवंधरकुमार, गौतमस्वामी आदिने मोक्ष पाई है।

(५) चम्पापुर–भागलपुरसे ४ मील, नाथनगरसे एक मील । यहां श्री वासपूज्यके जन्मादि चार कल्याणक हुए हैं ।

(६) कुण्डलपुर–पावापुरसे १० मील । यहां श्री महावीर भगवानका जन्म प्रसिद्ध है ।

(७) गुणावा–नवादा स्टेशनसे १ मील, यहां गौतमस्वामीने तपादि किया था ।

(८) खण्डगिरि उदयगिरि–उड़ीसा भुवनेश्वर स्टेशनसे ५ मील। राजा खारवेल जैन (सन् ई०से १५० वर्ष पूर्व) द्वारा हाथीगुफा लेख व गुफाएँ व प्राचीन जैन मंदिर व मूर्तियां हैं ।

युक्तप्रांत—

(१) बनारस–श्री पार्श्व व सुपार्श्वका जन्मस्थान क्रमसे भेलपुरा व भदैनी घाटपर ।

(२) चन्द्रपुरी–चंद्रप्रभुका जन्मस्थान बनारससे १० मील ।

(३) सिंहपुरी–श्रेयांसप्रभुका जन्मस्थान, बनारससे ६ मील ।

(४) खाखुंदी या किष्किंधापुर–नुनखार स्टेशनसे २ व गोरखपुरसे ३ मील, पुष्पदंतभगवानका जन्म ।

(५) कुहाऊ–स्टे० सलेमपुरसे ५ व गोरखपुरसे ४६ मील । जैन स्तंभ २४॥ फुट । पार्श्वनाथ मूर्ति लेख सन् ४६० ।

(६) कोसाम या कौसाम्बी–प्रयाग मझनपुरसे १८ मील पद्मप्रभुका जन्म । प्राचीन लेख । दो शताब्दी पूर्वके ।

(७) अयोध्या–ऋषभ, अजित, अभिनंदन, सुमति व अनंतनाथ जन्म तथा यहां सदा ही चौवीस तीर्थंकर जन्मा करते हैं ।

(८) श्रावस्ती सहेठ महेठ–बलरामपुरसे १२ मील, श्री संभवनाथ जन्म ।

(९) रत्नपुर–फैजाबादसे सुहावल स्टेशनसे १ मील धर्मनाथका जन्म ।

(१०) कम्पिला–जि० फरुखाबाद, कायमगज स्टेशनसे ६ मील श्री विमलनाथका जन्म ।

(११) अहिछत्र–बरेली जिला आवला स्टेशनसे ६ मील । श्री पार्श्वनाथको उपसर्ग व केवलज्ञान ।

(१२) मथुरा–चौरासी । जम्बूस्वामी अंतिम केवली मोक्ष ।

(१३) हस्तिनापुर–मेरठसे २४ मील । शांति, कुन्थु, अरह तीन तीर्थंकरोंका जन्म ।

(१४) देवगढ़–जि० झांसी । जाखलौन स्टेशनसे ८ मील । पर्वतपर प्राचीन दर्शनीय मंदिर व लेख।

राजपूताना मालवा मध्यभारत—

(१) श्रमणगिरि–सोनागिरि, दतिया स्टेट । यहां नंग अनंगकुमार व ५ करोड मुनि मोक्ष गए।

(२) सिद्धवरकूट–इन्दौर स्टेट । मोरटका स्टे० से ७ मील । दो चक्री, १० कामदेव व ३॥ करोड मुनिने मुक्ति पाई ।

(३) बड़वानी–मऊ छा०से ८० मील । यहां श्री कुम्भकरण व इन्द्रजीतने मुक्ति पाई । पहाड़पर ८४ फुट ऊँची श्री ऋषभदेवकी मूर्ति है ।

(४) महावीरजी–जयपुर स्टेट, महावीर रोड स्टेशनसे ३ मील । महावीरजीकी मूर्ति अतिशय रूप है ।

(५) आबूजी–आबूरोडसे १८ मील । दर्शनीय जैन मंदिर ।

(६) केशरियाजी–उदयपुरसे ४०मील । ऋषभदेवकी मूर्ति दर्शनीय ।

मध्यप्रांत व बरार—

(१) कुण्डलपुर–दमोहसे १९ मील, पर्वतपर महावीरस्वामीकी भव्य मूर्ति है ।

(२) रेसंदीगिरि या नैनागिर–सागरसे ३० मील, दलपतपुरसे ८ मील । वरदत्तादि मुनि मोक्ष गए हैं ।

(३) द्रोणगिरि–सागरसे ६६ मील । यहांसे गुरुदत्तादि मुनि मोक्ष हुए ।

(४) मुक्तागिरि–एलिचपुर स्टेशनसे १२मील। यहां ३॥ करोड़ मुनि मुक्त हुए। पर्वत दर्शनीय।

(५) रामटेक–स्टेशनसे ३ मील, शांतिनाथकी कायोत्सर्ग भव्य मूर्ति।

(६) भातकुली–अमरावतीसे १० मील। ऋषभदेवकी भव्य मूर्ति।

(७) अन्तरीक्ष पार्श्वनाथ–अकोलासे १९ मील। भव्य मूर्ति।

बम्बई प्रांत—

(१) तारंगा–तारंगाहिल स्टे०से ३ मील, वरदत्तसागर आदि ३॥ करोड मुनि मोक्ष हुए।

(२) सेत्रुञ्जय–पालीताना स्टेशनसे १ मील। श्री युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन व ८ करोड मुनिने मुक्ति पाई।

(३) गिरनार–जूनागढसे ४ मील। नेमिनाथ भगवान, प्रद्युम्न आदि ७२ करोड मुनि मुक्त हुए।

(४) पावागढ़–स्टेशनसे २ मील। रामचंद्र पुत्र लव कुश व ५ करोड मुनिने मोक्ष पाई।

(५) गजपंथा–नासिकसे ४ मील। बलभद्रादि ८ करोड मुनि मोक्ष हुए।

(६) मांगीतुंगी–मनमाड़ स्टेशनसे ४० मील। यहां रामचंद्र, हनूमान सुग्रीवादि ९९ करोड मुनि मोक्ष हुए।

(७) कुंथलगिरि–बारसी टाऊन स्टे० से २२ मील। यहां देशभूषण कुलभूषण मोक्ष पधारे।

(८) सजोत–अंकलेश्वर स्टेशनसे ६ मील। श्री शीतलनाथकी भव्य मूर्ति।

दक्षिण मदरास आदि—

(१) श्रवणबेलगोला–मैसूर, जैनबद्री। मंदगिरि स्टेशनसे १२ मील। यहां श्री बाहुबलि व गोमट्टस्वामीकी ५७ फूट ऊँची मूर्ति दर्शनीय है।

(२) मूलबद्री–मेंगलोर स्टेशनसे २२ मील। यहां प्राचीन रत्नबिंब हैं।

(३) कारकल–मूलबद्रीसे १२ मील। यहां श्री बाहुबलिकी ४१ फुट ऊँची मूर्ति है।

(४) एनूर–मूलबद्रीके निकट। यहां भी बाहुबलिजीकी ३८ फुट ऊँची मूर्ति है।

पोन्नूर हिल–कांची देश। स्टेशन तिंडीवनमसे २४ मील। श्री कुन्दकुन्दाचार्यकी तपोभूमि व स्वर्गगमन स्थान। (जैन धर्म प्रकाश नं० ८१)

जैनधर्म–वह धर्म जिसको जिन या सर्वज्ञ वीतराग अर्हंत परमात्माओंने स्वयं पाला व उसका उपदेश किया। देखो "जिनधर्म"

जैनबद्री–देखो "जैन तीर्थ" यहां श्री बाहुबलिकी ५७ फुट ऊँची मूर्ति है।

जैन ला–जज जुगमंदरलाल तथा बारिष्टर चम्पतराय कृत मुद्रित।

जैन शासन–जैनधर्मकी शिक्षा।

जैन समाचार पत्र–साप्ताहिक–जैनमित्र सूरत, जैनगजट सोलापुर, जैन संसार उर्दू दिहली, पाक्षिक–जैन जगत अजमेर, खण्डेलवाल जैन हितेच्छु–कलकत्ता, जैनबोधक–सोलापुर, सनातन जैन मल्हीपुर, जैन प्रचारक मेरठ उर्दू, प्रगति जिनविजय सांगली, वीर मल्हीपुर, मासिक–दिगम्बर जैन सूरत, जैन महिलादर्श सूरत, इं० जैन गजट मदरास आदि।

जैन सिद्धांत दर्पण–पं० गोपालदास बरैया कृत, मुद्रित।

जैनी–जैनधर्मको माननेवाले। वर्तमानमें भारतमें ११॥ लाख हैं। किसी समय करोडोंकी संख्या थी। मुख्य भेद दो हैं–१ दिगम्बर–जो वस्त्र अलंकार रहित मूर्ति पूजते हैं व जिसके साधु नग्न रहते हैं, २–श्वेतांबर जो अलंकृत मूर्ति पूजते हैं व वस्त्र सहित साधु मानते हैं। इनहीमें स्थानकवासी हैं जो मूर्ति नहीं पूजते व जिनके साधु मुखपर कपड़ा बांधते हैं। सारे भारतमें फैले हैं। व्यापार इनके हाथमें बहुत है।

जैन सिद्धांत भास्कर–मासिक पत्र सेठ पद्मराज जैन रानीवाले कलकत्ता द्वारा सम्पादित।

जैन सिद्धांत प्रवेशिका–पं० गोपालदास कृत, मुद्रित।

जैनिज़्म–इंग्रेज़ीमें हर्बर्ट वारन जैन लंडन लिखित मुद्रित।

जैनेन्द्रकिशोर–(सन् १९१०) स्वर्ग० आरा निवासी अग्रवाल। कई जैन हिन्दी पुस्तकोंके सम्पादक, नागरी प्रचारिणी सभा आराके संस्थापक व स्याद्वाद महाविद्यालय काशीके मंत्री।

जैनेन्द्र व्याकरण } पूज्यपादस्वामी कृत
" " प्रक्रिया } मुद्रित।

जैनेन्द्र स्वामी–(पूज्यपाद) पाणिनीय व्याकरण पर सूत्रवृत्तिकाशिका (३००००) बंगाल वीरेन्द्र रिसर्च सोसायटी राजशाहीने मुद्रित कराई है।

जोधराज गोदिका–पं०, सांगानेरवासी। भाव दीपिका वचनिका, प्रवचनसार छन्द, धर्म सरोवर छंद, ज्ञान समुद्र, कथाकोषादिके कर्ता। (संवत १७२६)। (दि० ग्र० नं० ४१–४४)

जौहरीलाल शाह–पद्मनंदि पंचविंशतिकी वचनिका व सम्मेदशिखर पूजाके कर्ता।
(दि० ग्र० नं० ४२–४४)

ज्येष्ठ–किन्नर व्यंतरोंका दसवां भेद।
(त्रि० गा० २५८)

ज्येष्ठ जिनवर व्रत–जेठ मासमें पडिवा कृष्णको उपवास करे फिर १४ दिन एकासन करे। फिर शुक्ल प्रतिपदाको उपवास करे। १४ दिन एकासन करे, नित्य वृषभदेवकी पूजा करे, धर्मध्यान सेवे।
(कि० क्रि० पृ० ११०)

ज्येष्ठा–राजा चेटककी पुत्री। अर्यिका हुई। राजा श्रेणिकके समय सत्यकि मुनिसे भ्रष्ट हो ११ वें रुद्र सत्यकि तनयको जन्म दिया फिर प्रायश्चित्त ले आर्यिकाके व्रत पाले।

जोषिता–सेवनेवाला।

ज्योतिषचक्र मंडल–मध्यलोककी चित्रा पृथ्वीसे ७९० योजन पर तारे हैं। इनके ऊपर १० योजन सूर्य है। फिर ८० योजन ऊपर चन्द्रमा है। फिर ४ योजन ऊपर नक्षत्र हैं। फिर ४ योजन ऊपर बुध ग्रह है। फिर ३ योजन ऊपर शुक्र ग्रह है। फिर ३ योजन ऊपर गुरु या बृहस्पति है। फिर ३ योजन ऊपर मंगल है। फिर ३ योजन ऊपर शनि है। इस तरह ७९० से ९०० योजन तक ११० योजनमें ज्योतिष मण्डल हैं। ढाईद्वीपमें मेरुकी प्रदक्षिणा देते हैं उसके बाहर स्थिर हैं। (त्रि. गा. ३३२....) ये दिखनेवाले विमान हैं। बड़ी२ पृथ्वी हैं। उनके भीतर ज्योतिषी देव रहते हैं। विमानोंकी माप इस तरह पर है–

५६/६१ बड़े योजन (२०००कोष)व्यास प्रमाण चंद्रविमान
४८/६१ " " " " सूर्य "

तारोंके विमान जघन्य बड़े एक कोसका चौथा भाग उत्कृष्ट एक कोश प्रमाण है। बाकी नक्षत्रोंके विमान १ कोश व्यासवाले हैं। राहु और केतुके विमान कुछ कम १ योजन हैं, सो चन्द्रमा और सूर्यके नीचे क्रमसे गमन करते हैं। छः मास पीछे राहु चंद्रमाको व केतु सूर्यको कुछ देर आड़ कर देता है तब ही तक ग्रहण होता है। चन्द्रमा और सूर्यकी प्रत्येककी १२००० किरण हैं।

ज्योतिष्कदेव–(ज्योतिषीदेव) देवोंके चार समूहमें चन्द्रमा, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र, तारे ये पांच भेद रूप देव ज्योतिषी विमानोंमें रहते हैं।

ज्योतिष्मान–ज्योतिषके ८८ ग्रहोंमें ९६ वां ग्रह। (त्रि० ३६८)

ज्योती रसा–रत्नप्रभा पृथ्वीके खर भागमें आठवीं पृथ्वी जहां भवनवासी व्यन्तर रहते हैं। (त्रि० गा० १४७)

झ

झपका–पांचवे नरककी पृथ्वीमें तीसरा इन्द्रक बिला। (त्रि० गा० १९८)

झाणझण पंडित–नेमिनाथ काव्यके कर्ता। (दि० ग्र० नं० १००)

झुनकलाल–पं०, चौबीसी पूजा व पंचकल्याणक पूजा व पंचपरमेष्टी पूजाके कर्ता। (दि० ग्र० नं० ४३–४४)

ज्ञा

ज्ञातभाव—जानकर जो काम किया गया हो ।

ज्ञातृधर्म कथाङ्ग—(नाथधर्म कथाङ्ग) द्वादशांगमें छठा अंग । ज्ञाता नाम गणधरदेव जिनको जाननेकी इच्छा है उनके प्रश्नोंके अनुसार जो उत्तररूप धर्मकथा अथवा ज्ञाता जो तीर्थंकरादि उनके धर्म सम्बन्धी कथा । इसमें ५ लाख ५६ हजार मध्यम पद हैं । (गो॰ जी॰ गा॰ ३५६—३५७)

ज्ञातृपुत्र—देखो "नातपुत्त" श्री महावीर भगवान जिनका जन्म नाथवंशमें हुआ था ।

ज्ञान—" ज्ञायते अनेन " जिससे जाना जावे । आत्माका मुख्य गुण जिसके द्वारा भूत, भावी, वर्तमानके सर्व द्रव्योंके सर्व गुण व अनेक भेद रूप सर्व पदार्थोंका जानपना प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूपसे हो । निश्चयसे ज्ञान गुण एक है, शुद्ध है, प्रत्यक्ष है । सर्व जाननेयोग्यको एक ही काल जानता है । ज्ञानावरण कर्मका आवरण ज्ञानपर अनादिकालसे प्रवाहरूप चला आरहा है इसलिये , कमती बढती ज्ञानके प्रकाशकी अपेक्षा ज्ञानके आठ भेद हैं ।

(१) मतिज्ञान—जो इंद्रिय व मन द्वारा सीधा किसी पदार्थको जाने, जैसे आंखसे देखा, यह गुलाबका वृक्ष है ।

(२) श्रुतज्ञान—मतिज्ञानसे जाने हुए पदार्थके द्वारा अन्य पदार्थको जानना जैसे यह गुलाबका वृक्ष अमुक ऋतुमें फलता है व इसका तेल बड़ा सुगंधित होता है । मुख्यतासे मनवालोंके यह ज्ञान मनसे होता है ।

(३) अवधिज्ञान—द्रव्य क्षेत्रादि मर्यादारूप रूपी पदार्थोंको जो इंद्रिय मनकी सहायता विना जाने

(४) मनःपर्यय ज्ञान—जो दूसरेके मनमें रूपी पदार्थ सम्बन्धी सूक्ष्म विचारोंको प्रत्यक्ष जान सके ।

(५) केवलज्ञान—जो सब जाने । यही स्वाभाविक ज्ञान है । इनमें दो अन्तके तो मुनियोंको ही होते हैं । पहले तीन [illegible] कुज्ञान हैं, मिथ्यादृष्टीके कुज्ञान हैं । इसलिये ज्ञानके ८ भेद हुए । इनमें अवधि आदि तीन प्रत्यक्ष हैं, पहले दो परोक्ष हैं । (गो. जी. गा. २९९)

ज्ञानप्रचार—शास्त्र ज्ञानका अभ्यास आठ अंग सहित करना, १—काल ठीक समय पढना, २ विनय—आदरसे पढना, ३ उपधान—स्मरण सहित पढना, ४ बहुमान—ग्रन्थको आदरसे रखकर व गुरुकी विनय करके पढना, ५ अनिह्नव—जिससे ज्ञान हो उस गुरुका व शास्त्रका नाम न छिपाना, ६ अर्थ शुद्ध करना, ७ व्यंजन—शब्द शुद्ध पढना, ८ तदुभय—शब्द व अर्थ दोनों शुद्ध पढना । (श्रा॰ पृ॰ ९)

ज्ञान आराधना—सच्चे ज्ञानका मनन करना ।

ज्ञानकीर्ति—वादिभूषणके शिष्य (सं॰ १६५९) यशोधर चारित्रके कर्ता । (दि॰ ग्रं॰ नं॰ ४०८)

ज्ञान चेतना—जिसके द्वारा शुद्ध आत्माका अनुभव किया जावे । यह पूर्ण अरहंत सिद्ध परमात्माके होती है । अपूर्ण रूपसे सम्यग्दृष्टी चौथे गुणस्थानसे प्रारम्भ होजाती है । (पंचा॰ उत्तर॰ श्लो॰ १९६....)

ज्ञानदान—शास्त्र देना व पढाना, सच्चा उपदेश देना, धर्मात्माओंको भक्ति पूर्वक देना । अज्ञानी जीवोंपर दया करके ज्ञान देना, पुस्तक बांटना, विद्या पढाना; तन मन, धन, ज्ञान प्रचारमें विना इच्छाके लगाना ।

ज्ञान पचीसी व्रत—चौदह चौदसोंमें प्रोषधोपवास व ग्यारह ग्यारसोंमें प्रोषधोपवास करे । २५ दिनका व्रत है । (क्रि॰ क्रि॰ पृ॰ ११२)

ज्ञान प्रवाद पूर्व—द्वादशांगके दृष्टिवाद अंगके १४ पूर्वोंमें पांचवा पूर्व, जिसमें मति आदि आठ ज्ञानका विशेष कथन है । इसके एक कम एक करोड़ पद हैं । (जी॰ गा॰ ३६५—६)

ज्ञानभूषण—भट्टारक (सं॰ १५६१) तत्त्वज्ञान तरंगिणी, पंचास्तिकाय टीका, [illegible], नेमिनिर्वाण काव्य टीका आदिके कर्ता । (दि॰ ग्रं॰ नं॰ १०९)

ज्ञान मार्गणा—ज्ञानके भीतर देखा जाय तो सर्व जीव मिलेंगे । देखो "ज्ञान"

ज्ञान मुद्रा—पद्मासन अथवा सुखासन बैठकर बाएँ हाथको बाएँ घुटनेपर इस प्रकार रक्खे जिसमें हथेली आकाशकी ओर रहे, तर्जिनी अंगुलीको नमा कर अंगूठेकी जड़से लगालेवें शेष तीनों अंगुलियोंको लम्बी खुली रक्खे, इसे ज्ञानमुद्रा कहते हैं । जप करते समय बाएं हाथसे ज्ञानमुद्रा धारण कर दाएं हाथसे स्फटिक अथवा सूतकी माला लेकर तर्जिनी और अंगूठेसे एक एक मणिको हटाते हुए शुद्ध मनसे जप करें । (क्रिया मंज० पृ० २०)

ज्ञान विनय—विनय नामा तपका दूसरा भेद—मोक्षके प्रयोजनसे ज्ञानके ग्रहण करने, अभ्यास करने व स्मरण करने आदिमें बड़ी भक्तिसे लगे रहना । (सर्वा० अ० ९–२३)

ज्ञानसागर ब्रह्मचारी—त्रैलोक्यसार पूजा व १६ कारण व उद्यापन नेमिनाथ काव्यके कर्ता । (दि० ग्र० नं० १०७)

ज्ञानानन्द ब्रह्मचारी—पं० उमरावसिंह, स्याद्वाद महाविद्यालय काशीके सेवक, शांतिसोपान भजनादिके कर्ता । (सन् १९१८)

ज्ञानानन्द श्रावकाचार—मुद्रित हिंदीमें अच्छा उपदेश है ।

ज्ञानावरण कर्म—जो कर्म ज्ञानको रोके व जिससे ज्ञान रुके । इसके पांच भेद हैं -मति ज्ञानावरण, श्रुत ज्ञा०, अवधि ज्ञा०, मनः पर्यय ज्ञा०, केवल ज्ञानावरण ।

ज्ञानावरण कर्मास्रव—ज्ञानावरण कर्मके लानेके व बंधके विशेष भाव हैं । १ प्रदोष—तत्वज्ञानकी सच्ची कथनी सुनकर भी अंतरंगमें अच्छा न मानना व हर्ष न करना । २ निह्नव-जानने हुए भी छिपाना । ३ मात्सर्य-ईर्षासे न बताना । ४ अन्तराय-ज्ञानके कारणोंमें विघ्न करना । ५ आसादना—परसे प्रकाशने योग्य ज्ञानको काय व कायसे मना करना, कहनेवालेको रोक देना । ६ उपघात-सच्चे ज्ञानको असत्य दोष लगाना व खण्डन करना । (सर्वा० ६–१०)

ज्ञानाभ्यास—शास्त्रोंका नित्य मनन करना ।

ज्ञानार्णव—ध्यानका सं० व हिंदी सहित ग्रंथ आचार्य शुभचन्द्र कृत ।

ज्ञानोपयोग—ज्ञानके द्वारा जानना सो आठ ज्ञानके भेदसे आठ प्रकार है ।

ज्ञायक शरीर नोआगम द्रव्य निक्षेप-किसी शास्त्रके जाननेवालेका शरीर जो उस समय उस शास्त्रके विचारमें उपयोगवान न हो । (सि० द० पृ० १३)

ज्ञायक भूत शरीर नोआगम द्रव्य निक्षेप—वर्तमानमें किसी शास्त्रका ज्ञाता जो उपयोगवान न हो उसका पूर्वजन्मका छोड़ा शरीर सो तीन प्रकार है । च्युत—अपनी आयु कर्मकी समयपर पूर्णतासे सामान्य रूपसे छूटा है, च्यावित—विष भक्षणादि निमित्तवश अकालमें छूटा हो, त्यक्त—समाधिमरणसे त्यागा हो । (सि० द० पृ० १३–१४)

ज्ञायक भविष्य शरीर नोआगम द्रव्य निक्षेप—वर्तमानमें किसी शास्त्रका ज्ञाता भविष्यमें जिस शरीरको धारण करेगा । (सि. द. पृ. १३)

ज्ञायक वर्तमान शरीर नोआगम द्रव्य निक्षेप—अनुपयुक्त ज्ञाताका वर्तमान शरीर (सि.द.पृ.१९);

ज्ञेय-जानने योग्य सर्व ही द्रव्य गुण पर्याय जिनको ज्ञान जान लेता है ।

ट

टेकचन्द-पं०, अध्यात्म बारहखडीके कर्ता ।

टेकचन्द-पं०, भद्रपुर निवासी । तत्वार्थसूत्रकी श्रुतसागरी टीका वचनिका (१८३७ में), सुदृष्टितरंगिणी (१८३८में), कथाकोश छन्द, षट्पाहुड वचनिका, मंदिरजन पूजादिके कर्ता ।
(दि० ग्र० नं० ४४–४९–४४)

टोडरमल प्रसिद्ध जैन विद्वान । गोमटसार व क्षपणासार वचनिका (सं० १८१८ में), त्रिलोक-

सार टीका, आत्मानुशासन टीका, पुरुषार्थसिद्ध्युपाय अधूरी, मोक्षमार्ग प्रकाश अधूरा आदिके कर्ता।

(दि० ग्र० नं० ४६–४७)

ठ

ठकुरसी–कृपणचरित्र पुरानी हिंदीके कर्ता।

(दि० ग्र० नं० ४७)

ड

डालूराम पं०–अग्रवाल, माधव राजपुरवासी। गुरूपदेश श्रावकाचार (सं० १८६७में), सम्यक्त प्रकाश छन्द (१८७१में), पंचपरमेष्ठी आदि पूजाके कर्ता। (दि० ग्र० नं० ४८–४९)

डूंगरमल–पीपकरासाके कर्ता।

(दि. ग्र. नं. ४९- ४९)

ण

णमोकार मंत्र–जैनियोंका प्रसिद्ध णमोकार मंत्र ३९ अक्षरका है—

णमो अरहंताणं=	७	अक्षर
णमो सिद्धाणं=	५	"
णमो आइरियाणं=	७	"
णमो उवज्झायाणं=	७	"
णमो लोए सव्व साहूणं=	९	"
	३५	

अर्थ है–इस लोकमें सर्व तीन कालवर्ती अरहंतोंको, सिद्धोंको आचार्योंको, उपाध्यायोंको तथा साधुओंको वारम्वार नमस्कार करता हूं। इस लोकमें पांच ही पद सबसे श्रेष्ठ हैं जिनको इन्द्र धरणेन्द्र चक्रवर्ती आदि [illegible] ही नमन करते हैं। वे हैं, अरहन्त–जिन्होंने अनन्तज्ञान, अनंतदर्शन अनंत सुख, अनंतवीर्य व क्षायिक सम्यक्त व पूर्ण वीतरागता प्राप्त करली है जो शुभ परम औदारिक निर्मल शरीरमें विराजमान हैं [illegible] धर्मोपदेश होता है जिससे लाखों [illegible] हैं। सिद्ध–वे हैं जो आठों कर्मोंसे रहित हो शुद्ध परमात्मा होजाते हैं व पुरुषाकारमें लोक शिखरपर विराजमान रहते हैं। जो पांच महाव्रत पांच समिति तीन गुप्तिके पालक निर्ग्रंथ दिगम्बर साधु हैं वे तो साधनेवाले साधु हैं। इनहीमें जो अनुभवी हो व दूसरोंको दीक्षा शिक्षा देसक्ते हैं वे आचार्य कहलाते हैं। जो इनमें मात्र शास्त्र पढाते हैं वे उपाध्याय हैं। इन तीनों साधुओंका बाहरी भेष मोरपिच्छका व काष्ठ कमण्डल है, मात्र नग्न रहना है। इस मंत्रको १०८ दफे जपना चाहिये। यह मंगलमय है, पापोंको क्षय करनेवाला व पुण्यका बंध करनेवाला है।

णिसहि–मंदिरमें घुसते ही जो शब्द पढा जावे।

णिसीही मंत्र–प्रतिष्ठाके समय इन्द्र यागमण्डलमें पूजार्थ स्नानादि करके इस मंत्रको तीनवार बोलकर आवें—

" ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अर्हं णमो अरहंताणं णिसि हिए स्वाहा।" (प्र० सा० ए० १९)

त

ततक–दूसरे नर्ककी पृथ्वीमें पहला इन्द्रक। (त्रि० गा० १९५)

तत्प्रतिमान–घोड़ेका मोल आदि करना। (त्रि. गा. पृ० ९)

तत्त्व–" तस्य भवनं तत्वम् " जो पदार्थ जैसा है उसका वैसा होना। उसका वैसा ही स्वरूप। मोक्षमार्गमें आत्माको हितकारी सात तत्व हैं जो प्रयोजनभूत हैं। उनके विना जाने आत्मा अशुद्ध कैसे होता है व शुद्ध कैसे होसक्ता है यह ज्ञान नहीं होता।

(१ जीव तत्त्व–चेतना लक्षण धारी–यह कर्म बन्ध सहित अशुद्ध है। कर्म बंध रहित शुद्ध है। हरएक जीवकी सत्ता (मौजूदगी) [illegible] शरीर [illegible] है। ये जीव अनंतानंत [illegible] भिन्न [illegible] मुक्त [illegible] भी जीव [illegible] सिद्ध होसक्ता है।

(२) अजीव तत्त्व–चेतना लक्षण रहित पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल ये पांच अजीव हैं।

(३) आस्रव–शुभ या अशुभ कर्मोंके आनेके कारण भाव–मिथ्यात्व, अविरत, कषाय, योग।

(४) बंध–आत्मा और कर्मोंका एक दूसरेके प्रदेशोंमें प्रवेश होजाना। योगोंसे प्रकृति व प्रदेश बंध व कषायोंसे स्थिति अनुभाग बन्ध पडता है।

(५) आस्रव–भावोंको रोकनेवाले भाव प्राप्त करना जिससे नवीन कर्म न बंधे।

(६) निर्जरा–एक देश थोड़ा २ सम्यक्त व तप व चारित्र व ध्यानके द्वारा व कर्मोंका आत्माके प्रदेशोंसे अपना फल देकर छूट जाना।

(७) मोक्ष–सर्व कर्मोंसे छूट जाना। (सर्वा० अ० १–४)

तत्त्वक्रिया–(मौनाध्ययन संस्कार) गर्भान्वयकी ५३ क्रियाओंमें २५ वां संस्कार। जब कोई श्रावक मुनि दीक्षा लेले तब उपवास करके मुनिके समान पारणा करे फिर मौन सहित विनयरूप रहकर निर्मल मन, वचन, कायसे गुरूकेसमीप सर्व शास्त्र पढ़े, शास्त्रकी समाप्ति तक मौन रहे। परोपदेश न करें। (गृ० अ० १८)

तत्त्वमाला–सात तत्वोंको बतानेवाली हिन्दी पुस्तक–ब्र० सीतलप्रसाद कृत मुद्रित।

तत्वज्ञ–जैन तत्वोंका यथार्थ ज्ञाता।

तत्त्वज्ञान–तत्त्वोंको जानकर आत्माका विशेष बोध या मनन करना।

तत्त्वज्ञान तरंगिणी–अध्यात्मका सं० ग्रन्थ ज्ञान भूषण भट्टारक कृत।

तत्वानुशासन–नागसेन मुनिकृत मुद्रित।

तत्त्वार्थ श्रद्धान–तत्त्व=वस्तुका यथार्थ स्वभाव अर्थ=अर्यते इति अर्थः निश्चीयते इति अर्थः। जो तत्त्वके द्वारा निश्चय किया जाय सो तत्वार्थ अथवा तत्त्वरूप ही पदार्थ सो तत्वार्थ=तत्वार्थकी प्रतीति करना। तत्वार्थ-आत्माका यथार्थ श्रद्धान यही मोक्षका साधन है। (सर्वा० अ० ८–२)

तत्वार्थसार–अमृतचंद आचार्य कृत सं० व भाषा पं० वंशीधर कृत मुद्रित।

तत्त्वार्थसूत्र–सात तत्वोंको समझानेवाला मोक्ष शास्त्र–श्री उमास्वामी आचार्यकृत (वि. सं. ८१) मुद्रित। वृत्तियें सर्वार्थसिद्धि राजवार्तिक श्लोकवार्तिक।

तदाकार स्थापना निक्षेप–पाषाण आदिमें जिसकी स्थापना करनी हो उसकी वैसी ही मूर्ति बनाना जिससे उसका सर्व अंगका भाव झलके जैसे पार्श्वनाथ भगवानकी स्थापना पाषाणकी मूर्तिमें ध्यानाकार बनाना। (सर्वा० अ० १–५)

तदाहृतादान–चोरीका लाया माल लेना, अचौर्य अणुव्रतका दूसरा अतीचार। (सर्वा० अ० ७–२७)

तद्भव मरण–वर्तमान शरीरका छूट जाना।

तदअतिरिक्त नोआगम द्रव्य निक्षेप–इसके दो भेद हैं–१ कर्म, २ नो कर्म। जिस कर्मकी जो अवस्था निक्षेप्य पदार्थकी उत्पत्तिको निमित्तभूत है उस ही अवस्थाको प्राप्त वह कर्म निक्षेप्य पदार्थका कर्म, तद्०, व्यति० है। उस कर्मकी अवस्थाको बाहरी कारण निक्षेप्यपदार्थका नो कर्म तद्० है जैसे क्षयोपशम अवस्थाको प्राप्त मति ज्ञानावरण कर्म मतिज्ञानका कर्म तद० है और पुस्तकाभ्यास, दूध, बादाम आदि मतिज्ञानका नोकर्म तद० है। (सि० द० पृ० १४)

तनसुखदास–ब्र०, चंद्रप्रभ काव्य वीरनंदिकी भाषा कर्ता। (दि० ग्र० नं० ९०–४५)

तनु वातवलय–लोकके चारों ओर व रत्नप्रभादि पृथ्वीके नीचे व बगलमें आकाशकी निकटवर्ती पतली पवनका पेढा या वेठन। यह नाना रंगका होता है। जैसे वृक्षके ऊपर पतली छाल है। यह लोकके नीचे २० हजार योजन मोटी है। देखो शब्द "घन वातवलय"

तनुरक्षक देव–अंगरक्षक आदिके देव, इंद्रकी सेवामें रहनेवाले। (त्रि० गा० २७९)

तन्मनोहरांगनिरीक्षण त्याग–ब्रह्मचर्य व्रतकी

दूसरी भावना–स्त्रियोंके मनोहर अंगोंको देखनेका त्याग। (सर्वा० अ० ७–७)

तप–कर्मोंको नाशके लिये जो तपा जाय अर्थात् आत्मध्यान किया जावे। जैसे अग्निके भीतर तप नेसे सोना शुद्ध होता है वैसे आत्मध्यानकी अग्निसे आत्मा शुद्ध होता है। मुख्य तप ध्यान है उसकी सिद्धिके लिये अन्य तपके भेद हैं।

तपके मूल भेद दो हैं–१ बाह्य–जो बाहरी द्रव्यकी अपेक्षा रक्खे व दूसरोंको प्रगट हो। २–अन्तरंग–जो मनकी ही अपेक्षा रक्खें।

बाह्य तपके छः भेद हैं–(१) अनशन–रागके नाश व ध्यान सिद्धिके लिये खाद्य, स्वाद्य, लेह्य, पेय चार प्रकार आहार त्यागकर उपवास करना, (२) अवमोदर्य–निद्रा प्रमाद जीतनेको भूखसे कम खाना, (३) वृत्ति परिसंख्यान–आशाको जीतनेके लिये एक दो घर व मुहल्ला आदि व अन्य कोई नियम लेकर भिक्षाको जाना व कहना नहीं, प्रतिज्ञा पूरी हो तो भिक्षा लेना नहीं तो संतोष रखकर लौट आना।

(४) रस परित्याग–इंद्रिय विजयके लिये घृत, दूध, दधि, मीठा, तेल, नमक इनमेंसे सब व कुछ रस त्याग देना।

(५) विविक्त शय्यासन–ब्रह्मचर्य, स्वाध्याय व ध्यानके लिये एकांतमें शयन आसन करना।

(६) कायक्लेश–शरीरके सुखियापन मिटानेको व कष्ट सहनेका अभ्यास करनेको स्वयं धूपमें, वृक्ष मूलमें, नदी तटपर नानाप्रकार आसनोंसे ध्यान करना।

छः अन्तरंग तप–१–प्रायश्चित्त–प्रमादसे लगे दोषोंका दण्ड लेकर शोधना, २ विनय–पूज्योंमें आदर रखना, ३ वैय्यावृत्य–अपने शरीरादिसे दूसरोंकी सेवा करना, ४ स्वाध्याय–ज्ञान भावना रखनी, आलस्य त्यागकर शास्त्र पढ़ना व विचारना। ५ व्युत्सर्ग–परपदार्थमें आत्मापनेका त्याग करना। ६ ध्यान–चित्तको रोककर धर्ममें या आत्माके स्वरूपमें जोड़ना। (सर्वा० अ० ९–१९–२०)

तप आचार–तपका आचरण करना।

तप आराधना–तपका सेवन करना।

तपन–जंबूद्वीपके विद्युतप्रभ गजदंतपर पांचवा कूट (त्रि० गा० ७४०–७४२ इसपर वारिषेणा देवी बसती है; रुचकगिरिकी पूर्व दिशामें तीसरा कूट। इसपर वैजयंती देवी बसती है। (त्रि० ९४८–४९)

तपनीय–तपाए सोने समान लाल।

तपनीय–सौधर्म ईशान स्वर्गमें १९ वां इंद्र कार्यमान। (त्रि० गा० ४६५)

तप ऋद्धि–सात प्रकार हैं–(१) उग्रतप–पक्ष, मासादिके उपवास करते चले जावें, कष्ट न हो, (२) दीप्त तप–अनेक उपवास करनेपर भी शरीरकी चमक न बिगड़े, दुर्गंध मुखमें न आवे, (३) तप्ततप–भोजन मलमूत्रादि रूप न परिणमें, भस्म हो जाय, (४) महातप–सिंहनिष्क्रीड़ित आदि महान् तप कर सकें, (५) घोरतप–रोगादि होनेपर भी घोर तप करें। भयानक स्थानोंमें तपस्या करें, (६) घोर पराक्रम–निर्जन वनोंमें तप करते घोर साहस धारें, (७) घोर ब्रह्मचर्य–पूर्ण ब्रह्मचर्य पालें, कभी खोटे स्वप्न न आवें। (भ०पृ० ५२२)

तप विनय–तप साधनमें भक्ति करना, आदर करना।

तपस्वी–जो निर्ग्रंथ साधु बहुत दिनोंके उपवास करनेवाले हों व घोर तपके साधक हों। (सर्वा० अ० ९–२४)

तपित–दूसरे नर्ककी पृथ्वीमें दूसरा इंद्रकबिला। (त्रि० गा० १५६)

तप्त–दूसरे नर्ककी पृथ्वीमें पहला इन्द्रकबिला। (त्रि० गा० १५६)

तमका–पांचवें नर्ककी पृथ्वीमें पहला इन्द्रक। (त्रि० गा० १५८)

तमकी–चौथे नर्ककी पृथ्वीमें पांचवां इन्द्रक। (त्रि० गा० १५८)

तमप्रभा-छठे नर्ककी पृथ्वी । मघवी, यह १६००० योजन मोटी है इसमें पांच कम एक लाख विल है । यहां अति शीत है । इसमें तीन इन्द्रक विल हैं । इस नर्कमें उपजनेके स्थानोंका व्यास तीन योजन है । यहां उपजते ही नारकी २५० योजन तक उछलते हैं । नरकमें अपृथक् विक्रिया है, नारकी अपना शरीर सिंहादिका बनाकर परस्पर दुःख देते हैं । यहां शरीर २५० धनुष ऊँचा होता है । यहां उत्कृष्ट आयु २२ सागर है । (त्रि० गा० १४८)

तमिस्रा-विजयार्द्धकी एक गुफा ८ योजन ऊँची १८ योजन चौड़ी ।

तप्त जाला-सीता नदीके दक्षिण तटपर पहली विभङ्गा नदी । (त्रि० गा० ६६८)

तारणतरण-तारण पंथके स्थापक ब्रह्मचारी १६वीं शताब्दीमें हुए । इस पंथके लोग दि० जैन शास्त्रोंको पूजते व पढ़ते हैं, मात्र प्रतिमा नहीं पूजते हैं । चैत्यालयमें शास्त्र स्थापित करते हैं । करीब २००० की संख्या हुशंगाबाद सागर आदिमें है । वासोदाके पास सेमरखेड़ीमें तपस्थान है, मेला भरता है । इनके बनाए १४ ग्रन्थ अध्यात्मरूप उस समयकी अपभ्रंश भाषामें हैं ।

तर्क-चिन्ता-व्याप्तिका ज्ञान-अविनाभाव संबंध व्याप्ति है । जहां २ साधन (हेतु) होना वहां २ साध्यका होना और जहां २ साध्य न होय वहां २ साधनका न होना, इसे अविनाभाव सम्बन्ध कहते हैं जैसे धूम साधन है अग्निका । जहां २ धूम है वहां अग्नि जरूर है । जहां अग्नि नहीं है वहां धूम नहीं होसक्ता । ऐसा जो मनमें पक्का विचार सो तर्क है । (जै० सि० प्र० नं० २२-२५)

तादात्म्य सम्बन्ध-जो सम्बन्ध कभी नहीं छूटे, जैसे गुण और गुणीका सम्बन्ध । आत्मा गुणी है, ज्ञान गुण है । ज्ञान कभी आत्मासे छूट नहीं सक्ता इसलिये आत्मा और ज्ञानका तादात्म्य सम्बन्ध है ।

तापन-तीसरे नर्ककी पृथ्वीमें छठा इंद्रक बिला । (त्रि० गा० १५६)

तामिस्र ग्रह-भरतके विजयार्द्ध पर्वतका सातवां कूट सुवर्णमई, इसपर कृतमाल व्यंतरदेव रहता है । (त्रि० गा० ७३३-७३५)

तारक-पिशाच व्यंतरोंमें चौथा प्रकार । (त्रि० गा० २७१) भरतका गत दूसरा प्रतिनारायण । (त्रि० गा० ८२०); तारे ।

तारा-चौथी पृथ्वीके नर्कमें तीसरा इंद्रक बिला (त्रि० १५७) यक्ष व्यंतरोंके इन्द्र पूर्णभद्रकी देवी । (त्रि० गा० २६६) सुभौम चक्रवर्तीकी माता । (इ० २ पृ० २९)

तारागण-ज्योतिषी देवोंमें पांचवा भेद १ लाख व्यासवाले जम्बूद्वीपमें तारे नीचे प्रमाण हैं ।

भरत क्षेत्रमें	७०५	कोड़ाकोड़ी
	(१००००००,००००००)	
हिमवत पर्वतमें	१४१०	कोड़ाकोड़ी
हैमवत क्षेत्र	२८२०	,,
महाहिमवत् पर्वत	५६४०	,,
हरिक्षेत्रमें	११२८०	,,
निषध पर्वत	२२५६०	,,
विदेह क्षेत्र	४५११०	,,
नील पर्वतमें	२२५६०	,,
रम्यक क्षेत्रमें	११२८०	,,
रुक्मी पर्वत	५६४०	,,
हैरण्यवतक्षेत्र	२८२०	,,
शिखरी पर्वत	१४१०	,,
ऐरावतक्षेत्र	७०५	,,
	१३३९५०	कोड़ाकोड़ी कुल तारे

ताराचन्द-प्रतिमा शांति चतुर्दशी व्रतोद्यापनके कर्ता । (दि० ग्र० नं० ११०); पं०, तीस चौबीसी पूजा लघुके कर्ता । (दि० ग्र० नं० ९२); पं० ज्ञानार्णव छन्द (सं० १७२८) में रचा । (दि० ग्र० नं० ९१)

तिक्तरस नाम कर्म–जिसके उदयसे शरीरमें तीखा रस हो। (सर्वा० अ० ८–११)

तिगिंछ द्रह–जंबूद्वीपके निषध पर्वतका द्रह जहांसे सीतोदा नदी और हरित नदी निकली हैं। (त्रि० गा० नं० ५६७)

तिथिमान–जो तिथि तीन मुहूर्त या छः घड़ी उदयमें हो उसको मानना चाहिये। यदि कम हो तो पहले दिन मानना चाहिये व यदि उपवास करे तो दूसरे दिन जितनी घड़ी तिथि उदयमें हो उसके पीछे पारणा करे। हरएक तिथिका प्रमाण ५४ घड़ीसे ६५ घड़ी तक या कुछ कम ६६ घड़ीका होता है। तब जो पहले दिन ६० साठ घड़ी हो दूसरे दिन पांच घड़ी हो तो पहले दिन ही उपवास प्रारम्भ करना चाहिये। उदय तिथिका प्रमाण पं० आशाधर कृत यत्याचारका दिया है।

तिमिश्र–विजयार्द्ध पर्वतकी गुफा जहांसे गंगा नदी निकलकर दक्षिणको आती है। (त्रि. गा. ५९७)

तिमिश्रका (तिमिश्रा)–पांचवे नर्ककी पृथ्वीका पांचवां इन्द्रक। (त्रि. गा. १५८)

तिर्यक् अतिक्रम–दिग्विरति गुणव्रतका तीसरा अतीचार। जो प्रमाण पूर्व पश्चिमादि आठ दिशा विदिशाका किया हो उसको प्रमादसे लांघकर चले जाना। (सर्वा. अ. ७–३०)

तिर्यक् एकादश–(तिर्यगेकादश) ग्यारह कर्मकी प्रकृतियां ऐसी हैं जिनका उदय तिर्यंचगतिमें होता है वे हैं तिर्यंचगति + १ तिर्यंचगत्यानुपूर्वी + एकेन्द्रियादि जाति ४ + आतप + उद्योत + स्थावर + सूक्ष्म + साधारण = ११। (गो. क. गा. ४१४)

तिर्यक् लोक–मध्य लोक–यहां अकृत्रिम जिन मंदिर ४५८ इस भांति हैं–

पांच मेरु सुदर्शनादिपर	८०	जिन मंदिर।
कुलाचलक तीसपर	३०	,,
गजदंत सहित वक्षारगिरि	१०० पर १००	,,
इष्वाकार पर्वत चारपर	४	,,
एक मानुषोत्तर पर्वतपर	४	,,
विजयार्द्ध पर्वत १७० पर	१७०	जिनमंदिर
जम्बू वृक्ष पांचपर	५	,,
शाल्मली वृक्ष पांचपर	५	,,
ढाईद्वीपमें कुल मंदिर	३९८	
नंदीश्वर द्वीपमें	५२	
कुण्डलगिरिपर	४	
रुचकगिरिपर	४	
	४५८	

कुल ४५८ जिन मंदिर मध्यलोकमें हैं। एकएकमें १०८ प्रतिमाएं रत्नमई हैं।

इसमें असंख्याते द्वीप व समुद्र हैं, एक दूसरेको वेढ़े हुए एक राजू लम्बे चौड़े क्षेत्रमें हैं। मध्यमें सबसे छोटा जम्बूद्वीप है जो १ लाख योजन चौड़ा है। उसके चारों तरफ लवण समुद्र दो लाख योजन चौड़ा है, फिर धातुकी खण्ड द्वीप चार लाख योजन चौड़ा है, उसके पीछे कालोदधि समुद्र है वह एक लाख योजन चौड़ा है, इस तरह दूने दूने होते चले गए हैं। पहले दो समुद्रोंके नाम भिन्न हैं, आगे जो द्वीपके नाम हैं वे समुद्रोंके नाम हैं। पहले १६ द्वीप हैं–१ जंबू, २–धातकी, ३–पुष्करवर, ४–वारुणिवर, ५–क्षीरवर, ६–घृतवर, ७–क्षौद्रवर, ८–नन्दीसुर, ९–अरुणवर, १०–अरुणाभासवर, ११–कुंडलवर, १२–शंखवर, १३–रुचकवर, १४–भुजगवर, १५–कुशगवर, १६–क्रौंचवर। अंतके १६ द्वीप हैं–१ मनःशिला द्वीप, २ हरिताल द्वीप, ३ सिंदूरवर द्वीप, ४ श्यामवर, ५ अंजनवर, ६ हिंगुलिकवर, ७ रूप्यवर, ८ सुवर्णवर, ९ वज्रवर, १० वैडूर्यवर, ११ नागवर, १२ भूतवर, १३ यक्षवर, १४ देववर, १५ अहीन्द्रवर, १६ स्वयंभू रमण अंतका। ढाई उद्धार सागरके जितने रोम हों उतने द्वीप समुद्र हैं। ढाईद्वीप अर्थात् पुष्करार्द्ध तक मानुषलोक कहलाता है जो ४५ लाख योजन व्यासवाला है। इससे बाहर मानव न पैदा होते न जाते हैं।

ढाई द्वीपके भीतर व अंतके आगे द्वीप व समु-

द्रमें कर्मभूमि हैं। मध्यके द्वीपोंमें जघन्य भोगभूमि हैं। युगल पशु एक पल्य आयुवाले पैदा होते हैं।

लवण व कालोदधि व स्वयंभूरमण समुद्रमें ही जलचर जीव हैं। शेष सब समुद्र जलचर व विकल-त्रयसे रहित हैं।

जंबूद्वीपके मध्यमें मेरु पर्वत है, वह १००० योजन नीचे जड़में हैं तथा ९९ हजार योजन ऊंचा है ४० योजनकी चूलिका है जो पहले स्वर्गके पहले विमानको स्पर्श करती है। मेरुपर्वतके समान ही मध्यलोककी ऊँचाई है।

तिर्यग्भाग व्यतिक्रम–देखो "तिर्यक् अतिक्रम"

तिर्यंच "तिरोभावं कुटिलभावं अंचंति गच्छंति इति तिर्यंच।" जो तिरोभाव अर्थात् कुटिल भावको अंचन्ति अर्थात् रखते हैं वे तिर्यंच हैं, जिनके आहार मैथुन आदि प्रगट होते हैं, जो प्रभाव, सुख, द्युति, लेश्याकी अपेक्षा निकृष्ट हैं, जो कर्तव्य अकर्तव्यके ज्ञान रहित हैं, जिनके अत्यन्त पापका उदय है वे तिर्यंच हैं, (गो॰ जी॰ गा॰ १४८) इनके भेद या जीव समास ८९ हैं। देखो "जीव समास"

तिर्यग्योनिज–जो तिर्यंचकी योनियोंसे उत्पन्न हो।

तिर्यंच आयु–वह कर्म है जिसके उदयसे यह जीव तिर्यंचके किसी भी शरीरको पाकर उसमें कैद रहता है। इस कर्मको वही बांधता है, जो विपरीत मार्गका उपदेश करे, भले मार्गका नाश करे, गूढ़ जिसका हृदय हो, कपटी हो, मूर्ख हो व माया, मिथ्या, निदान शल्य सहित हो (गो॰ क॰ गा॰ ८०९)

तिर्यंचगति–वह कर्म जिसके उदयसे तिर्यंचकी पर्यायमें जाकर उत्पन्न हो व तिर्यंचकीसी दशाको पावे (सर्वा॰ अ॰ ८–११)

तिर्यंच गत्यानुपूर्वी कर्म–वह कर्म जिसके उदयसे तिर्यंचगतिमें जाते हुए विग्रह गतिमें जब-तक पहले शरीरसे छूटकर अन्यमें न पहुंचे, पूर्वके शरीरके आकार समान जीवका आकार बना रहे। (सर्वा॰ अ॰ ८–११)

तिर्यंच गतिसे गमन–अग्नि व वात कायवाले जीव मरकर तिर्यंच ही होते हैं, वे पंचेन्द्रि सैनी नहीं होते हैं। पृथ्वीकाय, जलकाय, वनस्पतिकाय, वाले द्वेन्द्रिय, तेन्द्रिय, चौन्द्रिय जीव मरकर तेज वायु विना अन्य सर्व तिर्यंचोंमें ६३ शलाका पुरुष विना अन्य मनुष्योंमें उपजते हैं परन्तु नित्य व इतर सूक्ष्म निगोदसे आए देश संयम तक पासकें मुनि न होसकें। असैनी पंचेन्द्रिय पृथ्वीकायके समान तिर्यंच व मनुष्योंमें तथा प्रथम नरकमें व भवनवासी या व्यंतरदेवोंमें उपजते हैं। सैनी पंचे-न्द्रिय असैनीके समान व सर्वोमें व सर्व नरकोंमें व भोगभूमिमें व अच्युत स्वर्गपर्यंत देव पैदा होते हैं। (गो॰ क॰ गा॰ ५४०–५४१)

तिर्यंच योनि–सब बासठ ६२ लाख, देखो "चौरासी लक्ष योनि"

तिल–ज्योतिषके ८८ ग्रहोंमें २१ वां ग्रह।

तिलपुच्छ– ,, ,, २१ वां ग्रह। (त्रि॰ गा॰ ३६९)

तिलका–विजयार्द्धकी उत्तर श्रेणीमें २८ वां नगर। (त्रि॰ गा॰ ७०४)

तिलोकचंद भट्टारक–सामायिक वचनिकाके कर्ता। (दि. ग्र. नं. ९२–४१)

तीन अज्ञान–कुमति, कुश्रुत, कुअवधि, मिथ्या दृष्टीके होते हैं जो मति, श्रुत, अवधिज्ञानके संसारका कारण भाव बढ़ा लेता है, विपरीत प्रयोजनमें लेजाता है। देखो शब्द "ज्ञान"

तीन चौबीसी–देखो (अ॰जि॰पृ॰ १६९)

तीन चौबीसी व्रत–भादों सुदी ३ को प्रोष-धोपवास करे। (कि॰ कि॰ पृ॰ ११४)

तीर्थ–जिससे संसार समुद्र तिरा जावे। रत्न-त्रयमई जैनधर्म।

तीर्थयात्रा दर्पण–बम्बईमें मुद्रित।

तीर्थस्थान–देखो "जैन तीर्थस्थान"

तीर्थंकर–जो तीर्थंकर नामकर्मके उदयसे तीर्थंकर हों, जिन्होंने षोडशकारण भावना भाकर यह कर्म बांधा हो वे ही तीर्थंकर होते हैं। उनकी भक्ति इन्द्रादिदेव विशेष करते हैं तथा वे केवलज्ञान होनेके पीछे धर्मोपदेश देते हुए तीर्थका प्रचार करते हैं। ऐसे तीर्थंकर २४ हरएक अवसर्पिणीके चौथे कालमें भरत व ऐरावतमें होते हैं तथा विदेहमें सदा ही हुआ करते हैं वहां कमसेकम २० व अधिकसे अधिक १६० तक एक समय पाए जाते हैं। भरत व ऐरावतमें तो उनके गर्भादि पांचों कल्याणक होते हैं, विदेहोंमें कम भी होते हैं। वहां उसी जन्ममें गृहस्थ या मुनि तीर्थंकर कर्म बांधके तीर्थंकर होसकते हैं। जो तीर्थंकर नाम कर्मकी सत्ता रखते हैं, ऐसे तीन नरक तकके नारकी जब मरनेसे ६ मास शेष रहते हैं तब वे देवोंके द्वारा उपसर्ग रहित कर दिये जाते हैं व स्वर्गोंमें छः मास पहले कोई मालाका कुमलाना आदि नहीं होता है। (त्रि० गा० १९९); इस भरतके वर्तमान चौबीस तीर्थंकरोंमें महावीर नाथ वंशमें, २३ वें पार्श्व उग्रवंशमें, २० वें मुनिसुव्रत व नेमिनाथ हरिवंशमें, १६ वें शांति, १७ वें कुन्थु व १८ वें अरजिन कुरुवंशमें व शेष १७ इक्ष्वाकु वंशमें जन्मे थे। (त्रि० गा० ८४९); इनमें पद्मप्रभ व वासपूज्यके शरीरका वर्ण रक्त था, चन्द्रप्रभ, पुष्पदंत सफेद वर्ण थे। सुपार्श्व व पार्श्व-नील वर्ण थे, मुनिसुव्रत कृष्णवर्ण थे। इनमें वासपूज्य, मल्लि, नेमि, पार्श्व व वर्द्धमान कुमार मुनि हुए। (त्रि० गा० ८४७–८४९)

तीर्थंकर नाम कर्म–वह कर्म जिसके उदयसे अर्हंत तीर्थंकर होता है। इस कर्मका बंध १६ भावनाओंके भानेसे होता है ये षोडशकारण भावनाएं हैं–(१) दर्शनविशुद्धि–जिनधर्ममें श्रद्धानकी निर्मलता, (२) विनयसम्पन्नता–धर्म व धर्मात्माओंका आदर, (३) शीलव्रतेष्वनतिचार–अहिंसादि व्रतोंमें व शील स्वभावमें व शील व्रतोंमें दोष न लगाना, (४) अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग–निरन्तर सम्यग्ज्ञानमें लगे रहना, (५) संवेग–संसारके दुःखोंमें भयभीतता, (६) शक्तितस्त्याग–शक्ति अनुसार आहार, औषधि, अभय, व ज्ञानदान देना, (७) शक्तितस्तप–शक्तिके अनुकूल सच्चा तप करना, (८) साधु समाधि–साधुओंपर उपसर्ग पड़े तब दूर करना, (९) वैयावृत्त्य–गुणवानोंको कष्ट हो तो सेवा करना, (१०) अर्हत्भक्ति–अर्हंत भगवानकी पूजा करनी, (११) आचार्य भक्ति–आचार्यकी भक्ति, (१२) बहुश्रुत भक्ति–उपाध्यायकी भक्ति, (१३) प्रवचन भक्ति–शास्त्रकी भक्ति, (१४) आवश्यकापरिहाणि–अपने नित्य आवश्यक न छोड़ना, (१५) मार्गप्रभावना–धर्मका प्रकाश करना, (१६) प्रवचन वत्सलत्व–धर्मात्माओंसे गौवत्स सम प्रेम रखना। ये सब व एक आदिसे भावनेसे भी तीर्थंकर नाम कर्म बंध जाता है।

(सर्वा० अ० ६–२४)

तीर्थंकर बेला व्रत–२४ बेले करे। सप्तमी अष्टमीका एक, फिर पारणा, पश्चात् तेरस चौदस एक, फिर पारणा। इस तरह २४ बेले पूर्ण करे। पहले बेलेके पारणेमें तीन अँजुली शरबत ले फिर २३ के पारणेमें तीन अँजुली दूध ही ले।

(क्रि० क्रि० पृ० १२२)

तीर्थयात्रा–जैन तीर्थ स्थानोंकी वंदनार्थ जाना।

तीर्थराज–तीर्थंकर या महान सिद्धक्षेत्र जहांसे तीर्थंकर मुक्त हुए जैसे सम्मेदशिखर आदि।

तीर्थक्षेत्र–गर्भादि पंचकल्याणकके क्षेत्र व अन्य केवलीके सिद्ध स्थान व अतिशय क्षेत्र प्राचीन प्रतिमा आदि जिनसे विशेष धर्म जागृत हो।

तीन चौबीसी–देखो (प्र. जि. श. [illegible]....)

तीस चौबीसी पाठ पूजा–मुद्रित है।

तुंबुरु–गंधर्व व्यन्तरोंका भेद [illegible]। (त्रि० गा० २६२)

तुम्बुलूर–आचार्य [illegible]

खण्डोंकी कनडी टीका चूडामणि नामकी ८४००० श्लोकोंमें की। (श्रु० पृ० २२)

तुपार—बर्फ या ओस।

तुषित—लौकांतिक देवोंका पांचवां भेद। इनकी संख्या नौ हजार नौ मात्र हैं। ये सब वैरागी व देवी रहित एक भव ले मोक्ष जानेवाले हैं।
(त्रि० गा० ५३६)

तूष्णीक—पिशाच व्यंतरोंमें १३ वां प्रकार। (त्रि० गा० २७२)

तृण स्पर्श परीषह—वनमें झाड़ी आदि व कठोर पाषाणादिके स्पर्शकी बाधाको शांतिसे सहना। (सर्वा० अ० ९-९)

तृषा परीषह—प्यास लगनेपर उसके कष्टको शांतिसे सहना। (सर्वा० अ० ९-९)

तेज कायिक—अग्नि शरीरधारी जीव। जब जीव निकल जाता है तब वह तेज काय कहलाता है। जो जीव पूर्व पर्यायको छोड़कर तेज कायमें जन्म लेने आरहा है वह विग्रह गतिमें तेज जीव है। इनमें सूक्ष्म अग्निकायिक किसीसे बाधाको नहीं पाते व तीन लोक व्यापी हैं। बादर देखनेमें आते हैं। इनका शरीर बहुत छोटा घनांगुलके असंख्या-तवें भाग होता है। एक लपकमें बहुत जीव हैं। इनके शरीरका आकार सुइयोंके समूहरूप लम्बा ऊपर बहु मुखरूप होता है। (गो.जी.गा. २०१)

तेजपाल—संभवनाथ पुराण प्राकृतके कर्ता।
(दि० ग्रं० नं० १०९)

तेरहपन्थ—दि० जैन शास्त्रमें कहीं उल्लेख नहीं है। प्रवृत्तिमें जो दि० जैन लोग वस्त्रधारी भट्टा-रकको गुरु नहीं मानते हैं, सचित्त फल फूलादिसे पूजा नहीं करते हैं, प्रतिमाको केशर नहीं लगाते हैं, खड़े होकर पूजन करते हैं, रात्रिको जिनेन्द्रकी पूजा अष्टद्रव्योंसे नहीं करते हैं, क्षेत्रपाल पद्मावतीको नहीं पूजते हैं वे तेरहपंथवाले कहलाते हैं।

तेलाव्रत—पहले व अंतके दिन एकाशन करे बीचमें तीन उपवास करे।

तैजस बन्धन नाम कर्म—वह कर्म जिसके उद-यसे तैजस शरीर बनने योग्य आई हुई तैजस वर्गणा परस्पर मिल जावे। (सर्वा. अ. ८-११)

तैजस वर्गणा—पुद्गल द्रव्यके भेदरूप तेईस जातिकी वर्गणाओंमें छठी। एक एक वर्गणामें अनंत परमाणुका बन्धन होता है। आहारक वर्गणासे अनंतगुणी परमाणु तैजस वर्गणामें होती है। इसको आज कल बिजलीका स्कंध (elec्tic moleculs) समझा गया है। इसीसे आहारक वर्गणासे बनने वाले तैजस शरीरमें अनंतगुणी शक्ति रहती है।
(गो. जी. गा. ५९४-५९९)

तैजस शरीर नाम कर्म—जिसके उदयसे तैजस वर्गणाओंका आकर्षण तैजस शरीर बननेके लिये हो।
(सर्वा० अ० ९-११)

तैजस संघात नाम कर्म—जिसके उदयसे तैजस वर्गणाएं जो शरीर बनाएंगी, परस्पर छेद रहित एक-मेक होजावें। (स. अ. ८-११)

तोयन्धरी—मेरु पर्वतके नंदनवनके पांचवे रजत कूटपर बसनेवाली दिक्कुमारी देवी। (त्रि. गा. ६२६)

त्यक्त शरीर—जो शरीर स्वयं शांतिपूर्वक समा-धिमरण द्वारा त्यागा हो। देखो 'ज्ञायक भूत शरीर नोआगम द्रव्यनिक्षेप"।

त्याग—धर्म-दान करना। आहार, औषधि, अभय व ज्ञान दान धर्मात्मा पात्रोंको भक्तिपूर्वक व अपात्रोंको करुणाभावसे देना। (सर्वा० अ० ९-६); छोड़ना, विरक्त होना।

त्रयोदश चारित्र—तेरह प्रकार मुनिका सम्यक् चारित्र।

महाव्रत पांच—पूर्ण अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य व परिग्रह त्याग व्रत।

समिति पांच—ईर्यासमिति—चार हाथ भूमि देखकर चलना। भाषा समिति—शुद्ध वचन बोलना। एषणा समिति—शुद्ध भोजन करना। आदान निक्षेपण समिति—देखकर रखना उठाना। प्रतिष्ठा-पन समिति—मलमूत्र देखकर निर्जंतु भूमिपर करना।

गुप्ति तीन–मन, वचन, कायको स्वाधीन रखना।

त्रयोदश द्वीप–मध्यलोकके पहले १३ महाद्वीप। जम्बूद्वीपसे लगाकर रुचकवर द्वीप तक। यहीं तक अकृत्रिम जिनमंदिर ४५८ हैं।

त्रसकायिक जीव–द्वेन्द्रियसे पंचेंद्रियतक शरीर धारी जीव त्रस हैं। ये त्रस जीव, त्रस नालीमें ही पाए जाते हैं। मात्र मारणांतिक समुद्घातके होते हुए, व विग्रह गतिमें त्रस नालीके बाहरसे आते हुए व केवलि समुद्घातमें इन तीन कारणोंके सिवाय त्रस जीव त्रस नालीके बाहर नहीं होता है (गो० क० १९८–१९९); इनकी योनियोंकी संख्या ३२ लाख है। देखो "चौरासी लक्ष योनि"

त्रस चतुष्क–द्वेन्द्रिय, तेन्द्रिय, चौन्द्रिय, पंचेन्द्रिय जीव।

त्रस नाली (त्रस नाड़ी)-लोकाकाशके मध्यमें एक राजू लम्बी व एक राजू चौड़ी व चौदह राजू ऊँची है। द्वेन्द्रियादि त्रस जीव देव नारकी पशु मानव सब इसीके भीतर जन्मते हैं। ३४३ घनराजू लोकमें १४ घनराजू त्रस नाली है। शेष ३२९ घनराजूमें स्थावर ही पैदा होते हैं। जन्म लेनेवाले व मारणांतिक व केवलि समुद्घातवाले ही त्रस नालीसे बाहर त्रस जीव जाते हैं (त्रि.गा. १४३)

त्रस नाम कर्म–जिसके उदयसे त्रस कायमें उपजे। (सर्वा० अ० ८–११)

त्रस रेणु–देखो अंक विद्या। (प्र.जि. पृ. १०९)

त्रसित–पहले नर्ककी पृथ्वीमें दसवां इन्द्रक बिला। (त्रि० गा० १९९)

त्रस्त–पहले नर्ककी पृथ्वीमें नौमा इन्द्रक (त्रि. गा. १९४); ज्योतिषके ८८ ग्रहोंमें ७० वां ग्रह (त्रि० गा० ३६९)

त्रायस्त्रिंशत देव–देवोंकी १० पदवियोंमें चौथी पदवी। हरएक इंद्र सम्बन्धी तेतीस देव इंद्रके पुत्र या मंत्रीके समान होते हैं। व्यंतर व ज्योतिषी ओंमें यह भेद नहीं होता है।

(त्रि० गा० २२३–२२५)

त्रिकरण–तीन प्रकारके परिणाम या जीवके विशुद्ध भाव, जो समय समय अनंतगुण निमित्त एक अंतर्मुहूर्त तक होते रहते हैं। अधःप्रवृत्त, अपूर्व, अनिवृत्ति ये नाम हैं। दर्शनमोहको उपशम या क्षयके लिये व चारित्र मोहको उपशम या क्षयके लिये या अनंतानुबन्धीके विसंयोजनके लिये ये परिणाम साधक हैं। देखो शब्द "अधःकरण"।

(गो० क० गा० ८९६)

त्रिकाल चौवीसी–भूत, भविष्य, वर्तमानकी सर्व द्रव्योंकी सर्व पर्यायोंको देखनेवाले सर्वज्ञ सर्वदर्शी भगवान अरहंत सिद्ध।

त्रिकाल सामायिक–मुनियोंके तीन सामायिकके काल। पूर्वाह्न सामायिक–रात्रिके चार घड़ी, (२४ + ४ मिनट=९६) से लेकर सूर्योदय तक। मध्याह्न–में दो घड़ी, अपराह्नमें चार घड़ी, नक्षत्र दर्शनसे समाप्ति (च० स० नं० ११४) सामान्यतासे सबके लिये उत्कृष्ट काल छः घड़ी, मध्यम काल चार घड़ी व जघन्य दो घड़ी है। प्रतिमाधारी श्रावक इच्छानुसार तीन कालमें कभी कोई विशेष कारणसे अन्तर्मुहूर्त भी कर सकते हैं।

(गृ० अ० ९ व ८)

त्रिकालज्ञ–भूत, भविष्य, वर्तमान तीन कालके द्रव्य गुण पर्यायोंके ज्ञाता सर्वज्ञ भगवान।

त्रिकूट–सीताके दक्षिण तटपर पहला वक्षार पर्वत। (त्रि० गा० ६६७)

त्रिखण्ड–भरत क्षेत्रके दक्षिण व ऐरावतके उत्तरके तीन खण्ड, जिनके बीचमें आर्यखण्ड इधरउधर म्लेच्छ खण्ड होते हैं। भरतके मध्यमें विजयार्द्ध पर्वत व बीचमेंसे गंगा, सिंधु दो नदी बहनेसे छः खण्ड होते हैं। तीन विजयार्द्धके दक्षिण तीन तरफ।

त्रिखण्डी–भरत व ऐरावतके तीन खण्डोंको साधनेवाले नारायण तथा प्रतिनारायण जो हरएक अवसर्पिणी व उत्सर्पिणी कालमें नौ नौ होते हैं।

त्रिगुण–तीन गुण जो आचार्यके द्वारा शिष्य साधुको मिलते हैं। १ सारण–रत्नत्रय धर्मकी

म
या।
दान
तिष्ठा
करना।

रक्षा। २ वारण-धर्ममें दोष करे उनको टालना। ३ प्रतिचोदना-धर्म वृद्धिकी प्रेरणा। (भ.पृ. १४७)

त्रिगुप्ति-मन, वचन, कायको वश रखना, विषय सुखकी अभिलाषा व प्रवृत्तिसे रोकना, धर्म ध्यानमें लीन रखना, इनसे कर्मोंका संवर होता है (सर्वा० अ० ९-४)

त्रिदोष-तीन शल्य जो व्रतीमें न होनी चाहिये। मायाचार, मिथ्याभाव (श्रद्धा न होना) व निदान (आगामी भोगाकांक्षा); ज्ञानके तीन दोष-संशय-ऐसे हैं या नहीं निर्णय न करना। विपर्यय-उल्टा ही समझना। अनध्यवसाय-समझनेकी कोशिश न करना। लक्षणके तीन दोष हैं। अतिव्याप्ति-जिस लक्ष्यका लक्षण करे वह लक्षण लक्ष्यसे बाहर भी जाता हो जैसे जीवका लक्षण अमूर्तिक, यह आकाशादिमें भी होनेसे अतिव्याप्ति दोष है। अव्याप्ति-जो लक्षण सर्व लक्ष्यमें न हो। इसके जैसे जीवका लक्षण रागद्वेष क्रिया जाय, यह सिद्ध जीवमें नहीं है। असम्भव-जो संभव न हो, जैसे जीवका लक्षण अचेतन।

त्रिपंचाशत क्रिया-गर्भान्वयकी ५३ क्रियाएँ जो बालकोंके संस्कारादिसे लेकर निर्वाण प्राप्ति तक हैं। (आदि०पर्व ३८-३९-४०); श्रावककी ५३ क्रियाएँ। देखो शब्द "क्रिया ५३"

त्रिपंचाशत भाव-जीवोंके भाव ५३ प्रकारके हैं। औपशमिक २, क्षायिक ९, क्षायोपशमिक १८, औदायिक २१, पारिणामिक ३=५३। (सर्वा० अ० २-२)

त्रिपदधर तीर्थंकर-भरतमें इस कालमें तीन हुए। कामदेव, चक्रवर्ती व तीर्थंकर पदधारी श्री शांति, कुंथु और अरह, १६-१७-१८वें।

त्रिपृष्ठ-भरतके वर्तमान प्रथम नारायण जो पीछे श्री महावीरस्वामी हुए। भरतके भविष्य आठवें नारायण। (त्रि० ८१०)

त्रिभाग-आयु कर्मका बन्ध परभवके लिये दो तिहाई आयु बीतनेपर त्रिभागमें होता है। ऐसे दो दो तिहाई करके आठ त्रिभाग होसकते हैं। देखो "चतुष्कपयुष्क"

त्रिभंगी-कर्म प्रकृतियोंके सम्बन्धमें तीन भेद हैं। बन्ध, उदय, सत्ता-१४८ कुल प्रकृतियें सत्तामें गिनी जाती हैं। बंधमें १२० की जाती हैं। वर्णादिक २० मेंसे मूल ४ तथा ५ बन्धन, ५ संघात, ५ शरीरमें गर्भित कर दिये जाते हैं। दर्शन मोहसे सम्यक् मिथ्यात्व या मिश्र व सम्यक्त प्रकृतिका बन्ध नहीं होता। इसलिये १४८-(१६+१०+२)=१२०।

उदयमें १२०+मिश्र, सम्यक्त=१२२ गिनी जाती है। हरएकमें तीन बातें विचारनी चाहिये। बंधाभाव, बंध, बंधव्युच्छित्ति, उदयाभाव, उदय, उदयव्युच्छित्ति, सत्त्वाभाव, सत्ता, सत्ताव्युच्छित्ति। मिथ्यात्वादि १४ गुणस्थानोंमें हरएककी अपेक्षा विचारना चाहिये कि उनमें कितनी प्रकृतियां नहीं बंधती हैं व कितनी बंधती हैं व कितनीका बंध नाश हुआ अर्थात आगे न होगा; व कितनोंका उदय नहीं, कितनी उदय व कितनीका उदय आगे बंद। कितनोंकी सत्ता नहीं, कितनोंकी सत्ता व कितनोंकी सत्ता आगे बंद। (देखो गो. क. कांड)

त्रिभुवन-तीन लोक, ऊर्ध्व, मध्य, अधः।

त्रिभुवन-समाधि तंत्रके टीकाकार। (दि० ग्रं० नं० ११९)

त्रि मकार-मदिरा, मांस, मधु।

त्रिमूढ़ता-लोक मूढ़ता-नदी-सागर स्नानमें, पत्थरके ढेर करनेमें, पर्वतसे गिरनेमें, अग्निमें जलनेमें धर्म मानना। देव मूढ़ता-वरकी इच्छासे रागी द्वेषी देवताओंकी भक्ति करना। गुरु मूढ़ता-आरम्भी, परिग्रही, संसारी, पाखण्डी साधुओंकी भक्ति। (र० श्रा० २३-२४)

त्रियोग-मन, वचन, कायके हलन चलनसे आत्माके प्रदेशोंका सकम्प होना।

त्रिरत्न-धर्मके तीन रत्न-सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र।

त्रिलिंग–तीन धर्मके भेष–(१) मुनिका नग्न दिगम्बर, (१) उत्कृष्ट श्रावकका ऐलक लंगोट मात्र व क्षुल्लक एक लंगोट व १ खंड वस्त्रधारी। (१) आर्यिका–जो एक सफेद सारी रखती हैं। तीनों ही मोरपिच्छिका जीवदयार्थ, व कमंडल शौचके अर्थ व भिक्षावृत्तिसे उद्दिष्ट भोजन छोडकर संतोषपूर्वक दिनमें एकहीवार आहार करते हैं।

त्रिलोकसार–ग्रन्थ प्राकृत नेमिचंद्र सिद्धांत चक्रवर्ती कृत गाथा १०१८ टीका हिन्दी भाषा पंडित टोडरमलजी कृत।

त्रिलोकपटल–पटल खनको या तह या पंक्तिको कहते हैं। सात नरकोंमें ऐसे पटल ४९ हैं। क्रमसे १३+११+९+७+५+३+१=४९. ऊर्ध्व लोकमें स्वर्गादिके ६३ पटल हैं। ८ युगलमें क्रमसे ३१+७+४+२+१+१+१+३ कुल ५२, +तीन ग्रैवेयिकके ९+१ नौ अनुदिशका +१ पांच अनुत्तरका=६३ सब पटल ४९+६३=११२ हैं।

त्रिलोक क्षेत्रफल–लोक नीचे पूर्व पश्चिम सात राजू चौड़ा फिर घटता गया। मध्यलोकके वहां १ राजू फिर बढ़ता गया। ब्रह्म स्वर्गके वहां ५ राजू फिर अन्तमें १ राजू। दक्षिण उत्तर लम्बा ७ राजू सब जगह है। ऊँचा १४ राजू है। घन फल होगा। चौड़ाईको जोड़ा तो ७ + १ + ५ + १=१४ राजू हुई।

$\frac{१४}{४}$ × ७ × १४=३४३ घनराजू घन क्षेत्र है।

(च० श० ११)
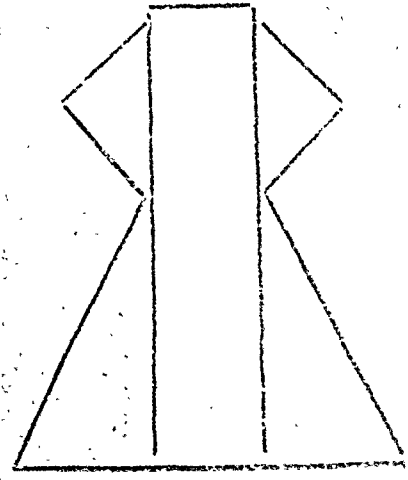
त्रिलोकबिंदु सार पूर्व–चौदहवां पूर्व–इसमें तीन लोकका स्वरूप वर्णित है। बीजगणित आदि कथन है इसके १२॥ करोड पद हैं। (गो० जी० गा० ३६६)

त्रिवर्ग–धर्म, अर्थ, (रुपया कमाना), काम, (न्यायपूर्वक इंद्रिय भोग)

त्रिविक्रम देव कवि–व्याकरणकी त्रिविक्रमा वृत्ति (३९००) के कर्ता (दि० ग्र० नं० ११२)

त्रिवेद–स्त्री वेद, पुरुष वेद, नपुंसक वेद।

त्रिशल्य–माया (कपट), मिथ्या (श्रद्धाविना) निदान (भोगाकांक्षा) (स० अ० ७–१८)

त्रिषष्टि कर्म प्रकृति–तीर्थंकर अरहंतपर ६३ कर्म प्रकृतियोंके नाशसे होता है। ४७ घातिया कर्मकी प्रकृतियां (५ज्ञा०+९ द० + २८ मोह० +५ अंत.) + नरकगति व गत्या० २+तिर्यंचगति व गत्या० २ + एकेन्द्रियादि ४ + आतप + उद्योत, + साधारण + सूक्ष्म + स्थावर + नरक- तिर्यंच देवायु ३=६३ (च० पु० ९७)

त्रिषष्टि गुण–सम्यग्दृष्टी गृहस्थके ४८ मूल गुण + १५ उत्तर गुण। मूलगुण=२५ मल दोष- रहितपना (अर्थात् ८ शंकादि दोष + ८ मद + ३ मूढ़ता + ६ अनायतन) + ८ संवेगादि लक्षण + ७ भय रहितपना + ३ शल्य रहितपना + ५ अतीचार रहितपना। १५ उत्तर गुण=द्यूतादि ७ व्यसन त्याग + ३ मकार व पांच उदम्बर फल त्याग। (गृ. अ. ७)

त्रिषष्टि शलाका महापुराण–आदि व उत्तर- पुराण जिनसेन व गुणभद्र कृत सं० व भाषा।

त्रिषष्टि शलाका पुरुष–२४ तीर्थंकर + १२ चक्री + ९ नारायण + ९ प्रतिनारायण + ९ बल- भद्र (त्रि० गा० ५१९) ये ६३ महापुरुष सब मोक्षगामी होते हैं। या तो उस भवसे व अन्य भवसे जाते हैं वे सब देवगतिसे आकर होते हैं। कोई २ तीर्थंकर चक्रीके लिये भी होते हैं। नारद व रुद्र-

वतके हरएक दुखमा सुखमा कालमें होते रहते हैं। (त्रि० गा० ८०३-८१९)

इस वर्तमान कालमें भरतक्षेत्रमें ६३ पुरुष इस भांति हुए।

	तीर्थंकरका समय	कौन चक्री	कौन नारायण	प्रति-नारायण	बलदेव
१	ऋषभदेव	भरत			
२	अजितनाथ	सगर			
३	संभवनाथ				
४	अभिनंदन				
५	सुमति				
६	पद्मप्रभ				
७	सुपार्श्व				
८	चंद्रप्रभ				
९	पुष्पदंत				
१०	शीतल				
११	श्रेयांस		त्रिपृष्ठ	अश्वग्रीव	विजय
१२	वासपूज्य		द्विपृष्ठ	तारक	अचल
१३	विमल		स्वयंभू	मेरक	सुधर्म
१४	अनंत		पुरुषोत्तम	निशुंभ	सुप्रभ
१५	धर्म	मघवा सनत-कुमार	पुरुषसिंह	मधुकैटभ	सुदर्शन
१६	शांति	शांति			
१७	कुन्द	कुंथु			
१८	अर	अर सुभूमि	पुरुषपुंडरीक	बलि	नंदी
१९	मल्लि	महापद्म	पुरुषदत्त	प्रहरण	नंदिमित्र
२०	मुनिसुव्रत	हरिषेण	लक्ष्मण	रावण	रामचंद्र
२१	नमि	जय			
२२	नेमि	ब्रह्मदत्त	कृष्ण	जरासिंध	पद्म या बलदेव
२३	पार्श्व				
२४	महावीर	१२ चक्री	९ नारायण	९ प्रति०	९ बलभद्र

तीन्द्रिय जाति नाम कर्म—जिसके उदयसे स्पर्शन, रसना, घ्राण इन तीन इंद्रियधारी तिर्यंचोंमें जन्मे। (सर्वा० अ० ८-११)

त्रीन्द्रिय जीव—स्पर्शन, रसना, घ्राण इंद्रियोंसे विषय ग्रहण करनेवाला प्राणी। यह सात द्रव्य प्राणोंसे जीकर काम करता है। ३ इन्द्रिय + वचनबल + कायबल + आयु + उच्छ्वास।

त्रेपन क्रिया—देखो "त्रिपंचाशत क्रिया"

त्रेपठ कर्म प्रकृति—देखो "त्रिषष्ठि कर्म प्रकृति"

त्रेपठ शलाका पुरुष—देखो 'त्रिषष्ठिशलाका पुरुष'

त्रैलोक्य प्रज्ञप्ति—प्राकृत दर्शनीय।

त्रैविद्य मुनि—माधवचन्द सिद्धांत शिरोमणि (दि० ग्र० नं० ११४); नेमचन्द सि० चक्र० के शिष्य। (गो० क० ३९६)

त्रैलोक्य दीपक—सकलकीर्ति कृत सं०।

त्रैलोक्यसार पूजा—सं० व भाषा दोनोंमें हैं।

थ

थानक पन्थी—, थानकवासी— } स्थानकवासी श्वेतांबर साधु या उनके माननेवाले जैनी स्थानकवासी। ये लोग प्रतिमाको नहीं पूजते हैं। इनके साधु वस्त्र धरते हैं व मुँहपर पट्टी रखते हैं। ये साधु उपाश्रयोंमें रहते हैं।

थावर—स्थावर एकेंद्रिय जीव। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु व वनस्पतिकायिक जीव।

थानसिंह—पं० (सं० १८४७) सुबुद्धि प्रकाश छन्द व बीस विहरमान पूजाके कर्ता।

द

दक—लवण समुद्रके उत्तर दिशाके पातालके तट एक पर्वत जिसपर लोहित नाम व्यंतर रहता है। (त्रि० गा० ९०७)

दकवास—लवण समुद्रके उत्तर दिशाके पातालके दूसरे तटपर एक पर्वत जिसपर लोहतांक नाम व्यंतर रहता है।

दक्ष—हरिवंशमें श्री मुनिसुव्रत तीर्थंकरके पीछे राजा सुव्रतके पुत्र जो अपनी ही पुत्री मनोहरीपर आसक्त होगए थे। (ह० ए० १९२)

दक्षिणार्द्ध ऐरावत—ऐरावत क्षेत्रके विजयार्द्धपर दूसरा कूट जिसपर उस ही नामका व्यन्तर रहता है। (त्रि० गा० ७३४)

दक्षिणेन्द्र—स्वर्गोंमें बारह इन्द्र हैं। छः दक्षिणेन्द्र हैं। १ सौधर्म, २ सनतकुमार, ३ ब्रह्म, ४ शुक्र, ५ आनत, ६ आरण (त्रि० गा० ४७६) ये सब एक भव लेकर मोक्ष जांयगे।

भवनवासी देवोंमें १० भेद हैं, दो दो इन्द्र हैं। पहले पहले दक्षिणेन्द्र हैं। वे हैं–१–असुरोंमें चमर, २–नागकुमारोंमें भूतानन्द, ३–सुवर्णकु०में वेणु, ४–द्वीपकु०में पूर्ण, ५–उदधिकु०में जलप्रभ, ६–विद्युतकु०में घोष, ७–स्तनितकु०में हरिषेण, ८–दिक्कु०में अमितगति, ९–अग्निकु०में अग्निशिखी १०–वात कु० में प्रलंब (त्रि. गा. ८१०–८११); आठ प्रकार व्यंतरोंमें भी दो दो इन्द्र हैं दक्षिणके हैं १–किन्नरोंमें किंपुरुष, २–किंपुरुषोंमें सत्पुरुष, ३–महोरगोंमें महाकाय, ४–गंधर्वोंमें गीतरति, ५–यक्षोंमें मणिभद्र, ६–राक्षसोंमें भीम, ७–भूतोंमें सुरूप, ८–पिशाचोंमें काल। (त्रि. गा. २७३–४)

दक्षिण-महाराष्ट्र दि० जैन सभामें व्याख्यान पं० गोपालदासजी–सरस्वतीभवन बम्बई ।

दंडक–देखो शब्द "आगत" भरतके कुंभकार कटकका राजा। राजमंत्री बालक जैनधर्मका द्वेषी था। बालक मंत्रीको पंडिताईका गर्व था। ५०० मुनियोंका संघ आया। वह संघसे वाद करने जा रहा था कि मार्गमें खंडक नामके मुनिसे वाद होगया वह हार गया उसने बदला लेनेको एक भांडको मुनि बनाकर रानीके महलमें भेजा। राजाको दिखाकर मुनि निंदा की। राजाने विचार न किया और सब मुनियोंको घानीमें पिलवा दिया। कइयोंने मोक्ष लाभ की। यही दंडक राजा मरकर कालांतरमें जटायु पक्षी हुआ है जिसे रामचन्द्र द्वारा श्रावक व्रत मिले।

(गा० क० नं० ७२)

दण्ड कपाट–समुदघात–जब केवली भगवानकी आयु कर्मकी स्थितिसे अधिक वेदनीय, नाम, गोत्रकी स्थिति होती है तब केवलि समुद्घात करते हैं। उस समय आत्मप्रदेश शरीराकार होते हुए शरीरसे बाहर फैलकर वातवलयको छोड़कर दण्डाकार १४ राजू तक फैल जाते हैं यह दण्ड स० है। फिर दूसरे समयमें वे किवाड़के समान होजाते हैं। दक्षिण उत्तर शरीराकार रहकर पूर्व पश्चिम वातवलयके सिवाय फैल जाते हैं। तीसरे समयमें वातवलय सिवाय लोक पर्यंत फैलते हैं। यह प्रतर है। चौथे समयमें लोकपूर्ण होजाते हैं। इसी तरह क्रमसे संकोच होकर आठवें समयमें औदारिक काय योग–दूसरे, सातवें व छठे समयमें औदारिक मिश्रयोग, तीसरे, चौथे, पांचवें समयमें कार्मण योग होता है। (च नं. ५६)

दत्त–भरतके वर्तमान सातवें नारायण (त्रि० गा० ८२१) चन्द्रप्रभु तीर्थंकरके मुख्य गणधर मुनि। (ह० पृ० ११२)

दत्ति कर्म–गृहस्थोंका कर्तव्य चार तरहका दान देना, पात्रोंको भक्तिसे, दुःखितोंको दयासे, समानोंको समान भावसे। आहार, औषधि, अभय व विद्यादान करना। (श्रा० पृ० २९६)

दधिमुख–नंदीश्वर द्वीपमें चार दिशामें चार अंजनगिर। अंजनगिरिके चार तरफ चार बावड़ी। हरएकके मध्यमें सफेदवर्ण दहीके समान एक एक दधिमुख पर्वत १० हजार योजन ऊँचे हैं। कुल दधिमुख १६ हैं इनपर जिनमंदिर हैं।

(त्रि० गा० ९६७)

दन्त वाणिज्य–हाथीदांत, सिंहनख आदिका व्यापार–व्रतीको मना है, १२ वां खर कर्म।

(श्रा० अ० ५–२२)

दमनन्दि–आचार्य आर्यतिलक प्राकृतके कर्ता।

(दि० ग्र० नं० ११६)

दयादत्ति–करुणादान–दयाभावसे दीन दुःखियोंको व सर्व प्राणियोंकी रक्षा करनी, अभयदान देना व दयासे आहारादि चार प्रकारका दान करना।

(श्रा० अ० २–७२)

दयानंद कुतर्क तिमिर तरणी–मुद्रित, अंबाला शहर जैन ट्रैक्ट सोसाइटी।

दयासागर सूरि–सं० १२८६ में धर्मदत्त चरित्र (जैन दि० वर्ष १२ अंक ११–१२ पृ. १५८)

दयासुन्दर (कायस्थ) .... कर्ता।

(दि० ग्र० नं० ११५)

दर्यावि–परवार पं०, ज्ञानोदधि [illegible] कर्ता

(दि० ग्र० नं० ९५–९४)

दर्यावसिंह सोधिया—गढ़ाकोटा (सागर) मास्टर (सं० १९७०) उदासीन श्रावक, श्रावक धर्मसंग्रहके कर्ता।

दरिगहमल्ल—विनोदीलालके पिता। भजनोंके कर्ता। (दि० ग्र० नं० ५६–४१)

दर्शन—श्रद्धान करना; सामान्य ग्रहण जो मतिज्ञानके पूर्व होता है। इन्द्रिय व पदार्थके सम्बन्ध होते ही जो कुछ होता है उसके पीछे आकारका ग्रहण होना सो अवग्रह मतिज्ञान है। इसके चार भेद हैं। चक्षुदर्शन—आंख द्वारा सामान्य ग्रहण। अचक्षु दर्शन—आंख सिवाय अन्य इन्द्रिय व मन द्वारा सामान्य ग्रहण, अवधि दर्शन—अवधिज्ञानसे पूर्व, केवल दर्शन—सर्वको देखनेवाला। दर्शन अनाकार उपयोग हैं (गो.जी.गा. ४८१–४८२)

दर्शनविधि—श्री जिनेन्द्र भगवानके दर्शनकी विधि यह है कि शुद्ध छने हुए जलसे स्नानकर मंदिर जानेके कपड़े पहनकर चमड़ेका जूता न पहनकर मार्गको देखता हुआ आवे। देखते ही तीन आवर्तकर दोनों हाथ जोड़ मस्तकको लगावे। जोड़े हुए हाथोंको अपने मुखके सामने बाईं तरफसे, दाहनी तरफ घुमानेको आवर्त कहते हैं। भाव यह है कि मैं मन, वचन, कायसे मंदिरजीको नमन करता हूं। फिर द्वारपर पग धोवे, पर्छे झुकता हुआ देखता हुआ भीतर जावे तब कहता जाय, "जय जय जय निःसहि निःसहि निःसहि।" इसका मतलब यह प्रसिद्ध है कि कोई देव खड़ा हो तो हट जावे। क्योंकि हम देवको देख नहीं सकते हैं। फिर प्रतिमाके सामने जाकर मुख देखे कि प्रभुकी वीतराग मुद्रा यथार्थ है कि नहीं। मंदिर आते हुए चढ़ानेको अक्षत, फल, आदि द्रव्य लाना चाहिये, उस द्रव्यको श्लोक, छन्द या मन्त्र बोलकर चढ़ावे। यदि अक्षत लाया हो तो कहे—

क्षणक्षण जनम जो धारते, भया बहुत अपमान।
उज्वल अक्षत तुम चरण, पूज लहौं शिव थान॥

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथाय अक्षय गुण प्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा। फिर दोनों हाथ जोड़े तीन आवर्त करे। जहां प्रदक्षिणा बनी हो वहां तीनवार प्रदक्षिणा दें। हरदिशामें तीन आवर्त व शिरोनति करता जावे। हाथ जोड़े हुए रहे, स्तुति पढ़ता रहे फिर सामने खड़ा हो स्तुति पढ़के फिर ९ दफे णमोकार मंत्र पढ़ता हुआ प्रतिमाके स्वरूपका ध्यान करे, आत्मामें मनको जोड़े, फिर दंडवत् करे। फिर गंधोदक या प्रछालका जल अपने मस्तक व नेत्रोंको लगावे तब कहे—

" निर्मलं निर्मलीकरणं, पावनं पापनाशनं।
जिनगन्धोदकं वंदे, कर्माष्टकविनाशकं॥ "
(गृ० अ० ६)

दर्शन आचार (दर्शनाचार)—सम्यग्दर्शनके आठ अंगोंका व्यवहार करना। १. निःशंकित अंग—जैनधर्ममें शंका न करना, न भय करके आत्मप्रतीति न छोड़ना, निर्भय रहना, २. निःकांक्षित अंग—भोगोंकी वांछामें सुखकी श्रद्धा न रखनी, ३. निर्विचिकित्सित अंग—दुःखी दलिद्री आदिपर ग्लानि न करके प्रेम व दया करनी, ४. अमुढदृष्टि अंग—मूर्खतासे देखादेखी कोई धर्मसे विरुद्ध क्रिया न करनी, ५. उपबृंहण या उपगूहन अंग—अपने गुणोंको बढ़ाना। धर्मात्माओंके प्रमाद जनित दोषका प्रकाशन करना, ६. स्थितीकरण अंग—आपको व अन्योंको धर्ममें दृढ़ करते रहना, ७. वात्सल्य अंग—धर्मात्माओंसे गौ वत्सवत् प्रेम रखना, ८. प्रभावना अंग—धर्मका महात्म्य प्रगट करके धर्मको बढ़ाना। (सा० अ० ७–३२)

दर्शन आर्य—(दर्शनार्य) सम्यग्दृष्टी आर्य सज्जन।

दर्शन आराधना—सम्यग्दर्शनका प्रेमसे पालना।

दर्शन क्रिया—आश्रवकी २५ क्रियामेंसे ११ वीं, जिससे रमणीक रूप देखना। (सर्वा० ६–५)

दर्शन क्षायिक—अनंत दर्शन जो दर्शनावरण कर्मके क्षयसे प्रगट हो।

दर्शन चेतना–जिस चेतनामें महासत्ता या सामान्यका प्रतिभास हो। देखो "दर्शन"

दर्शन प्रतिमा–पंचम गुणस्थानवर्ती श्रावककी पहली श्रेणी–इसमें सम्यग्दर्शनको २५ दोष रहित पालें; मद्य, मांस मधु व सात व्यसन (जूआ आदि) व पांच उदम्बर फल अतिचार सहित छोड़े। अहिंसादि पांच अणुव्रतोंका अभ्यास रखखे (गृ. अ. ७)

दर्शन मार्गणा–दर्शनोपयोग सब संसारी जीवोंके पाया जाता है। दर्शनमें संसारी जीवोंको खोजा जायगा तो सब मिल जांयगे। एकेन्द्रियोंके मात्र अचक्षु दर्शन है। द्वेन्द्रियमें पंचेन्द्रिय तक चक्षु व अचक्षु है। अवधि ज्ञानके अवधि दर्शन भी है। केवलज्ञानी अर्हतके एक केवल दर्शन है। (गो० जी० ४८१–४८७)

दर्शन मोह क्षपक–क्षायिक सम्यग्दृष्टी।

दर्शन मोहनीय कर्म–जो आत्माके सम्यक्त या श्रद्धा गुणको बिगाड़े। इसके तीन भेद हैं–१ मिथ्यात्व जिससे बिलकुल सच्चे तत्वोंपर विश्वास न हो। २ मिश्र या सम्यग्मिथ्यात्व–जिससे सत्य व असत्य तत्वपर एक साथ मिश्रित श्रद्धा हो। ३–सम्यक्त प्रकृति जिससे सम्यग्दर्शनमें दोष लगें। निर्मल सम्यक्त न रहे। इसकी स्थिति ७० कोडाकोड़ी सागरकी पड़ती है। इस कर्मका बंध उसे होता है जो अरहंत, सिद्ध, उनकी प्रतिमा, जैन शास्त्र, निर्ग्रंथ गुरु, जैन तप, जिन धर्म, जिन संघ आदिको विपरीत ग्रहण करे व इनकी निन्दा करे अथवा इनको न माने, संसारासक्त हो, विषय विमूढ़ हो, तीव्र कामना वश अन्याद अनर्थ करते हुए शंका न करें। (गो० क० गा० ८०२)

देशनालब्धि–सम्यग्दर्शनके होनेके लिये क्षयोपशम, विशुद्धि, देशना, प्रायोग्य व करणलब्धिकी आवश्यकता है। छः द्रव्य, नव पदार्थके उपदेश कर्ता, आचार्य, व विद्वान व शास्त्रका लाभ हो। और उनके द्वारा पदार्थोंको जानकर उनकी धारणा करे, मनन करे, सच्चे मार्गका अतीव प्रेमी हो। धर्मोपदेशका पिपासु हो। भेद विज्ञानका अभ्यास करे. उसके यह देशनालब्धि होती है। (क.गा. ६)

दर्शन विनय–अत्यन्त प्रतिष्ठापूर्वक व्यवहार व निश्चय सम्यग्दर्शनका सेवन करना।

(सर्वा० अ० ९–२३)

दर्शनविशुद्धि भावना–तीर्थंकर नाम कर्मको बांधनेवाली पहली भावना। सम्यग्दर्शनको २५ दोष रहित पालनेका सदा चिंतवन रखना।

(सर्वा० अ० ६–२४)

दर्शनसार–प्राकृत देवसेन आचार्य कृत सटीक मुद्रित ग्रन्थ बम्बई।

दर्शना–पिशाच व्यंतरोंके इन्द्रकी महत्तरीदेवीका नाम। (त्रि० गा० २७८)

दर्शनावरण कर्म–जो कर्म प्रकृति दर्शन गुणको अर्थात् सामान्य अवलोकनको प्रकाश होनेसे रोके। इसके ९ भेद हैं–(१) चक्षु द०–आंखसे देखनेको रोके, (२) अचक्षु द०–अन्य इंद्रियोंसे रोके, (३) अवधि द०–अवधि दर्शनको रोके, (४) केवल द०–केवल दर्शनको रोके, (५) निद्रा–जिसके उदयसे साधारण नींद आवे, (६) निद्रा निद्रा–जिससे गाढ़ निद्रा हो कठिनतासे जगे, (७) प्रचला–जिससे बैठे २ ऊंघे, (८) प्रचला प्रचला–जिससे बारबार ऊंघे, राल तक बहे, (९) स्त्यानगृद्धि–"स्त्याने स्वप्ने गृद्धति दीप्यते" जिसके उदयसे निद्रामें कोई भयानक काम कर डाले। (सर्वा० अ० ८–९) इसके बंधके कारण ज्ञानावरणके बंधके कारणोंके समान हैं। देखो "ज्ञानावरण कर्मास्रव।"

दर्शनिक श्रावक–देखो "दर्शन प्रतिमा" पहली प्रतिमाधारी।

दर्शनोपयोग–देखो "दर्शन"

दवदान कर्म–जंगल या बगीचे आदिमें घास फूस तृणादि जलानेके लिये अग्नि लगा देना सा कर्म है। (सा० अ० ५० २१–२३)

दशकरण व दश कर्म अवस्था–

(१) बंध–नवीन कर्मवर्गणाका आत्माके प्रदेशोंमें प्रवेश होना। (२) सत्व–अनेक समयोंमें बंधे हुए कर्मोंका विना उदय आये जीवके साथ रहना। उनका अस्तित्व रहना। (३) उदय–कर्मोंका पककर अपने समयपर फल देनेके सन्मुख हो गिर जाना। (४) उदीरणा–अपक वाचन कर्म जिसका अभी उदयका फल नहीं आया है, उस कर्मका शीघ्र उदयमें लाकर खिरा देना। (५) उत्कर्षण–कर्मोंकी स्थिति अनुभागका बढ़ जाना। (६) अपकर्षण–कर्मोंकी स्थिति अनुभागका कम होना। (७) संक्रमण–कर्मकी उत्तर प्रकृतिमें एकका दूसरेमें बदल जाना। (८) उपशम–कर्मोंका उदयमें न लाकर उनको दबाए रखना। (९) निधत्ति–जो सत्ताके कर्म संक्रमण व उदीरणारूप न होसकें। (१०) निकांचित–जो सत्ताके कर्म संक्रमण, उदीरणा, उत्कर्षण व अपकर्षण न होसकें। (ल० ए० ४–१५); (गो० क० गा० ४३६)

दशकरण चूलिका–वह गोम्मटसार कर्म कांडका अध्याय जिसमें १० करणोंका स्वरूप है। (गो० क० गा० ४३७)

दश कल्पवृक्ष–देखो शब्द "कल्पवृक्ष"

दश मैथुन दोष–(१) शृङ्गार, (२) पुष्ट रस सेवन, (३) गीत सुनना, (४) स्त्री संगति, (५) स्त्री वाञ्छा, (६) स्त्री मनोहर अङ्ग देखना, (७) स्त्री दर्शनकी वञ्छा, (८) पूर्व भोग स्मरण, (९) आगामी कामेच्छा, (१०) वीर्यपात करना।

(श्रा० ए० २०६)

दश प्रकार मुनि या यति–(१) आचार्य–मुनि धर्म स्वय पाले व पलावे-संघका गुरु (२) उपाध्याय–शास्त्रोंका पढ़ानेवाला, (३) तपस्वी–महान् उपवास कर्ता व परीसह सहकर तप करनेवाला, (४) शैक्ष–नया दीक्षित शिष्य, (५) ग्लान–रोगी थका मुनि (६) गण–मुनि सम्प्रदायका साधु जैसे सेनगणका, (७) कुल–एक दीक्षादाता गुरुका भाई, (८) संघ–ऋषि, मुनि, यति, अनगारका समूह, (९) साधु–दीर्घकालका दीक्षित, (१०) मनोज्ञ–लोकमान्य प्रसिद्ध। (सर्वा० अ० ९–२४)

दश प्रकार–(दशधा) सम्यक्त, (१) आज्ञा–जो श्रद्धान वीतरागकी आज्ञा सुननेसे हो, (२) मार्ग जो विस्तारसे न सुनकर मोक्षमार्गका श्रद्धान मोह शांतिके लिये होना, (३) उपदेश–महान पुरुषोंके चरित्र सुननेसे हो, (४) सूत्र–जो आचार सूत्रके सुननेसे हो, (५) बीज–गणितादि ज्ञानके कारणोंसे जो पदार्थोंको जानकर हो, (६) संक्षेप–जो बहुत थोड़ा जानकर हो, (७) विस्तार–जो द्वादशांग सुननेसे हो, (८) अर्थ–किसी शास्त्रके वचन व अर्थके निमित्तसे हो, (९) अवगाढ–श्रुतकेवली, समस्त शास्त्रके ज्ञाताओंके हो, (१०) परमावगाढ–केवलज्ञानीके जो प्रत्यक्ष आत्मादि पदार्थ अवलोकनसे हो। (आत्मानु० श्लो० १२–१४)

दश प्राण–जिनसे १ शरीरमें जीव जीता रहे इनहींके घातका नाम प्राणघात है। ५ इंद्रिय, ३ बल, आयु, १ उछ्वास=१० इनके विभाग जीवापेक्षा यह है।

एकेन्द्रियके ४–स्पर्श इंद्रिय, काय बल, आयु, उछ्वास।

द्वेन्द्रियके ६–स्पर्श इंद्रिय, काय बल, आयु, उछ्वास + रसनाइंद्रिय, वचन बल।

तेन्द्रियके ७–घ्राणइंद्रिय विशेष।

चौन्द्रियके ८–चक्षुइंद्रिय विशेष।

पंचेंद्रिय असैनीके ९–कर्ण इंद्रिय विशेष।

पंचेंद्रिय सैनीके १०–मन बल विशेष।

दश बन्ध–देखो "दशकरण"

दश भक्ति–एक संस्कृत पाठ दश भक्तियोंका। इसमें भक्तिये हैं–(१) सिद्ध (२) श्रुत, (३) चारित्र, (४) आचार्य, (५) योग, (६) निर्वाण, (७) तीर्थंकर या अर्हत् भक्ति, (८) शांति भक्ति, (९) समाधि भक्ति आदि। एक ग्रन्थ मुद्रित।

दश भेद भवनवासी देव–१ असुरकुमार, २ नागकुमार, ३ विद्युतकुमार, ४ सुपर्णकुमार, ५ अग्निकुमार, ६ वातकुमार, ७ स्तनितकुमार, ८ उदधिकुमार, ९ दीपकुमार, १० दिक्कुमार।
(सर्वा० अ० ४–१०)

दश मुण्ड या मुण्डन–दश प्रकारको वश करना (१ से ५)

इन्द्रिय मुण्ड–(५) इंद्रियोंको वश रखना, (६) बात मुण्ड–विना प्रयोजन नहीं बोलना, (७) हस्त मुण्ड–हाथकी कुचेष्टा न करनी, (८) पाद मुण्ड–पैरोंको आसनमें जमे रखना, (९) मनो मुण्ड–मनमें अशुभ विचार न करना, (१०) शरीर मुण्ड–शरीरकी कुचेष्टा न करना। (मू.गा. १२१)

दशरथ–श्री रामचन्द्रजीके पिता इक्ष्वाकुवंशी अयोध्याके स्वामी; पण्डित–रात्रि–भोजन कथाका कर्ता; धर्मार्थी पण्डित–धर्म परीक्षाकी तात्पर्य प्रकाशिका वचनिका। (दि.ग्र.नं० ११७–५७–४५)

दश लक्षण धर्म–(१) उत्तम क्षमा–क्रोधका न करना, (२) उत्तम मार्दव–मान न करना, (३) उत्तम आर्जव–कपट न करना, (४) उत्तम शौच–लोभका त्याग, (५) उत्तम सत्य–सत्य धर्मका कथन साधु पुरुषोंको कहना, (६) उत्तम संयम–इंद्रिय दमन व प्राणी रक्षा करना, (७) उत्तम तप–कर्म क्षयके लिये १२ प्रकार तप करना, (८) उत्तम त्याग–योग्य ज्ञानादिका दान करना, (९) उत्तम आकिंचन्य–शरीरादिमें ममता न करना, (१०) उत्तम ब्रह्मचर्य–पूर्ण शील पालना। इनका पूर्ण पालन साधु व कुछ पालन भक्तिके अनुसार श्रावक करते हैं। (सर्वा० अ० ९–६)

दश लक्षण व्रत–भादोंमें सुदी ५ से १४ तक १० दिन उत्कृष्ट १० उपवास करे, मध्यममें छः उपवास ४ पारणे करे। जघन्यमें एकासन १० करे। १० वर्ष तक करके उद्यापन करे या दूना व्रत करे।
(क्रि० क्रि० पृ० १०८)

दश लक्षण या दश लाक्षणी पर्व–भादों सुदी ५ से १४ तक पर्व, जब जैन गृहस्थ पूजा पाठ व्रत उपवासमें समय विताते हैं। दश लक्षण धर्मका भाव समझते हैं। दशाध्याय सूत्र पाठ करते हैं व सूत्रका अर्थ सुनते हैं व पढ़ते हैं।

दशवैकालिक–अंगबाह्यमें सातवां प्रकीर्णक जिसमें काल विकाल क्या करना न करना कथन है
(गो० गा० ३६७–८)

दशांग धूप–जिस धूपको जिन मंदिरोंमें चढाते हैं उसमें नीचे लिखी १० वस्तुएं रहती हैं–(१) अगर, (२) तगर चन्दन, (३) मलयागिरि चन्दन, (४) तज, (५) पत्रज, (६) छारछबीला, (७) पांडरी, (८) खस, (९) नागर मोथा, (१०) गढ़ोवन।

दशाध्यायी सूत्र–श्री उमास्वामीकृत तत्वार्थसूत्र।

दशानन-रावण–आठवां प्रतिनारायण। एक अपूर्व हार वहां रक्खा था, जहां रावणका जन्म हुआ। हारकी ज्योतिमें रावणके दश मुख झलके तब पिताने नाम दशानन रक्खा। रावणने बहुतसी विद्याएँ सिद्ध की थीं। रावण सीतापर आशक्त हो उठाकर लेगया। इसीसे राम लक्ष्मण लंका गए, युद्धमें रावण मारा गया। सीताके शीलकी रक्षा हुई।
(पद्म पु०)

दक्षिणावर्त कुण्ड–संस्कारोंमें जो होम किया जाता है। तीन कुण्ड बनते हैं। अर्द्धचन्द्राकार कुण्डका नाम दक्षिणावर्त है। इसमें सामान्य केवलीके निर्माणकी अग्निकी स्थापना की जाती है।
(गृ० अ० ४)

दातृ-दातार–जो दानका देनेवाला हो। मुनीश्वरादि पात्रोंको दान देनेवालेके भीतर सात गुण होने चाहिये–(१) ऐहिक फलानपेक्षा–लौकिक फलकी इच्छा न करे, (२) क्षान्ति–क्षमाभाव रक्खे, क्रोध न करे, (३) निष्कपटता–दानमें कपट न करे, अशुद्ध पदार्थको शुद्ध न मान ले, (४) अनसूयत्व–अन्य दातारसे ईर्षा न करे, (५) अविषादित्व–शोक या खेद न करे, (६) मुदित्व–

हर्ष मनसे देवे, (७) निरहंकारित्व–अहंकार या मान न करे। (गृ० अ० ८)

दान–अपने और परके उपकारके लिये अपनी वस्तुका देना सो दान है। दान चार प्रकार है–आहार, औषधि, अभय और विद्या। दानके भेद हैं–(१) सर्व दान–या सर्व दत्ति या अन्वयदत्ति। अपना सर्व धन दानमें लगाकर व पुत्रादिको सौंप त्यागी होजाना।

(२) पात्र दान–रत्नत्रय धर्मके धारी पात्रोंको भक्तिसे देना। पात्र तीन प्रकार हैं–उत्तम पात्र मुनि, मध्यम पात्र व्रतधारी श्रावक, जघन्य पात्र अविरत सम्यग्दृष्टी। मुनिको दान देते हुए नौ प्रकार भक्ति करना चाहिये। १ जब मुनिको आते देखे पड़गाहे, अत्र आहार पानी शुद्ध तिष्ठ तिष्ठ तिष्ठ कहे जब वे भीतर जाने लगे आप आगे २ जाकर (२) उच्च आसनपर विराजित करे, (३) पगोंका प्रक्षालन करें एक वर्तनमें, (४) अष्ट द्रव्यसे पूजन करे, (५) तीन प्रदक्षिणा दे, नमस्कार करे, (६) पादप्रक्षालन जल मस्तक व नेत्रोंपर लगावे। (७–९) मन, वचन, काय व भोजनको शुद्ध रक्खे। ये नौ भक्ति करनी उचित है। क्षुल्लक ऐलकको पूजा व प्रदक्षिणा दे नमस्कारकी आवश्यक्ता नहीं है। शेष पात्रोंकी यथायोग्य भक्ति करे। पात्रोंको वही द्रव्य दे जिसके लेनेसे स्वाध्याय ध्यान संयममें विघ्न न आवे।

(३) समदत्ति–समान साधर्मी भाई बहिनोंको धन वस्त्रादिसे सहाय करे, (४) दयादत्ति–दुःखित विभुक्षित मानव पशु सबको दयासे चार तरहका औषधादि दान दे।

दान क्षायिक–दानांतराय कर्मके नाशसे अनंत दानकी प्राप्ति।

दानवीर सेठ माणिकचन्दचरित्र–मुद्रित दि० जैन पुस्तकालय–सूरत।

दानान्तराय कर्म–वह कर्म प्रकृति जिसके उदयसे दान देना चाहे, परन्तु दे न सके। (सर्वा० अ० ८–१३)

दामयष्टि–स्वर्गोंके इन्द्रोंकी वृषभसेनाका प्रधान। (त्रि० गा० ४९६)

दामश्री–भवनवासी इन्द्रोंकी नृत्यकी सेनाकी प्रधान। (त्रि० गा० २८१)

दायक दोष–जिस वस्तिकामें मृत्यु हुई हो, मतवाला व रोगी रहा हो, नपुंसक वसा हो व पिशाच गृहीत हो उसे मुनिको देना दायक दोष है। (म० पृ० ९६)

दार्शनिक श्रावक–दर्शन प्रतिमाधारी देखो "दर्शन प्रतिमा"

दिग्कुमार–भवनवासी देवोंका आठवां भेद, इनमें दो इन्द्र अमितगति व अमितवाहन हैं। इनके मुकटोंमें सिंहका चिह्न है। इनके भवन ७६ लाख हैं। हरएकमें जिन मंदिर है। (त्रि० २१९–२३)

दिग्व्रत–श्रावकका पहला गुणव्रत–लौकिक हेतुसे जन्म भरके लिये १० दिशाओंमें जानेका व व्यापारादि करनेकी मर्यादाका नियम कर लेना। नियमके बाहर वह महाव्रतीके समान है इससे यह व्रत अणुव्रतोंका मूल्य बढ़ा देता है इसलिये गुणव्रत कहते हैं। (सर्वा० अ० ७–२१)

दिगंजलि मंत्र–इस मंत्रको पढ़कर दिशाओंकी शुद्धि होती है। ॐ वं क्ष्वः पः असि आ उ सा अर्हं नमः स्वाहा। (क्रि० म० पृ० १८)

दिगन्तर रक्षित–लौकान्तिक देवोंका अंतरालका एक भेद। (त्रि० गा० ५३८)

दिगम्बर–दिशाएं ही वस्त्र हों, नग्न, वस्त्र रहित।

दिगम्बर–आम्नाय–जैनोंमें वह भेद जो साधुको निर्ग्रंथ वस्त्रादि रहित दिगम्बर मानते हैं व जिनकी प्रतिमाएं वस्त्र चिह्न व अलंकारादि रहित होती हैं।

दि० जैन डाइरेक्टरी–मुद्रित बम्बई।

दिगम्बर प्रतिमा–तीर्थंकर भगवानकी ध्यानमई नग्न मूर्ति–पाषाण, धातु आदिकी बनाई जाती है। अरहंत बिम्बमें आठ प्रातिहार्य छत्रादि होंगे व सिद्ध मूर्तिमें न होंगे। आचार्य, उपाध्याय व साधुकी

व श्रुतस्कंधकी मूर्ति भी कराई जाती है। हरएक मूर्ति जिसकी मूर्ति है उसके गुणोंको झलकानेवाली है। (प्र० सारसंग्रह पृ० ३)

प्रतिमामें कोई वस्त्र व अलंकारका चिह्न नहीं होता है। कायोत्सर्ग खड़े आसन व पद्मासन बैठे आसन प्रतिमाएँ होती हैं। दक्षिणमें अर्द्धपद्मासन व पर्यंकासनकी प्रतिमाएँ प्राचीन मिलती हैं। अकृत्रिम चैत्यालयोंमें जो प्रतिमाएँ होती हैं वे सिंहासन छत्रादियुक्त व उनके रत्नमई नीले केश, वज्रमई दंत, मूँगाके समान होठ नवीन कोयल समान हथेली व पगथली। साक्षात वृषभदेव ही बैठे हैं ऐसी झलकती ५०० धनुष ऊँची होती है। उन प्रतिमाओंके दोनों तरफ ३२ युगल नागकुमारोंके या यक्षोंके चमर लिये ढोरते हैं। इन प्रतिमाओंके पासमें श्रीदेवी, श्रुतदेवी, सर्वाह्न यक्ष सनत्कुमार यक्षके आकार होते हैं। व १०८ संख्याके एक एक आठ प्रकार मंगल द्रव्य रखे होते हैं। झारी, कलश, आरसा, बीजना, ध्वजा, चमर, छत्र, ठोना ये मंगलद्रव्य हैं। (त्रि० गा० ९८९-९८९) प्रतिमामें अंग उपंग ठीक होने चाहिये। प्राचीन प्रतिमा उपंग रहित भी पूज्य है। मस्तक, पग, बाहु, पेट अंग हैं ये होने चाहिये। अंगुली, आदि उपंग हों ये खंडित भी हों तो भी पूज्य हैं। बहुत अतिशय रूप प्रतिमा मस्तक सहित हो व अन्य अंग रहित हो तो भी पूज्य है। (धर्म० सं० पृ० २१४)

दिगम्बर मुद्रा—दिगम्बर पनेको दिखानेवाली मूर्ति या मुनिका वेष।

दिगम्बर मुनि—नग्न, परिग्रह रहित साधु मात्र मोरके पंखकी पीछी व एक काठका कमण्डल रखनेवाले जिससे जीवदया पले व शुद्धि की जावे। २८ मूलगुण पालनेवाले।

दिगम्बरी—दिगम्बर आम्नायको माननेवाले जन।

दिग्वासी—व्यंतर जो मध्य लोकमें हथोंसे दशहजार एक हाथ ऊपर बसते हैं। आयु १० हजार वर्षकी होती है। त्रि० गा० २९२-२९३)

दिग्विजयसिंह—कुंवर क्षत्रि दि० जैन ब्रह्मचारी धर्मोपदेशक विद्यमान हैं, बीधुपुरा (इटावा)वासी।

दिगीन्द्र—लोकपाल सेनापतिके समान इन्द्रकी सभामें रहते हैं। (त्रि० गा० २२३-२२४)

दिग्गज—देव कुरु उत्तर कुरु भोगभूमिमें व पूर्व व पश्चिम भद्रसाल वनमें (सीता-सीतोदा नदीके दोनों तटोंपर) दो दो दिग्गज पर्वत हैं। कुल आठ हैं उनके भाग हैं। पूर्व भद्रसालके पद्मोत्तर व नील, देवकुरुके स्वस्तिक व अंजन, पश्चिम भद्रसालके कुमुद व पलाश, उत्तर कुरुमें अवतंश व रोचन। इनपर इस ही नामके दिग्गजेन्द्र रहते हैं। ये पर्वत १०० योजन ऊँचे नीचे चौड़ाई १०० योजन ऊपर चौड़े पचास योजन है। (त्रि० ६६१-६६२)

दिवा मैथुन त्याग प्रतिमा—छठी रात्रि भुक्ति त्याग प्रतिमाका नाम अर्थात् दिनमें स्वस्त्रीसे मैथुन सम्बन्धी चेष्टाका त्याग। (गृ० अ० १२)

दिव्य तिलक—विजयार्द्धकी उत्तर श्रेणीमें चौतीसवां नगर। (त्रि० गा० ७०५)

दिव्यध्वनि—केवली भगवानके मुखसे प्रगट होनेवाली मेघकी गर्जना समान ध्वनि, (जो एक योजन तक-४ कोसतक सुन पड़ती थी) यह ध्वनि निकलते समय एक प्रकारकी ध्वनियें होती हैं, परन्तु देव, मानव व पशु सबकी भाषारूप होजाती हैं, सब अपनी २ भाषामें सुनते हैं। जैसे बादलोंका पानी एक रूप होता है, परन्तु वृक्षोंके भेदसे अनेक रसरूप होजाता है। यह ध्वनि बिलकुल निरक्षर या अनक्षर नहीं है, किन्तु अक्षरात्मक है। (आ० पर्व० ११-६९-७२) कहीं२ इसको निरक्षरी व अनक्षरी वाणी व कहीं अर्द्ध मागधी भाषा कहा है। इस ध्वनि द्वारा सर्व पदार्थोंका व मोक्षमार्गका ऐसा कथन होता है कि सर्व सभानिवासी अनादिकालसे सीने हुए भ्रम दूर होजाते हैं।

दिशा—ज्योतिषके ८८ ग्रहोंमें ५० वां ग्रह । (त्रि० गा० ३९७)

दीक्षा—जैनधर्मको स्वीकार करना । या गृहस्थका जैन मुनि होना ।

जो गृहस्थ जैन, गृह त्याग कर चुका वह घरसे अलग रहकर नौमी व १० व ११ मी प्रतिमाके व्रत पाले । क्षुल्लक व ऐलकके व्रत पालकर मुनि दीक्षा लेनेके लिये पहले अभ्यास करे । यह गर्भान्वय क्रियामें २२ वीं है । (गृ० अ० १८)

दीक्षान्वय क्रिया—जैन धर्मको स्वीकार करनेवालोंके साथ ये क्रियाएं की जाती हैं, ये सब ४८ हैं । इसमें अजैनको जैन धर्मकी दीक्षा देकर उसे अपने समान योग्यतानुसार गृहस्थ बनाया जाता है । (गृ० अ० ५)

दीक्षित—जिसने जैनधर्म स्वीकारा हो व जिसने मुनिव्रत धारा हो ।

दीपचन्द—कासलीवाल (आमेर निवासी) अच्छे अध्यात्मिक विद्वान—अनुभव प्रकाश वचनका, छंद, अनुभव विलास छंद, आत्मावलोकन छंद, चिद्विलास वचनका, परमात्म पुराण छंद, स्वरूपानंद बृहत् तथा लघु, ज्ञान दर्पण, गुणस्थान भेद, उपदेश रत्न छंद, अध्यात्म पचीसी छंदके कर्ता । (दि० ग्रं० नं० ६२–४६)

दीपचन्द वर्णी—मौजूद हैं । धर्मोपदेश दाता, व धार्मिक पुस्तकाओंके निर्माता ।

दीयमान द्रव्य—किसी कर्मके सत्ता रूप द्रव्यमें जो नए परमाणु मिलाए जावें । (ल० पृ० २६)

दीर्घदन्त—भरत क्षेत्रमें आगामी उत्सर्पिणीमें होनेवाले दूसरे चक्रवर्ती । (त्रि० गा० ८७७)

दुःख—अरति आदि नो कषाय व लाभांतराय, भोगांतराय, उपभोगांतराय, वीर्यान्तराय इन चार अंतरायके उदयके बलसे व दुःखरूप असाता वेदनीय आदि अशुभ प्रकृतियोंके उदयसे होनेवाला इंद्रियोंको खेद व आकुलता । (ल० गा० ६१४)

दुःखमकाल—पांचमा काल अवसर्पिणीका जो २१००० वर्षका है । इस कालकी आदिमें १२० वर्षकी आयु व अंतमें २० वर्षकी आयु साधारणतया होती है । आदिमें ७ हाथके शरीरकी ऊँचाई अंतमें दो हाथकी ऊँचाई । मनुष्य तेजहीन रूखे पांच वर्णके होते हैं । मानव बहुत बार आहार करते हैं । (त्रि० गा० ७०)

दुःखमदुःखम—(अति दुःखम) अवसर्पिणी कालका छठा काल २१००० वर्षका, यहां २० वर्षकी आयु आदिमें व अंतमें १५ वर्षकी आयु । ऊँचाई आदिमें दो हाथ अन्तमें १ हाथ । शरीरका वर्ण काला । मानव अति प्रचुर आहार करते हैं । (त्रि० गा० ७८०)

दुःखमसुखम काल—अवसर्पिणीका चौथा काल जिसमें तीर्थंकरादि होते हैं । कर्मभूमि चलती है । यह ४२००० वर्ष कम एक कोड़ाकोड़ी सागरका होता है । इसमें भरत व ऐरावतमें आदिमें एक कोड़ पूर्व वर्ष व अंतमें १२० वर्षकी आयु होती है । ऊँचाई शरीरकी आदिमें ५०० धनुष फिर अन्तमें ७ हाथ रह जाती है । पांचों वर्णका शरीर होता है । दिनमें एक दफे ही आहार करनेवाले मानव होते हैं (त्रि० गा० ७८०–८९)

दुःप्रयुक्त—अशुभ ।

दुःखा—तीसरे नर्ककी पृथ्वीका पहला इन्द्रक । (त्रि० गा० १६०)

दुःपक्काहार—कच्चा पका खराब पका हुआ भोजन लेना, यह भोगोपभोग परिमाण शिक्षाव्रतका पांचमां अतीचार है (सर्वा० अ० ७–३६)

दुःप्रणिधान—दुष्टरूप व रागरूप व प्रमादरूप वर्तना । मन वचन, कायके द्वारा ये तीन अतीचार सामायिक शिक्षाव्रतके हैं । (सर्वा० अ० ७–३३)

दुःप्रमृष्ट निक्षेपाधिकरण—दुष्टतासे किसी पदार्थको रखना । अजीवाधिकरणका एक भेद । (सर्वा० अ० ६–९)

दुर्गटवी—पर्वतके ऊपर बस्ती । (त्रि.गा.६७६)

दुर्गंध नामकर्म–वह कर्मप्रकृति जिससे शरीरमें दुर्गंध हो। (सर्वा० अ० ८–११)

दुर्गसिंह कवि–कातंत्र व्याकरण वृत्तिके कर्ता। (दि० ग्रं० नं० ४०९)

दुर्भग नामकर्म–जिसके उदयसे परको असुहावना शरीर हो (सर्वा० अ० ८–११)

दुर्मुख–भरतक्षेत्रका वर्तमान कालका सातवां नारद। (त्रि० गा० ८३४)

दुर्विनीत–कर्णाटक जैन कवि। गंगवंशके राजा (सन् ४७८–५१३) इसने किरातार्जुनीय काव्यकी कनडी टीका १ सर्गसे १५ सर्ग तककी रची है। (क० नं० ९)

दुःश्रुति–अनर्थदंड, हिंसा व रागद्वेष हास्य कौतुहल बढ़ानेवाली दुष्ट कथा सुनना पढ़ना व प्रचार करना। (सर्वा० अ० ७–२१)

दुःस्वर नामकर्म–जिसके उदयसे स्वर खराब हो। (सर्वा० अ० ८–११)

दुन्दुभि–ज्योतिषके ८८ ग्रहोंमें सातवां ग्रह। (त्रि० ३६३); अरहंतके आठ प्रातिहार्यमें देवोंके द्वारा बाजोंका बजाना।

दुर्गपुर–विजयार्द्धकी उत्तर श्रेणीमें ९२ वां नगर। (त्रि० गा० ७०७)

दुर्द्धरनगर–विजयार्द्धकी उत्तर श्रेणीमें ९३ वां नगर। (त्रि० गा० ७०७)

दूतकर्मोत्पादिता दोष–जो वस्तिका स धुने अन्य देश, ग्राम, नगरसे गृहस्थियोंके सम्बन्धी पुत्री जमाई आदिके समाचार लाकर प्राप्त की हो। (भ० पृ० ९५)

दूरभव्य–जिनको मोक्ष दीर्घकालमें होगा। (श्रा० पृ० २२)

दूरातिदूर भव्य–जिनके बाहरी कारण सम्यग्दर्शनादिके न मिलनेपर अनंतकालमें भी मोक्ष नहीं होता है। (श्रा० पृ० २१)

दृढचर्या क्रिया–नवीन दीक्षित जैनी जैन शास्त्रोंको पढ़कर दृढ़ताके लिये अन्य शास्त्रोंको भी पढ़े या सुने यह दीक्षान्वय ७ मी क्रिया है। (गृ० अ० ९)

दृढरथ–वर्तमान भरतके आठवें तीर्थंकर शीतलनाथके पिता, वर्तमान भरतके तीसरे तीर्थंकर संभवनाथके पिता। (इ० १ पृ० ८७–११६)

दृढसूर्य–उज्जैनीका एक चोर जिसने रानी धनवतीका हार चुराया। पकड़ा जानेपर शूली चढ़ाया गया तब धनदत्त सेठने णमोकार मंत्रकी जाप बतादी। जपते२ प्राण छोड़कर सौधर्म स्वर्गका इन्द्र हुआ। (आ० क० नं० २३)

दृश्यमान द्रव्य–सत्ता रूप कर्म परमाणुओंमें नवीन मिला हुआ कर्म समूह रूपका जोड़। (क० पृ० २६)

दृष्टांत–जहांपर साध्य साधनका होना व न होना हो। जैसे धूमके लिये रसोई घर व तलाव। रसोई घर अन्वय दृष्टांत है। तालाव व्यतिरेक दृष्टांत है। (जै० सि० पृ० ६४ ६६)

दृष्टिवाद अंग–बारहवां जिनवाणीका अंग जिसमें ३६३ मिथ्यावादका निराकरण है। इसके पांच भेद हैं–परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग, पूर्वगत, चूलिका। (गो० जी० ३६१–३६९)

देयराशि–वह संख्या जो फैलाई हुई (विरलन) संख्यापर रखकर परस्पर गुण की जाय जैसे विरलन राशि चार है व देयराशि २ है तब २×२×२×२=१६

देव–देवगति नामकर्मके उदयसे जो इच्छानुसार 'दीव्यंति क्रीडन्ति' क्रीड़ा करें। (सर्वा.अ.४–१) देवोंके अणिमा महिमा आदि दिव्य शक्तियें होती हैं जिनसे वे अपने शरीरको विक्रिया कर सक्ते हैं। छोटा बड़ा हलकाभारी व अनेक रूप कर सक्ते हैं इसीसे इनका बाहरी शरीर वैक्रियिक कहलाता है। इनका शरीर मनुष्याकार मनोहर सुन्दर होता है। (गो० जी० गा० १५१); इनके शरीरमें धातु मल रोगादि नहीं होते हैं। ये देव एक मासकी आयुके हिसाबसे १५ वें दिन श्वास लेते व एक हजार

वर्ष पीछे मुखकी बाधा पाते तब कंठमें अमृत झड़ जाता है। वे ग्रास रूपसे आहार नहीं करते हैं, वे कभी मांस मदिराका आहार नहीं करते हैं, वे उपपाद शय्यामें जन्मते हैं, अंतर्मुहूर्तमें ही नौयौवन रूप उठते हैं तब अवधिज्ञानसे विचारते हैं कि यह पुण्यका फल है। पहले ही स्नान कर श्री जिनेन्द्र प्रतिमाकी पूजन करते हैं, वे चार प्रकारके हैं–१ भवनवासी। २ व्यंतर–जो पहली पृथ्वीके खर व पंक भागमें व मध्यलोकमें भी यत्र तत्र रहते हैं। ३ ज्योतिषी देव–जो सूर्य चन्द्रादि विमानोंमें रहते हैं। ४ कल्पवासी–जो स्वर्गोंमें रहते हैं। सम्यग्दृष्टी जीव मरकर कल्पवासी ही पैदा होते हैं। मिथ्यादृष्टी जीव ही अन्य तीन तरहके देव पैदा होते हैं। मुनि, श्रावकका व्रत पालनेसे व समतासे कष्ट भोग लेनेपर, दान परोपकारादि करनेपर भगवानका भक्तिपूर्वक पूजन पाठ, ध्यान, सामायिक करनेपर देव आयुका बंध होकर देवगति होजाती है। देवोंकी आयु उत्कृष्ट ३३ सागर जघन्य १० हजार वर्षकी होती है। (त्रि०)

देव आयु–वह कर्म जिसके उदयसे देवगतिमें जाकर बने रहते हैं। (सर्वा० अ० ८–१०)

देव ऋषि–जिन ऋषियोंको आकाशगामिनी ऋद्धि हो। (सा० अ० ७–२०)

देवकी–कंसकी बहन जो वसुदेवजीको विवाही गई, कृष्णकी माता। (ह० पृ० ३२९)

देवकीनंदन–पं०, जैन सिद्धांत शास्त्री। वर्तमानमें कारंजा (बरार) महावीर ब्रह्मचर्याश्रमके मुख्य धर्माध्यापक हैं।

देवकुमार–आरा (विहार) के जमींदार, वर्तमान बा. निर्मलकुमारके पिता जिन्होंने जैनसिद्धांत भवन स्थापित किया व एक ग्राम दान किया व जिनवाणीका उद्धार किया।

देव कुरु–विद्युत्प्रभ गजदंत सौमनस गजदंत पर तीसरा कूट। (ल० गा० ७४०)

देवकुरु भोगभूमि–विदेहक्षेत्र भीतर दक्षिणको सुमेरुके दो सौमनस व विद्युत्प्रभ गजदंत पर्वतोंके मध्य धनुषाकार। यहां उत्तम भोगभूमि सदा रहती है। तीन पल्य आयुधारी युगल मनुष्य पैदा होते हैं। कल्पवृक्षोंसे इच्छित वस्तु लेते हैं। (त्रि.गा.८८२)

देवगति–नामकर्म। जिससे देवपर्याय पावे।
(सर्वा० अ० ८–११)

देवगत्यानुपूर्वी–नामकर्म जिससे देवगतिमें जाते हुए विग्रहगतिमें पूर्व शरीर प्रमाण आत्माका आकार बना रहे। (सर्वा० अ० ८–११)

देवचतुष्क–देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अँगोपांग इन चार कर्मोंका जोड़।
(गो० क० गा० १११)

देवचन्द–ब्रह्मचारी, वर्तमानमें अधिष्ठाता श्री महावीर ब्रह्मचर्याश्रम कारंजा (बरार), धर्मकर्मनिष्ठ।

देवछन्द–अकृत्रिम जिन चैत्यालयोंमें मध्यमें रत्नोंके स्तंभ सहित सुवर्णमई दो योजन चौड़ा आठ योजन लम्बा चार योजन ऊँचा मंडप।
(त्रि० गा० ९८४)

देवजित–पंचास्तिकायके टीकाकार।
(दि. ग्रं. नं. १२२)

देवतिलक–कल्याण मंदिर स्तोत्रके टीकाकार।
(दि० ग्रं० नं० ४१०)

देवदत्त–शिखर महात्म्य, जम्बूस्वामी चरित्र प्राकृत, चारुदत्तचरित्रके कर्ता। (दि. ग्रं. नं. ११९)

देवदर्शन–श्रीजिनेन्द्र भगवानका दर्शन करना। देखो "दर्शनविधि"।

देवद्रव्य–(देव धन) पूजा, चैत्यालय आदिके निमित्त अर्पण किया हुआ द्रव्य। (च. स. नं. ८३)

देवनंदि–आचार्य पूज्यपाद व जिनेन्द्र बुद्धि; जैनेन्द्र व्याकरण, इष्टोपदेश, सर्वार्थसिद्धि, समाधिशतक, पाणिनीका शिक्षा आदिके कर्ता। धुरन्धर योगी, विद्वान। अनेक वैद्यक ग्रंथोंके कर्ता।
(दि० ग्रं० नं० १२०)

देवपाल–भरतके आगामी २३ वे तीर्थंकर ।
(त्रि० गा० ८७६)

देवपुत्र–भरतके आगामी छठे तीर्थंकर ।
(त्रि० गा० ८७३)

देव पूजा–श्री अर्हंत परमात्माकी पूजा जल, चन्दन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप, फल इन द्रव्योंके द्वारा करना । ये द्रव्य भाव करनेमें मात्र निमित्त कारण हैं । इनके आरम्भमें जो दोष होता है उसकी अपेक्षा भाव शुद्धिका फल विशेष है । (स्वयंभू स्तोत्र वासपूज्य) अर्हंत वीतराग हैं उनके प्रसन्न करनेको पूजा नहीं, मात्र अपने भावोंको पवित्र करनेके लिये है ।

देव पूजक–श्री जिनेन्द्रदेवकी पूजा करनेवाला।

देवप्रभ–पांडवपुराण प्राकृतके कर्ता । (दि० ग्र० नं० १२१)

देव भक्ति–श्री जिनेन्द्रदेवके गुणोंमें विशेष अनुराग ।

देव मूढ़ता–वरकी आशासे रागी द्वेषी देवताओंको पूजना । (र० श्लो० २३)

देवमाल–पश्चिम विदेह सीतोदा नदीके उत्तर तटपर चौथा वक्षार पर्वत । (त्रि० गा० ६६९)

देव वन्दना–श्री अर्हंत परमात्माको नमस्कार करना । उनके गुणोंका स्मरण भाव वंदना है । स्तोत्र पढ़ना, नमोस्तु कहना, मस्तक नत होना दण्डवत करना, द्रव्य वंदना है । देवको सर्व अंग नमाकर भूमिमें मस्तक पर जोड़े हाथ लगाकर पग संकोचे हुए नमन करना यही अष्टांग नमस्कार है ।

देव वर–अन्तमें महाद्वीप स्वयंभूरमणसे पीछे तीसरा । (त्रि० गा० ३०६)

देव सुन्दर–भक्तामर स्तोत्र टीकाके कर्ता ।
(दि० ग्रं० नं० ४९१)

देवसेन–(नंदि संघ) वीर सं० ९९० में प्रसिद्ध आचार्य–नयचक्र दर्शनसार, आलाप पद्धति आदिके कर्ता; काष्ठासंघी–प्रतिष्ठा तिलकादिके कर्ता; भट्टारक । चंदनषष्ठी उद्यापनके कर्ता; ब्रह्मचारी, सुलोचना चरित्रके कर्ता; विमल गणधरके शिष्य, तत्त्वा-र्थसार, आराधनासार भावसंग्रह, धर्म संग्रह आदिके कर्ता । (दि० ग्र० नं० १२४–१२६)

देवसेन स्वामी–महाबन्ध सिद्धांत ४० हजारके कर्ता । (दि० ग्र० ४४९)

देव सेवन–देवपूजा, अभिषेक व आठ द्रव्यसे पूजना, स्तुति करना ।

देवांगना–देवी । १६ स्वर्गोंतक देवियां होती हैं आगे नहीं । परन्तु स्वर्गोंकी सब देवियोंके उत्पत्ति स्थान पहले व दूसरे स्वर्गोंमें ही हैं । दक्षिण दिशाके देवोंकी देवी सौधर्ममें व उत्तर दिशाकी देवी ईशानमें उत्पन्न हैं । ऐसी देवांगनाओंके उत्पत्तिके विमान ६ लाख सौधर्ममें व ४ लाख ईशानमें हैं ।
(त्रि० गा० ५२४)

देवारण्य वन–मेरुपर्वतके नीचे भद्रशाल वन है । उसकी पूर्व वा पश्चिमकी वेदीसे आगे वक्षार पर्वत व विभंगा नदी हैं । अन्तमें पूर्व ओर देवारण्य वन है । सीताके दक्षिण तटसे लगाकर देवारण्य वनसे आगे ४ वक्षार पर्वत व तीन विभंगा नदी हैं । इस वनमें जामन, केला, मालती, बेल, आदिके वृक्ष हैं, बावड़ी महल आदि हैं ।
(त्रि० गा० ६६९–७३)

देवी–श्री स्ठ दिव कुमारी ब्रत (इ.२ इ.२९)

देवीदास–[illegible] कर्ता ।
([illegible])

देवीसिंह–[illegible] (दि० १४८९)

[illegible] (दि० [illegible]–[illegible])

देवेन्द्र–[illegible] कर्ता । ([illegible])

देवेन्द्रकीर्ति–भट्टारक [illegible] दि० संवत् १६६१ । [illegible] विधान, [illegible] पूजा आदि पूजाओंके कर्ता । (दि० ग्रं० नं० १४८)

देवेन्द्रप्रसाद–स्व० बाबू, ([illegible]) [illegible] इत्यादि, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] कार्यों के कर्ता थे । (सन् १९१५)

देश–सर्वसे छोटे अविभागी पुद्गलके अंशको परमाणु कहते हैं उसका द्विगुण प्रदेश है, उसका द्विगुण देश हैं, उसका द्विगुण स्कन्ध है। अर्थात् किसी भी स्कन्धमें एक परमाणु अधिक अपने आधे तक स्कन्ध संज्ञा है, फिर आधेसे लगाकर एक परमाणु अधिक चौथाई तक देश संज्ञा है। चौथाईसे लगाकर दो परमाणुके स्कन्ध तक प्रदेश संज्ञा है। (गो० जी० गा० ६४३); बहुत नगर व ग्रामोंका समूह, जैसे कौशल देश।

देश चारित्र–(विकल चारित्र, अणुव्रत)–अप्रत्याख्यानावरण कषायके उपशमसे जो श्रावकके व्रतोंको पालना, पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, चार शिक्षाव्रत व अंतमें समाधिमरण करना। इनको ग्यारह प्रतिमा या श्रेणीरूपसे साधना। पांचवें गुणस्थानका चारित्र, इसको संयतासंयत भी कहते हैं यह संकल्पी हिंसाका त्यागी है, इससे संयत है परंतु आरंभीका त्यागी नहीं है व त्यागका अभ्यासी है, पूर्ण त्यागी नहीं इससे असंयत है।

देशघाति कर्म–जो जीवके स्वाभाविक (अनुजीवी) गुणोंको एक देश घातें। ४७ घातिया कर्मकी प्रकृतियां हैं, उनमेंसे २६ देशघाती हैं, ४ ज्ञानावरण (मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय ज्ञा०) + ३ दर्शनावरण (चक्षु, अचक्षु, अवधि द०) + १४ मोहनीय (४ संज्वलन कषाय + ९ नोकषाय + सम्यग्मिथ्यात्व) + ५ अंतराय दानांतरायादि=२६

देशघाति स्पर्द्धक–वे कर्म वर्गणाओंके पुंज जो आत्माके गुणको पूर्ण न घात सकें।

देश चारित्र–श्रावकका पांचवें गुणस्थानका आचरण।

देशनालब्धि–छः द्रव्य नव पदार्थके उपदेशक आचार्यका लाभ, उपदेशका रुचिसे सुनकर धारण करना विचार करना आत्माको अनात्मासे भिन्न विचारना। इस कार्यकी लब्धि या प्राप्तिसे आयु बिना सात कर्मोंकी स्थिति जो ७० कोड़ाकोड़ी सागर थी सो घटकर मात्र अंतः कोड़ाकोड़ी सागर रह जाती है। (ल० गा० ६–७)

देश प्रत्यक्ष–एक देश प्रत्यक्ष ज्ञान, जैसे अवधि मनः पर्यय ज्ञान।

देश भूषण–कुन्थलगिरि जि० शोलापुरमें मोक्ष प्राप्त होनेवाले केवली जिनके उपसर्गको श्री रामचन्द्रजीने निवारण किया था। सं० ७६१ के आचार्य। (दि० ग्रं० नं० १३०)

देश विरत (संयम) गुणस्थान–पांचवां गुणस्थान जहां श्रावककी ११ प्रतिमाओंका पालन होता है।

देश विरति–तीन गुण व्रतोंमेंसे दूसरा, कालकी मर्यादासे जानेके क्षेत्रका प्रमाण करना।
(सर्वा० अ० ७–२१)

देश संयम–श्रावकका चारित्र, १२ व्रत पालना।

देश संयमी–श्रावकके व्रतोंको पालनेवाला।

देशावकाशिक व्रत–देश व्रत या देश विरति–कालकी मर्यादासे क्षेत्रका जो प्रमाण दिग्विरतिमें किया था, उसमेंसे प्रयोजन भूत थोड़ासा रख लेना। जैसे आज मैं अपने घरसे बाहर न जाऊँगा। इसके पांच अतिचार बचाने चाहिये। १ आनयन–मर्यादित क्षेत्रके बाहरसे कुछ मंगाना, २ प्रेष्य-प्रयोग–उसके बाहर भेजना, ३ शब्दानुपात–उसके बाहरवालेसे बात कर लेना, ४ रूपानुपात–इशारेसे मतलब बता देना, ५ पुद्गलक्षेप–कंकड़ या पत्र आदि डालकर समझा देना।
(सर्वा० अ० ७–३१)

देशावधि–अवधिज्ञान जो द्रव्य क्षेत्र काल भावकी मर्यादासे रूपी पुद्गल व संसारी जीवोंको जानता है। तीन तरहका होता है-देशावधि, परमावधि, सर्वावधि। अंतके दो उसी शरीरसे मोक्ष जानेवालेके होते हैं। देशावधि भवप्रत्यय व गुणप्रत्यय दो प्रकार, शेष दो गुणप्रत्यय ही हैं। जो जन्म होते ही हो वह भवप्रत्यय देवनारकी व गृहस्थ तीर्थंकरोंको होती है। जो सम्यग्दर्शनादि गुणोंसे होती है वह गुणप्रत्यय है। देशावधिका जघन्य भेद

संयमी या असंयमी मनुष्य तिर्यंचमें होता है उत्कृष्ट भेद संयमी मनुष्योंमें होता है। देशावधिके छः भेद हैं। अनुगामी—जो अन्य क्षेत्र या भवमें जाते साथ रहे। अननुगामी—जो साथ न रहे, हीयमान—जो घटता जावे, वर्द्धमान—जो बढ़ती जावे, अवस्थित—जो स्थिर रहे, अनवस्थित—जो स्थिर न रहे। देशावधि छूट भी जाती है। देखो "अवधिज्ञान।" (गो० जी० गा० ३७०...)

देह—शरीर, पिशाच व्यंतरोंका ग्यारहवां भेद। (त्रि० गा० २७१)

देह अवगाहना—जीव जितने प्रमाणके शरीरको धारे वही जीवकी देह अवगाहना है। देहका प्रमाण सबसे छोटा या जघन्य सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक जीवका होता है। जो ऋजुगतिसे विना मोड़ा लिये हुए पैदा हो उसके तीसरे समयमें। पहले समयमें तो लम्बा बहुत चौड़ा थोड़ा होता है दूसरे समयमें चौकोर होजाता है। तीसरे समयमें गोल होजाता है। यही सबसे कम शरीरकी अवगाहना है। उत्कृष्ट अवगाहना स्वयंभू रमण अन्तका समुद्रवर्ती महामत्स्यके होती है। इन्द्रियोंकी अपेक्षा—एकेन्द्रियोंमें वह कमल जो स्वयंभू रमण द्वीपके मध्य स्वयंप्रभ पर्वतके दूसरे कर्मभूमि वाले भागमें पैदा होता है। सबसे बड़ी अवगाहना रखता है। वह कुछ अधिक हजार योजन लम्बा १ योजन चौड़ा होता है (चार कोपका योजन) द्वेन्द्रियोंमें स्वयंभू रमण समुद्रमें शंख बारह योजन लम्बा व ५ यो० चौड़ा व ४ योजन मुख व्यास सहित होता है, तेन्द्रियोंमें स्वयंभू रमण द्वीपके कर्मभूमि वाले भागमें बिच्छू ¾ योजन लम्बा, ⅜ चौड़ा व ³⁄₁₆ ऊंचा होता है चौन्द्रियोंमें उसी द्वीपके कर्मभूमिमें भ्रमर होता है, जो १ योजन लम्बा ¾ योजन चौड़ा, ½ योजन ऊँचा होता है। पंचेन्द्रियों स्वयंभू रमण समुद्रमें महामच्छ १००० योजन लम्बा, ५०० योजन चौड़ा व २५० योजन ऊँचा होता है। मध्यके अनेक भेद हैं (गो० जी० गा० ९४)

देहली शास्त्रार्थ आर्य समाज—मुद्रित, कलकत्ता।

देव कुरुवक—जो देवकुरु भोगभूमिके निवासी।

दैवत—गंधर्व जातिके व्यन्तरोंका दशवां प्रकार। (त्रि० गा० २६९)

दैववाद—एकांतमत जो मात्र दैव या भाग्यहीको मानते हैं। पुरुषार्थको निरर्थक समझते हैं। दैवहीसे सर्व सिद्धि मानते हैं (गो. क. गा. ८९१)

दौलतराम काशलीवाल—पं० बसवा (जैपुर) निवासी। पद्मपुराण, आदिपुराण, हरिवंशपुराण, परमात्म प्रकाश, पुण्याश्रवकी व टोडरमलकृत अधूरी पुरुषार्थ०की वचनिका कर्ता। व क्रियाकोश छन्द, अध्यात्म बारहखड़ी छन्द आदिके कर्ता। (सं० १७७७-१८२९ आदि); (दि० ग्रं० नं० ६२-४६)

दौलतराम पल्लीवाल—शासनी (अलीगढ़)वासी छःढाला व पदसंग्रहके कर्ता। (दि.ग्रं.नं. ६४-४६)

दंशमशक परीषह—डांस, मच्छर आदि जानवर मुनिको सतावें तो उस समय शांतभावसे सहना। (सर्वा० अ० ९-९)

द्यानतराय—पं० (सं० १७८८) चर्चाशतक छन्द, द्रव्य संग्रह छन्द, द्यानत विलासके कर्ता। अध्यात्मरसिक विद्वान। (दि. ग्रं. नं. ६९-४६)

द्यानत विलास—आगरा निवासी द्यानतरायकृत मुद्रित, बम्बई।

द्युति—ज्योतिषी देवोंके प्रत्येन्द्र सूर्यकी पहली पट्ट देवी। (त्रि० गा० ४४७)

द्यूत क्रीड़ा—हारजीत करते हुए चौपड़, ताश, गंजीफा आदि रमना, यह सात व्यसनोंमें पहिला व्यसन है।

द्यूत क्रीड़ा त्याग—द्यूत रमन या जुआ खेलना जो इन्द्रिय [illegible] [illegible] रुपया पैसा आदि वस्तु [illegible] खेलनेका त्यागी होता है। दर्शन प्रतिमा वाला इसका अतिचार भी त्यागता है अर्थात् मन बहलानेके लिये भी वह वस्तुकी शर्त लगाकर ताश आदि न खेलेगा। (श्रा. क. ३-१९)

द्रव्य—गुणोंका समूह, अखंड एक पदार्थ जिसमें

गुण सदा पाए जावें व जिसमें पर्याय निरंतर क्रमसे होती रहें । सत् इसका लक्षण है—जो सदा ही रहे । सतमें समय २ तीन स्वभाव पाए जाते हैं—उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य । द्रव्य, गुणशील व परिणमनशील होता है । वह कूटस्थ नित्य नहीं रहता है । शुद्ध द्रव्योंमें स्वभाव सदृश परिणमन होता है । अशुद्ध द्रव्योंमें विभाव परिणमन होता है । परिणमन या तबदीली एकसी व भिन्नसी हर द्रव्यमें हर समय होती है । इसलिये नई पर्याय या अवस्थाका जब उत्पाद या जन्म होता है तब ही पुरानी पर्यायका नाश या व्यवहार होता है तथापि जिसमें यह पर्याय बदली वह सदा ध्रौव्य या नित्य रहती है । जिस समय गेहूँका आटा पीसा गया । गेहूँकी दशा नाश हुई आटेकी दशा बनी तथापि जो कुछ वह असल वस्तु है सो मौजूद है । गुण सहभावी होते हैं उनकी अपेक्षा ध्रौव्यपना है । पर्याय क्रमवर्ती होती हैं, उनकी अपेक्षा उत्पाद व्ययपना है । द्रव्यका लक्षण गुण पर्यायवान भी है । यह लोक सत् रूप छः द्रव्योंका समुदाय है । ये छः द्रव्य नित्य हैं तथापि परिणमन या पर्याय बदलनेकी अपेक्षा अनित्य हैं । इसलिये यह लोक भी नित्य अनित्य है । वे द्रव्य छः हैं—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल । जीव चेतना लक्षणधारी अनंतानंत भिन्न२ सत्ताको रखनेवाले हैं । पुद्गल—स्पर्श, रस, गंध, वर्णमय—परमाणु व स्कंध रूपसे अनन्तानन्त हैं । ये दो द्रव्य प्रत्यक्ष प्रगट हैं । हमारा शरीर पुद्गल है, आत्मा जीव चेतन है । इन दोनोंके चलनेमें प्रेरक बिना उदासीन सहकारी अमूर्तीक तीन लोक व्यापी धर्म द्रव्य व ठहरनेमें प्रेरक विना उदासीन सहकारी अमूर्तिक तीन लोक व्यापी अधर्म द्रव्य है । सबसे बड़ा अनंत एक सबको स्थान देनेवाला आकाश है । सब द्रव्योंके बदलनेमें निमित्त कारण काल द्रव्य है । छः द्रव्योंमें संसारी जीव व पुद्गल क्रिया करनेवाले हैं । शेष चार थिर हैं । (सर्वा० अ० ५)

द्रव्य आस्रव—जीवके योगोंके निमित्तसे कर्म वर्गणाओंका बन्धके सन्मुख होना अर्थात् आकर्षित होकर निकट आना । (द्रव्य संग्रह)

द्रव्येन्द्रिय—प्रगट दीखनेवाली इंद्रिय, जिनके द्वारा मतिज्ञान होता है वे पांच हैं-स्पर्शन (सर्व शरीर), रसना, नाक, आंख, कान इनके दो भेद हैं ।

१ निर्वृत्ति—रचना—इंद्रियोंकी बनावट । आत्माके प्रदेशोंका इंद्रियके आकार होना अभ्यंतर निवृत्ति है, पुद्गलके परमाणुओंका इंद्रियके आकार होना बाह्य निवृत्ति है जैसे आंखकी पुतली । २ उपकरण—जो इंद्रियकी रक्षा करे—इंद्रियके आसपासका अंग अभ्यंतर उपकरण है । बाहरी अंग बाह्य उपकरण है । जैसे आंखकी पुतलीके इधर उधर सफेद काला मंडल । भीतरी व पलक आदि बाहरी उपकरण हैं । (सर्वा० अ० २-१७) स्पर्शन इंद्रियका आकार शरीर प्रमाण अनेक प्रकारका है । जिह्वाका आकार खुरपाके समान, नाकका कदंबके फूल समान, आंखका मसूरकी दालके समान, कानका जौकी नालीके समान है ।

(गो० जी० गा० १७१)

द्रव्य कर्म—आत्माके साथ बंधको प्राप्त ज्ञानावरणादि पुद्गल कर्मका खण्ड । (गो.क.गा. ६)

द्रव्य गुण—द्रव्यके गुण दो तरहके हैं । सामान्य जो छहों द्रव्योंमें पाए जावे । विशेष जो हरएकमें पाए जावें । सामान्य गुण प्रसिद्ध छः हैं—(१) अस्तित्व—जिससे द्रव्य सदा है, (२) वस्तुत्व—जिससे द्रव्यसे कुछ काम निकले, (३) द्रव्यत्व—जिससे द्रव्यमें पर्याय पलटे, (४) प्रमेयत्व—जिससे द्रव्य किसीके ज्ञानका विषय हो, (५) अगुरुलघुत्व—जिससे द्रव्य अपनी मर्यादामें रहे अपने द्रव्य रूप न हो न अपने गुणोंको कम व अधिक करे, प्रदेशत्व—जिससे द्रव्यका कुछ आकार अवश्य हो । विशेष गुण जीवमें ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य, सम्यक्त्व, चारित्रादि हैं ।

पुद्गलमें स्पर्श, रस, गंध, वर्ण हैं, धर्ममें गति हेतुपना, अधर्ममें स्थिति हेतुपना, आकाशमें अवगाह हेतुपना, कालमें परिणमन हेतुपना । (आलापपद्धति ।)

द्रव्यत्व गुण–जिससे द्रव्यमें पर्याय पलटती रहे।

द्रव्य निक्षेप–जो द्रव्य आगामी परिणामकी योग्यता रखता हो व जिसकी भूतमें पर्याय होचुकी हो उसको वर्तमानमें उस रूप कहना जैसे राजा होनेवाले राजपुत्रको राजा कहना व राजच्युत राजाको राजा कहना । (सर्वा० अ० १–५)

द्रव्य निर्जरा–कर्मोंका समयपर फल देकर या विना समय तप आदिके द्वारा झड़ जाना ।

द्रव्य परिवर्तन–देखो शब्द " अर्द्ध पुद्गल परिवर्तन " ।

द्रव्य प्राण–जिनसे स्थूल शरीरमें जीता रह सके । वे मुख्य चार हैं–इन्द्रिय, बल, आयु, श्वासोछ्वास । देखो शब्द "जीव" ।

द्रव्य बंध–योग और कषायोंके निमित्तसे कर्म वर्गणाओंका आकार आत्माके प्रदेशोंके साथ एक क्षेत्रावगाहरूप हो जाना । एक दूसरेमें मिल जाना ।

द्रव्य भाव–द्रव्यका स्वरूप ।

द्रव्य मन–अँगोपांग नामकर्मके उदयसे हृदयस्थानके मध्यमें फूले हुए आठ पांखडीके कमलके आकार मनोवर्गणाओंसे बननेवाला । इसके द्वारा भाव मन उपयोग रूप काम करता है । जिनके यह द्रव्य मन होता है वे सैनी पंचेन्द्रिय हैं । (गो० जी० गा० २२९) इसे नोइंद्रिय इसलिये कहते हैं कि यह कुछ ईषत इंद्रिय है । मगर यह अन्य इंद्रियोंके समान देखनेमें नहीं आता है ।

(गो० जी० गा० ४४५)

द्रव्य मोक्ष–सम्पूर्ण आठ कर्मोंसे, शरीरादिसे छूटकर शुद्ध रूप आत्माको अपने स्वभावमें होजाना जहां न तो कर्मबंधके कारण रहते हैं और न पिछले कर्म ही रहते हैं । (सर्वा० अ० १०–१) जैसे सोनेका पककर व शुद्ध होकर कुन्दन बन जाना ।

द्रव्य योग–शरीर नामकर्मके उदयसे मन, या वचन या कायकी क्रियाके होते हुए जीवके प्रदेशोंका चंचल होना या सकम्प होना । इस द्रव्य योगके होते हुए आत्मामें जो कर्म व नो कर्मकी पुद्गलोंको खींचकर कर्म व नो कर्मरूप करनेकी शक्ति सो भावयोग है । (गो० जी० गा० २१६)

द्रव्य लिंग–बाहरी भेष–साधुका बाहरी चिह्न वस्त्रादि परिग्रह रहित नग्न दिगम्बर है । मात्र मोरपिच्छिका व काष्ठका कमण्डल साथ होता है । ऐलकका चिह्न लँगोट मात्र है । क्षुल्लकका एक लंगोट व एक खण्ड वस्त्र है । आर्यिकाका एक सफेद साड़ी है ।

द्रव्य लिंगी–जिनके भेष तो हो परन्तु भेषके अनुकूल भाव न हों । जैसे मुनि भेष हो परन्तु मिथ्यादृष्टी गुणस्थान हो, या छठे व सातवेंसे नीचा गुणस्थान हो । अभव्य जीव मुनि होजाता है वह मिथ्यात्वी आत्मज्ञान रहित द्रव्यलिंगी मुनि कहलाता है । यद्यपि वह बाहरसे मुनिका आचरण यथार्थ पालता है भीतर सम्यक्त रहित है । बाहरी आचरण यथार्थ पालनेवाला अंतरंग आत्मानुभव विना भी द्रव्यलिंगी है ।

द्रव्य लेश्या–वर्ण नामकर्मके उदयसे मात्र शरीरका वर्ण । मूल भेद छः हैं–कृष्ण, नील, कापोत (कबूतरके समान), पीत, पद्म, शुक्ल । नेत्र इन्द्रियकी अपेक्षा संख्यात भेद । स्कंधकी अपेक्षा असंख्यात भेद व परमाणुकी अपेक्षा अनंत भेद हैं ।

नारकी जीवोंका शरीर कृष्ण ही होता है । स्वर्गवासी देवोंका शरीर भाव लेश्याके समान है जहां पीत भाव लेश्या है वहां पीत शरीर है जहां शुक्लभाव लेश्या है, वहां शुक्ल शरीर है । भवनवासी व्यन्तर ज्योतिषी देवोंके शरीर, मनुष्योंके शरीर, तिर्यंचोंके शरीर व विक्रिया करके बने हुए देहोंके शरीर छहों वर्णोंके होते हैं । तथा भोग-

भूमिवालोंके सूर्यसम मध्यम भोग भूमिवालोंके चंद्र सम जघन्य भोग भूमिवालोंके हरे वर्णके होते हैं। बादर पवन कायिकोंका वर्ण शुक्ल, तेज कायिकोंका पीत, घनोदधि वातका गोमूत्र सम, घनवातका मूङ्गसम, तनु वातका अव्यक्त वर्ण है। सूक्ष्म एकें-द्रियोंका शरीर, कापोत वर्ण है। विग्रह गतिमें रहनेवाले सब जीव शुक्ल वर्ण हैं। सर्व जीव अपनी अपर्याप्त अवस्थामें शरीर पर्याप्ति पूर्ण होने तक कापोत वर्ण हैं। (गो. जी. गा. ४९५-४९८)

द्रव्य लोकोत्तर मान–जघन्य एक परमाणु उत्कृष्ट सर्व द्रव्य समूह। यह द्रव्यद्वारा माप है। (त्रि० गा० ९११)

द्रव्य वेद–निर्माण व अंगोपांग नाम कर्मोंके उदयसे शरीरमें पुरुष स्त्री व नपुंसकके चिन्ह बनना। पुरुषके मुख्य द्रव्य निवेद या द्रव्यलिंग मूछ, डाढी, लिंगादि हैं। स्त्रीके रोम रहित मुख, स्तन, योनि आदि है। जिसके पुरुष व स्त्री दोनोंके चिन्ह नहीं होते वह नपुंसक लिंग हैं। यह द्रव्य वेद शरीरका चिन्ह एकसा जन्मपर्यंत रहता है। देवोंके जैसा द्रव्य वेद है वैसा ही भाव वेद है। दो ही वेद हैं। स्त्री व पुरुष। नारकियोंमें भी द्रव्य व भाव दोनों नपुंसक हैं। भोगभूमिके मानव व तिर्यंचमें भी स्त्रियों व पुरुषोंके जैसा द्रव्य वेद वैसा भाव वेद है। कर्मभूमिके मनुष्य तिर्यंचोंके द्रव्य वेदके समान ही भाव वेद नहीं होता है। द्रव्य पुरुष व स्त्री व नपुंसक हरएकके तीनों ही भाव वेद यथासंभव होते हैं। (गो० जी० गा० २७१)

द्रव्यश्रुत–अक्षररूप जिनवाणी।

द्रव्य सम्यग्दृष्टी–जो भद्र जीव जैन धर्मसे सहानुभूति रखता है व अपने कल्याणका इच्छुक है अर्थात् जिसके आगामी सम्यक्त होनेकी योग्यता है। (सा० अ० १-९)

द्रव्य संवर–द्रव्य आस्रवको रोक देना, आनेवाली कर्मवर्गणाओंको न आने देना। (सर्वा. अ. ९-१)

द्रव्यार्थिकनय–जो दृष्टि या अपेक्षा द्रव्यको या सामान्यको ग्रहण करे। द्रव्यकी तरफ लक्ष्य दे। पर्याय व गुण पर लक्ष्य न दे। जैसे मात्र आत्मद्रव्यको ग्रहण करना कि आत्मा है। (जि. सि. प्र. नं० ९०)

द्रव्यानुयोग–जिनवाणीमें चार अनुयोग या विभाग हैं–प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग। जिन शास्त्रोंमें मुख्यतासे जीवादि छः द्रव्य सात तत्व आदिका कथन हो वे द्रव्यानुयोग हैं।

द्रहवती–सीता नदीके उत्तर तटपर दूसरी विभंगा नदी। (त्रि० गा० ६६७)

द्रुमसेन–श्री महावीरस्वामीके मोक्ष जानेके पीछे यहां (६२ + १०० + १८३) ३४५ वर्ष बाद २२० वर्षके भीतर पांच आचार्य ११ अंगके ज्ञाता हुए उनमेंसे चौथे। (श्रु० पृ० १२)

द्रोण–नदी और पर्वतसे वेष्ठित वसती। (त्रि० गा० ६७६)

द्रोणागिरि–सागरसे स्टेशन जाना होता है, सागरसे पन्ना जानेवाली सड़कसे मुडकर ९ मील सड़वा गांव है वहांसे ८ मील सेंधपा है, यहीं पर्वत है। यहांसे श्री गुरुदत्तादि मुनि मोक्ष गए हैं। पर्वत १००० फुट ऊँचा है। (या. द. पृ. ७६)

द्रौपदी–अर्जुनकी पतिव्रता स्त्री काकंदीके राजा द्रुपदकी पुत्री। अर्जुनने राधावेध करके विवाहा था। बाईस खम्भोंमें एक एक चक्र हो, एक एकमें एक एक हजार आरे हों उनमें एक एक छेद हो, चक्र सब उल्टे घूमते हों बाणसे उस छिद्रमें वेध देना। (सा० क० नं० १००)

द्वात्रिंशतिका–सामायिक पाठ सं० अमितिगतिकृत मुद्रित सूरत।

द्वादश अंग–देखो "अंगप्रविष्ट श्रुतज्ञान"। (प्र० जि० पृ० ११९)

द्वात्रिंशति अंतराय–देखो शब्द "अंतराय"।

द्वादश अनुप्रेक्षा–बारह भावनाएं जिनके विचारनेसे वैराग्य पैदा होता है। (१) अनित्य–संसारकी सर्व अवस्थाएँ देह आदि क्षणभंगुर हैं। (२) अशरण–मरण व तीव्र कर्मोंके उदयसे कोई

बचानेवाला नहीं है। (३) संसार–नरक, पशु, मानव, देव चारों ही गति आकुलता रूप दुःखमय है। (४) एकत्व–जीव अकेला ही है। अकेला जन्मता मरता है, दुःख सुख भोगता है। (५) अन्यत्व–अपने जीवसे शरीर आदि कुटुम्बादि सब भिन्न हैं। (६) अशुचि–यह शरीर मल मूत्रका घर अपवित्र है। (७) आस्रव–अपने ही शुभ या अशुभ मन वचन कायकी प्रवृत्तिसे कर्म आते हैं। व बंधते हैं। (८) संवर–अपने ही मन, वचन, कायको रोकनेसे व धर्ममें चलानेसे कर्मबंध रुकता है। (९) निर्जरा–तपस्या व आत्मध्यान करनेसे कर्म समयके पहले झड़ने लगते हैं। (१०) लोक–यह लोक अनादि अनंत अकृत्रिम जीवादि छः द्रव्य समूह रूप नित्य व अनित्य है। (११) बोधिदुर्लभ–रत्नत्रय धर्मका मिलना बड़ा कठिन है। (१२) धर्म–जिनेन्द्रका कहा हुआ धर्म ही यथार्थ हितकर है। प्राकृत ग्रंथ कुन्दकुन्दाचार्यकृत मुद्रित, मराठी टीका सोलापुर। (सर्वा० अ० ९–८)

द्वादश अनुयोग–सिद्धोंका स्वरूप बारह प्रकारसे विचारना चाहिये। (१) क्षेत्रसे–ढाई द्वीपसे ही सिद्ध होते हैं। (२) काल–चौथे काल दुखमा सुखमामें या कभी तीसरेके अंतमें व पंचमके प्रारम्भमें सिद्ध होते हैं, पंचमका जन्मा सिद्ध नहीं होता है। (३) गति–मनुष्य गतिसे ही सिद्ध होते हैं। लिंग–मुनि लिंग व पुल्लिंगसे ही सिद्ध होते हैं। (५) तीर्थ–कोई तीर्थंकर होकर कोई सामान्य केवली सिद्ध होते हैं। (६) चारित्र–कोई एक सामायिक चारित्रसे ही यथाख्यात चारित्र, कोई सामायिक छेदोपस्थापना, कोई परिहार विशुद्धि भी पाकर यथाख्यात चारित्री हो सिद्ध होते हैं। (७) प्रत्येक बुद्ध बोधित–कोई परके उपदेश विना स्वयं बोध पाकर, कोई परके उपदेशसे बोध पाकर सिद्ध होते हैं। (८) ज्ञान–कोई मति श्रुत दो ही ज्ञानसे केवलज्ञानी होते हैं, कोई अवधि सहित तीनसे कोई मनःपर्ययको भी ले चार ज्ञानसहित हो केवली हो सिद्ध होते हैं, (९) अवगाहना–कोई बड़ा पांचसौ धनुषके शरीरसे कोई कमसेकम ३॥ हाथ देहसे सिद्ध होते हैं, (१०) अन्तर–जघन्य एक समय कोई सिद्ध न हो उत्कृष्ट छः मास तक कोई न हो, (११) संख्या–जघन्य एक समयमें एक व उत्कृष्ट एकसौ आठ सिद्ध होते हैं, (१२) अल्प बहुत्व–क्षेत्रसे सिद्ध होनेवाले अधिक हैं समुद्रसे होनेवाले कम हैं। (सर्वा० अ० १०–९)

द्वादश अव्रत–पांच इंद्रिय व मनको वश न रखना, पृथ्वी आदि छः कायकी दया न पालना।

द्वादश चक्रवर्ती–वर्तमान कालमें जो भरतक्षेत्रमें होचुके वे हैं–१ भरत, २ सगर, ३ मघवा, ४ सनत्कुमार, ५ शांति तीर्थंकर, ६ कुन्थु तीर्थंकर, ७ अर तीर्थंकर, ८ सुभौम, ९ महापद्म, १० हरिषेण, ११ जय, १२ ब्रह्मदत्त (त्रि० गा० ८१५); ये भरतक्षेत्रके छः खण्डके स्वामी होते हैं। देखो "चक्रवर्ती"

द्वादश तप–देखो "तप"

द्वादश प्रसिद्ध पुरुष–भरतके गत चौथे कालमें १२ महापुरुष बहुत प्रसिद्ध हुए—

(१) तीर्थंकरोंमें–२३ वें श्री पार्श्वनाथ।

(२) बलभद्रोंमें–८ वें श्री रामचन्द्र।

(३) कामदेवोंमें–१८ वें श्री हनुमान।

(४) मानी पुरुषोंमें–८ वां प्रतिनारायण रावण।

(५) दानियोंमें–आदिनाथको दान देनेवाला राजा श्रेयांस।

(६) तपस्वियोंमें–आदिनाथ पुत्र बाहुबलि।

(७) भाववानोंमें–भरत चक्रवर्ती पहला।

(८) रुद्रोंमें–११ वां रुद्र महादेव या सत्यकीसुत।

(९) नारायणोंमें–९ वां नारायण श्रीकृष्ण।

(१०) कुलकरोंमें–१४ वें नाभि राजा।

(११) बलवानोंमें–[illegible] भीम।

(१२) शीलवती स्त्रियोंमें–सीता। (इ. ई. ६९)

द्वादश व्रत–श्रावक गृहस्थके पालने योग्य १२ व्रत या प्रतिज्ञाएं ।

पांच अणुव्रत–(१) अहिंसा–संकल्पी त्याग, आरम्भी नहीं, (२) सत्य–स्थूल झूठ त्याग, (३) अस्तेय–स्थूल चोरी त्याग, (४) ब्रह्मचर्य–स्व स्त्री संतोष, (५) परिग्रह–क्षेत्र मकानादिका जायदादका जन्मभरके लिये प्रमाण ।

तीन अणुव्रत–अणुव्रतोंका मूल्य बढ़ाने वाले (१) दिग्विरति–संसारीक प्रयोजनसे १० दिशाओंमें जन्मपर्यंत जानेकी मर्यादा, (२) देशविरति–उसीमें घटाकर नित्य १० दिशाकी मर्यादा रखनी, (३) अनर्थदंड विरति–नियत क्षेत्रमें भी अनर्थ पाप नहीं करना ।

चार शिक्षाव्रत–मुनि धर्मकी शिक्षा देनेवाले (१) सामायिक–तीन, दो व एक संध्याको धर्मध्यान करना, (२) प्रोपधोपवास–प्रति अष्टमी, चौदसको उपवास या एकाशन, (३) भोगोपभोग-परिमाण–पांचों इंद्रियोंके भोगोंका नियम नित्य करना, (४) अतिथि संविभाग–दान देके भोजन करना । (सर्वा॰ अ॰ ७)

द्वादश संयम–द्वादश अव्रतको त्यागकर पांच इंद्रिय व मनको वश रखना व पृथ्वी आदि छः कायकी दया पालनी ।

द्वारापेक्षण–गृहस्थ दान देनेके लिये जब घरमें रसोई होजाय द्वारपर शुद्ध वस्त्र पहन प्राशुक जलसे भरा व ढका हुआ लोटा लेकर पात्रकी राह देखते हुए खड़ा रहता है ।

द्वाविंशति अभक्ष्य–२२ अभक्ष्य जैनियोंमें प्रसिद्ध हैं–(१) ओला–जो गिरता है, (२) घोरवड़ा–उड़द या मूंगकी दालके वड़े दही या छाछमें डाल कर खाना, (३) रात्रिका–भोजन, (४) बहुबीजा–जिन फलोंमें बीजोंके घर न हों, अलग २ हों जैसे अरण्डकाकड़ी, (५) बैंगन–उन्मादकारक, (६) संधान–अचार आठ पहर २४ घंटेसे अधिकका न खाना, (७) वड–फल, (८) पीपल–फल, (९) गूलर, (१०) पाकर–फल, (११) अंजीर–या कट्टूमर, (१२) अजानफल–विना जाना हुआ फल, (१३) कन्दमूल–आलू घुइयां आदि, (१४) मिट्टी–खेतादि, (१५) विष, (१६) मांस, (१७) मधु, (१८) मक्खन, (१९) मदिरा, (२०) अतितुच्छ फल, (२१) तुषार–पाला या जमाई हुई बर्फ, (२२) चलित रस–जो भोजन व फल अपने स्वादसे बेस्वाद होजावे । (क्रि. क्रि. पृ. ५)

द्वाविंशति परीषह–साधु २२ परीषहको शांतभावसे व वीरतासे सहते हैं । (१) क्षुधा, (२) तृषा, (३) शीत, (४) उष्ण, (५) दंशमशक, (६) नग्नता, (७) अरति, (८) स्त्री, (९) चर्या, (१०) निषद्या (बैठनेकी), (११) शय्या, (१२) आक्रोश–दुर्वचन सुननेकी, (१३) वध, (१४) याचना–भिक्षा मांगनेकी, (१५) अलाभ–अंतराय पड़ जानेकी, (१६) रोग, (१७) तृण स्पर्श, (१८) मल–शरीर मैला होनेपर ग्लानि न करें, (१९) सत्कार पुरस्कार–निरादर होनेकी, (२०) प्रज्ञा–ज्ञान होनेपर मद आनेकी, (२१) अज्ञान–अज्ञान होनेपर दुःख माननेकी, (२२) अदर्शन–श्रद्धान विगाडनेकी । (सर्वा॰ अ॰ ९–९)

द्वाविंशति वर्गणा–परमाणुओंके समूहको वर्गणा या स्कंध कहते हैं । क्रमसे अधिक अधिक परमाणु समूहकी अपेक्षा २२ भेद हैं–

१ संख्याताणु, २ असंख्याताणु, ३ अनंताणु, ४ आहार, ५ अग्राह्य, ६ तैजस, ७ आग्राह्य, ८ भाषा, ९ अग्राह्य, १० मनो, ११ अग्राह्य, १२ कार्मण, १३ ध्रुव, १४ सांतर निरंतर, १५ शून्य, १६ प्रत्येक शरीर, १७ ध्रुव शून्य, १८ बादर निगोद, १९ शून्य, २० सूक्ष्म निगोद, २१ नभो, २२ महास्कंध । (गो. जी. गा. ५९४–५९५)

द्विकावली तप–देखो "दुकावली व्रत" ।

द्वि चरमकालि–जिन कर्म परमाणुओंकी स्थिति घटाई जाय उनको अंतकी आवली मात्र स्थितिको छोडकर शेषमें मिलाना, जितना द्रव्य अंतके सम-

सबसे पहले समयमें मिलाया जाय यह द्विचरमकाल है। (क० पृ० २०)

द्वितीयोपशम सम्यक्त–सातवें अप्रमत्त गुणस्थानमें क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि जीव उपशम श्रेणी चढ़नेकी अवस्थामें अनंतानुबन्धी चारका विसंयोजन या अप्रत्या० रूप करके (या उपशम करके) तथा दर्शन मोहनीयकी तीन प्रकृतियोंका उपशम करके जो सम्यक्त होता है (जै. सि. प्र. ६०१) इसका भी काल अंतर्मुहूर्त है।

द्विदल–जिस अन्नकी दो दाल हों उसके बने पदार्थको कच्चे गोरस (दूध, दही, छाछ) में मिलाकर खाना। किशनसिंहजीका मत है कि मेवा व फलादिमें भी जिसकी दो दाल हो उसके साथ न खाना। जैसे बादाम, चिरौंजी, तुरई आदि।

(श्री० पु० १०९)

द्विपृष्ठ–वर्तमान भरतके दूसरे नारायण। (त्रि. गा. ८२९) आगामी भरतके नौमे नारायण।

(त्रि. गा. ८८०)

द्विरूप घनधारा–द्विरूप वर्गधारामें जो जो राशिवर्ग रूप है उनकी घन राशिकी धारा। जैसे २ का वर्गका ४ उसका घन ६४ यह एक व द्विरूप घन हुआ, फिर १६ का घन ४०९६, फिर २५६ का घन इस तरह घनधारा होगी। (त्रि० गा० ७७)

द्विरूप वर्गधारा–जहां २ का वर्ग जो आवे उसका वर्ग फिर उसका वर्ग इसतरह वर्ग हों–जैसे २ का वर्ग ४, ४ का १६, १६ का, २५६. २५६ का ६५५३६ आदि। (त्रि. गा. ६९)

द्विसंधान काव्य–सरस्वती भवन बम्बईमें है, इसमें एक काव्यके दो अर्थ होते हैं।

द्वींद्रियजाति नामकर्म–जिसके उदयसे स्पर्शन रसना दो इंद्रियधारी प्राणियोंकी जातिमें पैदा हो।

(सर्वा० अ० ८–११)

द्वीन्द्रिय जीव–दो पहली इंद्रियधारी जीव जैसे लट, शंख आदि।

द्वीप–मध्यलोकमें २॥ उद्धार सागर प्रमाण द्वीप व समुद्र हैं। देखो "तिर्यक्लोक" इनके सिवाय छोटे द्वीप बहुतसे हैं जैसे विदेह क्षेत्रोंमें जो ६१ आर्यखण्डोंमें उपसमुद्र हैं उनके भीतर द्वीप हैं उनमें ५६ तो अंतर्द्वीप हैं, २६००० रत्नाकर हैं जहां रत्न होते हैं व ७०० कुक्षिवास रत्नोंके बेचनेके द्वीप (त्रि० गा० ६७७) तथा ढाई द्वीपमें ९६ द्वीप कुभोग भूमिके हैं। (सर्वा. अ. ३–३६)

द्वीपकुमार–भवनवासी देवोंके चौथा भेद इनके इन्द्र पूर्ण और वशिष्ट हैं। इनके मुकुटोंमें हाथीका चिन्ह है, इनके भवन ७६ लाख हैं, हरएकमें जिन मंदिर है। (त्रि. २०९–२१७)

द्वीपसागर प्रज्ञप्ति–दृष्टिवाद बारहवें अंगका भेद। जिसमें असंख्यात द्वीप व सागरका कथन है। इसमें मध्यम पद ५२ लाख ३६ हजार हैं।

(त्रि. गा. ३६३–३६४)

द्वीपायन–मुनि, जिनके क्रोधसे द्वारका जली, सिर्फ कृष्ण व बलदेव ही बचे। (आ. क. नं. ९१)

द्वेष–राग न होकर बुराईका भाव। क्रोध व मान कषाय, तथा अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, नो कषाय द्वेषके अंग हैं।

ध

धनंजय–विजयार्द्धकी उत्तर श्रेणीका ४६ वां नगर। (त्रि. गा. ७०६)। सेठ, पंडित–धनंजय नाममाला, द्विसंधान काव्य, वैद्य निघंटु व विषापहार स्तोत्रके कर्ता (दि. ग्रं. ११२)

धनदत्त–आदिनाथके पूर्व भवमें जब वे वज्रजंघ राजा थे तब राजसेठ थे। (आ. प. ८)

धनदत्ता–आदिनाथके पूर्व भवमें जब वे वज्रजंघ थे तब राजसेठ धनदत्तकी स्त्री। (आ. प. ८)

धनदेव–दक्षिण देशके पुष्कल नगरमें सेठ धनदत्त, उसके पुत्र धनदेव व जिनदेव थे। [illegible] जानेके बाद धन नष्ट हुआ [illegible] कहना न दिये। [illegible]

एक दूसरेको मार डाले। इन्होंने वेत्रवती नदीमें फेंक दिये। अंतमें साधु हुए। (आ. क. नं. ३९)

धन धान्य–गाय, भैंसादि धन है, जौ गेहूँ आदि धान्य है। (सर्वा० अ० ७–२९)

धनपाल–यक्ष व्यन्तरोंके १२ भेदोंमेंसे नवां भेद (त्रि० गा० २६९); भविष्यदत्त चरित्र प्राकृतका कर्ता। (दि० ग्रं० नं० १३३)

धनप्रभ–राक्षस वंशमें लँकाका राजा।
(ई० २ पृ० ९४)

धनमित्र–देखो "धनदेव"। निघण्टु २००० के कर्ता। (दि० ग्रं० नं० १३३)

धनसेन–वत्स देश कौशाम्बीका राजा विद्युत्प्रभ विद्याधरके निमित्त अजैनसे जैन हुए विनयमें प्रसिद्ध हुए। (आ० क० नं० ८९)

धन्नालाल पंडित स्व०–काशलीवाल, बंबईमें प्रांतिक दि० जैन सभाके मुख्य कार्यकर्ता थे।

धन्नालाल शाह- पं० भविष्यदत्त कथा छंदके कर्ता।

धन्यकुमार–राजा श्रेणिकके समयमें उज्जैनके सेठ-पुत्र। श्रेणिकने अपनी कन्या गुणवती विवाही व बहुतसा राज्य दिया। अन्तमें साधु हुए।
(ध० चरित्र); धन्यकुमार चरित्र हिंदी मुद्रित।

धन्य मुनि–नेमिनाथ भगवानके समयमें अमल कण्ठपुरका राजकुमार भगवानका उपदेश सुन वैराग्यवान हुआ। मुनि हो सौरीपुरमें यमुनाके तट ध्यान कर रहा था। वहांके राजाको शिकार न मिला मुनिको कारण जान उनको बाणोंसे मारा, वे अन्तकृत केवली हो मोक्ष गए। (आ०क०नं० ७१)

धन्यषेण–पाटलीपुत्रका राजा धर्मनाथ तीर्थंकरको प्रथम आहार दान कर्ता। (इ० २ पृ० ९)

धम्म रसायण–प्राकृत पद्मनंदी कृत मुद्रित।
(मा० ग्रं० नं० २१)

धरणा–भरतके वर्तमान १० वें तीर्थंकर शीतलनाथके समवशरणमें मुख्य आर्यिका। (ई० १ पृ० ११८)

धरणानन्द–नागकुमार भवनवासियोंका इन्द्र।
(त्रि० गा० २१०)

धरणिपुर–विजयार्द्धकी उत्तरश्रेणीमें ९० वां नगर। (त्रि० गा० ७०७)

धरणी–भरतके वर्तमान भगवान श्रेयांसनाथके समवशरणमें मुख्य आर्यिका। ई० १ पृ० १२१)

धरसेनगणी (धरसेनाचार्य)–गिरनारकी चन्द्रगुफा निवासी धरसेनाचार्य जिन्होंने वैराग तटाकपुरसे आए हुए पुष्पदंत और भूतबलिको जैन सिद्धांत पढाया। तब इन दोनों मुनियोंने धवलादि ग्रंथोंका मूल रचा। (श्र० पृ० १६)

धरसेना–भरतके वर्तमान १२वें तीर्थंकर वासपूज्यके समवशरणमें मुख्य आर्यिका।
(ई० १ पृ० १२६)

धरसेनाचार्य–(धरसेनगणी); योनि प्रभृतके कर्ता। (स० १३०) (दि० ग्रं० ४१२)

धर्म–" इष्टे स्थाने धत्ते " इच्छित स्थान जो मोक्ष उसमें धारण करे (सर्वा० अ० ९–२ ; जो प्राणियोंको संसार समुद्रसे निकालकर उत्तम अविनाशी सुखमें धारण करे। (र० श्लो० २); यह सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यग्चारित्ररूप व्यवहार नयसे है व निश्चयसे आत्माका स्वभाव है। मैं शुद्ध आत्मा हूं, कर्म कलंक रहित हूं, अनंत ज्ञान सुखादि सहित हूं ऐसा श्रद्धान व ज्ञान करके इसीका अनुभव या ध्यान करना। धर्म यही शुद्ध करनेवाला है। इसीकी सिद्धिके लिये व्यवहार रत्नत्रय व दशलक्षण धर्म अहिंसा धर्म, व मुनि व श्रावकका व्यवहार धर्म धारण किया जाता है। (द्रव्यसंग्रह) विमलनाथके समयमें द्वारिकापुरीके राजा रुद्रके पुत्र तीसरे नारायण धर्म। (ई० २ पृ० ३)

धर्मा–भरतके वर्तमान तीसरे तीर्थंकर संभवनाथके समवशरणमें मुख्य आर्यिका। (ई० १ पृ.९९)

धर्म कथा–धर्मके द्दढ करनेवाली कथा चार प्रकारकी है–(१) आक्षेपिणी–जिसमें प्रमाण विधादि चारित्र व ज्ञानादिका स्वरूप हो। (२) विक्षे-

पिणी–जो पर मतको खंडन कर अनेकांत मतको स्थापित करे । (३) संवेजिनी–जिसमें ज्ञान, चारित्र, वीर्यका कथन हो व धर्मानुराग बढ़ानेवाली हो । (४) निर्वेदिनी–जो संसार शरीर भोगोंसे वैराग्य करानेवाली हो । (भ० पृ० २९९)

धर्मकीर्ति–सहस्रगुण पूजाके कर्ता । (दि० ग्रं० नं० ४१२)

धर्मघोष–चिंतामणी पार्श्वनाथ कल्पादिके कर्ता । (दि० ग्रं० नं० १३९)

धर्मचक्र–तीर्थंकरके विहारके समय सूर्यकी दीप्तिको हरनेवाला हजार आरे सहित यक्ष व देवोंके परिवारसे मंडित धर्मचक्र आगे चलता था उससे सब अंधकार नष्ट होता था । यह भगवान तीन लोकके नाथ हैं आओ नमस्कार करो यह घोषणा होती थी । (ह० पृ० ५९१)

धर्म चक्रव्रत–२२ दिनमें १६ उपवास व ६ पारणा करे । पहिले १ उपवास, १ पारणा फिर २ उपवास, १ पारणा, फिर ३ उपवास, १ पारणा, फिर चार उपवास, १ पारणा, फिर पांच उपवास, १ पारणा फिर १ उपवास, १ पारणा । (कि० क्रि. पृ. ११८)

धर्मचन्द्र (भट्टारक)–भद्रबाहु व गौतमचरित्र व स्वयंभू दशलक्षण तीस चौवीस आदि पूजाके कर्ता, (दि० ग्रं० नं० १३६); पंडित । दंडक छन्दके कर्ता । (दि० ग्रं० नं० ६८–४६)

धर्मदास–पं० (१५७८ सं०) धर्मोपदेश श्रा० छन्दके कर्ता (दि० ग्रं० नं० ६७–४६); उपदेश सिद्धांत रत्नमाला या षट्कर्मोपदेश रत्नमाला प्राकृतके कर्ता (दि० ग्रं० नं० १३८); म० जम्बूचरित्रके कर्ता । (दि० ग्रं० नं० ४१२)

धर्म द्रव्य–छः द्रव्योंमेंसे एक अखण्ड अमूर्तीक लोकाकाश व्यापी द्रव्य जिसके उदासीन निमित्तसे जीव व पुद्गलोंमें गमन होता है । (सर्वा. अ. ५–१७)

धर्मधर–नागकुमार कथाके कर्ता (दि.ग्रं.नं. १२७)

धर्मनन्दि–आचार्य संवत ७९६ । (दि० ग्रं० नं० १२९)

धर्मनाथ–१५ वें वर्तमान भरतके तीर्थंकर रत्नपुरके राजा कुरुवंशी भानु व रानी सुप्रभाके पुत्र दस लाख वर्ष आयु, वर्ण सुवर्णसम, राज्य किया फिर उल्कापात देखकर वैराग्यवान हो पुत्र सुधर्मको राज्य दे मुनि हुए, एक वर्ष तपके पीछे केवलज्ञान हुआ । प्रभुके संघमें ४३ गणधर थे, श्री सम्मेदशिखरसे मोक्ष पधारे । (इ० १ पृ० ९)

धर्म परीक्षा–अमितगति आचार्यकृत संस्कृत व भाषामें मुद्रित ।

धर्मपात्र–रत्नत्रय धर्मके साधनेवाले मुनि उत्तम, श्रावक मध्यम, अविरत सम्यक्ती जघन्य । (सा० अ० २–५०)

धर्मभूषण–(नंदिसंघ) न्यायदीपिका, प्रमाण विस्तारके कर्ता । (दि० ग्रं० नं० १४०)

धर्मभूषण–भट्टारक परमेष्टीपूजा, रत्नत्रयोद्यापन आदिके कर्ता । (दि० ग्रं० नं० १४१)

धर्म मित्र–श्री कुन्थुनाथ भगवानको हस्तिनापुरके राजा धर्ममित्र प्रथम पारणा करानेवाले । (इ० १ पृ० १९)

धर्मरथ–मुनि, जिनके पास रावणने प्रतिज्ञा ली कि जो परस्त्री मुझे न चाहेगी उसपर मैं बलात्कार न करूँगा । (इ० २ पृ० ७६)

धर्मकाम–मुनि कर्मनको आशीर्वाद देते हुए कहें, जब क्षुल्लक भिक्षार्थ जावें तो गृहस्थोंके आंगन तक जावें वहीं 'धर्मलाभ' [illegible] अपना अंग दिखावें । यदि वह [illegible] भिक्षा पात्रमें भोजन लेवें या वहीं बैठकर [illegible] । (गृ० अ० १७)

धर्मविलास–पं० द्यानतरायकृत मुद्रित ।

धर्मशर्माभ्युदय–काव्य मुद्रित ।

धर्मसागर–स्वामी–(नंदिसंघ) [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] कर्ता । (दि० ग्रं० नं० १२३)

धर्मसिंह–कौशलके राजा मुनि हो [illegible] ली । (आ० क० नं० ५९)

धर्मसूरि—सं० १२६६ में जम्बूस्वामी रासाकेकर्ता, महेन्द्रसूरिके शिष्य (जैनहि० वर्ष १२ अंक ११-१२ पृ० ५५२)

धर्माचार्य—गृहस्थाचार्य, गणाधिप।
(सा० अ० २-९१)

धर्मानुप्रेक्षा—धर्मके स्वरूपका वारवार चितवन।

धर्मास्तिकाय—देखो 'धर्मद्रव्य' इसे बहुप्रदेशी होनेके कारण अस्तिकाय कहते हैं।

धर्मसेन—श्री महावीर स्वामीके मोक्ष जानेके पीछे १६२ वर्ष बाद ११ अंग १० पूर्वके ज्ञाता ११ महामुनियोंमें ११ वें (श्र० पृ० १३); अष्टा-दश—सप्त व्यसन चरित्रके कर्ता। (दि. ग्रं. नं. १४१)

धर्मस्वाख्यातत्व—यथार्थ धर्मका निजस्वरूप।

धर्मी—जिसमें स्वभाव पाया जाय।

धवल सेठ—श्रीपाल राजाको समुद्रमें गिराने-वाला। (श्रीपाल चरित्र)

धर्मोपकरण—मुनिके पास तीन होते हैं-(१) पीछी मोरपंखकी जिससे जीवदया पले, (२) काष्ठ कमंडल शौचके लिये, (३) शास्त्र-ज्ञानवृद्धिके लिये।

धर्मोपदेश—धर्मका उपदेश करना-जिस तत्वका भलेप्रकार अभ्यास हो उसे मुखसे समझाना, स्वाध्याय तपका पांचवा भेद। (सर्वा० अ० ९-२५)

धर्मध्यान—धर्मके विचार सहित एकाग्रता प्राप्त करना। इसके चार भेद हैं-(१) आज्ञाविचय-सर्वज्ञके आगमकी आज्ञानुसार तत्वका विचारना। (२) अपायविचय-संसारी प्राणी किसतरह कुमार्गसे हटकर मोक्षमार्ग पर आवें ऐसा विचारना। (३) विपाकविचय-आठों कर्मोंके अच्छे बुरे फलका विचारना। (४) संस्थानविचय-लोकका आकार व आत्माका स्वरूप विचारना। (सर्वा. अ. ९-३६)

धातुकी खण्ड—जम्बूद्वीपके पीछे दूसरा द्वीप ४ लाख योजन चौड़ा जिसमें दो मेरु विजय व अचल हैं व रचना सब जम्बूद्वीपकी रचनासे दूनी है, इसके चारों तरफ कालोदधि समुद्र है। दक्षिण व उत्तर हरएक मेरुकी रचनाको भाग करनेवाले एक १ इक्ष्वाकार पर्वत हैं। इस द्वीपका स्वामी व्यन्तरदेव प्रभास और प्रियदर्शन हैं।
(त्रि० गा० ५६३-९६९)

धातुकी वृक्ष—धातकी खण्डद्वीपमें वृक्ष, यह रत्नमई है। वृक्षके समान है (त्रि० ९३४); जम्बू वृक्षके समान है। देखो " जम्बूवृक्ष "

धातु चतुष्क—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु।

धात्री दोष—जो वस्तिका मुनिने गृहस्थोंको बालकोंकी पालनेकी विधि बताकर कि ऐसे खिलाओ, दूध पिलाओ आदिसे प्राप्त की हो। (भ. पृ. ९९)

धारण—नेमनाथके पिता समुद्र विजयके भाई, अन्धक वृष्णिका पुत्र। (ई० पृ० २०४)

धारणा—मतिज्ञानका एक भेद-पदार्थको इंद्रिय या मन द्वारा निश्चय करके ऐसा जान लेना जो भूलना नहीं, (सर्वा० अ० १-१५); पिंडस्थ ध्यानकी पांच धारणा हैं:—

(१) पार्थिवी—मध्यलोकको क्षीरसमुद्र समान चितवनकर बीचमें एक लाख योजन चौड़ा जंबूद्वीप समान ताये हुये सुवर्णके रंगका एक हजार पत्तोंका कमल विचारे। उसके मध्यमें सुमेरु पर्वतके समान पीतरंगी ऊँची कर्णिका विचारे। उसपर पांडुकवन है, वहां पांडुक शिला है। उसपर फटिकका सिंहासन है। उसपर मैं कर्मोंको जलानेके लिये बैठा हूं ऐसा वारंवार सोचे। (२) आग्नेयी या अग्नि—उसी सिंहासनपर बैठा हुआ ध्याता नाभि स्थानमें ऊपरको उठा हुआ व खिला हुआ १६ पत्तोंका सफेद कमल विचारे, उनमेंसे हरएकपर क्रमसे अ आ, इ ई आदि १६ स्वर पीछे लिखे विचारे। मध्यमें र्हं पीतरंगका देखे। इसी कमलकी सीधपर हृदयस्थानमें दूसरा औंधा कमल आठ पत्तोंका सोचे कि यह आठ कर्ममई है। फिर र्हंकी रेफसे अग्नि निकली व कमलको जलाने लगी। धीरे २ लौ मस्तकपर आगई फिर अगल बगल फैल गई। इस तरह

शरीरके चारों तरफ त्रिकोण मंडल अग्निका बन गया। इस मंडलको हर लाइनपर ररर अक्षरोंसे व्याप्त अग्निमई देखे व तीनों बाहरी कोनोंपर स्वस्तिक व भीतरी कोनोंपर 'ॐ र्हं' ये सब अग्निमई देखे। अब सोचे भीतरकी अग्नि कर्मोंको व बाहरकी नोकर्म शरीरको जला रही है। इसतरह राख होरही है तब धीरे २ अग्नि शांत हो ह मैं जाकर समा गई। इसतरह वारवार ध्यान करे। (३) पवन—मेरे चारों तरफ पवनमंडल 'स्वाय' बीजाक्षरसे व्याप्त वह करके मेरे आत्माके ऊपर पड़ी हुई कर्म व नोकर्मकी रजको उड़ा रही है। (४) जल—मेघ घनघोर छागए, पानी मेरेपर पड़ रहा है, मेघके मंडलपर प,प,प,प, लिखे सोचे यह पानी लगी हुई कर्मादि रजको धोकर आत्माको साफ कर रहा है। (५) तत्वरूपवती—आत्मा सर्व कर्म नोकर्मसे रहित शुद्ध स्वभावमें होगया ऐसा देखना। (जैन धर्मप्रकाश नं० ९३)

धारावाही ज्ञान—जाने हुए पदार्थका वारवार विचारना।

धारणीपुर—विजयार्द्धकी उत्तर श्रेणीका ९ वां नगर। (त्रि० गा० ७०७)

धारिणी—भरतचक्रीकी पटरानी, मरीचकी माता।

धूम—ज्योतिषके ८८ ग्रहोंमें २४ वां ग्रह। (त्रि० गा० ३६९)

धूमकेतु—ज्योतिषके ८८ ग्रहोंमें ३५ वां ग्रह। (त्रि० गा० ३६९)

धूमप्रभा—पांचवें नर्ककी पृथ्वी—जो २० हजार योजन मोटी है। इसमें तीन लाख बिले हैं जहां नारकी रहते हैं। इसके पौन भाग तो उष्णता व शीतता है। इसमें तीन पटल हैं। (त्रि० गा० १४४) उत्कृष्ट आयु १७ सागरकी है।

धूम्र दोष (धूम दोष)—जो वस्तिका शीत आदि उपद्रव कर सहित है भला नहीं इत्यादि निन्दा करना जो वस्तिकामें बसे, (म. ह. ३६); भोजनकी निंदा करता हुआ मन बिगाड़ता हुआ भोजन करे। (भ० पृ० १११)

धृति—जंबूद्वीपके तिगिंछ द्रहके कमलमें बसनेवाली देवी, (सर्वा० अ० ३-१९); यह सौधर्म इन्द्रकी सेविका है। (त्रि० गा० ५७७) छठा कूट निषिद्ध कुलाचल पर (त्रिगा० ७२५)

धृति क्रिया मंत्र—गर्भान्वय संस्कारोंमें चौथा संस्कार। यह क्रिया गर्भसे ७ वें मास होती है, होमादि पूजा पाठ होता है, गर्भके बालकको आशीर्वाद दिया जाता है। (गृ० अ० ४)

धृतिषेण—श्री महावीरस्वामीके मुक्त भए पीछे १६२ वर्ष बाद जो ग्यारह ऋषि ११ अंग १० पूर्वके पाठी हुए उनमें सातवें १८३ वर्षके मध्यमें। (श्रु० पृ० १२)

ध्यान—एक विषयको मुख्य करके चित्तका निरोध करना, या रोकना। इसके चार भेद हैं। आर्त्त रौद्र, धर्म, शुक्ल। पहले दो ध्यान खोटे हैं। दो अंतके मोक्षके साधक हैं। दुखित परिणाम करना आर्त है। दुष्टभाव करना रौद्र है। प्रत्येकके चार चार भेद हैं—इष्टवियोगज, अनिष्ट संयोगज, रोगजनित, निदान ये चार आर्तध्यान हैं। हिंसानंद, मृषानंद, चौर्यानंद, परीग्रहानंद ये चार रौद्रध्यान हैं। आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय, संस्थानविचय ये चार धर्मध्यान हैं। (देखो 'धर्मध्यान') पृथक्त्व वितर्क अवीचार, एकत्व वितर्क अवीचार, सूक्ष्म क्रिया प्रतिपाति, व्युपरतक्रिया निवृति। ये चार शुक्लध्यान हैं। (सर्वा. अ. ९-२०)

ध्रुव ग्रहण—चिरकाल थिर रहने वाले पदार्थका जानना, जैसे मेरु, सूर्य, चंद्र आदिका जानना। (सर्वा० अ० १-१६)

ध्रुव बन्ध—जो कर्मका बंध सदा निरंतर हुआ करे। अमुक जीवके निरंतर बंध होता है। (गो० क० गा० १२३)

ध्रुव वर्गणा—२३ पुद्गल स्कंधोंमेंसे १३ वीं जातिका स्कंध। देखो "[illegible]"

ध्रुवशून्य वर्गणा—२२ पुद्गल वर्गणाओंमें १७ वीं जातिका स्कंध। देखो "द्वाविंशति वर्गणा"।

ध्रुवसेन—(द्रुमसेन) श्री महावीरस्वामी पीछे हुए ११ अंगके ज्ञाता पांच मुनिमें चौथे। देखो "द्रुमसेन"।

ध्रौव्य—प्रत्यभिज्ञानको कारणभूत द्रव्यकी किसी अवस्थाकी नित्यता। (जै. सि. प्र. नं. १६०); वह स्वभाव जिससे द्रव्यके अविनाशीपनेका ज्ञान हो। हरएक द्रव्यमें यह स्वभाव पाया जाता है क्योंकि वह सत् है।

ध्वजमाल—विजयार्द्धकी उत्तर श्रेणीमें २१ वां नगर। (त्रि० गा० ७०४)

न

नगर—जो ४ द्वार व कोट संयुक्त हो।
(त्रि०. गा० ६७६)

नक्षत्र—ज्योतिषी देवोंमें चौथा भेद (त्रि. गा. ३०२) ये २८ हैं। व इनके २८ अधिदेवता या स्वामी हैं—

नाम नक्षत्र		नाम अधिदेवता
१—कृत्तिका	....	अग्नि
२—रोहिणी	....	प्रजापति
३—मृगशीर्षा	....	सोम
४—आर्द्रा	....	रुद्र
५—पुनर्वसु	....	दिति
६—पुष्य	....	देव मंत्री
७—अश्लेषा	....	सर्प
८—मघा	....	पिता
९—पूर्वफाल्गुनी	....	भग
१०—उत्तराफाल्गुनी	....	अर्यमा
११—हस्त	....	दिनकरा
१२—चित्रा	....	त्वष्टा
१३—स्वाति	...	अनिल
१४—विशाखा	....	इंद्राग्नि
१५—अनुराधा	....	मित्र
१६—ज्येष्ठा	....	इन्द्र
१७—मूल	....	नैरृति
१८—पूर्वाषाढ़	....	जल
१९—उत्तराषाढ़	....	विश्व
२०—अभिजित	....	ब्रह्मा
२१—श्रवण	....	विष्णु
२२—धनिष्ठा	....	वसु
२३—शतभिषक	....	वरुण
२४—पूर्वा भाद्रपदा	....	अज
२५—उत्तरा भाद्रपदा	....	अभिवृद्धि
२६—रेवती	....	पूषा
२७—अश्विनी	....	अश्व
२८—भरणी	....	यम

(त्रि० गा० ४३५–४३८)

नक्षत्र—महावीरस्वामीके मुक्तिके ३४५ वर्ष पीछे २२० वर्षमें पांच महा मुनि ग्यारह अंगके ज्ञाता हुए उनमें पहले (श्र. पृ. १२)

नक्षत्र देव—श्रुतस्कंधोद्यापनके कर्ता।
(दि० जै० नं० १४४)

नक्षत्रमाला व्रत—अश्विनी नक्षत्रसे प्रारम्भ करके ५४ दिनमें २७ उपवास करे (कि. क्रि. पृ. ११४)

नथमल—बिलाला पं० भरतपुर निवासी, जिन-गुण विलास छंद, सिद्धांतसार छंद (१८२४ सं. में) नागकुमार चारित्र (१८३३ सं०), जीवंधर (सं० १८३५ में), जंबूस्वामी चारित्र छं० के कर्ता।
(दि० ग्रं० नं० ७०–४७)

नदी—जंबूद्वीपमें १४ महा नदी गंगादि हैं। दूनी दूनी धातकी व पुष्करार्द्धमें हैं। परिवार नदी

गंगा सिंधुकी व रक्ता रक्तोदाकी	नदी
प्रत्येककी १४००० कुल—	५६०००
रोहित, रोहितास्या, सुवर्णकूला, रूप्यकूला	
प्रत्येककी २८००० कुल—	११२०००
हरित हरिकांता नारी नरकांता	
हरएककी ५६००० कुल—	२२४०००

सीता सीतोदा प्रत्येक ८४००० कुल—३३६०००
३२ विदेहमें गंगा सिंधु रक्ता रक्तोदा
ऐसी ६४ नदी प्रत्येक परिवार
१४००० कुल— ८९६०००
१७९२०००

तथा मूल नदियें । १४+१२+६४=९० अतएव जम्बूद्वीपमें कुल नदियें १७,९२०९० हैं । इनकी दूनी दूनी धातुकी पुष्करादिमें हैं (त्रि. गा. ७३१)

नन्दकवि—पं० सुदर्शन चरित्रके कर्ता । (दि० ग्रं० नं० ७१.)

नन्दगणि—भगवती आराधनाके टीकाकार । (दि० ग्रं० १४६)

नन्दराम—पं० योगसार वचनका (सं० १९०४) त्रैलोक्यसार पूजा, यशोधर चरित्र छँद । (दि० ग्रं० ७२—४०)

नन्दलाल—पं० तीस चौवीसी पूजा लघुके कर्ता (दि० ग्रं० नं० ७४)

नन्दलाल छावड़ा—पं० मूलाचार वचनिकाके कर्ता । (सं० १८८८)

नन्दन—सौधर्म ईशान स्वर्गमें ३१ इंद्रक विमानोंमें छठा इन्द्रक । (त्रि० गा० ४६४)

नन्दनवन—स्वर्गके देवोंके नगरोंमें वन (त्रि० गा० ९०१) मेरू पर्वत जो जम्बूद्वीपमें है उसके नीचे भद्रसाल वन है ऊपर पांचसौ योजन जानेपर नंदनवन है । ऐसा ही अन्य चार मेरोंमें भी भूतलसे ५०० योजन जाय नंदनवन है । नंदनवनकी पूर्वादि चार दिशाओंमें मानी, चारण, गंधर्व, चित्र नामवाले भवन हैं । इनकी ऊँचाई ५० योजन चौड़ाई ३० योजन है । इनके स्वामी सौधर्म इन्द्रके लोकपाल, सोम, यम, वरुण व कुबेर हैं ।

नंदनवनमें आठ कूट हैं उनमें दिक्कुमारी देवी वसती है । १६ वापिकाएँ हैं इस वनमें चार अकृत्रिम जिनमंदिर हैं । (त्रि. गा. ६१९)

नन्दवती—रुचकगिरिकी पूर्वदिशाके छठे कूट अंजनक पर बसनेवाली दिक्कुमारी देवी । (त्रि० गा० ९४९), नंदीश्वर द्वीपकी पूर्वदिशामें एक वापिकाका नाम । (त्रि० गा० ९६९)

नन्दा—रुचकगिरिकी पूर्वदिशाके पांचवें कूट समुद्रपर बसनेवाली दिक्कुमारी देवी । (त्रि. गा. ९४९); नंदीश्वर द्वीपकी पूर्वदिशाकी एक वापिका । (त्रि० गा० ९६९)

नन्दि—नंदीश्वरके द्वीपमें स्वामी व्यंतरदेव । (त्रि० गा० ९६४)

नन्दिगुरु—प्रायश्चित्त समुच्चय टीका, प्रायश्चित्त चूलिका टीकाके कर्ता । (दि० ग्रं० १४७)

नंदिनी—गंधर्व व्यंतरके इन्द्र गीतयशकी वल्लभिकादेवी । (त्रि० गा० २६४)

नन्दिप्रभ—नंदीश्वर द्वीपके स्वामी व्यंतरदेव । (त्रि० गा० ९६४)

नन्दिभूति—भरतके आगामी चौथे नारायण । (त्रि० गा० ८७९)

नन्दिमित्र—भरतके आगामी दूसरे नारायण । (त्रि० गा० ८७९), वर्तमान भरतके सातवें बलदेव । (त्रि० गा० ८२७)

नन्दिमुनि—दिग्गजाचार्यके शिष्य । वि. सं. १६ (दि० ग्रं० नं० १४८)

नंदिषेण—भरतके आगामी तीसरे नारायण । (त्रि० गा० ८७९), भट्टारक यतिसारके टीकाकार । (दि० ग्रं० नं० १४९)

नंदिषेणा—रुचकगिरिके पूर्वदिशामें वज्रकूटपर वसनेवाली देवी । (त्रि. गा. ९४९) नंदीश्वर द्वीपकी पूर्वदिशाकी एक बावड़ी । (त्रि. गा. ९६९)

नन्दी—भरतके आगामी प्रथम नारायण । (त्रि. गा. ८७९), भरतके वर्तमान छठे बलदेव । (त्रि. गा. ८२७)

नन्दीश्वर द्वीप—आठवां महाद्वीप जो १६३ करोड़ ८४ लाख योजन व्यासवाला है । चारों दिशामें चार अंजनगिरि पर्वत हैं जो प्रत्येक ८४००० योजन ऊंचे हैं । इनके चारों तरफ चार चार बावड़ी एक एक लाख योजन लम्बी चौड़ी हैं । इनके

मध्यमें सफेद रंगके दधिमुख पर्वत हैं। यह दस हजार योजन ऊंचे हैं। हरएक वावडीके बाहरी कोनेमें दो दो रतिकर पर्वत लाल वर्णके एक एक हजार योजन ऊंचे हैं। इसतरह ४ अंजनगिरि + १६ दधिमुख + ३२ रतिकर कुल ५२ पर्वतोंपर ५२ जिनमंदिर हैं। (च. छं. ७९), इस द्वीपके स्वामी व्यंतर नंदि व नंदिप्रभ हैं। (त्रि. गा. ९६४)

नंदीश्वर पूजा–नंदीश्वरद्वीपमें सौधर्मादि इन्द्र देवोंको साथ लेकर कार्तिक, फाल्गुन, अषाढके अंत आठ दिनोंमें जाकर बड़ी भक्तिसे पूजा करते हैं उसीकी भावनारूप जैन लोग भी नंदीश्वर पूजा करते हैं।

नंदीश्वर पंक्तीव्रत–यह व्रत १०८ दिनोंमें पूरा होता है। ५६ उपवास व ५२ पारणा हैं। पहले ४ उपवास व ४ पारणा एकासन करे फिर एक बेला व १ पारणा करे फिर १२ उपवास, १२ पारणा करे फिर एक बेला १ पारणा करे फिर १२ उपवास, १२ पारणा करे। फिर एक बेला १ पारणा करे। फिर १२ उपवास, १२ पारणा करे। फिर एक बेला १ पारणा करे। फिर ८ उपवास, ८ पारणा करे। कुल उपवास हैं ४+१२+१२+१२+८+८ चार बेलोंके=५६) कुल पारणा हैं (४+१+१२+१+१२+१+१२+१+८=५२) (कि० क्रि० पृ० १८१)

नंद्यावर्त–सौधर्म ईशान स्वर्गोंमें १६ वां इंद्रक बिमान। (त्रि० गा० ४६९)

नपुंसक वेद–नो कषाय जिसके उदयसे स्त्री व पुरुष उभयकी चाह हो। (सर्वा० अ० ८–९)

नभ–आकाश; ८८ ज्योतिष ग्रहोंमें १९ वां ग्रह। (त्रि० गा० ३६६)

नभोवर्गणा–२२ पुद्गल स्कंधोंमें २१वीं वर्गणा। देखो "द्वाविंशति वर्गणा"

नमस्कार मंत्र–देखो "णमोकार मंत्र"

नमिनाथ–भरतके वर्तमान २१ वें तीर्थंकर इक्ष्वाकुवंशी राजा विजयरथ माता विप्रलाके पुत्र सुवर्णमय देह, पगमें कमल चिह्न, १०००० वर्षकी आयु, राजपाट करके अंतमें तप करके केवलज्ञान लहकर अनेक जीवोंको उपदेशसे सफलकर श्री सम्मेदशिखर पर्वतसे मोक्ष पधारे।

नय–वस्तुके एक देश जाननेवाले ज्ञानको नय कहते हैं। श्रुतज्ञानके एक अंशको नय कहते हैं। इसके मूल दो भेद हैं। निश्चयनय-जो वस्तुके असली स्वभावको ग्रहण करे जैसे मिट्टीके घडेको मिट्टीका कहना व संसारी जीवको शुद्ध जीव कहना। व्यवहार नय–किसी निमित्तके वशसे एक पदार्थको दूसरे पदार्थरूप जाननेवाला ज्ञान। जैसे घी घड़ेमें है इसलिये मिट्टीके घडेको घीका घड़ा कहना या मानव देहमें जीव है इसलिये उसे मानव कहना। निश्चय नयके दो भेद हैं एक द्रव्यार्थिक–जो द्रव्य मात्रको या सामान्यको ग्रहण करे। दूसरी–पर्यायार्थिक–जो विशेषको–द्रव्यके गुण व पर्यायको ग्रहण करे। द्रव्यार्थिक नयके तीन भेद हैं। १ नैगम–पदार्थके संकल्पको जो ग्रहण करे जैसे रसोईका प्रबंध होरहा है तौभी कहना कि रसोई बन रही है। २ संग्रह–अपनी जातिका विरोध न करके अनेक पदार्थोंको एक रूपसे ग्रहण करे जैसे जीव कहनेसे सब जीवोंका ग्रहण होता है व द्रव्य कहनेसे सब द्रव्योंका ग्रहण होता है। ३ व्यवहार–जो संग्रहनयसे ग्रहण किये हुए पदार्थोंको विधिपूर्वक भेद करे जैसे जीव संसारी व मुक्त व संसारी त्रस व स्थावर हैं। पर्यायार्थिक नय–के चार भेद हैं। १ ऋजुसूत्र–भूत भविष्यतकी अपेक्षा न करके वर्तमान पर्याय मात्रका जो ग्रहण करे जैसे मनुष्यकी पर्यायमें जीवको मनुष्य कहना। २ शब्द नय–लिंग, कारक, वचन, काल, उपसर्ग आदिके भेदसे पदार्थको भेदरूप करे। जैसे दारा, भार्या, कलत्र ये तीनों शब्द भिन्न२ पुंलिंग स्त्रीलिंग व नपुंसक लिंगके हैं। तथापि एक स्त्री पदार्थके बोधक हैं। इस नयने स्त्री पदार्थको तीन भेदरूप ग्रहण किया। यह नय व्याकरण अपेक्षा विरोधको मेटनेवाली है।

इंद्रक सीमंतक ४५ लाख योजन चौड़ा ढाई द्वीपके बराबर है। सातवें नर्कके अंतिम इंद्रक अवधिस्थानकी चौड़ाई जम्बूद्वीपके समान एक लाख योजन है। ऊपर अति उष्ण पौन भाग पांचवें नर्कतक है फिर नीचे अति शीत है। दुर्गंध वहां ऐसी है जैसे सड़ा हुआ बिलाव कुत्तेकी गंध हो। नारकियोंके उपजनेके स्थान ऊँट आदि मुखके आकार छतमें छीकेके समान होते हैं। उनमें नारकी जीव अन्तर्मुहूर्तमें पूरे शरीरवाले होके गिरते हैं व उछलते हैं। सातवेंमें ५००० योजन उछलते हैं, अन्य नरकोंमें आधे २ उछलते हैं। पहलेमें $\frac{१२५}{१६}$ योजन उछलते हैं। पहले नर्ककी शरीरकी ऊँचाई ७ धनुष, तीन हाथ छः अंगुल होती है फिर दूनी २ होती जाती है। सातवेमें ५०० धनुषका शरीर है।

नारकियोंको क्षेत्रजनित, मानसिक, शारीरिक, महान दुःख है। परस्पर एक दूसरेको कष्ट देते हैं। उनके शरीरमें रूप बदलनेकी शक्ति है। वे स्वयं पशु बनकर व अपने शरीरको ही खडग आदि बनाकर परस्पर दुःख देते हैं। तीसरे नरक तक असुरकुमार देव जाकर लडाते हैं। वहां वे मिट्टी खाते हैं पर भूख नहीं मिटती है। पानी खारा पीते हैं पर प्यास बुझती नहीं। पहले नर्कके पहले पटलकी मिट्टी जो मध्यलोकमें आजाय तो उसकी दुर्गंधसे आधे कोशके प्राणी मर जांय। आगेके पटल पटल प्रति आध कोश बढ़ती जाती है। वे पूरी आयु भोगे विना मरते नहीं हैं। शरीर वैक्रियिक होता है। खंड होनेपर पारेवत् मिल जाता है। जघन्य आयु १०००० वर्ष व उत्कृष्ट ३३ सागर है। जो पहले नर्कमें उत्कृष्ट है वह दूसरेमें जघन्य है। उत्कृष्ट आयु क्रमसे है—१ सागर, ३ सा०, ७ सा०, १० सा०, १७ सा०, २२ सा०, व ३३ सागर, (त्रि. गा. १४४)

नरकायु कर्म—जिसके उदयसे यह जीव नरकमें जाकर शरीरमें बना रहे (सर्वा० अ० ८–१०) बहुत अन्याय पूर्वक आरम्भ करनेसे व धन धान्यादिमें व परीग्रहमें अत्यन्त मूर्छा रखनेसे, घोर हिंसादि पापकर्मोंमें आनन्द माननेसे इस आयुका बंध होता है। आयुके अनुसार गतिमें जाता है।

नरकगति नामकर्म—जिसके उदयसे नरकमें जाकर नारकीसी अवस्था पावे। (सर्वा. अ. ८–११)

नरकगत्यानुपूर्वी—नामकर्म, जिसके उदयसे नरकमें जाते हुए पूर्व शरीरके प्रमाण आत्माका आकार विग्रह गतिमें रहता है (सर्वा. अ. ८–११)

नरक चतुष्क—नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर व वैक्रियिक अंगोपांग।

नरक जन्म मरणांतर—सातवें नरकमें ६ मासका उत्कृष्ट अंतर है अर्थात् इतने काल तक कोई नारकी वहां न पैदा हो उसके पीछे अवश्य पैदा हो। पहलेमें २४ महूर्त, दूसरेमें ७ दिन, ३ रेमें १५ दिन, चौथमें १ मास, पांचवेमें २ मास, छठेमें चार मासका अंतर है। (त्रि० गा० २०६)

नरकांता—जंबूद्वीपकी आठवीं महा नदी जो रम्यकक्षेत्रमें बहती है, पश्चिम समुद्रमें गिरती है। (त्रि० गा० ५७८) नील पर्वतपर सातवां कूट (त्रि० गा० ७२६)

नरगति—मनुष्यगति।

नरगीत—विजयार्द्धकी दक्षिण श्रेणीमें तीसरा नगर। (त्रि० गा० ६९७)

नरचन्द्र—ज्योतिषसार (१४० श्लो०) के कर्ता (दि० ग्रं० नं० ४१४)

नरदेव (नरसेन)—श्रीपाल च० व चंद्रप्रभ पुराण प्राकृतके कर्ता। (दि० ग्र० नं० १५१)

नरपति—हरिवंशमें यदु राजाके पुत्र नेमनाथका वंश। (हरि० पृ० २०३)

नरसिंहभट्ट—समन्तभद्र कृत जिनशतककी टीकाके कर्ता। (दि० ग्रं० १९३)

नरेन्द्रसेन—सिद्धांतसार संग्रहके कर्ता; आठसंधी प्रमाण-प्रमेयकलिका, विद्यानुवाद, व्रतकथा कोषादिके कर्ता। (दि. ग्रं. नं. १५१)

नरलोक–मनुष्यलोक, ढाई द्वीप, ४५ लाख योजन चौड़ा । देखो " तिर्यक्लोक "

नलिन–सौधर्म ईशान स्वर्गका आठवां इंद्रक विमान (त्रि. गा. ४६४); सीता नदीके उत्तर तटपर तीसरा वक्षार पर्वत (त्रि. गा. ६६६ ; भरतके आगामी उत्सर्पिणीकालका छठा कुलकर (त्रि. गा. ८७१); रुचकगिरिकी दक्षिण दिशाका चौथा कूट । (त्रि. गा. ९५०)

नलिनगुल्मा–मेरुके नंदनवनमें एक वावड़ी । (त्रि. गा. ६२९)

नलिनध्वज–भरतके आगामी उत्सर्पिणीकालका नौमा कुलकर । (त्रि. गा. ८७१)

नलिनपुंगव–भरतके आगामी उत्सर्पिणीकालका १० वां कुलकर । (त्रि. गा. ८७१)

नलिनप्रभा–भरतके आगामी उत्सर्पिणीका ७ वां कुलकर । (त्रि. गा. ८७१)

नलिनराज–भरतके आगामी उत्सर्पिणीका ८ वां कुलकर । (त्रि. गा. ८७१)

नलिनी–मेरूके नंदनवनमें एक वावड़ी । (त्रि० गा० ६२८-६२९) विदेह क्षेत्रमें सीतोदा नदीके दक्षिण तटपर २२ वां देश या आठ देशोंमें छठा देश । (त्रि० गा० ६८९)

नव अनुदिश–ऊर्ध्व लोकमें नौ ग्रैवेयिकके ऊपर नव विमान हैं, उनमें सम्यग्दृष्टि पैदा होते हैं व यहांके अहमिंद्र अधिकसे अधिक दो भव मनुष्यके लेके मोक्ष होते हैं। मध्यमें इंद्रक आदित्य है। चार पूर्वादि दिशामें अर्चि, अर्चिमालिनी, वैर, वैरोचन तथा चार विदिशाओंमें सोम, सोमरूप, अंक, स्फटिक (त्रि. गा. ४५६), यहां बत्तीस सागर उत्कृष्ट व ३१ सागर जघन्य आयु है। यहांके जीव मरकर नारायण प्रतिनारायण नहीं होते हैं। (त्रि. गा. ५४७)

नवकार पैंतीसी व्रत–३५ उपवास करे, णमोकार मंत्र जपे, ७ सप्तमीके + १४ चौदसके + ५ पंचमीके + ९ नौमीके कुल ३५ उपवास करे। (कि० क्रि० पृ० ११२)

नव केवललब्धि–(क्षायिक भाव) चार घातिया कर्मोंके क्षय होनेपर ९ विशेष गुण केवली अर्हंतके प्रगट होते हैं–१ अनंतज्ञान, २ अनंतदर्शन, ३ क्षायिक सम्यक्त, ४ क्षायिकचारित्र, ५ अनंत दान, ६ अनंत लाभ, ७ अनंत भोग, ८ अनंत उपभोग, ९ अनंत वीर्य । (सर्वा. अ. २–४)

नव केशव–नव नारायण जो भरत व ऐरावतकी तीन खंड पृथ्वीके धनी होते हैं । हरएक दुखमा सुखमा कालमें होते हैं। भरतके वर्तमान नारायणके नाम देखो " त्रिषष्टि शलाका पुरुष "

नव ग्रैवेयिक–१६ स्वर्गके ऊपर = अधो तीन ग्रैवेयिकमें १११ + मध्यम तीनमें १०७ + ऊर्ध्व तीनमें ९१ कुल ३०९ विमान हैं। यहां २३ सागरसे ३१ सागर तक क्रमसे नौ ग्रैविकोंमें आयु है। यहां देवियां नहीं होती हैं। सब बराबर अहमिन्द्र होते हैं । अभव्य जीव भी नौमें ग्रैवेयकमें जन्म प्राप्त कर सक्ता है। ९ ग्रैवेयिकमें ९ इंद्रक हैं उनके नाम–सुदर्शन, अमोघ, सुप्रबुद्ध, यशोधर, सुभद्र, सुविशाल, सुमनस, सौमनस, प्रीतिंकर । (त्रि. गा. ४६१–४६९)

नव देव–अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, जिनमंदिर, जिनप्रतिमा, जिनवाणी और जिनधर्म ।

नवधा भक्ति–मुनिको दान करते हुए नौ प्रकार भक्ति करनी चाहिये । (१) संग्रह–पड़गाहना, आते हुए देखकर अपने द्वारपर साधुको खड़ा होता देखे हुए यह कहना "अत्र तिष्ठ तिष्ठ तिष्ठ आहार पानी शुद्ध " (२) उच्चस्थान–जब साधु ठहर जाय तब भीतर लेजाकर ऊंचा स्थान देना, (३) पगप्रक्षालन–फिर किसी पात्रमें पग धोना, (४) पूजन–अष्ट द्रव्यसे पूजना, (५) नमस्कार–तीन प्रदक्षिणा दे नमस्कार करना, (६) (७) (८) (९)–मन, वचन, काय व भोजनकी शुद्धि रखना ।

नवनारद–नौ ब्रह्मचारी रहते हुए

भी कलहप्रिय, हिंसा व युद्ध करानेमें अनुमोदक होते हैं-धर्म सेते हैं परन्तु रौद्रध्यानसे नरक जाते हैं। ये नारायणोंके समयमें होते हैं। परम्परा सब मोक्षगामी महान जीव हैं। वर्तमान भरतमें जो हुए उनके नाम हैं-भीम, महाभीम, रुद्र, महारुद्र, काल, महाकाल, दुर्मुख, निरप, अधोमुख, (त्रि० गा० ८३४-८३९)

नवनारायण-तीन खण्डके स्वामी अर्धचक्र राज्यभोगी महापुरुष नारायण हैं। देखो नाम "त्रिषष्टिशलाका पुरुष"।

नवनिधि-देखो "चक्रवर्ति"।

नवनिधि व्रत-इसमें ३१ उपवास हैं। १४ चौदस, ९ नौमी, ३ तीज, ४ पंचमी। (कि.क्रि.पृ. ११९)

नवनीत-मक्खन-लोनी (सा. ध. २-१२)

नव नोकषाय-किंचित कषाय ९ हैं-हास्य रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुंवेद, नपुंसक वेद।

नव पदार्थ-जीव, अजीव, आश्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष इन सात तत्वोंमें पुण्य, पाप जोडनेसे नौ पदार्थ होते हैं। पुण्यकर्म शुभ हैं, पापकर्म अशुभ हैं। यह प्रगट करनेके लिये इनका भिन्न ग्रहण हैं अन्यथा आश्रव व बंधमें गर्भित हैं। देखो "तत्व"

नव प्रतिनारायण-नारायणके शत्रु उसी समयमें होते हैं, नारायण द्वारा पराजय किये जाते हैं। देखो "त्रिषष्टि शलाका पुरुष"।

नव बलदेव या बलभद्र-नारायणके सगे भाई बलदेव-मंदर भाई होते हैं। अंतमें मोक्ष या स्वर्ग जाते हैं। देखो "त्रिषष्टि शलाका पुरुष"।

नव वाड़ शील-(१) स्त्रियोंके स्थानमें न रहना, (२) उन्हें रागसे न देखना, (३) मिष्ट वचन न कहना, (४) पूर्वभोग स्मरण न करना, (५) कामोद्दीपक आहार न करना, (६) श्रृंगार न करना, (७) स्त्रियोंकी सेजपर न सोना, (८) कामकथा न करना, (९) भरपेट भोजन न करना। (श्रा० पृ० २०६)

नवमिका-रुचक पर्वतपर पश्चिम दिशाके कूट राज्योत्तमपर बसनेवाली देवी। (त्रि० गा० ९५३)

नवमी-किंपुरुष व्यंतरोंके इन्द्र सत्पुरुषकी वल्लभिका देवी। (त्रि० गा० २६०)

नवलराम-पं० वसवानिवासी, (पं० १८ ९) वर्द्धमान पुराण छन्दके कर्ता। (दि. ग्रं. नं. ७१)

नशियां-नगरके बाहर जिन मंदिर धर्मशाला व उपवन सहित। (सा० ध० २-८४)

नाग-सनत्कुमार माहेन्द्रस्वर्गका चौथा इंद्रक विमान। त्रि० गा० ४६८)

नागकुमार-भवनवासी देवोंमें दूसरा भेद। इनमें इन्द्र भूतानंद, धरणानंद हैं। उनका चिह्न सर्प है। इनमें ८४ लाख भवन हैं। इनमें एक एक जिनमंदिर हैं; २२ वें कामदेव। देखो "कामदेव"

नागकुंजर स्वामी-(देवसन) व्याकरण सूत्रकी पंचांग टीकाके कर्ता। (दि. ग्रं. २६१)

नागचन्द्र मुनि-तत्वानुशासन व लब्धिसार टीकाके कर्ता। (दि. ग्र. १९४)

नागचन्द्र गृहस्थ-पद्मपुराण कनडी ६००० श्लोकके कर्ता (दि० ग्रं० नं० १९१)

नागदेव कवि-शीतलनाथ पु० प्राकृत, पार्श्वपुराण प्रा० व मदन पराजय सं० के कर्ता। (दि० ग्रं० १५७)

नागदेव पंडित-शारदी नाममालाके कर्ता। (दि० ग्रं० नं० १९६)

नागमाल-पश्चिम विदेह सीतोदा नदीके उत्तर तटपर तीसरा वक्षार पर्वत। (त्रि. गा. ६६९)

नागवर-अंतिम स्वयंभू स्वयंभूरमणसे इधरको छठा समुद्र द्वीप व समुद्र। (त्रि० गा० ३०६-७)

नाग्न्य परीषह-मुनि नग्न रहते हुए लज्जाभावको जीतते हैं। (सर्वा० अ० ९-९)

नागराज-कर्णाटक जैन कवि (सन् १३३१) पुण्याश्रव चम्पूके कर्ता। (क० नं० ६३)

नागवर्म-प्रथम। कर्णाटक जैन कवि। वेंगी देशके

वेंगी नगरवासी सन् ९८४ गुरू अजितसेनाचार्य यह बड़ा योद्धा भी था। छंदोम्बुधिका कर्ता व कादम्बरीका अनुवादक (क० नं० १८) द्वितीय चालुक्यवंशी जगदेवमल्लके कालमें। (स० ११३९-११४९) सेनापति वजन्न कविका गुरू था। काव्यावलोकन, कर्णाटक भाषा भूषण व वस्तुकोषका कर्ता (क० नं० १८-१९)

नागवर्माचार्य–कर्णाटक जैन कवि (सन् १०७०) उदयादित्य राजाका सेनापति। चंद्रचूडामणि शतक व ज्ञानसारका कर्ता–भुत्त, रत्नतीर्थका संस्थापक। (क० नं० २-३)

नागसेन–श्री महावीरस्वामीके मोक्षके पीछे १६ वर्ष बाद १८१ वर्षमें ११ अंग १० पूर्वके ज्ञाता ११ महामुनि हुए उनमें पांचवें। (श्र० पृ० १४)

नागहस्ति–गुणधर आचार्यकृत कषाय प्राभृतका विवरण लेखक मुनि। (श्र० पृ० २१)

नागार्जुन–कर्णाटक जैन कवि, वैद्यक शास्त्रके पारंगत पूज्यपाद स्वामी जो जैनेन्द्र व्याकरणके कर्ता थे उसके भानजे, नागार्जुनकल्प आदि वैद्यक ग्रन्थोंके कर्ता। (नं० ७)

नाचिराज–कर्णाटक जैन कवि (सन् १३००) अमरकोशकी कन्नड टीकाका कर्ता। (क. नं. ६१)

नाटकत्रय–श्री कुन्दकुन्दाचार्य कृत पंचास्तिकाय, प्रवचनसार व समयसार ग्रन्थ।

नाडी-त्रस–जो १ राजू लम्बी चौड़ी व १४ राजू ऊँची है, लोकके मध्यमें।

नातपुत्त–नाथ पुत्र, नाथ वंशके उत्पन्न श्री महावीरस्वामी २४ वें वर्तमान तीर्थंकर। बौद्ध पुस्तकोंमें इसी नामसे उल्लेख है। देखो "महावीरस्वामी"

नाथधर्म कथा–(ज्ञातृधर्म कथा) द्वादशांग वाणीका छठा अंग जिसमें गणधर देवकृत प्रश्नोंका उत्तर है व तीर्थंकर गणधर आदि सम्बन्धी धर्मकथाका कथन है। इसके ९ लाख ५६ हजार मध्यम पद हैं। (गो० जी० ३५६-३५९)

नाथूलाल दोसी–(जयपुरी) (सं० १९१९में) परमात्म प्रकाश दोहा, सुकुमाल चरित्र, महीपाल चरित्र, दर्शनसार, समाधि तंत्र वचनका (४९९० श्लो.) रत्नकरण्ड छन्द आदिके कर्ता (दि. ग्र. ७६)

नाथूराम प्रेमी–देवरी (सागर) निवासी। जिनवाणीके उद्धारक, जैन ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालयके संचालक, सम्पादक जैन हितैषी, माणिकचन्द ग्रन्थमालाके मंत्री। हाल मौजूद हैं।

नाना गुण हानि–गुण हानियोंका समूह। देखो "गुण हानि"

नाभि–वर्तमान भरतके चौदहवें कुलकर श्री ऋषभदेवके पिता। (त्रि० गा० ७९३)

नाभिगिरि–जम्बूद्वीपमें शरीरमें नाभिके समान मेरुपर्वत मध्यमें है (त्रि. गा. ५७०); जम्बूद्वीपके हेमवत, हरि, रम्यक, हैरण्यवत इन चार क्षेत्रोंके मध्य प्रदेशोंमें एक १ नाभिगिरि है। नाम क्रमसे हैं–श्रद्धावान्, विजटावान्, पद्मवान्, गंधवान् सफेद वर्ण हैं, हजार योजन ऊँचे व चौड़े नीचे ऊपर खड़े हुए ढोलके आकार हैं। इनमें क्रमसे स्वाति, चारण, पद्म, प्रभास, व्यन्तरदेव रहते हैं। पांच मेरु सम्बन्धी २० नाभिगिरि हैं। (त्रि० गा० ७१८)

नाम कर्म–"नमयति नाना योनिषु नरकादिपर्यायैः, नमयति शब्दयति इति नाम।" जो नाना योनियोंमें नरक आदि पर्यायोंके द्वारा आत्माको नामांकित करे वह नाम कर्म है, (सर्वा. अ. ८-४७); जिसके उदयसे शरीरकी सर्व रचना आदि बनती है व शरीरमें क्रिया होती है। इसके मूल भेद ४२ व उत्तर भेद ९३ हैं। (देखो कर्म)

नाम कर्म संस्कार–गर्भान्वय क्रियामें आठवां संस्कार। नये बालक जन्मके दिनसे १२ दिन होजावे तब होम पूजादि करे व तीर्थंकरोंके १००८ नाम सहस्रनामके व अन्य शुभ नाम रखे जावें। पहले बालकका नाम व गृहस्थ द्वारा रखा जावे। जो नाम निकले वही (?) देखो (गृ. अ. ४)

नाममाला–धनंजय-कोष मुद्रित है ।

निक्षेप लोक व्यवहारके लिये नाम, स्थापना, द्रव्य, भावमें पदार्थको स्थापन करना । (जै० सि० प्र० नं० १०९–१११) नाम–गुणकी अपेक्षा न करके कोई भी नाम किसीका रख देना । जैसे एक बालकका नाम इन्द्रराज रक्खा, वह बालक इन्द्रराजकी अपेक्षा नाम निक्षेपरूप है । स्थापना–साकार व निराकार पदार्थमें वह यह है ऐसा मान करके स्थापना करनी जैसे श्री पार्श्वनाथकी प्रतिमाको पार्श्वनाथ मानके भक्ति करना तदाकार स्थापना है व सतरंजकी गोटोंमें हाथी, घोड़ा मानना अतदाकार स्थापना है । द्रव्य–जो पदार्थ आगामी परिणामकी योग्यता रखता हो व भूतकालमें वैसा था उसको वर्तमानमें वैसा कहना, जैसे राजपुत्रको राजा कहना । भाव–वर्तमान पर्याय संयुक्त वस्तु जैसी हो, जैसे राज्य करते हुए हीको राजा कहना ।

नाम सत्य–देशादिककी अपेक्षा जो नाम जिस वस्तुको दिया जाय व केवल व्यवहारकी अपेक्षा जिसका जो नाम रख दिया जाय उसे वैसा कहना । जैसे किसीका नाम जिनदत्त है तब उसे जिनदत्त कहना नाम सत्य है । (गो. जी. २२१)

नारक चतुष्क–देखो "नरक चतुष्क"

नारकायु–देखो "नरक आयु"

नारकी–नरकवासी प्राणी, देखो "नरक"

नारद–देखो "नव नारद"

नाराच संहनन नामकर्म–जिसके उदयसे ऐसे हाड़ हों जिनमें वेठन व कीले हों ।

(सर्वा० अ० ८–११);

नारायण–देखो "नव नारायण"

नारी नदी–जम्बूद्वीपके रम्यक क्षेत्रमें बहकर पूर्व समुद्रमें गिरनेवाली ।

नारीकूट–रुक्मी पर्वतका चौथा कूट ।

(त्रि० गा० ७२७)

नाली–२० कला=१ घड़ी ।

निकट भव्य–आसन्न भव्य–जो भव्य थोड़े भव धारकर मोक्ष होगा । (सा० अ० १–६)

निकल परमात्मा–शरीर रहित, अशरीर सिद्ध भगवान जो सर्व कर्म रहित, परम वीतराग, नित्य ज्ञानानंदमें लीन लोकके अग्रभागमें विराजमान हैं ।

निकाचित करण–दसवां करण–जहां बंधे हुए सत्ताके कर्मोंको अन्य प्रकृतिरूप संक्रमण न किया जाय, न उदयावलीमें लाया जाय, न स्थिति व अनुभागका उत्कर्षण व अपकर्षण किया जासके ।

(गो. क. गा. ४४०)

निकाचित कर्म–वह कर्म द्रव्य जो सत्तामें विना संक्रमण, उदीरणा, उत्कर्षण व अपकर्षणके बंधे रहें, समयपर ही उदय आवें (गो० क० गा० ४४९)

निकाय चतुष्टय–देवोंके चार समूह, भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी व कल्पवासी ।

निगमन–अनुमानके प्रयोगमें किसीका साधन करते हुए व साधनका फल कहते हुए प्रतिज्ञाको दुहराना । जैसे यहां पर्वतपर अग्नि है क्योंकि धूम निकलता है जैसे रसोईघर । यह पर्वत भी वैसे धूमवान है इसलिये यह पर्वत भी अग्नि सहित है । यहां पर्वतकी अग्नि साध्य, धूम साधन, रसोईघर दृष्टांत, यह वैसा ही है । उपनय तथा अंतमें कहा सो निगमन है । (जै. सि. प्र. नं. ६८)

निगोद–साधारण नाम कर्मके उदयसे निगोद शरीरके धारी साधारण जीव होते हैं । नि अर्थात नियत विना अनंत जीव उनको गो अर्थात् एक ही क्षेत्रको द अर्थात् देय वह निगोद शरीर है । जिनके यह शरीर हो वे निगोद शरीरी हैं । वे ही साधारण जीव हैं । जहां एक शरीरके अनंत स्वामी हों वह निगोद शरीर है । ऐसे शरीरधारी जीव सूक्ष्म व बादर दो तरहके होते हैं । जो तीन लोक व्यापी निराधार अव्याबाध हैं, वे सूक्ष्म हैं, जो बाधा सहित व आधारसे हैं वे बादर हैं । एक निगोद शरीरमें अनंत जीव एक साथ जन्मते हैं, एक साथ मरते हैं । साथ जन्मने वालोंका श्वास आदि साथ चलता

है। एक समयके बाद दूसरे अनंत जीव साथ उपजें तो उनका साथ ही मरण होगा। एक निगोद शरीरमें समय२ प्रति अनंतानंत जीव साथ ही उपजते हैं साथ ही मरते हैं परन्तु वह निगोद शरीर बना रहता है। इस निगोद शरीरकी उत्कृष्ट स्थिति असंख्यात कोड़ाकोड़ी सागर है। जिस शरीरमें पर्याप्त जीव उपजते हैं उसमें सब पर्याप्त ही उपजेंगे। जिसमें अपर्याप्त जीव उपजते हैं उसमें सब अपर्याप्त ही उपजेंगे। एक शरीरमें पर्याप्त अपर्याप्त दोनों तरहके जीव नहीं पैदा होते हैं। ये सब साधारण शरीर वनस्पतिकायमें हैं। प्रत्येक वनस्पति जिसके आश्रय निगोद या साधारण शरीर रहते हैं उनको प्रतिष्ठित प्रत्येक कहते हैं। जिनके आश्रय नहीं रहते उनको अप्रतिष्ठित प्रत्येक कहते हैं। जो निगोद जीव अपर्याप्त कर्मके उदयसे अपर्याप्त होते हैं उनकी आयु श्वास (नाड़ी) के अठारहवें भाग होती है। (गो० जी० गा० १९०) जिस वनस्पतिकी कंदकी व मूलकी व क्षुद्र शाखाकी व स्कंधकी छाल मोटी हो वे अनन्तकाय सहित प्रतिष्ठित प्रत्येक हैं। जिनकी पतली हो वे अप्रतिष्ठित प्रत्येक हैं। देखो 'अनंतकाय'

निगोद रहित स्थान-देखो शुद्ध "अप्रतिष्ठित शरीर"

नित्यकर्म (चर्या)-मुनि या गृहस्थके नित्य करनेके योग्य आवश्यक क्रिया। मुनिके ६ कर्म हैं (१) सामायिक, (२) प्रतिक्रमण, (३) प्रत्याख्यान, (४) स्तुति, (५) वन्दना, (६) कायोत्सर्ग। गृहस्थके ६ कर्म हैं १ देव पूजा, २ गुरुभक्ति, ३ स्वाध्याय, ४ संयम, ५ तप, (ध्यान) ६ दान।

नित्य निगोद-जो जीव अनादिकालसे निगोद पर्यायको धरे हुए हैं। अभीतक अन्य पर्याय नहीं पाई। जो निगोदसे निकलकर अन्य पर्याय धरकर फिर निगोदमें आते हैं वे इतर या चतुर्गति निगोद हैं वे आदि व अंत लिए हुए हैं। नित्य निगोदमें जिनके भाव कलंक अधिक है वे निगोदसे नहीं निकलते हैं। जिनके भाव कलंक थोड़ा होता है वे जीव नित्य निगोदसे निकलकर चतुर्गतिमें आते हैं सो छः महीना आठ समयमें छःसौ आठ (६०८) जीव नित्य निगोदसे निकलते हैं व इतने ही जीव छः मास आठ समयमें संसारसे छूटकर मुक्त होते हैं। (गो० जी० गा० १९७)

नित्यलोक-रुचक द्वीपके रुचक पर्वतके अभ्यंतर कूटोंमें दक्षिण दिशाका कूट, इसपर शतह्रदा देवी बसती है। (त्रि. गा. ९३७)

नित्यमह पूजा-रातदिन अपने घरसे अक्षतादि सामग्री लेकर जिनमंदिरमें अर्हंत पूजा करनी। (सा० अ० २-२९)

नित्यवाहिनी-विजयार्द्धकी दक्षिण श्रेणिमें ४९ वां नगर। (त्रि० ७०१)

नित्योद्योत-रुचक पर्वतके अभ्यंतर उत्तर दिशाका कूट जिसपर सौदामिनी देवी बसती है। (त्रि. गा. ९९७)

नित्योद्योतिनी-विजयार्द्धकी दक्षिण श्रेणीमें ४७ वां नगर। (त्रि. गा. ७०१)

निदाघ-तीसरे नरककी पृथ्वीमें तीसरा इंद्रक बिला। (त्रि. गा. १९६)

निदान-आगामी कालमें भोगोंकी इच्छा। यह सल्लेखनाका पांचवां अतीचार है (सर्वा. अ. ७-३७); चौथा आर्तध्यान-भोगोंके मिलनेके लिये चिंता करना, आतुर रहना (सर्वा. अ. ९-३३); यह तीन शल्योंमेंसे तीसरा शल्य है जो [illegible] व्रतोंमें बाधक है।

निद्रा-दर्शनावरणीय कर्म जिसके उदयसे नींद आवे। (सर्वा. अ. ८-७)

निद्रानिद्रा-दर्शनावरणीय कर्म-जिसके उदयसे गाढ़ नींद आवे, कठिनतासे जगे। (सर्वा. अ. ८-७)

निधत्ति-[illegible] या उद[illegible] न हो। देखो "[illegible]"

निमग्न-[illegible] जिसमें [illegible] हूबे [illegible] [illegible] है। [illegible]

नदीका यह स्वभाव है कि हलकी भी वस्तुको नीचे लेजाती है। (त्रि. गा. ५९३-५९५)

निधि–चक्रवर्तीके नौ निधि होती हैं। देखो शब्द "चक्रवर्ती"

निमित्त कारण–जो पदार्थ स्वयं कार्यरूप न हो किन्तु कार्यके होनेमें सहायक हो। जैसे घड़ेके बननेमें दण्ड चाक आदि। (जै.सि.प्र. नं० ४०७)

निमित्त दोष–जो आठ प्रकार निमित्त ज्ञानसे गृहस्थोंको सुख दुःख बताकर वस्तिका ग्रहण करे, (भ. पृ. ९१); जो निमित्त ज्ञानसे चमत्कार बताय आहार ग्रहण करे। (भ. पृ. १०७)

निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध–एक दूसरेके कार्य होनेमें व परिणमनेमें एक दूसरेको परस्पर सहायक हों। जैसे जीवके अशुद्ध रागद्वेष भावोंके निमित्तसे नवीन कर्मोंका बंध होता है व पुरातन कर्मोंके उदयसे जीवके रागादि भाव होते हैं। कर्मबंधमें रागादि भाव निमित्त हैं, कर्मबंध नैमित्तिक हैं। रागादि भाव होनेमें कर्मोदय निमित्त हैं, रागादि भाव नैमित्तिक भाव हैं।

निमित्त ज्ञान–आठ प्रकारका होता है जिनसे भूत व भावीकी बातको कहा जासके। १–व्यंजन–तिल मुस आदि देखकर शुभ अशुभ जानना, २ अंग–मस्तक, हाथ, पग, देखकर शुभ अशुभ जानना, ३ स्वर–चेतन व अचेतनके शब्द सुनकर जानना, ४ भौम–भूमिका चिकना रूखापना देखकर जानना, छिन्न–वस्त्र, शस्त्र, आसन, छत्रादि छिदा हो उसे देखकर जानना, ६ अंतरिक्ष–ग्रह नक्षत्रका उदय आतमासे जानना, ७ लक्षण–स्वस्तिक कलश शंखचक्र आदिसे जानना, ८ स्वप्न–शुभ व अशुभ स्वप्नोंसे जानना। (भ० पृ० १०७)

निमिष–चक्षु टिमकार–असंख्यात समय।

निर्मलकुमार–जैन अग्रवाल जमींदार आरा (विहार), मौजूद हैं। जैन सिद्धांत भवनके मंत्री व जैन बालाविश्राम धनुपुराके संस्थापक।

निर्मलदास–पं०, पंचाख्यान छन्दके कर्ता। (दि० ग्रं० नं० ७७)

नियतिवाद–जो जिस काल जिसके द्वारा जैसा जिसके नियमसे होनेवाला है सो तिस काल उसके द्वारा वैसा उसको नियमसे होता है ऐसा नियतिका एकांत मत। (गो. क. गा. ८८१)

नियतिवादी–नियतिवादका पक्षकार-एकांतमती।

नियम–कालके प्रमाणसे किसी वस्तुके त्यागकी प्रतिज्ञा करना। गृहस्थको १७ नियम नित्य विचारने योग्य हैं–(१) भोजन आज इतनेवार करूंगा, (२) छः रस (दूध, दही, घी, शकर, लोण, तेल) मेंसे कौनसा त्यागा, (३) भोजन सिवाय पानी कितनी दफे पीऊंगा, (४) तेल उवटने आदिका विलेपन इतनीवार करूंगा, (५) पुष्प इतने प्रकारके इतनीवार सूघूंगा, (६) पान सुपारी इलायची इतनेवार या इतनी खाऊंगा, (७) संसारी गीत केवार सुनूंगा या नहीं, (८) संसारी नृत्य देखूंगा या नहीं, (९) आज ब्रह्मचर्यसे रहूंगा या नहीं, (१०) इतनी बार स्नान करूंगा, (११) आभूषण इतने पहनूंगा, (१२) वस्त्र इतने पहनूंगा, (१३) वाहन अमुक १ सवारी रक्खी, (१४) पलंग आदि सोनेके आसन कौन २ रक्खे, (१५) बेंच, कुरसी, बैठनेके आसन कौन २ रक्खे, (१६) सचित्त वनस्पति इतनी खाऊँगा, (१७) सर्व खाने पीनेकी व अन्य वस्तु इतनी रक्खी। (गृ० भ० ८)

नियमसार–कुन्दकुन्दाचार्य कृत अध्यात्म प्राकृत ग्रन्थ सटीक मुद्रित।

निरतिचार–दोष न लगाना। देखो "अतिचार"

निरय–पहले नर्ककी पृथ्वीमें दूसरा इंद्रक बिला। (त्रि० गा० १५४)

निरयमुख–वर्तमान भरतके प्रसिद्ध नौ नारदोंमें आठवें नारद। (त्रि. गा. ८३४)

निराकार स्थापना निक्षेप–किसी वस्तुमें किसीको स्थापना जिसमें उसका आकार वैसा न हो।

अतदाकार स्थापना—जैसे एक लकीर खींचकर बताना यह नदी है या यह पर्वत है।

निराकार उपयोग—दर्शनोपयोग, जिसमें सामान्य ऐसा ग्रहण हो कि आकार पदार्थका न प्रगटे। जब आकार प्रगट होजाता है तब मतिज्ञान होजाता है। देखो "दर्शन"

निरुक्ति—व्याकरण द्वारा शब्दका खोलकर अर्थ करना जैसे "अतति परिणमति जानाति इति आत्मा" जो एक ही काल परिणमें व जाने सो आत्मा है।

निरुद्ध—पांचवे नरकके तमक इंद्रकमें पूर्व दिशाका श्रेणीबद्ध बिला। (त्रि० गा० १६१)

निरुद्ध अविचार भक्त प्रत्याख्यान—जो मुनि रोगी हो व पर संघमें जानेको असमर्थ हो उसके यह समाधिमरण होता है, तब यह साधु अपने संघहीमें आलोचना करके समाधिमरणकी विधि करे। इसके दो भेद हैं—एक प्रकाश जो प्रगट हो जाय, दूसरा अप्रकाश जो समाधिमरण लोगोंको प्रगट न हो। जहां कोई विघ्न होता जाने वहां समाधिमरणको प्रगट न करे सो अप्रकाश है।
(भ. पृ. ९८२–९८३)

निरुद्धतर अविचार भक्त प्रत्याख्यान—यदि किसी साधुको पशु आदि व अचेतन कृत उपसर्ग आजाय व अचानक मरण होता जाने तब जो कोई निकट साधु हो उसीसे आलोचना करके मरण करे।
(भ. पृ. ९८३)

निरुपभोग—नहीं भोगना।

निरोध—रोकना, बन्द करना, रुक जाना।

निरोधा—चौथे नरकके आरा इंद्रककी एक दिशाका श्रेणीबद्ध बिला। (त्रि० गा० १६१)

निर्ग्रंथ—वे साधु जिनके मोहका नाश होगया है व जिनको एक अंतर्मुहूर्त पीछे केवलज्ञान होनेवाला है ऐसे साधु। यह साधुओंका चौथा भेद है।

निर्ग्रंथ लिंग—जहां नग्न व परिग्रह रहित भेष हो मात्र पीछी व कमण्डल दया व शौचका उपकरण हो।

निर्जर पंचमी व्रत—आषाढ सुदी पंचमीको उपवास प्रारम्भ करके हरएक पंचमीको कातिक सुदी तक पांच मास प्रोषधोपवास करे, पूजा करे, अंतमें उद्यापन करे। (कि० कि० पृ० १२७)

निर्जरा—कर्मोंका एक देश झड़ना। यह दो प्रकार है। सविपाक—जो चारों गतिके जीवोंके कर्मके पककर उदय आनेपर हुआ करती है। जो कर्म अपने विपाक कालके पहले सम्यग्दर्शन तपादिके द्वारा उनकी स्थिति घटाकर उदयावलीमें लाकर झाड़ दिये जावें वह अविपाक है। (सर्वा० ण० ९–२३)

निर्जरानुप्रेक्षा (निर्जराभावना)—निर्जराके कारण अनशन आदि १२ प्रकार तपका विचार करना।

निर्जल व्रत—जल भी न लेकर निराहार पान रहना।

निर्दुःख—ज्योतिषके ८८ ग्रहोंमें ६० वां ग्रह।
(त्रि० गा० ३६८)

निर्दोष सप्तमी व्रत—भादव सुदी सप्तमीको दोष रहित प्रोषधोपवास करे। सात वर्ष करके उद्यापन करे। (कि० कि० पृ० १९१)

निर्मल—आगामी भरतकी चौवीसीमें १६ वां तीर्थंकर कृष्ण नारायणका जीव। (त्रि. गा. ८७४)

निर्मंत्र—ज्योतिषके ८८ ग्रहोंमें ५९ वां ग्रह।
(त्रि० गा० ३६८)

निर्माण कर्म—नामकर्म—जिसके उदयसे शरीरके भीतर अंगादिका स्थान व प्रमाण बने।
(सर्वा० अ० ८–११)

निर्माणरजा—लौकांतिक देवोंमें एक अंतरालका भेद। (त्रि० गा० ५३८)

निर्माल्य—जो सामग्री मंत्र बोलकर श्री जिनेन्द्रादिकी पूजामें चढ़ादी जाय "देवद्रव्य"
(तत्वार्थसार अ० ४–५६)

निर्यापक—समाधि मरण करानेवाले मुनि एककी वेयावृत्य करनेमें उनमें जो साधु हो उनको निर्यापक कहते हैं। उनके गुण हैं—धर्मप्रिय हो,

धर्ममें दृढ़ हों, संसारसे भयभीत हों, धीर हों, अभिप्रायको पहचाननेवाले हों, निश्चल हों, त्यागके मार्गको जानते हों, योग्य अयोग्यके विचारनेवाले हों, चित्तको समाधान कर सकें; प्रायश्चित्त शास्त्रके ज्ञाता हों। आत्मतत्व परतत्वके जाननेवाले हों। समाधि मरण करानेवाले उत्कृष्ट ऐसे ४८ मुनि हों व जघन्य चार हों व दो हों, एकसे सेवा नहीं होसक्ती है।
(भ० पृ० २४६....)

निर्यापकाचार्य–निर्यापक मुनियोंको नियत करनेवाले आचार्य।

निर्लांछन–खर कर्म–जिस कामसे पशुओंके अङ्गोंको छेदना भेदना पड़े ऐसी आजीविका करना।
(सा० अ० ५–२२)

निर्वर्तना अजीवाधिकरण–कर्मके आस्रवका आधार अजीव भी होता है। निर्वर्तना रचना या बनावटको कहते हैं। इसके दो भेद हैं, मूल गुण निर्वर्तना–शरीर, वचन, मन, श्वासोश्वासका बनना। उत्तर गुण निर्वर्तना–चित्र, पात्र, मकानादिका बनना। (सर्वा० अ० ६–९)

निर्वाण–सर्व कर्मोंसे या शरीरसे या रागद्वेषादिसे निर्वृत्त होकर या छूटकर आत्माका शुद्ध हो जाना या मोक्ष होजाना। जहां नवीन कर्मके आस्रवके कारण मिथ्यात्व, अविरति, कषाय, योग भी न रहें और न कोई पूर्व बंधा कर्म ही शेष रहा।
(सर्वा० अ० १०–१)

निर्वाण कल्याणक–जब तीर्थंकर मुक्त होते हैं अर्थात् शरीरादिसे छूटकर सिद्ध पर्यायमें जाते हैं उसी समय इंद्रादिदेव आकर शरीरको शिबिकामें विराजमान करके सुगंधित द्रव्योंसे भस्म कर देते हैं, फिर उस अग्निको पवित्र जानकर पूजते हैं, फिर शरीरकी भस्मको अपने माथेपर, दोनों भुजाओंमें, गलेमें व छातीमें लगाते हैं, बड़ा उत्सव करते हैं तथा वहां इंद्र वज्रसे चिन्ह कर देता है वही सिद्धस्थान माना जाता है, सर्व नरनारी सिद्धक्षेत्र मानके पूजा करते हैं (स्वयंभू स्तोत्र श्लो० १२७) व आदि पु. प. ४७–३४३) (उत्तरपुराण पर्व ९३–९४) इन्द्रादिदेव वही सिद्धक्षेत्रकी कल्पना करते हैं।

निर्वाण कल्याण वेलाव्रत–जिस तिथिको चौवीस तीर्थंकरोंका निर्वाण हुआ हो उस दिनको पहला व दूसरे दिन दूसरा इस तरह वेला करें। २४ वेले १ वर्षमें पूर्ण करे, धर्मध्यान करे।
(कि. क्रि. पृ. १३२)

निर्वाणकाण्ड–प्राकृत व भाषा–मुद्रित इसमें सिद्धक्षेत्र व अतिशयक्षेत्रोंका वन्दन है।

निर्वाणक्षेत्र–जहांसे तीर्थंकर व सामान्य केवल ज्ञानी मोक्ष गए हों। वर्तमानमें २४ तीर्थंकरोंके निर्वाणक्षेत्र सम्मेदशिखर २० के, कैलाश आदिनाथका, मंदारगिरि वासपूज्यका, गिरनार नेमनाथका व पावापुर महावीरका नियत हैं। देखो "जैन तीर्थस्थान।"

निर्वाणपुर–सिद्धक्षेत्र।

निर्विकल्प–निराकार, दर्शनोपयोग, स्थिर ज्ञान।

निर्विकृति–जो भोजन मनको विकार न करे। विकृति भोजन चार प्रकार है–१ गोरस–दूध दही छाछ घी, २ इक्षुरस–खांड शक्करादि, ३ फलरस, ४ धान्य रस, चावलका मांड आदि। जो अनुपवास करे वह उनको न लेकर मात्र जल पीवे।
(सा० अ० ५–३५)

निर्विचिकित्सा–अंग–सम्यग्दर्शनका तीसरा अंग–ग्लानि न करना, भूख, प्यास, शर्दी, गर्मी पड़नेपर व मल मूत्रादि द्रव्यपर ग्लानि न करना व दुखित व रोगी मानवसे घृणा न करना, वस्तुस्वरूप विचार लेना। (पु० श्लो० २५)

निर्वृत्ति–प्रदेशोंकी रचना विशेष होना। इंद्रियोंके आकार रूप आत्माके विशुद्ध प्रदेशोंका होना अभ्यंतर निर्वृत्ति है तथा पुद्गलोंका इंद्रियोंके आकार रूप होना बाह्य निर्वृत्ति है। (जै० सि० नं० ४७७–७८)

निर्वृत्यपर्याप्तक–जिस जीवके शरीर पर्याप्ति न हो परन्तु पर्याप्ति नामकर्मके उदयसे अवश्य पूर्ण

होनेवाली हो उस जीवको शरीर पर्याप्ति पूर्ण होनेके पहले तक निर्वृत्यपर्याप्तक कहते हैं फिर पर्याप्तक कहेंगे। यह अंतर्मुहूर्तके भीतर होजाती है। (जै० सि० प्र० नं० ३१४)

निर्वृत्यक्षर—जो अक्षर कण्ठ, ओष्ट, तालु आदिके प्रयत्नसे पैदा हो। अकारादि स्वर व ककारादि व्यंजन सो सब निर्वृत्यक्षर हैं। उनकी लिपि करनेवाला भिन्न२ देशके अनुसार जो अक्षर सो स्थापना अक्षर है।

निर्वृत्ति मार्ग—त्याग मार्ग, मुनि व त्यागी होनेकी तरफ चलना।

निर्वेद—संसार, शरीर, भोगोंसे वैराग्य भाव। (गृ० अ० ७)

निर्वेदनी कथा—जो कथा संसार देह भोगोंका सत्यार्थ स्वरूप दिखाकर आत्माको परम वीतराग रूप करनेवाली हो। (भ० पृ० १९६)

निलय—रहनेके स्थान—व्यंतरदेवोंके निलय तीन प्रकार हैं—(१) भवनपुर—जो मध्यलोककी सम भूमि द्वीप समुद्रोंपर होते हैं, (२) आवास—जो पृथ्वीसे ऊपर होते हैं, (३) भवन—जो चित्रा पृथ्वीसे नीचे होते हैं। ज्योतिषके ८८ ग्रहोंमें १७वां ग्रह। (त्रि० गा० २९४-९५)

निर्वृत्तिकाय—मोक्षका इच्छुक।

निर्वृत्ति मार्ग—मोक्षमार्ग, त्याग मार्ग।

निशिभोजन त्याग प्रतिमा—रात्रिको चार प्रकारका आहार न करना। यह प्रतिज्ञा जिसको होती है वह छठी प्रतिमाधारी है। अन्न, पान, खाद्य, लेह्य, (चाटने योग्य) चार प्रकारका आहार है। रात्रिको वह भुनगे दिनमें बहुतसे दिखनेमें भी नहीं आते हैं व जो सूर्यकी आतापसे नहीं उड़ते हैं। अनगिनती उड़ने लगते हैं, उनके नेत्र व घ्राणइंद्रियका विषय होता है, सुगन्ध पाकर भूखे प्यासे आते हैं सो भोजन पानमें गिरकर प्राण गमाते हैं नेत्र इंद्रियके विषयके प्रेरे हुए दीपककी लौमें आसक्त होनाकर जलते हैं। इससे दयावान गृहस्थ रात्रिको न भोजनका आरम्भ करते हैं न खाते पीते हैं ऐसी छठे दरजेके पहले तक अभ्यास है, जितना बनसके छोड़े। यहां तो पक्का नियम है। (र० १४२)

निष्कषाय (निःकषाय)—आगामी भरतके १४ वें तीर्थंकर। (त्रि० गा० ८७४)

निष्कांक्षित (निःकांक्षित) सम्यग्दर्शनका दूसरा अंग। इंद्रियजन्य सुख कर्मके आधीन, अंत सहित, आकुलताओंसे भरा हुआ, अतृप्तिकारी, दाहदहक व पापका बीज है ऐसी श्रद्धा। (र. श्लो. १२)

निष्कांचित (निःकांचित)—जिस बंध प्राप्त कर्मद्रव्यमें व स्थिति न अनुभाग घटे बढ़े न पर रूप बदले न उदीरणा हो। अपने समयपर उदय आवे। (च. छं. ३९)

निश्शल्य (निःशल्य)—तीन प्रकार शल्य जिसमें न हो, माया (कपट), मिथ्या (श्रद्धाका अभाव,) निदान (भोगाकांक्षा)। (सर्वा. अ. ७-१८)

निश्शांकित (निःशांकित) अंग—सम्यग्दर्शनका पहला अंग—जैन तत्व ही सत्य है, ऐसा ही है इसके सिवाय दूसरा यथार्थ नहीं है न और प्रकारसे है, ऐसी निष्कम्प रुचिका होना। (र. श्लो. ११)

निशुंभ—वर्तमान भरतके नौ प्रतिनारायणोंमें चौथे। (त्रि० गा० ८२८)

निश्चयकाल—कालद्रव्य—जो सर्व द्रव्योंके पलटनेमें उदासीन निमित्त कारण है। लोकाकाशके असंख्यात प्रदेशोंमें एक एक कालके भिन्न२ रत्नकी राशिके समान कालाणु संख्यामें असंख्यात हैं। समय व्यवहारकाल है। समयोंका समूह ही दिन रात आदि है। व्यवहारकाल निश्चयकालकी पर्याय है। जब एक पुद्गलका परमाणु एक कालाणुसे निकटवर्ती कालाणुपर मंदगतिसे जाता है तब इस क्रियाके निमित्तसे समय पर्याय पैदा होती है। (प्रवचनसार ज्ञेय अधिकार), (द्रव्यसंग्रह, टी. जी. गाथा ९६८-९७३)

निश्चयनय—जो मूल वस्तुके असली स्वभावको ग्रहण करे। जैसा मूल पदार्थ है उसको वैसा ही

यथार्थ ग्रहण करे वह निश्चयनय है, वही भूतार्थ है। सत्यार्थको बतानेवाली है। जैसे संसारी जीव निश्चयनयसे कर्म रहित अपने स्वभावमें है। स्वाश्रयः निश्चयः जो परद्रव्यका आलम्बन छोड़ एक ही द्रव्यके स्वभावपर दृष्टि रक्खे सो निश्चयनय है। (पु० श्लो० ५०८)

निश्चल-ज्योतिषके ८८ ग्रहोंमें ९२ वां ग्रह। (त्रि० गा० ३६८)

निःशीलव्रतत्व-पांच व्रत और सप्त शीलका न पालना।

निषद्या क्रिया-गर्भान्वय क्रियाका नवां संस्कार। जब बालक ५-६ मासका बैठने योग्य होजावे तब होम पूजादि करके बालकको मुलायम गद्दे सहित पलंगपर बिठावे, मंगल गान हो, देखो मंत्रादि। (गृ० अ० ४)

निषद्या परीषह-साधुकी शांतिसे सहने योग्य २२ परीषहोंमें १०वीं। मुनि शून्य स्थानमें नियमित कालका नियम लेकर आसनसे बैठते हैं उस समयपर सिंह-वाघादिके शब्द सुननेपर व उपसर्ग पहुँचनेपर व आसनकी बाधा होजानेपर कभी आसन नहीं छोड़ते। (सर्वा० अ० ९-७)

निषद्ध-जम्बूद्वीपमें तीसरा कुलाचल। विदेह क्षेत्रके दक्षिण तपाए हुए सोनेके रंगका पूर्व पश्चिम समुद्र तक लम्बा ऊपर, नीचे, मध्यमें, समान, चौड़ा। इसपर तिगिंछ द्रह है जिससे सीतोदा और नारी नदियें निकली हैं। नारि हरिक्षेत्रमें पूर्वको सीतोदा विदेहमें पश्चिमको वही है। (त्रि० गा० ५६५), सीतोदा नदीके एक द्रहका नाम (त्रि० गा० ६५७); मेरु पर्वतके नंदनवनमें एक कूट। (त्रि० गा० ६२९) निषध पर्वतपर नौ कूटोंमें दूसरा कूट। (त्रि. गा. ६२५)

निषिद्धिका-(निषीधिका या निसतिका) प्रमादसे किये हुए दोषोंके निराकरणको अर्थात प्रायश्चित्त विधिको बतानेवाला। अंग बाह्य जिनवाणीका १४ वां प्रकीर्णक। (गो० जी० गा० ३६७-८)

निषेक-एक समयमें जितनी कर्म वर्गणाएं उदयमें आकर झड़ती हैं. उनका समूह। (जै० सि० प्र० नं० ३७८)

निषेकहार-गुण हानि आयामसे दूना। जैसे ६३०० कर्मोंका बटवारा ३२००, १६००, ८००, ४००, २००, १०० ऐसे छः गुणहानिमें किया हरएक गुणहानिका काल, आठ समय वही गुणहानि आयाम हुआ तब निषेकहार १६ होगा देखो "गुणहानि" (जै० सि० प्र० नं० ३९६)

निषेध साधक-वह हेतु जो किसी बातका अभाव सिद्ध करे।

निषेधिका-नवीन स्थानमें प्रवेश करते हुए वहांके निवासियोंसे पूछकर प्रवेश करना अथवा सम्यग्दर्शन आदिमें स्थिरभाव रखना। यह साधुओंका चौथा समाचार है। (मू. गा. १२६-१२८)

निष्पन्नयोग-देशसंयमी-देशसंयमी या श्रावकके तीन भेद हैं। १ प्रारब्ध-जो देश संयम पालना प्रारम्भ करे, २ घटमान-जिसको देशसंयम पालनेका अच्छा अभ्यास होजावे, ३ निष्पन्न-जिसका देश संयमपूर्ण होजावे। (सा. अ. ३-७)

निसर्गज मिथ्यात्व-अग्रहीत मिथ्यात्व-जो अनादिकालसे मिथ्या श्रद्धान है कि शरीर ही आत्मा है जिसके प्राप्त भवके कार्योंमें ही मगनता है आत्मा रागादिसे भिन्न है ऐसी प्रतीति नहीं है।

निसर्गज सम्यक्त-वह सम्यग्दर्शन या आत्माकी यथार्थ प्रतीति जो परके उपदेश विना ही हो जावे। इसमें अंतरंग कारण, अनंतानुबन्धी कषाय तथा दर्शनमोहका उपशम होना आवश्यक है। अन्य बाहरी कारण हों, परोपदेश न हों तौ भी निसर्गज है। जैसे पर जन्मकी याद, वेदनाका सहन, जिन महिमा या मूर्तिदर्शन, देवोंकी ऋद्धिका अवलोकन। (सर्वा० अ० १-७)

निसर्ग अजीवाधिकरण-मन, वचन, तथा कायका वर्तना कर्म आस्रवमें आधार हैं।

निसर्ग क्रिया–आस्रवकी १७ वीं, पापकी कारण प्रवृत्तिकी आज्ञा देना। (सर्वा. अ. ६–५)

निस्तारक मंत्र–गर्भान्वय क्रियाओंमें जिन मंत्रोंसे होम होता है। देखो (गृ० अ० ४)

निःसृत–बाहर प्रगट पदार्थ।

निसृष्टा–चौथे नर्कके आरा इंद्रककी पूर्वदिशाका श्रेणीबद्ध बिला। (त्रि० गा० १६१)

निह्नव–जानते हुए भी कहना कि हम नहीं जानते हैं। ज्ञानका छिपाना। यह भाव ज्ञानावरण व दर्शनावरणके बन्धका कारण है।
(सर्वा० अ० ६–१०)

निक्षिप्त दोष–ऐसी वस्तिका साधुके ठहरनेके लिये हो जहां सचित्त पृथ्वी, जल, हरितकाय या त्रस जीवोंके ऊपर पाटा आदि रक्खा हो।
(भ० पृ० ९६)

निक्षेप–प्रयोजन वश नाम स्थापना द्रव्य भाव रूपसे पदार्थका लोकमें व्यवहार। गुण बिना नाम रखना सो नाम निक्षेप है। साकार व निराकारमें किसी पदार्थकी कल्पना करना स्थापना निक्षेप है, आगामी या भूत पर्यायका वर्तमानमें आरोपण द्रव्य निक्षेप है। वर्तमान पर्यायका व्यवहार भाव निक्षेप है। (जै० सि० प्र० नं० १०५–१११)

निक्षेप अजीवाधिकरण–कर्मोंके आश्रवका हेतु पदार्थको रखना सो चार प्रकार है। १ अप्रत्य-वेक्षित नि०–बिना देखे धरना, २ दुष्प्रमृष्ट नि०–दुष्टतासे धरना, ३ सहसा नि०–जल्दीसे धरना, ४–अनाभोग नि०–जहां चाहिये वहां नहीं, बिना देखे भाले रखना। (सर्वा० अ० ६–९)

नीच गोत्र कर्म–जिस कर्मके उदयसे लोक निन्दनीय कुलमें जन्म हो। (सर्वा. अ. ८–१२)

नीचोपपाद–व्यंतरोंकी एक जाति जो पृथ्वीसे एक हाथ ऊपर रहते हैं। इनकी आयु १० हजार वर्षकी होती है (त्रि० गा० २९१–२९२)

नीति वाक्यामृत–सोमदेव कृत राजनीतिका प्रसिद्ध ग्रन्थ। मुद्रित है।

नील–कुलाचल पर्वत विदेहके उत्तरमें नीलवर्ण पूर्वसे पश्चिम तक लम्बा भीतके समान, जिसपर केशरी द्रह है जिसमेंसे सीता और नरकांता नदी निकली हैं, जो क्रमसे विदेह और रम्यक क्षेत्रमें पूर्व और पश्चिमको बही हैं। सीता नदीके एक द्रहका नाम। (त्रि० गा० ६९७) ज्योतिषके ८८ ग्रहोंमें १० वां ग्रह (त्रि० गा० ३६४) दिग्गज पर्वत जो भद्रसाल वनमें है। इसपर दिग्-जेन्द्र रहता है (त्रि० गा० ६६२); नील कुला-चलपर दूसरा कूट। (त्रि० गा० ७२६)

नीलकंठ–भरतके आगामी तीसरे प्रतिनारायण।
(त्रि० गा० ८८०)

नील लेश्या–अशुभ भाव जो योग और तीव्र कषायसे हो। इस लेश्यावाले जीवके तीव्रतर कषाय होगा, यह शोक बहुत करेगा। हिंसक क्रूर परिणामी होगा। चोर, मूर्ख, आलसी, ईर्षाभाव धारी, बहुत निद्रालु, कामी, हठी अविचारी, अधिक परिग्रह व आरम्भवान होगा। (प्रा० अ० ३–१)

नील वर्ण नामकर्म–जिस कर्मके उदयसे शरी-रका वर्ण नील हो।

नीला–छठे नर्कका हिमक इन्द्रकमें पहला श्रेणी बद्ध। (त्रि० गा० १६९)

नीलांजना–सौधर्मादि दक्षिण इन्द्रकी नर्तकी सेनाकी महत्तरी देवी। (त्रि० गा० ४९६)

नीलाभास–ज्योतिषके ८८ ग्रहोंमें ११ वां ग्रह। (त्रि० गा० ३६४)

नीली–प्रसिद्ध पतिव्रता व शीलवती स्त्री। लाट देशकी भृगुकच्छ (वर्तमान भरोंच गुजरात) नग-रीका सेठ जिनदत्त सेठानी जिनदत्ता उनकी पुत्री, सो सागरदत्त वणिकने कपटसे जैन बनकर इससे विवाह। सागरदत्त बौद्ध धर्म पालता था। नीलीने खेद न करके अपना जिनधर्म पाला, पतिकी सेवामें कमी नहीं की। तौभी इसकी विधर्मी सासने इसको झूठा अभिमानका दोष लगाकर कलंकित किया। इसने

प्रतिज्ञा की कि जबतक कलंक मुक्त न हूंगी अन्न पानीका त्याग है और जिन मंदिरमें सन्यास लेकर बैठ गई तब व्यंतरदेवी आकर बोली कि नगरके द्वार सब बंद होंगे, जब तेरा ही पाव लगेगा तब खुलेंगे इससे तू कलँक रहित होगी। तथा राजाको स्वप्न दिया जायगा कि पतिव्रता शीलवती स्त्रीके पगसे ही खुलेंगे। देवीने ऐसा ही किया। राजाने स्वप्नका हाल लोगोंसे कहा, सब नगरकी स्त्रियोंको आज्ञा हुई कि स्पर्श करें। जब नीली पहुंची तब खुले। वह बहुत प्रसिद्ध हुई। (आ० क० २८)

नृतमाल–भरतके विजयार्द्धके खण्डप्रपात कूट पर वसनेवाला व्यंतरदेव। (त्रि० गा० ७३९)

नृपतुंग–कर्णाटक जैन कवि (राज्य ई० ८१४–८७७) राष्ट्रकूटवंशी राजा अमोघवर्ष, मान्यखेट, राज्यधानी कविराज मार्ग व प्रश्नोत्तर रत्नमालाका कर्ता। देखो " अमोघवर्ष " (क० नं० १२)

नेमिचन्द–सिद्धांत चक्रवर्ती (वि. सं. ७९४) गोम्मटसार, त्रिलोकसार, लब्धिसार, क्षपणासार, द्रव्यसंग्रहके कर्ता। चामुँडराय राजाके गुरु।
(दि० ग्रं० नं० १९९)

नेमिचन्द कवि–द्विसंधान काव्य टीका, द्विसंधान काव्य (३००० श्लोक) उत्सव पद्धति, प्रतिष्ठातिलक (श्लोक ६०००) त्रैवर्णिकाचार (३०००) प्रवचन परीक्षा (१०००)के कर्ता।
(दि० ग्रं० नं० १६०)

नेमिचंद्र भंडारी–उपदेश सिद्धांतमाला (प्राकृत) व षष्ठीशतकके कर्ता। (दि० ग्रं० १६२)

नेमिचन्द्र–पं०, जयपुरी–(सं० १९११), चौबीसी, तीनलोक व तीन चौबीसी पूजाके कर्ता।
(दि० ग्रं० नं ७८)

नेमिदत्त ब्र०–(वि० सं० १५७५) नेमिनाथ, वर्द्धमान पुराण, धर्मपीयूष श्रा०, आराधना कथाकोष, धन्यकुमार चरित्र, प्रियंकर च०, सुदर्शन च०, सुकौशल च०, श्रीपाल च०, यशोधर च०, सीता च०, रात्रिभोजन च०, कार्तिकेय कथा, समन्तभद्र कथा, धर्मोपदेशनाके कर्ता।

नेमिदेव कवि–नेमिदूत काव्यके कर्ता।

नेमिनिर्वाण काव्य–मुद्रित है।

नैगम नय–दो पदार्थोंमेंसे एकको गौण, दूसरेको मुख्य करके भेद या अभेदको विषय करनेवाला ज्ञान तथा पदार्थके संकल्पको ग्रहण करनेवाला ज्ञान। जैसे रसोईमें चावल बीननेवाला कहता है मैं रसोई कर रहा हूं। यहां चावलोंमें रसोईका अभेद है या संकल्प है। (जै० सि० प्र० नं० ९३)

नैनसुखदास यति देखो " नयनानन्द "

नैनागिरि वा रेसंदीगिरि–पन्नाराज्य सागर ष्टेशनसे ३० मील पर्वतपर २९ दि० जैन मंदिर हैं। यहांपर दत्तादि मुनि मोक्ष पधारे हैं व पार्श्वनाथका समवशरण आया था। (या० द० पृ० ७९)

नैमिप–विजयार्द्धकी उत्तर श्रेणीका ३८वां नगर।
(त्रि० गा० ७०६)

नैष्ठिक ब्रह्मचारी–सातवीं ब्रह्मचर्य प्रतिमाके नियमोंको पालनेवाला ब्रह्मचारी, गृहमें रहनेवाला या गृहत्यागी, मस्तकमें चोटी, जनेऊ हो सफेद वा लाल वस्त्र हों। देव पूजनमें तत्पर। (गृ. अ. १३)

नैष्ठिक श्रावक–अप्रत्याख्यानावरण कषायके उपशमसे जो ग्यारह प्रतिमाओंसे किसी प्रतिमाके नियम पालन करनेवाले व उन्नतिरूप विशुद्ध परिणाम रखनेवाले श्रावक, पंचम गुणस्थानी देशव्रती।
(सा० अ० ३–१)

नैसर्प निधि–चक्रवर्तीके नौ निधियोंमें पांचवी जो अनेक प्रकार मंदिर या भवन निर्माण करती हैं।
(त्रि० गा० ६८२–८११)

नो आगम द्रव्य निक्षेप–किसी पदार्थके ज्ञाताका शरीर जो उस पदार्थके ज्ञानमें उपयुक्त न हो।
(सि० द० पृ० १३)

नो आगम भाव निक्षेप–किसी पदार्थमें वर्तमान उपयुक्त जीवकी वर्तमान शरीररूपी पर्याय।
(सि० द० पृ० १४)

नो इंद्रिय—द्रव्य मन, जो हृदयस्थानमें प्रफुल्लित आठ पांखण्डीके कमलके आकार अङ्गोपांग नाम कर्मके उदयसे मनोवर्गणासे बनता है। यह प्रगट दीखता नहीं, नो इसलिये या ईषत या कुछ इंद्रियकहते हैं। (गो० जी० गा० ४४३–४४४)

नो कर्म—औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस शरीर जो नाम कर्मके उदयसे होते हैं। ये ईषत कर्म हैं, कार्माणकी तरह घातक नहीं हैं मात्र सहायक हैं। (गो जी० गा० २४४); कार्मण सिवाय चार शरीरके बनने योग्य आहारक व तैजस वर्गणा।

नो कर्म तद्व्यतिरिक्त नो आगम द्रव्य निक्षेप—किसी कर्मकी अवस्थाके लिये जो बाहरी कारण हो जैसे क्षयोपशम रूप मतिज्ञानके लिये पुस्तक अभ्यास, दूध, बादाम आदि। (सि० द० पृ० १४)

नो कर्म द्रव्य कर्म—नो कर्म तद व्यतिरिक्त नो आगम द्रव्य निक्षेपका दूसरा नाम। जिस जिस प्रकृतिका जो उदय फलरूप कार्य हो उस २ कार्यको जो बाहरी वस्तु कारणभूत हो सो वस्तु उस प्रकृत्तिका नोकर्म द्रव्यकर्म है। (गो० क० गा० ६८) मूल आठ कर्मोंका नो कर्म यह है। (१) ज्ञानावरणका—वस्त्रादिसे ढकी वस्तु, (२) दर्शनावरणका—राजाका द्वारपाल जो रोकता है, (३) वेदनीका—सहतसे लिपटी खडगकी धारा, (४) मोहनीयका—मदिरा पान, (५) आयु कर्मका नो कर्म चार तरहका आहार है, (६) नाम कर्मका—औदारिकादि शरीर हैं, (७) गोत्र कर्म—काऊँचा नीचा शरीर है। जो ऊँच नीच कुलको प्रगट करता है, (८) अन्तराय कर्मका—भण्डारी है जो राजाको दान देनेसे रोकता है। यह मात्र उदाहरण है। अनेक बाहरी कारण कर्मोंके उदयमें होसके हैं, उत्तर प्रकृतियोंके नामके लिये देखो। (गो.क.गा. ६९)

नोकर्म द्रव्य परिवर्तन—देखो "द्रव्य पुद्गल परावर्तन काल"

नो कषाय—ईषित कषाय, वे नौ हैं, देखो "नव नो कषाय"

न्यग्रोध परिमण्डल संस्थान—शरीरका आकार जो वटवृक्षके समान ऊपर बड़ा हो नीचे छोटा हो। (सर्वा० पृ० ८–११)

न्यामतसिंह—हिसार निवासी मौजूद हैं, बहुतसे जैन नाटक व भजनोंके कर्ता।

न्याय कर्णिका—न्यायका ग्रंथ, मुद्रित है।

न्याय कुमुदचन्द्रोदय—न्यायका ग्रंथ, सरस्वती भवन—बम्बईमें है।

न्याय दीपिका—न्यायका सं० ग्रन्थ, मुद्रित।

न्याय विनिश्चयालंकार—न्यायका ग्रन्थ, सरस्वती भवन—बम्बई।

न्यायावतार—न्यायका सं० ग्रन्थ मुद्रित।

न्यास—निक्षेप, लोक व्यवहार नाम स्थापनादि चार प्रकार।

न्यासापहार—सत्य अणुव्रतका चौथा अतीचार। कोई रुपया अमानत रख गया, भूलसे कम मांगा तो कहना तुम्हारा कहना ठीक है। ऐसा झूठ कहकर धन ले लेना। (सर्वा० अ० ७–२६)

प

पङ्कप्रभा—चौथे नर्ककी पृथ्वी, कीचड़के समान रंगवाली, मध्यलोकसे तीन राजु नीचे जाकर २४ हजार योजन मोटी। इसमें दश लाख बिले हैं, सात पटल हैं, उनमें ७ इंद्रक बिले हैं, यहां उत्कृष्ट आयु १० सागर व जघन्य ७ सागर है। (त्रि. गा. १४४) देखो "नरक" यहां कथन है।

पङ्क भाग—रत्नप्रभा पहली पृथ्वीका दूसरा भाग चौरासी हजार योजन मोटा जिसमें असुरकुमार भवनवासी देव व राक्षस व्यंतरोंके निवास हैं। (त्रि. गा. १४६)

पङ्कवती—सीता नदीके उत्तर तरफ बहती विभंगा नदी। (त्रि० गा० ६६७)

पङ्का—नरकी छठे नर्ककी पृथ्वीमें हिम इंद्रकका दूसरा श्रेणीबद्ध बिला। (त्रि. गा. १६३)

पक्ष—अनुमानके प्रयोगमें जहां साध्यके रहनेका संदेह हो अर्थात् जिसे प्रतिवादीको सिद्ध करनेको बताना हो। जैसे कहना कि इस कोठेमें अग्नि है क्योंकि इसमें धूम है। यहां कोठा पक्ष है।

(जै. सि. प्र. नं. ४७)

पंचाख्य ब्रह्मचारी—तत्वार्थसूत्रकी प्रति पद टीकाके कर्ता। (दि. ग्रं. ४१८)

पञ्चाम्नव ग्रीव—लंकाका राजा सहस्रग्रीवका पोता, रावणका दादा। (इ. २ ए. १९८)

पंचेन्द्रिय जीव—स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, कर्ण इन पांच इंद्रियोंके धारी जीव। पशु, नारकी, देव, मनुष्य।

पंचेंद्रिय तिर्यंच—पांच इंद्रियधारी पशु मनसहित व मन रहित। देखो 'जीव'

पट्टावली—आचार्योंकी परम्पराके नाम।

पड़गाहना—किसी मुनि, क्षुल्लक, ऐलक व आर्यिकाको जो भिक्षासे भोजन करते हैं उनको देखकर कहना "अत्र तिष्ठ तिष्ठ तिष्ठ आहार पानी शुद्ध"

पंडित मरण—तीन प्रकार है (१) पंडित पंडित मरण—केवली भगवानका शरीर छूटकर मुक्त होना। (२) पंडित मरण—प्रमत्त आदि गुणस्थानवर्ती साधुओंका मरण। (३) बालपंडित मरण—सम्यग्दृष्टी तथा श्रावकोंका मरण। (भ. ए. १३)

पंडिताचार्य—योगिभट्—पार्श्वाभ्युदय काव्यकी टीका प्रमेय रत्नालंकार (६०००) प्रमेय रत्नमालिका प्रकाशिकाके कर्ता। (दि॰ ग्रं॰ ४१८); भट्टारक। सप्तभंग तरंगिणी टीका, चंद्रप्रभ काव्य टीका, मुनिसुव्रत काव्य टीकाके कर्ता। (दि॰ ग्रं॰ १७८)

पंडितार्य—(१४ वीं शताब्दी) वाग्मी श्रेष्ठ उपाधिधारी कर्णाटक जैन कवि। (क॰ ११)

पण्णट्ठी—६५५३६; २के अंकका वर्गका चौथा स्थान। जैसे २×२=४; ४×४=१६; १६×१६=२५६; २५६×२५६=६५५३६। (त्रि. गा. ६६)

पत्तन—जहां रत्नोंकी खानें हों। (त्रि. गा. ६७६)

पद—अक्षर समूह तीन प्रकारके हैं। (१) अर्थ पद—जिस वाक्यसे किसी प्रयोजनका बोध हो जैसे "अग्नि आनयं (आगको ला) यहां दो पद सो अर्थ पद है, (२) प्रमाणपद—श्लोक छंद आदि जितने अक्षर समूहोंसे बनता है जैसे अनुष्टुप छंदमें चार पद हैं। एक पद ८ अक्षरका। जैसे "नमः श्री वर्द्धमानाय" यहां ८ पद हैं, (३) मध्यम पद १६३४,८३०७,८८८ अपुनरुक्त अक्षरोंका जिससे द्वादशांग वाणीकी संख्या की गई है। गो॰ जी॰ गा॰ ३३६)

पद विभागिक समाचार—मुनियोंका आचार—यह अनेक तरहका है। सूर्यके उदयसे लेकर दिन-रातकी परिपाटीमें मुनिगण नियमादिको बराबर पालन करे, यह पदविभागी समाचार है। जैसे कोई शिष्य गुरुके पास सब शास्त्रोंको पढ़ चुका हो तब प्रणाम व विनय सहित गुरुको पूछे कि मैंने आपके चरण प्रसादसे सब शास्त्र पढ लिये हैं अब मैं विशेष हैं आचार्यके पास जाना चाहता हूं। यह प्रश्न तीन व पांच ज्ञानी बार करना चाहिये, इस तरह आज्ञा लेकर तीन, दो या एक मुनिको साथ लेजावे। अकेला न जावे। (मू॰ गा॰ १३०-१४६-१४७)

पदसमास—एक पदके ऊपर एक एक अक्षर बढ़ते २ जब पदके अक्षर प्रमाण भेद होजाय वे पद समासके भेद भये तब पद ज्ञान दूना भया। इस तरह एक एक अक्षर बढ़ते २ पदज्ञान तिगुना, चौगुना, पंचगुना आदि संख्यात हजारवार गुना हुआ होजाय तब संघातज्ञानका भेद हो, उसमें एक अक्षर घटाए तब पद समासका उत्कृष्ट भेद होता है। (गो॰ जी॰ गा॰ ३३७)

पदस्थ ध्यान—ॐ, अरहंत आदि पदोंको नासाग्र आदिपर विराजमान करके ध्यान करना।

(ज्ञानार्णव अ॰ ३८)

पदार्थ—जिन पदोंसे अर्थका बोध हो। अर्थ वे हैं जो जीवसे जानने योग्य मोक्षमार्गमें प्रयोजनभूत

पद्मराज-भरतके आगामी उत्सर्पिणीके १२ वें कुलकर। (त्रि० गा० ८७२)

पद्मराजदेव-गृहस्थ, क्षपणासार टीकाके कर्ता। (दि० ग्रं० नं० १६९)

पद्म लेश्या-लाल रंगकी द्रव्य लेश्या, मंदकषायसे अनुरंजित प्रवृत्ति। यह शुभ भाव है। जिसके होते हुए आचार शुद्ध हो, दानमें भाव हो, विनय हो, प्रिय वचन निकले, न्याय मार्गमें गमन हो, सज्जनोंकी प्रतिष्ठा की जाय। (सा० अ० १-१)

पद्मश्री-असुरकुमार भवनवासी देवोंके इंद्र वैरोचनकी तीसरी पट्टदेवी। (त्रि० गा० २३६) सुभौमचक्री की पटरानी। (इ० २ पृ० २९)

पद्मसिंह-ज्ञानसागर ग्रन्थके कर्ता। (दि० ग्रं० १७२)

पद्मसेन कवि-निघंटु वैद्यकके कर्ता। (दि० ग्रं० १७१)

पद्मा-असुरकुमार भवनवासी देवोंके इन्द्र वैरोचनकी पहली पट्टदेवी। (त्रि० गा० २३६); राक्षस व्यंतरोंके इन्द्र भीमकी वल्लभिका देवी। (त्रि० गा० २६८); स्वर्गके दूसरे दक्षिणेन्द्रकी इन्द्राणी। (त्रि० गा० ५१०); सीतोदा नदीके दक्षिण तट पहला विदेह देश। (त्रि० गा० ६८९)

पद्मावती-विदेहकी ३२ राजधानियोंमें १४ वीं (त्रि० गा० ७१२); रुचकगिरिके चौथे हैमवत् कूटपर वसनेवाली देवी। (त्रि० गा० ९५३

पद्मासन-ध्यानका आसन जहां सीधे बैठकर बायां पग दाहिनी जांघपर व दाहना पग बाई जांघपर किया जावे व गोदमें बाएं हाथकी हथेलीपर दाहने हाथकी हथेली रहे।

पद्मोत्तर-जंबूद्वीपके भद्रशाल वनमें दिग्गज पर्वत जिसपर दिग्गजेन्द्र रहता है। (त्रि. गा. ६६२)

पन्थ-मार्ग, मत, आम्नाय।

पन्नालाल (न्यायदीवाकर)-पं० १९७०, पंडित, पद्मावती परवार जाति, जारखी जि० आगरा निवासी, राजवार्तिकके भाषाकार, प्रतिष्ठा करानेवाले।

पन्नालाल (चौधरी)-पं० जयपुरी। ११ ग्रंथोंकी वचनिका कर्ता। जैसे वसुनंदि श्रा०, सुभाषितार्णव, प्रश्नोत्तर श्रावकाचार, तत्वार्थसार, आराधनासार, धर्मपरीक्षा, यशोधर चरित्र, जंबूस्वामी चरित्र आदि। (दि. ग्रं. नं. ८१)

पन्नालाल (दूनीवाले)-पं०, विद्वज्जन बोधक, उत्तरपुराण, राजवार्तिक आदिके कर्ता। (दि. ग्रं. ८०)

पन्नालाल बाकलीवाल-मौजूद हैं जिनवाणीके मुख्य प्रकाशक, तत्वार्थसूत्र, द्रव्यसंग्रह आदिके टीकाकार।

पपौरा तीर्थ-मध्यप्रदेशमें टीकमगढ़से ३ मील, स्टेशन ललितपुर। यहां ८२ शिखरबंद मंदिर हैं। प्राचीन मंदिर भौंहरेका है, जो सं० १२०१ चंदेलवंशी राजा मदनवर्म देवके समयका है। (या. द. ८९)

परघात नामकर्म-जिसके उदयसे ऐसा अंग हो जो दूसरेका घात करे। (सर्वा० अ० ८-११)

परचरितचर-आत्मानुभवसे बाहर चलनेवाला।

परचरित्र-आत्मानुभवसे बाहरी मार्ग।

परत्व-दीर्घ काल।

पर द्रव्यादि ग्राहक द्रव्यार्थिकनय-यह अपेक्षा जो पर द्रव्यादि चतुष्टयकी अपेक्षा द्रव्यको असत् रूप ग्रहण करे। जैसे जीव अजीवादिकी अपेक्षा नहीं है। (सि० द० पृ० ८)

परम भावग्राही द्रव्यार्थिकनय-जो द्रव्यके परम या शुद्ध भावका ग्रहण करे। जैसे जीव ज्ञान स्वरूप है। (सि० द० पृ० ८)

परम ऋषि-श्री सर्वज्ञ वीतराग अर्हंत परमात्मा। (सा० अ० ७-२०)

परम रागादि मंत्र-सात पीठिकाके मंत्रोंमें होम करनेके लिये देखो (गृ० अ० ४)

परमाणु-सबसे छोटे पुद्गलको जिसका भाग न होसके। इसमें स्पर्श दो उष्ण या शीत रूखा या चिकना, रस १, गंध १, वर्ण १, ऐसे पांच गुण हर समय पाए जावेंगे। इनहीसे स्कन्ध बनते हैं।

जो स्कन्धोंका कारण हो वह कारण परमाणु तथा जो स्कन्धसे टुकड़े होकर जो परमाणु बने सो कार्य परमाणु है। (नियमसार)

परमात्मा–उत्कृष्ट आत्मा, शुद्धात्मा, कर्मकलंक रहित सर्वज्ञ, वीतराग–अर्हंत, शरीर सहित होनेसे सकल परमात्मा हैं तथा सिद्ध शरीर रहित होनेसे निकल परमात्मा हैं।

परमात्मा-प्रकाश–योगेन्द्राचार्य कृत प्राकृत सं० व भाषा टीका मुद्रित।

परमावगाढ सम्यक्त–केवलज्ञानी परमात्माके जो निर्मल विशद क्षायिक सम्यक्त होता है।

परमावधि–देखो "देशावधि"। यह मध्यम अवधि उसी भवसे मोक्ष जानेवाले महाव्रती साधुके होती है। यह केवलज्ञान होनेतक छूटती नहीं है। इसमें द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी मर्यादाकी अपेक्षा जघन्य मध्यम उत्कृष्ट भेद हैं। यह ज्ञान प्रत्यक्ष आत्माहीसे पुद्गल द्रव्यको व संसारी जीवोंको जान लेता है। (गो० गा० ३७४–३७५)

परमुखोदयी प्रकृति–जो कर्म प्रकृति अन्य रूप होकर नाश हो। (गो० क० ४४९)

परमेष्ठी मंत्र–अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, इनका वाचक "णमोकार मंत्र" देखो "णमोकार मंत्र" और भी मंत्र होसक्ते हैं। जैसे "अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यो नमः" १६ अक्षरी मंत्र, अर्हंत सिद्ध छ अक्षरोंका मंत्र, असिआउसा–पांचअक्षरी मंत्र, अरहंत–चार अक्षरी मंत्र, ॐ–एक अक्षरी मंत्र।

परमौदारिक शरीर–अर्हंत परमात्माका शरीर जिसमें निगोद जीव नहीं रहते, परन्तु उपधातु रहित शुद्ध कपूरके समान निर्मल होजाता है।

परलोक भय–यह भय करना कि परलोकमें नर्क, निगोदमें न चला जाऊं।

पर विवाहकरण–अपने कुटुम्बीके सिवाय अन्योंके विवाह सम्बन्ध जोड़ना, यह पापको लाता अणुव्रतका पहला अतीचार है (सर्वा. अ. ७-२८)

पर समय–समय आत्माको कहते हैं। आत्माको छोड़कर अन्य पदार्थकी तरफ सन्मुख होना, पर चारित्ररूप होना। (पंचास्तिकाय)

परव्यपदेश–दातार पात्रको स्वयं दान न करे. दूसरेसे कहकर आप चला जावे, व दूसरेकी वस्तु लाकर दे। अतिथिसंविभाग शिक्षाव्रतका तीसरा अतीचार। (सर्वा० अ० ७–३६)

परस्त्री व्यसन त्याग–परस्त्री सेवनकी आदतका त्याग। दार्शनिक श्रावकको इसके अतीचार बचाना, जैसे किसी कन्यासे सम्बन्ध विना विवाहे करना, कन्याको हर लेना आदि।

(सा. अ. ३–२३)

पर समय रत–आत्मानुभवसे बाहर पर पदार्थमें लीन होनेवाला।

परक्षेत्र परावर्तन–देखो "क्षेत्र परिवर्तन"

परायत्त–पराधीन; व्यवहार काल जो सूर्यके गमनसे जाना जाता है।

परावर्तन–(परिवर्तन) परिवर्तना–द्रव्य परिवर्तन, क्षेत्र परिवर्तन, काल परिवर्तन, भव परिवर्तन, भाव परिवर्तन। ये पांच प्रकार हैं। देखो प्रत्येक शब्द।

परार्थानुमान–अनुमानके प्रकाश करनेवाला वचन, या वचनसे जाना हुआ अनुमान ज्ञान।

परिकर्म–बारहवां दृष्टिवाद अंगका भेद पहला जिसमें गणित रूपक सूत्रोंका विवेचन हो। इसके पांच भेद हैं–चन्द्रप्रज्ञप्ति, सूर्यप्रज्ञप्ति, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, द्वीपसागर प्रज्ञप्ति, व्याख्या प्रज्ञप्ति।

(गो० जी० गा० ३६१–३६२)

परिहीन–घटे हुए।

परिग्रह मूर्छा–ममत्वभाव, २४ भेद हैं। १४ प्रकार अन्तरंग–मिथ्यात्व, क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुंवेद, नपुंसकवेद। १० प्रकार बाह्य क्षेत्र,

मकान, चांदी, सोना, गोमहिष, धन, धान्य, दासी, दास, कपड़े, वर्तन ये सब ममताके कारण हैं इससे ये भी परिग्रह हैं । (सर्वा० अ० ७-१७)

परिग्रह त्याग प्रतिमा-श्रावककी नौमी प्रतिमा या श्रेणी । इस प्रतिमावाला श्रावक पहले प्रतिमाओंके नियम पालता हुआ घर, कुटुम्ब, धनादिसे ममता रहित होजाता है । पुत्र पौत्रादिको देकर व दान करके सब छोड़ देता है । अपने लिये ओढ़ने पहननेके आवश्यक वस्त्र व एक दो वर्तन रख लेता है । घर छोड़कर धर्मशाला, नशिया आदिमें ठहरता है । निमंत्रण होनेपर अपने व अन्य श्रावकके यहां भोजन कर आता है । रात्रि दिन धर्मध्यानाशक्त रहता है । (गृ. अ. १९)

परिग्रह त्याग भावना-इष्ट अनिष्ट पांचों इंद्रियोंके विषयोंमें रागद्वेष न करना, ये पांच भावना । (सर्वा० अ० ७-८)

परिग्रह त्याग महाव्रत-जब कोई साधुपद धारण करता है तब सर्व ममता त्यागकर सर्व परिग्रहका त्याग कर देता है । नग्न दिगम्बर होजाता है । जीवदयाके लिये पीछी व शौचके लिये कमण्डल व ज्ञानके लिये शास्त्र रखता है ।

परिग्रह प्रमाण अणुव्रत-श्रावक जब अहिंसादि पांच अणुव्रतोंको धारता है तब १० प्रकारकी बाहरी परिग्रहका जन्म पर्यंतके लिये प्रमाण या मर्यादा बांध लेता है व अंतरंग ममता हटा देता है ।

परिग्रहानन्द रौद्रध्यान-धन धान्य जायदाद बढ़ती हुई देखकर बहुत प्रसन्न होना । परिग्रहमें गाढ़ लिप्त रहना । कुटुम्बादिकी वृद्धिमें बहुत रत करना । (सर्वा. अ. ९-३५)

परिग्रह संज्ञा-परिग्रहकी वांछा-सर्व संसारी जीवोंके चार वांछाएं बनी रहती हैं । आहार, भय, मैथुन, परिग्रह । इनसे पीड़ित होकर दुःख भोगते हैं । मानवोंको दूसरेके धन देखनेसे, धनादिकी कथा सुननेसे, पिछली जायदाद याद करनेसे व लोभकी तीव्रतासे परिग्रहकी वांछा होती है । (गो. जी. १३४-१३८)

परिणाम-भाव, अवस्था, पर्याय, गुणका परिणमन ।

परिणाम योग्य स्थान-आत्माके प्रदेशोंके हलन चलनके स्थान योग स्थान हैं वे तीन प्रकार हैं । तीसरा भेद परिणाम योग्य स्थान है । पर्याय बदलते हुए पहले समयमें उपपाद योग स्थान होता है फिर दूसरे समयसे लेकर शरीर पर्याप्त पूर्ण होनेके एक समय पहले तक एकांत वृद्धि योगस्थान होते हैं, फिर शरीर पर्याप्तिके पूर्ण होनेके समयसे लेकर आयु पर्यंत परिणामयोग स्थान होते हैं क्योंकि वे घटते, बढ़ते व एकसे भी रहते हैं । (गो. क. गा. २२०-२२१)

परित्यजन दोष-जो वस्तिका आपन व संस्तरके लिये थोड़ी आवे और बहुत रोकनी पड़े । (भ. ए. ९६)

परिदेवन-ऐसा रोना जिससे दूसरेको करुणा उपजन आवे । (सर्वा. अ. ६-११)

परिमल-बरैया-पं०, श्रीपाल व श्रेणिकचंद छंदके कर्ता । (दि. ग्रं. नं. ८३)

परिमाण मर्यादा, गिनती संख्या ।

परिवर्तन-पलटना-देखो शब्द " परावर्तन "

परिवर्तन लिंग-काल द्रव्य जो द्रव्योंके पलटनेका निमित्त है । व जो द्रव्योंके पलटनसे प्रगट हो, व्यवहार काल ।

परिवर्तन संभूत-द्रव्योंके पलटनेका हेतु । " काल द्रव्य "

परिहार विशुद्ध चारित्र यह मुनियोंके छठे सातवें गुणस्थानोंमें होता है । जिसके सदा काल हिंसाका त्याग होता है । अहिंसा पालनेमें जिसके विशेषता होती है । जो पुरुष जन्मसे ३० वर्ष तक सुखी रहा हो फिर मुनि हो ३ या ९ वर्ष तक तीर्थंकर भगवानके पादमूलमें प्रत्याख्यान नवमा

पूर्व पढ़ा हो उनके यह संयम होता है। ऐसा संयमी साधु तीनों संध्या विना प्रति दिन दो कोससे अधिक विहार न करे। रात्रिमें विहार न करे। वर्षाकालमें नियम नहीं है। इसका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट काल अड़तीस वर्ष कम एक कोड़ पूर्व वर्ष है। यह साधु जीवोंकी विशेष रक्षा कर सकता है। (गो. जी. गा. ४७२-४७३)

परीक्षा-जांच करना; ईहा मतिज्ञान।

परीक्षा मुख-न्यायका ग्रंथ मुद्रित, माणिकनंदि कृत।

परीतानन्त-देखो "अंक" घ. ९४।

परीतासंख्यात- " " "

परीषह-रत्नत्रय मार्गसे न गिरनेके लिये व कर्मोंकी निर्जराके हेतु जो क्षुधा तृषा आदि शांतिसे सहन की जावे। (सर्वा. अ. ९-८) ये परीषह २२ होती हैं। देखो "द्वाविंशति परीषह"

परोपरोधाकरण-अचौर्यव्रतकी चौथी भावना। आप जहां हो कोई आवे तो उसे मना नहीं करना अथवा जहां कोई रोके वहां न प्रवेश करना। (सर्वा. अ. ७-६)

परोक्ष प्रमाण-जो ज्ञान इंद्रिय व मनकी सहायतासे पदार्थको स्पष्ट जाने। जैसे मति व श्रुतज्ञान इसके पांच भेद हैं। १ स्मृति-पहली जानी हुई याद आना, २ प्रत्यभिज्ञान-स्मरण और प्रत्यक्ष ज्ञानका जोड़रूप ज्ञान करना कि यह वही है जिसे पहले जाना था। ३ तर्क-व्याप्ति ज्ञान करना कि जहां२ धूम होगा वहां २ अग्नि अवश्य होगी। ४ अनुमान-साधनसे कहीं किसी अप्रगट पदार्थको ज्ञान लेना। जैसे धूम देखकर वहां आग है ऐसा निश्चय करना ५ आगम-शास्त्र द्वारा जानना।

(जै. सि. प्र. नं. २६)

पर्या-चौमासा करना, वर्षाकालमें चार मास एक स्थान रहना। (म. ष. १६१)

पर्याप्त-जो जीव पर्याप्ति नामकर्मके उदयसे आहार शरीर पर्याप्तिको अन्तर्मुहूर्तमें पूर्ण कर लेते हैं।

पर्याप्त मनुष्य संख्या-इस मध्य लोकमें कुल पर्याप्त मनुष्य उत्कृष्ट द्विरूप वर्गधारा सम्बन्धी पंचम वर्ग स्थान जो बादाल उसका घन करनेपर जो संख्या होगी उतने होंगे। २ × २=४, ४×४=१६, १६ × १६ २५६, २५६ × २५६=६५५३६, (६५५३६ × ६५५३६)३= ७,९२२८१६२,५१४२६४३ ३७५९३५४३, ३९५०३३६-कुल २९ अंक प्रमाण हैं। इनका तीन चौथाई भाग द्रव्य मनुष्यणी हैं।

(गो. जी. गा. १५८-१५९)

पर्याप्ति-आहारक वर्गणा, भाषा वर्गणा, व मनो वर्गणाओंके परमाणुओंको शरीर इंद्रियादिरूप परिणमानेकी जो शक्ति आत्मामें पूर्णताको प्राप्त हो। यह छः प्रकार हैं-१ आहार पर्याप्ति-आहार वर्गणाओंको मोटा व पतला करनेमें कारण रूप जीवकी शक्तिको कारणरूप जीवकी पूर्णता, २ शरीर पर्याप्ति-शरीरके आकार करनेकी शक्तिकी पूर्णता, ३ इंद्रिय पर्याप्ति-आहारक परमाणुओंको इंद्रियके आकाररूप करनेकी व उनके द्वारा विषय ग्रहण करनेके कारणभूत जीवकी शक्तिकी पूर्णता, ४ श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति-आहारक परमाणुओंको ही श्वासरूप करनेके कारणभूत जीवकी शक्तिकी पूर्णता, ५ भाषा पर्याप्ति-भाषा वर्गणाओंको वचनरूप करनेको कारणभूत जीवकी पूर्णता, ६ मन पर्याप्ति-मनो वर्गणाओंको द्रव्य मन रूप करनेकी जीवकी शक्तिकी पूर्णता। एकेन्द्रियके पहली चार, द्वेन्द्रियसे असैनी पंचेन्द्रिय तक पहली पांच, सैनीके छहों होती हैं। प्रारम्भ सबका साथ होता है; पर एक क्रमसे पूर्णता होती है। काल हरएकका अलग अलग व मिलकर सबका एक अंतर्मुहूर्त है। शरीर पर्याप्तिकी पूर्णता होनेतक निर्वृत्यपर्याप्तक जीव कहलाता है, फिर पर्याप्तक कहलाता है। जो एक भी पर्याप्ति पूर्ण न करके एक श्वासके अठारहवें भाग मरते हैं वे लब्ध्यपर्याप्तक कहलाते हैं। (जै. सि. प्र. नं. २१४)

पर्याप्ति नाम कर्म–जिसके उदयसे पर्याप्त अवश्य पूर्ण हो।

पर्यंकासन–पद्मासन। (श्र. पृ. १४९)

पर्याय–अवस्था, गुणका विकार या परिणमन। पर्याय दो तरहकी हैं–१ व्यंजन पर्याय–प्रदेशत्व गुणका विकार होना व आकार पलटना, २ अर्थ पर्याय–प्रदेशत्व गुणके सिवाय अन्य सर्व गुणोंकी पर्याय। अशुद्ध जीवोंमें विभाव व्यंजन व विभाव अर्थपर्याय होती है। शुद्ध जीवोंमें सदृश स्वभाव व्यंजन व स्वभाव अर्थ पर्याय होती है।

धर्म अधर्म, आकाश, कालमें स्वभाव अर्थ पर्याय ही होती हैं। प्रदेशत्व गुण भी अर्थ पर्याय रूप परिणमता है। मात्र जीव व पुद्गलोंमें विभाव व्यंजन व विभाव अर्थ पर्याय होती है। शुद्ध जीव व शुद्ध पुद्गल परमाणुमें स्वभाव व्यंजन व स्वभाव अर्थ पर्याय होती है। (जैन सि. प्र. नं. १४८) व (आलाप पद्धति)

पर्याय ज्ञान–श्रुतज्ञानका पहला भेद जो ज्ञान सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तकके होता है, यह जघन्य ज्ञान है। यह उसके जन्मके पहले समयमें होता है सो भी उस जीवके होता है जो ६०१२ क्षुद्रभव लेता हुआ अन्तके ६०१२ वें भवमें तीन मोड़ा लेकर आया हो। उसके पहले मोड़ेके समय सबसे कम मतिज्ञान, सबसे कम श्रुतज्ञान व जघन्य अचक्षु दर्शन होता है (गो.जी.गा. ३२०–३२१)

पर्याय ज्ञान निरावरण–जघन्य पर्याय ज्ञानपर कभी ज्ञानावरण कर्मका सर्वथा उदय नहीं होता है यहां अवश्य क्षयोपशम रहता है, अन्यथा जीवका पुरुषार्थ ही नष्ट होजायगा। (गो. जी. गा. ३१९)

पर्याय समास ज्ञान–पर्याय ज्ञानरूप वृद्धिरूप ज्ञानके भेद जो अक्षर ज्ञानसे कम तक हैं। अनक्षरात्मक ज्ञानके सब इसमें गर्भित हैं। (गो. जी. गा. ३३१)

पर्यायार्थिकनय–जो विशेषको (गुण या पर्यायको) जाने या विषय करे।

(जै. सि. प्र. नं. ९१)

पर्व–अध्याय; विशेष तिथि–प्रोषध दिन, अष्टमी, चतुर्दशी व दशलाक्षणीके भादोंके १० दिन सुदी ५ से १४ तक व सोलह कारण एक मास भादोंका व फागुण, कार्तिक, आषाढके अंत आठ दिन अष्टाह्निका आदि व रत्नत्रयके दिन भादों सुदी १३ से क्वार वदी एकम तक तथा तीर्थंकरोंके कल्याणकोंके दिन सर्व पर्व दिन हैं। जैसे कार्तिककी निर्वाण चौदस।

पर्वत–क्षीरकदम्ब ब्राह्मणका पुत्र। हिंसा यज्ञ चलानेवाला। (दर्शनसार गा० १६)

पर्वतधर्मार्थी–समाधिशतक, द्रव्यसंग्रह, सामायिककी वचनिका कर्ता। (दि. ग्रं. नं० ८२)

पर्वसेन–पं० समाधि तंत्रकी बालबोध टीकाके कर्ता। (दि. ग्रं. नं० १७४)

परिमल–श्रेयांस रासके कर्ता।

(दि. ग्रं. नं० १७५)

पलायमण–जो प्रशस्त धर्मक्रियामें आलसी हो, व्रतादिमें शक्तिको छिपावे, ध्यानादिसे दूर भोग उसका मरण पलाय मरण है। (भ. पृ. ११)

पलास–जम्बूद्वीपके पश्चिम भद्रशाल वनमें एक दिग्गज पर्वत जिसपर दिग्गजेन्द्र रहता है।

(त्रि० गा. ६६२)

पल्य (पल्योपम) देखो " अंक विद्या "

(पृष्ठ १०६ प्र. भि.)

पल्यंकासन–एक पग जांघके नीचे व एक पग ऊपर बाईं जांघके ऊपर रखके पद्मासनकी तरह बैठे। इसको अर्द्धपद्मासन भी कहते हैं। दक्षिणमें प्राचीन जिन मूर्तियां इसी आसनकी मिलती हैं।

पष्ठीविधान व्रत–एक वर्षमें ७२ उपवास होते हैं—

है । इसएकपर तीन सिंहासन हैं बीचमें तीर्थंकरके लिये दक्षिणदिशाकी तरफ सौधर्म व उत्तर दिशाकी तरफ ईशान इन्द्रका भद्रासन है । इन आसनोंकी ऊंचाई ५०० धनुष, नीचे चौड़ाई ५०० धनुष, ऊपर चौड़ाई २५० धनुष है । ये आसन पूर्वदिशाके सन्मुख हैं । (त्रि. गा. ६०७-६२०-६३३-६३७) तीर्थंकरको बीचमें विराजमान कर इधर उधरसे सौधर्म इंद्र व ईशान इंद्र १००८ कलशसे न्हवन करते हैं ।

पांडुकवला-मेरुके पांडुवनमें दूसरी शिला । (त्रि. ६३१)

पांडुदेव (पांडु)-महावीरस्वामीकी मुक्तिके पीछे ३४५ वर्ष बाद २२० वर्षमें पांच मुनि ११ अंगके ज्ञाता हुए उनमेंसे तीसरे । (श्रु. पृ. १३)

पाडुनिधि-चक्रीकी नौ निधियोंमें एक निधि धान्यको देनेवाली । (त्रि. गा. ६८२)

पाडुर-मेरुके पांडुकवनमें एक मंदिरका नाम । (त्रि. गा. ६२०) पांचवे क्षीर द्वीपका स्वामी व्यंतरदेव । (त्रि० गा० ९६३)

पाताल-लवणसमुद्रके मध्यभाग परिधिमें चार दिशाओंमें चार, चार विदिशाओंमें चार तथा इन आठोंके अंतरालमें एक हजार पाताल हैं । दिशा सम्बन्धी पातालके उदयका मध्यभाग एक लाख योजनके व्यासका है । गहराई १लाख योजन है । ये मृदंगके आकार हैं, मध्यमें व्यास अधिक है, ऊपर या नीचे क्रमसे घटता है । सबसे नीचे व सम भूमिमें समान व्यास है । विदिशा सम्बन्धी दिशावालोंसे दशवां भाग कम मापमें हैं । अंतर संबंधी पाताल विदिशासे दशवां भाग मापवाले हैं । ४ दिशाके पातालोंके नाम हैं-वडवामुख, कदंबक, पाताल, यूपकेसर । इन सब दिशा विदिशा आदि पातालोंका नीचेका तीसरा भाग मात्र पवनसे भरा है । ऊपरके तीसरे भागमें जल, व बीचके तीसरे भागमें जल और पवन मिश्ररूप है । कृष्णपक्षमें इस तीसरे भागके जलकी वृद्धि होती है तथा शुक्लपक्षमें पवनकी वृद्धि होती है । भावार्थ-कृष्णपक्षमें प्रतिदिन वहां पवनके स्थानमें जल बदलता जाता है, शुक्लपक्षमें जलके स्थानमें पवन होजाता है । इस भागमें नीचे पवन ऊपर जल है । इसीसे लवण समुद्रका शुक्लपक्षमें प्रतिदिन समभूमिसे २२२⅔ योजन जल ऊंचा होता जाता है, १५ दिनमें ४००० योजन ऊंचा होजाता है, लवणसमुद्रका जल ११००० योजन ऊंचा रहता है सो पूर्णिमाके दिन १६००० योजन होजाता है, फिर कृष्णपक्षमें इसी क्रमसे घटता है । (त्रि. गा. ८९६-८९९)

पात्र-दान देने योग्य पात्र । वे पांच प्रकार हैं-(१) समयिक-आगमके अनुसार चलनेवाले मुनि व गृहस्थ, (२) साधक-ज्योतिष मंत्रवाद व लोकोपकारी शास्त्रोंके ज्ञाता, (३) वादविवाद करनेवाले व धर्मकी प्रभावना करनेवाले समयद्योतक, (४) मूलगुण व उत्तर गुणोंसे विभूषित नैष्ठिक, (५) धर्माचार्य व बुद्धिमान गृहस्थाचार्य । इनको यथा योग्य दान करना चाहिये । अथवा पात्रके तीन भेद हैं-सुपात्र, कुपात्र, अपात्र । जो सम्यग्दर्शन सहित हैं वे सुपात्र हैं । जो सम्यक्तरहित परंतु जैन शास्त्रोक्त आचरण पालते हैं वे कुपात्र हैं । जो सम्यक्त व चारित्र दोनों रहित हैं वे अपात्र हैं, दान देने योग्य नहीं । सुपात्रोंमें उत्तम मुनि, मध्यम श्रावक, व जघन्य अविरत सम्यग्दृष्टी है । सुपात्र व कुपात्र भक्तिपूर्वक दान देने योग्य हैं । करुणाके पात्र सर्व ही प्राणी हैं, उनको दयाभावसे आहार औषधि अभय व विद्या दान करना चाहिये । (सा० अ० २-५०-६७)

पात्रकेशरी-मगध देशमें अहिछत्र नगरका राजा अवनिपाल बड़ा गुणी था । उसके पास पात्रकेशरी आदि ५०० ब्राह्मण पंडित रहते थे जो नित्य राजकार्यके लिये सब सभामें जाते तब पार्श्वनाथ चैत्यालयका कौतुहलसे दर्शनकर जाया करते थे । एक दिन वहां चारित्रभूषण मुनि

देवागम स्तोत्र पढ़ रहे थे जो समन्तभद्राचार्यकृत है व जिसमें सर्वथा नित्य सर्वथा अद्वैत आदि एकांत मतोंका खण्डन है व अनेकांतका मण्डन है। पात्रकेशरी सुनकर बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने मुनिसे दुबारा पढ़वाकर उसे कंठकर लिया वह अर्थको विचारते विचारते अन्तमें जैनधर्मी होगये। उनका शास्त्रार्थ राजसभामें हुआ, वे विजयी हुए, तब राज आदिने भी जिनधर्म धारण किया। पात्रकेशरीने एक जिन स्तोत्र बनाया है। जो ५० श्लोकका माणिकचन्द ग्रन्थमाला नं. १२में छपा है।

(मा० फ० नं० १)

पात्रदत्ति-धर्मकी रक्षाके लिये धर्मात्माओंको दान देना। देखो "पात्र"। दानके सात स्थान हैं-(१) मुनि, (२) श्रावक, (३) आर्यिका, (४) श्राविका, (५) अर्हन्त प्रतिमाकी भक्ति व पूजा, (६) जिनमंदिर निर्मापण व जीर्णोद्धार, (७) शास्त्र प्रकाश। (सा० अ० २-७३)

पाथड़ा-पटल, खन, तह। स्वर्ग व नरकमें पटल हैं।

पाद मुण्ड-पगोंका संकोच व विस्तार बुरी तरह न करना। पगोंकी क्रियाको वश रखना मुनिका मुख्य कर्तव्य है। (मू० गा० १२१)

पाद=छः अंगुल।

पानक आहार-छः प्रकार, देखो ' पेय "

पाप-" रक्षति आत्मानं शुभात " इति पापं जो आत्माको शुभ कार्योंसे रोके। तीव्र कषाय सहित संक्लेश परिणाम आर्त रौद्रध्यान, आहारादि विषयभोगकी इच्छा, परनिन्दा, परको कष्ट देना, हिंसादि पापोंमें लीनता। इत्यादि अभिप्राय सहित मन, वचन, कायका वर्तना, सो भाव पाप है, द्रव्य पापके संचयका कारण है। द्रव्य पाप, ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, अन्तराय चार घातिया कर्म तथा असाता वेदनीय, अशुभ आयु, अशुभ नाम, नीच गोत्र हैं। (सर्वा० अ० ६-१ व अ० ७-२१)

पाप प्रकृति-कर्मोंकी ४८ प्रकृतियोंमें २० वर्णादि शुभ अशुभ दोनों लेनेसे १६८मेंसे १०० कर्म प्रकृति पापरूप हैं, ४७ घातिय + ५३ अघातिय। वे हैं-असाता वेदनीय + नरकायु + नीच गोत्र + ५० नाम कर्मकी, २ नरक तिर्यच-गति + पंचेन्द्रिय विना ४ गति + ५ संस्थान सम चतुरस्रके विना + ५ संहनन वज्र वृ. ना. के विना + २० अप्रशस्त वर्णादि + नरकगति तिर्यग्गत्या-नुपूर्वी २ + उपघात + अप्रशस्त विहायोगति + स्थावर सूक्ष्म + अपर्याप्ति + साधारण + अस्थिर + अशुभ + दुर्भग + दुस्वर + अनादेय + अयशः= ५०। (सर्वा० अ० ८-२६)

पापर्द्धि-शिकार खेलना।

पापर्द्धि त्याग अतीचार-शिकार खेलनेका त्यागी दर्शन प्रतिमामें उसके दोषोंको भी टालेगा। वस्त्र, रुपया, पैसा, मुद्रा, पुस्तक, काठ, पाषाण, धातुमें स्थापित किये हाथी, घोड़े आदि सचेतन प्राणियोंके चिह्नोंका छेदन भेदन कभी नहीं करेगा।

(सा० अ० ३-२२)

पापास्रव-पाप कर्मोंके आनेके कारण भाव। देखो " पाप "

पापोपदेश-अनर्थदण्ड-दूसरोंको विना प्रयोजन पाप कर्मका उपदेश देना जिससे वे पशुओंको क्लेश देकर व प्राणियोंका वध बंधन करके आरम्भ करें यह दूसरा अनर्थदण्ड है। अनर्थदण्ड विरति गुण व्रतमें इसका त्याग होता है। (सर्वा. अ. ७-२१)

पारणा-उपवासको पूर्ण करके भोजन करनेका अगला दिन। (ज्ञा० पृ० १३३)

पारमार्थिक प्रत्यक्ष-वह ज्ञान जो विना इंद्रिय व मनकी सहायताके पदार्थोंको स्पष्ट जाने। इसके दो भेद हैं। विकल-जैसे अवधि० मनःपर्यय ज्ञान सकल-केवलज्ञान (जै. सि. प्र. नं. १८-१९)

पारसदान-(हिंदी) [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] (सि. द. नं. ८४)

पारणामिक भाव-जिस भावमें कर्मोंके उदय, उपशम, क्षयोपशम तथा क्षयकी अपेक्षा न हो वह

जीवका भाव। यह तीन तरहका है जीवत्व, भव्यत्व, अभव्यत्व। (गो. क. गा. ८१९-८१९)

पारितापिकी क्रिया–आस्रवकी २५ क्रियाओंमेंसे १० वीं। जो कार्य अपने व दूसरोंको दुःख पैदा करे। (सर्वा. अ. ६-५)

परिषत्–सभा निवासी देव। इंद्रोंकी परिषदें होती हैं। १० प्रकारके भवनवासी देवोंके दो दो इन्द्र हैं, पहले चमरेन्द्रके २८०००, वैरोचनके २६०००, भूतानंदके ६०००, बाकी १७ इंद्रोंके ४००० देव हरएकके परिषत देव हैं। इन्द्रकी तीन सभाएं लगती हैं। अंतरंग परिषदसे मध्यमें २००० अधिक, मध्यसे बाह्यमें २००० अधिक परिषद देव बैठते हैं। पहली परिषद समित दूसरी चंद्रा तीसरी जतु कहलाती हैं। एक एक इंद्रके नीचे प्रतींद्र होते हैं, उनकी भी तीन सभाएं होती हैं। उनमें भीतरी सभामें पारिषत् देव ८०० मध्यमें १०००, बाहर १२०० होते हैं। (त्रि. गा. २२३, २२८, व २७९) अन्य व्यंतरादिमें भी परिषद देव हैं उनकी संख्यामें अंतर है।

देखो त्रिलोकसार।

पार्श्वनाग–आत्मानुशासन टीका सं० १०४२। (दि. ग्रं. नं. ४१९)

पार्श्वनाथ–वर्तमान भरतके २३ वें तीर्थंकर जो बनारसमें उग्रवंशी राजा अश्वसेन माता वामाके पुत्र नौहाथ शरीरधारी सर्व लक्षण, १०० वर्षकी आयु, वर्ण कृष्ण, कुमारवयमें ही साधु हो तप कर श्री सम्मेदशिखरसे मोक्ष पधारे। उनसे महावीरस्वामीकी मुक्तिसे २५० वर्षका अंतर था अर्थात् २४६०+२५०=२७१० वर्ष उनको मोक्ष गए आज वीते हैं। बड़े प्रसिद्ध हुए, उनहीके नामसे सम्मेदशिखरजीको पार्श्वनाथ हिल कहते हैं। उसके आसपास भील लोग भी उन्हें पूजते हैं।

पार्श्वनाथ कवि–कर्णाटक–(सन् १२९५) पार्श्वनाथ पुराणके कर्ता। (दि. ग्रं. नं. १-७६)

पार्श्वस्थ–जो दि० भेषधारी होकर भी रत्नत्रय धर्म रहित हो; शरीरादि मोहसे इन्द्रियविजयी न हो, नमन योग्य नहीं। (भ. ए. १३९)

पालक–अवंतीका राजा श्री महावीरस्वामीके समयमें। (ह० ए० ९८२)

पालीताना (शत्रुंजय)–काठियावाड़में स्टेट पालीतानासे १॥ मील पर्वत, यहांसे श्री युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन तीन पांडव व ८ करोड़ मुनि मोक्ष जाचुके हैं। दि० जैन मंदिर पर्वतपर व ग्राममें है पर्वतपर श्वेतांबर जैन मंदिर बहुत मूल्यवान व दर्शनीय है, दिगंबर मंदिर भी हैं (या० द० ए० ३००)

पावागढ–गुजरातके पंचमहाल जिलेमें पावागढ स्टेशनसे ३ मील। पर्वत ऊँचा, प्रतिमा प्राचीन कोरी हुई हैं। एकका संवत ११३४ है। यहांसे श्री रामचन्दके पुत्र लवकुश व पांच कोड मुनि मोक्ष पधारे हैं। कई दि० जैन मंदिर पर्वतपर व ग्राममें हैं, धर्मशालादि है। (या. द. ए. २७८) मोक्षस्थानपर चरणचिन्ह हैं।

पावा (पावापुरी)-यहांसे श्री महावीर भगवान मोक्ष पधारे हैं। बिहार प्रांतमें बिहार स्टेशनसे ६ मील जलके मध्यमें मंदिर है–उसमें चरणचिन्ह हैं। दि० जैन मंदिर, धर्मशाला है। निर्वाण चौदसको कार्तिक वदीमें यात्री बहुत आते हैं।

(या. द. ए. २१२)

पाक्षिक श्रावक–जो सम्यग्दृष्टी गृहस्थ श्रावककी ११ प्रतिमाओंमें पहली दर्शन प्रतिमाके प्राप्त करनेका अभ्यास करे व धर्मकी पक्षीपक्ष हो। वह श्रद्धावान गृहस्थ नीचे लिखी आठ बातोंको पालता है।

१–मांसकी डली नहीं खाता, २ मदिराका प्याला नहीं पीता, ३ मधु नहीं खाता, ४ जानबूझ कर वृथा हिंसा नहीं करता, ५ स्थूल असत्य नहीं बोलता, ६ स्थूल चोरी नहीं करता, ७ अपनी स्त्रीसे ही सम्बन्ध करता है, ८ संतोषसे जायदादका कुछ प्रमाण कर लेता है। यह श्रावक देशदेशांतर व्यापार आदि सब कुछ करसक्ता है, समुद्र

यात्रादि करसक्ता है, इसके बहुत मोटे नियम होते हैं। पानी छानकर पीनेका व रात्रिको यथाशक्ति भोजन न करनेका अभ्यास करता है। जुआ रुपया पैसा बदकर नहीं खेलता है। (गृ. अ. ६)

पिंगल-चक्रीकी नौनिधिमेंसे एक, जो आभूषण देती है। (त्रि० गा० ६८२)

पिच्छिका-जैन साधु जीव जंतुकी रक्षार्थ कि बहुत छोटा जंतु भी न मरे स्थान झाड़कर बैठते व वस्तु रखते हैं। इसके लिए मोरके पंखकी पीछी रखते हैं। मोर स्वयं पंख छोड़ देता है। इसमें ये पांच गुण हैं। (१-२) यह धूल व पसीनेसे मैली नहीं होती, (३) कोमल होती है, (४) हलकी होती है कि आंखमें फेरनेसे कष्ट नहीं होता, (५) दर्शनीय है। बहुत छोटे जंतु भी इससे बचते हैं। इसमें स्वयं जंतु पैदा नहीं होते हैं।
(मू. गा. ९१०-९१३)

पिंडप्रकृति-नामकर्म १४ हैं।
देखो (प्र. जि. पृ. ८०)

पिंडशुद्धि-आहार शुद्धि-मुनि ४६ दोष, ३२ अंतराय, १४ मल रहित भोजन करते हैं। देखो "आहार दोष", "अंतराय", "चतुर्दश मलदोष"।

पिंडस्थ ध्यान-देखो " धारणा " व (ज्ञानार्णव नं० ३७)

पितामह-सरस्वती स्तोत्रके कर्ता।
(दि. ग्रं. नं. ४१७)

पिपासा-पहले नर्कके सीमंत इन्द्रकका दिशा सम्बन्धी बिला। (त्रि. गा. १५९)

पिशाच-व्यंतरोंमें १० वां भेद-ये कृष्णवर्ण हैं; इनके इन्द्र काल महाकाल हैं। (त्रि. गा. २५१)

पिहितदोष-हरितकाय, कांटा व सचित्त मृत्तिकाको दूर करके मुनिको वस्तिका दी जावे।
(भ. पृ. ९६)

पिहिताश्रव स्वामी-(दिगंबर) सिद्धभक्ति टीका। (दि० ग्रं० पृ० ७७)

पीठ-भरतके वर्तमान प्रसिद्ध १० वें रुद्र। (त्रि. गा. ८३६), चबूतरा (त्रि. गा. ९९६)

पीठिका मंत्र-गर्भाधानादि उपनीत संस्कारादि आदिमें होमके मंत्र, देखो (गृ० अ० ४)

पीडा चिंतवन-तीसरा आर्तध्यान। शरीरमें रोगादि होनेपर बहुत सोच करना, आकुल होना।
(सर्वा० अ० ९-३२)

पीतलेश्या-द्रव्य रंग पीला, भाव जीवका जो मन, वचन, कायका कषायोंसे रंगे हुए परिणमनसे प्रगट होता है। इस लेश्यावालेका भाव पक्षपात रहित, द्वेषरहित, हित अहितमें विचार रूप, दानशूर, सत्कार्योंमें निपुण व उदार होता है (सा.अ.२-१)

पीतवर्ण नामकर्म-जिसके उदयसे शरीरका रंग पीला हो। (सर्वा० अ० ८-११)

पंगुसेना-इस भरतके दुःखमा वर्तमान कालके अंतमें जब २१ वां कल्की होगा तब पंगुसेना उत्कृष्ट श्राविका होगी। १९०० वर्ष बीत जानेपर। (त्रि० गा० ८५८)

पुंकांता-व्यंतरोंके १६ इंद्रोंमें पहले इन्द्रकी महत्तरीदेवी। (त्रि० गा० २७६)

पुंदर्शनी-व्यंतरोंके १६ इन्द्रोंमें दूसरेकी महत्तरीदेवी (त्रि० गा० २७६)

पुंडरीक-शिखरी पर्वतपर छठा द्रह जिसमेंसे तीन नदी निकली हैं रक्ता, रक्तोदा व सुवर्णकूला। (त्रि० गा० ५६७); सातवें रुद्र वर्तमान भरतके (त्रि० गा० ८३६); प्रकीर्णक १२ वां जिसमें चार प्रकार देवोंमें उपजनेका कारण दान पूजादिका वर्णन है। (गो० जी० गा० ३६७)

पुंडरीकिणी-विदेह क्षेत्रकी ३२ राजधानीमेंसे आठवी (त्रि० गा० ७१२); नन्दगिरिकी उत्तर दिशाके [illegible] दूसरा [illegible] देवी।
(त्रि० गा० ९६४)

पुण्य-
(पुण्यकर्म प्रकृति) "पुनाति आत्मानं, पूयते अनेन इति" जिससे आत्मा पवित्र हो। यह शुभ भाव आत्माके हैं, [illegible] होते हैं। जैसे अनुकंपा, पूजा, परोपकार, [illegible], [illegible], दान,

पीत पद्म शुक्ललेश्याके परिणाम, चित्तमें प्रसन्नता, आदि तब भावपुण्य होता है। उस समयके इन भाव पुण्य रूप शुभ भावोंसे ४७ घातिया कर्मोंका बंध यथा संभव होता हुआ अघातिया कर्मोंमें पुण्य प्रकृतियोंका ही होगा पाप कर्मका न होगा। १४८ कर्म प्र० में ४७ निकालकर १०१ अघातिया कर्म प्रकृतिमें २० स्पर्शादि दो दफे शुभ व अशुभ गिननेसे १२१ भेद होजांयगे। उनमेंसे ५३ पाप प्रकृति हैं शेष ६८ पुण्य प्रकृति। १ सातावेदनी + ३ आयु तिर्यंच मनुष्य देव + उच्च गोत्र + नामकी ६३ (२ मनुष्य देवगति + पंचेन्द्रिय जाति + १५ शरीर बंधन संघात + ३ अंगोपांग + समचतुसं + वज्र वृ० नारा० + २० शुभ वर्णादि + २ मनुष्य देवगत्यानुपूर्वी + अगुरु लघु + परघात + उच्छवास + आतप + उद्योत + प्रशस्त विहायोगति + त्रस + वादर + पर्याप्ति प्रत्येक शरीर + स्थिर + शुभ + सुभग + सुस्वर + आदेय + यशकी०+निर्माण+तीर्थंकर) = ६८। (सर्वा. अ. ६-३ व अ. ८-२५)

पुण्यपुरुष—१६९ हैं, ये सब कभी न कभी मोक्ष जांयगे। २४ तीर्थंकर + १२ चक्री + ९ नारायण + ९ प्रतिनारायण + ९ बलभद्र + ९ नारद + ११ रुद्र + १४ कुलकर + २४ कामदेव + ४८ तीर्थंकरके माता पिता=१६९ (जैनबालगुटका प्र.८)

पुण्यप्रभ और पुण्य—सातवें क्षौद्रद्वीपके स्वामी व्यंतर। (त्रि० गा० ९६४)

पुण्य बन्ध—पुण्य प्रकृतियोंका बन्ध होना।

पुण्य यज्ञ क्रिया—दीक्षान्वय क्रियाकी छठी क्रिया। नया दीक्षित जैनी अन्य साधर्मियोंके साथ १४ पूर्वोंका अर्थ सुने। (गृ० प्र० ९)

पुण्यास्रव—पुण्यकर्मके आने योग्य भाव, मन, वचन, कायका शुभ वर्तन। देखो 'पुण्य'।

पुण्यास्रव कथाकोष—मुद्रित, भाषा, इसमें बहुतसी कथाएं हैं।

पुजेरे—श्री जिनेन्द्रकी पूजा करनेवाले।

पुत्र पुत्री संस्कार—पुत्र पुत्रीके मनमें धर्मभावका असर संस्कारोंसे करना (गृ० अ० २०)

पुद्गल द्रव्य—"पूरयन्ति गलयन्ति इति पुद्गला" जो पूरे और गाले उन्हें पुद्गल कहते हैं। परमाणु और स्कंध दो भेदरूप हैं। सबसे छोटा अविभागी अंश परमाणु है। दो परमाणु आदि संख्यात असंख्यात अनंत परमाणुओंका बंधरूप स्कंध है। परमाणुसे स्कंध व स्कंधसे परमाणु बनते रहते हैं।

पुद्गल परस्पर मिलते हैं व छूटते हैं इससे पुद्गल हैं एक शुद्ध परमाणुमें भी गुणोंके अंशोंकी हीनाधिकता होनेसे पूरण गलन होता है। पुद्गलमें चार मुख्य गुण हैं। स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण हरएकके भेद क्रमसे ८ + ५ + २ + ५ कुल २० होते हैं। परमाणुमें एक समयमें पांच गुण पाए जांयगे। स्पर्श २ रूखा या चिकना, शीत या उष्ण, एक रस, एक गंध, एक वर्ण। स्कंधमें ७ गुण पाए जांयगे, ४ स्पर्श, २ के सिवाय हलका या भारी, नरम व कठोर, एक रस, एक गंध, एक वर्ण। हमारी पांच इंद्रियोंसे जो ग्रहण होता है सब पुद्गल है। शब्द भी पुद्गल है। क्योंकि रुकता है। पुद्गलके छः भेद उनकी भिन्न पर्यायोंको दिखानेके वास्ते किये गये हैं। १ स्थूलस्थूल-मोटे स्कंध जिनके दो टुकड़े करनेपर आपसे न मिलें। जैसे कागज, काठ, वर्तन, पाषाण। २ स्थूल—वहनेवाले पदार्थ जो अलग करनेपर फिर मिल जाते हैं, जैसे पानी, दूध, शरबत। ३ स्थूल सूक्ष्म—जो देखनेमें आवें, परन्तु हाथोंमें न आसके, जैसे धूप, छाया, उद्योत। ४ सूक्ष्म स्थूल—जो देखनेमें न आवें, परन्तु काम प्रगट हों, जैसे—हवा, शब्द आदि। चक्षु सिवाय चार इंद्रियके विषय। ५ सूक्ष्म—जो कोई इंद्रियसे न ग्रहण हों, जैसे कर्म वर्गणा। ६ सूक्ष्म सूक्ष्म—दो परमाणुका स्कंध या एक परमाणु। पुद्गलोंकी अणुके सिवाय स्कंधोंकी २२ जातिकी वर्गणाएं होती हैं। देखो "द्वाविंशति वर्गणा" इनमेंसे आहारकसे औदारिक वैक्रियिक आहारक शरीर, तैजससे तैजस

शरीर, कार्मणसे कार्मण शरीर, भाषा वर्गणासे भाषा, मनो वर्गणासे द्रव्य मन बनता है। (सि० द० पृ० ८९); पुद्गल द्रव्य है, क्योंकि वह सतरूप है व उसमें पर्याय पलटती हैं। इससे उत्पाद व्यय ध्रौव्य स्वभाव है। चनेके दानेको मसलनेसे चूरा पैदा हुआ चना नाश हुआ तथापि चनेका सर्वस्व ध्रौव्य है, मौजूद है। यह द्रव्य क्रियावान है हलन चलन करता है।

पुद्गलविपाकी कर्मप्रकृति–जिसका फल मुख्यतासे शरीरपर हो। कुल १४८ मेंसे (भवविपाकी आयु ४ + क्षेत्रविपाकी आनुपूर्वी ४ + जीवविपाकी ७८, देखो "जीवविपाकी") घटानेसे १४८–८६=६२ प्रकृतियां पुद्गल विपाकी हैं। (जै० सि० प्र० नं० ३५४) अर्थात्–१५ शरीर बन्धन संघात + ३ अंगोपांग + निर्माण + ६ संस्थान + ६ संहनन + स्पर्शादि २० + अगुरुलघु + उपघात + परघात + आतप + उद्योत + २ प्रत्येक साधारण + २ शुभ अशुभ + २ स्थिर अस्थिर=६२।

पुद्गलक्षेप अतीचार–द्वितीय गुणव्रत, देशविरतिका पांचवां दोष। जहां रहनेकी मर्यादा की है उससे बाहर अपना मतलब कंकड, पत्र आदि डालकर बता देना (सर्वा० अ० ७–३१)

पुरंजय–विजयार्द्धकी दक्षिण श्रेणीमें १६ वां नगर। (त्रि० गा० ६९७)

पुरुष–व्यंतरोंमें किंपुरुष देवोंका पहला भेद।
(त्रि० गा० २६९)

पुरुष प्रिय–आत्मा, व्यंतरोंमें किंपुरुष देवोंका पांचवां भेद। (त्रि० गा० २६९)

पुरुष प्रिया–व्यंतरोंके प्रथम इन्द्रकी महत्तरी-देवी (त्रि० गा० २७६)

पुरुष पुंडरीक–भरतके वर्तमान छठे नारायण।
(त्रि० गा० ८१९)

पुरुष वेद नोकषाय–जिसके उदयसे स्त्रीकी चाह हो (सर्वा० अ० ८–९)

पुरुष सिंह–भरतके वर्तमान पांचवे नारायण।
(त्रि० गा० ८२९)

पुरुषार्थ–आत्माका प्रयोजन, उद्देश्य, परिश्रम। उद्योग चार हैं–धर्मका उद्योग १, अर्थ–द्रव्य कमानेका उद्योग २, काम–न्याय पूर्वक इंद्रिय तृप्तिका उद्यम ३, मोक्ष–सर्व कर्मसे छूटकर सिद्ध होनेका उद्यम। आत्मामें कर्म क्षयोपशमसे जो ज्ञान दर्शन वीर्य व सम्यक्त चारित्र गुहण प्रगट है। उनहीको पुरुषार्थ कहते हैं उनसे बुद्धि पूर्वक काम करना मनुष्यका कर्तव्य है। अबुद्धि पूर्वक कर्मका उदय आता है तब पुरुषार्थ सफल व असफल होता है।

पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय–सं०, अमृत चंद्राचार्य कृत सटीक मुद्रित।

पुरुषार्थानुशासन–एक संस्कृत श्रावकाचार।

पुरुषोत्तम–भरतके वर्तमान चौथे नारायण।
(त्रि० गा० ८१९)

पुलाक–जो साधु २८ मूल गुणोंमें कभी कभी परिपूर्ण न हों, चपल सहित चावलके समान हों, पीत, पद्म, शुक्ललेश्या धारी, ऐसे साधु १२ वें स्वर्ग तक जाते हैं। (सर्वा० अ० ९–४६–४७)

पुष्कर (वर) द्वीप व समुद्र–तीसरा द्वीप व समुद्र–द्वीप १६ लाख व समुद्र ३२ लाख योजन चौड़ा है।

पुष्करार्द्ध द्वीप–पुष्कर द्वीपके मध्य चारों तरफ मानुषोत्तर पर्वत है, इससे द्वीपके दो भाग होगए। इसके आधे द्वीपमें धातुकीखण्डद्वीपके समान रचना है। दो मेरु, दो भरत आदि हैं, दो इष्वाकार पर्वत हैं, कुलाचल पर्वत १२ हैं, गजदंत सहित वक्षार पर्वत ४०, गंगा, सिन्धु आदि व विदेहा व विदेहकी दो दो नदी मिलकर १८०, द्रह १२ कुण्ड १८० आदि रचना है (त्रि० गा० ९३६); इसके स्वामी व्यन्तरदेव पद्म और पुण्डरीक हैं।
(त्रि० गा० ९६१)

पुष्कला–विदेहमें सातवां देश (त्रि.गा. ६८१)

पुष्कलावती–विदेहमें आठवां देश ,, ,,

पुष्पक–आनतादि ४ स्वर्गोंमें छः इन्द्रकोंसे तीसरेका नाम । (त्रि० गा० ४६८)

पुष्पगन्धी–महोरग जातिके व्यन्तरोंके इन्द्र अतिकायकी वल्लभिकादेवी । (त्रि. गा. २६३)

पुष्प चूल–विजयार्द्धकी उत्तरश्रेणीका १७ वां नगर । (त्रि० गा० ७०२)

पुष्पदन्त–नौमें तीर्थंकर वर्तमान भरतके केकंद नगरीके इक्ष्वाकुवँशी राजा सुग्रीवक रानी रमाके पुत्र, सफेद देह १०० धनुष ऊंचा देह दो लाख पूर्व आयु, पगमें मगाका चिह्न, राज्यादि करके अन्तमें साधु हो मोक्ष पधारे स्वर्गके इन्द्रोंके घोड़ीके सेनाका प्रधानदेव । (त्रि० गा० ४९७) पांचवें क्षीरसमुद्रका स्वामी व्यन्तरदेव । (त्रि०गा०९६३) श्रीधर सेनाचार्यके शिष्य जिनको धवलादिका मूल पाठ सिद्धांत पढ़ाया फिर जिन्होंने भूतबलिके साथ रचना की । (श्रा० पृ० १९)

पुष्पदंत कवि–(वि० सं० ६०६) आदिपुराण, उत्तरपुराण, पद्मपुराण, हरिवंशपुराण, यशोधरचरित्र प्राकृतके कर्ता । (दि० गु० १७८)

पुष्पदन्त पंडित–या स्वामी, षट्खँड प्राभृतकी टीका (१००००) व यशोधर काव्य पंजिकाके कर्ता । (दि० ग्रं० नं० १८०)

पुष्पदन्ता–भगवान मुनि सुव्रतनाथकी संघमें मुख्य आर्यिका । (इ० २ पृ० ३९)

पुष्पमाला–सुमेरपर्वतके नंदनवनमें सातवें कूट सागरपर रहनेवाली दिक्कुमारीदेवी ।
(त्रि० गा० ६२७)

पुष्पवती–किन्नर जातिके व्यंतरोंके इन्द्र महापुरुषकी वल्लभिकादेवी । (त्रि० गा० २६०)

पुष्पसेन कवि–द्विसंधान व सप्तसंधान काव्य टीकाके कर्ता । (दि० ग्रं० नं० १८१)

पुष्पांजली व्रत–इसकी दो विधि हैं–(१) एक ही वर्षमें भादोंसे चैतके मास तक ८ मास करे । शुक्लपक्षमें ५ से ९ तक पांच उपवास हरमासमें करे पांच वर्षतक करे । भादों सुदीमें पांचे व नौमीको उपवास करे छठ, सातै आठै कांजी लेवे । या छठ व आठेको एकासन करे । तीन उपवास करे या दो उपवास तीन एकासन करे । (कि० क्रि० पृ० २२१)

पूजक–जो जिनेन्द्रकी नित्य पूजा करे। ब्राह्मण क्षत्री वैश्य शूद्र चारों ही वर्णवाले सदाचारी पूजक होसके हैं । (ध. सं. श्रा. श्लो. १४३–४–अ.९) व (पूजासार श्लो. १७–१८)

पूजकाचार्य–जो प्रतिष्ठा व विशेष पूजनविधान करावे । ब्राह्मण क्षत्री वैश्य तीन वर्णवाला सम्यग्दृष्टी, अणुव्रतधारी, निरोग विद्वान ।
(ध. सं. श्रा. १४९–१९२ अ. ९)

पूजन– } पूजनके भेद पांच हैं–(१) नित्य–
पूजा – } जो रोज की जावे, (२) अष्टाह्निका–जो कार्तिक, फागुन, आषाढ़के अंतके ८ दिनमें नंदीश्वरके ५२ चैत्यालयोंकी पूजन की जावे, (३) ऐन्द्रध्वज–इन्द्रादि द्वारा, (४) चतुर्मुख या सर्वतोभद्र–मुकुटबद्ध राजाओं द्वारा पूजन, (५) कल्पद्रुम–याचकोंको इच्छानुसार दान देकर जो चक्री द्वारा पूजन हो ।

पूजन ६ प्रकार भी हैं–(१) नाम पूजन–नाम लेकर पुष्प क्षेपना, (२) स्थापना पूजन मूर्ति द्वारा पूजना, (३) द्रव्य पूजन–अरहंतका पूजन, (४) क्षेत्र पूजन–पंचकल्याणकोंके स्थान पूजना, (५) काल पूजन–जिस समय कल्याणक हों उस समय व पर्वमें पूजन करना, (६) भाव पूजन–जिनेन्द्रके गुणोंका पूजना । (जिन पूजनाधिकार मीमांसा जुगलकिशोर मुख्तार कृत) ।

पूजाराध्य क्रिया–दीक्षान्वय क्रिया ५ वीं । अजैन नया दीक्षित जैनी भगवानकी पूजा करके व उपवास करके जिनवाणी द्वादशांगका संक्षेप अर्थ सुने व धारण करे । (गृ. अ. ५)

पूज्यपाद–यतीन्द्र पाणिनीय सूत्रवृत्ति काशिका (२०००) के कर्ता, शक चौथी शताब्दीमें हुए,

गंगवंशी दुर्विनीतराजा (ई० ४७८से ५१३) इनका प्रधान शिष्य था। यह कर्णाटकमें कोलंगाल ग्राममें माधवभट्ट और श्रीदेवी ब्राह्मणके पुत्र थे। वे बड़े निष्णात वैद्य, वैय्याकरणी व नैय्यायिक तपस्वी थे। इनका नाम देवनंदी जैनेन्द्रस्वामी प्रसिद्ध है। जैनेन्द्र व्याकरण, श्रावकाचार, सर्वार्थसिद्धि, इष्टोपदेश, समाधितंत्र आदिके कर्ता। (दि. ग्रं. नं. १८१)

पूतिदोष–अपने गृहके बनानेको जो ईंट पाषाण एकत्र किये थे उनमें थोड़े काष्टादिक मुनिके निमित्त मंगाकर मिला देना। (म. ६–११) साधुके निमित्त यह संकल्प करे कि जबतक इस नवीन चूल्हेका भोजन साधुको न दूंगा व ऐसा द्रव्य साधुको न देऊं तबतक भोजन न करूंगा। साधुके निमित्त नवीन आरम्भ करे। (भ. ए. १०३)

पूर्ण–भवनवासी देवोंमें द्वीपकुमारोंके इन्द्र।
(त्रि. गा. २७)

पूर्णचंद्र–भरतके आगामी उत्सर्पिणीके सातवें बलभद्र। (त्रि. गा. ८७९)

पूर्णदेव–प्रतिष्टापाठके कर्ता। (दि. ग्रं. १८२)

पूर्णभद्र–भरतके विजयार्द्धका चौथा व ऐरावतके विजयार्द्धका छठा कूट। (त्रि० गा० ७३३–३४)

पूर्व–८४ लाख वर्षका एक पर्व, ८४ लाख पर्वका एक पूर्व, द्वादशांग वाणीमें दृष्टिवाद बारहवें अंगका एक भाग। इसके १४ भेद हैं।
देखो "चतुर्दश पूर्व"।

पूर्वकाल–भूतकाल जो बीत गया; ८४ लाख वर्षका पूर्वांग व ८४ लाख पूर्वांगका एक पूर्वकाल
देखो (प्र. जि. ए. १११)

पूर्वगत–१४ पूर्वके कुल मध्यम पद ९५ कोड़ ५० लाख हैं। (गो० जी० गा० ३६३–६४)

पूर्वचर–पहले जो होता है उससे अनुमानको साधन करना। जैसे एक मुहूर्त पीछे रोहणीका उदय होगा क्योंकि कृत्तिकाका उदय हो रहा है।
(परी० अ० ३–६)

पूर्वरतानुस्मरण त्याग–पहले भोगोंको बारबार स्मरण करना। (सर्वा. अ. ७–७)

पूर्व विदेह–जंबूद्वीपके मध्यमें विदेह क्षेत्र मेरुकी पूर्व तरफ जहां सीता नदी बहती है सोलह देश हैं। यहां सदा चौथाकाल रहता है। मोक्षमार्ग चलता है। निषद्ध कुलाचलपर चौथा कूट व नील पर्वतपर तीसरा कूट। (त्रि० गा० ७२५–६)

पूर्व स्तुति दोष–वस्तिका ग्रहण करनेके पहले साधु दातारकी स्तुति करे। (भ० ए० ९१)

पूर्वांग–८४ लाख वर्षका, देखो(प्र.जि. ८ १११)

पृथक् विक्रिया–अपने एक शरीरसे भिन्न २ अनेक शरीर बनाकर उनमें अपने आत्माके प्रदेशोंका फैलाना। जैसे देव व भोगभूमिके जीव व चक्रवर्ती कर सक्ते हैं। जो अपनी ही देहको ही बदलकर छोटी बड़ी आदि कर सके यह अपृथक् विक्रिया है, उसे नारकी व अन्य कर्मभूमिके मनुष्य तिर्यंच कर सक्ते हैं। (गो. जी. गा. २३२)

पृथक्त्व–१ तीनसे ऊपर व नौके नीचे एक संख्या। (गो. जी. गा. ४०४)

पृथक्त्ववितर्क वीचार–पहला शुक्लध्यान जो आठवें गुणस्थानसे बारहवेंके कुछ भाग तक होता है। यहां साधुका उपयोग उसकी बुद्धि अपेक्षा स्थिर है, परन्तु अबुद्धि गोचर वहां भिन्न २ के पलटन होती है। पृथक्त्व=भिन्न २। वितर्क=श्रुत। वीचार=पलटन, तीन प्रकार–अर्थ पलटन–आत्मद्रव्यको छोड़कर किसी पर्यायका या किसी गुणका चिन्तवन; व्यंजन या शब्द पलटन–आत्मा शब्दको छोड़ जीव, व ज्ञान, ज्ञान आदिका चिंतवन। योग पलटना–मनसे, वचनसे, कायसे ध्यान इत्यादि। इस ध्यानके बलसे मोहनीयकर्मका उपशम या क्षय हो जाता है। (सर्वा० अ० ९–४४)

पृथ्वी–रुचक पर्वतके [illegible] दिशाके [illegible] कूटपर बसनेवाली देवी। (त्रि० गा० ९५५ [illegible])

पृथ्वीकाय } पृथ्वी जिनमें जीव हो, सचित्त
पृथ्वीकायिक } हो, एकेन्द्रिय है [illegible]

जब जीव निकल जाता है अचित मिट्टी होती है सूखी, रोंधी व हलचलाई होती है वह मात्र पृथ्वीकाय है। पृथ्वीकायिक सजीव होते हैं इसीसे उनमें वृद्धि होती है। (सर्वा० अ० २–१३)

पृथ्वीपाल–पं० व्रत कथाकोष छंदके कर्ता। (दि० ग्रं० नं० ८४)

पृथ्वीमति–वह आर्यिका जिनके पास प्रसिद्ध सीता सतीने आर्यिकाकी दीक्षा ली थी। (ई० २ पृ० १४८)

पृथुल–लोक व्यापी।

पृष्टक–सौधर्म ईशान स्वर्गका २८ वां इंद्रक विमान। (त्रि० गा० ४६६)

पेय–पीने योग्य पदार्थ, छः प्रकारके हैं। (१) घन–दही आदि गाढ़े पदार्थ, (२) अघन–फलका रस, कांजी, थोड़ा गर्म जल, (३) लेपी–चिपकनेवाले पतले पदार्थ, (४) अलेपी–न चिपकनेवाले पदार्थ, (५) ससिक्थ–भातके कण सहित मांड, (६) असिक्थ–भातके कण विना मांड।
(सा० अ० ५–५७)

पेशली–प्रलम्बकोशके कर्ता। (दि० ग्रं० नं० १८४)

पोत–गर्भका तीसरा भेद जिसमेंसे उत्पन्न पशु तुर्त चलने फिरने लग जावे, जैसे सिंहनीका गर्भ। (सर्वा० अ० २–३३)

पोन्न–प्रसिद्ध कर्णाटक कवि। (ई० ९५०) राष्ट्रकूट राजा कृष्णराजके समयमें यह कवि चक्रवर्ती कहलाता था। भुवनकरण्याभ्युदय व गत प्रत्यागत वाद ग्रन्थोंके कर्ता। (क० १९)

पोषह–उपवास, जिसमें स्थानका नियमकर धर्म ध्यानमें आसक्त रहा जावे।

पौद्गलिक–पुद्गल सम्बन्धी पुद्गलका रचा हुआ।

पौरुषवाद–वह एकांत मत जो दैव व कर्मोदयको न मानकर मात्र पुरुषार्थसे ही हर कार्यकी सिद्धि मानते हैं। कहते हैं कि आलसी कुछ फल नहीं भोग सकता। जैसे स्तनका दूध भी बालकको उद्यमसे ही पीनेमें आता है। (गो. क. गा. ८९०)

पंच अणुव्रत–अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, परिग्रह त्याग।

पंच अनुत्तर–ऊर्ध्वलोकमें अन्तके पटलमें पांच विमान विजय, वैजयंत, जयंत, अपराजित, सर्वार्थसिद्धि। यहां अहमिन्द्र पैदा होते हैं। शुक्ललेश्या है। आयु उत्कृष्ट ३३ सागर है। यहांसे आकर नारायण प्रतिनारायण नहीं होते। सर्वार्थवाले तो एक जन्म ले व शेष चारवाले अधिकसे अधिक दो जन्म मनुष्यके लेकर मोक्ष होजाते हैं। (त्रि. गा. ४९७)

पंच अंतरंग शुद्धि–सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्चारित्र, विनय और सामायिक आदि आवश्यक कार्यमें दोष रहित वर्तना। (स. अ. ८-४१)

पंच असंक्लिष्ट भावना–संक्लेश रहित तप, श्रुत, सत्व, एकत्व, धृतिफल, इन पांचका बारबार चिन्तवन करना। सत्व भावनामें अपने आत्माकी अशुद्ध व शुद्ध स्वरूपका विचार व धृतिबलमें दुःख व उपसर्ग पड़नेपर भी कायरता न करना। (भ० पृ० ७८)

पंच आचार–दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप, वीर्य (आत्मबलका प्रकाशी आचार्य इनको पालते व दूसरोंसे पलवाते)

पंच आधार–साधु शिष्योंके रक्षक। आधार पांच हैं। (१) आचार्य–दीक्षादाता, (२) उपाध्याय–शास्त्रका पाठक, (३) प्रवर्तक–जो संघकी वैय्यावृत्य आदिसे उपकार करे, स्थविर–जो संघकी प्राचीन रीति मर्यादाको बतावे, (५) गणधर–मुनिगणकी रक्षा करें। (मू. गा. १५५–१५६)

पंच आभूषण–दाताके १ आनंद पूर्वक देना, २ आदरपूर्वक देना, ३ प्रिय वचन कह कर देना, ४ निर्मल भाव रखना, ५ जन्म सफल मानना।
(जैन क० ग्र० पृ० ८८)

पं आश्चर्य–महान् साधुओंको आहारदान देते हुए पांच आश्चर्य होते हैं–(१) देवों द्वारा रत्नवृष्टि, (२) पुष्पवृष्टि, (३) दुंदुभि बाजोंका बजना, मंद सुगंध पवनका चलना, (५) जय जयकार शब्द होना। (अ० प० २०–१०२–१०५)

पंच इंद्रिय—स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र।

पंच इंद्रिय निरोध—पांचों इंद्रियोंको अपने वशमें रखना, स्वच्छन्द न होने देना। यह साधुओंके २८ मूलगुणोंमें भी है।

पंच उदम्बर—पीपल, गूलर (ऊमर), पाकर, बड़फल और कठूंबर (काले गूलर या अंजीर) इनमें त्रस जंतु रहते हैं, कोई दीखते कोई नहीं दीखते। (श्रा. म. २–१३)

पंच उपसंपत्—आत्मसमर्पण, जैसे गुरुजनोंके लिये कहना कि मैं आपका ही हूं। १ विनय—अन्य संघसे आएका आदर. २ क्षेत्र—ध्यानयोग्य स्थान ढूंढना, ३ मार्ग—मार्गकी कुशल पूछना, ४ सुख दुःख—सुख दुःख युक्त पुरुषोंका यथावश्यक उपकार करना। ५ सूत्र—व्याकरण गणित आदि लौकिक शास्त्र—सिद्धांत शास्त्र, वैदिक शास्त्र—व स्याद्वाद न्याय व अध्यात्मिक शास्त्र सामायिक शास्त्र इस प्रकार सूत्रोंको जानना। (मू. गा. १३९–१४४)

पंच उपक्रम—देखो "उपक्रम"।

पंचकल्याणक—गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान, निर्वाण। तीर्थंकरोंकी विशेष भक्ति इन्द्रादिदेव इन पांच अवसरोंपर करते हैं।

पंचकल्याणक व्रत—जब जब २४ तीर्थंकरोंके पंचकल्याणक हों उन तिथियोंमें उपवास करना।

नं० तीर्थ	गर्भ	जन्म	तप	ज्ञान	निर्वाण
१	आषाढ वदी २	चैत वदी ९	चैत वदी ९	फागुन वदी ११	माघ वदी १४
२	जेठ वदी १५	पौष सुदी १०	पौष सुदी ९	पौष सुदी ११	चैत सुदी ५
३	फागुन सुदी ८	मगसर सुदी १५	मगसर सुदी १५	कार्तिक वदी ४	चैत सुदी ६
४	वैसाख सुदी ६	पौष सुदी १२	पौष सुदी १२	पौष सुदी १४	वैसाख सुदी ६
५	सावन सुदी २	वैसाख वदी १०	वैसाख सुदी ९	चैत सुदी ११	चैत सुदी ११
६	माघ वदी ६	कार्तिक वदी १३	मगसर वदी १०	चैत सुदी १५	फागुन वदी ४
७	भादों सुदी ६	जेठ सुदी १२	जेठ सुदी १२	फागुन वदी ६	फागुन वदी ७
८	चैत वदी ५	पौष वदी ११	पौष वदी ११	फागुन वदी ७	फागुन वदी ८
९	फागुन वदी ९	मगसर सुदी ९	मगसर सुदी १	कार्तिक सुदी २	भादों सुदी ८
१०	चैत वदी ८	पौष वदी १२	पौष वदी १२	पौष वदी १४	कुंवार सुदी ८
११	जेठ वदी ६	फागुन वदी ११	फागुन वदी ११	माघ वदी १५	श्रावण ,, १५
१२	आषाढ वदी ६	फागुन वदी १४	फागुन वदी १४	माघ सुदी २	भादों सुदी १४
१३	जेठ वदी १०	पौष सुदी ४	पौष सुदी ४	माघ सुदी ६	आषाढ वदी ८
१४	कार्तिक वदी १	जेठ वदी १२	जेठ वदी १२	चैत वदी १५	चैत वदी १५
१५	वैसाख सुदी १३	पौष सुदी १३	पौष सुदी १३	पौष सुदी १५	जेठ सुदी ४
१६	भादों वदी ७	जेठ वदी १४	जेठ वदी ४	पौष सुदी ११	जेठ वदी १४
१७	सावन वदी १०	वैसाख सुदी १	वैसाख सुदी १	चैत सुदी ३	वैसाख सुदी १
१८	फागुन सुदी ३	मगसर सुदी १४	मगसर सुदी १०	कार्तिक सुदी १२	चैत वदी १५
१९	चैत सुदी १	मगसर सुदी ११	मगसर सुदी ११	मगसर सुदी ११	फागुन सुदी ५
२०	सावण वदी २	वैसाख वदी १०	वैसाख वदी १०	वैसाख वदी ९	फागुन वदी १२
२१	कुंवार वदी २	आषाढ वदी १०	आषाढ वदी १०	मगसर सुदी ११	वैसाख ,, १४
२२	कार्तिक सुदी ६	सावन वदी ६	सावन सुदी ६	आसौज सुदी १	आषाढ सुदी ७
२३	वैसाख वदी २	पौष वदी ११	पौष वदी ११	चैत वदी ४	सावन सुदी ७
२४	आषाढ सुदी ६	चैत सुदी १३	मगसिर वदी १०	वैसाख सुदी १०	कार्तिक वदी १५

व्रत पूर्ण हो तब उद्यापन करे। (कि. क्रि. क. १५८–१६१)

नकशा मितीवार कौन कल्याणक किसका हुआ मितीके सामने तीर्थंकर भगवानका नं० है।

मास	गर्भ	जन्म	तप	ज्ञान	निर्वाण
आषाढ़					
वदी २	१				
६	१२				
८					१३
१०		२१	२१		
सुदी ६	२४				
७					२२
श्रावण					
वदी २	२०				
६		२२			
१०	१७				
सुदी २	५				
६			२२		
७					२३
१५					११
भादों					
वदी ७	१६				
सुदी ६	७				
८					९
१४					१२
कुआर					
वदी २	२१				
सुदी १				२२	
८					१०
कार्तिक					
वदी १	१४				
२				९	
४				३	
१३		६	२४		
सुदी ६	२२				
१२				१८	
वदी १५					२४
मगसिर					
वदी १०			६		
सुदी १			९		
९		९			
१०			१८		
१४		१८			
१५		३	३		
११		१९	१९	१९–२१	

मास	गर्भ	जन्म	तप	ज्ञान	निर्वाण
पौष					
वदी ११		८–२३	८–२३		
१२		१०	१०		
१४				१०	
सुदी ४		१३	१३		
९			२		
१०		२			
११				२–१६	
१२		४	४		
१४					
१३		१५	१५		४
१५				१५	
माघ					
वदी ६	६				
१५				११	
१४					१
सुदी २				१२	
६				१३	
फागुन					
वदी ४					६
६				७	
७				८	७–८
९	९				
११		११	११	१	
१४		१२	१२		
१२					२०
सुदी ३	१८				
५					१९
८	३				
चैत्र					
वदी ४				२३	
५	८				
८	१०				
९		१	१		
१०		२०			
१५				१४	१८–१४
सुदी ३				१७	
५					२
६					३
१	१९				
११				५	५
१३		२४			
१५				६	

मास	गर्भ	जन्म	तप	ज्ञान	निर्वाण
बैशाख					
वदी ३	२३				
९				२०	
१०		५	२०		
१४					२१
सुदी १		१–७	१७		१७
६	४				४
९			५		
१३	१५				
१०				२४	
जेठ					
वदी ४			१६		
६	११				
१०	१३				
१२		१४	१४		
१४		१६			१६
१५	२				
सुदी ४					१५
१२		७	७		
	२४	२४	२४	२४	२४

पंच गुरु मुद्रा विधान (पंच मुष्टि विधान)–दीक्षित जैनीको जैनधर्मकी दीक्षा देते हुए स्थान लाभ क्रियामें गुरु शिष्यके मस्तकपर हाथ रक्खे। और कहे कि–"पूतोसि दीक्षया" तू इस दीक्षासे पवित्र हुआ। (गृ० अ० ९)

पंच चूलिका–दृष्टिवाद बारहवें अंगका एक भेद चूलिका–सो पांच प्रकार है। जलगता, स्थलगता, मायागता, आकाशगता, रूपगता। हरएकके मध्यम पद १०९८९२०० हैं। (गो० जी० गा० ३६१–३६४)

पंच जाति–एकेंद्रिय, द्वेंद्रिय, तेंद्रिय, चौंद्रिय, पंचेन्द्रिय।

पंच ज्योतिषी–चन्द्रमा, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र, तारा।

पंच त्रिभंगी–१४८ कर्म प्रकृतियोंमें गुणस्थान अपेक्षा बंधकी गणनामें १२०–१४८ (१० बंधन संघात + १६ वर्णादि + मिश्र + सम्यक्त=२८); उदयमें १२२ (१२० + मिश्र + सम्यक्त); उदीरणामें १२२; सामान्य सत्तामें १४८; विशेष सत्ता किसी एककी अपेक्षासे है। इन पांचोंमें तीन भंग होंगे। जैसे बंधका अभाव, बंध और बन्ध व्युच्छित्ति अर्थात् अमुक गुणस्थानमें इतनी प्रकृतियां नहीं बंधतीं इतनी बन्धती हैं व इतनी आगेके लिये बन्धसे हटती हैं। इसी ही तरह हरएकमें जानना। (च० छं० २७)

पंचदश उत्तरगुण–सम्यक्तीके १५ उत्तर गुण हैं–मद्य, मांस, मधु व पांच उदम्बर फल (बड़, पीपल, गूलर, पाकर, अंजीर) का त्याग। ८ मूल गुल + सात व्यसन त्याग (जुआ, मांसाहार, मदिरापान, चोरी, शिकार, वेश्या, परस्त्री) इनका त्याग। (गृ. अ. ७)

पंचदश प्रमाद–४ विकथा–स्त्री, भोजन, राष्ट्र, राजा + ४ कषाय + ५ इंद्रिय + निद्रा + स्नेह = १५ प्रमाद मूल हैं। इनके ८० भंग होते हैं। ४ × ४ × ५ × १ × १ = ८०। (गो. जी. गा. ३४)

पंचदश योग–मनके ४–सत्य, असत्य, उभय, अनुभय। वचनके ४–सत्य, असत्य, उभय, अनुभय। कायके ७–औदारिक, औदारिक मिश्र, वैक्रियिक, वैक्रियिक मिश्र, आहारक, आहारक मिश्र, कार्मण। (गो. जी. गा. २१६)

पंच धारणा–पिंडस्थ ध्यानकी ५ धारणाएं। देखो शब्द "धारणा"।

पंच परमेष्ठी–परम (उत्कृष्ट) पदमें तिष्ठनेवाले अर्हंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु।

पंच परमेष्ठी गुण–(१) (अरिहंत) अर्हंतके ४६ गुण–३४ अतिशय + ८ प्रातिहार्य + ४ अनंत चतुष्टय। १० जन्मके अतिशय–१ सुन्दर रूप, २ सुगंध तन, ३ पसेव नहीं, ४ मलमूत्र नहीं, ५ हित वचन, ६ अतुल बल, ७ श्वेत रुधिर, ८–१००८ लक्षण देहमें, ९ समचतुरस्र संस्थान तन, १० वज्रवृषभ नाराच संहनन।

१० अतिशय केवलज्ञानके समय–१ चारों तरफ ४०० कोस सुभिक्ष, २ आकाशमें गमन, ३ चार मुख दिखना, ४ अदया नहीं + ५ उपसर्ग नहीं ६ ग्रासरूप भोजन नहीं, ७ सर्व विद्याका ईश्वरपना, ८ पलक लगे नहीं, ९ छाया नहीं, १० नख केश बढ़े नहीं । १४ देवकृत–अर्द्ध मागधी भाषा, १ जीवोंमें मित्रता, ३ दिशाका निर्मलपना, ४ आकाश निर्मल, ५ षट्ऋतुके फलफूल फलना, ६ एक योजन तक पृथ्वी दर्पणसम, ७ विहारके समय सुवर्णकमलोंकी रचना, ८ जय जय शब्द होना, ९ मन्द सुगन्ध पवन, १० मन्द जलकी वर्षा, ११ कंटक रहित भूमि, १२ जीवोंमें आनंद, १३ धर्मचक्र आगे चलना, १४ आठ मंगल द्रव्य साथ रहना–केवलज्ञान होनेपर प्रगट होते हैं ।

८ प्रातिहार्य–१ अशोकवृक्ष, २ सिंहासन, ३ तीन छत्र, ४ भामण्डल, ५ दिव्यध्वनि, ६ पुष्पवृष्टि, ७ चौसठ चमर ढरना, ८ दुँदुभि बाजे बजना।

४ अनन्त चतुष्टय–अनंतदर्शन, अनंतज्ञान, अनंतसुख, अनंतवीर्य ।

(२) सिद्धोंके ८ गुण–१ सम्यक्त, २ ज्ञान, ३ दर्शन, ४ वीर्य, ५ सूक्ष्मत्व, ६ अवगाहना, ७ अगुरुलघु, ८ अव्याबाध ।

आचार्यके ३६ गुण–१२ तप + १० दशलक्षण धर्म + ५ आचार (दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप, वीर्य) + ६ आवश्यक (समता, प्रतिक्रमण, वंदना, स्तुति, प्रत्याख्यान, कायोत्सर्ग) +३ गुप्ति।

उपाध्यायके २५ गुण–११ जिनवाणीके अंग आचारांग आदि + १४ पूर्व उत्पाद आदिका ज्ञान।

साधुके २८ गुण–५ महाव्रत + ५ समिति + ५ इंद्रिय निरोध + ६ आवश्यक + ७ (स्नान त्याग + भूमिपर शयन + वस्त्र त्याग + केशलोंच + एकवार भोजन + खड़े भोजन + दंतधावन त्याग) कुल पंचपरमेष्टीके गुण=४६ + ८ + ३६ + २५ + २८ = १४३ ।

पंचपरमेष्ठी व्रत–अरहंतके ४६ गुणोंके लिये १० तिथि दशमी + ८ तिथि आठम + ४ तिथि चौथ + १४ चौदस कुल ४६ उपवास करे; सिद्धके ८ गुणोंके लिये–८ तिथि आठम करे ८ उपवास करे; आचार्यके ३६ गुणोंके लिये १२ तिथि बारस + ६ छठ + ५ पंचमी + १० दशमी + ३ तीज कुल ३६ उपवास करे। उपाध्यायके २५ गुणोंके लिये–१४ चौदस + ११ ग्यारस कुल २५ उपवास करे। साधुके २८ गुणोंके लिये–१५ पंचमी + ६ छठ + ७ पड़िवा=२८ उपवास। इस तरह १४३ उपवास करे प्रोषध रूपसे (कि. क्रि. पृ० १२०)

पंच परिकर्म–जिसमें गणितके सूत्र हों व विस्तरादि कथन हो वे हैं–चन्द्र प्रज्ञप्ति, सूर्य प्रज्ञप्ति, जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति, द्वीपसागर प्रज्ञप्ति, व्याख्या प्रज्ञप्ति। (गो० जी० गा० ३६१)

पंच परिवर्तन (परावर्तन)–द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, भाव। प्रत्येक शब्दमें देखो ।

पंचपात्र–देखो शब्द " पात्र "

पंच पाप–हिंसा, असत्य, चोरी, कुशील, परिग्रह (मूर्छा) ।

पंच पाप स्थान–विना जिनकल्पी मुनि हुए एकाविहारी साधुके ५ दोष होते हैं–(१) आज्ञाकोप (आज्ञाका उल्लंघन), (२) अतिप्रसंग (मर्यादा बाहर व्यवहार), (३) मिथ्यात्वकी आराधना, (४) सम्यग्दर्शनादि गुणोंका घात, (५) संयमका घात।
(मू० गा० १५४)

पंच प्रकारी पूजा–पूज्यको भक्तिके लिये चित्तमें आह्वानन (बुलाना), स्थापन, सन्निधीकरण (निकटवर्ती करना), पूजन, विसर्जन। (श्रा० पृ० १६२)

पंचप्रकार स्वाध्याय–वाचना, प्रच्छना (पूछना), अनुप्रेक्षा (मनन), आम्नाय (कंठ करना), धर्मोपदेश।

पंच प्रायश्चित्त सूत्र–१ आगम, श्रुत, आज्ञा, धारणा, जित।
(भ० पृ० १६९)

पंच व्यवहार सूत्र–पंच प्रायश्चित्त सूत्र ।

पंचभागहार—उद्वेलन, विध्यात, अधःप्रवृत्त, गुण संक्रम, सर्व संक्रम। देखो "पंच संक्रमण" पांच प्रकार भागहार द्वारा कर्म प्रकृतियोंको अन्य रूप कर देनेका विधान है।

पंच भाव—औपशमिक क्षायिक, क्षयोपशमिक, औदयिक, पारिणामिक।

पंच भिक्षावृत्ति—१ गोचरी वृत्ति (गौके समान मात्र चरनेमें ही ध्यान)=अक्षणमृक्षण वृत्ति, (गाडीमें तेलदें उस समान पेटको भाडा देना), ३ उदराग्नि प्रशमन (जैसे आगको बुझावे वैसे क्षुधा मेटकर संयमकी रक्षा करें), ४ गर्तपूरण (पेट रूपी खाडेको भरें), ५ भ्रामरी वृत्ति (दातारको भ्रमर-वत् कष्ट न पहुंचावे) ये ५ प्रकार भाव साधुओंके भोजन सम्बन्धी होते हैं। (भ० पृ० ११६)

पंच बंधन—औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस, कार्मण।

पंच बहिरंग शुद्धि—समाधिमरण कर्ताको पांच बाहरी शुद्धि रखनी चाहिये। (१) सांतरा या शय्या (२) संयम साधक उपकरण, (३) अन्नादि, (४) दोष कथन रूप आलोचना, (५) वैय्यावृत्य। इन पांचोंमें संयमरूप जीव रक्षा व इंद्रिय दमन करते हुए वर्तना। (सा० अ० ८–४३)

पंच भूषण—दातार—(१) आनंद सहित, (२) आदर सहित, (३) प्रिय वचन सहित, (४) निर्मल भाव सहित, (५) आपको धन्य मानते हुए देना। (श्रा० पृ० १५२)

पंच भ्रष्ट मुनि—पार्श्वस्थ (इंद्रियवश रहित कुमार्गगामी), २ कुशील—(कषायवान, मूलगुण व उत्तर गुण रहित), ३ संशक्त—(आहारका लोभी, वैद्यक ज्योतिषमें मंत्र तंत्र करनेवाला) ४ अपगत—(अवसन्न) ज्ञान रहित, आलसी, संसार सुखमें आसक्त, ५ मृगचारी—स्वच्छंद विहारी। चारित्र सदोष पालनेवाले। (श्रा० पृ० १८४)

पंचम काल—दुखमा काल, अवसर्पिणीका २१००० वर्षका।

पंचगति—सिद्धगति, मोक्ष अवस्था।

पंच मंगल—गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान, निर्वाण कल्याणककी भक्ति।

पंच मरण—पण्डित पण्डित मरण (केवली शरीर त्याग), २ पण्डित मरण—छठे आदि गुण-स्थानी साधुओंका मरण, ३ बाल पण्डित मरण—सम्यग्दृष्टी श्रावकोंका मरण, ४ बाल मरण—अविरत सम्यग्दृष्टोंका मरण, ५ बाल बाल मरण—सम्यक्त मिथ्यात्वीका मरण। (भ० पृ० १३)

पंच महाव्रत—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, परिग्रह त्याग। (सर्वा० अ० ७–९)

पंच मिथ्यात्व—एकांत, विपरीत, संशय, अज्ञान, विनय।

पंचमी व्रत—आकाश पंचमी व्रत—भादों सुदी ५ को उपवास करे। पांच वर्ष तक करे।

(कि. कि. पृ. १११)

पंचमुष्टि लोंच—तीर्थंकर अपनी पांच मुष्टियोंसे ही अपने केशोंका लोंच कर डालते हैं।

(हरि० पृ० ४९७)

पंच मुष्टि विधान—देखो "पंच गुरुमुद्रा विधान"

पंच म्लेच्छ खण्ड—भरत, ऐरावत व विदेहके ३४ देश, इनमें हरएकके ६ खण्ड हैं। एक आर्य-खण्ड, ५ म्लेच्छ खण्ड। जहां धर्मकी प्रवृत्ति न हो वे म्लेच्छ खण्ड हैं। जंबूद्वीपमें १७० हैं, अढ़ाई-द्वीपमें ८५० हैं। इन सबमें चौथा काल अर्थात् दुखमा सुखमा काल रहता है। अन्तर यह है कि भरत ऐरावतके आर्यखण्डमें जब पांचवां छट्ठा काल चलता है तब इन्हीके म्लेच्छ खण्डोंमें चौथे कालकी अंतिम दशा रहती है तथा जब यहां पहलेसे ४ तक काल होता है तब वहां चौथे कालकी आदि अवस्था रहती है, परन्तु उलटे हानि होती नहीं है। ऐसा ही उत्सर्पिणीमें भी जानना चाहिये।

(त्रि० गा० ८८३)

पंच रस—तिक्त, आम्ल, कटु, मधुर, कषाय, (कडुवा, खट्टा, तीखा, मीठा, कसायला)।

(सर्वा० अ० ५३)

पंच लब्धि—क्षयोपशम, विशुद्धि देशना, प्रायोग्य, करण। सैनी पचेन्द्रिय, बुद्धिमान होना व पापके उदयको घटानेवाला होना क्षयोपशम लब्धि है। अशुभसे बचनेकी व शुभमें चलनेकी रुचि विशुद्धि है। जिनवाणीके जाननेकी व मननकी गाढ़ रुचि देशना है। विशेष मनन करके कर्म स्थिति घटाना प्रायोग्य है। अधः, अपूर्व, अनिवृत्तिकरणको पाना अर्थात् अनन्तगुण विशुद्ध समय समय होनेवाले परिणामोंकी प्राप्ति। (ल० गा० ३)

पंच वर्ण—कृष्ण, नील, पीत, लोहित (लाल) शुक्ल (सर्वा० अ० ५–२३); ज्योतिषके ८८ ग्रहोंमें २० वां ग्रह। (त्रि० गा० ३६५)

पंच विधि भोजन—देखो "पंच भिक्षावृत्ति"

पंच विनय—दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप, उपचार (व्यवहार, जैसे हाथ जोड़ना आदि)

पंच विवेक—इंद्रियोंसे व उनके विषयोंसे आत्माको पृथक् विचारना १ इंद्रियभाव विवेक। २ क्रोधादि कषायोंसे आत्माको पृथक् विचारना, कषायभाव विवेक, ३ शरीरसे आत्माको पृथक् विचारना-शरीर द्रव्य विवेक। ४ आहारसे आत्माको पृथक् विचारना, आहार द्रव्य विवेक। ५ उपकरणादिसे आत्माको पृथक् विचारना, उपकरण द्रव्य विवेक है।

पंचविंशति कषाय—देखो "कषाय भेद" १६ कषाय + ९ नो कषाय।

पंच विंशति क्रिया—आस्रवके कारण, देखो शब्द "क्रिया २५"

पंच विंशति दोष—सम्यक्तमें २५ दोष निःशंकितादि आठ अंगके उल्टे आठ दोष। (देखो दर्शनाचार) आठ मद (जाति, कुल, रूप, बल, विद्या, अधिकार, धन, तप) करना। तीन मूढ़ता—देव, गुरु, लोक। छः अनायतन—कुधर्मके स्थानोंकी संगति करना, कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र व उनके सेवक।

पंच शरीर—औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस, कार्माण।

पंच शैल—राजग्रह नगर (विहार) जहां पांच पर्वत हैं—

१. ऋषिगिरि—चतुःकोण पूर्वदिशामें।
२. वैभारगिरि—त्रिकोण दक्षिण दिशामें।
३. विपुलाचल—त्रिकोण दक्षिण पश्चिमके मध्य।
४. वलाहक—इन्द्रधनुषरूप तीन दिशामें व्याप्त।
५. पांडुक—गोल, पूर्वदिशामें है। (ह.ए. ३०)

पंच संक्रमण—१ उद्वेलन संक्रमण—अधःप्रवृत्त आदि तीन करण विना ही एक कर्म प्रकृतिके परमाणुओंको अन्य प्रकृतिरूप कर देना।

२. विध्यात संक्रमण—मेद विशुद्धतावाले जीवके स्थिति व अनुभागको घटते हुए जो पलटन हो।

३. अधःप्रवृति संक्रमण—बंधरूप प्रकृतिका अपने बंधमें होने योग्य प्रकृतिके परमाणुओंमें बदलना।

४. गुण संक्रमण—समय समय असंख्यात २ गुणे परमाणुओंका अन्य प्रकृतिरूप होना।

५. सर्व संक्रमण—किसी कर्मके अंतिम शेष भागका भी अन्य प्रकृतिरूप होजाना।

(गो० क० गा० ४१३)

पंच संक्लिष्ट भावना—१ कंदर्प भावना—भण्डरूप असत्य वचन रागवर्द्धक कहनेकी भावना, २. आभियोग भावना—रसादिका लोभी होकर मंत्र-तंत्रादि करे, हास्यसे आश्चर्य उपजानेकी बात करनेकी भावना, ३. किल्विष भावना—तीर्थंकरकी आज्ञाविरुद्ध चलने व उद्धतपना रखनेकी भावना, ४. संमोह भावना—जो मोही होकर विपरीत मार्ग चलानेकी भावना करे, ५. आसुरी भावना—तीव्र कषायी, वैर करनेकी भावना करे। यदि कोई जैन साधु इन भावनाओंको करता है तो खोटे देवोंमें मरकर पैदा होता है। (मू. गा. ६४–६८)

पंच संघात—औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस, कार्मण।

पंच समिति—ईर्या—(चार हाथ भूमि देखकर प्राशुक भूमिमें चलना)। भाषा—(शुद्ध वचन

बोलना), एषणा (शुद्ध आहार लेना) आदान निक्षेपण—देखकर रखना, उठाना, उत्सर्ग—मलमूत्र देखकर करना । (सर्वा. अ. ९–५)

पंच सून—चक्की, ऊखली, चूल्हा, बुहारी, जल भरना । ये गृहस्थीके पांच आरम्भ हैं । (श्रा. ११६)

पांच स्थान सूत्र—१ एकेंद्रियादि सूत्र, २ प्राण सूत्र, ३ जीव स्थान सूत्र, ४ गुणस्थान १४ सूत्र, ५ मार्गणा १४ सूत्र । (मूला. गा. ११८७)

पांच स्थावर—पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक ।
(सर्वा० अ० २–१३)

पंच ज्ञान—मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय, केवल। देखो "ज्ञान"

पंचांग अनुमान—प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय, निगमन । इस पर्वतमें अग्नि है (यह प्रतिज्ञा है) क्योंकि यह धूमवान है (यह हेतु है) जहां२ धूम है वहां२ अग्नि है । जैसे रसोईका घर (यह दृष्टांत है) यह पर्वत भी वैसा ही धूमवान है (यह उपनय है) इसलिये यह पर्वत भी अग्निवान है (यह निगमन है); (जै. सि. प्र. नं० ९९)

पंचाध्यायी—तत्वपूर्ण ग्रन्थ, सं० मुद्रित सटीक।

पंचास्तिकाय—जो द्रव्य एक प्रदेशसे अधिक प्रदेश रखनेवाले हैं । जैसे जीव, पुद्गल, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश ।

पंचास्तिकाय—कुन्दकुन्दाचार्य कृत प्राकृत, संस्कृत व भाषा टीका सहित ।

पंचेन्द्रिय जाति—नाम कर्म जिसके उदयसे पंचेन्द्रिय जीव पैदा हो । (सर्वा. अ. ८–११)

पंचेन्द्रिय जीव (प्र.णी)—स्पर्शनादि पांचों इंद्रियोंसे विषय ग्रहण करनेवाले जैसे हो देव, नारकी, मनुष्य तथा पशु गाय भैंस, मृग, मोर, कबूतर, मच्छ आदि ।

पंडित पंडित मरण—केवली भगवानका शरीर त्याग।

पंडित मरण—छठेसे १२ वें गुणस्थान तकके साधुओंका शरीर त्याग ।

पंथ—मार्ग, धर्म, मोक्षमार्ग ।

प्यारेलाल—पं० सद्भाषितावली छन्दके कर्ता।
(दि० ग्रं० ८६)

प्योरथाट्स—अमितगति कृत सामायिक पाठका इंग्रेजी उल्था, पं० अजितप्रसादजी वकील लखनऊ कृत मुद्रित ।

प्रकीर्णक—अंग बाह्य श्रुतज्ञानके १४ भेद । देखो "चतुर्दश प्रकीर्णक" स्वर्गमें छितरे हुए विमान व नरकोंमें छितरे हुए बिले ।

प्रकीर्णक देव—देवोंकी दश पदवियोंमें जो प्रजाके व व्यापारियोंके समान देव हों ।
(त्रि० गा० २२४)

प्रकृति बंध—जब कर्म वर्गणाएं आत्माके योग द्वारा आकर बंधती हैं तब उनमें जो कर्म स्वरूप स्वभाव पड़ता है, जैसे ज्ञानावरणादि । इनके मूल भेद ८ व उत्तर भेद १४८ हैं, देखो "कर्म"

प्रचला—वह कर्म जिसके उदयसे बैठा हुआ ऊँघे।
(सर्वा० अ० ८–७)

प्रचला प्रचला—वह कर्म जिसके उदयसे बार बार घूमें—लार तक बहे । (सर्वा० अ० ८–७)

प्रच्छना—स्वाध्यायका दूसरा भेद, कहींपर शंका हो तो गुरुके पास निवारण करना ।

प्रज्वलित—तीसरे नरककी पृथ्वीका आठवां इंद्रक बिला । (त्रि० गा० १५५)

प्रणव मंत्र—ॐ जिसमें पांच परमेष्ठी गर्भित हैं (ज्ञाना० अ० ३८) देखो "ओम्"

प्रणव मुद्रा—पांचों अंगुलियोंसे नाक पकड़ना प्राणायाम करते समय । ([illegible])

प्रणीताग्नि—तीन [illegible] जिनमें भी कुण्डोंमें अग्नि जलाते हैं वह तीन प्रकार हैं । १ तीर्थंकर—निर्वाण [illegible] कुंड गार्हपत्यमें जलती है । २—गणधरके निर्वाणकी अग्नि जो [illegible] कुंड आहवनीयमें जलती है । ३—सामान्य केवलीके निर्वाण [illegible] दक्षिणाग्नि कुंडमें जलती है । (गृ० अ० ९)

प्रतराकाश—सर्व आकाशके लम्बे चौडे प्रदेशोंकी माप मात्र आकाश जो ७×७=४९ राजू है। (त्रि० गा० ६९)

प्रतरांगुल—एक प्रमाणांगुल लम्बे व एक प्रदेश चौडे ऊँचे आकाशके प्रदेशोंकी मापको सूच्यंगुल कहते हैं। उसका वर्ग प्रतरांगुल है। (सि० द० पृ० ७०) देखो (अंकविद्या प्र. जि. पृ. १०८)

प्रतरावली—आवलीका वर्ग। जघन्य परीतासंख्यातके अर्द्धच्छेद संख्यात हैं। उनको संख्यातस्थान फैलाकर फिर संख्यात हरएकपर रखकर जो कुछ आवे वह आवली। (त्रि० गा० ६७)

प्रतिकेशव—प्रतिनारायण—नारायणके शत्रु भरतके तीन खण्डके धनी। ६३ शलाकामें ९, देखो "त्रिषष्टि शलाका पुरुष"

प्रतिक्रमण—१४ प्रकीर्णकोंमें चौथा; यह मुनिका नित्य आवश्यक कर्म है कि पिछले दोषोंका प्रतिक्रमण या पश्चाताप करे। प्रायश्चित्त तपका दूसरा भेद। अपने आप अपने दोषोंको विचार कर उन्हें दूर करना (सर्वा० अ० ९-२२)

प्रतिक्रमण सात तरहका है—(१) दैवसिक—दिनका दोष शामको दूर करना, (२) रात्रिक—रात्रिका दोष सवेरे दूर करना, (३) ऐर्यापथिक—गमनमें दोषका प्रति० (४) पाक्षिक—१५ दिनका, (५) चातुर्मासिक—चार मासका, (६) सांवत्सरिक—वर्षभरका, (७) उत्तमार्थ—समाधिमरणके समय जीवन पर्यंतका। (मू० गा० ६१३)

प्रतिछिन्न—भूत व्यन्तरोंका छठा प्रकार। (त्रि० गा० २६९)

प्रतिजीवी गुण—वस्तुका अभावरूप धर्म—जैसे नास्तित्व, अमूर्तत्व, अचेतनत्व।

प्रतिनारायण—देखो "प्रति केशव"

प्रतिपत्ति—"धारणा"।

प्रतिपत्तिक श्रुतज्ञान—नारकादि चार गतिका स्वरूप निरूपणद्वारा जो प्रतिपत्तिक शास्त्र उसके सुननेसे हुआ जो अर्थज्ञान (भ० पृ० १९३)

प्रतिपद्य मनगत—देश संयम पंचम गुणस्थानको प्राप्त होते हुए प्रथम समयमें जो विशुद्धिके स्थान (ल० गा० १८६)

प्रति पातगत—देश संयमसे भ्रष्ट होते अन्त समयमें जो समवर्त गिरते हुए विशुद्ध भाव। (ल० गा० १८६)

प्रतिपाती—सम्यक्चारित्रसे भ्रष्ट होकर असंयममें आनेवाला। (गो० जी० ३७५)

प्रतिभूत—भूत व्यंतरोंका चौथा प्रकार। (त्रि० गा० २६९)

प्रतिमा—मूर्ति, प्रतिबिम्ब, श्रेणी, श्रावककी ग्यारह श्रेणियां। देखो "एकादश प्रतिमा" मूर्ति, पांच परमेष्ठी व श्रुतदेवताकी भी प्रतिष्ठित हो सकी है। (च. स. नं० ६९)

प्रतिरूप—भूत व्यंतरोंका दूसरा भेद। (त्रि० गा० २६९)

प्रतिरूपक व्यवहार—अचौर्य अणुव्रतका पांचवा अतीचार, झूठा सिक्का चलाना व खरेमें खोटा मिलाकर खरा कहकर वेचना। (सर्वा० अ० ७-२७)

प्रतिलेखन—झाड़ लेना, पीछीसे जंतु हटा देना (श्रा० पृ० २२७)

प्रतिलेखना—भूमि शोधना, झाड़ना।

प्रतिवासुदेव—देखो "प्रतिनारायण"

प्रतिशलाका कुंड—देखो "अंकगणना" (प्र० जि० पृ० ९०)

प्रतिष्ठा—जिन मंदिर या जिन प्रतिमा बनवाकर उसकी प्रतिष्ठा करना, जिससे वह माननीय होजावे। जहां पंचकल्याणक सम्बन्धी मंत्रोंके द्वारा जिसमें वह गुण नहीं है उसमें उस गुणके स्थापन करनेसे, तथा उस संबंधी विधानके द्वारा सर्वज्ञपना स्थापित किया जावे वह मूर्ति प्रतिष्ठा है। स्थापना निक्षेपमें यह गर्भित है। विधि देखो प्रतिष्ठासार संग्रह (पंचकल्याणक दीपिका) ब्र० सीतलप्रसाद कृत मुद्रित सूरत।

प्रतिष्ठाचार्य–बिम्बादिकी प्रतिष्ठा करानेवाला जिन धर्मका दृढ श्रद्धानी, सदाचारी, त्यागी या गृहस्थ हो, वक्ता हो, शास्त्रज्ञ हो, निश्चय व्यवहारका ज्ञाता हो। (प्र० सा० पृ० १२)

प्रतिष्ठासार संग्रह (पंचकल्याणक दीपिका) ब्र० सीतलप्रसादकृत भाषा छंद सहित, मुद्रित।

प्रतिष्ठासारोद्धार–पं० आशाधर कृत मुद्रित।

प्रतिष्ठापना समिति–मल मूत्रादि निर्जंतु भूमिपर करना, उत्सर्ग समिति। (सर्वा. अ. ९–५)

प्रतिष्ठित–माननीय, वह प्रत्येक वनस्पति जिसके आश्रय निगोद या साधारण वनस्पति रहे। देखो "अप्रतिष्ठित प्रत्येक" व "अनंतकाय"।

प्रतिश्रुति–वर्तमान अवसर्पिणीका पहला कुलकर।

प्रतिसेवना–दूसरोंके दबावसे व्रतमें अतीचार लगाना।

प्रतिसेवना कुशील–वे जैन साधु जो मूलगुण व उत्तरगुणोंको पालते हैं। कभी२ उत्तरगुणोंमें दोष लगता है। सामायिक छेदोपस्थापना संयमके धारक। मरकर १६वें स्वर्ग तक जासक्ते हैं। (श्रा. पृ. १६०)

प्रतिज्ञा–नियम, आखरी, पक्ष और साध्यको कहना, जैसे इस पर्वतमें अग्नि है। (जै. सि. प्र. ६०७)

प्रतीति सत्य (आपेक्षिक सत्य)–जो वचन एक दूसरेकी अपेक्षासे कहा जाय। दो वस्तुओंकी अपेक्षासे एकको हीन अधिक कहा जाय, जैसे यह लम्बा है, यहां किसी छोटेकी अपेक्षासे लम्बा है। इसने लम्बेकी अपेक्षा यह छोटा है। इसप्रकार सत्यका एक भेद। (गो. जी. गा. २२३)

प्रतीत्य भव–पुद्गलके निमित्तसे प्रगट होनेवाला व्यवहार काल।

प्रतीन्द्र (प्रत्येन्द्र)–चार प्रकार देवोंमें इन्द्रके नीचे प्रतीन्द्र युवराजके समान होते हैं। भवनवासी देवोंमें १० इन्द्र १० प्रतीन्द्र हैं। व्यंतर देवोंमें १६ इन्द्र १६ प्रतीन्द्र हैं। ज्योतिषियोंमें चंद्रमा इन्द्र है, सूर्य प्रतीन्द्र है। कल्पवासियोंमें १२ इन्द्र, १२ प्रतीन्द्र हैं। (त्रि० गा० २२१)

प्रत्यभिमान-संज्ञा–जिस वस्तुको पहले जाना था उसको फिर इंद्रियोंसे व मन द्वारा जानकर यह बोध होना कि यह वही है या वैसी ही है जो व जैसी पहले देखी थी। स्मृति और प्रत्यक्षके विषय भूत पदार्थोंमें जोड़रूप ज्ञान। इसके मुख्य दो भेद हैं–(१) एकत्व प्रत्य०–एकता दिखाते हुए जोड़रूप ज्ञान जैसे यह वही मनुष्य है जिसे पहले देखा था, (२) सादृश्य प्रत्य०–सदृशता दिखाते हुए जोड़रूप ज्ञान। जैसे यह गौ गवयके सदृश है। यह बिलाव सिंहके समान है। (जै.सि.प्र.नं. १९–२२)

प्रत्यय–आस्रव, कर्मोंके आनेके द्वार। इसके मूल भेद ५७ हैं। ५ मिथ्यात्व–एकांत, विनय, संशय, अज्ञान, विपरीत, १२ अविरति–पांच इंद्रिय व मनको न रोकना, ६ कायकी दया न पालना।

२५ कषाय–१६ कषाय + ९ नोकषाय।

१५ योग–(देखो पंच देश योग) ५७ आस्रव। (गो० क० गा० ७८६)

प्रत्यक्ष प्रमाण–जो पदार्थको स्पष्ट जाने। इसके दो भेद हैं–एक सांव्यवहारिक, दूसरा पारमार्थिक प्रत्यक्ष। सांव्यवहारिक वह है जो इन्द्रिय और मनकी सहायतासे जाने, इसे सिद्धांतमें परोक्ष भी कहते हैं। पारमार्थिक वह है जो बिना किसीकी सहायताके पदार्थको स्पष्ट जाने, यही सिद्धांतमें प्रत्यक्ष कहा गया है। इसके दो भेद हैं–विकल पार० जो कुछ पदार्थोंको जाने। वे हैं अवधि, मनःपर्यय ज्ञान। जो सर्वको जाने वह सकल पार० प्रत्यक्ष केवलज्ञान है। (जै० सि० प्र० नं० १४–१५)

प्रत्यक्षबाधित–जिसके मानने में प्रत्यक्षसे बाधा आवे जैसे अग्नि ठंडी है क्योंकि वह द्रव्य है। यहां साध्य ठंडापना अग्निमें प्रत्यक्षसे विरोध रूप है। (जै० सि० प्र० नं० ५९)

प्रत्यागाल–प्रथम स्थितिके निषेकोंको उत्कर्षण करके दूसरी स्थितिके निषेकोंमें प्राप्त करना। (ल० गा० ८८)

प्रत्याख्यान–आगामी पाप त्यागकी भावना करनी; सर्व त्याग करना।

प्रत्याख्यान पूर्व–नवमा पूर्व जिसमें द्रव्यक्षेत्र काल भावकी अपेक्षासे यम व नियमरूप त्यागका कथन है। इसके ८४ लाख मध्यम पद हैं। (गो० जी० गा० ३६६)

प्रत्याख्यानावरण कषाय कर्म–जिन क्रोध, मान, माया, लोभ रूप कषाय कर्मोंके उदयसे पूर्ण संयम या साधुका चारित्र न धारा जासके। (सर्वा. अ. ८–९)

प्रत्याख्यानी भाषा–नौप्रकार अनुभय भाषाकी छठी भाषा जैसे यह कहना "मैंने इस वस्तुका त्याग किया"। (गो० जी. गा. २२९)

प्रत्येक नामकर्म–जिसके उदयसे एक शरीरका मुख्य स्वामी एक जीव हो। (सर्वा. अ. ८–११)

प्रत्यावली–वर्तमान आवली कालके ऊपर दूसरी आवली या दूसरी आवलीके निषेक। (क.प्र. ८८)

प्रत्येक वनस्पति–वह वनस्पति जिसका स्वामी एक जीव हो। वनस्पतिके भेद हैं–१ मूल बीज–जिनका मूल ही बीज हो जैसे आदा हलदी, २ अग्र बीज–जिनका आगेका भाग बीजरूप हो जैसे आर्दक, ३ पर्व बीज–जिनका बीज गांठ हो जैसे इक्षु, ४ कंद बीज–जिनका बीज कंद हो जैसे सूरण पिंडालु, ५ स्कंध बीज–जिनका बीज स्कंध हो जैसे पलाश, ६ बीज रुह–जिनका बीज बीज हो जैसे गेहूं, चना, ७ सम्मूर्छिया–घास आदि। जिनसे निश्चित बीजकी जरूरत न हो। ये प्रत्येक वनस्पति यदि साधारण वनस्पति सहित हो तो सप्रतिष्ठित प्रत्येक है। यदि उन सहित न हो तो अप्रतिष्ठित प्रत्येक है। देखो "अनंतकाय"

प्रत्येक बुद्ध–जो अपने आप ज्ञान लाभ कर साधु हों व मोक्ष जावे।

प्रथम कालि-द्रव्य–जितने कर्मोंकी स्थिति घटाई हो उन कर्मोंके द्रव्यमेंसे जितना अन्य स्थितिके निषेकोंमें पहले समय मिलाया जाय। (क.प्र. ८०)

प्रथम मूल–किसी संख्याका प्रथम वर्गमूल जैसे ६२५ का प्रथम वर्गमूल २५ है। द्वितीय ५ है। (त्रि० गा० ७६)

प्रथमानुयोग–दृष्टिवाद बारहवें अंगका तीसरा भेद। प्रथम जो मिथ्यादृष्टी अव्रती विशेष ज्ञान रहितको उपदेश देनेवाला है अधिकार–अनुयोग जिसमें। इसमें ६३ शलाका पुरुषोंका कथन है। इसके मध्यम पद ५००० हैं। (गो० जी० गा० ३६२–३६४); वे शास्त्र जो कथारूप हैं। जैसे पद्मपुराण, आदिपुराणादि।

प्रथमोपशम सम्यक्त–अनादि मिथ्यादृष्टीके चार अनंतानुबन्धी कषाय और मिथ्यात्व कर्मके उपशमसे तथा सादि मिथ्यादृष्टीके मिश्र और सम्यक्त प्रकृतिके भी उपशमसे जो आत्माका तत्व प्रतीतिरूप श्रद्धान प्रगट हो या सम्यक्त गुण झलक जावे, इसका काल अंतर्मुहुर्तसे अधिक नहीं है। देखो "गुणस्थान"।

प्रदेश–वह आकाशका अंश जिसको एक अविभागी पुद्गलका परमाणु रोके। इसमें अनेक परमाणुओंको स्थान देनेकी शक्ति है। (द्रव्यसंग्रह)

प्रदेश बंध–बंधनेवाले कर्मोंकी संख्याका निर्णय। आत्मामें योग शक्तिके परिणमनसे कर्मवर्गणाओंकी अमुक संख्याका आकर आत्माके प्रदेशोंसे एक क्षेत्रावगाह संबंध होजाना। अनन्तानन्त कर्मवर्गणाओंका समय समय आश्रव होता है। ये कर्मवर्गणाएं अत्यन्त सूक्ष्म हैं तथा सर्व ही आत्माके प्रदेशोंमें बंधती हैं। सर्वा० अ० ८–२४)

प्रदेश संहार विसर्प–नाम कर्मके उदयसे आत्माके प्रदेशोंका संकोच या विस्तार होना। यह जीव समुद्घातके सिवाय शरीर प्रमाण आकार रखता है। शरीरकी वृद्धिके साथ फैलता है व कमीके साथ संकोच पाता है। वेदना, कषाय आदि

सात प्रकार समुद्घातके समय शरीरमें रहते हुए भी फैलकर बाहर जाता है, फिर शरीर प्रमाण हो जाता है। (गो० जी० गा० ५८४)

प्रदेशत्व गुण–एक सामान्य गुण। जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्यका कुछ न कुछ आकार अवश्य हो। (जै. सि. प्र. नं. १२३)

प्रदोष–ज्ञानावरण कर्मके बन्धका कारण भाव। उत्तम ज्ञानकी बात सुनकर भी प्रसन्न होना। मनमें द्वेषभाव व अरतिभाव लाना। (सर्वा. अ. ६–१०)

प्रद्युम्नकुमार–श्री कृष्णके पुत्र कामदेव २१वें श्री गिरनार पर्वतसे मोक्ष पधारे।

प्रद्युम्नचरित्र–संस्कृत, भाषा टीका मुद्रित।

प्रधान पुरुष–कभी न कभी मोक्ष जानेवाले महान पुरुष २४ तीर्थंकर + ४८ उनके मातापिता + १२ चक्री + ९ नारायण + ९ प्रतिनारायण + ९ बलभद्र + २४ कामदेव + १४ कुलकर + ९ नारद + ११ रुद्र=१६९–भरतके गत चौथे कालमें ये सब होचुके हैं। इनमें २४ तीर्थंकर सब मोक्ष गए हैं। शेषमें कुछ हुए हैं, कुछ आगामी होंगे। (च० छ० २२)

प्रध्वंसाभाव–द्रव्यकी आगामी पर्यायमें वर्तमान पर्यायका अभाव जैसे चनेके आटेमें चनेके दानेकी अवस्थाका अभाव। (जै. सि. प्र. नं० १८२)

प्रबोधसार–सं०में ग्रंथ, भाषा टीका मुद्रित।

प्रभ–सौधर्म ईशान स्वर्गोंका २१वां इन्द्रक विमान। (त्रि० गा० ४६७)

प्रभंकर–सौधर्म ईशान स्वर्गोंमें २७वां इन्द्रक विमान। (त्रि० गा० ४६९)

प्रभंकरा–सूर्य ज्योतिषी देवोंके मत्येन्द्रकी पट देवी। (त्रि० गा० ४४७) विदेहकी ३२ राजधानीमेंसे १२ वीं राजधानी। (त्रि. गा. ७–१२)

प्रभंजन–भवनवासी देव वायुकुमारोंके एक इन्द्रका नाम। (त्रि० गा० २११)

प्रभाचन्द्रसेन–प्रतिष्ठा ग्रन्थके कर्ता। (दि० ग्रं० नं० १८५)

प्रभाचन्द्र–स्वामी (नंदिसंघ) लोकचन्द्रके शिष्य सं० ४५३ न्यायकुमुद-चन्द्रोदय, प्रमेयकमल-मार्तंड, राज मार्तंड, प्रमाण दीपक, वादिकौशिक मार्तंड, अर्थ प्रकाशके कर्ता (दि०ग्रं०नं० १८६); रक्ताम्बर। भगवती आराधनाके टीकाकार (दि० ग्रं० नं० १८७); भट्टारक (वि० सं० १३१६) बादशाह फीरोजशाहके समय, दिल्लीमें आकर जैन धर्मका प्रभाव बतानेवाले। मूलाचार, समयसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय, रत्नकरण्ड व समाधितंत्र आदि बहुतसे ग्रन्थोंके टीकाकार (दि० ग्रं० नं० १८८); भट्टारक (वि० सं० १५८०); प्रतिष्ठा-पाठ, सिद्धचक्र पूजादिके कर्ता। (दि.ग्रं.नं. १८८)

प्रभादेव–स्वामी–प्रमितिवाद, युक्तिवाद, अल्पा-सवाद, तर्कवाद, नयवादके कर्ता। (दि० ग्रं० नं० १९०)

प्रभावती–रामचन्द्रकी पट्टरानी दूसरी। (इ० २ पृ. १२६) स्वर्गोंके उत्तर इन्द्रोंकी महादेवी। (त्रि. गा. ५११)

प्रभावना–जैन धर्मकी महिमा प्रकाशकर अज्ञानियोंका अंधकार मेटकर सम्यग्ज्ञानका प्रकाश करना। सम्यग्दर्शनका आठवां अंग। (रत्न० श्लो० १८)

प्रभास–द्वीप, जो भरतके दक्षिण तट [illegible] उत्तर तटके समुद्र व विदेहके सीता सीतोदा नदीके समीप जलमें हैं। इनके निवासी देवको यही कहा करते हैं। (त्रि. गा. ९०८); [illegible] निवासी व्यंतरदेव। (त्रि. गा. [illegible]); [illegible] द्वीपका स्वामी व्यंतरदेव। (त्रि. गा. ९६१)

प्रमत्तयोग–कषाय सहित मन, वचन, कायकी प्रवृत्ति।

प्रमत्त–विरत (संयत) गुणस्थान–छठा "प्रमत्त गुणस्थान" [illegible] [illegible] [illegible] उदय होता है [illegible] [illegible] [illegible] है। इसी [illegible]

हार करते हैं। इसका काल अंतर्मुहुर्त है। (जै. सि. प्र० ए. ६१९)

प्रमाण–सच्चा ज्ञान; सम्यग्ज्ञान-प्रमाण पांच हैं। मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यय ज्ञान, केवलज्ञान, (सर्वा. अ. १); वह ज्ञान जिससे पदार्थोंका सर्वदेश ज्ञान हो।

प्रमाण दोष–साधुको आधापेट भोजनसे व चौथाई जलसे भरना, चौथाई खाली रखना, यह प्रमाणिक आहार है। इससे अधिक करना प्रमाण दोष है। इसे प्रमाण दोष भी कहते हैं। (भ. ए. ११७)

प्रमाण निर्माण नाम कर्म–जिसके उदयसे शरीरके अंगोंका प्रमाण बने। (सर्वा. अ. ८–११)

प्रमाणपद–निश्चित संख्याको लिये हुए जो अक्षरोंका समूह जैसे अनुष्टुपछन्दके चार पद, प्रत्येकमें आठ अक्षर होते हैं जैसे " नमः श्री वर्द्धमानाय "–यह प्रमाणपद है। (गो. जी. गा. ३३६)

प्रमाणांगुल–८ जौका एक उत्सेधांगुल उससे ५०० गुणा प्रमाणांगुल, इससे पर्वत, नदी, समुद्र द्वीप आदिकी माप होती है। (सि. द. प्र. ६९)

प्रमाणातिरेक दोष–अल्पभूमिमें शय्या व आसन होनेपर भी अधिक भूमिका ग्रहण करना। साधुका मुख्य दोष। (भ. प्र. ९६)

प्रमाणक–व्यंतरदेवोंका एक भेद जो मध्यलोककी पृथ्वीसे १ हाथ + १० हजार + १० ह० + १० ह०+२० ह०+१० ह. + २० ह.=९० हजार एक हाथ ऊपर रहते हैं। आयु ७०००० वर्षकी होती है। (त्रि. गा. २९१–२९३)

प्रमाणाभास–मिथ्याज्ञान। तीन भेद हैं १ संशय-शंका करनी ऐसा है या वैसा है। २ विपरीत–उल्टा जानना। ३ अनध्यवसाय–जाननेमें उत्साह न होना। (जै. सि. प्र. नं. ८०–८४)

प्रमाद–कषायके तीव्र उदयसे निर्दोष चारित्र पालनमें उत्साहका न होना व अपने आत्मस्वरूपकी सावधानी न होना। इसके १५ भेद हैं देखो " पंचदश प्रमाद "

प्रमादचर्या–अनर्थ दण्ड पांचमा। प्रमादसे व्यवहार करना, वृथा अधिक पानी फेंकना, वृक्ष तोडना आदि। (सर्वा. अ. ७–२१)

प्रमाद भेद–चार विकथा × चार कषाय × ५ इंद्रिय × १ निद्रा × १ स्नेह=८० भेद हैं। परन्तु २५ विकथा × २५ कषाय × ६ (पंच इंद्रिय व मन) × ५ प्रकार निद्रा × २ स्नेह और मोह=३७५०० भेद होते हैं। २५ विकथा= राज, भोजन, स्त्री, चोर, धन, वैर, परखण्डन, देश, कपट, गुणबन्ध, (गुण रोकनेवाली), देवी, निष्ठुर, शून्य, कंदर्प, अनुचित, भंड, मुर्ख, आत्मप्रशंसा, परवाद, ग्लानि, परपीड़ा, कलह, परिग्रह, साधारण, संगीत। (च. छ. ४१); गो. जी. गा. ४४)

प्रमादाबहुला–कषायसे भरा हुआ।

प्रमादाचारित्र–प्रमाद सहित आचरण, असावधानीका काम।

प्रमेय–प्रमाणसे जो जाना जाय।

प्रमेयकमल मार्तंड–प्रभाचन्द्र कृत न्यायका ग्रन्थ, मुद्रित।

प्रमेयत्व गुण–जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्य किसी न किसीके ज्ञानका विषय हो, यह सामान्य गुण है। जै. सि. प्र. नं. १२१)

प्रमेयरत्नमाला–न्यायका ग्रंथ, मुद्रित।

प्रमोद भावना–गुणवानोंको देखकर हर्ष मानना (सर्वा. ७–११)

प्रयोग क्रिया–शरीरादिसे गमनागमन करना। (सर्वा० अ० ६–५)

प्ररूपण–निरूपण, कथन, अध्याय, गोम्मटसारमें २० प्ररूपणा हैं, १४ गुणस्थानका एक + १ जीव समास + १ पर्याप्ति + १ प्राण + १ संज्ञा (वांछा) + १४ अध्याय गति आदि १४ मार्गणाके + उपयोग १=२० (गो० जी० गा० १)

प्रलाभ–ज्योतिषके ८८ ग्रहोंमें ९४ वां ग्रह।
(त्रि० गा० ३६८)

प्रवचन–जिनवाणी, जिनवाणीके श्रद्धानी व पिशाच व्यन्तरोंका १४वां प्रकार। (त्रि.गा. २७२)

प्रवचन भक्ति–जिनवाणीमें भक्ति करके ग्रहण करना, १६ कारण भावनामें १३ वीं भावना।
(सर्वा० अ० ६–२४)

प्रवचन मातृका–पांच समिति और तीन गुप्ति। इनको माता इसलिये कहते हैं कि ये दर्शन ज्ञान चारित्र रत्नत्रय धर्मकी सदा रक्षा करनेवाली हैं।
(भ० पृ० ३७९)

प्रवचन वात्सल्य–साधर्मी भाइयोंसे गौ वत्स-सम प्रेम रखना, १६ कारणकी १६वीं भावना।
(सर्वा० अ० ६–२४)

प्रवचनसार–कुन्दकुन्दाचार्यकृत प्राकृत संस्कृत व टीका, मुद्रित।

प्रवृत्ति मार्ग–जहां व्यवहारकी तरफ अधिक झुकाव हो। गृहस्थका चारित्र।

प्रशम–क्रोधादि कषायोंकी मंदता। यह सम्यग्दृष्टीका १ बाहरी चिह्न है।

प्रशस्त–शुभ, प्रशंसनीय, हितकारी।

प्रशस्त निदान–कर्म नाश व मुक्ति प्राप्तिकी इच्छा। (सा. अ. ४–१)

प्रशस्त ध्यान–प्रशंसनीय ध्यान। धर्मध्यान और शुक्लध्यान जो मोक्षके कारण हैं।
(सर्वा. अ. ९–२९)

प्रशस्त विहायोगति नाम कर्म–आकाशमें चलते हुए सुन्दर चाल जिस कर्मके उदयसे हो जैसे हंस व हाथीकी चाल। (सर्वा. अ. ८–११)

प्रशान्त–जो उपशमरूप हो–उदासीन हो।

प्रशान्तता क्रिया–गृहस्थी श्रावक शांति पाने व गृह त्याग करनेके हेतुसे पुत्रको गृहभार सौंपकर आप शांतताका अभ्यास करे, किन्तु रह स्वाध्याय व उपकार घरहीमें पाले. यह आठवीं प्रतिमाका अभ्यास करता है। (गृ. अ. १८)

प्रश्नव्याकरण अंग–जिनवाणीके १२ अंगोंमें १० वां अंग। अनेक प्रश्नोंके उत्तर कहनेकी रीति, व आक्षेपिणी आदि चार प्रकार कथाका वर्णन जिसमें हो। इसके ९३ लाख १६ हजार पद हैं।
(गो. जी. गा. ३५७–५९)

प्रश्नकीर्ति–भट्टारक–समयसार टीकाकार।
(दि. ग्रं. नं. १९१)

प्रश्नोत्तर रत्नमाला–सं० अमोघवर्ष कृत, सरस्वती भवन बम्बई।

प्रसिद्ध पुरुष–१२। १) २४ तीर्थंकरोंमें श्री पार्श्वनाथ २३ वें; (२) ९ बलभद्रोंमें रामचंद्र ८ वें; (३) २४ कामदेवोंमें १८ वें हनुमान; (४) मानी पुरुषोंमें ८ वें प्रतिनारायण रावण; (५) दानियोंमें राजा श्रेयांस–ऋषभदेवको इक्षुरसका आहारदाता; (६) शीलवती स्त्रियोंमें सीता; (७) तपस्वियोंमें श्री ऋषभ पुत्र बाहुबलि; (८) भाग्यवानोंमें भरत-चक्री; (९) ११ रुद्रोंमें सत्यकि तनय महादेव; (१०) ९ नारायणोंमें नौमें श्रीकृष्ण; (११) १४ कुलकरोंमें चौदहवें नाभिराजा; (१२) बलवानोंमें कुन्तीपुत्र भीम पांडव। (च. छ. ४९)

प्रसिद्ध सतियां १६–ब्राह्मी, २ चंदना, ३ राजुल, ४ कौशल्या, ५ मृगावती, ६ सीता, ७ सुभद्रा, ८ द्रौपदी, ९ सुलसा, १० कुन्ती, ११ शीलावती, १२ दमयंती, १३ चूला, १४ प्रभा-वती, १५ शिवा, १६ पद्मावती।

प्रहरण्य (प्रल्हाद)–वर्तमान भरतके सातवें प्रतिनारायण। (त्रि. गा. ८१)

प्रज्ञा–परीषह २० वीं–विशेष ज्ञान होनेपर ज्ञानका मद न करना। (सर्वा. अ. ९–९)

प्रज्ञापनी भाषा–अनुभय भाषाका पांचवां भेद। दीनकी या [illegible] कुछ मांगा है इसमें [illegible] करता है। (गो. जी. गा. २२५)

प्रज्ञापनीय पर्याय–जो [illegible] वचनोंसे कहा जाता है। केवली भगवानके [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

है। उसका अनंतवां भाग द्वादशांगसे कहा जा सक्ता है। गो. जी. गा. ३३४)

प्रागभाव–वर्तमान पर्यायका पूर्व पर्यायमें अभाव जैसे रोटीका आटेमें अभाव। (जै. सि. प्र. नं. १८२)

प्राकृत-भाषा।

प्राचीन जैन इतिहास भाग १–२–हिंदी सूरजमल कृत, सूरतमें मुद्रित।

प्राचीन जैन स्मारक–ब्र० सीतल कृत, बंगाल, युक्त प्रांत, मध्यप्रांत, बम्बई, मदरासके, मुद्रित।

प्राण–जिस शक्तिसे यह जीव "प्राणंति" अर्थात् जीते हैं। ज्ञानावरण व वीर्यान्तरायके क्षयोपशमादिसे प्रगट हुआ जो चैतन्य उपयोगका प्रवर्तन रूप भाव सो भाव प्राण है। पुद्गल द्रव्यसे बने जो द्रव्य इंद्रियादि उनका प्रवर्तनरूप द्रव्य प्राण है। चेतनारूप भाव प्राण अविनाशी है, द्रव्य प्राणोंका नाश शरीरका मरण है। उनका उत्पन्न होना शरीरका जन्म है। प्राण ४ या १० हैं। देखो शब्द "जीव" ५ इंद्रिय + मन, वचन, काय, ३ बल + आयु + श्वासोच्छ्वास। (गो. जी. गा. १३१) (सर्वा. अ. ४–१९)

प्राणत स्वर्ग–१४ वां स्वर्ग, ३ आनतादि ४ स्वर्गोंमें दूसरा इंद्रक विमान। (त्रि. गा. ४६८)

प्राणवाद पूर्व–द्वादशांग वाणीमें १२ वें अंगके १४ पूर्वोंमें १२ वां पूर्व। इसमें वैद्यक, श्वासोपयोगके प्रयोगका वर्णन है। इसके १३ करोड़ मध्यम पद हैं। (गो. जी. गा. ३६६)

प्राणातिपात विरमणव्रत–अहिंसाव्रत। जीवोंके प्राणोंकी रक्षा करनी।

प्राणातिपातिकी क्रिया–प्राणोंको हरनेवाली क्रिया।

प्रातिहार्य–विशेष महिमा बोधक चिन्ह। अर्हतके समवसरणमें आठ होते हैं–१ अशोकवृक्ष, २ सिंहासन, ३ तीन छत्र, ४ भामण्डल, ५ दिव्य ध्वनि, ६ पुष्पवृष्टि, ७ चमर ६४, ८ दुंदुभि बाजे बजना।

प्रात्ययिकी क्रिया–इंद्रिय योग्य पदार्थ नए नए रचना। आश्रवकी २५ क्रियाओंमें १३ वीं। (सर्वा. अ. ६–५)

प्रादुष्कार दोष–साधुके आनेपर भोजन भाजन आदिको एक स्थानपर लेजाना व वर्तन मांजना, दीपक प्रकाशना आदि (मू. गा. ४३४); प्राविष्करण दोष। यह उद्गम दोषोंमें ८ वां है।

प्रादोषिकी क्रिया-क्रोधमें दूसरोंको तिरस्कार व निंदा करनेका भाव। (सर्वा. अ. ६–५)

प्राभृत–शास्त्र जैसे समय प्राभृत=समयसार; अधिकार।

प्राभृतक दोष–जिस दिन साधु आवेंगे वस्तिकाको सुधारेंगे, ऐसा विचारें। जब साधु आवे तब वस्तिकाको उज्वल कर देवे (म० ९३७); कालकी हानि वृद्धिसे साधुको भोजन दे। जैसे यह विचारा था कि पंचमी देवेंगे परन्तु सप्तमीको देवें। (म० १०३)

प्राभृतक श्रुतज्ञान–चौदह मार्गणाके कथन द्वारा अनुयोग, उसपर एक एक अक्षरकी वृद्धि करके पद संघात प्रतिपत्तिक इनकी क्रमसे वृद्धि होते जब चार आदि अनुयोगकी वृद्धि हो जांय, तब एक प्राभृतक ९ श्रुतज्ञान है। सो वस्तु नाम अधिकारका भेद प्राभृत है। प्राभृतका एक अधिकार प्राभृत प्राभृत है। एक वस्तुमें बीस प्राभृत अधिकार व एक प्राभृतमें चौवीस प्राभृतक प्राभृतक अधिकार होते हैं। (गो. जी. गा. ३४०–३४३)

प्रायश्चित्त तप–व्रतोंमें लगे हुए दोषोंको गुरुसे दण्ड लेकर शुद्ध करना। सो दण्ड १० तरहका है। १ आलोचना–अपना दोष गुरुसे कहना, २ प्रतिक्रमण–स्वयं पश्चात्ताप करना, ३ तदुभय–आलोचना और प्रतिक्रमण दोनों करना, ४ विवेक–कोई वस्तुका त्याग करना, ५ व्युत्सर्ग–कायोत्सर्ग करना २७ श्वास, ९ णमोकार मंत्रका एक कायो-

त्सर्ग होता है, ६ तप–उपवासादि करना, ७ छेद–दीक्षाके दिन घटा देना। दरजा कमकर देना, ८ मूल–फिरसे दीक्षा लेना, ९ परिहार–कुछ कालके लिये संघसे बाहर करना, वह उल्टी पीछी रक्खे व सबको नमन करे, उसे कोई वंदना न करे, १० श्रद्धान–तत्वमें रुचि दृढ़ करना। (मू.गा. ३६२)

प्रायश्चित्त संग्रह–सं० मुद्रित, माणकचन्द ग्रंथ माला।

प्राणायाम–श्वासके रोकने व चलानेका अभ्यास यह शरीरकी शुद्धि व मनको निरोध करनेका एक साधन है। पूरक, कुम्भक, रेचक तीन भेद हैं। तालवेसे खींचकर पवनको शरीरमें भरना पूरक है. फिर उसे नाभिमें रोकना सो कुम्भक है, फिर उसे मंद मंद बाहर निकालना सो रेचक है। (ज्ञाना० अ० २९)

प्रायोगिक बन्ध–पुरुषोंकी प्रेरणासे जो पुद्गलोंका बन्ध हो जैसे लकड़ीपर लाख चढ़ाना, यह अजीव सम्बन्धी है व कर्म व शरीरका बंध जीवके साथ होता है उसे जीव अजीव बंधा कहते हैं।
(सर्वा. अ. ५–२४)

प्रायोग्यलब्धि–सम्यग्दर्शनकी प्राप्तिके लिये उपयोगी चौथी योग्यताकी प्राप्ति। देशनालब्धिसे जीवादि तत्वोंका मनन करते हुए जब आयु सिवाय पूर्वबद्ध कर्मोंकी स्थिति एक कोड़ाकोड़ी सागरसे भीतरकी रह जावे तथा नवीन भी इससे अधिक न बांधे व पुण्य कर्मोंका अनुभाग बढ़ता जावे व पाप कर्मका रस घटता जावे तब यह लब्धि होती है। (श्रा० ६१)

प्रायोपगमन सन्यास–(मरण) ऐसा समाधिमरण करना जिसमें न तो आप अपना इलाज करे न दूसरेसे करावे, ध्यानमें तल्लीन रहे, शरीरको अचल रक्खे। (भ० पृ० ५०९)

प्रारब्धयोग योगी–जिसने योगका अभ्यास प्रारम्भ किया है। (सा. ८–६)

प्रारब्ध देश संयमी–जिसने श्रावकके व्रतोंको अभ्यास प्रारम्भ किया है। (सा. अ. ३–६)

प्रारम्भ क्रिया–छेदन भेदनादिमें आनन्द मानना। आश्रवकी २१वीं क्रिया (सर्वा० अ० ६-५)

प्रासुक (प्राशुक)–जीव रहित, अचित्त, जिस वनस्पति व जल आदिमें एकेंद्रिय जीव न रहे हों। प्राशुक वह पदार्थ है जो सूखा हो, पका फल हो, जैसे आमका गूदा, छिन्न भिन्न खण्ड या टुकड़े किया गया हो। लवण आदि कषायले पदार्थसे मिलाया गया हो, गर्म किया गया हो। (मू.अ. ११)

प्रियदर्शन–धातुकी खण्ड द्वीपका स्वामी व्यंतर देव। (त्रि० गा० ९६१)

प्रियदर्शना–गंधर्व व्यन्तरोंके इन्द्र गीतयशकी वल्लभिकादेवी। (त्रि० गा० २६४)

प्रियदर्शी–महोरग जातिके व्यन्तरोंका १० वां प्रकार। (त्रि० गा० २६१)

प्रियोद्भव (जन्म) क्रिया–जब बालक जन्मे तब यह क्रिया की जाती है। गृहस्थाचार्य द्वारा होम व पूजादि करके बालकको स्नानादि कराया जाता है। देखो विधि। (गृ० अ० ४)

प्रीतिक–एक जातिके व्यंतर जो नगर कोटमें ४ + १० ह० + १० ह० + १० ह० + २० ह० + २० ह० + २० ह० + २० ह० + २० ह० + २० ह० =१५० ह० ४ हाथकी ऊँचाईपर निवास करते हैं। आयु चौथाई पल्यकी होती है। (त्रि. गा. २९३–९४)

प्रीति क्रिया–गर्भसे तीसरे मास होती है जब श्रावक पूजा होमादि करते हैं, बाजे बजाते हैं। देखो विधि। (गृ. अ. ४)

प्रीतिंकर–लौकांतिकोंके बीच [illegible] विमान।
(त्रि० गा० ५३९)

प्रेक्षण मण्डप–नन्दीश्वर जिनालयोंमें मुख मंडपके आगे प्रेक्षण मंडप हैं जो १०० योजन चौड़े, ५० [illegible] योजन ऊंचे होते हैं।
(त्रि० गा० ९९९)

प्रेष्य प्रयोग–देश विरतिका दूसरा अतिचार। नियत स्थानसे बाहर कोई वस्तु भेजना।
(सर्वा० अ० ७–३१)

प्रैक्टिकल पाथ–इंग्रेजीमें सात तत्व निरूपण, बारिष्टर चम्पतराय कृत मुद्रित।

प्रोषध प्रतिमा–श्रावकका चौथा दरजा जहां श्रावकको नियमसे अष्टमी चौदसको शक्तिके अनुसार प्रोषधोपवास करना होता है व उसके अतीचार बचाने होते हैं। (र० श्लोक १४०)

प्रोषध व्रत–प्रोषधोपवास करनेका नियम।

प्रोषध व्रती–प्रोषधोपवास करनेवाला।

प्रोषधोपवास–पर्वी मासमें दो अष्टमी व दो चौदसको होती है, पर्वीको प्रोषध कहते हैं। प्रोषधके दिन उपवास करना। गृहकार्य छोड़कर धर्मध्यानमें समय बिताना। उत्तम–पहले व तीसरे दिन एकासन १६ पहर चार प्रकार आहार त्यागे, एक स्थानपर रहे। मध्यम–इसी कालके मध्यमें जल ले सक्ता है। जघन्य–जलके सिवाय बीचके दिन कुछ आहार भी एक दफे लेवें। दूसरी विधि है–उत्तम १६ पहर पहलेके समान, मध्यम १२ पहर, जैसे सप्तमीकी संध्यासे नवमी प्रातः तक आरम्भका त्याग, जघन्य भोजन त्याग, १२ पहर परन्तु आरम्भ त्याग ८ पहर अष्टमीके २४ घण्टे (गृ० अ० ८) तीसरा शिक्षाव्रत।

प्रोषधोपवास अतीचार–१–विना देखे विना झाड़े मल मूत्र आदि करना व शास्त्रादि रखना, २–विना देखे विना झाड़े शास्त्रादि उठाना, ३–विना देखे विना झाड़े चटाई आदि बिछाना, ४–अनादरसे उपवास करना, ५–धर्मक्रियाको भूल जाना। (सर्वा० अ० ७–३४)

प्रौष्ठिल–भरतका आगामी नौमा तीर्थंकर (त्रि. ८७४); श्री महावीर भगवानके मुक्त भए पीछे १६२ वर्ष पीछे १८३ वर्षमें ११ अंग १० पूर्वके धारी ११ ऋषि हुए उनमें दूसरे। (श्र.ए. १३)

प्रोक्षण मंत्र–इस मंत्रसे दोनों हाथोंको हथेलीसे हथेली मिलाकर जोड़ अंगुलियोंको परस्पर मिलाकर इस प्रकार नमा लेवे जो दाए हाथकी बाएं हाथपर और बाएं हाथकी दाएं हाथपर आजाय। केवल दोनों तर्जनी अंगुलियोंको लम्बी करके मिला लेवे। उन दोनों अंगुलियोंसे जल–मण्डल (रकाबी) से थोड़ा जल लेकर इस मंत्रको पढ़ते हुए पहले ही दाईं फिर बाईं भुजापर और फिर मस्तकपर थोड़ेसे छींटे डाले अनन्तर सब शरीरपर थोड़े २ छींटे डाले।

"मंत्र–ॐ अमृते अमृतोद्भवे अमृतवर्षिणि अमृतं श्रावय श्रावय सं सं झं क्लीं क्लीं वल्हं वल्हं द्रां द्रां द्रीं द्रीं द्रावय द्रावय हं झं क्ष्वीं क्ष्वीं हं सः अ सि आ उ सा अर्हं नमः स्वाहा।" (क्रि. मं.ए. १८)

फ

फकीरचन्द पं०–समवशरण पूजाके कर्ता।
(दि. ग्रं. नं. ८७)

फालि–समुदायरूप कर्म निषेकोंका जुदा जुदा खण्ड। (क. ए. २८)

फेनमालिनी–पश्चिम विदेह सीतोदाके उत्तर तटपर दूसरी विभंगा नदी। (त्रि. गा. ६६९)

फतहलाल–राजवार्तिक, रत्नकरण्ड, श्रा०, न्याय दीपिका तत्वार्थसूत्र, बिम्ब निर्माण, दशावतार नाटक, विवाह पद्धति आदिके कर्ता।
(दि० ग्रं० नं० ८८)

ब

बखतराम–चाटसू निवासी पं०, बुद्धि विलास छं., धर्म बुद्धि कथा, मिथ्यात्व खंडन नाटक छं.।
(दि० ग्रं० नं० ९०)

बखतावरमल रतनलाल पं०–(दिल्ली) चौबीस पूजा, जिनदत्त चरित्र छं०, नेमनाथ पुराण छं०, चन्द्रप्रभ पुराण छं०, भविष्य दत्त पुराण छं०, प्रीतंकर चरित्र छं०, पद्मनंदि चरित्र छं०, (संवत १९१६) भक्ष कथाकोष, तत्वार्थसूत्र बचनिका पंचकल्याण पूजाके कर्ता। (दि० ग्रं० नं० ८९)

बड़वानी–सिद्धक्षेत्र बावनगजाजी। मध्य भार-

तमें राज्य वड़वानी चूलगिरि पर्वतपर ८४ फुट ऊँची श्री ऋषभदेवकी मूर्ति व रावणके भाई कुँभकरण व पुत्र इन्द्रजीतका मोक्ष। मऊकी छावनीसे ८० मील (या० द० पृ० १९६) पर्वतपर व ग्राममें दिगम्बर जैन मंदिर हैं।

वकुला—पहली रत्नप्रभा पृथ्वीके प्रथम भाग खर भागमें पंद्रहवीं पृथ्वी १००० योजन मोटी जहां भवनवासी व व्यन्तरदेव रहते हैं। (त्रि. ६४८)

वकुश—वे साधु जो २८ मूलगुण पूर्ण पालते हैं परन्तु शिष्यादिमें रागी हैं। (सर्वा. अ. ९—४६)

वडवामुख-लवण समुद्रमें पूर्व दिशाका पाताल गोल वज्रमई। मोटाई ५०० योजन, ऊँचाई ३३३३३$\frac{1}{3}$ योजन इसके तीन भाग किये जावें, ऊपर जल बीचमें जल व पवन मिश्रित नीचे पवन भरी है।

(त्रि० गा० ८९७-९८)

वद्रीचन्द-पं०, समाधिशतक छंदके कर्ता।

(दि० ग्रं० नं० ९१)

बद्धायु—जिसके परलोकके लिये आयु बंध गई हो।

वन जीविका—वनके वृक्षोंको बेचे व कटाकर बेचना। (सा० अ० ५—१३७)

वनमाल—सानत्कुमार महेन्द्रका दूसरा इन्द्रक विमान। (त्रि० गा० ४६६)

वनवारीलाल-पं०, भविष्यदत्त च० छन्दके कर्ता। (दि० ग्रं० नं० १११)

बनारसीदास-पं० (श्रीमाल, जौनपुर निवासी) नाटक समयसार छं० (सं० १६९२) बनारसी पद्धति (१६९८) बनारसी विलास, सूक्त मुक्तावलीके कर्ता। प्रसिद्ध अध्यात्म प्रेमी।

(दि० ग्रं० नं० १२२)

बन्ध—अहिंसा अणुव्रतका पहला अतीचार, कषाय भावसे किसी मानव या पशुको बन्धनमें डाल देना। (सर्वा० अ० ७—२५); कषाय सहित जीवके कर्म योग्य पुद्गलोंका जीवके प्रदेशोंके साथ एक क्षेत्रावगाह रूप बंधना। (सर्वा० अ० ८—२) परमाणुओंका आपसमें मिलकर स्कंध रूप होना। दो अंश अधिक चिकने रूखे गुणके कारण रूखा परमाणु रूखेसे व चिकनेसे या चिकना रूखेसे व चिकनेसे मिलकर बन्ध रूप होजाता है। यदि ७ अँश चिक्नई किसी परमाणुमें है दूसरेमें ९ अँश है तब ही बन्ध होगा, कम व अधिकका न होगा। जिसमें जघन्य अंश चिकनापन व रूखापन होगा वह न बन्धेगा। (सर्वा० अ० ५—३३—३६); पुद्गलोंका बन्ध दो प्रकार है—वैस्रसिक—स्वभावसे जैसे—बिजली, उल्का, मेघ, इन्द्रधनुष, जलधारा आदिका बनना। प्रायोगिक-पुरुषके प्रयत्नसे अजीवका अजीवके साथ जैसे काठपर लाख चढ़ाना व जीवका अजीवके साथ जैसे कर्म व नोकर्मका बन्ध आत्माके साथ होना। (सर्वा० अ० ५—२४)

बंधच्छेद—बंधका नाश।

बंधदशक—देखो " दशकरण "।

बन्धन नामकर्म—जिसके उदयसे औदारिकादि पांच शरीरोंके योग्य परमाणु परस्पर मिल जावें। (सर्वा. अ. ८—११)

बंध भेद—कर्मोंका बन्ध चार प्रकारका है—१ प्रकृति—कर्मोंमें स्वभाव पड़ना जैसे ज्ञानावरण ज्ञानको रोके आदि। २ स्थिति—कर्मोंमें कालकी मर्यादा पड़नी कि इतने काल तक बंधे रहेंगे। ३ अनुभाग—कर्मोंमें तीव्र या मंद फलदान शक्ति पड़नी। ४ प्रदेश—कर्मोंकी संख्या कि इतनी वर्गणाएं अमुक कर्मकी बंधीं। इनमें प्रकृति व प्रदेश बंध तो मन वचन कायकी क्रियासे जिनसे आत्माके प्रदेशोंमें कंपन होने रूप योगशक्तिसे निमित्त होते हैं तथा स्थिति व अनुभाग कषायके अनुसार होते हैं। कषायमें [illegible] [illegible] स्थिति अधिक [illegible] अधिक [illegible] व [illegible] अधिक पड़ेगी। [illegible] होनेसे स्थिति कम पड़ेगी। आयु [illegible] [illegible] स्थिति अधिक पड़ेगी। कषाय अधिक होनेसे [illegible] अनुभाग

अधिक व पुण्यमें कम पड़ेगा। कषाय मंद होनेसे पाप कर्ममें अनुभाग कम व पुण्यमें तीव्र पड़ेगा।
(सर्वा० अ० ८–३ व गो० क०)

बंध हेतु–कर्म बंधके कारण भाव–मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय, योग। (देखो प्रत्येक शब्द)

बंध द्रव्य–कर्म परमाणुओंकी संख्या जो बंधरूप हो।

बंधावली–कर्म बंध होनेके प्रथम समयसे लगाकर एक आवली तक कर्म बंधे ही रहते हैं। उनका उदय नहीं होता है व उनकी उदीरणा आदि नहीं होती है। (ल० पृ० २८)

वर्द्धमान–श्री महावीरस्वामी वर्तमान २४ वें तीर्थंकर भरतके, इन्हें वीर, अतिवीर व सन्मति भी कहते हैं। नाथ वंशमें राजा सिद्धार्थ व त्रिशलाके पुत्र, कुमारवयमें साधु, पावापुरी (विहार)से मोक्ष गए।

बल ऋद्धि–तीन प्रकार है–मन, वचन, काय। मनसे अंतर्मुहूर्तमें द्वादशांगका विचार जावें, अंत मुहूर्तमें सर्व श्रुतज्ञान कह जावें, बहुत उपवास करनेपर भी शक्ति क्षय न हो। (भ. पृ. १२३)

बलदेव (बलभद्र) बलराम–भरतके तीन खँडके स्वामी नारायणके बड़े भाई। हरएक अवसर्पिणी उत्सर्पिणीके दुखमा सुखमा कालमें जो बलदेव होते हैं। वर्तमानमें भरतमें नौ हुए–१ विजय, २ अचल, ३ सुधर्म, ४ सुप्रभ, ५ सुदर्शन, ६ नंदी, ७ नंदीमित्र, ८ पद्म (राम), ९ बलदेव (त्रि.गा. ८२७) पंडित, वर्द्धमान पुराण छन्दके कर्ता।
(दि० ग्रं० नं० ९२)

बल प्राण–मनबल, वचनबल, कायबल।

बलभद्र–बलदेव, सनत्कुमार, माहेन्द्र स्वर्गोंका छठा इन्द्रक विमान (त्रि०गा० ४६६); मेरुपर्वत नन्दनवनमें ईशान दिशामें बलभद्रकूट पर बलभद्र व्यन्तरदेव रहता है। (त्रि० गा० ६२४)

बलाहक–विजयार्द्धकी उत्तर श्रेणीमें १२ वां नगर। (त्रि० गा० ७०३)

वल्गु–सौधर्म इशान स्वर्गोंका चौथा इंद्रक विमान। (त्रि० गा० ४६४)

वल्लभिका–वह देवी जो इन्द्रको अति प्रिय हो।

वसुमित्रा–स्वर्गके उत्तर इन्द्रोंकी आठवी महादेवीका नाम। (त्रि० गा० ५११)

बलि–भरतके वर्तमान छठे प्रति नारायण।
(त्रि० गा० ८१८)

बहिर्यान क्रिया–दूसरे, तीसरे या चौथे महीने जब प्रसूति घरसे बालकको बाहर लाया जावे तब घरमें पूजादि होम करके सब कुटुम्बी मिलकर बालकको माता सहित श्री जिन मंदिरजी लेजाते हैं। फिर लौटकर दान करके भोजन आदि होता है। देखो
(गृ० अ० ४)

बहु आरम्भ–मर्यादासे अधिक अन्यायपूर्वक व्यापारादि करना। ऐसी आजीविकाका साधन करना। जिससे अन्य मानव या साधुओंको बहुत कष्ट पहुँचे। यह नर्कायुके आस्रवका कारण है।
(सर्वा० अ० ६–१५)

बहु केतु–विजयार्द्धकी दक्षिण श्रेणीमें चौथा नगर। (त्रि० गा० ६९७)

बहु बीजा–जिस फलमें बीजोंके स्थान न बने हों। फल तोड़नेसे अलग गिर पड़े। जैसे अफीमका डोड़ा (तिजारा) व अरण्ड काकड़ी।
(श्रा० पृ० १ २)

बहु मानाचार–बहुत आदरसे उच्च विनयमान कर शास्त्रको पढ़ना। (श्रा० पृ० ७२)

बहुमुखी–विजयार्द्धकी दक्षिण श्रेणीमें १९वां नगर। (त्रि० गा० ६९८)

बहुरूपी–भूत, व्यन्तरोंके इन्द्र स्वरूपकी वल्लभिका। (त्रि० गा० २७०)

बहुश्रुत भक्ति–उपाध्याय या बहुत शास्त्रपाठीकी भक्ति। यह १६ कारण भावनामें १२वीं भावना है।
(सर्वा० अ० ६–२४)

बादर (पुद्गल)–वे पुद्गलके स्कंध जो अलग करदिये जानेपर बिना तीसरी वस्तुके स्वयं मिल जावे जैसे पानी, शरबत, दूध आदि बहनेवाले पदार्थ।

बादर बादर (पुद्गल)–वे पुद्गलके स्कंध जो

दो टुकड़े किये जानेपर आपसे ही न मिले जैसे कागज, काष्ट, वर्तन आदि ।

वादर कृष्टि—अनिवृत्तिकरण नौमे गुणस्थानमें संज्वलन क्रोध मान माया लोभका अनुभाग घटाकर स्थूल खण्ड करना । उत्कृष्ट वादर कृष्टिमें जघन्य अपूर्व स्पर्द्धकसे अनंत गुणा अनु भाग घटती होती है । आगे सूक्ष्म कृष्टि होगी, उसकी अपेक्षा यह वादर कृष्टि है । गो० जी० गा० ५४७)

वादर जीव—वे संसारी शरीर सहित प्राणी जिनका शरीर आधारसे हो व बाधा कारक व बाधा पानेवाला हो । वादर नाम कर्मके उदयसे ऐसा शरीर वादर एकेन्द्रिय व सर्व द्वेन्द्रियादि त्रस जीवोंके सामान्यसे होता है । सूक्ष्म एकेन्द्रियोंका शरीर बाधा रहित होता है वे स्वयं मरते हैं ।

(सर्वा० अ० ८–११)

वादर साम्पराय—स्थूल कषायधारी छठेसे नौमें गुणस्थान तकके साधु । (सर्वा० अ० ९–१२)

वादाल—द्विरूप वर्ग धाराका पांचवां स्थान । अर्थात् दोके अंकको पांच दफा वर्ग करनेसे जो आवे । जैसे २ × २=४, ४ × ४=१६, १६ × १६=२५६, २५६ × २५६=६५५३६, ६५५३६ × ६५५३६=४,२९,४९,६७,२९६ यह वादाल है । (त्रि० गा० ६६)

वाधित विषय हेत्वाभास—जिस हेतुके साध्यमें दूसरे प्रमाण प्रत्यक्षादिसे बाधा आवे ।

(जै० सि० प्र० नं० ५४)

वारासै चौतीस व्रत—१२३४ व्रत । एक मासमें दो तीज, दो पांचम, दो आठम, दो ग्यारस, दो चौदस ऐसे १० उपवास करे । एक वर्षमें १२० होंगे । कुल १२३४ पूर्ण करे ।

(क्रि० क्रि० पृ० १२०)

वालकराम—कवि, त्रिभंगासारकी टीकाके कर्ता ।

(दि० ग्रं० नं० १९९)

वालचन्द्र—मुनि, तत्वसार टीका, समयसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय टीका (कनड़ीमें) के कर्ता (दि० ग्रं० नं० १९३); (सन् ११७०) [illegible] तिक वालचंद । (क० नं० ३६)

वालचन्द्र—कर्णाटक कवि । (सन् १२८३) उद्योगसारके कर्ता । (क० नं० ५८)

वाल तप—अज्ञान तप, आत्मज्ञान व [illegible] रहित तप । (सर्वा० अ० ६–२०)

वाल पंडित मरण—सम्यग्दृष्टी श्रावक पंचम गुणस्थानीका मरण । (भ० प्र० १४)

वाल मरण—अविरत सम्यग्दृष्टिका मरण ।

(भ० प्र० १४)

वाल ब्रह्मचारी—बालकपनसे शील पालनेवाला, कुमार ।

वाल ब्रह्मचारी तीर्थंकर—वर्तमान भरतमें पांच प्रसिद्ध हैं । वासपूज्य, मल्लि, नेमि, पार्श्व, महावीर ।

वाल बुद्ध—पं० आत्मसम्बोध (प्राकृत) के कर्ता । (दि० ग्रं०, नं० १९४)

वाहुबलि—श्री रिषभदेवके पुत्र, बड़े तपस्वी; धर्मनाथ पुराण कनड़ीके कर्ता । (दि.ग्रं.नं. १९७)

विदल—देखो द्विदल ।

विलछन—जीवानी—पानी छाननेसे पीछे जो जन्तु आदि छलनेमें रह जाते हैं । (उनको वहीं पहुंचाना चाहिये जहांसे पानी भरा है ।)

बीजोलिया पार्श्वनाथ—अतिशयक्षेत्र । उदयपुर राज्य, भीलवाड़ा स्टेशनसे [illegible] कोस [illegible] [illegible] कोस [illegible] । ग्राममें श्री पार्श्वनाथजीका विशाल प्राचीन मंदिर है । [illegible] मूर्तियें अंकित हैं, शिलालेख हैं. पासमें [illegible] है । यहां श्री [illegible] [illegible] [illegible] रहते थे ।

([illegible])

बुद्ध—८८ ज्योतिष ग्रहोंमें ८१ वां ग्रह ।

(त्रि० गा० [illegible])

बुद्धकीर्ति—श्री पार्श्वनाथकी [illegible] [illegible] बुद्धिका [illegible] [illegible] मुनि, [illegible] [illegible] कर्ता । ([illegible])

बुद्धि—[illegible]

द्वीपमें रहनेवाली। (सर्वा० अ० ४-१९); रुक्मी पर्वतपर पांचवा कूट । (त्रि० गा० ७२७)

बुद्धि ऋद्धि-तपके द्वारा विशेष शक्ति आत्मामें होती है। ज्ञानकी शक्ति १८ प्रकारकी होती है। (१) से (३) अवधिज्ञान, मनःपर्याय ज्ञान और केवलज्ञान, (४) बीजबुद्धि-एक बीज अक्षरके ग्रहणसे अनेक पदार्थका ज्ञान, होना, (५) कोष्टबुद्धि-अलग अलग पदार्थोंका ज्ञान रहता हुआ, कोठारमें सामान के समान जब चाहे उसे स्मरण करले, (६) पदानुसारी-एक पदको सुन सब ग्रन्थको समझजाना, (७) संभिन्न श्रोत्र-१२ योजन लम्बे, ९ योजन चौड़े क्षेत्रमें मानव व पशुओंके शब्द एक काल भिन्न २ सुन लेना, (८) रसनेंद्रिय ज्ञान लब्धि-नौ योजनसे बाहरके पदार्थका स्वाद जानलें, (९) स्पर्शनेंद्रिय ज्ञानलब्धि, (१०) घ्राणेंद्रिय ज्ञानलब्धि, (११) चक्षुइंद्रिय ज्ञानलब्धि, (१२) श्रोत्रइंद्रिय ज्ञानलब्धि। इन चारोंके नियत उत्कृष्ट विषयसे बाहरके विषयके जाननेकी शक्ति (१३) दश पूर्वत्व ऋद्धि-दश पूर्वका ज्ञान, (१४) चतुर्दश पूर्वत्व ऋद्धि-१४ पूर्व व सकल श्रुतका ज्ञान, (१५) अष्टांग निमित्त ज्ञान ऋद्धि, (१६) प्रज्ञा श्रवणत्व ऋद्धि-चौदा पूर्व नहीं पढ़ा है तौभी चौदह पूर्व ज्ञाता एक पद कहे उससे वह सन्देह रहित समझ ले ऐसी बुद्धिकी प्राप्ति, (१७) प्रत्येक बुद्धि ऋद्धि-परके उपदेश विना अपनी बुद्धिसे ही ज्ञान संयमसे प्रवृत्ति, (१८) वादित्व ऋद्धि-वादमें निरुत्तर करनेकी शक्ति।

(सर्वा० भा० जयचन्द अंक ३-३६)

बुलाकीदास-पं०, पांडव पुराण व प्रश्नोत्तर-श्रावकाचार छंदके कर्ता । (दि० ग्रं० नं० ९३)

बूचिराज-कर्णाटक जैन कवि। (सन् ११७३) वीर बल्लालका मंत्री, श्रीपालत्रैविद्यका शिष्य।

(क० नं० ३८)

वेलन्धर-नागकुमार भवनवासी जो लवण समुद्रके बाहर शिखरपर रहते हैं। ये लवण समुद्रके भीतरके द्वीपोंके स्वामी। (त्रि.गा. ९०३-९११)

वेला-समय; दो उपवास।

बोधित-जो दूसरेके उपदेशसे संयमी हो।

बोधिदुर्लभ भावना-१२ भावनाओंमें ११ वीं वह विचारना कि रत्नत्रय धर्मका लाभ बड़ी कठिनतासे होता है। (सर्वा० अ० ९-८)

बौद्ध-बुद्ध धर्मके माननेवाले।

बंगाल विहार प्राचीन जैन स्मारक-ब्रह्मचारी सीतलप्रसादजी कृत, मुद्रित।

बंशीधर पंडित-मौजूद है शोलापुरवासी, तत्वार्थसार व आत्मानुशासनके टीकाकार।

बंशीधर पंडित-शास्त्री-अध्यापक सर सेठ हुकमचन्दजी जैन विद्यालय इन्दौर, गोम्मटसारके अच्छे ज्ञाता, मौजूद हैं।

ब्रह्म-ब्रह्म युगल स्वर्गमें तीसरा इन्द्रक विमान व ब्रह्म इन्द्र। (त्रि० गा० ४६७)

ब्रह्म कामराज-जयपुराणके कर्ता।

ब्रह्मचर्य-पूर्ण शीलव्रत पालना या परम आत्माके ध्यानमें लग्न होना। दशलाक्षणी धर्ममें १० वां (सर्वा० अ० ९-६); इस धर्मको पूर्ण पालते हुए स्त्री स्मरण, कथा सुनना, स्त्रीसे संसर्ग पाए हुए आसनादिपर बैठना सब वर्जित है।

ब्रह्मचर्य आश्रम-बालक अवस्थासे युवा होने तक ब्रह्मचर्य पालते हुए विद्याका अभ्यास करना।

(श्रा० पृ० ११६)

ब्रह्मचर्य प्रतिमा-श्रावकके चारित्रका सातवां दरजा जहां श्रावक घरमें रहता हुआ या घर त्याग कर पूर्ण ब्रह्मचर्य पाले, उदासीन वस्त्र पहरे, पहलेके नियमोंको साधता रहे, जो छः प्रतिमाओंमें कहे गए हैं। (गृ० अ० १३)

ब्रह्मचर्यव्रत भावना-ब्रह्मचर्य व्रतकी दृढताके लिये लिये ५ भावनाएं हैं-(१) स्त्रियोंमें राग बढ़ानेवाली कथा न सुने, (२) उनके मनोहर अंग न देखे,

(३) पूर्वरत भोगोंको स्मरण न करे, (४) कामोद्दीपक रस न खावे, (५) अपने शरीरका श्रृंगार न करे। (सर्वा० अ० ७–७)

ब्रह्मचर्याणुव्रत–एक देश ब्रह्मचर्य पालना, अपनी विवाहित स्त्रीमें सन्तोष रखना।

ब्रह्मचारी–पांच तरहके हैं-(१) उपनय ब्रह्मचारी–जो बालक उपनीति संस्कारसे भूषित हो, गुरुकुलमें जाकर विद्याभ्यास करे, (२) अदीक्षा ब्रह्मचारी–जो विना किसी भेषको धारे आगमको पढ़ गृहस्थमें प्रवेश करे, (३) अवलम्ब ब्रह्मचारी–जो क्षुल्लकका वेष रखकर आगम पढ़े फिर लौट जाय, (४) गूढ़ ब्रह्मचारी–जो मुनिके वेषमें मुनि संघमें विद्या पढ़े फिर माता पिता व राजाकी प्रेरणासे व उपसर्ग न सह सकनेसे घर जाय, (५) नैष्ठिक ब्रह्मचारी–जो सातमी प्रतिमाके नियम पाले। सफेद या लाल वस्त्र रक्खे, घर रहे वा घर छोड़े। (गृ० अ० १३)

ब्रह्मर्षि–बुद्धि व औषधि ऋद्धिके धारक मुनि। (सा. अ. ७–२०)

ब्रह्मगुलाल–पं०, पचीसी छन्दके कर्ता। (दि. ग्रं. नं० ९४)

ब्रह्मजित–हनूमान चरित्रके कर्ता। (दि० ग्रं० नं० १९६)

ब्रह्मदत्त–भरतके वर्तमान १२ वें चक्री।

ब्रह्मदेव–ब्र०, बृहत् द्रव्य संग्रह सं० टीका, परमात्मा प्रकाश सं० टीका, तत्वदीपक, ज्ञानदीपक प्रतिष्ठा तिलक, कथाकोश आदिके कर्ता। (दि. ग्रं. नं. १९९

ब्रह्मराक्षस–राक्षस व्यंतरोंका सातवां प्रकार। (त्रि. गा. २६७)

ब्रह्मशिव–कर्णाटक जैन कवि (सन् ११२५) समय परीक्षाका कर्ता। (क. नं. ३१)

ब्रह्मलोक–सिद्धलोक, सिद्धक्षेत्र जहां सिद्ध आत्मा विराजमान हैं; पांचवां स्वर्ग ब्रह्म स्वर्ग।

ब्रह्मस्वर्ग–पांचवां स्वर्ग।

ब्रह्मसूरि–प्रतिष्ठा तिलक, त्रैवर्णिकाचार, यज्ञोपवीत विधानके कर्ता। (दि. ग्रं. नं० १९९)

ब्रह्म हृदय–लांतव युगल स्वर्गमें पहला इंद्रक विमान। (त्रि. गा. ४६७)

बृहस्पति–ज्योतिषमें ८८ वां ग्रह (त्रि. ३७०)

ब्राह्मण वर्ण–जिसे भरत चक्रवर्तीने स्थापित किया जिसका कार्य पढ़ना, पढ़ाना, पूजन करना, कराना व दान लेना व संतोषसे रहना है। (सा. अ. २–२१)

ब्राह्मी–सती, आर्यिका, मुख्य, समवशरण, श्री आदिनाथ ऋषभदेवकी पुत्री, आजन्म ब्रह्मचारिणी।

भ

भक्तपान संयोजनाधिकरण–भोजनमें पानी या दूध मिलाना। अजीवाधिकरणका सातवां भेद। (सर्वा. अ. ६–९)

भक्त प्रतिज्ञा (प्रत्याख्यान) मरण–समाधिमरण जिसमें भोजनकी अनुक्रमसे त्यागकी प्रतिज्ञा हो। जघन्य अंतर्मुहूर्त उत्कृष्ट १२ वर्ष। (गो. क. गा. ६८)

भक्तामर स्तोत्र–सं० आचार्य मानतुंग कृत। भाषा हेमराज, नाथूराम आदि कृत मुद्रित व मंत्र यंत्र सहित मुद्रित।

भगवती आराधनासार–श्री समंतभद्राचार्य शिष्य शिवकोटि कृत प्राकृत, मुनि धर्मका कथन, मुद्रित।

भंग –भेद।

भगवतीदास–पं० (ओसवाल, आगरा नि०) (सं० १७१२) ब्रह्मविलास ग्रन्थ–जैसे पचीसी छन्द, द्रव्य संग्रह छन्द। (दि. ग्रं. नं० ९६)

भगवान महावीर–चम्पतराय कृत, मुद्रित।

[illegible]–पं० ([illegible]) [illegible] कृत। (दि. ग्रं. नं० ९५)

भट्टाकलंकदेव–देखो "अकलंकदेव"। (इ. जि. इ. ३१)

भट्टारक वस्त्रधारी दि० जैन मुनि। प्रसिद्ध है कि फीरोजशाह तघलक दिहलीके समयमें बादशाहके आग्रहसे प्रभाचंद्र मुनिको वस्त्रचिह्न रखना पड़ा, बादशाही परवाना मिला तबसे भट्टारक पद स्थापित हुआ व जगह २ गद्दियें स्थापित हुईं।

भद्र–सरल परिणामी जो सच्चे धर्मसे द्वेष नहीं करता। नंदिश्वर समुद्रका स्वामी व्यंतरदेव।

(त्रि. गा. ९६४)

भद्रक–यक्ष, व्यंतरोंका पांचवां प्रकार।

(त्रि. गा. २६९)

भद्रबाहु संहिता–सं० निमित्तज्ञान या दायभाग आदि कथन।

भद्रबाहु–पंचम श्रुत केवली महावीर स्वामीके मोक्षके १६२ वर्षमें; भद्रबाहु संहिता आदिके कर्ता (दि. ग्रं. नं. २००); भट्टारक, होम शांतिके कर्ता (दि. ग्रं. नं. २०१); चरित्र, मुद्रित सटीक।

भद्रशाल वन–मेरु पर्वतके पूर्व पश्चिम वन जो २२ हजार योजन चौड़ा है। पूर्व भद्रशाल वनमें पद्मोत्तर और नील, पश्चिममें कुमुद और पलाश ऐसे दो दो दिग्गज पर्वत १०० योजन ऊंचे १०० योजन चौड़े नीचे ऊपर ७ योजन चौड़े हैं।

(त्रि. गा. ६६१–७६३)

भद्रा–रुचक पर्वतके पश्चिम सुदर्शन कूटपर देवी। (त्रि. गा. ९९२)। व्यंतरोंके महोरग जातिके इन्द्रकी महत्तरी देवी। (त्रि. गा. २७७)

भद्राश्वपुर–विजयार्द्धकी उत्तर श्रेणीमें ४९ वां नगर। (त्रि. गा. ७०६)

भय–नोकषाय–कर्म जिसके उदयसे भय हो। भय सात प्रकार है–इस लोक भय (लोग क्या कहेंगे जो ऐसा करूंगा), परलोक भय (नरकादिका भय), वेदना भय (कहीं रोग न हो), अरक्षा-भय (कोई मेरा रक्षक नहीं), अगुप्त भय (मेरा माल कोई न लेजावे), मरण भय (कहीं मर न जाऊं), अकस्मात् भय (कोई अकस्मात न होजाय)। सम्यक्ती सात भय नहीं करता है।

भय संज्ञा–भयरूप भाव साधारण सर्व संसारी आहार, भय, मैथुन, परिग्रह इन चार संज्ञाओंमेंसे दूसरी, भय उत्पन्न होनेके बाहरी कारण बाघ आदि भयानक पशु व मानव देखनेसे, भय कथा सुननेसे, व भयकी बातोंके स्मरणमें, हीन शक्ति होनेसे व अंतरंग भय नोकषायके तीव्र उदयसे भय संज्ञा होती है जिससे बचनेकी व छिपनेकी इच्छा होती है। (गो. जी. गा. १३६)

भरत–ऋषभदेवके पुत्र चक्रवर्ती प्रथम; जंबूद्वीपके हिमवंत कुलाचलपर तीसरा कूट। (त्रि. गा. ७११); भरत क्षेत्र ढाई द्वीपमें पांच हैं जिनमें अवसर्पिणी व उत्सर्पिणी कालका पलटना होता रहता है। चौथे दुखमा सुखमा कालमें ६३ शलाका पुरुष होते रहते हैं। उनमें २४ तीर्थंकर प्रायः अयोध्या नगरीमें जन्मते हैं व सम्मेदशिखरसे मुक्ति पाते हैं; वर्तमानमें इस भरतमें २१००० वर्षका दुखमा काल चल रहा है। महावीर भगवानके मोक्ष जाने बाद ३ वर्ष ८॥ मास प छेसे प्रारम्भ हुआ है। वीर निर्वाण संवत २४५७ है (सन् १९३०); श्री रामचन्द्रके भाई वैरागी। भरत-क्षेत्रकी चौड़ाई ५२६$\frac{6}{19}$ बड़े योजनसे है। इसके छः खंड हैं। विजयार्द्ध पर्वत मध्यमें आनेसे व गंगा, सिंधु नदीके बहनेसे छः खंड हुए। दक्षिणको लवणसमुद्र है, धनुषाकार है। दक्षिणके मध्यमें आर्यखण्ड है, शेष पांच म्लेच्छ खण्ड हैं, वहां सदा चौथा काल घटता बढ़ता रहता है। आर्यखण्डमें उपसमुद्र है, चौथे कालकी आदिमें होजाता है। वर्तमानके यूरुप, आफ्रिका, एशिया, अमेरिका, आष्ट्रेलिया सब इसी उपसागरके आसपास आर्यखण्डमें है। उपसागरने फैलकर उन्हें द्वीपाकार बना लिया है। आर्यखण्डका बहु भाग अभी ढूंढ़ा नहीं गया है।

(सि. द. पृ. ११०)

भव–जन्म, पर्याय, शरीर।

भव परिवर्तन–चार गतिकी अपेक्षा चार प्रकार है। चार गतिके अनेक शरीरोंको वारम्बार धारकर

भ्रमण करना। १—नरकगति परि०—कोई जीव वहांकी जघन्य आयु १० हजार वर्षकी पाकर मरे, फिर वही जीव कभी १० हजार वर्षकी आयु पावे फिर मरे, फिर उतनी ही आयुका धारी नारकी हो। इस तरह जितने १० हजार वर्षके समय होते हैं उतनी वार उतनी ही आयुका धारक नारकी हो, तब गणनामें आवे, बीचमें और तरह जन्मे सो गिनतीमें नहीं, फिर एक समय अधिक १० हजार वर्षकी आयुधारी नारकी हो, फिर कभी दो समय अधिक १० हजार वर्षधारी नारकी हो, इस तरह क्रमसे एक एक समय अधिक होते होते नरककी उत्कृष्ट तेतीस सागर आयु पूर्ण करे। ऐसे भ्रमणमें जितना काल लगे वह नरक भव परिवर्तन है। २ तिर्यंच भव परिवर्तन—लब्ध पर्याप्तक सूक्ष्म निगोदिया जीव एक श्वासके अठारहवें भाग आयु पाकर उपजा व मरा फिर वही इतनी ही आयुका धारी उतनी वार हो जितने समय इस लघु अंतर्मुहुर्तमें होते हैं फिर एक समय अधिककी आयु, दो समय अधिककी आयु पाता हुआ तीन पल्य तककी आयु पाजावे तब इस भ्रमणमें जो अनंतकाल लगे वह तीर्यंच भव परिवर्तन है। मनुष्य भव परिवर्तन—तीर्यंचके समान है। देवगति परिर्वतन—नरकके समान है। अंतर इतना है कि ३१ सागरकी आयु तक ही पावे क्योंकि इसके आगे सम्यग्दृष्टी ही आयु पाता है। चारोंका जोड़ रूप काल सो एक भव परिवर्तनका काल है। (सर्वा. अ. २—१०)

भव भ्रमण—संसारमें जन्म लाभ।

भवनवासीदेव—चार प्रकारके देव समूहमें पहला भेद। ये देव रत्नप्रभा पहली पृथ्वीके खर भाग व पंक भागमें मुख्यतासे रहते हैं इनके निवासभवन ७ करोड़ बहत्तर लाख हैं। हरएकमें एक अकृत्रिम जिनमंदिर है। इनके १० भेद हैं—असुरकुमार नागकु०, सुवर्ण (गरुड़) कु० द्वीपकु०, उदधिकु०, विद्युत्कु०, स्तनितकु०, दिक्कु० अग्निकु०, वायुकुमार। इनकी चेष्टा कुमारवत् हास्य कौतूहलकी होती है। हरएक भेदमें दो इन्द्र व दो प्रतीन्द्र हैं। कुल ४० इंद्र हैं। पंकभागमें असुरकुमार रहते हैं, शेष नौ भेद खर भागमें रहते२ मध्यलोकमें भी इनके आवास हैं। (त्रि. गा. २०८)

भवनत्रिक—भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी देव (त्रि. गा. ४५०), जो जीव विपरीत धर्म पालते हैं, भोगाकांक्षासे धर्म पालते हैं, अग्नि जलादिमें मरते हैं, कष्टको शांतिसे सहकर मरते हैं व पंचाग्नि आदि खोटा तप करते हैं व सदोष चारित्र पालते हैं, वे इन तीन प्रकार देवोंमें जन्मते हैं।

भवनालय—भवनवासियोंके भवन।
देखो "भवनवासी"

भवप्रत्यय अवधिज्ञान—जो अवधिज्ञान जन्मसे होते हो। यह देव, नारकी व तीर्थंकरोंके अवश्य होता है। यह सर्वांग आत्म प्रदेशोंमें प्रगट होता है। देशावधिके भेदमें है। (गो. जी. ३०९) (सर्वा. अ. १—२१)

भव विपाकी कर्म प्रकृति—जिसके फलसे जीव शरीरमें रुका रहे। ये चार आयुकर्म हैं, नरक, तिर्यंच, मनुष्य व देव। (जै. सि. प्र. नं. ३२२—३२४)

भव्यान्तर—अन्य भव या जन्ममें जाना। अनुभव किया या जाना।

भविष्य चौबीसी—आगामी २४ तीर्थंकर जो भरतक्षेत्रमें होंगे उनके नाम। (प्र. कि. ए. १६६)

भव्य जीव—वह जीव जिसमें सम्यग्दर्शन प्रगट होनेकी योग्यता है।

भव्यत्व—वह स्वभाव जिससे सम्यक्त्व प्रगट होनेकी योग्यता हो। (जै. सि. प्र. नं. २४८)

भव्य मार्गणा—जहां जीवोंकी ढूंढ़ भव्यकी अपेक्षा की जावे। इसके दो भेद हैं, कोई जीव भव्य हैं कोई अभव्य हैं।

भव्य सिद्ध–वे भव्य जिनको मोक्षकी प्राप्तिकी योग्यता है परन्तु उनको मिथ्यात्व मैलके नाश करनेकी सामग्री न मिलेगी इनहीको दूरानदूर भव्य कहते हैं। जो सामग्री पायकर मुक्त होंगे वे निकट भव्य सिद्ध हैं। (गो. जी. गा. ५५७–५५८)

भव्य स्वभाव–जो भविष्यमें पर स्वरूप या अन्य पर्याय रूप होनेका स्वभाव। सामान्य स्वभाव सर्व द्रव्योंमें है। (आलाप प.)

भाट जीविका–गाड़ी घोड़े आदिसे बोझा ढोकर जीविका। (सा. अ. ५–२१–२३)

भागचंद्र–पं०, (ईसागढ नि० ओसवाल) ज्ञान सूर्योदय नाटक, अमितिगति श्रा०, उपदेश सिद्धांत-रत्नमाला, प्रमाण परीक्षा, महावीराष्टक आदिके कर्ता। (दि० ग्रं० नं० ९८)

भागहार–वे भागहार जिनके द्वारा संसारी जीवोंके शुभ या अशुभ कर्म अपने भिन्न २ प्रकार परिणामोंके कारण बदल जावे, अन्य प्रकृतिरूप होजावें वे पांच हैं–उद्वेलन, विध्यात, अधःप्रवृत्त, गुणसंक्रम, सर्व संक्रमण। जैसे किसी कर्मके परमाणु ५०० हैं। भागहार ५० है तब भाग देनेसे १० परमाणु बदल जायगी। यहां ५० भागहार है। (गो. क. गा. ४०९) देखो "पंच संक्रमण"।

भानु–स्वर्गके दक्षिण इन्द्रोंकी पट्ट देवीका नाम। (त्रि. गा. ५१०)

भानुकीर्ति–सिद्धचक्र पूजादिके कर्ता। (दि. ग्रं. २०२)

भानुनन्दि–सं० ४९७। (दि. ग्रं. १०२)

भारामल–(भिंड) चारुदत्त च० का कर्ता। (दि. ग्रं. नं. ९९)

भाऊ कवि–नेमीश्वर शतक, रविव्रत कथाके कर्ता। (दि. ग्रं. ९७)

भाव आस्रव–जिन आत्माके परिणामोंसे कर्मवर्गणाओंका आना हो या खिंचाव हो। वे ५७ हैं देखो "प्रत्यय", "आस्रव", "आस्रवद्वार भेद"।

भाव–गुण, होना, पदार्थ, सत्ता, जीवके परिणाम–पांच तरहके औपशमिक, क्षायिक, क्षयोपशमिक, औदयिक, पारिणामिक। इसके ५३ भेद हैं। देखो "त्रिपंचाशत् भाव"। कर्मके उदयमें न आकर दबनेसे जो भाव हो सो औपशमिक है। उसके २ भेद हैं–औपशमिक सम्यक्त, औपशमिक चारित्र; कर्मके क्षयसे जो भाव हो वह क्षायिक है, इसके ९ भेद हैं–क्षायिक ज्ञान, दर्शन, दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य, सम्यक्त, चारित्र। कर्मोंके क्षयोपशमसे जो हों वे १८ तरह हैं–४ ज्ञान मति ज्ञानादि + ३ अज्ञान कुमति आदि + ३ दर्शन चक्षु आदि + ५ लब्धि क्षयोपशम दानादि + क्षयोपशम सम्यक + क्षयोपशम चारित्र + संयमासंयम; कर्मके उदयसे जो भाव हों वे औदयिक। वे २१ तरहके हैं–४ गति + ४ कषाय + ३ वेद + मिथ्यादर्शन, अज्ञान, असंयत, असिद्धत्व + ६ कृष्णादि लेश्या; जिसमें उदयादिकी अपेक्षा न हो, वे पारिणामिक भाव ३ प्रकार हैं–जीवत्व, भव्यत्व, अभव्यत्व सब ५३ भाव हैं।

भाव आस्रव त्रिभंगी–आस्रव भाव ५७ हैं ५ मिथ्यात्व + १२ अविरति + २५ कषाय + १५ योग। उनको गुणस्थान अपेक्षा तीन तरहसे विचारना चाहिये। आस्रव अभाव जो भाव नहीं वहां संभव है। आस्रव उदय जो भाव संभव है। आस्रव व्युच्छित्ति जिन भावोंका अपने नाश है अर्थात् गुणस्थानोंमें नहीं है।

भाव निर्जरा—जिन भावोंसे कर्म झड़ें।

भावनन्दि—सं० ४९७ व सं० ११६० के आचार्य। (दि० ग्रं० २०३—२०५)

भाव परिवर्तन—(परावर्तन)—जीवोंके भावोंका क्रमवार पलटना, इसमें स्थिति स्थान, कषायाध्यवसाय स्थान, अनुभागाध्यवसाय स्थान, योग स्थान इन चारोंकी पलटन होती है। एक प्रकारकी स्थितिके लिये असंख्यात लोक प्रमाण कषाय स्थान होते हैं। एक कषाय स्थानके लिये असंख्यात लोक प्रमाण अनुभाग स्थान होते हैं। एक अनुभाग स्थानके लिये जगत श्रेणीके असंख्यातवे भाग योग स्थान होते हैं। एक सैनी जीव ज्ञानावरणीकी जघन्य स्थिति अतः कोटा कोटि सागर बांधे उसके लिये इतना चक्र विचारना होगा कि कोई जीव उसके लिये कारण जघन्य योग पावे फिर उसीके पासवाला दूसरा योग लेवे, बीचमें अन्य योग हों तो गिनतीमें नहीं, इस तरह क्रमसे श्रेणीके असंख्यातवें भाग प्रमाण योग स्थान होजायं तब एक अनुभागाध्यवसाय स्थान पूरा हुआ। दूसरे अनुभाग स्थानके लिये फिर उतने ही योग स्थानोंको क्रमवार पावे तब दूसरा अनुभाग स्थान पूरा हो फिर तीसरे चौथे आदिके लिये उतने ही योग स्थान करे यहां तक कि जब असंख्यात लोक प्रमाण अनुभाग स्थान होजावे तब एक कषायाध्यवसाय स्थान हुआ। फिर दूसरे कषाय स्थानके लिये पहलेसे क्रमवार श्रेणीके असंख्यातवें भाग योगस्थान करते२ अनुभाग स्थान भी असंख्यात लोक प्रमाण होजाय तब दूसरा कषाय स्थान पूरा हुआ। फिर तीसरेके लिये ऐसा करे, इस तरह असंख्यात लोक प्रमाण कषायस्थान होजाय तब एक जघन्य स्थितिका स्थान पूरा हुआ। फिर एक समय अधिक स्थितिके लिये, यही क्रम करे, फिर २ समय अधिकके लिये इस तरह ज्ञानावरण कर्मकी उत्कृष्ट स्थिति तक सर्व प्रकार भावोंको क्रमवार पूरा कर आवें। इसी तरह अन्य सात कर्म व उत्तर प्रकृतिकी स्थितिका क्रम पूरा करे। जितना अनन्तकाल हो वह एक भाव परिवर्तन है।

(सर्वा० अ० २—१०)

भाव पूजा—भावोंको जोड़कर अरहंतादिकी भक्ति करना।

भाव प्राण—आत्माके चेतना और वीर्य गुण। वे भाव प्राण ८ हैं, स्पर्शनादि पंच इंद्रिय द्वारा जानना और मन, वचन, कायके लिये भाव योगका वर्तन। (जै० सि० प्र० नं० २१६—२१७)

भाव बन्ध—जिन आत्माके अशुद्ध परिणामोंसे कर्मका बंध होता है—के मुख्यतासे योग और कषाय हैं तथा जो कारण आस्रवके हैं वे ही बंधके हैं। देखो "भाव आस्रव त्रिभंगी"

भाव मन—ज्ञानावरण व वीर्यांतरायके क्षयोपशमसे द्रव्य मन द्वारा जाननेकी शक्ति तथा उस रूप ज्ञानका उपयोग होना। (सर्वा. अ. ५—१९)

भाव मोक्ष—आत्माका वह शुद्ध भाव जिससे सर्व कर्म झड़ जावें व आत्मा सर्व बंधन रहित मुक्त हो जावे।

भाव योग—मन, वचन या काय संयुक्त संसारी जीवके पुद्गल विपाकी अँगोपांग व शरीर नाम कर्म उदयसे जीवकी वह शक्ति जो कर्म व नोकर्मको ग्रहण करती है। आत्माके प्रदेशोंका सकम्प होना द्रव्य योग है उसी समय लोक मात्रमें प्राप्त पुद्गल स्कन्धोंको कर्म व नोकर्मरूप परिणमावनेको कारणभूत शक्ति, या सामर्थ्य सो भाव योग है।

(गो० जी० गा० २१६)

भाव लिंग—जैसा बाहरी चारित्र हो वैसा ही भाव होना। जैसे मुनिका चारित्र महाव्रत रूप नग्न लिंग बाहरी है तब भावोंमें प्रमत्त, अप्रमत्त, गुणस्थान सम्बन्धी ही भाव होना सो भावलिंग है।

भावलिंगी मुनि—अपने बाहरी चारित्रके अनुसार भावोंको रखनेवाला।

भावलेश्या—"लिम्पति आत्मा पुण्य पापे यथा सा लेश्या" जिससे आत्मा पुण्य या पापको बंध करे वह

लेश्या है। कषायोंसे रंगी हुई मन, वचन, कायके द्वारा योगोंकी प्रवृत्ति सो छः प्रकार है–कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म, शुक्ल, अशुभतम, अशुभतर, अशुभ, कृष्ण, नील, कापोतके भाव क्रमसे हैं। शुभ, शुभतर, शुभतम ये तीन प्रकारके शुभभाव क्रमसे पीत, पद्म, शुक्ललेश्या है। (सा. अ. ९-१)

भाव वचन–भावोंमें वचन कहनेकी तरफ उपयोग।

भाव वेद–वेद नोकषायके उदयसे मैथुन भाव। इसके तीन भेद हैं। पुरुष वेद–जिसके उदयसे स्त्रीकी इच्छारूप मैथुन संज्ञा होती है, स्त्री वेद–जिसके उदयसे पुरुषकी इच्छारूप मैथुन संज्ञा होती है। नपुंसक वेद–जिसके उदयसे पुरुष व स्त्रीकी एकसाथ अभिलाषरूप मैथुन संज्ञा होती है।
(गो० जी० गा० २७१)

भाव लोकोत्तर मान–जघन्य लब्ध पर्यायात्मक सूक्ष्म निगोद जीवकी पर्याय श्रुतज्ञान व उत्कृष्ट केवलज्ञान। (त्रि० गा० ११)

भावशर्मा–तेरह द्वीप पूजा आदिके कर्ता।
(दि० ग्रंथ नं० १०६)

भाव श्रुत–द्रव्य श्रुत या जिनवाणीके द्वारा जो ज्ञान होना।

भाव सत्य–१० प्रकार सत्यका नौमा भेद–जो पदार्थ इंद्रियगोचर न हो उसमें सिद्धांतके अनुसार वचन कहना सो भाव सत्य है। जैसे कहना कि जो सचित्त पदार्थ सूख गया हो, अग्निसे पका हो, यंत्रसे छिन्न किया गया हो व खटाई लगकर मिला हो व भस्म होगया हो वह प्रासुक या अचित्त है उसके सेवनमें पाप बंध नहीं, यह भाव सत्य है।
(गो० जी० गा० २२४)

भावसिंहसूरि–लोक विभागके कर्ता। (दि० ग्रं० नं० २२१)

भावसेन कवि–विश्वतत्त्व प्रकाश, सिद्धांतसार निघंटु, भाव प्रकाश, रत्नत्रय पान हार विचार आदिके कर्ता। (दि० ग्रं० नं० २०७)

भावसेनाचार्य–न्यायदीपिकाके कर्ता।
(दि० ग्रं० २२२)

भाव संवर–जिन भावोंसे कर्मोंका आगमन होता है उन भावोंका रोक देना व संसार बढ़ानेवाली क्रियाका रोक देना। भाव संवरसे द्रव्य आस्रव रुक जाता है। मिथ्यात्वका संवर सम्यक्त्वसे, अविरतिका संवर व्रतोंके पालनेसे, प्रमादका संवर अप्रमाद भावसे, कषायका संवर वीतराग भावसे, योगका संवर योग रहित भावसे होता है। (सर्वा. अ. ९-१)

भाव सम्यग्दृष्टि–भेद ज्ञान पूर्वक परद्रव्य, परभाव, परपर्यायसे भिन्न आत्माका अनुभव करनेवाला।

भावाभाव–वर्तमान स्थूल अवस्थाका आगामीमें अभाव करना। (पंचास्तिकाय)

भावी चतुर्विंशति जिन–भरत व ऐरावतके। देखो प. भि. ह. २६९।

भावी नैगम नय–जो बात होनेवाली है उसको वर्तमानमें कहना जिस नयसे हो वह भावी नैगम नय है, जैसे अर्हतको सिद्ध सम कहना। राजकुमारको राजा कहना। (सि. द. पृ० ९)

भावी नो आगम द्रव्य निक्षेप–विवक्षित पदार्थको उपादान कारण जैसे सिद्धोंके उपादान कारण अरहंत–अरहंतको सिद्ध मानना। (सि. द. पृ. [illegible])

भाषा पर्याप्ति–भाषा वर्गणाके परमाणुओंको वचनरूप करनेके कारण जीवकी शक्तिकी पूर्णता।
(जै. सि. प्र. प्र. नं० २१४)

भाषा वर्गणा–२२ पुद्गल वर्गणाओंमें आठवीं वर्गणा। एक एकसे अनेक परमाणु होते हैं वह तैजस वर्गणासे अनंत गुण परमाणु रखता है। इसीसे वचन बनता है। ये तीन लोकमें व्याप्त है। (देखो तेईस वर्गणा)

भाषा समिति–शुद्ध वचनोंको [illegible] हितमित हो। दूसरी समिति। (सर्वा. अ. ९–५)

भास्करानन्द मुनि–तत्त्वार्थसूत्रकी सुखबोधिनी टीकाकार। (दि. ग्रं. [illegible])

भासुर–जोतिषके ८८ ग्रहोंमें ५८ वां ग्रह। (त्रि. गा. ३६८)

भिन्न मुहूर्त–अंतर्मुहूर्त। ४८ मिनटका मुहूर्त होता है। उनमें १ समय कम उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त है व एक समय अधिक १ आवली जघन्य अंतर्मुहूर्त है। मध्यके गुण संख्यात भेद है। (गो. जी. गा. ५७५)

भिक्षा–लाभ, अलाभ, सुरस विरस आहारमें संतोषरूप आहारकी विधि जो मुनि, आर्यिका, क्षुल्लक व ऐलकके लिये होती है। (सर्वा. जयचन्द, पृ० ६६१)

भिक्षा भेद–देखो "पंच भिक्षावृत्ति"

भिक्षु (भिक्षुक)–सातवीं प्रतिमासे नौमी तकका धारी ब्रह्मचारी व दशमी ग्यारहवीं प्रतिमाधारी भिक्षु कहलाता है। (सा. अ. ३–३७); अथवा दिगम्बर मुद्राधारी भिक्षु। (सा. अ. ७–२०)

भीम–राक्षस व्यंतरोंमें पहला भेद। (त्रि. गा. २६७); वर्तमान भरतका पहला नारद। (त्रि. गा० ८३४)

भीमावली–वर्तमान भरतका पहला रुद्र। (त्रि. गा. ८३६)

भुक्तिरोध–अन्नपान रोक देना, अहिंसा अणुव्रतका पांचवां अतिचार। (सर्वा. अ. ७–२५)

भुजंगवर–१४ वां द्वीप व समुद्र। (त्रि. गा. ३–५–७)

भुजबली चरित्र–श्री गोमट्टस्वामी या बाहुबलिका चरित्र।

भुजाकार बन्ध–जहां पहले थोड़ी कर्म प्रकृतिका बन्ध होता था फिर अधिक अधिक हो वह भुजाकार बन्ध है, जैसे उपशांत कषाय ११ वें गुणस्थानमें १ साताका बन्ध था वहांसे गिरकर १०वेंमें आया तब ६ कर्मका बन्ध हुआ फिर नौमेमें आया तब ७ कर्मका बन्ध भया, सात आदिमें ८ का भी बंध संभव है। इसतरह ८–७–६–१ यह भुजाकार बन्ध है। (गो. क. गा. ४६३)

भुजंग–महारग जातिके व्यंतरोंमें पहला प्रकारके मध्यलोकमें रहनेवाले व्यंतर जो पृथ्वीसे १९० हजार व ४ हाथ ऊँचे रहते हैं, आयु पल्यका आठवां भाग। (त्रि. १९९–२९३)

भुजंग प्रिया–व्यंतरोंकी महत्तरी देवी। (त्रि. गा. २६१)

भुजंगा–व्यंतरोंकी महत्तरी देवी। (त्रि. गा. २७६)

भुजंगशाली–महोरग जातिके व्यंतरोंमें दूसरा प्रकार। (त्रि. गा. २६१)

भूत–भूत व्यंतरोंके ७ प्रकार हैं सुरूप, प्रतिरूप, भूतोत्तम, प्रतिभूत, महाभूत, प्रतिछन्न, आकाशभूत। (त्रि. गा. २६९)

भूत चौवीसी–भरत व ऐरावत भूतकालीन २४ तीर्थंकर देखो (प्र. जि. पृ. २६१)

भूत नैगम नय–जिस नयसे भूतकी बातमें वर्तमानकी मान्यता की जाय जैसे आज वीर निर्वाण चौदस है। (सि. द. पृ. ८)

भूतबलि–मुनि। श्रीधरसेनाचार्यके शिष्य, धवलादि ग्रन्थोंके मूल कर्ता। (श्र. पृ. १९)

भूतवर–अंतिम द्वीप व समुद्रसे इस तरफका १२ वां द्वीप व समुद्र। (त्रि. गा. ३०६–७)

भूत व्रत्यनुकम्पा–साता वेदनीय कर्मके आस्रवका कारण, समस्त प्राणियोंपर व विशेषकर व्रती जीवोंपर दया रखना। सर्वा. अ. ६–१०)

भूतानन्द–नागकुमार भवनवासियोंमें इन्द्रका नाम। (त्रि. गा. २१०); इनके मुकुटमें नागका चिह्न होता है।

भूतारण्यवन–विदेहके पश्चिम और लवण समुद्रके निकट वन। (त्रि. गा. ६६९)

भूधरदास पं०–(आगरा) (सं. १७८९), पार्श्वपुराण भाषा छन्द, भूधरविलास, जैन शतक छन्दके कर्ता। (दि. ग्रं. नं. १००)

भूधर मिश्र–(शाहगंज) चर्चा समाधान वचनिका व पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय वचनिका, यह जयपुरके

जैन हुए थे। (सं. १८७१) (दि. ग्रं. नं. १०१)

भूपाल कवि–भूपाल चतुर्विंशतिका काव्यके कर्ता। (दि. ग्रं. नं. ३०९)

भूतोत्तम–भूत व्यंतरोंमें तीसरा प्रकार। (त्रि. गा. २६९)

भूमि शयन–साधुके २८ मूल गुणोंमें २५ वां मूल गुण, जीव बाधा रहित, अल्प संस्तर रहित, असंयमीके गमन रहित, भूमिके दंडेके समान वाण वा धनुषके समान एकपसवाडे सोना। (मू. गा. ३२)

भूमि तिलक–विजयार्द्धकी उत्तर श्रेणीमें २९ वां नगर। त्रि. गा. ७०९)

भूरजी अग्रवाल पं०–यशोधर चरित्र छन्दके कर्ता। (दि. ग्रं. न. १०१)

भृंगनिभा–मेरुपर्वतके नन्दनवनमें छठी बावड़ी।

भृंगा–मेरुपर्वतके नन्दनवनमें पंचमी बावड़ी। (त्रि० गा० ६२८)

भेद कल्पना सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय–जो नय गुण व गुणीके भेद करे जैसे दर्शन ज्ञान आदि जीवके गुण हैं। (सि. द. पृ. ८)

भेदाभेद विपर्यय–कारण कार्य व भेद अभेदका उल्टा ज्ञान।

भैक्ष शुद्धि–आचार शास्त्रके अनुसार भिक्षाकी शुद्धि रखना। अंतरायका कारण होनेपर भोग न करना, यह अचौर्यव्रतकी चौथी भावना है। (सर्वा० अ० ७–६)

भैरवलाल पं०–पंचकल्याणक पूजा कर्ता। (दि. ग्रं. नं० १०५)

भोग–जो पदार्थ एक दफे भोगनेमें आवे जैसे मिठाई।

भोग कृत (भोगार्थ निदान)–आगामी भोगोंके लिये वांछा करना। (सा. अ. ४–१)

भोगङ्करी–सौमनस गजदंतके स्फटिक कूटपर बसनेवाली व्यन्तरदेवी। (त्रि. गा. ७४२)

भोग मालिनी–सौमनस गजदंतके रजत कूटपर बसनेवाली देवी। (त्रि. गा. ७४१)

भोगभूमि–जहां कल्पवृक्षोंसे इच्छित पदार्थ लेकर मनुष्य या पशु युगल सन्तोषसे जीवन बिताते हैं। असि मसि आदि कर्म नहीं करने। जहां तीन पल्यके धारी युगल उत्पन्न हों व तीन दिनके अंतरसे भोजन करे वह उत्तम भोगभूमि है। जहां दो पल्यके धारी हो व दो दिनके अन्तरसे भोजन करें वे मध्यम भोगभूमि है। जहां १ पल्यके आयुधारी, १ दिनके अन्तरसे भोजन करे वे जघन्य भोगभूमि है। उत्तम पात्र, मध्यम पात्र व जघन्य पात्रके दान क्रमसे इनमें पैदा होता है। जम्बूद्वीपके देवकुरु व उत्तर कुरुमें उत्तम, हरि व रम्यकमें मध्यम व हैमवत हैरण्यवति क्षेत्रमें जघन्य भोगभूमि है। भोगभूमिकी पृथ्वी दर्पणसम मणिमई है, चार अँगुल ऊँचे सुगंधित तृणसहित है। मधुर रस पूर्ण बावड़ी सहित है। भोगभूमियोंका एक युगल जब उत्पन्न होता है तब ही मातापिताका मरण होजाता है। वे ४९ दिनोंमें युवान होजाते हैं। उत्तम भोगभूमिवाले बेर समान, मध्यमवाले बहेड़ा समान, जघन्य भोगभूमिवाले आंवले समान अमृतमई आहार करते हैं। आयुके अन्तमें पुरुषको छींक व स्त्रीको जंभाई आती है। शरीर मेघवत उड़ जाता है। उनके मलमूत्र नहीं होता है। वज्र वृषभ नाराच संहनन व समचतुरस्र संस्थान स्त्री पुरुष दोनोंके होता है। मिथ्यादृष्टी भोगभूमिया मरकर भवनत्रिकमें व सम्यग्दृष्टी सौधर्म व ईशान स्वर्गोंमें पैदा होते हैं। भरत ऐरावतमें अवसर्पिणीमें क्रमसे पहले, दूसरे, तीसरे कालमें तीन प्रकार भोगभूमि घटती हुई रहती है तथा उत्सर्पिणीमें चौथे, पांचवें व छठे कालमें बढ़ती हुई क्रमसे जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट होती है।

(त्रि. गा. ६६३–७८५–७९१–७९२)

भोगवती–सौमनस गजदंतके लोहित कूटपर बसनेवाली व्यंतरदेवी (त्रि. गा. ७४१) तथा देवोंके इन्द्रोंकी नाट्यदेवी (त्रि. गा. २७६) महोरग जातिके इन्द्र महाकायकी ज्येष्ठ देवी।

(त्रि० गा० २८१)

भोगा–महोरग जातिके इन्द्र महाकायकी वल्लभिकादेवी (त्रि. गा. २६१); व्यन्तरदेवोंके इंद्रोंकी महत्तरीदेवी । (त्रि० गा० २७६)

भोगन्तराय कर्म–जिसके उदयसे भोगोंको भोग न सके । (सर्वा० अ० ८–१३)

भोगोपभोग परिमाण व्रत–भोग व उपभोग करने योग्य पदार्थोंकी नित्य संख्या करनी । यह तीसरा शिक्षाव्रत है । उपभोग परिभोग परिमाण व्रत ऐसा तत्वार्थसूत्रमें नाम है । यहां उपभोगका अर्थ एकवार भोगने योग्य गंधमालादि, परिभोगका अर्थ वारवार भोगने योग्य वस्त्रादि । (त. ७–२१) यम तो यावज्जीव होता है, नियम कालकी मर्यादासे होता है । (र० श्लोक ८२)

भोगोपभोग परिमाण व्रतके अतीचार–१–विषयोंका वारवार चिंतवन, २–पिछले भोगोंकी स्मृति, ३–अति लोलुपता, ४–अति तृष्णा, ५–अतिशय भोग (र० श्लो० ९०); जिसने सचित्त त्याग किया है उसकी अपेक्षा ५ अतीचार हैं–१ सचित्तको भूलसे खालेना, २–सचित्तपर सम्बंधित वस्तु खाना, ३–सचित्तसे मिली हुई खाना, ४–कामोद्दीपक पदार्थ खाना, ५–अधपका व जला हुआ पदार्थ खाना । (सर्वा अ० ७–३५)

भौम–व्यंतरदेव, चित्रावज्राकी मध्य संधिसे लेकर मेरुकी ऊँचाई तक क्षेत्रमें भी व्यंतरदेव रहते हैं । (त्रि० गा० २९६)

भ्रमका–पांचवें नर्ककी पृथ्वीमें दूसरा इन्द्रक बिला । (त्रि० गा० १९८)

भ्रांत–पहले नर्ककी पृथ्वीमें चौथा इन्द्रक बिला । (त्रि. गा. १९४)

भ्रामरी भिक्षावृत्ति–भ्रमर जैसे पुष्पोंको पीड़ा नहीं देता है इस तरह दातारको पीड़ा नहीं देते हुए साधुओंका भोजन । देखो " पंच भिक्षावृत्ति "

म

मकरन्द–पं०, तत्वार्थसूत्र वचनिकाके कर्ता । (दि. ग्रं. नं० १०४)

मक्सी पार्श्वनाथ–अतिशय क्षेत्र, मालवा रियासत ग्वालियर उज्जैन लाइन ष्टे०के पास प्राचीन मंदिर, मूलनायक पार्श्वनाथ पद्मासन श्यामवर्णा चतुर्थकाल । (या. द. पृ. १६९)

मगनबाई–जे० पी० सुपुत्री सेठ माणिकचंद हीराचंद जे० पी० जौहरी बम्बई (सं. १९८६) श्राविकाश्रम बम्बई व भारतवर्षीय दि० जैन महिला परिषदकी संस्थापिका, दि० जैन समाजमें स्त्री शिक्षा प्रचारिका ।

मघवा–वर्तमान भरतका तीसरा चक्री । (त्रि. गा. ८१५)

मघवी–छठी नरककी पृथ्वी । (त्रि. गा. १४५)

मंगरस–कर्णाटकमें हरिवंशपुराण व सम्यक्त कौमुदी सं० कर्ता । (दि. ग्रं. नं. २११)

मंगराज–कर्णाटक जैन कवि । खगेन्द्रमणिदर्पण वैद्यक ग्रन्थका कर्ता । यह विजयनगरके हरिहर राजाके समयमें हुआ है; (२) अभिनव मंगराज–(सन् १३९४) अभिनव निघण्टु कोषका कर्ता; (३) सम्यक्त कौमुदी, जयकुमार षट्पदी आदि ग्रन्थोंका कर्ता (सन् १५०८); (क. ६७, ६८, ६९)

मंगल–ज्योतिषके ८८ ग्रहोंमें ८३ वां । (त्रि. गा. ३७०) । सौमनस गजदंत पर चौथा कूट । (त्रि. गा. ७३९); "मं पापं गालयति इति" अर्थात् जो पापको गलावे या 'मंगलाति इति' जो सुखको लावे सो मंगल है । पूज्यनीय अरहंतादिकी स्तुति ग्रंथकी आदिमें या किसी कार्यके प्रारम्भमें चार प्रयोजनसे की जाती है–(१) विघ्नके नाशके लिये, (२) शिष्टाचार पालनके लिये, (३) नास्तिकताके त्यागके लिये किये हुए उपकारको याद करनेके लिये । मंगल छः प्रकार हैं–नाम मंगल–अर्हंतादिका नाम लेना, २ स्थापना मंगल–जिनबिम्बकी भक्ति, ३ द्रव्य मंगल–अरहंतादिके शरीरकी भक्ति, ४ क्षेत्र मंगल–तीर्थंकरोंके कल्याणकोंकी व सिद्धक्षेत्रादि तीर्थोंकी भक्ति, ५ काल मंगल–जिस

कालमें तप आदि क्रिया हो व मोक्ष आदि हुई हो उस दिन या समयपर पूजा करना, ६ भाव मंगल–जीव द्रव्यका व जीवके भावका चिंतवन।

(गो. जी. गा. १)

मंगल–धर्मरत्नाकर ग्रंथका कर्ता।

(दि० ग्रं० नं० २१८)

मंगलावती–सीता नदीके दक्षिण तटपर आठवां विदेहका देश। (त्रि० गा० ६८८)

मंजूषा–विदेह क्षेत्रकी छठी राजधानी।

(त्रि० गा० ७१२)

मणिकूट–रुचक पर्वतके अभ्यंतरका कूट। (त्रि० गा० ९९९) कुण्डल पर्वतपर ११ वां कूट।

(त्रि० गा० ९४५)

मणिप्रभ–कुण्डल पर्वतपर १९ वां कूट।

(त्रि० गा० ९४५)

मणिवज्र–विजयार्द्धकी उत्तर श्रेणीकी ४४ वीं नगरी। (त्रि० गा० ७०६)

मडम्ब–५०० ग्राम सहित बसती।

(त्रि. गा. ६७६)

मंडलीक–चार हजार राजाओंका स्वामी। अठारह श्रेणी (सेनाकी) का स्वामी राजा।

(त्रि. गा. ६८५)

मतिज्ञान–मतिज्ञानावरण कर्म व वीर्यांतराय क्षयोपशमसे पांच इंद्रिय या मन द्वारा सीधा पदार्थका जानना। इसके ३३६ भेद हैं। (देखो पृ. ९२ व २२९) इन्द्रिय व विषयका सम्बन्ध होने ही पहले समय दर्शन होता है फिर कुछ ग्रहण होता है। यह अवग्रह है विशेष जानना ईहा है। निश्चय होजाना अवाय है, धारणामें रहना धारणा है। ये चार मतिज्ञान ५ इंद्रिय व मनसे बहुविध आदि १२ प्रकारके पदार्थोंका होता है, इससे ४×६×१२= २८८ भेद हुए। जहां अस्पष्ट ग्रहण होता वह व्यंजन अवग्रह है वहां ईहादि नहीं होते तब ४ प्रकार इंद्रिय (मन व आंखसे व्यंजन नहीं होता) ×१२ बहु आदि पदार्थ=४८ कुल २८८+४८ =३३६ भेद। (सर्वा० अ० १–१९....)

मतिज्ञानावरण कर्म–जो मतिज्ञानको रोके।

(सर्वा. अ. ८–६)

मति अज्ञान–मिथ्यादृष्टीके कुमतिज्ञान होता है, सम्यग्दृष्टीके मतिज्ञान होता है। विना किसीके उपदेशके विष, यंत्र, पिंजरा आदिके बनानेके लिये बुद्धि कुमति है। (गो. जी. गा. ३०३)

मत्तजला–सीता नदीके दक्षिण तटपर दूसरी विभङ्गा नदी। (त्रि. गा. ६६७)

मद–घमण्ड, अहंकार–आठ मद प्रसिद्ध हैं–(१) जातिमद–माताकी पक्षका मद, हमारे मामा नाना ऐसे हैं, (२) कुलमद–पिताकी पक्षका मद, (३) धन मद, (४) अधिकार मद, (५) रूप मद, (६) बल मद, (७) विद्या मद, (८) तप मद।

(र० श्लोक २५)

मधु–भरतका तीसरा प्रतिनारायण विमलनाथस्वामीके समयमें (इ. २ पृ. ६); रावणकी लड़की कृतचित्राका पति (इ. २ पृ. ७३). मथुराका राजा रामचंद्रके समयमें (इ. २ पृ. १३३)।

मधुकैटभ–भरतके वर्तमान पांचवें प्रतिनारायण, धर्मनाथके समयमें। (इ. २ पृ. १०)

मधुपिंगल–पोदनापुरका राजा, मरकर महाकाल असुर कुमार हुआ। यज्ञमें पशुहिंसा चलानेका पापी मुनिसुव्रतनाथके समयमें (इ. २ पृ. ४२)

मधु–मदन–मधु मक्खियोंका वमन या जिसमें अनेक त्रस जंतु पैदा होते हैं व मक्खियोंको भी कष्ट दिया जाता है, मांस तुल्य अभक्ष्य है।

(पुरु० श्लोक ६९–७०)

मधुर–[illegible] (सं० १६९५) [illegible] पुराण व [illegible] कर्ता। ([illegible] ४८)

मधुसूदन–भरतक्षेत्रके वर्तमान चौथे प्रतिनारायण (इ. २ पृ. ७)

मदनकीर्ति–[illegible] कर्ता।

(दि० ग्रं० १२३)

मधुर रस नामकर्म–जिस कर्मके उदयसे शरीरमें मीठा रस हो। (सर्वा० अ० ९–११)

मधुरा–व्यंतरदेवोंके इन्द्रोंकी महत्तरीदेवी } त्रि.गा.
मधुरालाप– ,, ,, ,, } २७९

मध्य–चौथे वारुणी समुद्रका स्वामी व्यंतरदेव।
(त्रि. गा. ९६३)

मध्यमदेव–चौथे वारुणी समुद्रका स्वामी व्यंतरदेव। (त्रि० गा० ९६३)

मध्यमपद–जिस पदसे द्वादशांगवाणीका प्रमाण गिना है। सौलासै चौंतीस करोड़ तियासी लाख सातहजार आठसै अट्ठासी १६३४,८३,०७,८८८ अपुनरुक्त अक्षरोंका। (गो. जी. गा. ३३६)

मध्यलोक–देखो " तिर्यक्लोक "।

मन–जिसके द्वारा शिक्षा ग्रहण हो, तर्कवितर्क हो, संकेत समझा जावे। कारण कार्य विचार हो वह दो प्रकारका है–द्रव्य मन, भाव मन। हृदयस्थानमें आठ पाखण्डीके कमलके आकार मनोवर्गणासे बना हुआ द्रव्य मन है। ज्ञानावरण वीर्यान्तरायके क्षयोपशमसे मनद्वारा जाननेकी शक्ति लब्धि है व उधर उपयोगका लगना सो उपयोग है। यह लब्धि उपयोग भाव मन है। (सर्वा. अ. ९–१९)

मनपर्याप्ति–मनोवर्गणाके परमाणुओंको हृदय स्थानमें आठ पांखुरीके कमलाकार मनरूप परिणमावनेको तथा उसके द्वारा विचार करनेको कारणभूत जीवकी शक्तिकी पूर्णताकी प्राप्ति। (जै० सि० प्र० नं० ३१४)

मनक–दूसरे नरककी पृथ्वीमें चौथा इन्द्रक विला
(त्रि. गा. १९९)

मनमोद–पं० अग्रवाल–यशोधर चरित्र छन्दके कर्ता। (दि. ग्रं. नं० १०७)

मनरंगलाल पं०–चौवीसी पूजा, नेमिचंद्रिका छन्द, सप्त व्यसन चरित्र, सप्तऋषि पूजा आदिके कर्ता। (दि. ग्रं. नं. १०८)

मनोवर्गणा–एक जातिके पुद्गलके सूक्ष्म स्कंध जिनसे द्रव्य मन बनता है।

मनसुखसागर–काष्ठासंघी शिखर विलास छंदके कर्ता। (दि० ग्रं० नं० १०९)

मनोगेह दीपक–नेमिनाथ पुराण कनड़ीके कर्ता।
(दि० ग्रं० नं० ११३)

मनःपर्यय ज्ञान–जो ज्ञान दूसरेके मनमें तिष्ठे हुए रूपी पदार्थको जो इसने पहले चिंतवन किया था या आगामी चिंतवन करेगा व संपूर्ण नहीं चिंतवन किया है उसको प्रत्यक्ष जाने। पराए मनमें तिष्ठता सो मन है उसको पर्येति। अर्थात् जाने सो मनःपर्ययज्ञान है। यह ज्ञान ऋद्धिधारी मुनिको ही होता है। यह ज्ञान द्रव्य मनके स्थानमें जो आत्म प्रदेश हैं वहांसे प्रगट होता है।
(गो. गा. ४३८–४४२)

मनःपर्यय ज्ञानावरण कर्म–वह कर्म जो मनःपर्ययज्ञानको आवरण करे। (सर्वा. अ. ८–६)

मनःशिला–मध्यलोकमें अंतके १६ द्वीपों व समुद्रोंमें पहला द्वीप व समुद्र (त्रि. गा. ३०५–७); इसमें यक्ष व्यन्तरोंके इन्द्रोंके नगर हैं।
(त्रि. गा. २८३)

मनु–हरएक अवसर्पिणीके तीसरे कालके अंतमें व उत्सर्पिणीके दूसरे कालमें १४ कुलकर होते हैं। ये सब क्षायिक सम्यग्दृष्टी मनुष्यायु बांधे हुए जन्मते हैं, इनमें किन्हींको जातिस्मरण व किन्हींको अवधिज्ञान होता है। देखो शब्द " कुलकर "

मनुष्य–जो नित्य ही मनन करें, कर्तव्य अकर्तव्य जानें, जिनकी मनकी शक्ति प्रबल हो, दृढ़ उपयोगके धारी हो। (गो. जी. गा. १४९) ये सब पंचेंद्रिय सैनी होते हैं। ढाई द्वीपसे बाहर न जन्मते हैं, न जाते हैं। आर्य खण्डमें उत्पन्न होनेवाले आर्य व म्लेच्छ खण्डमें उत्पन्न होनेवाले म्लेच्छ कहलाते हैं।

मनुष्य आयु कर्म–जिसके उदयसे मनुष्य देहमें रहे। (सर्वा० अ० ८–१०)

मनुष्य गति—कर्म जिसके उदयसे मनुष्यके समान आकार आदि अवस्था बने।
(सर्वा. अ. ८–११)

मनुष्य गत्यानुपूर्वी—जिस कर्मके उदयसे मनुष्य गतिमें जाते हुए पूर्व शरीरके समान आत्माके प्रदेशोंका आकार रहे। (सर्वा. अ. ८–११)

मनुष्य चतुष्क—मनुष्यगति, मनुष्य गत्यानुपूर्वी, औदारिक शरीर व औदारिक अंगोपांग चार कर्म प्रकृति।

मनुष्य योनि—गुण योनि १४ लाख।
(सर्वा. अ. २–३१)

मनुष्य लोक—४५ लाख योजन व्यासवाला ढाई द्वीप मानुषोत्तर पर्वतसे इस तरफ जो पुष्कर द्वीपके मध्यमें है। इसमें जंबूद्वीप, धातुकी खण्ड द्वीप, पुष्करार्द्ध, लवण व कालोदधि समुद्र है।
(त्रि. गा. ९३६)

मनोगुप्ति—मनको अपने आधीन रखना, स्वेच्छासे प्रवृत्त न होने देना, विषय सुखकी अभिलाषासे हटाना। (सर्वा० अ० ९–४)

मनोभद्र—यक्ष व्यंतरोंका चौथा प्रकार। (त्रि. गा. २६५)

मनोरम—किन्नर जातिके व्यंतरोंका सातवां प्रकार।
(त्रि. गा. २५७)

मनोदुःप्रणिधान—मनका दुष्ट वर्तन। मनमें सांसारिक विचारोंको लाना, सामायिक शिक्षाव्रतका पहला अतिचार। (सर्वा. अ. ७–३३)

मनो निसर्गाधिकरण—मनका वर्तन। अजीवाधिकरणका एक भेद। (सर्वा. अ. ६–९)

मनोमुंड—मनको अशुभ ध्यानसे व कामेंद्रिय ध्यानसे रोकना। (मू. गा. १२१)

मनोज्ञ—[illegible] साधु।
(सर्वा. अ. ९–२४)

मनोहर—महोरग व्यंतरोंका छठा प्रकार। (त्रि. गा. २६१) यक्ष व्यंतरोंका १२ वां भेद।
(त्रि. गा. २६६)

मनोहर—पं०—समयसार टीका, त्रिलोकसार पूजा, चतुःसंधान काव्यके कर्ता। (दि. ग्रं. नं. २१९)

मनोहरदास—सांगानेरी, पं., धर्म परीक्षा छंदके कर्ता। (दि. ग्रं. नं. ११०)

मंत्र दोष—मंत्रका लालच देकर वस्तिका ग्रहण करें। (म० ९६)

मन्दर—मेरु पर्वत पुष्करार्द्ध द्वीपमें; रुचिकगिरिकी पश्चिम दिशामें तीसरा कूट। (त्रि. ९९२); कुंडल पर्वतपर १६ वां कूट। (त्रि. गा. ९४५) विजयार्द्धकी उत्तर श्रेणीमें ३० वां नगर। (त्रि. गा. ७०९) मेरुपर्वतके नन्दनवनमें दूसरा कूट (त्रि० गा० ६२९) स्वर्गोंके उत्तर इन्द्रोंके विमानकी पूर्वदिशाका विमान। (त्रि. गा. ४८२)

मंदारगिरि—सिद्धक्षेत्र—विहार प्रांत भागलपुरसे दक्षिण १६ कोस सवलपुर [illegible] स्टेशन मंदारहिलसे १ मील पर्वतपर प्राचीन मंदिर, चरणचिह्न श्री वासपूज्यस्वामी निर्वाणके।
(मा. द. प्र. २१६)

मन्नालाल—पं०, मांगाका, चारित्रसार वचनिका कर्ता। (सं० १८७१) (दि. ग्रं. १०५)

(२) जैनाका—दिल्ली (सं० १९१६) प्रद्युम्नचरित्र वचनिका कर्ता। (दि. ग्रं. १०६)

मयूरग्रीव—भरतके आगामी [illegible] प्रतिनारायण। (त्रि. गा. ८८०)

मरण—प्राणोंका [illegible] होना। जो [illegible] देव व नारकियोंके। (त्रि. गा. [illegible])

मरणभय—[illegible]

मरणांत—देखो "[illegible]"

मरण संस्कार—[illegible]

कन्धोंपर लेजावें। यदि कोई ब्रह्मचारी या धर्मात्मा गृहस्थ मरे तो होमकी हुई अग्नि लेजाना चाहिये। आधा मार्ग होजाय तब प्रेतको कहीं रक्खे। उसके सम्बन्धी मुंह खोलकर मुँहमें कुछ पानी सींचे इससे प्रयोजन यह है कि उसकी जांच हो कि कोई वेहोशी आदि तो नहीं है। फिर मशानमें लेजाकर चंदन और काष्टकी लकड़ियांसे बनी हुई चितापर शवका मुख पूर्व या उत्तर दिशाकी तरफ करके रख देवे और तब घी और दूध सात स्थानोंपर डाले—मुँह, दो नाकके छेद, दो आंख, दो कान; व तिल अक्षत मस्तकपर डाले। यह भी परीक्षार्थ ही है। फिर दग्ध करनेवाला तीन प्रदक्षिणा देकर चिताके एक तरफ १ हाथ चौड़ा खेरकी लकड़ीका और दूसरी ओर ईंधनका मण्डल कर देवे। फिर अंगीठीमें लाई हुई अग्निसे अग्नि जलाकर घीकी आहुति देवे। जब काष्ट रक्खे तब मंत्र पढ़े—"ॐ ह्रीं ह्रः काष्ट संचयं करोमि स्वाहा।" तब प्रेतको काष्टपर रक्खे तब कहे—"ॐ ह्रीं ह्रौं झौं अ सि आ उ सा काष्ट शवं स्थापयामि स्वाहा।" जब अग्नि लगावे तब कहे। ॐ ॐ ॐ रं रं रं रं अग्नि संधुक्षणं करोमि स्वाहा।

फिर तालावमें जाकर स्नान करे। दग्ध करनेवाला सिर मुंडन करे। कन्याके मरणमें सिर मुंडनकी जरूरत नहीं है। दूसरे दिन चितापर दूध डाले, तीसरे दिन अग्निको शांत करे, चौथे दिन हड्डी जमा करे। जलानेवाला १-४ दिन व अन्य कुटुम्बी १ दिन तक शौच पाले व व्रत रक्खे। देव पूजा व गृह कार्य न करे, शास्त्र न स्पर्शे पान न खावे, पलंगपर न सोवे, क्षौर न करावें, सभामें न जावें, दूध घी न लेवें, एक दफे जीमे। ब्रह्मचर्य पालें, देशांतर न जावें, तेल न लगावें, तासादि न खेलें, धर्मध्यानमें समय वितावें, दाह क्रियाका अधिकार करते पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र, इनकी संतान व जिनको १० दिन तक पातक हो। कोई सम्बन्धी न हो तो पतिकी दाह क्रिया पत्नी व पत्नीकी पति करे, नहीं हो सजातीय करे। हड्डी मंगल, शनि, शुक्र, व रविको एकत्र न करे। हड्डीको ३॥ हाथका गड्ढा खोदकर गाड़ देना चाहिये। नदीमें न वहाना चाहिये। तेरहवे दिन कुटुम्बी जन देव पूजा करे व १२ पात्रोंको जिमाकर भोजन करना चाहिये। क्योंकि उनको १२ दिन दानका अंतराय रहा है। (गृ. अ. ११)

मरणाशौच—मरणका अशौच सामान्यसे १२ दिनका है। बच्चा जीता पैदा होकर नाभि काटनेसे पहले मरे तो माताको १० दिनका, पितादिको तीन दिनका पातक है। यदि बच्चा मरा पैदा हो व नाभि काटनेके बाद मरे तो माता पिता आदिको १० दिनका पातक लगेगा। नाम रखनेके पहले मरे तो गाड़े, अन्न प्राशन होने तक गाड़े या जलावे। दांत निकलनेपर मरे तो जलावे, व दांतवाले बालकोंका मरणका अशौच मा बाप व चौथी पीढी तकको १० दिनका, शेषके निकट सम्बंधियोंको एक दिन तक, दूरवालोंको स्नान मात्र। मुण्डनके बाद बालक मरे तो मा बाप आदिको १० दिन, निकटवालोंको पांच दिन, घरवालोंको एक दिनका अशौच होता है। ८ वर्षसे ऊपरका मरे तो मा बाप व चौथी पीढी तकका १० दिन, पांचवीं पीढीवालोंको ६ दिनका, छठीको ४ दिन, ७ वींको ३ दिन शेषको स्नानमात्र। देशांतरमें भी मरण जब सुने तब सुननेके दिनसे १० दिनका अशौच होगा। मुण्डन होनेके पहले बच्चा मरे तो मा बाप भाई बन्धुको स्नान मात्रका, मुण्डनसे आठ वर्षके पहले तक एक दिन फिर विवाह होने तक तीन दिनका अशौच, विवाहके पीछे माता पिताको बच्चेके मरनेका दो दिन एक रात्रिका व अन्य भाई बंधु स्नान करें, पतिको १० दिन। गर्भ तीसरे या चौथे मास गिरे तो माताको उतने दिनका जितने मासका गर्भ है। पितादि स्नान मात्र। यदि पांचवे छठे महीने पात हो तो माताको उतने मासको, पितादिको १ दिनका होगा। सातवें माहसे आगे प्रसूते समझी जाती

है तब मरे तो १० दिनका पातक होता। विशेष देखो (गृ. अ. २३)

मरणाशंसा–समाधिमरण करनेवालेका दूसरा अतीचार, जल्दी मरनेकी इच्छा न करे।

(सर्वा. अ. ७–३७)

मरु–किंपुरुष जातिके व्यंतरोंमें सातवां प्रकार।

(त्रि. गा. २५९)

मरुत्–सौधर्म ईशान स्वर्गोंका १२ वां इंद्रक विमान। (त्रि. गा. ४६४)

मरुत–लौकांतिक देवोंकी एक जाति।

(त्रि. गा. ५३८)

मरुत्प्रभ–किंपुरुष जातिके व्यंतरोंमें नौमा प्रकार। (त्रि. गा. २५९)

मरुदेव–व्यंतरोंके इन्द्रोंमें रथोंकी सेनाका प्रधान।

(त्रि. गा. २८१)

मरुदेव–किंपुरुष जातिके व्यंतरोंमें आठवां प्रकार। (त्रि. गा. २५९), १२ वें कुलकर वर्तमान भरतके। (त्रि. गा. ७९३)

मल दोष–देखो " चतुर्दश मल दोष "

मल परिषह–शरीर मैला होनेपर साधु ग्लानि न करें। (सर्वा. अ. ९–९)

मलिन सम्यग्दर्शन–वेदक या क्षयोपशम सम्यक्दर्शन जिसमें पांच मल या अतिचार होना सम्यक्त प्रकृतिके उदयसे संभव है। (१) शंका, (२) कांक्षा, (३) विचिकित्सा (ग्लानि) (४) मिथ्यादृष्टि प्रशंसा, (५) मिथ्यादृष्टि संस्तव।

(गो. जी. गा. २५)

मल्लि–मुनिसुव्रत तीर्थंकरके मुख्य गणधर।

(ह. २ भ. ३६)

मल्लिनाथ तीर्थंकर–भरतके वर्तमान १९ वें तीर्थंकर। इक्ष्वाकु वंशी मिथिलापुरके राजा व रानी प्रजावतीके पुत्र, सुवर्ण वर्ण शरीर, आयु ५५००० वर्ष, कुमारे रहकर १०० वर्षकी आयुमें दीक्षा ली। केवलज्ञानी हो सम्मेदशिखरसे मुक्त हुए।

(इति. १ भ. ५२)

मल्लिनाथ पुराण–सं० मुद्रित सटीक।

मल्लिभूषण–भट्टारक (सं० १५१०) मेवद पद्मावती कल्प, नागकुमार चरित्रादिके कर्ता।

(दि० ग्रं० नं० २१९)

मल्लिषेण–उभय भाषा चक्रवर्ती, (सं० १०४३) पद्मावती कल्प, आदिपुराण, नागकुमार चरित्र, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय टीका सं०के कर्ता।

(दि. ग्रं. नं. २१६)

महर्द्धिक–विजयार्द्धकी दक्षिण श्रेणीका चौथा नगर, दूसरा नाम बहुकेतु। (त्रि. गा. ६९७); महा ऋद्धिधारी उत्तम देव।

महर्षि पर्युपासक–तीर्थंकरोंके गणधरोंसे लेकर महान ऋषियोंकी पूजा। (प्र. सा. पृ. ४१)

महाकल्प्य–अंग बाह्य वाणीका ग्यारहवां प्रकीर्णक जिसमें जिनकल्पी आदि महा मुनियोंके आचरने योग्य आचारका कथन हो। (गो. जी. ३६८)

महा काय–महोरग जाति व्यंतरोंका तीसरा प्रकार। (त्रि. गा. २६१)

महा कालनिधि–चक्रीकी जो भाजन देती है।

(त्रि० गा० ६८२)

महाकाल–वर्तमान भरतके छठे नारद।

(त्रि० गा० ८३४)

महाकाल–कालोदक समुद्रका स्वामी व्यंतरदेव।

(त्रि० ९६९)

महाकाल–पिशाच व्यंतरोंका ४ था प्रकार।

(त्रि. गा. २७१)

महाकांक्षा–पहले नर्कके सीमंत इंद्रककी पश्चिम दिशाका बिला। (त्रि. १५८)

महा कूट–विजयार्द्धकी दक्षिण श्रेणीका ३९ वां नगर। (त्रि० गा० ७००)

महागन्ध–चौथे क्षीर समुद्रका स्वामी व्यंतर देव। (त्रि. गा. ९६४)

महाग्रह–ज्योतिषके ८८ ग्रहोंमें [illegible] वां ग्रह।

(त्रि. गा. [illegible])

महाघोष—भवनवासी विद्युतकुमारोंके इंद्र। (त्रि. गा. २१०)

महाकीर्ति—आचार्य सं. ६९६ मांडलपुर (मालवा)

महाचंद्र—(सं० ११११) आचार्य (दि.ग्रं. नं. २१९); पंडित, तीन चौवीसी पाठके कर्ता; सीकरवाले क्षुल्लक महापुराण सं० प्रा०, भाषा सामायिक पाठ, आदिके कर्ता। (दि. ग्रं. नं. १११–११२)

महाज्वाल—विजयार्द्धकी उत्तर श्रेणीमें ४० वें नगर। (त्रि. गा. ७०६)

महातम प्रभा—सातवें नर्ककी पृथ्वी ८००० योजन मोटी। (त्रि. गा. १४४–१९१)

महादुःखा—तीसरे नर्कके तप्त इन्द्रक बिलेके पश्चिम तरफका बिला। (त्रि. गा. १६०)

महादेह—व्यन्तरोंमें पिशाच जातिका १२ वां प्रकार। (त्रि. गा. २७१)

महानिच्छा—दूसरे नर्कके ततक इन्द्रक बिलेका दक्षिण तरफका बिला। (त्रि. गा. १६०)

महानिरोधा—चौथे नर्कके आरा इन्द्रककी उत्तर दिशाका बिला। (त्रि. गा. १६१)

महा नीला—छठी पृथ्वीके हिमक इंद्रकका दक्षिणका बिला। (त्रि. गा. १६२)

महा पद्म—जंबूद्वीपके महा हिमवन् कुलाचल पर्वतपर द्रह, (त्रि. गा. ५६७) भरतके आगामी उत्सर्पिणीमें १६ वां कुलकर या प्रथम तीर्थंकर राजा श्रेणिक या बिम्बसारका जीव जो श्री महावीर भगवानके समवसरणमें तीर्थंकर नामकर्म बांध चुका है। महापद्मकी आयु ११६ वर्ष सात हाथका शरीर। (त्रि. गा. ८७१)

महा पद्मा—विदेहके ३२ देशोंमें सीतोदा नदीके दक्षिण तट आठमें तीसरा देश (त्रि. गा. ६८९), असुरकुमारके वैरोचन इंद्रकी दूसरी ज्येष्ठ स्त्री देवी। (त्रि. गा. २३६)

महा पंका—छठे नर्कके हिमक इंद्रककी उत्तरदिशाका बिला। (त्रि० गा० १६२)

महा पर्व—एक वर्षमें ६ हैं—तीन वार अष्टाह्निका—कार्तिक, फागुण व आषाढके अंतके ८ दिन व तीनवार दशलाक्षिणी—भादो, माघ, चैत्र सुदी पंचमीसे चौदस तक। भादो सुदी १४ अनंतचौदस सबसे बड़ा पर्व दिन है। (जैन बाल गुटका पृ० १०९)

महा पिपासा—पहले नर्कके सीमंत इन्द्रककी उत्तर दिशाका बिला। (त्रि० गा० १९९)

महा पुंडरीक—अंग बाह्य जिनवाणीका १२वां प्रकीर्णक जिसमें इंद्र प्रतीन्द्रादि अहमिंद्र पदमें उपजनेके कारण तपश्चरणादिका वर्णन है (गो० जी० गा० ३६८); जंबूद्वीपके रुक्मी पर्वतपर द्रह। (त्रि० गा० ५६७)

महा पुराण—आदिपुराण सं० श्री जिनसेनाचार्य कृत, भाषा दौलतराम व पं० लालाराम मुद्रित।

महापुरी—विदेह क्षेत्रमें १९ वीं राजधानी। (त्रि० गा० ७१४)

महापुरुष—किंपुरुष व्यंतरोंमें चौथा प्रकार। (त्रि० गा० २५९)

महाप्रभ—कुण्डल पर्वतपर ८ वां कूट। (त्रि. गा. ९४५); छठे घृतद्वीपका स्वामी व्यंतरदेव। (त्रि. गा. ९६२)

महाबल—भरतके आगामी उत्सर्पिणीके छठे प्रतिनारायण। (त्रि. गा. ८८०)

महा मत्स्य—सबसे बड़ी जीवकी अवगाहनाधारक मत्स्य स्वयंभूरमण अंतिम समुद्रमें १००० योजन लम्बा।

महाभीम—वर्तमान भरतके दूसरे नारद। त्रि. गा. ८३४); राक्षस व्यन्तरोंमें दूसरा प्रकार। (त्रि. गा. २६७)

महाभुजा—व्यंतरोंके १६ इंद्रोंमें महत्तरी देवी। (त्रि. गा. २७८)

महामंडलीक—८००० राजाओंका स्वामी! एक राजा १८ श्रेणी दलका स्वामी होता है। (त्रि. गा. ६८५)

महायश—श्री महावीर निर्वाणके पीछे ९६२ वर्ष पीछे ११८ वर्षके भीतर आचारांगके ज्ञाता चौथे महामुनि । (श्र० पृ० १४)

महाराक्षस—राक्षस व्यंतरोंका छः वां प्रकार । (त्रि. गा. २६७)

महाराजा—१००० राजाओंका स्वामी । त्रि. गा. ६८४)

महारुद्र—वर्तमान भरतके नारद चौथे ।

महाविद्या—दूसरे नर्कके तरक इंद्रककी उत्तर तरफका बिला । (त्रि. गा. १६०)

महाविमर्दन—पांचवे नर्कके तमक इन्द्रककी उत्तर तरफका बिला । (त्रि. गा. १६१)

महावत्सा—विदेहके ३२ देशोंमें सीतोदा नदीके दक्षिण तटपर तीसरा देश आठमेंसे । (त्रि. गा. ६८८)

महावप्रा—विदेहके ३२ देशोंमें सीतोदा नदीके उत्तर तटपर तीसरा देश आठमेंसे । (त्रि० गा० ६९०)

महावीर—वर्तमान भरतके २४वें तीर्थंकर नाथवंशी राजा सिद्धार्थ त्रिशलाके पुत्र, सात हाथ शरीर, ७२ वर्ष आयु सुवर्ण सम शरीर, कुंडपुर जन्म (विहार प्रांत), ३० वर्षकी कुमारवयमें साधु । १२ वर्ष तप फिर केवलज्ञान लाभ कर अर्हंत हुए । मुख्य शिष्य गौतम गणधर, ३० वर्ष धर्मोपदेश देकर विहारके पावापुर स्थानसे मोक्ष हुए । आज २४५७ वर्ष हुए । सन्मति, वीर, अतिवीर, वर्द्धमान भी नाम हैं । बौद्धोंके ग्रंथोंमें नातपुत्त (नाथवंशी पुत्र लिखा है ।) यज्ञोंमें पशु बलि होना महावीरस्वामीके उपदेशसे बंद हुआ । प्रभुने वही धर्म बताया जो पहलेके तीर्थंकरोंने बताया था । (उत्तरपुराण, महावीरपुराण)

महावीर आचार्य—गणितसार संग्रहके व ज्योतिष पटलके कर्ता । (दि. ग्रं. २१७)

महावीर गणितसार संग्रह—गणितकी सं० प्रतके महावीराचार्य कृत मुद्रित, मद्रास ।

महावीरजी अतिशय क्षेत्र—चांदनगांवमें, जैपुर राज्यमें महावीररोड स्टेशनसे ४ मील । यहां प्राचीन प्रतिमा श्री महावीरस्वामीकी ३ फुट पद्मासन है । बड़ी सुन्दर है । गूजर मैंना जाति भक्ति भी करती है । (या० द० पृ० १३६)

महावीर पुराण—सकलकीर्ति कृत भाषा मुद्रित

महावीराष्टक—पं० भागचंद कृत मुद्रित ।

महाव्रत—साधुके पालने योग्य पांच व्रत । अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, परिग्रह त्याग । (सर्वा. अ. ७–२)

महाव्रती—महाव्रतोंको पालनेवाले साधु २८ मूलगुण धारी ।

महाशंख—लवण समुद्रकी पश्चिम दिशाके पातालकी एक तरफ पर्वत । (त्रि. गा. ९०६)

महाशलाका कुण्ड—देखो (प्र. जि. पृ. ९०)

महाशुक्र—दसवां स्वर्ग । (सर्वा. अ. ७–१९)

महाश्रावक—गुरुओंसे तत्व स्वरूप सुननेवाला व दर्शन प्रतिमा तक श्रावक फिर महाश्रावक जिसमें ७ गुण हों । (१) सम्यग्दर्शनसे शुद्ध हो, (२) पांच अणुव्रत निर्दोष पालता हो, (३) सात शील-धारी हो, (४) संयममें तत्पर हो, (५) जैन शास्त्र ज्ञाता हो, (६) गुरु–सेवामें लीन हो, (७) दया आदि सदाचारका पालक हो । (सर्वा. अ. ९–५६)

महासत्ता—समस्त पदार्थोंके अस्तित्व गुणको ग्रहण करनेवाली सत्ता—एक महासत्ता । (जै. सि. प्र. नं. १९१)

महासेन—धर्मशर्माभ्युदय काव्य, प्रद्युम्न काव्य व महापुराणके कर्ता, सेनसंघ । (दि. ग्रं. २१९)

महासेना—सौधर्मादि दक्षिण इन्द्रोंकी कक्षोंकी सेनाकी प्रधान देवी । (त्रि. गा. ४९०)

महा सौमनस—मेरुकी एक विदिशामें गजदंत पर्वत (त्रि० गा० ६६३); मेरु पर्वतका तीसरा वन, नीचे भद्रशाल वन है फिर ५०० योजन ऊपर नंदनवन है फिर ६२५०० योजन ऊपर सौमनस वन है । फिर छत्तीसहजार

योजन ऊपर पांडुकवन है। ५०० + ६२५०० + ३६००० = ९९००० योजन ऊंचा मेरु है १०० योजन नीचे जड़ है। ४० योजनकी चोटी है। (त्रि० गा० ६०७)

महास्वर–गंधर्व व्यंतरोंका सातवां प्रकार।
(त्रि० गा० २६३)

महाहीमवान–जंबूद्वीपमें दूसरा कुलाचल हैमवत क्षेत्रके उत्तरमें चांदीके रंग समान। इसपर महापद्म द्रह है। (त्रि० गा० ५६५–६६); महाहिमवन कुलाचलपर दूसरा कूट। (त्रि. गा. ७२४)

महीचन्द्र–(सं० ९७४) आचार्य। दि. ग्रं. नं. २२१).

महूर्त (मुहूर्त)–दो घड़ी या ४८ मिनट।

महेन्द्रपुर–विजयार्द्धकी उत्तर श्रेणीमें ५५ वां नगर। (त्रि. गा. ७०७)

महेन्द्र कीर्ति–(सं० १७९२) भट्टारक दिहलीमें (दि. ग्रं. २२१); (२) सर्व दोष प्रायश्चित्तके कर्ता।
(दि. ग्रं. २२२)

महैश्वर्य–महोरग जातिके व्यंतरोंका आठवां प्रकार। (त्रि. गा. २६१)

महोरग–व्यंतरोंकी तीसरी जाति। इनका वर्ण श्याम है। ये १० प्रकारके हैं–१ भुजंग, भुजंगशाली, महाकाय, अतिकाय, स्कंधशाली, मनोहर, अशनिजय, महैश्वर्य, गंभीर, प्रियदर्शी इनके इन्द्र महाकाय अतिकाय हैं। (त्रि. गा. २५१–२६१)

मागध–द्वीप जो भरत, ऐरावतके समुद्र व सीता व सीतोदा नदीके तीर जलमें है। इसको चक्रवर्ती साधते हैं। इसका स्वामी भरतके दक्षिण तट संख्यात योजनपर द्वीप है, मागधदेव है।
(त्रि. गा. ६७८–९१२)

माघचन्द्र–आचार्य सं. ११४० (दि.ग्रं. २२४)

माघनन्दि–(१) अर्हद्बलीके शिष्य, सं० २६ संदेता जयमालके कर्ता, (२) आचार्य सं० १३६ (दि. ग्रं. नं० २२६); (३) भट्टारक–श्रावकाचारके कर्ता; (४) श्रावकाचार समुच्चय सूत्रके कर्ता।
(दि. ग्रं. नं० ४२४)

माघवी–सातवें नर्ककी पृथ्वी (त्रि.गा. १४५) ८००० योजन मोटी, एक ही पटल है, पांच बिले हैं।

मांगीतुंगी सिद्धक्षेत्र–बम्बई प्रांत नाशिक जिला मनमाड स्टेशनसे ४० मील करीब दो पर्वत अहांसे (ग्राम भीलवाडासे १ मील) श्री रामचंद्र, हनूमान, सुग्रीव, गवय, गवाख्य, नील, महानील व ९९ करोड़ मुनि मुक्ति पधारे हैं। यहां ८ वें बलदेवने भी तप किया था। (या. द. पृ. १९८)

माणवकनिधि–चक्रीकी नौ निधिमेंसे एक जो, आयुध देती है। (त्रि. गा. ६८१)

माणिकचन्द–(१) सप्तव्यसन चरित्रके कर्ता (दि. ग्रं. २२८); (२) नंदिसंघके आचार्य सं० ९६९ (दि. ग्रं. २२९); (३) पं०, समाधिशतक वचनका व माणक विलासके कर्ता। (दि. ग्रं. ११३); (४) दानवीर सेठ बम्बई (सं० १९७०) दि. जैन बोर्डिंगोंके व स्याद्वाद महाविद्यालय काशीके संस्थापक। भा. दि. जैन तीर्थक्षेत्र कमेटीके महामंत्री, लक्षोंका दान करनेवाले।

माणिक्यनन्दि–परीक्षामुख सूत्रके कर्ता।
(दि. ग्रं. ४८४)

माणिभद्र–ऐरावतके विजयार्द्धपर पांचवां कूट व भरतके विजयार्द्धपर छठा कूट (त्रि.गा. ७३२–३) यक्ष व्यन्तरोंका पहला भेद व यक्षोंका इन्द्र।
(त्रि. गा. २६१–२७४)

मात्सर्य–ईर्षाभावसे किसीको न पढ़ाना, ज्ञानावरणीय कर्म आस्रवका हेतु। (सर्वा. अ. ६–१०)

मातलि–सौधर्मादि दक्षिणेन्द्रकी रथ सेनाका नायकदेव। (त्रि. गा. ४९६)

माथुर संघ–वि० सं० ९५३ में मथुरामें रामसेनाचार्यने स्थापित किया। इसने पीछी रखनेका मुनिको निषेध किया व अपने संघ द्वारा प्रतिष्ठित प्रतिमाको अति महत्व दिया।
(दर्शनसार गा० ४०–४१)

माधवचंद्र-आचार्य सं० ९९९।
(दि. ग्रं. नं. २३१)

माधवचंद्र देव-मुनि, क्षपणासार, त्रिलोकसार टीका कर्ता। (दि. ग्रं. नं. २३०; नेमिचंद्र सि० चक्रवर्तीके शिष्य। (गो. क. गा. ३९६)

माधवानन्द-द्विसंधान काव्य टीकाके कर्ता।
(दि. ग्रं. नं० २३२)

माधुकरी भिक्षावृत्ति-(भ्रामरी वृत्ति) "देखो पंच भिक्षावृत्ति" मधुकर जैसे पुष्पोंसे रस लेते हुए पुष्पोंको नहीं कष्ट देता है वैसे साधु भिक्षा लेते हुए दातारको कष्ट नहीं देते हैं।

माध्यस्थ भावना-रागद्वेष रहित, अपेक्षा रहित भाव जो अविनयी, अपने धर्मसे विमुख, हठी हैं उनपर व्रतीजन रखते हैं। (सर्वा. अ. ७-११)

माध्याह्निक पूजन-मध्याह्नके समय पूजन।

मान-कषाय-घमंड करना-अनंतानुबन्धी मान सम्यक्तको रोकता है, अप्रत्याख्यानावरण देशव्रतको, प्रत्याख्यानावरण सकल चारित्रको, संज्वलन यथाख्यात चारित्रको रोकता है। अनुभाग या मैलको आत्माके उपयोगमें प्रगट करनेकी अपेक्षा इसके चार भेद अन्य हैं-१ तीव्रतम या उत्कृष्ट शक्ति लिये मान पाषाणके खंभ समान घने कालमें भी विनयरूप न होय, २ तीव्र या अनुत्कृष्ट-शक्ति लिये मान अस्थिके समान जो कठिनतासे नम्र हो, ३ मंद या अजघन्य शक्ति लिये काठके समान जो थोड़े काल पीछे नम्र हो, ४ मंदतर व जघन्य शक्ति लिये मान बेतके समान जो तुर्त नम्र होजावे। ये चार प्रकार शक्तियां क्रमसे नरक, पशु, मनुष्य या देवगतिकी कारण हैं। देखो "कषाय"। मान या माप दो प्रकार है-लौकिक, लोकोत्तर। लौकिकके ६ भेद हैं। (१) मान-[illegible] आदिसे भर मापना, (२) उन्मान-तराजूसे तोलना, (३) अवमान-चुल्लू आदिसे मापना, (४) गणिमान-एक दो तीन चार गिनती, (५) प्रतिमान-रत्ती माशा आदिसे तौलना, (६) तत्प्रतिमान-अंग देखकर घोड़े आदिका मोल करना। लोकोत्तर मान चार प्रकार। (१) द्रव्य-जघन्य एक परमाणु उत्कृष्ट सर्व द्रव्य समूह, (२) क्षेत्र-जघन्य एक प्रदेश उत्कृष्ट सर्व आकाश, (३) काल-जघन्य एक समय उत्कृष्ट सर्व काल, (४) भाव-जघन्य सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तकका पर्याय नामा श्रुतज्ञान उत्कृष्ट केवलज्ञान। विशेष देखो संख्यामान, अंक विद्या। (त्रि. गा. ९-१२)

मानतुंगसूरि-भक्तामर स्तोत्रके कर्ता।
(दि. ग्रं. नं० २३३)

मानतुंग भ०-चिंतामणि कल्प, उपसर्ग हरस्तवनके कर्ता। (दि. ग्रं. नं० २३४)

मानी-मेरु पर्वतके नंदनवनमें पूर्व दिशाके जिन मंदिरका नाम। (त्रि. गा. ६१९)

मानस्तम्भ-वह स्तम्भ जिनके दर्शनसे मान गल जाता है। यह स्तम्भ अकृत्रिम जिन मंदिर व समवसरणमें होते हैं व मंदिरोंके आगे भी बनाए जाते हैं।

इसके पुराने दृष्टांत राजपूतानाके चित्तौड़के किलेपर ८४ फुट ऊंचा मानस्तंभ है जिसपर बहुतसी दि० जैन प्रतिमाएं अंकित हैं। ऐसे मानस्तम्भ दक्षिण कनड़ा, मूडबिद्री, कारकल व श्रवणबेलगोला मैसूरमें बहुत हैं। व जिन मंदिरके आगे बनाने चाहिये, इनके ऊपर चतुर्मुख चार चार दि० जैन प्रतिमा विराजित चाहिये। भवनवासी देवोंके यहां चैत्य वृक्ष हैं जिनके नीचे एक एक दिशामें पांच पांच जिनबिंब विराजित हैं। व इनके दिशामें एक एक प्रतिमाके आगे रत्नमई [illegible] मानस्तम्भ होता है, इनके ऊपर [illegible] जिन प्रतिमा विराजित हैं। [illegible]

तीर्थंकरदेवके योग्य आभरणसे भरे पिटारे हैं, यहींसे तीर्थंकरोंके लिये आभरण जाते हैं।

(त्रि. गा. २१६–२६६–५१९–१०१४)

मानाथिनि दान–मान कषाय पुष्ट करनेको बड़ापना मुझे आगे प्राप्त हो ऐसी वांछा आगामीके लिये करना। (सा. अ. ४–१)

मानुष–यक्ष व्यंतरोंका ८ वां प्रकार।

(त्रि. गा. २६५)

मानुषोत्तर पर्वत–पुष्कर द्वीपके मध्यमें चारों तरफ उस द्वीपके दो भाग करनेवाला। आधेमें कर्मभूमि है। दूसरे आधेमें जघन्य भोगभूमि है। इसे मानुषोत्तर इसलिये कहते हैं कि कोई मनुष्य इसको उल्लंघ कर नहीं जासक्ता है। यह पर्वत भीतर मनुष्यलोककी तरफ टंकछिन्न है अर्थात नीचे लगाकर ऊपर तक समान एकसा है। दूसरी तरफ मूलसे चौडा ऊपर घटता है। यह सुवर्ण रंगका है, १४ महा नदियोंके निकलनेके लिये १४ गुफाद्वार कर सहित है। ऊँचाई १७२१ योजन मूलमें चौडाई १०२२ योजन है व शिखरमें चौडाई ४२४ योजन है। इसका स्थान दूसरे आधेके आदि क्षेत्रमें हैं। ४५ लाख योजन छोडकर है। ढाई द्वीपके परे हैं। इसपर नैऋत वायव्य दिशाको छोडकर छः दिशाओंमें तीन तीन कूट हैं। आग्नेय ईशानके ६ कूटोंमें गरुड़कुमार देव व शेषमें गरुड़कुमार देव व दिक्कुमारीदेवियां वसती हैं।

(त्रि. गा. ३२२–९३६–९३७)

माया–कषाय, कपट। इसके सम्यक्तादि घातनेकी अपेक्षा अनंतानुबंधी आदि चार भेद हैं। देखो "मान" व "कषाय" तथा अनुभाग शक्तिकी प्रगटताकी अपेक्षा चार भेद और हैं। देखो "कषायस्थान" तीव्रतर या उत्कृष्ट–बांसकी जड घनेकाल विना सीधी न हों, तीव्र या अनुत्कृष्ट–मेढेके सींग समान जो देरमें सरल हो; मन्द या अजघन्य–गोमूत्रके समान जो थोड़े कालमें सरल होता है मंदतर या जघन्य पृथ्वी ऊपर गायके खुर समान वक्र जो तुर्त मिट जाय। ये क्रमसे नर्क, तिर्यंच, मनुष्य, या देवगति बंधके कारण हैं। (गो. जी. गा. २८६)

माया क्रिया–आस्रवकी कारण २५ क्रियाओंमेंसे २३ वीं क्रिया। ज्ञान व श्रद्धानमें मायाचारी करना। (सर्वा. अ. ६–५)

मायागता चूलिका–१२ वें अंग दृष्टिवादका एक भेद जिसमें रूप बदलनेके मंत्रादि हैं। इसके २०९८९२०० मध्यमपद हैं।

(गो. जी. गा. ३६३–४)

मायाशल्य–मनमें कपट रखकर धर्म सेवना जो कांटेके समान चुमनेवाली है। (सर्वा. अ. ७-१८)

मारा–चौथे नर्ककी पृथ्वीमें दूसरा इंद्रक बिला

(त्रि. गा. १५७)

मार्ग–उपाय, मोक्षमार्ग, सम्यक्त मूव मार्ग है। (मू. गा. २०२); रत्नत्रय धर्म।

मार्ग उपसम्पत्–मुनियोंमें परस्पर मार्गकी कुशलक्षेम पूछना। आप सुखसे पहुंचे क्या।

(मू. गा. १४२)

मार्गणा–जिनसे जीवोंको जाना जाय, जिसमें ढूँढ़ा जाय (गो. जी. गा. १४१); ऐसी अवस्था विशेष। ये १४ हैं देखो चतुर्दश मार्गणा। प्रत्येक जीवमें एक भवमें १४दशा मिल सक्ती है जब कि गुणस्थान एक ही मिलेगा। यदि चौन्द्रिय जीव मक्खीमें विचारे तो विदित होगा कि–१ गति–तिर्यंच है, २ इंद्रिय–चार हैं, ३ काय–त्रस है, ४ योग–काय या वचन हैं, ५ वेद–नपुंसक हैं, ६ कषाय–क्रोधादि कोई है, ७ ज्ञान–कुमति कुश्रुत है, ८ संयम–असंयम हैं, ९ दर्शन–चक्षु व अचक्षु है, १० लेश्या–तीन कृष्णादि अशुभ हैं, ११ भव्य–भव्य या अभव्य है, १२ सम्यक्त–मिथ्यात्व है, १३ संज्ञीमें–असंज्ञी है, १४ आहारमें–आहारक है।

मार्गणा अपेक्षा कर्मोंका बन्ध आदि कथन देखो " गोम्मटसार कर्मकाण्ड "

मार्ग प्रभावना–मोक्षमार्गकी वृद्धि करनेकी १५ वीं भावना (१६ कारणमेंसे) जिनसे तीर्थंकर नाम-कर्म बंधता है। (सर्वा० अ० ६–२४)

मार्ग फल–मोक्षप्राप्ति, शुद्धताका लाभ।

(मू० गा० २०२)

मार्ग शुद्धि–मुनिगण उसी मार्गपर दिनमें चार हाथ भूमि आगे देखते हुए चलते हैं, जिसपर त्रस व स्थावर जंतु न हों व अन्य मानव या पशु चले गये हों व चलते हुए स्वयं बचकर चलें, किसीको रोकें या हटावें नहीं। (भ० पृ० १७२)

मार्ग सम्यक्त–वीतराग मार्ग कल्याणकारी है, ऐसा जानकर विस्तारसे न सुनकर जो सम्यक्त पैदा हो। (आत्मानु. श्लो. १२); व "दश प्रकार सम्यक्त"

मार्दव धर्म–कोमलपना–मानका अभाव। यह आत्माका स्वभाव है। अपमानके कारण मिलनेपर मान न करना। (सर्वा. अ. ९–६)

मालिनी–यक्ष व्यंतरोंके इन्द्रोंकी एक महत्तरी देवी। (त्रि. गा. २७७)

माल्यवन्त–मेरु पर्वतकी ईशान तरफ गजदंत पर्वत नीलमणि समान। इस पर्वतपर ९ कूट हैं। १ सिद्धकूट, २ माल्यवंत, ३ उत्तर कौरव, ४ कच्छ, ५ सागर, ६ रजत, ७ पूर्णभद्र, ८ सीता, ९ हरिसह। यह उत्तर कुरुकी हद बांधनेवाला है।

(त्रि. गा. ६६३–७१८)

माहेन्द्र–चौथा स्वर्ग, व उसका स्वामी इन्द्र जो उत्तर माहेन्द्र श्रेणी वद्ध विमानमें रहता है।

(त्रि. गा. ४९२–४८६)

मित्र–सौधर्म युगल स्वर्गोंका १० वाँ इन्द्रक विमान। (त्रि. गा. ४६६)

मित्रानुराग–सल्लेखनाका तीसरा अतीचार। समाधिमरण करते हुए मित्रोंसे प्रेमका करना। (सर्वा. अ. ७–३७)

मिथ्यात्व–सच्चे तत्वका श्रद्धान न होना। इसके दो भेद हैं–नैसर्गिक या अग्रहीत-जो अनादि-कालसे आत्माको न श्रद्धान करते हुए शरीरमें ही आपपनेकी श्रद्धा चली आरही हो। २ परोप-देश पूर्वक या ग्रहीत–जो परके उपदेशसे श्रद्धा बनी हो या देखादेखी होरही हो इसके चार भेद हैं। क्रियावाद, अक्रियावाद, अज्ञानवाद या विन-यवाद; इनके ३६३ प्रकार एकांत मतोंका विश्वास लाना। देखो "एकांतवाद" तथा पांच प्रकार एकांत संशय, अज्ञान, विनय, विपरीत। (देखो प्रत्येक शब्द); (सर्वा० अ० ८–१)

मिथ्यात्व क्रिया–आस्रवकी २५ क्रियाओंमें दूसरी मिथ्या देव शास्त्र गुरुकी पूजा भक्ति।

(सर्वा० अ० ६–५)

मिथ्यात्व गुणस्थान–मिथ्यात्व प्रकृतिके उद-यसे जो जीवका अतत्व श्रद्धान। इस पहले दर्जेमें रहनेवाला जीव अनेकांत जो जैनमत उसकी रुचि नहीं लाता है। जैसे पित्तज्वर सहित प्राणीको मीठा नहीं सुहाता। उपदेश किये जानेपर भी सच्चे तत्वको नहीं प्रतीतिमें लाता है। (गो. जी. १५–१८)

मिथ्यात्व प्रकृति–वह दर्शन मोहनीय कर्म जिसके उदयसे तत्वोंका श्रद्धान न हो।

(सर्वा० अ० ८–९)

मिथ्यादर्शन ज्ञान चारित्र–जो सत्य ठीक नहीं है उसका श्रद्धान, उसका ज्ञान व उसपर चलना, यही संसारभ्रमणके कारण हैं। (र. श्रा. ३)

मिथ्यादर्शन क्रिया–आस्रवकी २५ क्रियाओंमें २२ वीं। मिथ्यात्वकी क्रियाओंकी प्रशंसा करके दृढ़ करना। (सर्वा० अ० ६–५)

मिथ्यादृष्टि–जिसका दर्शन मलिन होय, जो सम्यक्ती नहीं है।

मिथ्याशल्य–[illegible]

यह [illegible] है।

(सर्वा. अ. ७–१८)

मिथ्योपदेश—सत्य अणुव्रतका पहला अतिचार। स्वर्ग व मोक्षकी उपाय रूप क्रियाओंका दूसरोंको और प्रकार मिथ्या उपदेश देना ।

(सर्वा० अ० ७-२६)

मिश्र गुणस्थान—तीसरा गुणस्थान—सम्यग्मिथ्यात्व या मिश्र प्रकृतिके उदयसे श्रद्धान सच्चा झूठा मिला हुआ होना । जैसे शिषरिणीमें दही शक्करका खट्टा मीठा मिश्र स्वाद आता है । इसका उत्कृष्ट काल भी अंतर्मुहुर्त है । इस दरजेमें आयुका बन्ध नहीं होता है और न प्राणी मरण पाता है । न इसमें मारणान्तिक समुद्घात होता है ।

(गो० जी० गा० २१-२४)

मिश्र (स्वजाति विजाति) असद्भूत व्यवहार नय—स्वजाति विजाति द्रव्य गुण पर्यायका एक दूसरेमें आरोप करना । इसके नौ भेद होंगे । जीवाजीव स्वरूप ज्ञेयको ज्ञान कहना, यह मिश्र द्रव्यमें सजाति विजाति गुणका आरोप है ।

(सि० द० पृ० ११)

मिश्र उपचरित असद्भूत व्यवहारनय—राज्य दुर्ग नगर आदि जो बिलकुल भिन्न मिश्र जीवाजीव पदार्थ हैं उनको जिस नयसे अपना माना जाय ।

(सि० द० पृ० ११)

मिश्रकेशी—रुचक पर्वतके उत्तर दिशाके वैजयंत कूटपर वसनेवाली दिक्कुमारीदेवी (त्रि.गा. ९५४)

मिश्र दोष—मुनि आहारके १६ उद्गम दोषोंमें पांचवां दोष-जिसमें दातार यह संकल्प करे । इस प्राशुक भोजनको अन्य भेषियोंके साथ व गृहस्थोंके साथ मुनिको भी दूँगा । (मू० गा० ४२९)

मिश्र भाव—“ क्षयोपशमिक भाव ” देखो ।

(सर्वा० अ० २-१)

मिश्र मिथ्यात्व, मिश्र मोहनीय—सम्यग्मिथ्यात्व कर्म जिसके उदयसे सच्चे जूठेका मिला हुआ श्रद्धान हो । (सर्वा० अ० ८-९)

मिश्र योनि—शीत, उष्ण, या सचित्त, अचित्त या संवृत विवृत मिली हुई गुण योनि । देखो “ गुण योनि ” ।

मिश्र ज्ञान—मिश्र गुणस्थानमें सम्यग्मिथ्यात्व कर्मके उदयसे मति, श्रुत व अवधि तीनों ज्ञान भी मिश्र होजाते हैं, न तो वहां सम्यग्ज्ञान है न मिथ्याज्ञान है, एक कालमें दोनोंका मिश्र ज्ञान है ।

(गो० जी० गा० ३०२)

मिहिरचन्द्र—पं० सज्जन चित्त वल्लभ वचनका व पद्य । फारसीके विद्वान, शेखशादीकी गुलिस्तां वोस्तांके हिंदी अनुवादक । (दि. ग्रं. नं. १४)

मीमांसक—जैनीके पूर्व मीमांसाके माननेवाले जो छः प्रमाण मानते हैं इनके दो भेद हैं । एक कुमारिल भट्टवाले, दुसरे प्रभाकरवाले ।

मुकुटबन्ध राजा—मुकुटधारी या राजा जो १८ वीं श्रेणीका स्वामी हो । (१) सेनापति, (२) गणपति, ज्योतिषी आदिका नायक, (३) वणिक्पति, (४) दण्डपति—जज, (५) मंत्री, (६) महत्तर कुलमें बड़ा, (७) तलवर-कोतवाल, (८ से ११) क्षत्रियादि चार वर्ण, (१२ से १५) हाथी, घोड़े, रथ व पयादे चार तरह सेना, (१६) पुरोहित, (१७) आमात्य—देशका अधिकारी, (१८) महामात्य—सर्व राज्यका अधिकारी । (त्रि० गा० ६८३-६८४)

मुकुट सप्तमी व्रत—श्रावण सुदी सप्तमीको उपवास करे इस तरह ७ वर्षतक करे ।

(क्रि० कि० पृ० ११८)

मुक्त जीव—सर्व कर्मसे छुटा हुआ सिद्ध परमात्मा।

मुक्त दन्त—भरतका आगामी उत्सर्पिणीका तीसरा चक्रवर्ती । (त्रि० गा० ८७७)

मुक्तागिरि—बरारमें एलिचपुर स्टेशनसे १२ मील । मेढ़गिरि भी कहते हैं । यहांसे ३॥ करोड़ मुनि मुक्त पधारे हैं, पर्वत रमणीक है । बहुतसे प्राचीन दि० जैन मंदिर व चरणचिह्न हैं ।

(या० द० पृ० ९५)

मुक्तावली व्रत—दो प्रकारका है—(१) लघु—नौ वर्ष तक प्रतिवर्ष नौ नौ उपवास करे । नं० १

भादों सुदी ७ को, नं० २ आसौज वदी ६ को, नं० ३ आसौज वदी १२ को, नं० ४ आसौज सुदी ११, नं० ५ कार्तिक वदी ११, नं० ६ कार्तिक सुदी ३, नं० ७ कार्तिक सुदी ११, नं० ८ मगसिर वदी ११, नं० ९ मगसिर सुदी ३। गुरु या बृहत्–यह ३४ दिनका होता है। एक उपवास करे फिर दो, फिर तीन, फिर चार, फिर पांच; फिर चार, फिर तीन, फिर दो, फिर एक। २५ उपवासमें ९ पारणा हो। कुल ७४ दिन।
(क्रि० कि० पृ० ११७–११८)

मुक्ताहार–विजयार्द्धकी उत्तर श्रेणीमें २७ वां नगर। (त्रि० गा० ७०६)

मुक्ति शिला–सिद्ध शिला–ईषत प्राग्भार अष्टमी पृथ्वीके मध्य सफेद छत्रके आकार ढाईद्वीप प्रमाण गोल ४५ लाख योजन व्यासकी शिला। मध्यमें ८ योजन मोटी फिर घटती गई है। इसीकी सीधमें सिद्ध जीव तनुवातवलयमें विराजते हैं।
(त्रि० गा० ५५७)

मुख मण्डप–अकृत्रिम जिनमंदिरोंमें गर्भ गृह जहां प्रतिमा विराजती है उसके आगेका मण्डप।
(त्रि० गा० ९९२)

मुण्ड–मुण्डना या वश करना सो दश प्रकार है–(१–५) इंद्रिय मुण्ड–पांच प्रकार स्पर्शनादिके, ६ वचन मुण्ड, ७ हस्त मुण्ड, ८ पाद मुण्ड, ९ मन मुण्ड, १० शरीर मुण्ड। बिना प्रयोजन काममें न लेना, जिससे हिंसा हो। (मू.गा. ८२१)

मुण्डन क्रिया–चौलि क्रिया, देखाव गर्भ– १२वीं गर्भान्वय क्रिया। जब बालकके केश बढ़ जावें। १–३ व ४ थे वर्ष, तब चौलिकाके मंत्रोंसे होमादि करके मंत्रोंसे बालकको आशीर्वाद दें, केशोंको गन्धोदकसे गीला करे, आशिकाके अक्षत डाले। फेर बालक चोटी सहित सिर मुण्डावे। फिर [illegible] वस्त्रादि पहन मुनि महाराजके पास या मन्दिर जावे वहां गुरुस्थापार्थ चोटीके स्थानपर साथिया करदे। तबसे चोटी रखली जावे, पूजादि हो, दान हो। देखो (गृ० अ० ४)

मुद्दा पं०–द्विसन्धान काव्य टीकाके कर्ता।
(दि० ग्रं० नं० २३१)

मुनि–अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी व केवलज्ञानीको मुनि कहते हैं. (सा. अ. ७–२१); जैन साधु सामान्य।

मुनिचन्द्र–कर्णाटक कवि (सन् ११९९) रट्टराज कार्तवीर्यके गुरु व लक्ष्मीदेव राजाके मंत्री थे, बड़े वीर थे। रट्टराज प्रतिष्ठाचार्य उपाधि थी।

मुनि भेद–पांच प्रकार–(१) पुलाक २८ मूलगुणोंमें कभी कहीं अपूर्णता हो व कोई मूलगुण सदोष हो, (२) बकुश–इनके २८ मूलगुण पूर्ण है शिष्यादिमें राग विशेष है, (३) कुशील–प्रतिसेवना कुशील–जिनके मूल गुण उत्तर गुण है, परन्तु उत्तरगुणमें विराधना कभी होती है, कषाय कुशील अति मंद कषायवाले सूक्ष्मसांपराय संयमधारी तक (४) निर्ग्रंथ–मोह रहित ११ वें व १२ वें गुणस्थानवाले (५) स्नातक–केवलज्ञानी। (श्रा० पृ० २५९) या चार भेद हैं–(१) अनगार–सामान्य साधु, (२) यति–उपशम या क्षपक श्रेणी आरूढ़, (३) मुनि, अवधि व मनःपर्ययज्ञानी (४) ऋषि–ऋद्धिधारी। (श्रा० पृ० २५८)

मुनिमार्ग–के दो भेद हैं–(१) उत्सर्ग जहां शुद्धोपयोग रूप परम वीतराग संयम हो, (२) अपवाद–जहां शुद्धोपयोगके बाहरी साधनोंका ग्रहण हो, आहार विहार निहार हो, शुभोपयोग रूप सराग संयम हो। (प्रा० पृ० २६०)

मुनिधर्म या मत–८ मूलगुणका पालन। मुनि धर्मकी दीक्षा रोग रहित, सामर्थ्यवान, [illegible] लेता है जो कुलक्रमसे [illegible] व [illegible] करके गुरुके पास दीक्षा लेवे (प्रा० पृ० २६३) व कोई [illegible] भी लेते हैं।

मुनिसुव्रत–भरतके वर्तमान २० वें तीर्थंकर हरिवंशी राजा, [illegible]

नगरमें सुमति राजा रानी श्यामाके पुत्र, शरीरवर्ण श्याम, कच्छप अंक पगमें, ३० हजार वर्ष आयु, राज्य करके पुत्रको राज्य सौंप साधु हो तपकर श्री सम्मेदशिखर पर्वतसे मोक्ष पधारे। भरतकी आगामी उत्सर्पिणीके ११ वें तीर्थंकर। (त्रि. गा. ८७४)

मुहूर्त–दो घड़ी, ४८ मिनिट।

मूर्छित–जो देह घर, स्त्री, पुत्रादिको अपना माने। मोही, मिथ्यात्व जीव। (ज्ञा. अ. १–२)

मूर्तत्व–मूर्तीयपना; स्पर्श, रस, गंधादिपना।

मूडवद्री–जैन काशी, अतिशयक्षेत्र, मदरास दक्षिण कनड़ामें मंगलोर स्टेशनसे २२ मील। प्राचीन नाम वेणूपुर या वंशपुर या विद्री। यहां १८ दि० जैन विशाल मंदिर हैं, ध्वजास्तंभ व मानस्तंभ सहित हैं। यहां रत्नबिंब हैं व धवलादि ग्रँथ कनड़ी लिपिमें हैं। भट्टारककी गद्दी है, दि० जैन घर १२ हैं। शिलालेख हैं। (या० द० पृ० ३२९)

मूर्ति–स्थापना निक्षेपसे किसीका स्वरूप समझनेके लिये उसकी तदाकार मूर्ति बनाना। जैसे श्री पार्श्वनाथकी मूर्ति बनाकर इससे उनके ध्यान स्वरूपका अवलोकन करना।

मूर्ति पूजन–ध्यानमई वीतराग वस्त्रालंकार रहित मूर्तिके द्वारा जिसकी मूर्ति है उसकी भक्ति करना। अष्टद्रव्य जल चंदनादि गुणोंको स्मरण करते हुए चढ़ाना और पूज्यके पवित्र गुणोंको हृदयमें स्थान देना।

मूल–वर्गमूल, प्रथम मूल, द्वितीय मूल आदि जैसे २५६ का प्रथम मूल, १६ द्वितीय मूल, ४ तृतीय २ हैं। (त्रि० गा० ७१)

मूल कर्मदोष–जो साधु वशीकरण, संयोगकरण आदि मंत्र तंत्रादिके द्वारा गृहस्थोंसे वस्तिका ग्रहण करे। (भ० पृ० ९६)

मूल कर्मप्रकृति–आठ ज्ञानावरणादि देखो 'कर्म'।

मूलगुण–गृहस्थके ८, साधुके २८, पंचपरमेष्ठीके १४३। देखो "अष्टमूलगुण" "अट्ठाईस मूलगुण" "पंचपरमेष्ठी गुण"।

मूलगुण निर्वर्तनाधिकरण–शरीर, वचन, मन, श्वासोछ्वासका बनना। (सर्वा. अ. ६–९)

मूल प्रत्यय–मूल आस्रवभाव, चार मिथ्यात्व, अविरति, कषाय, योग। (गो. क. गा. ७८६)

मूलवर्ण–मूल अक्षर ६४ अनादिसे जिनागममें प्रसिद्ध हैं। इनहीके संयोग करनेसे (२^६४) अर्थात् १८,४४,६७,४४,०७,३७,०९,५५,१६,१५ अपुनरुक्त अक्षर जिनवाणीके बनते हैं जिनमें द्वादशांग व अँगबाह्य श्रुतका विभाग किया गया है। वे अक्षर हैं–३३ व्यंजन=क वर्ग ५+च वर्ग ५+ट वर्ग ५+त वर्ग ५+प वर्ग ५+य, र, ल, व, श, ष, स, ह=३३। स्वर २७ हैं–अ, इ, उ, ऋ, ऌ, ए, ऐ, ओ, औ इन ९ को ह्रस्व, दीर्घ, प्लुतसे गुणा करनेपर २७ तथा ४ योगवाह–अं (अनुस्वार), अः (विसर्ग), ᳵक जिह्वा मूलीय; ᳵप उपध्मानीय। (गो. जी. गा. ३५२–३५४)

मूलसंघ–दि. जैन साधुओंका प्राचीन संघ जिनके आचार्योंको पट्टावलीमें गिनाते हुए प्रथम श्री कुन्दकुन्द आचार्यका नाम (वि. सं. ४९) लिया जाता है फिर उमास्वामी (सं. ८१) इत्यादि।

मूलाचार–प्राकृत ग्रन्थ वट्टकेर स्वामी कृत गाथा १२४३। मुनि चारित्र प्रतिपादक सं० टीका व भाषा टीका मुद्रित बम्बई।

मूलाचार प्रदीप–सकलकीर्ति कृत सं०।

मृतक संस्कार–देखो "मरण संस्कार"

मृत्यु–देखो "मरण"

मृदंग मेघिव्रत–लघु–१ मासमें २३ उपवास करे दो उपवास फिर पारणा, तीन उपवास फिर पारणा, चार उपवास फिर पारणा, पांच उपवास फिर पारणा, चार उप० फिर पा०, तीन उप० फिर पा०, दो उप० फिर पारणा, २+३+४+५+४+३+२=२३ वृहत्की विधि है–८१ उपवास करें। पहले १, फिर २, फिर ३, फिर ४, फिर ५, फिर ६, फिर

७, फिर ८; फिर ९। इसी तरह बढाया जाय। १+२+३+४+५+६+७+८+९+८+७+६+५+४+३+२+१=८१ बीचमें पारणा करे।

(क्रि० क्रि० पृ० ११८)

मृषानन्द–रौद्रध्यान–असत्य भाषणमें आनन्द मानना। झूठ बोलकर काम निकालकर प्रसन्न होना व झूठकी अनुमोदना करनी।

(सर्वा० अ० ९–३५)

मृषापाप–दूसरा पाप असत्य भाषण।

मृषावाद–असत्य कहना।

मेखलाग्रपुर–विजयार्द्धकी दक्षिण श्रेणीका २९ वां नगर। (त्रि० गा० ६९०)

मेघ–सौधर्म ईशान स्वर्गोंका २० वां इन्द्रक विमान(त्रि० ४६५); सीतोदाके पश्चिमतट पर्वत।

(त्रि. गा. ६६५)

मेघकूट–विजयार्द्धकी दक्षिण श्रेणीमें ४२ वां नगर। (त्रि. गा. ७००)

मेघमाला व्रत–भादों मासमें करे। कुँवार वदी १ तक तीन पड़वाको तीन उपवास, दो अष्टमीको दो व दो चौदसको दो, इस तरह सात उपवास व चौवीस एकासन करे, ३१ दिनमें पूर्ण करे पांच वर्ष तक करे। (क्रि० क्रि० पृ० ११०)

मेघा–तीसरे नर्ककी पृथ्वी २८ हजार योजन मोटी, सात पटलमें सात इन्द्रक बिले हैं।

(त्रि० गा० १४५....)

मेघङ्करा–मेरुपर्वतके नंदनवनके नंदन कूटपर बसनेवाली दिक्कुमारीदेवी (त्रि. गा. ६२७)

मेघमालिनी–मेरुपर्वतके नंदनवनके हिमवनकूट पर बसनेवाली दिक्कुमारीदेवी (त्रि. गा. ६२७)

मेघवती–मेरुपर्वतके नंदनवनके मंदरकूट पर बसनेवाली दिक्कुमारीदेवी (त्रि. गा. ६२७)

मेधावी–[illegible] दीक्षा, [illegible] दीक्षा [illegible]।

([illegible])

मेरु–जम्बूद्वीपके मध्यमें एक सुदर्शन मेरुपर्वत जो जड़में १००० योजन व ऊपर ९९००० योजन ऊँचा ४० योजनकी चूलिका जो प्रथम स्वर्गके ऋतु विमानको स्पर्श करती है। मूलमें १० हजार योजन चौड़ा है, ऊपर १००० योजन चौड़ा है, धातुकी खण्डमें विजय, अचल व पुष्करार्द्धमें मंदर व विद्युन्माली ये चार मेरु हैं। कुल पांच मेरु पर्वत ढाईद्वीपमें हैं। हरएक मेरुमें चार चार वन हैं- भद्रशाल, नंदन, सौमनस, पांडुक व हरएक वनमें चार दिशामें एक एक अकृत्रिम जिन चैत्यालय है। इस तरह १६×५=८० चैत्यालय हैं। सुदर्शन मेरुमें नीचे भद्रशाल वन ऊपर ५०० योजन जाकर नंदनवन फिर ६२५०० योजन जाकर सौमनस वन फिर ३६००० योजन जाकर पांडुक वन है। अन्य चार मेरु प्रत्येक ८४००० योजन ऊंचे हैं। इनमें नीचे भद्रशाल वनसे ५०० योजनपर नंदनवन फिर ५५५०० योजनपर सौमनस वन फिर २८००० योजनपर पांडुकवन है। मेरु पर्वत ६१००० योजन तक तो अनेक वर्णमई रत्नोंसे विचित्र है, ऊपर मात्र सुवर्णमय वर्ण युक्त है। मेरुके मस्तकपर पांडुकवनमें ईशानसे लगाकर चार विदिशामें चार शिला हैं उनके नाम क्रमसे पांडुक, पांडुकबला, रक्ता, रक्तकंबला हैं। पहलेमें भरत, दूसरेमें पश्चिम विदेह, तीसरेमें ऐरावत, चौथेमें पूर्व विदेहके तीर्थंकरोंके न्हवन स्थान हैं। यहां ही जन्माभिषेक होता है। ये शिलाएं अर्द्धचन्द्राकार १०० योजन लम्बी बीचमें ५० योजन चौड़ी व ८ योजन मोटी हैं। हर शिलामें मध्यमें तीर्थंकर का [illegible] सिंहासन है। दोनों ओर दो सिंहासन सौधर्म, ईशान इन्द्रका आसन है। वह आसन ५०० धनुष ऊंचे, नीचे चौड़ाई ५०० धनुष व ऊपर चौड़ाई २५० धनुष है। वे पूर्वदिशाके सन्मुख हैं। (त्रि. गा. ६१३–६०५–६३८)

मेरुपंक्ति व्रत–पांच मेरु सम्बन्धी ८० चैत्या- [illegible]

मंदिर सम्बन्धी करे, फिर एक वेला करे, फिर नन्दनवनके चार उपवास करे, फिर एक वेला करे, फिर सौमनस वनके चार उपवास करे, फिर एक वेला करे, फिर पांडुक वनके चार उपवास करे, फिर एक वेला करे । इस तरह सुदर्शन मेरु सम्बन्धी सोलह उपवास तथा चार वेला करे। १६ + ८ + २० पारणा=४४ दिनका पहला मेरु व्रत है । इसी तरह चार मेरु पर्वतोंका करे । बराबर करे अँतर न पड़े, कुल ८० उपवास+ २० वेला करे । अर्थात् १२० दिन उपवास करे, इसमें पारणा १०० होंगे। १२० दिनोंका व्रत है । पूजापाठ सामायिक सहित समय वितावे ।

(कि० कि० पृ० १२४)

मैथुन–चारित्र मोहके उदयसे स्त्री पुरुषोंमें परस्पर राग परिणामकी विशेषतासे स्पर्श करनेकी इच्छा । (सर्वा० अ० ७–१६)

मैथुन दोष–देखो " दश मैथुन दोष "

मैथुन संज्ञा–वेदके उदयसे स्पर्श करनेकी वांछा प्रायः सर्व संसारी जीवोंमें रहती है । मनुष्योंकी अपेक्षा इस भावके उत्पन्न होनेके बाहरी कारण कामोद्दीपक गरिष्ठ पदार्थ खाना, कामकथा करना, भोगे हुए विषयोंको याद करना, कुशील स्त्री पुरुषोंकी संगति करनी है। अंतरंग कारण वेद नोकषायकी उदीरणा है। (गो. जी. गा. १३७)

मैथुन संस्कार–मैथुनभाव होनेके १० कारण हैं–(१) शरीरका श्रृंगार, (२) राग सहित श्रृङ्गाररसकी वार्ता, (३) हास्यक्रीड़ा, (४) संगतिकी इच्छा, (५) विषयसेवनका संकल्प, (६) राग सहित स्त्रीका शरीर देखना, (७) देहको गहनोंसे सजाना, (८) स्नेह बढ़ानेको परस्पर दान करना, (९) पूर्व भोग स्मरण करना, (१०) मनमें मैथुनकी चिंता करनी । (गृ. अ. १२)

मैत्री भावना–सर्व प्राणीमात्रका हित हो ऐसा भाव रखना । (सर्वा. अ. ७–११)

मोद क्रिया–गर्भान्वयकी दूसरी क्रिया, जो गर्भके रहनेके दिनसे तीसरे माससे की जाती है। दम्पति पूजा होमादि करे, दान करे, प्रेम बढ़ावें । देखो (गृ. अ. ४)

मोह–मिथ्यात्व, मूर्छाभाव, स्नेह या प्रणयकी तीव्रता, अनंतानुबन्धी कषाय और मिथ्यात्वके उदयसे परमें आत्मबुद्धिका होना ।

मोहनीय कर्म–आठ मूल कर्मोंमें चौथा कर्म । इसके दो भेद हैं–दर्शन मोहनीय, चारित्रमोहनीय। जो तत्वश्रद्धानको बिगाड़े वह दर्शन मोहनीय है इसके ३ भेद हैं–१ मिथ्यात्व– जिससे तत्व रुचि न हो, २–सम्यग्मिथ्यात्व–जिससे सत्य असत्य तत्वकी मिश्र रुचि हो, ३–सम्यक्त–जिससे सम्यक्में दोष लगे । चारित्र मोहनीय वह है जो शांत भाव या आत्मथिरताका विध्वंश करे । इसके २५ भेद हैं–१६ कषाय (देखो "कषाय") और नो–कषाय (देखो नव नोकषाय) (सर्वा० अ० ८–९)

मोक्ष–बंधके कारण मिथ्यादर्शन, अविरति, कषाय, योगके दूर होजानेपर तथा पूर्व बांधे कर्मकी निर्जरा होजानेपर सर्व कर्मोंसे छूट जाना व अपने आत्मीक शुद्ध स्वभावका प्राप्त कर लेना यह सादि अनंत जीवकी अवस्था है (सर्वा. अ. १०–२)

मोक्षपात्र–निकट भव्य जीव, मंदकषायी जिसका मोक्षकाल अर्द्ध पुद्गल परिवर्तनसे अधिक न रहा हो।

मोक्षमार्ग–सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्रकी एकता–व्यवहारनयसे तीन रूप है। निश्चयनयसे एक आत्मा ही मोक्षमार्ग है। आत्माका यथार्थ श्रद्धान, ज्ञान व अनुभव सहित थिरता निश्चय मोक्षमार्ग साक्षात् साधन है। निश्चय मोक्षमार्गका निमित्त साधन जीवादि सात तत्वोंका श्रद्धान करना व्यवहार सम्यग्दर्शन है, द्वादशांग वाणीका भाव समझना व्यवहार सम्यग्ज्ञान है। साधुका महाव्रतरूप व गृहस्थका एक देशरूप चारित्र पालना व्यवहार सम्यग्चारित्र है ।

(सर्वा० अ० १–१)

मोक्षमार्ग प्रकाश–हिन्दीमें पं० टोडरमल्लजी कृत व दू. भाग ब्र० सीतलप्रसादजी कृत, मुद्रित ।

मौक्तिक प्रशस्त निदान–कर्म नाश संसारके दुःखोंकी हानि, रत्नत्रय, समाधि केवलज्ञानकी इच्छा सो मुक्तिका कारण शुभ निदान है ।

(भ० आ० ४–१)

मौखर्य–अनर्थदण्ड विरतिका अतीचार तीसरा। वृथा बहुत बकवक करना । (सर्वा. अ. ७–३२)

मौंजी बन्धन–उपनीति क्रियामें बालक ब्रह्मचारीकी कमरमें मूंजका डोर तीन तारका बंटा हुआ मंत्र पढ़कर तीन गांठ देकर बांधा जाता है । यह भी रत्नत्रयका चिह्न है। (गृ.अ. ४) १४वीं क्रिया।

मंगलाचरण–मंगलके लिये स्तुतिरूप श्लोक व छंद पढना । देखो " मङ्गल "

मृगचारी मुनि–वनके पशुकी तरह स्वेच्छाचारी होकर जो साधु भ्रमण करे, जनमार्गको दूषित करे, तपसे विमुख हो, अविनयी हो (भ. ए. १३९)

मृगावती–प्रसिद्ध सती पांचमी ।

मृक्षित दोष-जो वस्तिका तत्काल लिप्त की गई हो उसमें साधु ठहरे । (भ. ए. ९६)

मृदुकीर्ति–समवशरण विधानके कर्ता ।

(दि० ग्रं० नं० २३६)

मेघचन्द्र–सं. ६०१ समाधिशतकके टीकाकार।

मेघराज पं०–चन्द्रप्रभपुराण छन्दके कर्ता । (दि० ग्रं० नं० १२५)

मेधावी पंडित–धर्मसंग्रह श्रावकाचार, अष्टाङ्गोपाख्यान, [illegible]के कर्ता ।

मेरक–वर्तमान भरतके तीसरे प्रतिनारायण।

मेरुकीर्ति-आचार्य सं. [illegible] (दि. ग्रं. न. [illegible])

म्लेच्छ–जिनमें धर्मका वर्ताव नहीं होता है । [illegible] यहां चौथा काल पलटता है । इनके [illegible] जंबूद्वीपमें १६० विदेहके व १० भरत ऐरा[illegible]के हैं । ढाई द्वीपमें ८५० हैं । भरत ऐरावतमें [illegible] तीन अधिक [illegible] होता रहता है। म्लेच्छखण्डोंके मनुष्य आर्यखण्डमें आकर मुनिधर्म पाल सके हैं । (ल. गा. १९५) । इनके निवासी म्लेच्छ मानव कहलाते हैं । ९६ अंतद्वीप जो लवणोदधि व कालोदधिमें हैं जहां कुभोगभूमि हैं वहांके वासी भी म्लेच्छ कहलाते हैं, वे पशुमुखादि धारी मानव युगल होते हैं । देखो "अंतर्द्वीप" या अनार्य मनुष्य तथा शक, यवन, शबर, पुलिन्द आदि जो कर्मभूमिके आर्यखण्डमें होते हैं।

(सर्वा. अ. ३–३६)

मोक्षाकार गुप्त–तर्क भाषाके कर्ता । (दि० ग्रं० नं० ४२५)

मोहन पंडित–कलशारोहण पूजाके कर्ता ।

(दि० ग्रं० नं० २४०)

य

यक्ष–व्यंतर देवोंमें पांचवां भेद । (त्रि. गा. २५१); यक्षोंका शरीर श्यामवर्ण होता है । इनके १२ प्रकार हैं । इन्द्र मणिभद्र पूर्णभद्र हैं । अकृत्रिम जिन प्रतिमाको ६४ यक्ष चमर ढारते हैं ।

(त्रि० गा० ९८८)

यक्षवर–अंतके १६ द्वीपोंमें १२ वां द्वीप व समुद्र । (त्रि० गा० ३०६–७)

यक्षसम्मोह–पिशाच व्यंतरोंका एक प्रकार ।

(त्रि. गा. २७१)

यक्षवर्मा–शाकटायन व्याकरण व [illegible] [illegible] टीकाकार । (दि. ग्रं. [illegible])

यक्षोत्तम–एक व्यंतरोंका एक प्रकार । (त्रि० गा० २६६)

यति–[illegible] ([illegible]) [illegible]

[illegible] ([illegible])

यथाख्यात चारित्र–[illegible] [illegible]

वें, १२ वें, १३ वें व १४ वें गुणस्थान व सिद्धमें प्राप्त आत्मस्वभावमें मनरूप भाव ।
(सर्वा. अ. ९-१८)

यशःकीर्ति–आचार्य, सं० २९९ (दि. ग्रं. नं. २४३); धर्मशर्माभ्युदयकी संदेहध्वान्तनाशिनी टीकाके कर्ता (दि. ग्रं. ४१६); गुणकीर्तिके शिष्य । गोमटसारकी कर्मकांड टीका, चंद्रप्रभ चरित्र, नमस्कार महात्म्य आदिके कर्ता ।
(दि. ग्रं. नं. ४२६)

यथा छन्द मुनि–स्वच्छन्द वर्तनेवाला जैन साधु, जिन आगमकी अवज्ञा कर्ता, इंद्रिय विषय व कषायके वशीभूत । (भ. पृ. ४००)

यदु–नमिनाथ तीर्थंकरके पीछे हरिवंशमें राजा यदु १९००० वर्षकी आयु इनहींसे यादव वंश प्रसिद्ध हुआ । (ह. पृ. २०४)

यदृच्छा–अपनी इच्छाके अनुसार विना विचारे ।

यम–जन्म पर्यंत किसी प्रतिज्ञाका लेना; दक्षिण दिशाका लोकपाल । (त्रि. गा. २२६)

यमक पर्वत–जंवृद्वीपमें नील निषिद्ध कुलाचलसे मेरुकी तरफ एक हजार योजन जाकर सीता, सीतोदा नदीके दोनों तटोंपर सीताके पूर्वमें चित्र, पश्चिममें विचित्र पर्वत हैं । व सीतोदाके पूर्वमें यमक, पश्चिममें मेघ नामका पर्वत है । ये चार यमकगिरि गोल हैं । ऊँचाई १००० योजन नीचे चौड़ाई १००० योजन ऊपर चौड़ाई पांचसौ योजन है । इनपर इस ही नामके धारक देव वसते हैं ।
(त्रि० गा० ६५४-५)

यमपाल चांडाल–बनारस निवासी जिसने चौदसको हिंसा न करनेकी प्रतिज्ञा ली थी, कष्ट पडनेपर भी न छोडी । देवताओंसे पूजित हुआ । (सा. अ. ८-८३); (आ. क. नं. २४)

यशःकीर्ति नाम कर्म–जिसके उदयसे यश फैले (सर्वा० अ० ८-११); हरिवंशपुराण प्राकृत, सुबोधसार, धर्मशर्माभ्युदय टीका आदिके कर्ता ।
(दि० ग्रं० नं० २४२)

यशश्चन्द्र–कर्णाटक कवि, सन् १४५० लगभग
(क. ६९)

यशस्वान–किंपुरुष व्यन्तरोंमें दशवां प्रकार । (त्रि. गा. २९९); भरतके वर्तमान नौमें कुलकर ।
(त्रि० गा० ७९३)

यशोधर–नौग्रैवेयिकोंसे चौथे ग्रैवेयिकके इन्द्रक विमान । (त्रि० गा० ४६९)

यशोधरा–रुचक पर्वतपर दक्षिण दिशाके नलिन कूटपर वसनेवाली देवी । (त्रि० गा० ९५१)

यशस्तिलकचम्पू–काव्य, सोमदेव कृत मुद्रित ।

यशोनन्दि–आचार्य वीर सं० ३६ (दि. ग्रं. नं. २४५); सं० ६८ में पंचपरमेष्ठी पूजा धर्मचक्र पूजा व व्रत कथाकोष प्राकृतके कर्ता ।
(दि. ग्रं. नं. २४६)

यशोभद्रा–नन्दीश्वर द्वीपमें उत्तर दिशाकी एक वावड़ी । (त्रि० गा० ९७०)

यशोभद्र–महावीर मोक्षके ६२९ वर्ष पीछे १०८ वर्षमें आचारांगके ज्ञाता, द्वि० नाम अभयचँद । (श्र. पृ. १४)

यष्टि–कंठाभरण मोतियोंकी माला । यष्टिके भेद पांच हैं । (१) शीर्षक–जिसके मध्यमें एक बड़ा मोती हो । (२) उपशीर्षक–जिसके बीचमें अनुक्रमसे वढते हुए तीन बडे मोती हों, बीचमें वडा दो उसके इधर उधर कुछ छोटे । (३) प्रकांडक–जिसके बीचमें पांच मोती अनुक्रमसे बढते हुए हों । (४) अवघाटक–जिसके बीचमें एक बडा मोती हो, दोनों ओर अन्ततक क्रमसे घटते हुए छोटे २ मोती हों । (५) तरल प्रतिबन्ध–जिसमें सब जगह सब मोती एकसे हों । हरएकके दो दो भेद हैं । (१) मणिमध्यायष्टि–जिसके बीचमें कोई मणि लगी हो । (आ. प. १६-४६-५४)

यशोधर चरित्र–प्रा० व भाषा मुद्रित ।

यशःसेन–चन्दना चरित्र प्राकृतके कर्ता ।
(दि. ग्रं० नं २४४)

यज्ञ-पूजन-यजन-जिससे सम्यक्त व संयममें बाधा न आवे, देव, शास्त्र, गुरु तीनों समान पूज्य हैं। पूजाके पांच भेद हैं—

(१) नित्यमह-जो नित्य घरसे अष्टद्रव्य चैत्यालयमें लेजाकर पूजन करे।

(२) अष्टाह्निक-जो कातिक, फागुन, असाढ़में अन्तके ८ दिन की जावे।

(३) ऐंद्रध्वजपूजा-जो इन्द्रादि द्वारा महान पूजा हो।

(४) मुकुटबद्ध-चतुर्मुख या सर्वतोभद्र या महामह। यह पूजा राजाओंके द्वारा की जाती है। चार मुखवाला मण्डप बनाया जाता है।

(५) कल्पवृक्ष-ऐसी महापूजा जहां याचकोंको इच्छित दान दिया जाय, इसे चक्रवर्ती करता है। (सा. अ. २-२९-२८)

यज्ञदीक्षा विधान-मंत्र सहित आभूषणादि पहननेकी विधि, जो प्रतिष्ठाके समय पूजकको करनी चाहिये। (प्र. सा. पृ. ४१-४१)

यज्ञोपवीत-जनेऊ. उसके बदलनेका मंत्र-"ॐ नमः परमशांताय शांतिकराय पवित्रीकृतायाहं रत्नत्रयस्वरूपं यज्ञोपवीतं दधामि मम गात्रं पवित्रं भवतु अर्हं नमः स्वाहा।" (क्रि. मं. पृ. ९२)

यज्ञोपवीत संस्कार-(उपनीति) गर्भान्वयका १४ वां संस्कार। जब बालक क्रमसे ८ वर्षका होजाय तब मुण्डन कराकर पूजा व होमके साथ मौंजी बन्धन व रत्नत्रयका चिह्न यज्ञोपवीत दिया जाता है तथा पंच पापके त्यागका उपदेश दिया जाता है। वह बालक संस्कारित हो गुरुकुलमें विद्याभ्यास करने जाता है [illegible] रहता है। देखो द्विज। (गृ. अ. ४)

याचना परीषह-भूख प्याससे पीड़ित होनेपर भी मुखसे या संकेतसे याचना नहीं करना। यह निर्ग्रन्थ जैन साधुओंके होती है। (सर्वा. अ. ९-९)

याचनी भाषा-अनुभय भाषाका एक भेद। यह मुझे दीजिये ऐसा कहना। (गो. जी. गा. २२५)

यापनीय संघ-कल्याणनगरमें वि० सं० ७०५ में श्री कलश नामके श्वेताम्बर साधुने चलाया। (दर्शनसार श्लोक २९)

युक्—जुँ

युक्तानन्त- } देखो प. त्रि. पृ. ९० युक्तासंख्यात- } स्वरूप जैन गणना।

युक्ति-तर्क, विचार, बुद्धि।

युक्त्यनुशासन-समंतभद्राचार्यकृत सं० मुद्रित।

युग-कल्पकाल-जैसे अवसर्पिणी उत्सर्पिणी कालका युग।

युधिष्ठिर-पांच पांडवोंमें बड़े जो शेत्रुंजय पर्वतसे मोक्ष हुए। (निर्वाणकाण्ड)

यूपकेशर-लवण समुद्रके उत्तर दिशाका पाताल देखो "पाताल" (त्रि. गा. १९)

योग-वाक्य; मन, वचन, कायके निमित्तसे आत्माके प्रदेशोंका चंचल होना द्रव्य योग है। कर्म नोकर्मके आकर्षण करनेवाली आत्माकी योगशक्ति भावयोग है। (जै. सि. प्र. नं. १२०-१२२-२०९); ध्यान,व्यापार-इसके तीन भेद हैं। (१) प्रारब्धयोग-जो ध्यान प्रारंभ करते हों, (२) घटमानयोग-जो ध्यान अभ्यासमें अच्छी तरह घटता हो, (३) निष्पन्नयोग-जिनका ध्यान पूर्णताको प्राप्त हो। (ज्ञा. अ. ३-६)

योगचन्द्र-योगसार आदि के कर्ता। (दि. जै. नं. ११०)

योगदुःप्रणिधान-मन, वचन, कायका दुष्ट [illegible] जिससे [illegible] हो। [illegible]

(सर्वा. अ. ७-३३)

योग [illegible]-मन, वचन, काय द्वारा [illegible]

योग मार्गणा-१५ योगोंके द्वारा जीवोंकी

जीवोंको देखा जावे तो मिल जायंगे। देखो "पंचदशयोग"

योगदेव-(देवसंघ) प्रायश्चित ग्रन्थ, द्रव्य संग्रह व तत्वार्थ सूत्र वृत्तिके कर्ता ।

(दि. ग्रं. १४८)

योग निग्रह-मन, वचन, कायका रोकना ।

योगीन्द्र देव-परमात्मप्रकाश, योगसार, अध्यात्म संदोह, सुभाषित तत्व, सूत्रकी तत्व प्रकाशिका टीका, नौकार श्रावकाचारके कर्ता ।

(दि. ग्रं. नं. २४९)

योगवक्रता-मन, वचन, कायकी कुटिलता ।

योगसंक्रांति-मन, वचन, काय योगोंका पलटना जो प्रथम शुक्लध्यानमें होता है ।

(सर्वा. अ. ९-४४)

योगसार-प्राकृत ग्रन्थ देवसेन कृत मुद्रित ।

योगस्थान-योगशक्तिके परिणमनके दरजे। इसके तीन भेद हैं। उपपाद-जो जन्मके प्रथम समयमें होता है । जो जीव मोड़ा लेकर जन्मे उसके जघन्य, जो सीधा जन्मे उसके उत्कृष्ट होता है। एकांतानुवृद्धियोग स्थान-जो उपपाद योगस्थानके दूसरे समयसे लेकर बढ़ता हुआ शरीर पर्याप्तिके पूर्ण होनेके पहले समय तक हो । ३-परिणाम योगस्थान-जो शरीर पर्याप्तिके पूर्ण होनेके पहले समयसे लेकर आयु पर्यंत हो । यहां योगस्थान कभी घटते कभी बढ़ने कभी एकसे रहते हैं । इनको घोटमान योगस्थान भी कहते हैं।

(गो. क. २१८-२२२)

योजन-उत्सेधांगुल वाला ४ कोसका जिससे चार गतिके जीवोंका शरीर, देवोंके नगर, मंदिर आदिकी मापकी गई है। इससे ५०० गुणा प्रमाणांगुल वाला २००० कोसका इससे पर्वत, नदी, द्वीप आदिकी मापकी गई है । (सि. द. पृ. ६०)

योनि-वह स्थान या आधार जहां जीव उत्पन्न होता है या जहां औदारिकादि नो कर्म वर्गणारूप पुद्गलोंके साथ बढ़े । इसके दो भेद हैं आकारयोनि गुणयोनि । आकार योनि तीन प्रकार है । शंखावर्त जिसमें गर्भ नहीं रहता, रहे तो नष्ट हो। कूर्मोन्नत योनि-इसीमें तीर्थंकरादि त्रेशठ शालाका पुरुष जन्मते हैं । वंशपत्र इसमें सब उपजते हैं तीर्थंकरादि नहीं (गो. जी. गा. ८२) गुणयोनि ९ प्रकार है देखो गुणयोनि व उसके ८४ लाख भेद है । चौरासी लक्षयोनि ।

योनि भूत बीज-जिस बीजमें पहले जीव था वह जीव निकल गया परन्तु उस बीजमें ऐसी शक्ति रही कि जो जलादिका निमित्त मिले तो उसमें फिर जीव आकर पैदा होसके। जिस बीजमें उगनेकी शक्ति हो अर्थात् जीव सहित होनेकी शक्ति हो उसे योनिभूत बीज कहते हैं । जब उसमें उपजनेकी शक्ति न हो तब वह अयोनी भूत बीज है । जीवके ग्रहणकी शक्ति रहती है इसलिये सूखे बीजोंको भी सचित्त माना जाता है ।

(गो. जी. गा. १८७)

योनिमत तिर्यंच-स्त्री वेदके उदय सहित तिर्यंच । (गो. जी. गा. ७१३)

योनिमत मनुष्य-स्त्री वेदके उदय सहित मनुष्य । (गो. जी. गा. ७१४)

र

रक्तवर्ण नामकर्म-जिसके उदयसे शरीरका वर्ण लाल हो । (सर्वा. अ. ८-११)

रक्तकंवला-मेरुके पांडुक वनमें शिला जिसपर पूर्व विदेहके तीर्थंकरोंका जन्माभिषेक होता है ।

रक्तवती-शिखरी पर्वतपर आठवां कूट ।

(त्रि. गा. ७२८)

रक्ता-मेरुके पांडुक वनमें शिला जिसपर ऐरावत क्षेत्रके तीर्थंकरोंका अभिषेक होता है । (त्रि. गा. ६३३); पांचवां कूट । (त्रि. गा. ७२८); शिखरी पर्वतपर ऐरावत क्षेत्रमें पूर्वको बहनेवाली नदी जो शिखरी पर्वतके पुन्डरीक द्रहसे निकली है । (त्रि. गा. ५७९)

रक्तोदा–ऐरावत क्षेत्रमें पश्चिमको बहनेवाली नदी जो शिखरी पर्वतके पुण्डरीक द्रहसे निकली है। (त्रि. गा. ५७९)

रक्षा–पिशाच व्यंतरोंका दूसरा भेद।
(त्रि. गा. २७१)

रजत–मध्यलोकका एक द्वीप जहां गरुड़ व्यंतरोंके नगर हैं (त्रि. ६२९) मेरुके नन्दन वनमें पांचवांकूट (त्रि. ६२९); माल्यवानगजदंत पर्वतपर छठकूट (त्रि. ७३८) इसपर भोग मालिनी देवीका निवास है। (त्रि. गा. ७४१) रुचक पर्वतपर दक्षिण दिशामें दूसरा कूट जिसपर समाहारा देवीका निवास है। (त्रि. ९९०); कुंडल पर्वतपर पांचवां कूट इसपर पुनदेव बसते हैं। (त्रि. गा. ९४५); चांदी।

रजताभ–कुंडल पर्वतपर छठा कूट जिसपर रजताभ देव बसता है। (त्रि. गा. ९४५)

रज्जु–जगतश्रेणीका सातवां भाग रज्जु है। सात राजू चौड़ा जगत है। उसकी लाइन जगतश्रेणी है। पल्यके अर्द्ध छेदको असंख्यातका भाग देकर जो आवे उतने घनांगुल लिखकर परस्पर गुणा करनेसे जो आवे वह जगतश्रेणीकी माप है। जैसे १६ पल्य है तब अर्धछेद ४ हुए, असंख्यातको २ मानकर भाग दिया तब २ रहे तब घनांगुल × घनांगुल=जगतश्रेणी।

(देखो जैन सिद्धा प्र०जि. ए. १०८)

रजस्वला धर्म–जब स्त्री रजो लक्षण देखे व पुष्पवती हो, तब उसको एकान्तमें संथारा डालके रात्रि दिन बैठना चाहिये यही ध्यान करना चाहिये। इस तरह तीन दिन बैठे। पहले दिन गरिष्ठ भोजन न करे, भोजन पत्तल या हाथमें करे। मिट्टीके बर्तनमें जल पीवे वह फिर काममें न लावे। तीन दिनतक श्रृंगार न करे, विषयभोग न करे, किसी पुरुषको व अपने पतिको भी न देखे, [illegible] रात्रिको रजोधर्म हो तो वह दिन न गिने। चौथे दिन स्नान करके उज्ज्वल वस्त्र पहन पहले पतिको देखे। पंचम दिन शुद्ध होके रसोई बना सक्ती है व जिन मंदिर जासक्ती है व दान देसक्ती है। तब ही गर्भ धारण किया संस्कार हो। (गृ. अ. २१)

रति–नोकषाय, जिसके उदयसे विषयोंमें प्रीति हो। (सर्वा. अ. ८–९)

रतिकूट–विजयार्द्धकी दक्षिण श्रेणीमें २७ वां नगर। (त्रि. गा. ७००)

रतिकर–नंदीश्वर द्वीपमें चार दिशामें चार अंजनगिरि हैं। फिर एकएक अंजनगिरिकी चारों तरफ चार बावड़ी हैं जिनके मध्य दधिमुख पर्वत है। इन बावड़ीके बाहरी दोकोनों पर दो रतिकर पर्वत हैं। एक अंजनगिरि सम्बन्धी, आठ रतिकर हैं। कुल ३२ हैं। ये लाल सुवर्ण समान लाल हैं गोल हैं व १००० योजन ऊंचे हैं। इनपर जिन मंदिर हैं (त्रि. गा. ९६७–८)

रतिप्रिय–किन्नर व्यंतरोंका एक प्रकार।
(त्रि. गा. २५८)

रतिप्रिया–किन्नरोंके इन्द्रोंकी वल्लभिकादेवी।
(त्रि. गा. २५८)

रतिषेणा–किन्नरोंके इन्द्रोंकी वल्लभिका देवी।
(त्रि. गा. २५८)

रत्न–चक्रीके १४ रत्न। देखो "चतुर्दश रत्न"

रत्नकवि–कन्नड पुराण कनड़ीका कर्ता।
(दि. ग्रं. नं. २९०)

रत्नकरण्ड श्रावकाचार–समन्तभद्राचार्य कृत सं०, भाषा पं० सदासुख कृत मुद्रित।

रत्नकीर्ति–आराधना टीकाके टीकाकार, भद्रबाहु चरित्र आदिके कर्ता। (दि. ग्रं. नं. २९१); पं० [illegible] कर्ता (दि. ग्रं. ११५)

रत्नचन्द्र मुनि–(सं० १६००) भद्रबाहु चरित्र, सुभग चरित्र आदिके कर्ता।
(दि. ग्रं. नं. २९१)

रत्नत्रय–सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र। इसको मोक्षमार्ग कहते हैं।

रत्नत्रय व्रत–एक वर्षमें तीनबार। भादों माघ व चैत्र सुदी द्वादश व पड़िवाको एकासन करे, तेरस चौदस पंद्रहका तेला करे। ५ दिन शीलपाले ऐसे तीन वर्ष करे, फिर उद्यापन करे। यह उत्कृष्ट है। शक्ति न हो तो चौदसका उपवास करे, शेष दिन एकासन करे। (कि. क्रि. पृ. १०९)

रत्नधार यति–वाग्भट्टालंकारकी टीकाके कर्ता। (दि. ग्रं. नं. २१०)

रत्ननन्दि–(सं० १६१) आचार्य, भ० भद्रबाहु चरित्र, पल्य विधानके कर्ता।
(दि. ग्रं. नं. २१४-२१९)

रत्ननिधि–चक्रीकी नौ निधिमेंसे जो रत्नोंको देवे। (त्रि. गा. ६८२)

रत्नप्रभा–पहली पृथ्वी जो मध्यलोकसे लगती है। इसके तीन भाग हैं। (१) खरभागा (२) पंकभागा (३) अब्बहुलभागा। खरभागा १६००० योजन मोटी है जिसके भीतर १६ पृथ्वियां एक एक हजार योजन मोटी हैं। पहली चित्रा जहां हम सब रहते हैं, यह सुमेरुपर्वतकी जड़तक चली गई है। २ वज्रा, ३ वैडूर्या, ४ लोहिता, ५ कामसारकल्पा, ६ गोमेदा, ७ प्रवाला, ८ ज्योतीरसा, ९ अंजना, १० अँजनमूलिका, ११ अंका, १२ स्फटिका, १३ चन्दना, १४ सर्वर्थका १५ वकुला १६ शैला। सबकी लम्बाई चौड़ाई लोकके अंततक है। नीचे ऊपरके दो भागोंको छोड़कर १४ भागोंमें ९ प्रकार भवनवासी व ७ प्रकार व्यंतर रहते हैं। दूसरी पंकभागा ८४००० योजन मोटी है इसमें असुर कुमार भवनवासी और राक्षस व्यंतर रहते हैं। तीसरी पृथ्वी ८०००० योजन मोटी है इसीमें पहले नर्कके तीस लाख बिल हैं। व इसमें १३ पटल व १३ इंद्रक मध्यके बिल हैं। पहला सीमन्त है जो ४५ लाख योजन ढाई द्वीप प्रमाण चौड़ा है। पहले पटलमें जघन्य आयु नारकीकी १०००० वर्ष है। १३ वेंमें उत्कृष्ट एक सागर आयु है। यहां ऊँचाई ७ धनुष तीन हाथ ६ अंगुल हैं। यहांके नारकी मात्र ४ कोस तककी भवविज्ञानकी शक्ति रखते हैं। (त्रि. गा. १४४)

रत्नपुर–विजयार्द्धकी उत्तर श्रेणीमें ६० वां नगर। (त्रि. गा. ७०८)

रत्ननिभ- ज्योतिषके ८८ ग्रहोंमें आठवां ग्रह। (त्रि. गा. ३६३)

रत्नवत–रुचक पर्वतकी उत्तर दिशामें सातवां कूट। (त्रि. गा. ९५४)

रत्नसंचया–विदेह क्षेत्रकी १६वीं राजधानी। (त्रि. गा. ७१३)

रत्नसिंह–धर्मसिंहके शिष्य। प्राणप्रिय काव्यके कर्ता। (दि. ग्र. नं. ४१८)

रत्नाकर–विजयार्द्धकी उत्तर श्रेणीमें ५९ वां नगर। (त्रि. गा. ७०८)

रत्नाढ्या–राक्षसोंके इन्द्र महाभीमकी वल्लभिका देवी। (त्रि. गा. २६८)

रत्नावली व्रत–एक वर्षमें ७२ उपवास, १ मासमें ६ करे सुदी तीन, पांचम, आठम, वदी २, पांचम, आठम। (कि. क्रि. का. पृ. ११७)

रत्नावली यष्टि–सुवर्ण और मणियोंसे गूंथी हुई मोतीकी माला। (आ. प. १६-५०)

रत्नी–असुरकुमारेन्द्र चमरकी ज्येष्ठ देवी। (त्रि. गा. २३६)

रत्न–कर्णाटक कवि–अजित पुराण व गदायुद्धका कर्ता। (जन्म सन् ९४९) कवि चक्रवर्ती आदि उपाधिधारी। इसके गुरू अजितसेनाचार्य थे। वह राज्यमान्य था। (क. नं. १६)

रथ मथन–सौधर्मादि इन्द्रोंकी रथोंकी सेनाका प्रधान। (त्रि. गा. ४९७)

रथनूपुर–विजयार्द्धकी दक्षिण श्रेणीका १२ वां नगर। (त्रि. गा. ६९८)

रमणीया–विदेहके ३२ देशोंमेंसे एक देश जो सीता नदीके दक्षिण तटपर है। (त्रि. गा. ६८८) नंदीश्वर द्वीपकी उत्तर दिशाकी एक बावड़ी। (त्रि. गा. ९७०)

रम्यक—जंबूद्वीपका पांचवां क्षेत्र जहां मध्यम भोगभूमि सदा रहती है। (त्रि. गा. ५६४, ६९२) नील पर्वतपर आठवां कूट, रुक्मी पर्वतपर तीसरा कूट। (त्रि. गा. ७२६-२७)

रम्या—विदेहके ३२ देशोंमेंसे एक देश जो सीता नदीके दक्षिण तटपर है। (त्रि. गा. ६८८); नंदीश्वर द्वीपकी उत्तरदिशाकी एक बावडी।

(त्रि. गा. ९७०)

रस—पांच रस पुद्गलके खट्टा, मीठा, चरपरा, कडुवा, कषायला। छः रस भोजनके दूध, दही, घी, शक्कर, तेल, निमक।

रस ऋद्धि—छः प्रकार—(१) आस्यविष—साधु किसीको कहें तू मरजा तो वह तुर्त मर जावे, (२) दृष्टि विष—क्रोध कर देखलें तो विष चढ़ जावे। (३) क्षीरस्रावी—साधुके हाथमें नीरस आहार भी क्षीर होजाय जिनके वचन तृप्तकारी हो, (४) मधुस्रावी—जिनके हाथमें नीरस भोजन मधुर होजाय व जिनके वचन श्रोताओंको प्रिय लगे, (५) सर्पिस्रावी—साधुके हाथमें प्राप्त रूखा अन्न चिकना होजाय या जिनके वचन घृतकी तरह सुखी करे, (६) अमृतस्रावी—जिनके हाथमें आहार अमृततुल्य होजाय व जिनके वचन अमृतसम तृप्ति करे।

रयणसार—प्रा० ग्रन्थ कुन्दकुन्दाचार्य कृत।

रविकीर्ति—कवि (शक ५५६) चालुक्यवंशी पुलकेशी महाराजाश्रित। (दि. ग्रं. नं. २९९); ऐहोल लादागी स्टेशन (बीजापुर) से १४ मील, यहां पर्वतपर विशाल मेघुटी मंदिर है। उसके लेखसे प्रगट है कि इसने शाका ५०७ में बनवाया था। (बम्बई जैन स्मारक पृ. ९२)

रविकोटी आचार्य—(सन् ११८०) कर्णाटक जैन कवि। (क. ७१)

रविनन्दि—मुनि तत्वार्थकी सुखबोधिनी टीकाके कर्ता। (दि.ग्रं. नं. २९६)

रविषेणाचार्य—(काष्ठासंघी) पद्मपुराण सं० (१८०००) के कर्ता वि. सं. ७२५।

(दि. ग्रं. नं. २९७)

रविषेण भ०—पूजा कल्पादिके कर्ता।

(दि. ग्रं. २९८)

रसगारव—छः रस सहित भोजन मिलनेका अभिमान। (म. पृ. १२७)

रसदेवी—शिखरी पर्वतपर चौथा कूट।

(त्रि. गा. ७८८)

रसनाम कर्म—जिसके उदयसे शरीरमें रस हो।

(सर्वा. अ. ८-११)

रस परित्याग तप—इंद्रिय विजय व ध्यानकी सिद्धिके अर्थ घी आदि रसोंको छोड़ना।

(सर्वा. अ. ९-११)

रसवाणिज्य—मक्खन, लोनी आदिका व्यापार।

(सा. अ. ५-१२)

रहोभ्याख्यान—सत्य अणुव्रतका दूसरा अतिचार, स्त्री पुरुषकी एकांत क्रिया विशेषको जानकर प्रगट करना। (सर्वा. अ. ७-२६)

राक्षस—व्यंतरोंमें छठा भेद, इनका शरीर काले रंगका होता है। इनमें सात प्रकार हैं भीम, महाभीम, विघ्नविनायक, उदक, राक्षस, राक्षसराक्षस, ब्रह्मराक्षस, इनके इन्द्र, भीम, महाभीम हैं।

(त्रि. गा. २५६-२६७-८)

राग—प्रेम, प्रीति, स्नेह, माया व लोभ कषाय तथा हास्य, रति व तीन वेदके भाव।

राजगृह-सिद्धक्षेत्र—यहां श्री जीवंधरकुमार आदि अनेक साधु मोक्ष गए हैं। पटना जिलेमें राजगृही स्टेशन। पांच पर्वत हैं, विपुलाचलादि। इनपर प्राचीन जिन मंदिर हैं। यहां मुनिसुव्रत तीर्थंकरका जन्म हुआ है। महावीरस्वामीका समवशरण यहां बहुतवार आया है। दि. जैन मंदिर व धर्मशाला है। ([illegible])

[illegible]

राजसिंह–धर्मरत्नाकर श्रावकाचारके कर्ता। (दि. ग्रं. नं. ६०)

राजर्षि–जिन साधुओंके विक्रिया व अक्षीण ऋद्धि सिद्ध हो। (सा. म. ७-२०)

राजा–अठारह श्रेणीका अधिपति। देखो अष्टादशश्रेणी।

राजादित्य–कर्णाटक कवि (सन् ११२०) विष्णुवर्द्धन राजाके प्रधान पंडित, गणित ग्रन्थोंका कर्ता, व्यवहार गणित बहुत माननीय है। (क. १९) (त्रि. गा. ६८३

राजाधिराजा–१०० राजाओंका स्वामी।

राजाराम–पं० धन्यकुमार चरित्रका कर्ता। (दि. ग्रं. नं ६१८)

राजू–देखो "रज्जू"

राज्य–रुचक पर्वतकी पश्चिम दिशापर पांचवा कूट, जिसपर एकनाशा देवी बसती है। (त्रि. गा. ९९२-३)

राज्योत्तम–रुचक पर्वतके अभ्यंतर कूटोंमें उत्तरदिशाका एक कूट जिसपर रुचकदेवी सती हैं जो तीर्थंकरके जन्ममें सेवार्थ जाती है। (त्रि. गा. ९९९)

रात्रि पूजा–आरती करना, दीप, धूपसे पूजा करनी। (क्रि. म. पृ. ६ कु. नो)

रात्रि भुक्ति (भोजन) त्याग प्रतिमा–श्रावकका छठा दरजा जहां रात्रिको चार प्रकारका भोजन न करा जाता है न कराया जाता है व रात्रिको वह भोजन सम्बन्धी आरम्भ भी नहीं करता है। (गृ. अ. १२)

रात्रि भोजन त्याग अतीचार–जिसको रात्रिको चार प्रकार आहारका त्याग है वह दो घडी या ४८ मिनट सूर्य अस्त होनेके पहले व दो घडी सूर्योदयके ऊपर भोजन करेगा। (सा. अ. ३–१९)

रामचन्द्र–आठवें बलभद्र, मांगीतुंगीसे मोक्ष गए; आचार्य सं० ९४७; पं० खण्डेलवाल दिल्ली (सं० १७२३) २४ पूजापाठ, सम्मेद शिखर पूजा, सीता चरित्रके कर्ता। (दि. ग्रं. नं. १६१–११६)

रामचन्द्र मुमुक्षु–पुण्यास्रव कथाकोष व २४ पूजाके कर्ता। (दि. ग्रं. २६२)

रामसिंह–मुनि–प्राभृत दोहाके कर्ता। (दि. ग्रं. नं. २६४) पं०–सीता चरित्र छंदके कर्ता। (दि. ग्रं. १२२)

रामसेन–अपर नाम पात्रकेसरी–अष्टशती अपूर्ण लिखी उसे धर्मभूषणने पूर्ण की। (दि. ग्रं. २६३); मुनि–मथुरामें सं० ९५३में माथुरसंघके स्थापक। (दर्शनसार गा. ४०)

रामा–स्वर्गके उत्तर इन्द्रोंकी महादेवीका नाम। (त्रि. गा. ५११)

रायमल्ल पं०–समयसार कलश भाषा टीका, लाटी संहिता, प्रवचनसार व पंचास्तिकाय, द्रव्यसंग्रहकी टीका, अध्यात्म कमल मार्तंडके कर्ता, शायद पंचाध्यायीके भी आप ही कर्ता हैं। ब्र.–हनुमत् चरित्र छंद (सं० १६१६) के कर्ता। (दि. ग्रं. नं. २६९–३१९) रायमल्लकी समयसार कलश टीकाको देखकर पंडित बनारसीदासने नाटक समयसार रचा है; पं० (सं० १६६३) ज्ञानानंद निजरस निर्भर श्रावकाचारके व चर्चा ग्रन्थ वचनिका व भविष्यदत्त चारित्रके कर्ता। (दि. ग्रं.नं. १२०)

रावण–प्रतिनारायण ८ में वर्तमान भरतके सीताको हरणकर तीसरे नर्क गए।

राहु–ज्योतिषके ८८ ग्रहोंमें ८१ वां ग्रह। (त्रि. गा. ३७०)

रुकमणी व्रत–श्रीकृष्णकी पटरानी रुक्मणीने लक्ष्मीमतीके भवमें जो व्रत किया था। भादो सुदी अष्टमी, दशमी, बारस, चौदसको उपवास करे इस तरह ४ उपवास आठ वर्षतक करे। (क्रि. क्रि. पृ. १३६)

रुकमि पर्वत–जंबूद्वीपमें पांचवा कुलाचल पर्वत समुद्र तक लम्बे गए हैं, रंग सफेद है। इसपर

महा पुण्डरीक द्रह है, जिसमें बुद्धिदेवी रहती है। (त्रि. गा. ५६९); रुक्मी पर्वतपर दूसरा कूट। (त्रि. गा. ७२७)

रुचक-तेरहवां द्वीप व समुद्र, रुचक द्वीपके मध्यमें पर्वत, रुचक पर्वतपर अभ्यंतर कूट जिसपर रुचककीर्ति देवी बसती है। (त्रि. गा. ३०९-९९२-९९८); रुचकगिरिकी परिधिपर उत्तर दिशाका छठा कूट जिसपर सत्यादेवी बसती है। (त्रि. गा. ९९२); सौधर्म ईशान स्वर्गका १९ वां इन्द्रक विमान। (त्रि. गा. ४६९); स्वर्गके उत्तर इन्द्रोंके विमानके पूर्व ओरका विमान। (त्रि. गा. ४८९); मेरु पर्वतके नन्दनवनमें छठा कूट। (त्रि. गा. ६२९); निषद्ध पर्वतपर नौमा कूट। (त्रि. गा. ७२९) कुंडल पर्वतपर १२ वां कूट (त्रि. गा. ९४६)

रुचकवर-रुचकद्वीप या समुद्र। १३वां (त्रि.९०)

रुचकाभ-कुण्डल पर्वतपर १४ वां कूट। (त्रि. ग. ९४६)

रुचका-रुचक पर्वतके अभ्यंतर कूट वैडूर्यपर बसनेवाली देवी (त्रि. गा. ९५९)

रुचक कीर्ति-रुचक पर्वतके अभ्यंतर रुचक कूटपर बसने वाली देवी (त्रि. गा. ९९९)

रुचककांता-रुचक पर्वतके अभ्यंतर मणिकूटपर बसने वाली देवी (त्रि. गा. ९९९)

रुचकप्रभा-रुचक पर्वतके अभ्यंतर राज्योत्तम कूट पर बसने वाली देवी (त्रि. गा. ९९९)

रुद्र-ज्योतिषके ८८ ग्रहोंमें ४९ वां ग्रह। (त्रि. गा. ३६७) भरतके वर्तमान ११ रुद्र हैं भीमावलि, जितशत्रु, रुद्र, विश्वानल, सुप्रतिष्ठ, अचल, पुण्डरीक, अजितंधर, जितनाभि, पीठ, सात्यकि तनय। [illegible] रुद्र [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] वर्षकी थी। ये रुद्र पहले मुनि होजाते हैं, विद्यानुवाद १० वें पूर्वतकके ज्ञाता होकर संयम नष्ट करके भ्रष्ट होकर नरक जाते हैं परंतु ये सब भव्य हैं। सम्यक्त छूट जाता है, अंतमें सब सिद्धपद पावेंगे। (त्रि. गा. ८३६-८४१) दोसरे रुद्र व तीसरे नारदका नाम।

रूपगता-चूलिका, दृष्टिवाद अंगमें चौथी चूलिका जिसमें सिंहादि रूप बनानेका विधान है, इसके १०९८९२०० पद हैं। (गो. जी. ३६३-४)

रूपचन्द्-पं० श्रावक प्रायश्चित, समवशरण पूजादिके कर्ता। (दि. ग्रं. नं. १६६); पांडे-बनारसीदासके समयमें, पंच मंगल, गीत परमार्थी, परमार्थ दोहा, पदसंग्रहके कर्ता। पं० बनारसीदास कृत नाटक समयसारकी टीकाके कर्ता। (सं० १७९८) (दि. ग्रं. नं. १२२-१९२)

रूप निर्भास-ज्योतिषके ८८ ग्रहोंमें ९ वां ग्रह (त्रि. गा. ३६३)

रूपपाली-किन्नरोंका चौथा प्रकार। (त्रि. गा. २५७)

रूपवती-भूत व्यंतरोंके इन्द्र स्वरूपकी महत्तरिका देवी। (त्रि. गा. २७८)

रूपसत्य-पुद्गलके अनेक गुण होनेपर भी किसी वर्णकी अपेक्षासे मुख्यता करके कथन करना जैसे यह पुरुष सफेद है, [illegible] श्याम हैं, [illegible] तो भी यह कथन [illegible] है। १० प्रकार [illegible] भेद। (गो. जी. २२१)

रूपस्थ ध्यान-अर्हतके स्वरूपका व उनकी मूर्तिका ध्यान करना।

रूपातीत ध्यान-सिद्ध भगवानका ध्यान करना।

रूपानुपात-[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। (सर्वा. अ. ७-३१)

[illegible]-[illegible]

पुण्डरीकसे निकलकर, हैरण्यवत क्षेत्रमें रहकर पश्चिम समुद्रमें गिरनेवाली नदी है । (त्रि. गा. ५७९); रुक्मी पर्वतपर छठा कूट । (त्रि, गा. ७२७)

रूप्यगिरि–विजयार्द्ध पर्वत। देखो 'विजयार्द्ध'

रूप्यवर–मध्यलोकमें अंतके १६ द्वीपोंमें सातवां द्वीप । (त्रि. गा. ३०६)

रूक्षस्पर्श नामकर्म–जिसके उदयसे शरीर रूखा हो । (सर्वा. अ. ८–१२)

रेवती–रानी मथुराकी, अमूढदृष्टि अँगमें प्रसिद्ध चंद्रप्रभ विद्याधर द्वारा परीक्षा करनेपर भी दृढ़ रही अन्य कुदेवकी मान्यता न की। (श्रा. क. ९)

रैवाण सिद्ध कवि–निघंटु वैद्यक (१२०००) के कर्ता । (दि. ग्रं. नं. २६७)

रैधू कवि–प्राकृतके पंडित, दसलक्षण, षोडष-कारण, रत्नत्रय, व्रतसार, षट्धर्मोपदेश रत्नमाला, भविष्यदत्त चरित्र, करकण्डु चरित्र, श्रीपाल चरित्र आदिके कर्ता । (दि. ग्रं. २६८)

रोगपरीषह–साधुके शरीरमें रोग होजानेपर उसको समता भावसे सहलेना । (सर्वा.अ. ९–९)

रोचन–उत्तर कुरुका दिग्गज पर्वत । (त्रि. गा. ६६२)

रोहिणी–किंपुरुष व्यंतरोंके इन्द्र सत्पुरुषकी वल्लभिका देवी । (त्रि. गा. २६०)

रोहिणी व्रत–जिस दिन रोहिणी नक्षत्र हो उस दिन उपवास करे–२७ उपवास २। वर्षमें पूर्ण करे । (क्रि. क्रि. पृ. १२३)

रोहित–सौधर्म ईशान स्वर्गोंका १० वां इन्द्रक विमान (त्रि. गा. ४६४); महा हिमवन पर्वतके महापद्म द्रहसे निकल कर हैमवत क्षेत्रमें बह पूर्व समुद्रमें गई । (त्रि. गा. ५७८)

रोहिता–महा हिमवन् पर्वतपर चौथा कूट । (त्रि. गा. ७२४)

रोहितास्या–हिमवत पर्वतके पद्म द्रहसे निकल-कर हैमवत क्षेत्रमें बहकर पश्चिम समुद्रमें गई । (त्रि. ५७९); हिमवत् कुलाचलपर सातवां कूट (त्रि. गा. ७२१)

रौद्रध्यान–रुद्र अर्थात् क्रूर या दुष्ट आशयसे होनेवाले ध्यान–चार भेद हैं । हिंसानन्द, मृषानन्द, चौर्यानन्द, विषय संरक्षणानन्द या परिग्रहानन्द, हिंसा, झूठ, चोरी, परिग्रहमें आनन्द मानना । यह नर्कगतिका कारण है । (सर्वा. अ. ९-२८-३५)

रौरव–प्रथम नर्कका तीसरा इन्द्रक बिला । (त्रि. गा. १५४)

र्हं–मंत्रराज–पदस्थध्यानमें इस मंत्रको सुवर्णमय कमलके मध्य कर्णिकापर विराजित सफेद रंगका धारक आकाशमें गमन कराते हुए व दिशामें प्राप्त होते हुए ध्यावे । यह जिनेन्द्र भगवानका वाचक है । (ज्ञानार्णव ३८ प्रक.)

ल

लख चौरासी–देखो "चौरासी लाख योनी"

लघीयस्त्रयादि संग्रह–सं॰ बम्बईमें मुद्रित ।

लघु कल्याणक व्रत–२४ तीर्थकरोंके पंचक-ल्याणकोंके उपवास करना, देखो "पंचकल्याणक व्रत" (क्रि. क्रि. १३३)

लघु चौंतीसी व्रत–अरहंतके ३४ अतिशयका व्रत । ६५ उपवास करे । २० दसमी + २४ चौदस + ४ चौथ + १६ अष्टमी + ५ पंचमी + ६ छठ । (क्रि. क्रि. पृ. १२०)

लघु मृदंगमध्यव्रत–२३ उपवास, ७ पारणा १ मासमें करे । पहले वेला, फिर तेला, फिर चौला फिर पांच उपवास फिर चौला, तेला, वेला=२३ (क्रि. क्रि. पृ. ११८)

लघु सुख सम्पत्ति व्रत–१२० उपवास करे । १ पड़वा + २ दोज + ३ तीज + ४ चौथ + ५ पंचमी + ६ छठ + ७ सप्तमी + ८ अष्टमी + ९ नौमी + १० दसमी + ११ ग्यारस + १२ बारस + १३ तेरस + १४ चौदस + १५ पंद्रस=१२० (क्रि. क्रि. पृ. ११५)

लघुस्पर्श नामकर्म–जिसके उदयसे शरीर हलका हो । (सर्वा. अ. ८–११)

लक्ष्मण–भरतके वर्तमान ८ वें नारायण, रावणके वधकर्ता । पं०–शिक्षानुशासनके कर्ता ।

(दि. ग्रं. २७५)

लक्ष्मीचन्द्र–(सं० १०३३) आचार्य । (दि. ग्रं. नं. २७०); पंडित–श्रावकाचार दोहाके कर्ता । (दि. ग्रं. नं. २७१); भ० देवेन्द्रकीर्तिके शिष्य–यशोधर चरित्रके कर्ता । (दि. ग्रं. नं. २२४)

लक्ष्मीदास–पं० यशोधर चरित्र, श्रेणिकचरित्र छंदके कर्ता । (दि. ग्रं. नं. १३९)

लक्ष्मीदेव–तत्वार्थ टीका व समवसरण पूजाके कर्ता । (दि. ग्रं. नं. २७२)

लक्ष्मीसेन–ज्वालामालिनी, कर्मचूरादिके कर्ता ।

(दि. ग्रं. नं. २७६)

लब्धि–नौ केवललब्धि=९ क्षायिक भाव–अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त दान, अनन्त लाभ, अनन्त भोग, अनन्त उपभोग, अनन्त वीर्य, क्षायिक सम्यक्त, क्षायिक चारित्र ये अरहंत भगवानके होते हैं । क्षयोपशम लब्धि ५–अन्तरायके क्षयोपशमसे थोड़ी शक्तिकी प्राप्ति । दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य । (सर्वा. अ. २–४ व ५); पांच लब्धि सम्यक्तको कारणभूत । देखो "पंचलब्धि"

लब्धि विधान व्रत–तीन वर्ष करे । हरएक भादों, माघ व चैतमें वदी १५ को करे फिर बेला तीन दिनका करे, चौथे पारण करे, [illegible] पाले । ([illegible])

लब्धिसार–श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्तिकृत प्राकृत गं० [illegible] टीका सहित पं० टोडरमल भाषाकार । सं० १८१८ ।

लब्धीन्द्रिय–([illegible] इन्द्रिय) [illegible] ज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशमसे [illegible] इन्द्रियोंके द्वारा जाननेकी शक्ति [illegible] यह पहला भेद । (सर्वा. अ. २–१८)

लब्ध्यपर्याप्तक–अपर्याप्ति नाम कर्मके उदयसे जो आहारादि किसी पर्याप्तिको पूर्ण न करके एक श्वास (नाड़ी) के १८ वें भाग कालमें जीकर मर जावे । देखो "पर्याप्ति"

लब्ध्यपर्याप्ति–पर्याप्तिकी अपूर्णता देखो 'पर्याप्ति'

लब्ध्यक्षर (लब्धि अक्षर)–पर्यायज्ञान–सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्तक जीवके उत्पन्न होनेके पहले समयमें सबसे जघन्य श्रुतज्ञान होता है । श्रुतज्ञानावरणका क्षयोपशम जो [illegible] नहीं होती है, इसको नि[illegible] ज्ञान भी कहते हैं, यह जघन्य ज्ञान उस निगोदके होगा जो ६०१२ वें भवमें तीन वक्रता लिये जाते उसके विग्रह गतिके पहली वक्रताके समय यह होगा ।

(गो० जी० गा० ३२१–३२२)

ललुकि–छठे नर्कका तीसरा इन्द्रक बिला ।

(त्रि० गा० १९८)

ललितकीर्ति–भ० जिनसेन कृत आदिपुराण टीका (५०००), त्रिलोकसार पूजा, सिद्धचक्र पूजाके कर्ता । (दि. ग्रं. नं. २७७)

लव कुश–रामचंद्रजीके पुत्र पावागढ़से मोक्ष गए ।

लवण समुद्र (लवणोदधि)–जम्बूद्वीपको खाईके समान घेरे हुए [illegible] समुद्र दो लाख योजन चौड़ा । [illegible] चार, विदिशामें [illegible] १००० [illegible] देखो [illegible] [illegible] योजन [illegible]

हैं। इनके स्वामी उनहींके नामधारक देव हैं। चक्री इनको वश करते हैं तथा अड़तालीस कुमनुष्योंके द्वीप हैं। देखो "कुमनुष्य द्वीप, अनार्य मनुष्य" (त्रि. गा. ३०७-८९६-९२४)

लक्षण-बहुतसे मिले हुए पदार्थोंमेंसे जिस पहचान या गुण या हेतुसे किसी एक पदार्थको जुदा करसकें। इसके दो भेद हैं-१ आत्मभूत-जो वस्तुके साथ रहे कभी जुदा न हो, जैसे अग्निका लक्षण उष्णपना। २ अनात्मभूत-जो वस्तुके स्वरूपमें मिला न हो जैसे दंडी पुरुषका लक्षण दंड। लक्षणमें तीन दोष होते हैं। अव्याप्ति-जो लक्षण लक्ष्यके एक देशमें रहे सबमें न रहे। जैसे पशुका लक्षण सींग व जीवका लक्षण रागद्वेष। अतिव्याप्ति-जो लक्षण लक्ष्य और अलक्ष्य दोनोंमें रहे, जैसे गौका क्षलण सींग या जीवका लक्षण अमूर्तीकपना। असम्भव-जो लक्ष्यमें संभव ही न हो। जैसे मनुष्यका लक्षण सींग। (जै० सि० प्र० २)

लक्षणाभास-सदोष लक्षण जिसमें अतिव्याप्ति अव्याप्ति व असंभव दोष आजावें।

लक्ष्मी-धन, केवलज्ञानरूप ऐश्वर्य; शिखरी पर्वतके पुण्डरीक द्रहमें बसनेवाली देवी, यह ईशान इन्द्रकी आज्ञाकारिणी हैं, (त्रि० ५७२-५७७); शिखरी पर्वतपर छठा कूट (त्रि० ७२८); रुचक पर्वतके पद्मकूटपर बसनेवाली देवी। (त्रि.गा.९५१)

लक्ष्य-जिसका लक्षण किया जावे। (जै० सि० प्र० ८)

लांगल-सनत्कुमार माहेन्द्र स्वर्गोंका छठा इंद्रक विमान। (त्रि० गा० ४६६)

लांगलवती-विदेहके १२ देशोंमेंसे सीता नदीके उत्तर तटपर पांचवां देश। (त्रि० गा० ६८७)

लान्तव-सातवां स्वर्ग; लान्तव कापिष्टका दूसरा इन्द्रक। (त्रि०गा० ६९८-६६७)

लाभ क्षायिक (अनन्त लाभ)

लाभान्तराय कर्म-जिस कर्मके उदयसे लाभ न होसके। (सर्वा० अ० ८-१३)

लालचन्द-पं० सांगानेरी-(सं० १८१८)-षट्कर्मोपदेश, रत्नमाला विमलपुराण, सम्यक्त कौमुदी, आगम शतक, पंचपरमेष्ठी पूजा, त्रिलोकसार पूजा, तेरहद्वीप पूजा, समवशरण पूजादिके कर्ता। (दि० ग्रन्थ नं० १२६); पं० समवशरण पूजाके कर्ता। (दि० ग्रन्थ नं० १२७)

लालचन्द नथमल-भक्तामर चरित्र छंदके कर्ता। (दि० ग्रन्थ नं० १३०)

लालजीमल्ल-पं० बासठ ठाणा पूजाके कर्ता। (दि० ग्रन्थ नं० १२९)

लालमणि दीवान-रस प्रकाश अलंकार छंदके कर्ता। (दि० ग्रन्थ नं० १२८)

लाक्षा वाणिज्य-लाख आदि हिंसक पदार्थोंका व्यापार करना। (सा० अ० ५, २१-२३)

लिङ्ग-वेद, स्त्री, पुरुष, नपुंसक; द्रव्यलिंग शरीर चिह्न-स्त्री पुरुष नपुंसक; भेष-मुनि, ऐलक, क्षुल्लक, आर्यिका।

लिङ्गजन्य-श्रुतज्ञान-अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान-चिह्नसे उत्पन्न होनेवाला श्रुतज्ञान, एकेन्द्रियसे लेकर पंचेन्द्रिय तक सर्व जीवोंके होता है, इसमें अक्षर सुननेकी जरूरत नहीं पड़ती है, जैसे शीतल पवनका स्पर्श मतिज्ञान है उसके ज्ञानसे यह मानना कि यह बुरी है या कष्टपद है सो अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान है। (गो. जी. ३१५)

लिपि-शब्द व वाक्य लिखनेकी रीति जैसे हिन्दी, देवनागरी, उर्दू, इंग्रेजी, बंगला, उड़िया, कनड़ी, तामील, तेलगू, गुजराती, आदि। देखो प्र. जि. "अक्षरलिपि" पृ. ६७।

लिपिसंख्यान क्रिया-गर्भान्वयका ११ वां संस्कार। जब बालक ५ वर्षका होजाय तब पोटिशके मंत्रोंसे होम पूजादि करके उपाध्यायके पास पढ़ने बिठाले, पहले ॐ अक्षरको अक्षतोंको जोड़कर या केशरकी कलमसे पाटीपर लिखावे, फिर "ॐ नमः सिद्धेभ्यः" लिखवावे। देखो विधि (गृ. अ. १४-३)

लिप्तदीप-जो वस्तिका घी तेल खांड आदिसे लिप्त हो उसमें साधु ठहरे। (भ. पृ. ९६)

लुम्पक-लोंकामत-स्थानकवासी श्वेताम्बरोंमें लुंपक नामा लिखारीने संवत १५०८में मत चलाया, प्रतिमा पूजन निषेध किया। शास्त्र रचे। इसीमेंसे सं. १५७ में वेषधने बीजा नामका मत निकाला। व सं० १६७२ में रूपचंद तराणेने नागौरी लुंपक मत निकाला। (श्वे. जैन मत पक्ष पृ. ६६)

लेपी-हथेलीपर चमकनेवाले भोज्य पदार्थ। (सा० अ० ८-९७)

लेश्या-दो प्रकार हैं-द्रव्यलेश्या-शरीरका वर्ण। भावलेश्या-जिसके द्वारा संसारी जीव पाप पुण्यसे लिपे या बंधे। मन, वचन, काय, योगोंकी प्रवृत्ति जो कषायोंके उदयसे अनुरंजित हो या रंगी हुई हो उसको भावलेश्या कहते हैं। इनमें योगोंसे प्रकृति व प्रदेश बंध, कषायसे स्थिति व अनुभाग बंध होता है। इसके १६ अधिकार हैं १-निर्देश, २ वर्ण, ३ परिणाम, ४ संक्रम, ५ कर्म, ६ लक्षण, ७ गति, ८ स्वामी, ९ संख्या, १० क्षेत्र, ११ स्पर्शन, १२ काल, १३ अंतर, १४ भाव, १५ अंतर, १६ अल्प बहुत्व। लेश्या ६ हैं-कृष्ण, नील, कपोत (भूरी), पीत, पद्म (लाल), शुक्ल। द्रव्यलेश्या वर्णको कहते हैं। नारकी सब कृष्ण होते हैं। कल्पवासी देव भावलेश्याके समान रंग शरीरका रखते हैं। जैसे सौधर्म ईशान स्वर्गवाले पीत रंगके हैं। भवनत्रिक देवोंके, देव विक्रियावालेके व मनुष्य व तिर्यंचोंके छहों ही वर्ण होसक्ते हैं। उत्तम भोगभूमिवाले मनुष्य तिर्यंच सूर्य समान, मध्यवाले चंद्रमा समान व जघन्यवाले हरित वर्णके हैं।

बादर जल काय शुक्ल, बादर तेजकाय पीत, बादर वात कायोंमें घनोदधि गोमूत्रसम, घनवात मूंगके समान हरा व तनुवातका अव्यक्त वर्ण है। सर्व ही एकेंद्रिय सूक्ष्मका वर्ण कपोत है। विग्रह गतिमें सब जीव श्वेत वर्ण हैं। अपर्याप्त अवस्थामें सब जीव कपोत हैं।

कषाय स्थान असंख्यात लोक प्रमाण हैं उनमें यथायोग्य असंख्यातका भाग देनेपर एक भाग तो विशुद्धि या शुभ स्थान शुभ लेश्याके हैं। शेष बहु भाग संक्लेश स्थान अशुभ लेश्याके हैं।

अशुभ लेश्या सम्बन्धी जो संक्लेश स्थान हैं उनको यथायोग्य असंख्यातका भाग देनेपर एक भाग विना बहु भाग कृष्ण लेश्याके तीव्रतम अशुभ भाव हैं, उस एक भागको फिर यथायोग्य असंख्यातका भाग देनेपर एक भाग विना बहु भाग नील लेश्याके तीव्रतर अशुभ भाव हैं। शेष एक भाग कपोत लेश्याके तीव्र अशुभ भाव हैं।

शुभ लेश्याके जितने विशुद्धि स्थान हैं उनको यथायोग्य असंख्यातका भाग देनेपर एक भाग विना बहु भाग पीतलेश्याके मन्द कषायरूप विशुद्धि स्थान हैं। उस एक भागको फिर यथायोग्य असंख्यातका भाग देनेपर एक भाग विना बहु भाग मंदतर कषायरूप स्थान हैं। शेष एक भाग मंदतम कषायरूप विशुद्ध स्थान हैं।

इन भावोंका दृष्टांत यह है कि छः लेश्यावाले छः मनुष्य दूरसे किसी फलके वृक्षको देखकर इस तरह विचारने लगे-

कृष्णलेश्यावालेने विचारा कि जड़से वृक्षको उखाड डालें
नील ,, ,, ,, कि जड़ छोड़कर पेड़ उखाड दें
कापोत ,, ,, ,, कि बड़ी२ शाखाएं तोड डालें,
पीत ,, ,, ,, कि छोटी२ टहनियोंको तोड दें
पद्म ,, ,, ,, कि मात्र फलोंको तोड़ें
शुक्ल ,, ,, ,, कि पके हुए फल खाऊंगा

इनका लक्षण यह है:-

कृष्ण-तीव्र क्रोधी बैर न छोडे, [illegible], निर्दयी, दुष्ट, गुरुजनोंकी बात न माने सदा स्वच्छन्दी, बुद्धिहीन, विषयलम्पटी, मानी, कुटिल आलसी हो।

नील-अतिनिद्रालु, ठगिया, लोभी।

कपोत-रुष्टचित्त, परनिंदक, शोकी, भयभीत,

ईर्षावान, स्वप्रशंसक, स्तुति करनेसे प्रसन्न हो । जो बड़ाई करे उसे बहुत धन दें, परका विश्वास न करे ।

पीत—कार्य अकार्य, सत्य असत्यको जाने, दयावान दानी व समदर्शी हो ।

पद्म—त्यागी, शुभमें उद्यमी, कष्ट सहे, गुरुभक्त ।

शुक्ल—अनिन्दक, अपक्षपाती, समदृष्टि, वैरागी । लेश्याके २६ अंश होते हैं—जघन्य मध्यम उत्कृष्ट भेदसे १८ अंश छःके हुए इनको छोडकर ८ अंश मध्यके कपोत लेश्याके उत्कृष्टसे आगे व तेजो लेश्याके उत्कृष्टसे पहले बीचके आठ अंश लेश्याओंके आयु बन्धके कारण हैं । जब, अपकर्ष कालमें मध्यम अंश होते हैं तब ही आयु बन्धती है देखो "कषायस्थान"

१८ अंशसे जीव मरकर उस लेश्याके अनुकूल गतिको जाते हैं । जैसे—

शुक्ल	कौन गतिको जाता है ।
उत्कृष्टसे—	सर्वार्थसिद्धि ।
मध्यमसे—	आनत स्वर्गसे ऊपर विजयादि ४ विमान तक ।
जघन्यसे—	सतार सहस्रार स्वर्गमें ।

लेश्या	गति
पद्म—उत्कृष्टसे	सहस्रार स्वर्ग ।
मध्यम	सहस्रार व माहेन्द्रके मध्यमें
जघन्य	सानतकुमार माहेन्द्र स्वर्ग ।
पीत-उत्कृष्टसे	सानतकुमार माहेन्द्रके अन्त पटलके चक्र इन्द्रक सम्बन्धी श्रेणीबद्ध विमान ।
पीत मध्यम	सौधर्म ईशानका दुसरा पटल विमल इन्द्रकसे सानत्कुमार माहेन्द्रके द्विचरम पटलके बलभद्र इन्द्रक तक ।
पीत जघन्य	सौधर्म ईशानका पहला ऋतु नाम इन्द्रक व श्रेणीबद्ध विमान ।
कृष्ण उत्कृष्ट	सातवीं नरकके अवधि इंद्रकमें ।
,, मध्यम	सातवींके ४ श्रेणीबद्धमें पांचमी पृथ्वीके आखरी पटल तक ।
जघन्य	पंचम नरकके अंत पटल तिमिश्र इंद्रकमें ।
नील उत्कृष्ट	पांचवें नरकके द्विचरम पटलके अंध्र इंद्रकमें ।
,, मध्यम	तीसरे नरकके संप्रज्वलित इन्द्रकसे नीचे व पांचवें नरकके अंध्र इंद्रकके ऊपर तक ।
,, जघन्य	तीसरे नर्कके संप्रज्वलित इंद्रकमें जो अंत पटलमें है ।
कपोत उत्कृष्ट	तीसरे नरकके आठवें द्विचरम पटलके संज्वलित इन्द्रकमें ।
,, मध्यम	पहले नर्कके सीमंतकसे नीचे व तीसरे नर्कके संज्वलित इन्द्रकके ऊपर ।
जघन्य	पहले नर्कके सीमन्तक इन्द्रकमें

विशेष—कृष्ण, नील, कपोत तीन लेश्याके मध्यम अंशसे मरे कर्मभूमिके मिथ्यादृष्टी तिर्यंच या मनुष्य व तेजो लेश्याके मध्यम अंशसे मरे, भोगभूमि या मिथ्यादृष्टी, भवनवासी व्यन्तर, ज्योतिषी देवोंमें पैदा होते हैं । कृष्ण नील कपोत पीत इन चार लेश्याके मध्यम अँश मरे, तिर्यंच व मनुष्य व भवनत्रिक व सौधर्म ईशान स्वर्गके देव मिथ्यादृष्टी बादर पृथ्वी, जल व वनस्पति कायमें उपजते हैं । पीत लेश्या मात्र भवनत्रिककी अपेक्षासे है । कृष्णादि तीनके मध्य अंशसे मरकर तिर्यंच या मनुष्य अग्नि, वायु, विकलत्रय, असैनी पंचेन्द्रिय, साधारण वनस्पतिमें उपजते हैं । भवनत्रय आदि सर्वार्थ सिद्धि तकके देव व सात नर्कके नारकी अपनी २ लेश्याके अनुसार यथायोग्य मनुष्य या तिर्यंच गतिको प्राप्त होते हैं । जिस गति सम्बन्धी आयु बांधी हो उस ही गतिमें मरण होते हुए जो लेश्या हो उसके अनुसार पैदा होता है । जैसे मनुष्यमें देवायु बांधी थी, मरते समय कृष्णादि तीन अशुभ लेश्या हो तो भवनत्रिकमें ही उपजेगा ।

नारकीके भाव लेश्या—पहलेमें कपोत जघन्य अंश।
दूसरेमें—कपोत मध्यम अंश।
तीसरेमें—कपोत उत्कृष्ट अंश
नीलका जघन्य
चौथेमें—नीलका मध्यम अंश।
पांचवेंमें—नीलका उत्कृष्ट व
कृष्णका जघन्य।
छठेमें—कृष्णका मध्यम अंश।
सातवेंमें-कृष्णका उत्कृष्ट अंश।

एकेंद्रिय व विकलत्रयके तीन अशुभ लेश्या होती हैं। असैनी पंचेंद्रियके कृष्णादि चार होती हैं। असैनी पंचेंद्रिय कपोत लेश्यासे मरे तो पहले नरकमें जावे तथा पीतसे मरे तो भवनवासी व व्यंतरदेवोंमें उपजे। सैनी लब्ध्यपर्याप्तकके व असैनी लब्ध्यपर्याप्तकके व. सासादन गुणस्थानवाले निर्वृत्य पर्यायक तिर्यंच व मनुष्यके व भवनत्रिकके तीन अशुभ लेश्यायें होती हैं। उपशम सम्यक्ती मनुष्य तिर्यंचके तीन अशुभ लेश्या नहीं होती, भोगभूमिमें निर्वृत्यपर्याप्तक सम्यग्दृष्टीके कपोतका जघन्य अंश है, पर्याप्तमें पीतादि तीन शुभ लेश्या हैं।

असंयत सम्यग्दृष्टि चार गुणस्थान तक छः लेश्याएँ देश संयत, प्रमत्त, अप्रमत्तके तीन शुभ। अपूर्वकरण सयोगी तक—एक पद्म।

देवोंमें—पर्याप्त भवनत्रिकमें—पीत लेश्या।
सौधर्म ईशानमें—पीतका मध्यम अंश।
सानत्कुमार माहेन्द्रमें—पीतका उत्कृष्ट व
पद्मका जघन्य।
ब्रह्म आदि ६ स्वर्गोंमें—पद्मका मध्यम।
शतार सहस्रारमें—पद्मका उत्कृष्ट व शुक्ल
का जघन्य।
आनतादि ४ स्वर्ग नौग्रैवेयक—शुक्ल मध्यम।
९ अनुदिश व ५ अनुत्तर—शुक्लका उत्कृष्ट।

भवनत्रिकके निर्वृत्यपर्याप्त अवस्थामें कृष्णादि तीन अशुभ, वैमानिकोंके पर्याप्त व अपर्याप्तमें लेश्या समान हैं। (गो० जी० गा० ४८९–५५९)

लेश्या मार्गणा—सर्व संसारी जीव १३ वें सयोग गुणस्थान तक हर समय किसी न किसी लेश्यामें पाए जाते हैं।

लोक—अनंत आकाशके मध्यमें ३४३ घनराजू प्रमाण पुरुषाकार लोक है। देखो "ऊर्ध्वलोक" "अधोलोक" "नरक" यह लोक सर्वत्र जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, काल, आकाश छः द्रव्योंसे परिपूर्ण है। अनादि, अनंत, अकृत्रिम है। धर्म अधर्म द्रव्यने आकाशके दो भाग किये हैं। जहांतक ये हैं वहांतक जीव पुद्गल जाकर ठहरते हैं बाहर नहीं जाते, वहींतक लोकाकाश है, बाहर अलोकाकाश है।

चारों तरफ घनोदधि घनवात, तनु वातवलयसे वेढ़ी है। देखो "घन वातवलय"

लोकके नौ निक्षेप हैं—(१) नाम लोक—पदार्थोंके शुभ व अशुभ नामोंका समुदाय।

(२) स्थापना लोक—कृत्रिम व अकृत्रिम जो कुछ इस लोकमें स्थापित है।

३. द्रव्यलोक-चेतन अचेतन छःद्रव्योंका समुदाय।

४. क्षेत्र लोक—ऊर्ध्व, मध्य, अधोलोकका समूह।

५. चिन्ह लोक—द्रव्योंका जो आकार है उन सबका समूह।

६. कषाय लोक—क्रोधादि चार कषायोंका उदय जो जीवोंमें है उनका समूह।

७. भव लोक—चार गति संबंधी जीवोंका समूह।

८. भाव लोक—जीवोंके भावोंका समुदाय।

९. पर्याय लोक—द्रव्योंकी अवस्थाएं, देवकी पर्याय, स्वर्ग, नरक महादि, आयुके भेद, शुभ अशुभ परिणाम इन सबका समूह। (मू० गा० ५४२–५५१)

लोकपाल—इन्द्रके चार लोकपाल कोटवाल समान देव होते हैं। पूर्वका सोम, दक्षिणका यम, पश्चिमका वरुण, उत्तरका कुबेर (त्रि० गा० २२२) [illegible]

लाल, श्याम, कंचन वर्ण व सफेद आभूषणोंसे युक्त हैं। (त्रि० गा० ६२२)

लोक मूढता–लोकमें धर्मके नामसे मानी हुई मूढ़ता जैसे नदी व सागरका स्नान, पर्वतसे गिरना, अग्निमें जलना आदि धर्म है। (र० श्रा० २२)

लोकवाद–लोकमें जो प्रवृत्ति हो उसे ही एकांतसे धर्म माननेवाले (गो० क० गा० ८९३)

लोक शिखर–लोकका ऊपरी भाग जहां तनुवातवलय है। वहीं अन्तमें सिद्ध जीव विराजते हैं। देखो " ऊर्ध्वलोक "

लोकाकाश–देखो " लोक "

लोकाग्र–देखो " लोक शिखर "

लोकानुप्रेक्षा–लोकका स्वरूप वारवार चिंतवन करना। १२ भावनामें १० वीं भावना।

(सर्वा० अ० ९–७)

लोकालोक–लोक और अलोक दोनों समुदाय।

लोक विभाग–सरस्वतीभवन बंबईमें सं. ग्रं.।

लौकिक–दूसरे नर्कमें नवां इन्द्रक बिला।

(त्रि० गा० ८९६)

लोकोत्तर मान–द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे चार प्रकार, देखो " मान "

लोच–देखो " केशलोंच "

लोभ–चौथा कषाय देखो "कषाय" सम्यक्तादि घातनेकी अपेक्षा अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण व संज्वलन ऐसे चार भेद हैं। अनुभाग शक्तिकी अपेक्षा चार भेद हैं–१–तीव्रतर–उत्कृष्ट कृमिके रंग समान गाढ़ा, २ तीव्र–अनुत्कृष्ट–पहियेके मैलके समान देरमें छूटे, ३ मंद–अजघन्य शरीरका मैलवत् कुछ कालमें चला जाय, ४ मंदतर–जघन्य हलदीके रंगवत् तुर्त मिटे। ये क्रमसे नरक तिर्यंच मनुष्य देवगतिके कारण हैं।

(गो० जी० गा० २८७)

लोभ प्रत्याख्यान–लोभके त्यागकी भावना सत्य व्रतकी रक्षार्थ आवश्यक है। (सर्वा. अ. ७-५)

लोल वत्स–दूसरे नर्कका दसवां इन्द्रक बिला (त्रि. गा. ६७६)

लोहार्गल–विजयार्द्धकी दक्षिण श्रेणीका ११वां नगर। (त्रि. गा. ६९७)

लोहाचार्य–श्री वीर मोक्ष सं० ६६५ वर्ष पीछे आचारांगके ज्ञाता। ११८ वर्षके मध्यमें हुए।

(श्र० पु० १४)

लोहित–मेरूके पांडुक वनका पूर्व दिशाका जिन मंदिर। (त्रि. गा. ६२०); ८८ ज्योतिष ग्रहोंमें दूसरा ग्रह। (त्रि. गा. ३६३); सौधर्म इशानका २४ वां इन्द्रक विमान। (त्रि. गा. ४६५) गंधमादन गजदन्तपर पांचवां कूट जिसपर भागवती देवी वसती है। (त्रि. गा. ७४१) लवण समुद्रके उत्तर दिशाके पातालके तटपर एक पर्वतपर वसनेवाला व्यंतर। (त्रि. गा. ९०७)

लोहिता–रत्नप्रभाके खर भागमें १६ पृथिवयोंमेंसे चौथी पृथ्वी १००० योजन मोटी जहां भवनवासी व्यंतर रहते हैं। (त्रि. गा. १४७)

लोहितांक–लवण समुद्रके उत्तर दिशाके दकवास पर्वतपर वसनेवाला व्यंतर। (त्रि. गा. ९०७)

लौकांतिक देव–ब्रह्मलोक पांचवे स्वर्गके अंतमें वसने वाले ईशानादि आठ दिशामें प्रकीर्णक विमानोंमें वसते हैं। इनके मूल आठ कुल हैं, जिनमें देवोंकी संख्या नीचे प्रकार है–

१–सारस्वत	कुल	७०७	प्रकीर्णकोंमें रहते हैं।
२–आदित्य	,,	७०७	
३–वन्हि	,,	७००७	
४–अरुण	,,	७००७	
५–गर्दतोय	,,	९००९	
६–तुषित	,,	९००९	
७–अव्याबाध	,,	११०११	
८–अरिष्ट	,,	११०११	ये श्रेणीवद्ध
	कुल	५५४६८	विमानमें रहते हैं

इनके अंतरालमें दो दो कुल और हैं, उनके नाम हैं—

नाम	संख्या
१–अग्न्याभ	७०००
२–सूर्याभ	९०००
३–चन्द्राभ	११०००
४–सत्याभ	१३०००
५–श्रेयस्कर	१५०००
६–क्षेमंकर	१७०००
७–वृषभेष्ट	१९०००
८–कामधर	२१०००
९–निर्माणराजा	२३०००
१०–दिगंतरक्षित	२५०००
११–आत्मरक्षित	२७०००
१२–सर्वरक्षित	२९०००
१३–मरुत	३१०००
१४–वसु	३३०००
१५–अश्व	३५०००
१६–विश्व	३७०००
कुल	३,५२,०००

ये सर्व समान हैं। विषयोंसे विरक्त हैं। देवोंमें ऋषिवत् हैं, १२ भावना विचारते रहते हैं। इंद्रादि देव प्रतिष्ठा करते हैं। एक जन्म ले मोक्ष जाते हैं। श्रुतज्ञानके धारी हैं, तीर्थंकरोंके तपकल्याणकमें भक्ति करने आते हैं। सबकी आयु बराबर आठ सागर है, केवल अरिष्टोंकी आयु नौ सागर है।

(त्रि० गा० ५३६–५४०).

लौकिक मान–देखो "मान"

व

वक्ता–शास्त्रका उपदेश कर्ता। जो बुद्धिमान, सर्व शास्त्र रहस्य रखता हो, लोक व्यवहारका ज्ञाता हो, आशा रहित हो, शांत परिणामी हो, प्रभावशाली हो, प्रश्न करनेके पहले उत्तर जाननेवाला हो, प्रश्नोंसे घबड़ानेवाला न हो। पर निंदा रहित हो, स्पष्ट मिष्ट अक्षर कहता हो।

(आत्मानु० श्लोक ५)

वक्रांत–पहले नरकका ११ वां इन्द्रक बिला।

(त्रि० गा० १५५)

वक्रग्रीव–श्री कुन्दकुन्दाचार्यका नाम देखो "कुन्दकुन्दाचार्य"

वक्षार–पर्वत कुल ८० ढाईद्वीपमें हैं। प्रत्येक मेरु सम्बन्धी १६ हैं। इनसे व तीन २ विभंगा नदीसे विदेहके ३२ भाग होगए हैं, (त्रि० गा० ६६५)....इन पर्वतोंपर इन्हीं नामके धारक देव हैं। १६ के नाम हैं:—

सीताके उत्तर तट–चित्रकूट, पद्मकूट, नलिन, एक शैल।

सीताके दक्षिण तट–त्रिकूट, वैश्रवण, अंजनात्मा, अंजन।

सीतोदाके दक्षिण तट–श्रद्धावान, विजयवान, आशीविष, सुखावह।

सीतोदाके उत्तर तट–चन्द्रमाल, सूर्यमाल, नागमाल, देवमाल। ये सब सुवर्ण रंगके हैं।

(त्रि० गा० ६६५–७)

हरएक वक्षारपर चार चार कूट हैं। ये वक्षारगिरि १६५९२ [illegible] योजन लम्बे हैं। ये ४०० से ५०० योजन तक ऊँचे हैं।

वचन–चार प्रकार है–सत्य, असत्य, उभय, अनुभय- सत्य, असत्य, मिला हुआ उभय, जिसको नहीं कह सकते कि क्या सत्य है या असत्य है वह अनुभय है। जैसे मैं प्रार्थना करता हूं। ऐसा कहना। ([illegible])

वचन गुप्ति–वचनोंको रोककर रखना, विकथा सम्बन्धी प्रवृत्तिसे रोकना। (सर्वा. अ. ९–४)

वचन [illegible]–वचनगुप्ति–वचनको वश करना।

(मू० गा० [illegible])

[illegible]–[illegible] ([illegible]) [illegible]। ([illegible])

वज्र–तीसरे [illegible] १६ वां इन्द्रक विमान। (त्रि० गा० [illegible]) [illegible]

पूर्व दिशाका जिनमंदिर। (त्रि० गा० ६२०) मेरुके नन्दनवनमें आठवां कूट। (त्रि. गा. ६२५) कुन्डलपर्वतपर पहला कूट। (त्रि० गा० ९४५) रुचक पर्वतकी पूर्वदिशामें आठवां कूट। (त्रि. गा. ९४८)

वज्र ऋषभ नाराच संहनन–पहला संहनन जिसमें वज्रमई नसोंके जाल, कीले व हाड हों। यह संहनन जिस कर्मके उदयसे प्राप्त हो वह नाम कर्म, (सर्वा० अ० ८–११) इस संहननवाला ही सातवें नर्क व मोक्ष जासकता है।

वज्र धातुक–मध्यलोकमें वह द्वीप जहां किंपुरुष जातिके व्यंतरोंके नगर हैं। (त्रि. गा. २८३)

वज्रनाराच संहनन–ऐसे हाड जिनमें वज्रमई हाड हों। (सर्वा० अ० ८–११) ऐसा संहनन जिस कर्मके उदयसे प्राप्त हो वह नामकर्म। दूसरा संहनन।

वज्र नंदि–सं० ३६४ आचार्य, द्राविड़ संघका स्थापक। यह श्री पूज्यपादका शिष्य बड़ा विद्वान, इसने भेद चलाया कि बीजमें जीव नहीं है। मुनि खड़े होकर भोजन न करे। यह वि० सं० ५२६ में हुआ। (दर्शनसार गा० २४–२८)

वज्रप्रभ–मेरु पर्वतके सौमनस वनमें दक्षिण दिशाका जिनमंदिर (त्रि. गा. ६२०); कुण्डलपर्वतपर दूसरा कूट (त्रि० गा० ९४५)

वज्रवर–मध्यलोकके अंतके १६ द्वीपोंमें ९वां द्वीप व समुद्र (त्रि० गा० ३०६–७)

वज्रा–रत्नप्रभा पृथ्वी खरभागके १६ भागोंमेंसे दूसरा भाग १००० योजन मोटा। यहां भवनवासी व व्यंतरदेव रहते हैं। (त्रि. गा. १४७)

वज्राढ्य–विजयार्द्धकी दक्षिण श्रेणीका १४ वां नगर। (त्रि. गा. ६९७)

वज्रार्गल–विजयार्द्धकी ईशान श्रेणीका १२ वां नगर। (त्रि. गा. ६९७)

वज्रार्द्धतर–विजयार्द्धकी उत्तर श्रेणीमें ५८ वां नगर। (त्रि. गा. ७०८)

वट्टकेरस्वामी–भगवती आराधना प्रा०के कर्ता। (दि. ग्रं० नं० २८०)

वणिक कर्मार्य–जो अन्न, वस्त्र, सोना, चांदी, जवाहरात आदिके द्वारा आजीविका करते हैं ऐसे आर्य मनुष्य। (भ. पृ. ५१६)

वत्सकावती–विदेहके ३२ देशोंमें सीता नदीके दक्षिण तटपर चौथा देश। (त्रि. गा. ६८८)

वत्समित्रा–सौमनस गजदन्तके छठे कांचन कूटपर वसनेवाली व्यंतर देवी। (त्रि. गा. ७४२)

वत्सा–विदेहके ३२ देशोंमें सीता नदीके दक्षिण तटपर पहला देश। (त्रि. गा. ६८८)

वत्सराज–नौमें कामदेव।

वध परीषह–साधुको कोई लाठी आदिसे मारे व प्राण लेवे तो भी समता भावसे सहें। (सर्वा. अ. ९–९)

वनक–दूसरे नर्कमें तीसरा इन्द्रक बिला। (त्रि. ग. १५५)

वन्दना–प्रकीर्णक अंग बाह्य श्रुतका तीसरा भेद जिसमें नमस्कारके भेद बताए हैं।

वनस्पति कायिक व काय–वनस्पति वृक्षादिके शरीरका धारी एकेन्द्रिय जीव। इसके चार प्राण होते हैं। स्पर्शेन्द्रिय, कायबल, आयु, श्वासोछ्वास। जीव रहित होनेपर वनस्पति काय कहते हैं।

वनस्पति जीव–जो जीव विग्रह गतिमें है वनस्पति काय रखने वाला है। (सर्वा. अ. २–१३)

वनीवक दोष–गृहस्थकी मरजीके अनुकूल वचन कहकर वस्तिका ग्रहण करे। (भ. पृ. ९५)

वन्हि–लौकांतिक देवोंका तीसरा कुल जिसमें ७००७ देव हैं। (त्रि. गा. ५३५)

वप्रा–विदेहके ३२ देशोंमें सीतोदाके उत्तर तटपर पहला देश। (त्रि० गा० ६९०)

वप्पदेव गुरु–कषाय प्राभृत व कर्म प्राभृत सिद्धांत पढ़कर व्याख्या प्रज्ञप्ति नामकी व्याख्या लिखी। (श्रु० पृ० ११)

वरचन्द—भरतके आगामी उत्सर्पिणीके छठे बलभद्र । (त्रि० गा० ८७८)

वरतनु—भरतके दक्षिण तट समुद्रमें कुछ योजन जाकर वरतनु द्वीप है इसका स्वामी वरतनु देव है चक्री इसे वश करते हैं (त्रि० गा० ९१२) ऐसा ही द्वीप ऐरावत व विदेहक्षेत्रमें भी है ।

वरमुख—पं०, अध्यात्म सम्बोधके कर्ता । (दि० ग्रं० नं० २९७)

वरुण—इन्द्रका लोकपाल पश्चिम दिशाका (त्रि. गा. २१६); वारुणी चौथे द्वीपका स्वामी व्यन्तर (त्रि० गा० ९६३)

वरुणप्रभ—वारुणी द्वीपका स्वामी व्यन्तर । (त्रि० गा० ९६३)

वरुण प्रभ- वारुणी द्वीपका स्वामी व्यन्तरदेव । (त्रि० गा० ९६३)

वर्ग—कर्मोंमें अनुभाग शक्तिके अविभाग जघन्य (ल० पृ० ६) उन अंशोंका समूहरूप परमाणु अंश या अविभाग प्रतिच्छेद ।

वर्गणा—समान अपूर्व अविभाग प्रतिच्छेदोंकी धरनेवाली वर्गों या परमाणुओंका समूह जघन्य वर्गोंकी समूहरूप जघन्य वर्गणा, जघन्य वर्गसे एक अधिक अविभाग प्रतिच्छेद युक्त जो वर्ग उनके समूहका नाम द्वितीय वर्गणा । इस तरह एक एक अधिक अविभाग प्रतिच्छेद वर्गोंका समूह नाम तृतीय, चतुर्थ आदि वर्गणा । (ल० पृ० ६)

वर्गशलाका—दोकी संख्याका वर्ग जितनीबार हो उस राशीका नाम । जैसे १६ की वर्गशलाका दो है । क्योंकि २ का वर्ग ४, ४ का वर्ग १६ । (त्रि० गा० ६७)

वर्ण नाम कर्म- जिसके उदयसे शरीरमें वर्ण हो । (सर्वा० अ० ८—११)

वर्ण लाभ क्रिया—गर्भान्वय क्रियाकी १८ वी क्रिया । जब विवाह होचुके और पुत्र व धन गृह-कार्यमें चतुर होगये तब यह क्रिया की जाती है । शुभ दिनमें होमादि पूजा करके पिता पुत्रको कई श्रावकोंके सामने धन धान्यादि देकर आज्ञा दे कि वे जुदे घरमें रहकर धर्म, अर्थ, काम पुरुषार्थकी उन्नति करे । देखो (गृ० अ० १८) दीक्षान्वय क्रियाका १२ वां संस्कार । नवीन दीक्षित जैनका वर्ण उसकी आजीविका व आचरणके अनुसार नियत करे । चारों वर्णोंमेंसे जिसमें वह रक्खा जावे उस वर्णवाले उसके साथ समस्त सामाजिक व्यवहार जारी करदें, अपने ही समान माने । (गृ० अ० ९)

वर्तना—काल द्रव्यका गुण—सर्व द्रव्योंके पलटनेमें कारणपना ।

वर्तमान चौबीसी पाठ—भाषामें मनरंगलाल, वृन्दावन, रामचन्द्र आदिके मुद्रित हैं ।

वर्तमान नैगमनय—जो कार्य होरहा हो, पूर्ण न हुआ हो तब भी कहना पूर्ण होगया, यह इस नयका विषय है। जैसे कोई रसोईके लिये चावल धोरहा है किसीने पूछा क्या कर रहे हो तब कहना रसोई होरही है । (सि. द. ९)

वर्द्धमान—वर्तमान २४ वें तीर्थंकर भरतके, देखो " महावीर " ।

वर्द्धमान कवि—(हस्तिमलका भाई) गणरत्न महोदधि स्वकृत टीका सहितका कर्ता । (दि० ग्रं० नं० २८९)

वर्द्धमान भट्टारक—तत्व मिश्र या द्वादशांग चारित्रके कर्ता । (दि० ग्रं० नं० २८९)

वर्धमान अवधिज्ञान—जो अवधिज्ञान विशुद्ध भावोंके कारण बढ़ता जाय । (सर्वा. अ. १–२२)

वल्गुप्रभ—विमान जिसके स्वामी सौधर्म इन्द्रका कुबेर लोकपाल है ।

वंश पत्र योनि—स्त्रीकी आकार योनि जिसमें [illegible] साधारण जन उत्पन्न होते हैं, तीर्थंकरादि उत्तम पुरुष नहीं पैदा होते हैं (गो.जी.गा. ८१)

वंशा—दूसरे नरककी पृथ्वी, १२००० योजन मोटी जहां ११ पटल हैं जिनमें ११ इन्द्रक [illegible] बिले हैं [illegible]

उत्कृष्ट व एक सागर जघन्य आयु है। देखो "नरक" (त्रि० गा० १४५)

वैशाल–विजयार्द्धकी उत्तर श्रेणी में ५ वां नगर। (त्रि० गा० ७०१)

वशार्त्त मरण–आर्तरौद्र ध्यान सहित मरण। यह चार प्रकार है। (१) इंद्रिय वशार्त्त मरण–पांच प्रकार इंद्रियोंके विषयोंके आधीन होकर आहार, सुगंध, गान, स्पर्श, मनोज्ञ दर्शन आदिके कारण राग द्वेषसे मरे, (२) वेदना वशार्त्त मरण–शारीरिक व मानसिक कष्टसे पीडित हो मरे। (३) कषाय वशार्त्त मरण–चार प्रकार कषायके आधीन हो क्रोधसे, मानसे व लोभसे व मायाचारसे मरे, (४) नोकषाय वशार्त्त मरण–हास्य, शोक, भय व काम आदिके वश हो मरना। (भ. पृ. ११–१२)

वशिष्ठ–सौमनस गजदन्तपर सातवां कूट। (त्रि. गा. ७३९) द्वीप कुमार भवनवासी देवोंका इन्द्र। (त्रि. गा. २१०)

वंशोत्पत्ति–भगवान ऋषभदेवके समयमें ऋषभदेवका वंश इक्ष्वाकु कहलाया। इक्षुरसका प्रचार करनेसे राजा हरिने हरिवंश, अकंपनने नाथवंश, काश्यपने उग्रवंश तथा सोमप्रभने कुरु या चन्द्र वंशकी स्थापना की। इक्ष्वाकु वंशको ही सूर्यवंश कहते हैं। (इं. १ पृ. ६५)

वर्ष–१२ मास; क्षेत्र।

वर्षधर–क्षेत्रकी मर्यादा करनेवाले पर्वत।

वर्ष वर्द्धन क्रिया–(व्युष्टि क्रिया) गर्भान्वय क्रिया ११ वीं जब बालक जन्मसे १ वर्षका होजावे तब पूजा होमादि करके बालकके ऊपर आशीर्वाद सूचक मंत्र पढ़कर अक्षत डालें दान सन्मान हो। (गृ० अ० ४–११)

वसतिका (वस्तिका)–साधुके ठहरनेका स्थान।

वसतिका दोष–वस्तिका ग्रहणमें ४६ दोष साधुको बचाने चाहिये। १६ उद्गम, १६ उत्पादन, १० एषणा, ४ संयोजना, अप्रमाण, धूम व अंगार, कुल ४६। इसके सिवाय अधःकर्म दोष वह है जो वस्तिका स्वयं बनवावे बनावे व बनानेवालेकी अनुमोदना करे। वस्तिकाके लिये लकड़ी काटे आदि।

१६ उद्गम दोष–(गृहस्थके आश्रय)–१–उद्देश्य–मुनिके उद्देश्यसे बनवावे, २. अध्यधि–अपने किये मकान बनाते हुए उसमें काष्ट, पाषाण लेकर वस्तिका बनाय साधुको देवे, ३ पूति–अपने लिये घर बनाता था, सामान जमा किया है उससे कुछ सामान मुनिके निमित्त मंगाय मिला देना, ४ मिश्र–कोई घर अन्य पाखँडी या गृहस्थके लिये बनाता था, उसमें यह संकल्प करे कि यहां साधु भी ठहरा करेंगे। ५–स्थापित–कोई मकान अपने लिये किया था फिर उसको साधुके लिये स्थापित कर देना ६ प्राभृतक–जब साधु तब आवें वस्तिकाको उज्वल करे, पहलेसे ही संकल्प था कि ऐसा करेंगे व साधु आवे तब उनको ठहराकर वस्तिका संवारना। ७ प्रादुष्कार–अंधेरी वस्तिकामें साधुके निमित्त उजाला करे। ८ सचित्त क्रीत–गाय भैंसादि देकर वस्तिका मोल ले ९ अचित्त क्रीत–खांड़ शुद्ध घो देकर वस्तिका खरीदे। १० प्रामिश्र–व्याज व भाड़ा देकर लेवे। ११ परिवर्तन–आप दूसरे मकानमें चला जाय साधुको वस्तिका खाली करे। १२ अभिघट अपने घरसे सामान लाकर साधुके लिये वस्तिका बनाये। १३ आचरित–जो सामान दूर ग्रामसे लावे। १४ स्थगित या उद्भिन्न–जिस वस्तिकाका द्वार ईंट व पाषाणसे बंद था। उसको मुनिके लिये उघाड़ कर दे। १५ आछेद्य–राजा व प्रधानका भय दिखाय दूसरेसे वस्तिका ले मुनिको ठहराये। १६ आनिसृष्टि–जो स्वामी न हो उसकी दी हुई वस्तिका।

१६ उत्पादन दोष–(साधुके आश्रय हैं।)

धात्री–साधु गृहस्थोंको बालकोंके लिये कहे इसे रमाया करो, दूध पिलाया करो, ऐसा कहकर वस्तिका लेवें।

५ दूत कर्म–दूसरे ग्रामसे गृहस्थके लिये खबर लाकर देवे ।

२ निमित्त–ज्योतिषादिसे राजी करके ले ।

४ आजीवन–अपनी महिमा प्रगट करके लेवे ।

५ वनीयक–गृहस्थके अनुकूल वचन कहे ।

६ चिकित्सा–वैद्यक कर्म करके लेवे ।

७ से १० क्रोधादि कषायद्वारा वस्तिका ले ।

११ पूर्वस्तुति–गृहस्थकी स्तुति करके ले ।

१२ पश्चात् स्तुति–वस्तिका लेकर पीछे गृहस्थकी प्रशंसा करे ।

१४ मंत्र–मंत्रका लालच देकर ले ।

१४ विद्या–विद्याका लालच देकर ले ।

१५ चूर्ण–नेत्रका अंजन आदिका लोभ देकर ले ।

१६ मूल कर्म–वशीकरणादि करके ले ।

१० एषणा दोष–साधुके आश्रय होते हैं—

१ शंकित–वस्तिका योग्य है या अयोग्य है ऐसी शंकापर भी ठहर जावे, २ मृक्षित–जो तत्काल की लीपी हो, ३ निक्षिप्त–जहां सचित्तके ऊपर पाटा आदि रखा हो, ४ पिहित–सचित्त मिट्टीको हटाकर दी हो, ५ व्यवहरण–काठ वस्त्र घसीटनेवाला जो दिखावे वहां ठहरे, ६ दायक–सूतक पातकवाले व रोगी, नपुंसक आदिकी दी हो, ७ उन्मिश्र–स्थावर जीव व त्रिकत्रय जन्तुसे मिली हो, ८ अपरिणत–जो आने जानेसे मर्दको न हो, ९ लिप्त–जो घी तेल आदिसे लिप्त हो, १० परित्यजन–जो छोटी वस्तिका छोड़कर बड़ी लेवे ।

अन्य चार दोष १–प्रमाणातिरेक–जरूर भूमिसे नाप चलनेपर भी अधिक रोकना, २ संयोजना दोष–जो भोगी पुरुषोंके महल मकान आदिसे मिली हो, ३ धूम–निन्दा करता वस्तिकामें ठहरे, ४ अंगार–आसक्त होकर ग्रहण करे ।

इन ४६ दोष रहित शुद्ध प्रासुक स्थान जो अपने लिये किसी तरह किया गया हो नहीं साधु ठहरते हैं । (भ० ष्ठ० ९५-९६)

वसु–लौकांतिकोंके अंतरालके एक कुलका नाम । (त्रि. गा. ५३८–५४०) वसुराजा जिसने अपने गुरु क्षीरकदम्बकी स्त्रीके मोहसे अजका अर्थ बकरा कहकर नर्क गया था । तबसे पर्वतने हिंसा यज्ञ चलाया । वह राजा हरिवंशमें मुनिसुव्रतनाथके बहुत पीछे हुआ । (ह. प्र. १९४ ...)

वसुदेव–श्री कृष्णके पिता, २० वें कामदेव ।

वसुन्धरा–स्वर्गके उत्तर इन्द्रोंकी एक महादेवीका नाम । (त्रि. गा. ५११); रुचक पर्वतपर दक्षिणके आठवें कूट वैडूर्यपर बसनेवाली देवी । (त्रि. गा. ९९१)

वसुनन्दि–(नंदिसंघ) स्वामी (सं० ५२६) यत्याचार, आचारसार, मूलाचार टीका, भावसंग्रह, विपुलमतिसार आदिके कर्ता, (दि. ग्रं. नं. २८४); आचार्य सं० ७०४ (दि० ग्रं० नं० २८५); सिद्धांत चक्रवर्ती, देवागम वृत्तिके कर्ता, (दि० ग्रं० नं० ४२९); श्रावकाचार–सटीक मुद्रित ।

वसुमत्ता–विजयार्द्धकी उत्तर श्रेणीकी १७ वीं नगरी । (त्रि. गा. ७०६)

वसुमती–विजयार्द्धकी उत्तर श्रेणीकी १८ वीं नगरी । (त्रि. गा. ७०६)

वसुमित्रा–स्वर्गके उत्तर इन्द्रोंकी एक महादेवी । (त्रि. गा. ५१६); राक्षसोंके इन्द्र भीमकी वल्लभिका देवी । (त्रि. गा. २५८)

वस्तु–एक अंगके अधिकारका नाम जिसमें विस्तार या संक्षेपसे कहा जाय यह वस्तु नामा श्रुत है । (गो. जी. गा. ८८)

वस्तु श्रुत ज्ञान–पूर्वके अधिकार वस्तु कैसे उत्पाद पूर्वमें १० वस्तु अधिकार हैं । एक एक वस्तुमें बीस बीस प्राभृत नाम अधिकार हैं । एक एक प्राभृतमें चौबीस २ प्राभृत २ हैं । (गो. जी. ३४८–३५१)

वस्तुत्व गुण–जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्यमें अर्थ क्रिया हो [illegible] (जै. सि. प्र. नं. ११०)

वस्तुन–ज्योतिषके ८८ ग्रहोंमें ९२ वां ग्रह (त्रि. गा. ३६७)

वहिर्यानक्रीया–गर्भान्वयका आठवां संस्कार। जब १-२-३ या ४ मास होजावे तब ठीक मुहूर्तमें प्रसूतिघरसे बालकको लाया जावे। घरमें पूजा होम को कर सर्व कुटुम्बी मिलकर माता सहित बालकको जिन मंदिर लेजाकर दर्शन करावें तब भी मंत्र पढ़ा जाय फिर लौटकर दान सन्मानादि हो, देखो विधि। (गृ. अ. ४–८)

वाग्दान क्रिया–गर्भान्वयके १७ वें संस्कार विवाह क्रियाका एक अंग। लग्नके पहले कन्या व वरके पिता कहीं एकत्र होकर सम्बन्ध पक्का करें। परस्पर ताम्बूल देवे। (गृ. अ. ४–१७)

वाग्दुःप्रणिधान–सामायिक शिक्षा व्रतका दूसरा अतीचार दुष्टरूप व लौकिक वचन कहना। (सर्वा. अ. ७–३३)

वाग्निसर्गाधिकरण–वचनका व्यवहार। यह कर्मके आस्रवके लिये अजीव आधार है। (सर्वा. अ. ६–९)

वाग्भट्ट–अष्टांग हृदय, वृत्ति चिकित्सा, स्वामी कार्तिकेय टीका, वाग्भट्टालंकार आदिके कर्ता। (दि० ग्रन्थ नं० २८६)

वाग्भट्टालंकार–वाग्भट्ट कृत मुद्रित।

वाणि वल्लभ–महावीर पुराणके कनडीमें कर्ता। (दि. ग्र. नं. २८७)

वाङ्मय–व्याकरण, छन्द, अलंकार शास्त्र। ऋषभदेवने अपनी दोनों ब्राह्मी सुन्दरी कन्याओंको पढ़ाया। (आ० प० १६–११०–१११)

वाचना–स्वाध्यायका पहला भेद–पढ़ना या सुनना, (सर्वा० अ० ९–२५); निर्दोष शब्द व अर्थ समझना।

वाणप्रस्थाश्रम–सप्तमी प्रतिमाधारी नैष्ठिक ब्रह्मचारीसे लेकर ११ वीं उद्दिष्ट प्रतिमाधारी तक उत्कृष्ट वाणप्रस्थ खण्ड वस्त्रधारी क्षुल्लक व ऐलक हैं। (श्र० ए० २५६)

वाणिज्य कर्मार्य–देखो "वणिक कर्मार्य"

वातकुमार–भवनवासी देवोंका १० वां भेद–इनके इन्द्र वेलम्ब व प्रभञ्जन हैं। इनके ९६ लाख भवन हैं, हरएकमें अकृत्रिम जिनमंदिर हैं। उत्कृष्ट आयु १॥ पल्य, जघन्य १०००० वर्ष। इनके मुकुटोंमें घोड़ेका आकार है। (त्रि०गा० २११)

वातवलय–देखो "घन वातवलय"

वात्सल्य–सम्यग्दृष्टीका सातवां अंग–साधर्मीसे गोवत्स सम प्रेम रखना। (रत्न० श्लोक १७)

वादऋद्धि–बुद्धि ऋद्धिका १८ वां भेद। साधुको ऐसी शक्ति हो जो कोई उनसे वादविवादमें जीत न सकें। (म० ए० ९२१)

वान–व्यंतरदेव। (त्रि. गा. १९०)

वामन संस्थान नामकर्म–जिसके उदयसे शरीरका आकार छोटा ही बौना बना रहे। (सर्वा० अ० ८–११)

वायु–हवा, पवन; सौधर्मादि स्वर्गोमें पयादा-सेनाका प्रधान नायक देव। (त्रि. गा. ४९६)

वायुकायिक या काय–वायु शरीरधारी एकेन्द्रिय जीव वायुकायिक हैं जिनके चार प्राण होते हैं। स्पर्शन इन्द्रिय, कायबल, आयु, श्वासोश्वास। जीव रहित वायु–वायुकाय है। (सर्वा. अ. २–१३)

वायु जीव–जो जीव विग्रह गतिमें है और वायुका शरीर धारनेको जारहा है। (सर्वा. अ. २–१३)

वारिषेण–श्रेणिक महाराजका पुत्र मुनि हो तप करके स्वर्गमें ऋद्धिधारी देव हुआ। (श्रेणिक चरित्र ए. ३५१ सर्ग. १४)

वारिषेणा–विद्युत प्रभ गजदंतपर तपन कूटवासी व्यंतरदेवी। (त्रि. गा. ७४२)

वादिचंद्रसूरि–(स. १६८१) ज्ञान सूर्योदय नाटक, पार्श्वपुराण, पांडव पुराणादिके कर्ता। (दि. ग्रं. नं. २८८)

वादिराज कवि–यशोधर काव्य, पार्श्वनिर्वाणके कर्ता। (दि. ग्रं. नं. २९०)

वादिराज मुनि–(सेनसंघ) एकीभाव स्तोत्र, वाद भंडारी धर्मरत्नाकरके कर्ता।
(दि. ग्रं. नं. १८९)

वादिसिंह–प्रमाणनौका, तर्क दीपिका, धर्म संग्रहके कर्ता। (दि. ग्रं. नं. १९९)

वादीभसिंह–गद्यचिंतामणि, क्षत्रचूडामणिके कर्ता
(दि. ग्रं. नं. १९१)

वामदेव–भाव संग्रह, तत्वार्थसार, त्रिलोकदीपिका, त्रिलोकसार पूजा, प्रतिष्ठा सूत्रके कर्ता।
(दि. ग्रं. नं. २९१)

वारुणी पुरी–विजयार्द्धकी उत्तर श्रेणीमें चौथी नगरी। (त्रि. गा. ७०२)

वारुणी–रुचक पर्वतपर उत्तर दिशाके अपराजित कूटपर दिक्कुमारीदेवी। (त्रि. ९९९)

वारुणीवर–मध्य लोकमें चौथा द्वीप व समुद्र द्वीपका स्वामी वरुण, वरुणप्रभ तथा समुद्रका स्वामी मध्य व मध्यम देव है। (त्रि. ९६३)

वार्ता–कुलके मर्यादा पूर्वक नीतिके अनुसार असि (शस्त्र), मसि (लेखन) कृषि, वाणिज्य शिल्प, विद्या इन छः रीतियोंसे आजीविका करना।
(सा. २–१९)

वालुका-प्रभा-तीसरी नरककी पृथ्वी रेतके रंग सम मध्य लोकसे दो राजू नीचे चौबीस हजार योजन मोटी, इसमें पंद्रह लाख बिले हैं, नव पटलोंमें ९ इन्द्रक बिले हैं। आयु नारकियोंकी उत्कृष्ट सात व जघन्य तीन सागर है। देखो 'नरक'।
(त्रि. गा. १४४)

वार्दलि–छठे नरककी पृथ्वीमें दूसरा इंद्रक बिला। (त्रि. गा. १९८)

वासना काल–किसी विशेष कषाय भावका संस्कार बना रहना। जैसे किसी पर द्वेष भाव होगया तब चित्तसे न निकलना व किसी पदार्थके मिलनेकी इच्छा हुई उसका लोभ न मिटना। संज्वलन कषायका अन्तर्मुहूर्त, अप्रत्याख्यानावरणका एक पक्ष या १५ दिन, प्रत्याख्यानावरणका छः मास तथा अनंतानुबन्धीका छः माससे अधिक संख्यात, असंख्यात, अनन्तभव। (गो० क० गा० ४६)

वासवचन्द्र–आचार्य सं० १०६६।
(दि० ग्रं० नं० २९३)

वासवसेन–(सेनसंघ) व्याकरण कौमुदी मुनि प्रायश्चित्तादिके कर्ता। (दि० ग्रन्थ नं० २९४)

वासवसेन गृहस्थ–द्वादश स्थानके कर्ता।
(दि० ग्रन्थ नं० २९५)

वासा साहु–नेमनाथ पुराण प्रा०के कर्ता।
(दि० ग्रन्थ नं० २९६)

वासुदेव–नारायण, देखो "नारायण"

वासुपूज्य–भरतके वर्तमान १२ वें तीर्थंकर, चम्पापुरके राजा इक्ष्वाकुवंशी पिता वासुपूज्य, माता जयावतीके पुत्र, आयु ७२००० वर्ष। बालब्रह्मचारी साधु हो तप कर मन्दार पर्वतसे मोक्ष हुए। मुनि दानसारके कर्ता। (दि०ग्रन्थ नं० २९८)

वास्तु–घर गांव नगर आदिको वास्तु कहते हैं। घर तीन तरहके हैं–(१) खात–भूमिके नीचे तलघर, (२) उच्छ्रित–भूमिके ऊपर बनाए हुए, (३) खातोच्छ्रित–तलघर सहित दुमंजले, तिमंजले आदि। (सा० अ० ४–६४)

बाह्य तप–इच्छाको रोकना तप है, उसके बाहरी कारण छः हैं। जो तप प्रगट दूसरोंको दीखें व शरीरका मुख्य सम्बन्ध हो वे बाह्य तप हैं। (१) अनशन–चार प्रकार आहार त्याग, उपवास करना, (२) ऊनोदर–कम खाना, (३) वृत्तिपरिसंख्यान–भिक्षाको जाते हुए नियम करना, (४) रसपरित्याग–रसोंका त्यागना, (५) विविक्त शय्यासन–एकान्तमें शयनासन, (६) कायक्लेश–शरीरको कष्ट सहनेके लिये ठीक देना पर हैरान न करना। (सर्वा० अ० ९–१९) देखो "तप"

बाह्योपधित्याग तप–बाहरी धन धान्य व शरीरादिसे ममता त्याग। (सर्वा. अ. ९–२६)

वाह्य परिग्रह–१० प्रकार १ क्षेत्र-खेत, जमीन २ वस्तु–मकान, ग्राम । ३ हिरण्य–चांदी । ४ सुवर्ण–सोना, जवाहरातादि । ५धन–गाय भैंसादि । ६ धान्य–अनाज, ७ दासी, ८ दास ९ कुप्य–कपडे, १० भांड–वर्तन । (सर्वा. अ. ७–२९)

विकट ज्योतिषके ८८ ग्रहोंमें २९ वां ग्रह । (त्रि. गा, ३६९)

विकथा–स्त्री, भोजन, राष्ट्र, राजा चार कथा जो धर्मसे विरोधी हों। २५ विकथा देखो 'प्रमाद' ।

विकल चतुष्क–द्वेन्द्रिय, तेन्द्रिय, चौन्द्रिय, असैनी पंचेन्द्रिय जीव ।

विकल चारित्र–सकल चारित्रसे कम अणुव्रत रूप श्रावकका चारित्र ११ वीं प्रतिमातक ।

विकलनय–मिथ्या अपेक्षा या नय ।

विकल पारमार्थिक प्रत्यक्ष–जो रूपी पदार्थ पुद्गल व संसारी जीवोंको विना इंन्द्रिय व मनकी सहायताके स्पष्ट जाने . वे दो ज्ञान हैं–अवधि और मनःपर्याय । (जै. स. ग्र. नं. २०-२१)

विकलत्रय–द्वेन्द्रिय, तेन्द्रिय, चौन्द्रिय जीव ।

विकल्प–भेद, विचार ।

विकलेन्द्रिय–एकेन्द्रियसे चौन्द्रिय तक ।

विकंस–ज्योतिषके ८८ ग्रहोंमें ७१ वां ग्रह । (त्रि. गा. ३६९)

विकृति भोजन–जो जिह्वा और मनको विकारी करे–मोहित करें । वे भोजन चार प्रकार हैं । १ गोरस-दूध दही घी आदि । २ इक्षुरस-शक्कर मिश्री आदि, ३ फलरस-दाख, आम आदिका रस, ४ धान्यरस मांड आदि । (सा० अ० ५–३५)

विक्रांत–पहले नरकका १३ वां इन्द्रक विला । (त्रि० गा० १५५)

विक्रम कवि–नेमिदूत काव्यके कर्ता ।

विक्षेपिणी–कथा, मिथ्यामतोंको खण्डन करनेवाली कथा ।

विगम–नाश, व्यय ।

विक्रिया ऋद्धि–(१) अणिमा–अणु मात्र शरीर करना, (२) महिमा–मेरु पर्वतसे भी बड़ा शरीर करना, (३ लघिमा–पवनसे भी हलका शरीर बनाना, (४) गरिमा–बहुत भारी शरीर बनाना, (५) प्राप्ति–भूमिसे ही सूर्य चन्द्रमाको स्पर्शकी शक्ति (६) प्राकाम्य–जलमें भूमिवत् चलनेकी शक्ति, (७) ईशित्व–तीन लोकका प्रभुपना प्रगट करनेकी शक्ति, (८) वशित्व–सर्वको वश करनेकी शक्ति, (९) अप्रतिघात–पर्वतके भीतरसे जानेकी शक्ति, (१०) अन्तर्द्धान–अदृश्य होनेकी शक्ति, (११) कामरूपित्व–एक साथ कई आकार करनेकी शक्ति । (भ० पृ० ५११)

विग्रह गति–एक शरीर छोड़कर दूसरे शरीर धारनेके लिये जो गमन या मार्गमें स्थिति; मोड़ेवाली कुटिल गति । (सर्वा. अ. ९–२५–१७)

विघ्न विनायक–राक्षस व्यन्तरोंका तीसरा भेद । (त्रि० गा० २६७)

विघ्नेश्वर पार्श्वनाथ–निजाम हैदराबादमें दुधनी स्टेशनके पास आलंदसे १६ मील । आष्टा ग्राममें प्राचीन मंदिर । पार्श्वनाथकी मूर्ति प्राचीन २ फुट पद्मासन । मंदिरका जीर्णोद्धार शक ५२८ में हुआ था, ऐसा अस्पष्ट लेख है । (या०द०पृ० २४४)

विचारणा–देखो ' ईहा ' ।

विचित्र–यमकगिरि, जो सीता नदीके पश्चिम तटपर है । (त्रि. गा. ६५४)

विचित्रा–मेरूके नन्दन वनमें छटे कूट रुचकपर वसने वाली दिक्कुमारीदेवी । (त्रि.गा.६२)

विचित्रकूट–विजयार्द्धकी दक्षिण श्रेणीमें ४३ वां नगर । (त्रि. गा. ७००)

विचिकित्सा दोप–सम्यग्दर्शनका तीसरा अतीचार–पदार्थोंसे घृणा करना, धर्मात्माओंसे ग्लानि करना । (सर्वा. अ. ७–२३)

विजटावान–पश्चिम विदेह सीतोदा नदीके तटपर दूसरा वक्षार गिरि । (त्रि. गा. ६६८)

विजय–ज्योतिषके ८८ ग्रहोंमें ६९ वां ग्रह । (त्रि. गा. ३६९) ऊर्ध्व लोकमें पहला अनुत्तर विमान । (त्रि. गा. ४५७) विजयार्द्धकी उत्तर श्रेणीमें ५६ वां नगर । (त्रि. गा. ७०७) विदेहकी ३२ राज्यधानियोंमेंसे १९वीं राज्यधानी । (त्रि. गा. ७२४) जंबूद्वीपके कोटके पूर्व दिशाका द्वार (त्रि. ८९२) ऊंचा आठ चौड़ा चार योजन । इसके ऊपर २ योजन चौड़ा ४ योजन ऊंचा प्रासाद है इसके ऊपर आकाशमें १२००० योजन लम्बा व ६००० योजन चौड़ा विजयनगर है । (त्रि. ८९३) रुचक पर्वतके उत्तर दिशामें पहला कूट जिसपर अलंभूषादेवी रहती है ।

(त्रि. गा. ९५९)

विजय कीर्ति–श्रेणिक चरित्रके कर्ता ।

(दि. ग्र. नं. ४४७)

विजय कुमार–स्वामी (देवसंग) धर्मानुशासन, द्रव्य संग्रह, भाव संग्रह, क्रिया संग्रहके कर्ता ।

(दि. ग्र. नं. २०१)

विजयनाथ–(माथुर टोड़ा) वर्धमान पुराण छन्दके कर्ता । (दि. ग्र. नं १९४)

विजयप्रभ–जैनेन्द्र व्याकरण प्रक्रिया ।

(दि. ग्र. नं. २००)

विजयराज–१९ वें कामदेव ।

विजय वर्णी–शृंगारार्णव चन्द्रिकाके कर्ता ।

(दि. ग्र. नं. २०२)

विजयसेन–मनोघावन, धर्मरत्नाकरादिके कर्ता (दि. ग्र. नं. २०३); आचार्य ११ अंग १० पूर्वके पाठी श्री महावीरस्वामीके मोक्ष जानेके १६२ वर्ष पीछे १८३ वर्षके भीतर हुए (श्रु. ए. १५)

विजया–नंदीश्वर द्वीपमें पश्चिम दिशाकी एक वापड़ी । (त्रि. गा. ६६९); रुचक पर्वतके पूर्व दिशाके कूट जिसपर रहनेवाली दिक्कुमारी देवी । (त्रि. गा. ९४९); विदेहकी २५ वीं राज्यधानी (त्रि. गा. ७१९); विजयार्द्धकी दक्षिण श्रेणीमें ३२ वां नगर । (त्रि. गा. ८९९)

विजयिष्णु–ज्योतिषके ८८ ग्रहोंमें ७१ वां ग्रह । (त्रि. गा. ३६९)

विजयार्द्ध–(वैताढ्य-रूपाचलगिरि) जंबूद्वीपमें ३२ देश व भरत व ऐरावत इन ३४ देशोंके मध्यमें पर्वत हैं । चक्री छः खण्डको साधते हैं, बीचमें यह पर्वत है इसलिये इसे विजयार्द्ध कहते हैं । नारायण प्रतिनारायण तीन खण्ड साधते हैं । कुल ढाई द्वीपमें ३४×५=१७० विजयार्द्ध हैं । एक मेरु संबंधी ३४, मेरु पांच हैं । हरएक विजयार्द्धकी दो गुफाओंसे दो नदी निकली हैं । इससे हरएक देशके ६ खण्ड होगए हैं । २५ योजन ऊँचा व लम्बा बराबर देशभरमें चला गया है । इसके १० योजन ऊपर प्रथम श्रेणी है जिसका व्यास ५० योजन है । इसकी दक्षिण व उत्तर श्रेणीमें विद्याधरोंके नगर हैं । भरत व ऐरावतमें दक्षिणमें ५० व उत्तरमें ६० हैं । परन्तु विदेहोंमें बराबर ५५–५५ नगर हैं कुल ११० नगर हैं । फिर १०० योजन ऊपर जाकर दूसरी श्रेणी है वह १० योजन चौड़ी है । यहां आभियोग्य देव रहता है । फिर पांच योजन ऊपर शिखर है, १० योजन व्यास है जहांपर सिद्धायतन आदि नौ कूट हैं । इनमेंसे पूर्णभद्र कूटमें विजयार्द्ध देव रहता है । सिद्धायतनपर जिन मंदिर है । भरत ऐरावतके विजयार्द्धोंमें दुःषम सुषमा [illegible] रहता [illegible] है । विदेहोंमें दुःषमा [illegible] रहता है । (त्रि. गा. ६६५, ६९५, ७०७, ८८३, ६९०, ७०८) [illegible] तीन [illegible] होती हैं [illegible], [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] कूट, [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] [illegible] है । (त्रि. गा. [illegible])

विजयार्द्धके ११० नगर ।

दक्षिण श्रेणीके ५०		उत्तर श्रेणीके ६०	
१–किंनामित	२६–कामप्रण्य	१–अर्जुनी	३१–कुमुद
२–किंनरगीत	२७–गगनचरी	२–अरुणी	३२–कुन्द
३–नरगीत	२८–विनयचरी	३–कैलाश	३३–गगनवल्लभ
४–वहु केतु	२९–शुक्र	४–वारुणीपुर	३४–दिव्यतिलक
५–पुंडरीक	३०–संजयंति	५–विद्युत्प्रभ	३५–भूमि तिलक
६–सिंहध्वज	३१–जयंती	६–किलकिल	३६–गंधर्व नगर
७–श्वेतध्वज	३२–विजया	७–चूड़ामणि	३७–मुक्ताहार
८–गरुडध्वज	३३–वैजयंती	८–शशिप्रभ	३८–नैमिष
९–श्रीप्रभ	३४–क्षेमंकर	९–वंशाल	३९–अग्निज्वाल
१०–श्रीधर	३५–चन्द्राभ	१०–पुण्यचूल	४०–महाज्वाल
११–लोहार्गल	३६–सूर्याभ	११–हंसगर्भ	४१–श्री निकेतपुर
१२–अरिंजय	३७–रतिकूट	१२–वलाटक	४२–जयावह
१३–वज्रार्गल	३८–चित्रकूट	१३–शिवकर	४३–श्रीनिवास
१४–वज्राढ्यपुर	३९–महाकूट	१४–श्रीसौधे	४४–मणिवज्र
१५–विमोचि	४०–हेमकूट	१५–चमर	४५–भद्राश्वपुर
१६–पुरंजय	४१–त्रिकूट	१६–शिवमंदिर	४६–धनजय
१७–शकटमुखी	४२–मेघकूट	१७–वसुमत्का	४७–गोक्षीर फेन
१८–चतुर्मुखी	४३–विचित्रकूट	१८–वसुमती	४८–अक्षोभ
१९–वहुमुखी	४४–वैश्रवकूट	१९–सिद्धार्थ	४९–गिरिशिखर
२०–अरजस्का	४५–सूर्यपुर	२०–शत्रुंजय	५०–धरणिपुर
२१–विरजस्का	४६–चन्द्रपुर	२१–ध्वजमाल	५१–धारणिपुर
२२–रथनूपुर	४७–नितोद्योतिनी	२२–सुरेन्द्रकांत	५२–दुर्ग
२३–मेखलाग्रपुर	४८–विमुखी	२३–गगननन्दन	५३–दुर्धरनगर
२४–क्षेमचरी	४९–विलवाहिनी	२४–अशोका	५४–सुदर्शन
२५–अपराजित	५०–सुमुखी	२५–विश्वेका	५५–महेन्द्रपुर
		२६–वीतशोका	५६–विजयपुर
		२७–अलका	५७–सुगंधिनी नगर
		२८–तिलका	५८–वज्रार्द्धनगर
		२९–अंबर तिलक	५९–रत्नाकर
		३०–मंदर	६०–रत्नपुर

विजाति असद्भूत व्यवहार नय–एक द्रव्य गुण या पर्यायका दूसरे द्रव्य गुण व पर्यायमें आरोप करना जिस नयसे हो। जैसे मतिज्ञानको मूर्तिक कहना। यहां विजाति गुणमें विजाति गुणका आरोप है। (सि. द. ए. ११)

विजाति उपचरित असद्भूत व्यवहार नय–बिलकुल भिन्न विजाति द्रव्यको अपना मानना, जैसे आभरण वस्त्रादि मेरे हैं। (सि. द. ए. ११)

विज्ञान–भेद ज्ञान, यथार्थ ज्ञान, पूर्ण ज्ञान।

विटत्व–भंडरूप वचन कहते हुए रागरूप शरीरकी कुचेष्टा करना, यह ब्रह्मचर्य अणुव्रतका तीसरा दोष है। (सा. अ. ४–५८)

वितत–ढोल नगारोंके शब्द।

वितर्क–शास्त्र, शब्द व पदका आलम्बन। (सर्वा. अ. ९–४३)

वित्तस्त्री–पैसा देकर प्राप्त करी हुई स्त्री।

वितस्ति–दो पटका, बालिश्त।

विदल–देखो "द्विदल"।

विदेहक्षेत्र–देश, जम्बूद्वीपके मध्यमें क्षेत्र–जंबूद्वीपके मध्य सुदर्शन मेरु १०००० योजन चौड़ा है। इसके पूर्व व पश्चिम भद्रशाल वन प्रत्येक २२००० योजन चौड़ा है। ५४००० योजन एक लाख जंबूद्वीपके व्याससे घटाकर, ४६००० योजनमें विदेह है, २३००० पूर्व, २३०००

देश		राजधानी
२५–वप्रा	सीतोदाके उत्तर तट	विजया
२६–सुवप्रा		वैजयंती
२७–महावप्रा		जयंता
२८–वप्रकावती		अपराजिता
२९–गंधा		चक्रपुरी
३०–सुगंधा		खड्गपुरी
३१–गंधला		अयोध्या
३२–गंधमालिनी		अवध्या

विद्यमान तीर्थंकर–भरत ऐरावत विदेहके क्रमसे २४, २४, २० देखो नाम (प्र. जि. पृ. २६४–२६९); कुल ढाईद्वीपके ६८×५=३४० वर्तमान तीर्थंकर हैं।

विद्या–धर्मशास्त्र चार विभागोंमें विभक्त है प्रथमानुयोगके लिये व्याकरण, अलंकार, साहित्यका ज्ञान, करणानुयोगके लिये गणित शास्त्र, चरणानुयोगके लिये नीति शास्त्र व द्रव्यानुयोगके लिये न्यायशास्त्रका ज्ञान होना जरूरी है। शस्त्र विद्याके लिये व्यायाम, मसिके लिये सुन्दर लिपि, वाणिज्यके लिये गणित, नीति व राज विद्या तथा शिल्प ज्योतिषादिके लिये गणित जानना यावश्यक है।

(जैनमित्र सन् १९०८ अं० १६–४)

विद्याधरोंकी तीन प्रकार विद्याए होती हैं। (१) साधित–जो साधन की जावें, (२) कुलविद्या जो पिता पक्षसे मिले, (३) जाति विद्या–जो माता पक्षसे मिले। (त्रि० गा० ७०९)

विद्या कर्मार्य–जो गणित शास्त्र आलेख्य आदि बहत्तर कलाओंके पठन पाठनसे आजीविका करें ऐसे आर्य। (म० पृ० ९१६)

विद्याचंद्र–आचार्य सं० ११७० (दि० ग्र० नं० ५०८)

विद्या दोष–जो साधु विद्या सिखानेकी लालच देकर वस्तुका ग्रहण करे। (म० पृ० ९६)

विद्याधर–जो साधित, कुल व जाति विद्याके धारक त्रिविध होते हैं तथा इज्या, वार्ता, दत्ति, स्वाध्याय, संयम, तप, इन षट्कर्ममें रत है। विजयार्द्धकी दक्षिण उत्तर श्रेणीमें इनका सदा निवास रहता है। (त्रि० गा० ७०९); पं० लब्धि विधानके कर्ता। (दि० ग्रं० नं० ३०७)

विद्यानन्दि–(स्वामी सं० ६८८) विद्यानंद महोदय, अष्टसहस्री, श्लोकवार्तिक, आप्त परीक्षा, प्रमाण मीमांसा, प्रमाण परीक्षा, तर्क परीक्षा आदिके कर्ता। (दि० ग्रं० नं० १०४); भट्टारक सुदर्शन चरित्रादिके कर्ता। (दि. ग्रं. नं. ३०६); आचार्य सं० ९०९ (दि० ग्रं० नं० ३०५); सकलतार्किक चूडामणि–युक्त्यानुशासन टीका, पंचम भास्कर स्तोत्र, पात्र केशरी स्तोत्रके कर्ता।

(दि० ग्रं० नं० ४१२)

विद्या भूषण–(भ०) त्रिचतुर्विंशति विधानके कर्ता। (दि० ग्रं० नं० ३१०)

विद्यानुवाद पूर्व–बारहवें दृष्टिवाद अंगका १० वां पूर्व इसमें ७०० अल्पविद्या ५०० रोहिणी आदि महाविद्या हैं। इनके साधनके मंत्रयंत्रादि व ८ निमित्तज्ञान आदिका वर्णन है। इसके एक क्रोड़ १० लाख पद हैं। (त्रि० गा० ३६६)

विद्युत–सीतोदा नदीका एक द्रह।

(त्रि० गा० ६५७)

विद्युतकुमार–भवनवासी देवोंमें छठा भेद। इनके इन्द्र घोष, महाघोष हैं। इनके मुकुटोंमें साथियेका चिह्न है। इनके भवन ७६ लाख हैं जिनमें जिनमंदिर इतने ही हैं। यह रत्नप्रभाके खरभागमें रहते हैं। आयु १। पल्य उत्कृष्ट व जघन्य १०००० वर्ष है। (त्रि० १०९)

विद्युज्जिह्व–८८ ज्योतिष ग्रहोंमें ३४ वां ग्रह

(त्रि० गा० ३६६)

विद्युतप्रभ–मेरु पर्वतका तीसरा गजदंत। (त्रि० गा० ३६३); विजयार्द्धकी उत्तर श्रेणीमें पांचवां नगर (त्रि० गा० ७०२); विद्युतप्रभ गजदन्तपर दूसरा कूट। (त्रि० गा० ७३९)

विद्युतमाली मेरु–पुष्करार्द्ध द्वीपमें दूसरा मेरु या ढाईद्वीपमें पांचमा मेरु ।

विध्यात भागहार संक्रमण–मंद विशुद्धतावाले जीवके स्थिति अनुभागको घटाते हुए कर्मोंको भागहार देकर अन्य प्रकृतिरूप बदल देना । (गो० क० ४०९...)

विद्वज्जन बोधक–पं० पन्नालाल दूनीवालों कृत मुद्रित ।

विद्वद्रत्नमाला–जिनसेन, गुणभद्र, अमितगति, वादिराज, मल्लिषेण, समंतभद्राचार्य, पं० आशाधरके चरित्र मुद्रित, ले० पं० नाथूरामजी प्रेमी ।

विधिसाधक–जो हेतु किसी बातके अस्तित्वको सिद्ध करे ।

विनय उपसंपत–अन्य संघसे आए हुए मुनियोंको आसनदान, प्रिय वचन, पुस्तक दानादि करके आदर करना । (मू० गा० १३९)

विनयचरी–विजयार्द्धकी दक्षिण श्रेणीमें १८ वीं नगरी । (त्रि० गा० ६९९)

विनयचन्द्र–द्विसन्धान काव्य टीकाके कर्ता । (दि० ग्रं० नं० १०९); औरेन्द्र, भूपाल चतुर्विंशति टीका । (दि० ग्रं० नं० ४३२)

विनयधर–लोहाचार्यके पीछे अंग पूर्वके अंशके ज्ञाता आचार्य । (श्रु० पृ० १४)

विनय तप–अंतरङ्ग तपका दूसरा भेद । मोक्षके लिये ज्ञानका आदरसे अभ्यास करना ज्ञान विनय है, शंकादि दोष रहित सम्यक्त पालना दर्शन विनय है, चारित्रमें चित्तका उत्साह रखना चारित्र विनय है, आचार्यादि पूज्योंको हाथ जोड़ना आदि उपचार विनय है । विनय ४ प्रकार है । (सर्वा० अ० ९–२३)

विनय प्रकीर्णक–अंग बाह्यका पांचवां भेद । इसमें विनयका स्वरूप है ।

विनय मिथ्यात्व–सर्व धर्मों व सर्व देवोंको समान मानकर मानना, विवेक करना । (सर्वा० अ० ८–१)

विनयवादी–एकांतमती ३२ भेद देखो 'एकांतवाद'

विनय सम्पन्नता–षोडशकारण भावनाका दूसरा भेद, विनयरूप रहनेकी भावना (सर्वा. अ. ६–२४)

विनयाचार–सम्यग्ज्ञानके आठ अंगोंमें पांचवां, विनय पूर्वक बैठकर शास्त्र नम्रभावसे पढ़ना । (श्रा. पृ. ७२)

विनायक यंत्र–सिद्ध यंत्र ।

विनोदीलाल पं०–भक्तामर चरित्र छं०, अकृत्रिम चैत्यालय पूजा, नेमनाथ ब्याहला, अर्हंतपासा केवली आदिके कर्ता । (दि० ग्रं० नं० १२९)

विपरीत मिथ्यात्व–मिथ्या धर्मको यथार्थ मानना जैसे पशु यज्ञसे स्वर्ग मिलेगा या परिग्रह सहित भी निर्ग्रंथ होता है । (सर्वा० अ० ८–१)

विपर्यय–विपरीत एक कोटि (एक तरफा) को निश्चय करनेवाला ज्ञान, जैसे सीपको चांदी जान लेना । (जै० सि० प्र० नं० ८१)

विपाक–कर्मोंका फल देना, कर्मोंका अनुभाग प्रगट होना; द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव व भाव इन पांच निमित्तोंके द्वारा कर्मोंका नानाप्रकार पाक होना या फल देना । मूल प्रकृति अपने ही रूप स्वमुखसे फल देती हैं । उत्तर प्रकृति जो तुल्य जाति होती हैं वे अन्य प्रकृतिरूप होकर परमुखसे भी फल देती हैं । परन्तु दर्शन मोह कर्म चारित्र मोहरूप होकर या कोई आयु किसी आयु रूप होकर फल नहीं देता है । (सर्वा० अ० ८–२१)

विपाक विचय–धर्मध्यान, ज्ञानावरणादि कर्मोंका द्रव्यक्षेत्रादिके निमित्तसे कैसा शुभ व अशुभ फल होता है उसका बारबार विचारना तथा उनको आत्मासे छुड़ानेके लिए भावना (सर्वा. अ. ९–३६)

विपाक सूत्र–अंग प्रविष्ट श्रुतका ११ वां अंग । इसमें कर्मोंके बंध, उदय, सत्ता, फल आदिका वर्णन है । इसके एक कोड़ चौरासी लाख पद हैं । (गो० जी० गा० ३५६)

विपुल–सौधर्मादिके ८८ पटलोंमें ३१ इं. वि.

३६७) भरतके आगामी उत्सर्पिणीके १९वें तीर्थंकर (त्रि० गा० ८७४)

विपुलमति मनःपर्यय ज्ञान—दूसरेके मनके भीतर सरल या वक्ररूपसे मन वचन कायकी क्रिया द्वारा किये हुए पदार्थका जो चिंतवन होरहा है उसको जो ज्ञान प्रत्यक्ष जानले। तीन काल सम्बन्धी पुद्गल द्रव्यको किसीने भूतकालमें चिंतवा था व वर्तमानमें चिंतवन करता है व आगामी चिंतवन करेगा उस सबको विपुलमति जान सक्ता है। यह ज्ञान ऋद्धिधारी साधुको होता है या छूटता नहीं है केवलज्ञान तक लेजाता है। द्रव्य मन जहां हो वहींके आत्मप्रदेशोंमें मनःपर्यय ज्ञानका क्षयोपशम होता है। ६ से १२ वें गुणस्थान तक रहता है। विपुलमति जघन्य ८ या ९ योजन तककी व उत्कृष्ट ४५ लाख योजन तककी जानता है। इतने लम्बे चौड़े क्षेत्रमें जो मानव या तिर्यंच चिंतवन करते हों उनको जानले। विपुलमतिका जघन्य ८ या नौ भव व उत्कृष्ट पल्यका असंख्यातवां भाग मात्र काल है, इतने काल तककी जाने।

(गो. जी. ग. ४४०)

विप्रमोक्ष—बिलकुल छूट जाना।

विप्रयोग—वियोग, जुदाई।

विप्राण मरण—यह मरण उसके होता है जो अपने व्रत क्रिया चारित्रमें उपसर्ग आनेपर सह भी नहीं सक्ता और भ्रष्ट होनेके भयसे अशक्त होकर अन्न पानका त्याग कर देता है। (भ. ए. ८२)

विबुधसेन—तत्वार्थसूत्र टीकाके कर्ता।

(दि० ग्रं० नं० ४३४)

विभाव अर्थ पर्याय—पर द्रव्यके निमित्तसे जो द्रव्यके गुणोंमें विकार हो। जैसे जीवके राग द्वेष।

(जै. सि. प्र. नं. १९९)

विभाव व्यंजन पर्याय—पर द्रव्यके निमित्तसे जो प्रदेशत्व गुणोंमें विकार हो या आकारकी पलट न हो जैसे जीवकी नर नारकादि पर्याय।

(जै. सि. प्र. नं. १९६)

विभंगा नदी—सीता और सीतोदा नदीके दक्षिण व उत्तर तटपर भद्रशाल वनकी वेदीसे आगे १ वक्षार पर्वत, फिर एक विभंगा नदी, इस तरह तीन २ विभँगा नदी हरएकके तटपर हैं, कुल १२ हैं, इन्हींसे विदेहके ७२ देशोंका विभाग हुआ है—

सीताके उत्तर तटपर—गाधवती, द्रहवती, पंकवती है।

,, दक्षिण ,, तप्तजला, मत्तजला, उन्मत्तजला।

सीतोदाके ,, ,, क्षारोदा, सीतोदा, स्रोतावाहिनी।

,, ,, ,, गम्भीरमालिनी, फेनमालिनी व ऊर्मि मालिनी।

ये नदियें निषध व नील पर्वतके निकट कुण्डोंसे निकल कर १२॥ योजन चौड़ीसे १२९ योजन चौड़ी होकर सीता व सीतोदामें प्रवेश करती हैं।

(त्रि० गा० ६६९-६७०)

विभङ्ग ज्ञान—मिथ्यादृष्टी जीवोंके अवधिज्ञानावरण और वीर्यांतरायके क्षयोपशमसे उत्पन्न होनेवाला जो द्रव्य, क्षेत्र, काल भावकी मर्यादा लिये रूपी पदार्थको जानता है। परन्तु सच्चे आप्त, आगम, पदार्थोंमें विपरीत ग्रहण करनेवाला है यह तीर्यंच व मनुष्यमें तीव्र काय क्लेश रूप द्रव्य संयमसे उपजता है सो गुण प्रत्यय है। देव नारकीके भव प्रत्यय है। (गो. जी. गा. ३०५)

विभ्रम—विपर्यय—उल्टा ज्ञान।

विमल—वर्तमान भरतके १३ वें तीर्थंकर कंपिला पुरके राजा इक्ष्वाकुवंशी कृतवर्मा रानी जयस्यामाके पुत्र, साठ लाख वर्ष आयु, राज्यकर साधु हो तपकर सम्मेदशिखरसे मोक्ष हुए।

विमल—ज्योतिषके ८८ ग्रहोंमें ६९ वां ग्रह। (त्रि. गा. ३६९); सौधर्म ईशान स्वर्गोंका दूसरा इन्द्रक विमान, (त्रि. गा. ४६४); सौमनस गजदंतपर पांचवां कूट, (त्रि. गा. ७३९); इस कूटपर वत्समित्र व्यन्तरदेवी वसती है, (त्रि. ७४२); भरतके आगामी उत्सर्पिणी वां तीर्थंकर, (त्रि. गा. ८७५); ५

द्रका स्वामी व्यन्तरदेव, (त्रि. गा. ९६२); व्यंतरोंकी पर्यायोंकी सेनाका प्रधान। (त्रि. गा. २११)

विमलचन्द्र–कर्णाटक जैन कवि सं० ११२८ यह दिगम्बर जैन वादि श्रेष्ट कहलाते हैं। (क. ९)

विमलदास–सप्तभंग तरंगिणीके कर्ता।
(दि० ग्रन्थ नं० २११)

विमलनाथ पुराण–सं० टीका मुद्रित।

विमला–व्यन्तरोंके इन्द्रोंकी एक महत्तर देवी।
(त्रि० गा० २७६)

विमलप्रभ–पांचवें क्षीरसमुद्रका स्वामी व्यंतरदेव।
(त्रि० गा० ९६३)

विमल वाहन–भरतके आगामी उत्सर्पिणीमें ११ वें चक्री। (त्रि० गा० ८७८)

विभ्रान्त–पहले नर्कका ८ वां इन्द्रक बिला।
(त्रि० गा० १९४)

विमर्दन–पांचवें नर्कके इन्द्रकके दक्षिणका बिला।
(त्रि० गा० १६१)

विमान–जिनमें निवासी अपनेको पुण्यात्मा मानते हैं। ऐसे बिमान स्वर्गोंके तीन प्रकारके हैं इन्द्रक जो मध्यमें हैं, श्रेणीबद्ध जो दिशा व विदिशामें हैं, प्रकीर्णक जो विदिशामें बिखरे हुए हैं। ऊर्ध्वलोकमें कुल विमान चौरासी लाख सत्तावन हजार तेईस हैं। एक२ विमानमें एक२ जिनमंदिर है।

स्वर्गोंके नाम	विमान संख्या
१–सौधर्म	३२ लाख
२–ईशान	२८ लाख
३–सनत्कुमार	१२ लाख
४–माहेन्द्र	८ लाख
५–ब्रह्म, ६–ब्रह्मोत्तर युगल	४ लाख
७–लांतव ८–कापिष्ट युगल	५० हजार
९–शुक्र १०–महाशुक्र युगल	४० ,,
११–शतार १२–सहस्रार ,,	६ ,,
१३–आनत, १४–प्राणत } १५–आरण, १६–अच्युत }	७००
तीन अधो ग्रैवेयिकमें	१११
तीन मध्य ,,	१०७
तीन ऊर्ध्व ,,	९१
नौ अनुदिशमें	९
पांच अनुत्तरमें	५
	८४,९७,०२३

(त्रि० गा० ४५१–४८१)

ये विमान संख्यात असंख्यात योजनोंके हैं। पहले स्वर्गका पहला विमान ४५ लाख योजन व्यासका है। (त्रि. गा. ४७२)

विमान पंक्तिव्रत–स्वर्गके विमानोंमें ६३ पटल हैं। एक एक पटलकी अपेक्षा ४ उपवास १ बेला करे। इस तरह ६३ पटलकी अपेक्षा २५२ उपवास व ६३ बेला करे, फिर एक तेला–अंतमें करे कुल उपवास २५२+१२६+३=३८१ एकासन= २५२+६३+1=३१६ कुल ६९७ दिनमें पूरा होता है, लगातार करता जाय।
(कि. कि. ए. १२६)

विमुखी–विजयार्द्धकी दक्षिण श्रेणीकी ४८ वीं नगरी। (त्रि. गा. ७०१)

विमोचि–विजयार्द्धकी दक्षिण श्रेणीका १९ वां नगर। (त्रि. गा. ६९८)

विमोचितावास–दूसरोंके द्वारा छोड़े हुए स्थानोंमें साधु ठहरे जिसमें चोरीका दोष न लगे। अचौर्य व्रतकी दूसरी भावना है। (सर्वा. अ. ७-६)

विमोह–अनध्यवसाय, कुछ होगा ऐसा ज्ञानका दोष।

विरजा–विदेहकी ३२ राजधानीमें ३१ वीं (त्रि० गा० ७१४); नंदीश्वर द्वीपकी दक्षिण दिशाकी बावड़ी (त्रि. गा. ९६९)

विरत–ज्योतिषके ८८ ग्रहोंमें ५९ वां ग्रह।
(त्रि. गा. ३६८)

विरजस्का–विजयार्द्धकी दक्षिण श्रेणीका ३१ वां नगर। (त्रि. गा. ६९८)

विरत–गुणस्थान–छठा, सातवां, अन्य [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।

विरति–विरक्त होना, छूटना (सर्वा.अ. ७–१)

विरधीचन्द्र पं०–(बुधजन जयपुरी) बुधजनविलास, बुधजन सतसई (स. १८-१९) योगसार टी., तत्वार्थबोध छः, पंचास्तिकाय छः, द्वादशानुप्रेक्षाके कर्ता। (दि. ग्र. १६३)

विरलन राशि–जिस संख्याको एक एक करके फैला दिया जावे। जैसे ४ का विरलन होगा। १, १, १, १, (सि०द० पृ० ६७)

विरुद्ध राज्यातिक्रम–विरुद्ध राज्य होनेपर या राज्यका कुप्रबन्ध होनेपर उचित न्यायको उल्लंघन करके क्रय विक्रय करना अल्पमूल्यकी वस्तु दीर्घ मूल्यमें बेचना। दीर्घ मूल्यकी अल्पमें लेना। अचौर्यअणुव्रतका तीसरा अतीचार (सर्वा.अ.७-२७)

विरुद्ध हेतु–जो हेतु साधनका खण्डन करे।

विरुद्ध हेत्वाभास–साध्यसे विरुद्ध पदार्थके साथ जिसकी व्याप्ति हो, जैसे शब्द नित्य है क्योंकि वह परिणामी है।
यहां "परिणामी" पना हेतु नित्यके साथ नहीं लग सक्ता। अनित्यके साथ लगता है। (जै० सि० प्र० नं ४९)

विवर–स्थान, अवकाश।

विवाह संस्कार–गर्भान्वयका १७वां संस्कार जब पुरुष विद्यासम्पन्न हो व व्यापारादिमें प्रवृत्ति करने लग जाय तब योग्य कन्याके साथ सिद्ध पूजनके साथ चार आदमियोंके समक्ष पाणिग्रहण कराया जाय। देखो 'विधि' (गृ० अ० ४–१७)

विविक्त शय्यासन–तप–पांचवां बाह्य तप साधुको शून्य स्थान जहां जन्तु न हों व ब्रह्मचर्य ध्यान स्वाध्यायकी सिद्धि होसके ऐसे स्थानमें आसन व शयन करना। (सर्वा०अ० ९–१९)

विवृत–योनि–खुला हुआ उत्पत्तिस्थान। (सर्वा. अ. २-३२)

विवेक–प्रायश्चित्त–जिसमें राग हो ऐसे अन्नपान आदिका त्याग करना। (सर्वा. अ. ९–२२) भेदविज्ञान, आत्मा और अनात्माकी भिन्न२ पहचान।

विष्णु–ज्ञानकी अपेक्षा सर्व व्यापक आत्मा।

विशाल–व्यन्तर इन्द्रोंकी वृषभ सेनाका नायक देव। (त्रि० गा० २८१)

विशाल नयन–भरतके वर्तमान चौथे रुद्र। (त्रि० गा० ८३६)

विलासराय पं० (१८६७) (इटावावाले, नवचक्र वचनिका, पद्मनन्द पंचविंशति वचनिकाके कर्ता। (दि० ग्रं० नं० १३७)

विशापदत्त या विशाखाचार्य } वीर निर्वाणके १६१ वर्ष बाद ११ अंग १० पूर्वके पाठी आचार्य (श्रु० पृ० १३)

विशुद्धि लब्धि–सम्यक्तकी कारणरूप शक्तिकी प्राप्ति–दूसरी लब्धि–जिसजीवके क्षयोपशम लब्धिके पीछे शुभकार्योंसे अनुराग हो अशुभ कार्योंसे विराग हो ऐसे विशुद्ध परिणामोंकी प्राप्ति हो जिससे साता आदि कर्मबंधे व संक्लेशकी हानि हो। (ल. गा. ५)

विश्व–लौकांतिक देवोंका अन्तरालका एक कुल, देखो लौकांतिक देव। (त्रि. गा. ५३८)

विश्वबोध–भ०, श्रावकाचार धर्मके कर्ता। (दि० ग्रन्थ नं० ३१३)

विश्वभूषण–भ० (सं० १८१०) पद्मपुराण मांगीतुंगी पूजा, इन्द्रध्वज पूजादिके कर्ता। (दि० ग्रन्थ नं० ३१२); सं० (१७३८) जिनदत्तच० के कर्ता। (दि० ग्रन्थ नं० १३८)

विश्वलोचन कोष–धरसेनाचार्य कृत सटीक मुद्रित बम्बई।

विश्वसेन–भ० होमशांतिके कर्ता। (दि० ग्रन्थ नं० ३१४)

विश्वानल–(विशाल) वर्तमान भरतके चौथे रुद्र।

विष्णु–जम्बूस्वामी केवलीके पीछे प्रथम श्रुतकेवली। (श्रु० पृ० १२)

विष्णुकुमार–मल्लिनाथ तीर्थंकरके समयमें नौमें चक्री, महापद्मके पुत्र मुनि हो ७०० मुनियोंकी

रक्षा की तब हीसे रक्षाबन्धन पर्व (श्रावण सुदी १५) चला है। (इ० १ पृ० ३५)

विष्णुसेन–(त्रिविद्याधिपति) समवशरण स्तोत्रके कर्ता। (दि० ग्रन्थ नं० ४१२)

विशेष–वस्तुका खास अंश या पर्याय–क्रम भावी विशेष पर्याय है जैसे मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, घटज्ञान, पटज्ञान। (जै. सि. प्र. नं. ७७–७९)

विशेष गुण–जो गुण उस द्रव्यमें हो अन्यमें न हो जैसे जीवके ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य–चेतनपना; पुद्गलके स्पर्श रस गंध वर्ण, धर्म द्रव्यका गति हेतुपना, अधर्मका स्थिति हेतुपना, आकाशका अवगाह हेतुपना, कालका वर्तनाहेतुपना। (आलापपद्धति)

विशेष संग्रहनय–जो नय एक जाति विशेषकी अपेक्षासे अनेक पदार्थोंको एक रूप ग्रहण करे। जैसे जीव उपयोगमय है, यहां जीव सर्व जीवोंका बोधक है। (सि० द० पृ० ९)

विशाका–विजयार्द्धकी उत्तर श्रेणीमें २९ वां नगर। (त्रि० गा० ७०४)

विष वाणिज्य–जीवोंको घात करनेवाले विषका व्यापार। (सा० अ० ५–२१–२२)

विषमधारा–१ से लगाकर केवल ज्ञानके अंशों तक विषम संख्याकी पंक्ति जैसे–१, ३, ५, ७, ९, ११ आदि। (त्रि० गा० ५३–५६)

विषय संरक्षण रौद्र ध्यान–परिग्रह व इंद्रिय भोगके पदार्थोंकी रक्षामें तीव्र मोह करते रहना चौथा रौद्रध्यान।

विसर्जन–विदा करना–अर्हंत पूजाके पीछे विसर्जन पाठ पढ़कर पूजा समाप्त की जाती है।

विसप–फैलना।

विसंयोजन–अनन्तानुबन्धी कषायके द्रव्यको अप्रत्याख्यानादि रूप कषायरूप बदल देना।

विस्तार–मार्गणा जहां जीवादिकोंका विस्तारसे कथन है।

विस्तार सम्यक्त–जीवादि तत्वोंको विस्तार रूप सुनके जो सम्यक्त हो। ([illegible])

विस्रसोपचय परमाणु–वे कर्म व नोकर्मके परमाणु जो जीवके प्रदेशोंमें एक क्षेत्रावगाही है। परन्तु जीवके साथ बंधको प्राप्त नहीं है। विस्रसा जो स्वभावसे उपचीयन्ते जमा होजाय। ये कर्म नोकर्मरूप होनेको योग्य हैं, वर्तमानमें पुद्गल रूप हैं। (गो. जी. गा. २४९)

विहारीलाल–पं० (छतरपुर) पदसंग्रहके कर्ता। (दि० ग्रन्थ नं० १३९)

विहायोगतिनाम कर्म–जिससे जीवका आकाशमें शुभ व अशुभ गमन हो (सर्वा. अ ८–११)

वीचार–ध्येय पदार्थ, शब्द व योगका पलटना। पृथक्त्व वितर्क वीचार शुक्ल ध्यानमें संभव है। (सर्वा. अ. ९–४४)

वीतराग–जहां मोहका उदय न रहा हो।

वीतराग चारित्र–आत्मामें रमणता, जहां मोह या तो उपशम होगया है या क्षय होगया है। उपशमश्रेणी व क्षपक श्रेणीका चारित्र तथा केवली व सिद्धमें भी पाया जाता है।

वीतराग देव–जिस पूज्यनीय देवके १८ दोष न हों। क्षुधा, पिपासा, जरा, रोग, जन्म, मरण, भय, आश्चर्य, राग, द्वेष, मोह, चिंता, अरति, खेद, शोक, पसीना, मद, निद्रा। (र. श्रा. ६)

वीतराग सम्यक्त–जिस सम्यक्त भावमें आत्मामें विशुद्धि होती है। आत्मस्वरूपमें मगन हो, शुभ राग भी न हो, (सर्वा० अ० १–२); इसका निश्चय सम्यक्त है, इसके प्रशम, संवेग, अनुकम्पा, आस्तिक्य ये लक्षण प्रगट रहते हैं।

वीतशोक–ज्योतिषके ८८ ग्रहोंमें ५८ वां ग्रह। (त्रि. गा. ३६८) विजयार्द्धकी उत्तर श्रेणीमें [illegible] वां नगर (त्रि० गा० [illegible]) [illegible] २४ वीं [illegible] (त्रि. गा. [illegible]) [illegible] (त्रि. गा. [illegible])

वीर–श्री महावीर तीर्थंकरका एक नाम [illegible] "महावीर" [illegible]

विमान (त्रि० गा० ४६४); पं० नेमनाथ काव्य, वर्द्धमान पुराणका कर्ता । (दि० ग्रन्थ नं० ३१९)

वीरचन्द्र—सं० १८०० में वीरचन्द्र मुनीने दक्षिणके पुस्कर ग्राममें भिल्लक संघ चलाया ।
(दर्शनपाठ ग. ४६)

वीरांगद—भरतके वर्तमान पंचम कालके अन्तमें जैन साधु । (त्रि० गा० ८९८)

वीर निर्वाण सम्वत्—२४९७ सन् ई० १९३० अक्टूबरमें । श्री महावीरस्वामीके मोक्ष जानेके पीछे शक राजा ६०९ वर्ष ९ मास पीछे हुआ है । शक सम्वत् १९१२में २४९७ वीर निर्वाण संवत है ।
(त्रि० गा० ८९०)

वीरदास—पं० धर्मपरीक्षा छंदके कर्ता ।
(दि. ग्र. नं. १००)

वीरनन्दि—आचार्य सं. ९३१ ।
(दि. ग्र. नं. ७१८)

वीरनन्दि—महामुनि (नंदिसंघ) (सं. ९९६) आचार सार, चन्द्रप्रभ चरित, शिल्प संहिताके कर्ता ।
(दि. ग्र. नं. ३१८)

वीर भद्राचार्य—भाष्य मालिनीके कर्ता ।

वीर सेनाचार्य—(जिन सेनाचार्यके गुरु) विजय धवल टीका, पूजा कल्प, प्रमाण नौका, सिद्धांत पद्धतिके कर्ता । (दि० ग्रन्थ नं० ३१९)

वीर्य-गुण—आत्माका बल जिसको वीर्यांतराय कर्म ढकता है । (जै० सि० प्र० नं० २२८)

वीर्य क्षायिक—अनन्त बल ।

वीर्य प्रवाद पूर्व—दृष्टिवाद १२वें अंगका तीसरा पूर्व जिसमें आत्मा अनात्माकी शक्तिका कथन है । इसके ७० लाख मध्यम पद हैं ।
(गो० जी० गा० ३६४-३६६)

वीर्याचार—अपनी शक्तिको न छिपाकर पूरे आत्मबल व उत्साहके साथ चारित्र पालना ।
(सा० अ० ६-३४)

वीर्यान्तरायकर्म—जिस कर्मके उदयसे आत्मवीर्यकी रुकावट हो । (सर्वा० अ० ८-१३)

वृत्तिपरिसंख्यान—तीसरा बाहरी तप, भिक्षाको जाते हुए एक घर आदि एक मुहल्ला आदि अन्य यथायोग्य प्रतिज्ञा लेकर शांत चित्तसे जाते हैं । यदि प्रतिज्ञानुसार भोजन मिलता हो तो लेते हैं नहीं तो संतोष रखते हैं । (सर्वा० अ० ९-१९)

वृत्ति विलास—कर्णाटक जैनार्णव (सन् ११६० धर्म परीक्षा व शास्त्रसारके कर्ता । (क० ३९)

बृन्दावन—अग्रवाल (बनारस) (सं० १९०९) प्रवचनसार छन्द, २४ पूजा, ३० चौ० पूजा, छंद शतक भाषा पिंगल आदिके कर्ता ।
(दि० ग्रं० नं० १४१)

वृन्दावन-विलास—बम्बई ।

वृषभ—श्री ऋषभदेव भरतके वर्तमान पहले तीर्थंकर जिनके पगमें बैलका चिह्न था । देखो "ऋषभ"

वृषभाचल—विजयार्द्ध पर्वत और कुलाचल पर्वतके व दोनों नदीके मध्य बीचके म्लेच्छ खण्डके बहुत मध्यमें यह पर्वत होता है । पांच मेरु संबंधी ५ भरत, ५ ऐरावत व १६० विदेहोंमें १७० वृषभाचल हैं, ये सुवर्णमणिमई हैं । ऊँचे १०० योजन नीचे व्यास १०० योजन ऊपर ५० योजन हैं । इसपर अतीतकालके चक्रवर्तीके नाम लिखे हैं । जब कोई चक्रवर्ती दिग्विजय करता हुआ आता है तब वहां चक्री अपना नाम काकिणी रत्नसे लिखता है । (त्रि० गा० ७१०-८२३)

वृषभेष्ट—लौकांतिक देवोंका अंतरालका एक कुल ।
(त्रि. गा. ५३८)

वृष्येष्ट रसत्याग—कामोद्दीपक इष्ट रसादि खानेका त्याग । यह ब्रह्मचर्य व्रतकी रक्षार्थ चौथी भावना है । (सर्वा. अ. ७ ७)

बृहत द्रव्य संग्रह—ब्रह्मदेव कृत संस्कृत टीका, भाषा टीका सहित मुद्रित बम्बई ।

बृहत धारा परिकर्म—शास्त्र, जिसमें गणित शास्त्र व वर्गधारा आदिका वर्णन । (त्रि. गा. ९२)

बृहत मृदंगमधित्रत—उपवास १ करे फिर

वेला व्रत–आगे पीछे एकाशन बीचमें दो उपवास।

वेश्या व्यसन त्याग–पाक्षिक श्रावक वेश्या प्रसंग त्यागे तथा पहली प्रतिमावाला उसके अतीचार बचावे अर्थात् उनका नाच गान न देखे न सुने न उनके बाजारोंमें सैर करे। (सा० ३–२०)

वैकालिक–१० देखो "दश वैकालिक"

वैक्रियिक अंगोपांग–नाम कर्म जिसके उदयसे देव नारकीके शरीरके अंग व उपअंग बने। (सर्वा० अ० ८–११)

वैक्रियिक काय योग–(वैगूर्विक का० यो०) वैक्रियिक शरीरके निमित्त कर्म व नो कर्म ग्रहण करनेकी शक्तिको धरे आत्म प्रदेशोंका चंचलपना। जिससे छोटा बड़ा व अनेक रूपपना न होसके वह वैक्रियिक या वैगूर्विक शरीर है। (गो० जी० गा० २३१)

वैक्रियिक बंधन नाम कर्म–जिससे वैक्रियिक शरीर योग्य वर्गणाओंका परस्पर बन्ध हो। (सर्वा० अ० ८–११)

वैक्रियिक मिश्र काय योग–निर्वृत्यपर्याप्त अवस्थामें जबतक शरीर पर्याप्ति पूर्ण न हो तबतक कार्मण और वैक्रियिक मिश्र देह है। इस मिश्र शरीरके निमित्त कर्म नोकर्म ग्रहणकी शक्तिको धरे अपर्याप्ति काल मात्र आत्माके प्रदेशोंका चलन होना। (गो० जी० गा० २३४)

वैक्रियिक शरीर–नाम कर्म–जिससे विकार करने योग्य बदलने योग्य शरीर देव व नारकियोंका बने। (सर्वा अ० ८–११)

वैक्रियिक षट्क–वैक्रियिक शरीर, वै० अंगोपांग, नरकगति व वै० गत्यानुपूर्वी व देवगति व देवगत्या०; ये छः कर्म प्रकृति। (गो० क० १०९)

वैक्रियिक संघात नामकर्म–जिससे वैक्रियक शरीर बनने योग्य नोकर्म वर्गणाएँ छिद्र रहित मिलजावें। (सर्वा. अ. ८–११)

वैखरी–शब्दकी तरंगे जो कानों तक पहुंचती हैं।

वैगूर्विक–शरीर, देखो वैक्रियिक शरीर।

वैजयन्त–ज्योतिषके ८८ ग्रहोंमें ६६ वां ग्रह। (त्रि. गा. ३६९); पांच अनुत्तरोंमें चौथा उत्तर दिशाका विमान। (त्रि. गा. ४६७) जंबू द्वीपकी वेदीमें दक्षिणका द्वार। (त्रि. गा. ८९२) रुचक पर्वतपर उत्तर दिशाका दूसरा कूट। (त्रि. गा. ९७२)

वैजयन्ती–विजयार्द्धकी दक्षिण दिशामें १३ वां नगर। (त्रि. गा. ६९९) विदेह क्षेत्रकी १६ वीं राजधानी (त्रि. गा. ७१९) रुचकगिरिपर पूर्व दिशाके कांचन कूटपर बसनेवाली देवी। (त्रि. गा. ९४९); नंदीश्वर द्वीपमें पश्चिम दिशाकी एक बावड़ी। (त्रि. गा. ९६९)

वैडूर्य–रुचक पर्वतके अभ्यंतर पूर्वका कूट। (त्रि. गा. ९९८) रुचक पर्वतकी दक्षिण दिशामें आठवां कूट। (त्रि. गा. ९९०) सौधर्म इशान स्वर्गोंका १४ वां इंद्रक विमान। (त्रि.गा.४६४) महा हिमवन पर्वतपर आठवां कूट। (त्रि.गा.७२४)

वैडूर्यवर–मध्य लोकके अंतिम १६ द्वीप समुद्रोंमें १० वां द्वीप व समुद्र। (त्रि.गा. ३०६–७)

वैडूर्या–रतनप्रभा पहली पृथ्वीके खर भागमें तीसरी पृथ्वी १००० योजन मोटी जहां भवनवासी व्यन्तर देव रहते हैं। (त्रि. गा. १४७)

वैताढ्य पर्वत–देखो "विजयार्द्ध" पर्वत।

वैनयिक–अंग बाह्य श्रुतज्ञानका पांचवां प्रकीर्णक इसमें ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, उपचार इन पांच प्रकार विनयका कथन है। (गो० जी० गा० ३६७–३६८)

वैनयिक मिथ्यात्व–सर्व धर्म व सर्व देवोंकी समान भक्तिका भाव।

वैनयिकवाद–देखो "ऐकान्तवाद"

वैमानिक शक्ति–(गुण) जिसके निमित्तसे दूसरे द्रव्यके सम्बन्ध होनेपर आत्मामें विभाव

परिणाम—रागादि भाव हो।

(जै० सि० प्र० नं० १३९)

वैमानिक देव—स्वर्ग निवासी देव, देखो "विमान"

वैय्यावृत्य करण—गुणवानोंको कष्टमें देखकर निर्दोष विधिसे उस कष्टको दूर करना। १६ कारण भावनाकी नौमी भावना।

(सर्वा. अ. ६–२४)

वैय्यावृत्य तप—तीसरा अंतरंग तप। १० प्रकारके साधुओंकी सेवा करना। (१) आचार्य, (२) उपाध्याय, (३) तपस्वी, (४) शैक्ष—नवीन शिष्य (५) ग्लान—रोगी, (६) गण (एक संप्रदायके), (७) कुल (एक आचार्यके शिष्य), (८) संघ (मुनि समूह), (९) साधु—चिरदीक्षित, (१०) मनोज्ञ—लोक सम्मत प्रसिद्ध साधु।

(सर्वा• अ० ९–२४)

वैर—नव अनुदिश विमानोंमें तीसरा पश्चिमका श्रेणीबद्ध विमान। (त्रि० गा० ४५६)

वैराग्य—रागद्वेषका न होना, उदासीन शांतभाव।

वैरोचन—नव अनुदिश विमानोंमें चौथा उत्तरका श्रेणीबद्ध विमान (त्रि०गा० ४५६); असुरकुमार भवनवासियोंका इन्द्र। (त्रि० गा० २०९)

वैशेषिक—कनादको माननेवाले ये दो ही प्रमाण मानते हैं।

वैश्य वर्ण-कृषि, मसि व वाणिज्यसे आजीविका करनेवाले।

वैश्रवण—सीताके दक्षिण तटपर वक्षार पर्वत।

(त्रि० गा० ६६७)

वैश्रवणकूट—विजयार्द्धकी दक्षिण श्रेणीमें ४४वां नगर। (त्रि० गा० ७००); हिमवत् कुलाचलपर ११ वां कूट (त्रि. गा. ७२१); भरतके विजयार्द्धपर नौमा कूट (त्रि. गा. ७३२); ऐरावतके विजयार्द्धपर नौमा कूट (त्रि. गा. ७३४); रुचक पर्वतकी दक्षिण दिशामें सातवां कूट जिसपर दिक्कुमारी बसती है। (त्रि. गा. ९५०–१)

वांसरी भट्ट—आर्य तिलक टीकाके कर्ता।

(दि० ग्रं० नं० २२१)

वंदना-प्रकीर्णक—एक तीर्थंकर चैत्यालय, प्रतिमाकी मुख्यता करके नमस्कारका जिसमें वर्णन हो। (गो. क. ३६७-८)

वंशीधर—पं०, द्रव्य संग्रह वचनिका।

(दि. ग्रं. नं. १९२)

व्यक्त—प्रगट।

व्यक्ताव्यक्त—कुछ प्रगट कुछ अप्रगट जैसे पानीमें डूबी हुई भैंस।

व्यंजन—शब्द—क, ख आदि अक्षर।

व्यंजन पर्याय—प्रदेशत्व गुणका विकार या आकारमें परिणमन होना। (जै. सि. प्र. १००-३) जो विना दूसरेके निमित्तके स्वभाव सदृश पर्याय हो वह स्वभाव व्यंजन पर्याय जैसे जीवकी सिद्ध पर्याय। जो दूसरेके निमित्तसे हो वह विभाव व्यंजन पर्याय जैसे जीवकी नरनारकादि पर्याय।

व्यंजनावग्रह—अप्रगट शब्दादिका जानना जिससे निश्चय न होसके वह है। यह स्पर्शन, रसना, घ्राण व कर्ण इन चार इन्द्रियोंसे होता है तथा बहु, बहुविध, क्षिप्र, अनिःसृत, अनुक्त, ध्रुव, व अल्प, एकविध, अक्षिप्र, निःसृत, उक्त, अध्रुव, बारह प्रकारके पदार्थोंका होसकता है इसलिये इसके ४८ भेद हैं। (सर्वा. अ. १–१८–१९)

व्यंजन संक्रान्ति—प्रथम शुक्ल ध्यानमें एक शब्दका पलटकर दूसरा होजाना। (सर्वा.अ.९–४४)

व्यतिक्रम—उल्लंघन, दोष, देखो "अतीचार"

व्यतिरेक दृष्टांत—जहां साध्यके अभावमें साधनका अभाव बताया जावे, जहां धूम नहीं है वहां अग्नि नहीं है जैसे तालाब।

([illegible])

व्यंतरेन्द्र—विविध देशान्तरोंमें जो रहते हैं ऐसे व्यंतरदेव। ये आठ प्रकार हैं—किन्नर, किंपुरुष, महोरग, गंधर्व, यक्ष, राक्षस, भूत, पिशाच। इन-

जैसे ७ प्रकारके व्यंतर रत्नप्रभाके खर भागमें व राक्षस पंक भागमें रहते हैं व मध्य लोकमें भी यत्रतत्र निवास है । इनके निवास असंख्यात हैं । जगत् प्रतर (४९ वर्ग राजू) के प्रदेशोंको ३०० योजनके वर्गका भाग देनेपर जो संख्या निकले इतने निवास हैं व इतने ही जिनमंदिर हैं । इन ८ प्रकार व्यंतरोंका रंग क्रमसे प्रियंगुफल (राई) सफेद, काला, सुवर्ण, अन्य सबका काला होता है इनमें १६ इन्द्र हैं । किन्नरोंके किंपुरुष, किन्नर; किंपुरुषोंमें सत्पुरुष, महापुरुष; महोरगोंमें महाकाय, अतिकाय; गंधर्वोंमें गीतरति, गीतयशा, यक्षोंमें मणिभद्र, पूर्णभद्र, राक्षसोंमें भीम, महाभीम, भूतोंमें सुरूप प्रतिरूप, पिशाचोंमें काल, महाकाल । इनके निवास तीन प्रकार हैं । पृथ्वीसे ऊपर आवास, नीचे भवन, सममूमिमें भवनपुर कहलाते हैं । इनकी जघन्य आयु, १०००० वर्ष व उत्कृष्ट एक पल्यसे कुछ अधिक है । (त्रि० गा० २९०)

व्यंतिरेकी–पर्याय क्रम क्रमसे होनेवाली ।

व्यपदेश–व्याख्यान ।

व्यय–द्रव्यकी पूर्व पर्यायका त्याग जैसे गेहूँके दानोंका व्यय होकर आटा बनना ।

(जै० सि० प्र० नं० १९९)

व्यवहरण दोष–काठ व वस्त्रको कांटोंमें घसीटता हुआ जो पुरुष उसकी बताई वस्तिकामें ठहरना । (अ० पृ० ९६)

व्यवहार काल–निश्चय काल द्रव्यकी पर्याय समय, पल, विपल, मिनिट, घण्टा दिन आदि ।

(जै० सि० प्र० नं० १४७)

व्यवहारनय–किसी निमित्तके वशसे एक पदार्थको अन्य पदार्थरूप जाननेवाला ज्ञान । जैसे मिट्टीके घड़ेको घीके कारण घीका घड़ा कहना; संग्रहनयसे ग्रहण किये हुए पदार्थोंका विधिपूर्वक भेद करनेवाला ज्ञान और जीवके भेद सिद्ध और संसारी व्यवहार नयके तीन मुख्य भेद हैं । १ सदभूत व्य० जो अखण्ड द्रव्यको भेदरूप ग्रहण करावे । जैसे जीवका केवलज्ञान दर्शन । असद्‌भूत–जो मिले हुए भिन्न पदार्थको अभेदरूप जाने जैसे यह शरीर मेरा है, घीका घड़ा है । उपचरित–या उपचरित असदभूत०–जो अत्यन्त भिन्न पदार्थोंको अभेदरूप जाने जैसे हाथी घोड़े मेरे हैं ।

(जै० सि० प्र० ८८,९९,१०१,१०४)

व्यवहार पल्य–४७ अंक प्रमाण वर्षका देखो प्र० जि० पृ० १०६ "अंकविद्या ।"

व्यवहार सत्य–नैगमादिनयकी अपेक्षासे कहा हुआ वचन जैसे भातकी तय्यारी होरही है तौभी कहना कि भात बन रहा है । (गो. जी. गा. २२१)

व्यवहार सम्यग्दर्शन–जीवादि सात तत्वोंका या सच्चे देव शास्त्र गुरुका श्रद्धान ।

व्यवहार सागर–१० कोड़ाकोड़ी व्यवहार पल्यका (देखो प्र० जि० पृ० १०६ "अंकविद्या" ।

व्यवहार राशि–नित्यनिगोदमें जीव अनंतकालसे हैं । वहांसे छः मास आठ समयमें ६०८ जीव निकलकर अन्य पर्याय धारण करते हैं । वे व्यवहार राशिमें आजाते हैं, नित्यनिगोद सिवाय चतुर्गति सम्बन्धी जीवराशि–६०८ जीव व्यवहर राशिमें आते हैं व इतने ही ६ मास व ८ समयमें मुक्त होते हैं । (च० स० नं० १३८)

व्यसन–बुरी आदत, जिनसे इसलोक परलोकमें हानि हो व आपत्ति हो–वे सात हैं–१. जूआ खेलना, २. मांस खाना, ३. मदिरा पीना, ४. वेश्या सेवन, ५. शिकार खेलना, ६. चोरी करना, ७. परस्त्री सेवन करना, इनके साधक कामोंको उपव्यसन कहते हैं जैसे रसायन बनाना मंत्र यंत्र सीखना ।

व्यसन अतीचार–जूआके, मन बहलानेको ताश, सतरंज आदिकी हारजीत करना । वेश्याके–उनका नाच गाना देखना सुनना व संगति करना । चोरीके–जो अपना हकका पैसा कुटुम्बमेंसे छीने, शिकारके स्थापना निक्षेपसे बने हुए मूर्ति, चित्रोंको

फाड़े, छेदे. परस्त्रीके बिना परणी कन्याको उठा लाना व गांधर्व विवाह करना, मधके—कोई निशा न लेना व रस चलित पदार्थ व मर्यादा रहित मुरब्बा अचार आदि न खावे। मांसके—चमड़ेके बर्तनमें रखा। घी, तेल, चमड़ेकी चलनीसे आटा छानना मर्यादा रहित पदार्थ। (देखो 'समन्तव')

(सर्वा. अ. ३-११)

व्याकरण—शास्त्र शाकटायन, जैनेन्द्र. जैनाचार्य कृत प्रसिद्ध हैं।

व्याख्या प्रज्ञप्ति—द्वादशांग वाणीमें पांचवां अंग। इसमें गणधरोंके किये हुए ६० हजार प्रश्नोंका उत्तर जो तीर्थंकर भगवानने दिया वह वर्णित है। जैसे जीव वक्तव्य है कि अवक्तव्य है आदि। इसके मध्यम पद दो लाख अट्ठाइस हजार हैं।

(गो० जी० गा० ३५६-८)

व्यापक—एक जाति व भेद जैसे वृक्ष पूर्ण।

व्याघ्रनंदि—आचार्य सं० ११९४।

(दि० ग्रं० नं० २२१)

व्यावृत्ति—पर्याय।

व्याप्ति—अविनाभाव सम्बन्ध या चिह्न, तर्क जैसे जहां धूम होगा वहां अवश्य अग्नि होगी। (जै० सि० प्र० नं० ३४-५९); एक पूर्णमें को रहे जैसे वृक्षमें शाखाएं, आत्मामें चेतना। इसमें आत्मा व्यापक है चेतना व्याप्त है।

व्यालू—संध्याके पहले भोजन।

व्युच्छित्ति—अभाव, नाश, बंध व्युच्छित्ति, आगे बंधका अभाव, उदयव्यु०—आगे उदयका अभाव सत्वाव्यु०—आगे सत्ताका अभाव।

(जै० सि० प्र० ६०४)

व्युत्सर्ग तप—ममत्वका त्याग दो प्रकारका है—बाह्य परिग्रहका त्याग, अंतरङ्ग परिग्रहका त्याग। कायोत्सर्ग नियतकाल या यावज्जीव करना।

(सर्वा० अ० ९-२६)

व्युपरत क्रिया निवर्ति—चौथा शुक्लध्यान जहां सब मन, वचन, कायकी क्रिया व योगोंका हलन-चलन बन्द होजाता है, निश्चल आत्मा आत्मामें रहता है। यह ध्यान १४ वें गुणस्थानमें अयोग केवलीके होता है। इसका काल पांच लघु अक्षर अ, इ, उ, ऋ, लृ, उच्चारण मात्र है।

(सर्वा० अ० ९-३९-४०)

व्युष्टि क्रिया—देखो "वर्ष वर्द्धन क्रिया"

व्रत—हिंसा, असत्य, स्तेय, अब्रह्म, परिग्रह। इन पांच पापोंसे विरक्त होना। एक देश छूटना अणुव्रत है। पूर्ण छूटना महाव्रत है।

(सर्वा० अ० ७-१-२)

व्रतचर्या क्रिया—गर्भान्वय क्रियामें १५ वां संस्कार, उपनीति होकर शिष्य ब्रह्मचर्य पालता हुआ कमसेकम ८ वर्ष तक गुरुके पास विद्याभ्यास करे। (गृ० अ० ४-१९); दीक्षान्वय क्रिया १० मी कुछ काल नवीन दीक्षित जैनी उपनीति लेकर ब्रह्मचर्यरूपसे रहकर उपासकाध्ययन पाठ पढ़े।

(गृ० अ० ९-१०)

व्रत कथाकोष—श्रुतसागर कृत सं०।

व्रत प्रतिमा—श्रावककी ११ प्रतिमामें दूसरी प्रतिमा, जहां अहिंसादि पांच अणुव्रतोंको दोष रहित पाले तथा सात शील दिग्व्रत आदिको पाले व उनके अतीचारोंके बचानेका अभ्यास करे। माया, मिथ्या, निदान शल्यरहित हो १२ व्रत पाले व अंतमें समाधिमरणकी भावना करे। (र० श्रा० १३८) (गृ० अ० ८)

व्रतलाभ क्रिया—नवीन दीक्षित जैनी गृहस्थाचार्यके पास मदिरा, मांस, मधु त्यागे व अहिंसादि पांच व्रतोंके त्यागका उपदेश लेकर गुरुसे ग्रहण करे।

(गृ० अ० ९।११)

व्रतावतरण क्रिया—दीक्षान्वय ११ वीं क्रिया। नवीन दीक्षित जैनी [illegible] ब्रह्मचारीका भेष त्यागता है, [illegible] स्वीकार करे।

(गृ० अ० ९।११)

गर्भान्वय क्रिया १६ वीं—जिस [illegible] [illegible] है। [illegible]

नियमोंको उतारकर गृहस्थमें रहता है।
(गृ० नं० ४।१६)

व्रती–पांच व्रतोंको पालनेवाला, पूर्ण पालक–गृहत्यागी महाव्रती, एक देशपालक गृहस्थ श्रावक (सर्वा० अ० ७।२,१८)

श

शकट मुखी–विजयार्द्धकी दक्षिण श्रेणीका १७ वां नगर। (त्रि. गा. ६९८)

शक्य–अबाधित–जिसमें किसी प्रमाणसे बाधा न आवे।

शङ्का–यथार्थ सर्वज्ञ प्रणीत जैन तत्वोंमें शंका करनी। यह सम्यग्दर्शनका पहला अतिचार है।
(सर्वा. अ. ७–२३)

शक्तिदास–माया कल्पके कर्ता।
(दि. ग्र. नं ३२२)

शक्तिस्तप–१६ कारण भावनाकी सातमी भावना। शक्तिको न छिपाकर तप करनेकी भावना रखनी। (सर्वा. अ. ६–२४)

शक्तिस्त्याग–१६ कारण भावनाकी छठी भावना। शक्तिको न छिपाकर दान करनेकी भावना रखनी। (सर्वा. ६–२४)

शंख–लवण समुद्रके पश्चिम दिशाके पातालके एक तरफका पर्वत। (त्रि० गा० ९०७)

शंख परिमाण–ज्योतिषके ८८ ग्रहोंमें १७ वां ग्रह। (त्रि. गा. ३६४)

शंख वर्ण–ज्योतिषके ८८ ग्रहोंमें ९८ वां ग्रह।
(त्रि. गा. ३६४)

शंखवर–१२ वां द्वीप और समुद्र।
(त्रि. गा. ३०४–७)

शंखा–विदेहके ३२ देशोंमें सीता नदीके दक्षिण तटपर पांचवा देश। (त्रि. गा. ६८९)

शंखावर्त योनि–स्त्रीकी आकार योनि। इस योनिमें नियमसे गर्भ नहीं रहता है व कदाचित रहे तो नष्ट होजावे। (गो. जी. गा. ८१)

शची–दक्षिण इन्द्र सौधर्म आदिकी पट्ट देवी।
(त्रि. गा. १०)

शतार–११ वां स्वर्ग, व शतार सहस्रारमें इन्द्रक। (त्रि. गा. ४५१–६७)

शतज्वाल–विद्युतप्रभ गजदंतपर सातवां कूट।
(त्रि. गा. ७४०)

शतह्रदा–रुचक पर्वतके अभ्यन्तर दक्षिण दिशाके नित्यालोक कूटपर बसनेवाली देवी। (त्रि.गा.९५७)

शत्रुंजय–विजयार्द्धकी उत्तर श्रेणीमें २० वां नगर। (त्रि. गा. ७०४) सिद्ध क्षेत्र–यहांसे युधिष्टिर, भीमसेन, अर्जुन तीन पांडव तथा ८ करोड़ मुनि मोक्ष पधारे हैं। काठियावाड़में पालीताना स्टेशनसे १ मील पर्वतपर व नगरमें दि० जैन मन्दिर है। श्वेतांबर मंदिर भी बहुत हैं।
(या. द. ए. ३००)

शब्दजन्य श्रुतज्ञान–अक्षरात्मक श्रुतज्ञान। जो मतिज्ञान द्वारा शब्दोंको सुनकर हो, जो जीव शब्दसे जीव पदार्थका ज्ञान होना।
(गो. जी. गा. ३१५)

शब्दनय–लिंग, कारक, वचन, काल, उपसर्गादिके भेदसे जो पदार्थको भेदरूप ग्रहण करे, जैसे दारा (पुलिंग), भार्या (स्त्रीलिंग), कलत्र (नपुंसक) ये तीन भिन्न २ लिंगके हैं तथापि एक स्त्रीके लिये शब्दनयसे व्यवहार किये जासके हैं।
(जै० सि० प्र० नं० ९८)

शब्दाचार–सम्यग्ज्ञानके आठ अंगोंमेंसे एक अंग। शब्दको शुद्ध उच्चारण करना (श्रा.ए. ७१)

शब्दानुपात–देशविरत गुणव्रतका तीसरा अतीचार। मर्यादित क्षेत्रोंसे बाहर बात कर लेना।
(सर्वा. अ. ७–३१)

शब्दार्णव–व्याकरण मुद्रित।

शय्यापरीषह–स्वाध्याय व ध्यानसे खेदित होकर अन्तर्मुहूर्तके लिये एक करवटसे कटीली भूमिपर सोते हुए दुःख न मानना। २२ परिषहमेंसे ११ वीं परीषह (सर्वा. अ. ९–९)

शरीर अवगाहना–जीवोंका शरीर जघन्य घनांगुलका असंख्यातवां भाग, सूक्ष्म अपर्याप्तक निगोद जीव जो ऋजु गतिसे आया हो उसके तीसरे समयमें व सर्वोत्कृष्ट अवगाहना स्वयंभूरमण समुद्रके महा मच्छ जो १००० योजन लम्बा व ५०० योजन चौड़ा होता है। देखो 'देह अवगाहना'। (गो. जी. गा. ९९)

शरीर नाम कर्म–जिसके उदयसे औदारिकादि शरीरकी रचना हो। (सर्वा. अ. ८–११)

शरीर पर्याप्ति–"देखो पर्याप्ति"।

शरीर मुंड–शरीरको वश रखना। शरीरकी कुचेष्टा न करना। (मू. गा. १२१)

शर्करा प्रभा–दूसरे नरककी पृथ्वी मिश्री समान प्रभावाली। ३२००० योजन मोटी इसमें ११ पटल व ११ इन्द्रक हैं इसमें २५ लाख बिले हैं। (त्रि० गा० १४९); देखो 'नरक'

शर्वरी–व्यंतर इन्द्रोंके महत्तरीदेवी। (त्रि० गा० २७)

शलाका कुण्ड–देखो प्र० जि० पृ० ९० शब्द अंकगणना।

शलाकात्रय निष्ठापन–देखो प्र० जि० पृ० ९९ शब्द अंकगणना।

शलाका पुरुष–महापुरुष जो मनुष्यगति तिर्यंचगति व भवनत्रिकसे आकर नहीं पैदा होते हैं। २४ तीर्थंकर + १२ चक्री + ९ नारायण + ९ बलभद्र + ९ प्रतिनारायण। "देखो त्रिषष्टि शलाका पुरुष" (त्रि० गा० ९१९)

शलाकाराशि–देखो प्र० जि० पृ० ९० शब्द "अंकगणना"

शल्य–कांटेके समान बाधक दोष। माया, मिथ्या, निदान (सर्वा० अ० ७–१८)

शल्यार्द्ध रण [illegible]–[illegible] सहित [illegible] छुपाकर कहे। [illegible] देखो "आलोचना दोष",

शशि–रुचकगिरिके दक्षिण दिशाका छठा कूट जिसपर शेषवती देवी रहती है। (त्रि. गा. ९५०–१)

शशिप्रभ–विजयार्द्धकी उत्तर श्रेणीकी ८ वीं नगरी। (त्रि. गा. ७०२)

शाकटायन–आचार्य व्याकरण शाकटायनके कर्ता। (दि० ग्रं० नं० ४३६)

शान्ति–ज्योतिषके ८८ ग्रहोंमें ५१ वां ग्रह। (त्रि. गा. ३६७)

शान्ति कीर्ति–आचार्य सं० ६२७। (दि० ग्रं० नं० ३२३)

शान्तिदास–ब्र०। अनन्तव्रत पूजा, द्वादश व्रतोद्यापनके कर्ता। (दि० ग्रं० नं० ३१४), वंदित विषापहार स्तोत्र छंदके कर्ता। (दि. ग्रं. नं. ३२१)

शान्तिनाथ–भरतके वर्तमान १६ वें तीर्थंकर, कुरुवंशी राजा विश्वसेन माता ऐरादेवीके पुत्र, जन्म हस्तिनापुर। १ लाख वर्षायु, शरीर सुवर्ण वर्ण, राज्य करके साधु हो सम्मेदशिखरसे मोक्ष हुए।

शान्तिसूरि–प्रमाणनय कलिकावृत्तिके कर्ता। (दि० ग्रं० नं० ४३०)

शान्ति पंडित–नेमिनाथ स्तोत्रके कर्ता। (दि० ग्रं० नं० ३२८)

शास्त्र–जो परम्परासे सर्वज्ञ वीतराग द्वारा कहा हो प्रत्यक्ष व परोक्ष प्रमाणसे बाधा रहित हो। किसी युक्तिसे खण्डित न हो, तत्त्व स्वरूपका उपदेश करनेवाला हो, कुमार्गोंका खंडन करनेवाला हो व सर्व जीव मात्रका हितकारी हो। (र. श्री. ९)

शास्त्रदान–[illegible]

शास्त्रभेद–मुख्य [illegible]

गणितके द्वारा माप आदि तीन लोककी बताई हो व कर्म बन्ध आदिका हिसाब व अन्य ज्योतिषादि बताया हो। ३ चरणानुयोग–जिसमें मुनि श्रावकका चारित्र बताया हो, ४–द्रव्यानुयोग जिसमें छः द्रव्य सात तत्वका कथन हो। (श्रा० पृ० ७१)

शास्त्रार्थ–अजमेर, देहली, आर्यसमाजसे खुरजा, नजीबाबाद, फीरोजाबाद, अवागढ़, मुद्रित।

शास्त्रीय द्रव्यार्थिक नय–व्यवहार शास्त्रमें प्रयोजनभूत तीन नय–नैगम, संग्रह, व्यवहार। (सि० द० पृ० ७)

शास्त्रीय पर्यायार्थिक नय–व्यवहार शास्त्रमें प्रयोजन भूत चार नय–ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ़ व एवंभूत। (सि० द० पृ० ७)

शाश्वत–अविनाशी।

शासन–जिनवाणी।

शिषर सम्मेद–देखो "सम्मेदशिषर"

शिखि कण्ठ–भरतके आगामी उत्सर्पिणी कालके छठे प्रतिनारायण। (त्रि० गा० ८८०)

शिखरी पर्वत–जंबूद्वीपका छठा कुलाचल पर्वत सुवर्णमई–इसपर पुंडरीक द्रह है जहांसे तीन नदी निकलती हैं। सुवर्णकूला व रक्ता रक्तोदा। (सर्वा० अ० ३–११....)

शिखाक्षेत्र–सूचीक्षेत्र। पृथ्वीके ऊपर भीतके सहारे विना जो अन्नादिकी राशि आकाशमें की जाय अथवा खाडा भरकर उसके ऊपर आकाशमें अन्नादिकी राशि जाय वह जितने आकाशको रोके उसे सूची क्षेत्र या शिखा क्षेत्र कहते हैं। (त्रि. गा. १९)

शिखाफल–सूचीफल–शिखाक्षेत्रका जो घनरूप क्षेत्रफलका प्रमाण। (त्रि. गा. १९)

शिरोनति–दोनों हाथ जोड़कर मस्तक झुकाके उसमें जोड़ेहुए हाथ लगाना।

शिरोमणिदास–पं० (१७३२) धर्मसार छंदके कर्ता। (दि० ग्रं० नं० १४)

शिवजीलाल–भगवती आराधना टीकाके कर्ता। (दि० ग्रं० नं० ३१९)

शिल्पिकर्मार्थी–नाई, धोबी, लुहार, बढ़ई आदिसे आजीविका करनेवाले आर्य। (भ. ए. ११६)

शिव–, शिवदेव– लवण समुद्रके दक्षिण दिशाके पातालके तटों पर उदग और उदकवास नाम पर्वत हैं उनके ऊपर क्रमसे शिव और शिवदेव व्यन्तरदेव बसते हैं। (त्रि.गा.९०६)

शिवकुमार पुत–चक्रवर्तीका पुत्र शिवकुमार था जिसने ५०० स्त्रियोंके मध्य रहकर जो व्रत किया था, माहेन्द्र स्वर्ग गये वहांसे आकर जंबूस्वामी हो मोक्ष गये। एक वर्षमें ६४ वेला करे, कांजीका पारणा करे। लगातार न होसके तो अष्टमी चौदसको वेला करता रहे और ६४ पूर्ण करे। (कि. क्रि. १२२)

शिवजीलाल पं०–जैपुरी सं० १९३३, रत्नकरण्ड, चर्चासंग्रह, नवचक्रकी वचनका, बोधसार, तत्वज्ञान तरंगिणी, अध्यात्म तरंगिणी आदिके कर्ता। (दि० ग्रं नं० १४९)

शिवकोटि–आचार्य भगवती आराधना प्राकृतके कर्ता। (दि० ग्रं० नं० ३२)

शिवघोष–रत्नसारके कर्ता। (दि. ग्रं. नं. ३२८)

शिवचन्द्र–(देहली पं०, भट्टारक शिष्य) सोमसेन नीतिवाक्यामृत वचनिका, प्रश्नोत्तर श्रा० व तत्वार्थ सूत्र प० के कर्ता। (दि. ग्रं. नं. १४४)

शिवदत्त–वीर निर्वाणके ६८३ वर्ष पीछे अंग पूर्वके एकदेश ज्ञाता आचार्य। (श्रु. पृ. १४)

शिवनन्दि–आचार्य सं० ११४९। (दि. ग्र. नं. ६२९)

शिवप्रसाद–धर्मचूर छंदके कर्ता। (दि. ग्र. नं. १४६)

शिवङ्कर–विजयार्द्धका उत्तर श्रेणीका १२ वां नगर। (त्रि. ७०१)

शिवा–स्वर्गोंके दक्षिण इंद्रोंकी वह देवीका नाम । (त्रि० ५१०)

शिव मन्दिर–विजयार्द्धकी उत्तर श्रेणीका १९ वां नगर । (त्रि. ७०३)

शिक्षाव्रत–जिन व्रतोंके पालनेसे मुनिधर्मकी शिक्षा मिले । वे चार हैं–सामायिक, प्रोषधोपवास, भोगोपभोग परिमाण, अतिथिसंविभाग ।

(सर्वा. अ. ७–२१)

शीत परीषह–साधु नग्न रहते हुए व सर्दी पड़ते हुए शीतको समतासे सहते हैं, २२ परीषहोंमें तीसरी परीषह । (सर्वा. अ. ९–९)

शिवायनस्वामी–(अनन्तनन्दि नन्दि संघ) सं० ९६०, आराधना सार, दर्शनसारके कर्ता ।

शीतलनाथ–भरतके वर्तमान १० वें तीर्थंकर । भद्दलपुरके इक्ष्वाकु वंशी राजा दृढ़रथ पिता, माता सुनन्दाके पुत्र, सुवर्ण वर्ण देह, एक लाख पूर्व आयु राज्यपाट करके साधु हो सम्मेद पर्वतसे मुक्त हुए ।

शीतस्पर्श नामकर्म–जिसके उदयसे शरीर शीतल हो । (सर्वा. अ. ८–११)

शील व्रत–ब्रह्मचर्य पालना, क्रोधादिका अभाव, सप्तशील–तीन गुणव्रत–दिग्विरति, देश विरति, अनर्थदण्ड विरति और चार शिक्षाव्रत ।

(सर्वा. अ. ७–२१)

शील कल्याणक व्रत–देवी, मनुष्यणी, तीर्यंचणी, अचेतन चार प्रकार स्त्रीको पांच इन्द्रिय व मन, वचन, काय तथा कृत कारित अनुमोदनासे गुणे तब ४×९×३×३=१८० । एक वर्षमें १८० प्रोषधोपवास करे । एक उपवास एक पारणा इस तरह ३६० दिनमें पूर्ण करे । शील व्रत पाले ।

(कि. क्रि. पृ. ११४)

शीलचंद्र–[illegible] सं० ७२९ ।

(दि० [illegible])

शीलव्रतेष्वनतिचार–१६ कारण भावनामें तीसरी । अहिंसादि व्रतोंमें व क्रोध वर्जन आदि शीलमें दोष न लगाना यह भावना करना ।

(सर्वा० अ० ६–२४)

शुक्र–ज्योतिषके ८८ ग्रहोंमें ८७ वां ग्रह । (त्रि. गा. ३७०), नौमा स्वर्ग; शुक्र महाशुक्र युगलमें इंद्रक । (त्रि० ४६२–४६७)

शुक्लध्यान–निर्मल आत्म ध्यान । शुद्धोपयोग रूप एकाग्रता । यह ध्यान उत्तम संहनन धारीके आठवें अपूर्वकरण गुणस्थानसे होता है । इसके चार भेद हैं ।

१–पृथक्त्व वितर्क वीचार–यह ८ वेंसे ११ वें गुणस्थानतक व कुछ भाग १२ वें तक रहता है । इसमें भिन्न२ करके योग, शब्द, अर्थकी पलटन अबुद्धिपूर्वक होती है, इससे मोहका क्षय होता है । २–एकत्व वितर्क अवीचार यह एकतारूप है, किसी एक योगमें थिररूप होता है । यह १२ वें गुणस्थानमें होता है । इसके प्रतापसे घातिया कर्मोंका नाशकर केवल ज्ञान होता है । ३–सूक्ष्म क्रिया प्रतिपाति–१३ वें गुणस्थानके अंतमें सूक्ष्म योगमें होता है ४–व्युपरत क्रिया निवर्ति–सर्व क्रियासे रहित होनेपर १४ वें अयोग गुणस्थानमें होता है । तब मोक्ष हो जाता है । (सर्वा० अ० ९-३९,-४४)

शुक्लेश्या–देखो "लेश्या" वैराग्यरूप [illegible] कषायरूप भाव (सा. प. ३–१)

शुक्लवर्ण नामकर्म–जिसके उदयसे शरीरका वर्ण सफेद हो । (सर्वा. अ. ८–११)

शुचि–[illegible] ८ वां [illegible] (त्रि. गा. ३७१)

शुद्ध परिणाम–[illegible] ।

शुद्ध व्यवहारनय–[illegible] भेद करे, जैसे [illegible] है–जीव, अजीव ।

([illegible])

शुद्ध सद्भूत व्यवहारनय–[illegible] [illegible] ([illegible] १०)

शुद्ध संप्रयोग–अर्हंत, सिद्ध परमात्मामें भक्ति।

शुद्धाचरण–शुद्ध व निर्दोष चारित्र।

शुद्धाचरणी–शुद्ध व दोष रहित चारित्र पालनेवाला।

शुद्धि–ईर्या सम्बन्धी–मार्गमें गमन करते हुए साधु चार प्रकार शुद्धि रक्खें। १ मार्ग शुद्धि–प्राशुक मार्ग, २ उद्योत शुद्धि दिनमें प्रकाशमें चले ३ उपयोग शुद्धि–दयाभाव व धर्म ध्यानसहित चले। ४ आलम्बन शुद्धि–धर्म कार्य व आहारादि निमित्त चलें। (भ. पृ. ३७२)

शुद्धोपयोग–राग, द्वेषादि रहित आत्माके सन्मुख उपयोग, स्वानुभव रूप भाव।

शुभआस्रव–पुण्यकर्मके आनेयोग्य मन, वचन, कायकी शुभ प्रवृत्ति।

शुभ उपयोग–मंद कषाय रूप भाव, अरहंत आदि पंच परमेष्टीकी भक्ति, जीवदया, दान तथा संयम, परोपकारके भाव।

शुभकर्म–पुण्य लानेवाले कार्य; पुण्य फल देनेवाले साता वेदनीयादि कर्म।

शुभकर्ण पं०, होलिका चरित्रके कर्ता। (दि. ग्र. नं. ३३१)

शुभकीर्ति–आचार्य सं० ११६९। (दि. ग्र. नं. ३३९)

शुभचन्द्र आचार्य–मालवाके राजा सिंधुलके पुत्र भर्तृहरिके बड़े भाई, ज्ञानार्णवके कर्ता। (दि० ग्रं० नं० ३३२)

शुभचन्द्र भट्टारक–(१) सं० १४५०, (२) भ० सागवाड़ा गद्दी सं० १६८० स्वामी कार्तिकेय सं० टीका, पद्मनंद पंचविंशतिका टीका, अष्टपाहुड़ टीका, पार्श्वनाथ काव्य टीका, पांडवपुराण, सुभाषित रत्नावली, जीवन्धर चरित्र व अनेक पूजाओंके कर्ता। (दि० ग्रं० नं० ३३३, ३३४), (३) आचार्य, संशय वदनविदारण व तर्कशास्त्रके कर्ता। (दि० ग्रं० नं० ४३९), (४) सं० १६११ करकंड चरित्रादिके कर्ता। (दि० ग्रं० नं० ४४०)

शुभयोग–मन वचन कायकी शुभ प्रवृत्ति।

शुभचन्द्र–भरतके आगामी उत्सर्पिणी कालके आठवे बलदेव। (त्रि. गा. ८७९)

शुभ तैजस–ऋद्धिधारी मुनिको दया आनेपर दहिने स्कंधसे तैजस शरीरका निकलना जो सर्व बाधाका मेट दें।

शुभध्यान–प्रशंसनीय ध्यान, धर्मध्यान और शुक्लध्यान जो मोक्षके कारण हैं। (सर्वा. अ. ९–२९)

शुभनन्दि–आचार्य, कषाय व कर्मप्राभृतके ज्ञाता। (श्रु० पृ० २१)

शुभ नाम कर्म–जिसके उदयसे शरीर सुन्दर हो। (सर्वा. अ. ८–११)

शुभ लेश्या–शुभ भाव रूप मंद कषाय रूप तीन लेश्या–पीत, पद्म, शुक्ल।

शुभ शील–पंचवर्गी कोषके कर्ता। (दि० ग्र० नं० ३३६)

शुभा–विदेहकी ३२ राजधानीमें १९ वीं। (त्रि० गा० ७१३)

शुभोपयोग–देखो 'शुभ उपयोग'।

शूद्र–शिल्प व विद्या व सेवाकार्यसे आजीविका करनेवाला वर्ण, ऋषभदेवद्वारा स्थापित।

शून्यागार–अचौर्यव्रतकी पहली भावना, पर्वतकी गुफा, वृक्ष कोटर आदि निर्जन स्थानोंमें ठहरना। (सर्वा० अ० ७–६)

शेषवती–रुचकगिरीकी दक्षिण दिशाके नलिन कूटपर बसनेवाली देवी। (त्रि० गा० ९५१)

शैक्ष्य–शिष्य मुनि, नवीन दीक्षित। (सर्वा० अ० ९–२४)

शैलभद्र–यक्ष, व्यंतरोंका तीसरा प्रकार। (त्रि० गा० २६५)

शैला–पहली रत्नप्रभा पृथ्वीके खर भागमें १६ वीं पृथ्वी १००० योजन मोटी। (त्रि० गा० १४८)

शोक–नोकषाय, जिसके उदयसे शोक भाव

हो। (सर्वा० अ० ८-९) इससे असाता वेदनीय कर्मका आस्रव होता है। (सर्वा. अ. ६-११)

शोभन पं०–चतुःसंधान काव्य व शोभन चतुर्विंशतिकाके कर्ता। (दि. ग्रं. नं. ३३७)

शौच-धर्म–लोभका अभाव, संतोषभाव, दश लाक्षणी धर्ममें चौथा धर्म-इससे सातावेदनीय कर्मका आस्रव होता है।

(सर्वा० अ० ६-१२ व ९-६)

शंकित दोष–वस्तिका सम्बन्धी १० एषणा दोषमें पहला। यह वस्तिका योग्य है या अयोग्य ऐसी शंका होनेपर भी ठहर जाना। (भ. पृ. ९६)

श्यामकुंड–आचार्य, कषाय व कर्मप्राभृतके ज्ञाता। (श्रु० पृ० २९)

श्यामवर–मध्य लोकके अंतिम १६ द्वीप समुद्रोंमें चौथा द्वीप समुद्र। (त्रि. ग्रं. ३०९-७)

श्यामा–स्वर्गके दक्षिण इन्द्रोंकी पट्टदेवीका नाम। (त्रि० ग्रं० ५१०)

श्रृंगार वैराग्यतरंगिणी–ग्रंथ सं०।

श्रद्धावान–सम्यक्ति, सीतोदा नदीके दक्षिण तटपर पहला वक्षार पर्वत। (त्रि० ग्रं० ६६८)

श्रमण मुनि–परिग्रह रहित दिगम्बर जैन साधु।

श्रमणकल्प–जैन साधुके करने योग्य १० बातें।

१–आचेलक्य–वस्त्र रहितपना।

२–अनोद्देशिक–आपके निमित्त किया भोजनका त्याग।

३–शय्याग्रह त्याग–भोगियोंके शय्या घरादिमें जानेका त्याग।

४–राजपिंड त्याग–राजाओंके योग्य गरिष्ट भोजनका त्याग।

५–कृतिकर्म–वंदना करनेमें उद्यम।

६–व्रत–२८ मूल गुण व ८४ लाख उत्तर गुण पालना।

७–प्रतिक्रमण–पूर्व दोषोंका पश्चात्ताप करना।

८–ज्येष्ठ–जो तप व संयममें बड़े हों उनको बड़ा मानना।

९–मास–प्रतिमास विशेष वन्दना करना।

१०–पर्या–वर्षाकालमें चार मास एक स्थान रहना। (भ. पृ. १६२)

श्रवण–८८ ज्योतिष ग्रहोंमें ८० वां ग्रह। (त्रि० गा० ३७०)

श्रवणद्वादशी व्रत–भादो सुदी १२ का उपवास १२ वर्ष तक करे। (क्रि० क्रि० पृ० ११२)

श्रवण बेलगोला–प्रसिद्ध अतिशय क्षेत्र–मैसूर राज्यमें हासन या मंदगिरे या अर्सीकेरीसे जाना होता है। हासन जिलेमें चन्द्रराय पट्टनसे ६ मील। ग्राम है वहां दो पर्वत हैं। विन्ध्यगिरिपर श्री बाहुबली स्वामीकी ५७ फुट ऊंची कायोत्सर्ग ध्यान मय बड़ी ही सुन्दर मूर्ति विराजित है। जिसकी श्री नेमिचंद्र सिद्धांत चक्रवर्ती द्वारा राजा चामुण्डरायने प्रतिष्ठा कराई थी। छोटे चन्द्रगिरिपर श्री भद्रबाहु श्रुतकेवलीकी समाधि गुफा है। यहां प्राचीन मंदिर व सैकड़ों शिलालेख हैं। इनसे जैन राजाओंकी वीरता व धार्मिकताका पता चलता है। बेलगोलाके अर्थ हैं श्वेत सरोवर, जो इस ग्राममें दोनों पर्वतोंके मध्य है। श्रवण शब्द श्रमण है, मुनियोंके निवासस्थान यह नगर है। यहां अनेक जैन साधु व श्रावकोंने समाधिमरण किया है। यहां आचार्योंकी पुरानी गद्दी है, अब भी भट्टारक रहते हैं। मैसूरके राजा भी श्री बाहुबलि महाराजकी मूर्तिके भक्त हैं (मद्रास, मैसूर प्राचीन जैन स्मारक पृ० २०५ व या० द० पृ० १११)

श्रावक–मुनिओंके द्वारा धर्मोंका श्रवण सुनने-वाला जैनी, जिसको [illegible] है व जो [illegible] है। [illegible]

रूप लेजाते हुए ११ वीं उदिष्ट त्याग प्रतिमा या श्रेणीपर पहुंचता है। दूसरीसे महाश्रावक कहलाता है (सा० अ० ५–५५)। जो श्रावक व्रतोंको पालता हुआ अंतमें समाधिमरण करता है उसे साधक कहते हैं। (सा० अ० १–२०)

श्रावककी ५३ क्रियाएं–देखो शब्द 'क्रिया ५३'

श्रावक धर्म–एक देश चारित्र पालनेवाले पंचम गुणस्थानी आत्माका धर्म।

श्रावक धर्म संग्रह–दर्यावसिंह सोंधिया कृत मुद्रित।

श्रावक पहाड़–विहारप्रांत गयाजीके निकट रफीगंजसे ३ मील पर्वतपर एक गुफा है, जीर्ण जैन मंदिर है, प्राचीन श्री पार्श्वनाथकी मूर्ति विराजित है, श्रावण सुदी १५ को मेला होता है। अजैन लोग कहिंगा वीर "(नांगा वीर)" नाम लेकर पूजते हैं। (या० द० पृ० २३०)

श्राविका धर्म–स्त्रीका चारित्र जो श्रावकके समान ग्यारह प्रतिमा तक है। ११ वींमें आर्यिका एक सफेद सारी पहनती है। पीछी कमंडल रखती है। हाथमें बैठकर भोजन करती है, केशलोंच करती है। (गृ० अ० २१)

श्रावकाचार–एक देशचारित्र, पंच अणुव्रत तीन गुणव्रत व चार शिक्षाव्रत पालन।

श्रावकोत्तम–१०मी व ११मी प्रतिमाधारी।

श्रावक दिनचर्या–सुर्योदयसे पहले ब्रह्ममुहूर्तमें उठे सामयिक करे फिर पवित्र हो पूजन स्वाध्याय करे। दान देकर भोजन करे, आजीविका करे, संध्याको पुनः सामायिक करे, रात्रिको शास्त्र मनन करे, पंचपरमेष्ठी जपकर शयन करे। (सा० अ० ६)

श्री–हिमवान् कुलाचलके ऊपर पद्मद्रहके कमलद्वीपमें निवासिनी देवी, सौधर्मकी नियोगिनी एक पल्य आयुधारी। श्री देवीके मंदिरमेंसे चक्रवर्तीको चूड़ामणि रत्न व धर्म रत्नकी प्राप्ति होती है; रुचक पर्वत पर उत्तर दिशाके सर्व रत्न कूटपर बसनेवाली देवी, अकृत्रिम जिन प्रतिमाओंके निकट भक्ति करती हुई श्री देवीका आकार होता है। (त्रि० गा० ५७२-५७७ ८२३-९९९-९८८)

श्री कण्ठ–भरतके आगामी उत्सर्पिणी कालमें पहले प्रतिनारायण। (त्रि० ग्रं० ८८०)

श्री कांत–भरतके आगामी उत्सर्पिणीके चक्री। त्रि० ग्रं० ८७६

श्रीकांता–मेरुके नंदनवनमें एक बावड़ी। (त्रि० ग० ६२९)

श्रीकूट–हिमवत् कुलाचलपर छठा कूट। (त्रि० ग्रं० ७२१)

श्रीचन्द्र–भरतके आगामी उत्सर्पिणीके नौवें बलभद्र। (त्रि० ग्रं० ८७९)

श्रीचंद्र–१६ वें कामदेव; रत्नकरंड प्राकृत (४४००) व सम्यक्त रत्नकरंड प्रा०के कर्ता। (दि० ग्रं० नं० ३३९), पद्मपुराण पंजिका, श्रावकाचारके कर्ता। (दि० ग्रं० नं० ३४०), पुराण सारके कर्ता। (भोजके समय) (दि. ग्रं. नं. ४३८)

श्रीदत्त–प०, पांडवपुराण, करकुंडचरित्रके कर्ता (दि० ग्रं० नं० ३४१); वीर मोक्षके ६८ ३वर्ष पीछे आचार्य अँगके कुछ भागके पाठी। (श्रु० पृ० १४)

श्रीदाम्य–व्यंतरोंकी गंधर्वसेनाका नायक। (त्रि० ग्रं० २८१)

श्रीधर–पुष्कर समुद्रका स्वामी व्यंतरदेव। (त्रि. गा. ९६२) विजयार्द्धकी दक्षिण श्रेणीमें १० वां नगर। (त्रि० गा० ६९७)

श्री देव–यशस्तिलक काव्य व नेमी निर्वाण काव्य पंजिकाके कर्ता। (दि. ग्रं० नं. ३४३)

श्रीधर–कामदेव तीसरे; भविष्यदत्त चरित्रके कर्ता (दि. ग्र. नं. ३४५)

श्रीधरसेन–विश्वलोचन कोषके कर्ता। (दि. ग्र. नं. ३४४); आचार्य पुष्पदंत भूतबलिको आगम पढ़ानेवाले। (श्रु. पृ. १४)

श्री निलया–मेरुके नन्दन वनमें एक वावड़ी।
(त्रि. गा. ६२९)

श्री निकेतपुर–विजयार्द्धकी उत्तरश्रेणीमें ४२वां नगर। (त्रि. ग्र० ७०६)

श्री प्रभ–श्रीप्रभ पुष्कर समुद्रका स्वामी व्यंतर देव। (त्रि. गा. ९६१) विजयार्द्धकी दक्षिण श्रेणीमें ९ मां नगर। (त्रि० गा० ६९७)

श्रीनिवास–विजयार्द्धकी उत्तरश्रेणीमें ४३ वां नगर। (त्रि. ग्र. ७०६)

श्रीनंदि–आचार्य सं० ७४९।
(दि. ग्रं. नं. ३४१)

श्रीपर्वत–पं० समाधि तंत्रटीकाके कर्ता।
(दि. ग्र. नं. ३३८)

श्रीपाल–कामदेव २१ वें।

श्रीभूता–मेरुके नन्दन वनमें एक वावड़ी।
(त्रि. गा. ६२९)

श्रीभूति–भरतके आगामी उत्सर्पिणीके छठे चक्री। (त्रि. ग्र. ८७७)

श्रीभूषण–आचार्य सं० ७२६।

श्री भूषण भट्टारक–हरिवंश पुराण, पांडव पुराण, आदिके कर्ता। (दि. ग्र. नं. १४६-१४७)

श्रीमहिता–मेरुके नन्दन वनमें एक वावड़ी।
(त्रि. गा. ६२९)

श्रीमती–श्रीऋषभदेव तीर्थंकरको प्रथम आहार देनेवाले श्रेयांसका पूर्व भव। जब उनका जीव रिषभदेवके पूर्व भवमें उनकी स्त्री था।

श्री वर्धदेव–कर्णाटक जैन कवि–तुम्बुलाचार्य, षट्खण्डसूत्रोंपर ४००० चूड़ामणि टीका लिखी (कि. ४)

श्रीषेण–भरतके आगामी उत्सर्पिणीका दसवां चक्री। (त्रि. ग्रं. ८७७)

श्रुतकीर्ति–हरिवंश पु. प्राकृत, गोम्मटसारकी कर्णाट टीका, गोम्मटसार टिप्पण। (९००० श्लो) के कर्ता। (दि. ग्र. नं. ३६८)

श्रुतकेवली–द्वादशांग जिनवाणीके पूर्ण ज्ञाता। भारतमें इस पंचम कालमें श्री जंबूस्वामीके मोक्ष जानेके बाद १०० वर्षमें पांच श्रुतकेवली हुए, विष्णु, नन्दिमित्र, अपराजित, गोवर्धन और भद्रबाहु। (श्रु. ए. १२)

श्रुतदेवता–जिनवाणी सरस्वती, द्वादशांगवाणी।
(सर्वा. अ. २–४३)

श्रुतनिबद्ध पदार्थ–जो पदार्थोंका कथन केवल ज्ञानीसे दिव्य ध्वनि द्वारा होता है उसका अनंतवां भाग मात्र द्वादशांग वाणीमें व्याख्यान किया जासकता है, उसे श्रुतनिबद्ध पदार्थ कहते हैं।
(गो. जी. गा. ३३४)

श्रुतपंचमी–ज्येष्ठ सुदी ५, जब जिनवाणीकी सम्हाल करके विशेष पूजन करना चाहिये। आजके दिन ही श्री भूतबलि पुष्पदंत मुनिने धवल जयधवल महाधवलके मूल सूत्र ग्रन्थोंकी षट् खंडागम रचना करके पुस्तकमें स्थापित करके संघको एकत्र कर पूजन की थी। (श्र. ए. ९०)

श्रुतमुनि–त्रिभंगीटीका कनड़ी, परमागमसारके कर्ता। (दि. ग्रं. नं. ३४९)

श्रुतसागर–स्वामी (देवसेन) भद्रारक आदिके कर्ता। (दि. ग्र. नं. ३५०) तत्वार्थ सूत्र टीका, तर्कदीपक, षट्प्राभृत टीका, यशस्तिलक चम्पू टीका, विक्रम प्रबन्ध, व्रतकथा कोष, ज्ञानार्णव टीका, अनेक ग्रन्थोंके कर्ता। (दि. ग्र. नं. ३५१)

श्रुतस्कंध–द्वादशांगवाणी।

श्रुतस्कंध व्रत–इसके तीन भेद हैं–(१) उत्तम–१० दिनमें १० उपवास धारण करे। (२) मध्यम–१० दिनमें १० एकासन १० पारणा करे। जघन्य ८ उपवास ८ एकासन करे (दि. कि. ए. ११९)।

श्रुतज्ञान–मतिज्ञानसे निश्चय किये हुए पदार्थके आलम्बनसे उस ही पदार्थको [illegible] किये हुए अन्य किसी पदार्थका [illegible] श्रुतज्ञान है। दो भेद हैं। एक अक्षरात्मक–जो इन्द्रियोंसे

पंचेंद्रिय तक सबके होता है । जैसे पवनका स्पर्श मतिज्ञान है फिर वह कष्टप्रद है यह झलकना श्रुतज्ञान है । अक्षरात्मक–जो शब्दोंको सुन करके व पढ़करके होता है । जैसे जीव शब्द सुना यह मतिज्ञान है उससे चेतनालक्षण जीव पदार्थको समझ जाना श्रुतज्ञान है । अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान जघन्य पर्यायज्ञानसे (जो सूक्ष्म लब्धपर्याप्तक निगोद जीवको होता है) लेकर उत्कृष्ट ज्ञानतक होता है, उसे पर्याय समास कहते हैं । अक्षरात्मक ज्ञानके अपुनरुक्त अक्षर जो ६४ अक्षरोंके मिलनेसे बने हैं एक कम एकट्ठी प्रमाण होते हैं । उसीमें द्वादशांगवाणी अंगप्रविष्ट व अंगबाह्य है । देखो शब्द "अंग" "अंगप्रविष्ट श्रुतज्ञान" "अंग बाह्य श्रुतज्ञान" "अक्षरात्मक श्रुतज्ञान" "अक्षर" (प्रथम जिल्द) ।

श्रुतज्ञानव्रत–१६ उपवास १६ पडिवाको+३ उपवास तीन तीजको+४ उपवास चार चौथको+५ उपवास पांच पंचमीको+६ उपवास छः छठोंमें+७ उपवास सात सातैमें+८ उपवास आठ आठैमें+९ उपवास ९ नौवमीमें+२० उपवास वीस दसमीमें + ११ उपवास ग्यारह ग्यारसमें+१२ उपवास बारह बारसमें+१३ उपवास तेरह तेरहसोंमें+१४ उपवास चौदह चौदसोंमें+१५ उपवास पंद्रह पूनमर्में+१५ उपवास अमावस=(कि. क्रि. ११९)

श्रुतज्ञानावरण कर्म–जो श्रुतज्ञानको आवरण करे । (सर्वा. अ. ८।६)

श्रुतावतार कथा–सं० सटीक मुद्रित ।

श्रेणिक–श्रीमहावीर स्वामीके समयमें राजग्रहीके राजा मुख्य श्रोता । क्षायिक समकदृष्टि–आगामी भरतकी उत्सर्पिणीमें प्रथम तीर्थंकर महापद्म होंगे । इनका नाम बिम्बसार भी प्रसिद्ध है । चरित्र मुद्रित है । (त्रि.प्र. ७२)

श्रेणी–सर्व अनंत आकाशकी लम्बी पंक्ति या लकीर । (त्रि. गा. ६९), साधुके चारित्रकी श्रेणी–जहां चारित्रमोहनीयकी २१ प्रकृतियोंका उपशम हो । वह उपशम श्रेणी व जहां उनका क्षय हो वह क्षपक श्रेणी है ।

श्रेयस्कर–लौकांतिक देवोंका एक कुल जो अंतरालमें होता है । (त्रि. प्र. ५३७)

श्रेयांशनाथ–वर्तमान भरतके ११ वें तीर्थंकर सिंहपुरके इक्ष्वाकुवंशी राजा विष्णु नंदादेवीके पुत्र, सुवर्ण वर्णदेह, आयु ८० लाख वर्ष, राज्यकर साधु हो सम्मेदशिखर पर्वतसे मोक्ष हुए ।

श्रोत्रेन्द्रिय विषय–कर्णइंद्रिय द्वारा असैनी पंचेन्द्रियका उत्कृष्ट जाननेका विषय ८००० धनुष व सैनीके १२ योजन तक है (गो. जी.नं. १६९) सारे स्वर गान विद्याके कर्ण इंद्रियका विषय है । षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत, निषाद । (प्र. जि. पृ. २२२)

श्वेत ध्वज–विजयार्द्धकी दक्षिण श्रेणीका सातवां नगर । (त्रि. गा. ६९७)

श्वासोछ्वास–प्राणापान–जो पवन भीतरसे वाहर आती है वह उछ्वास या प्राण है व जो वाहरकी वायु भीतर ली जाय वह श्वास या अपान है । (सर्वा. अ. ५–१९)

श्वेताम्बर–विक्रम सं० १३६ में दिगम्बर श्वेताम्बर भेद हुए । प्राचीन जैन निर्ग्रन्थ कहलाते थे । उनके साधु परिग्रह रहित नग्न रहते थे । जब महाराज चन्द्रगुप्त मौर्यके समयमें १२ वर्ष तक काल पड़ा । तबसे कुछ मुनियोंने वस्त्र धारण किया । वे ही फिर गुजरातके सौराष्ट्र देशके वल्लभीपुरमें संवत १३६ में श्वेताम्बरके नामसे प्रसिद्ध किये गए । (दर्शनसार गा. १११)

श्लोकवार्तिक–विद्यानंदि स्वामीकृत तत्वार्थ टीका सं० मुद्रित ।

ष

षट्अंग सामायिक–सामायिकके नाम शुभ अशुभ नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावका गुण होनेपर राग द्वेष न करके समभाव रखना ।

षट् अनायतन—धर्मकी शिथिलताके निमित्त कारण ६ धर्मके स्थान नहीं हैं। कुदेव, कुगुरु, व कुशास्त्र व इन तीनोंके भक्त। (गृ. अ. ७)

षट् अभ्यन्तर तप—प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग, ध्यान। (सर्वा. अ. ९–२०)

षट् आवश्यक—मुनियोंके नित्य करनेके जरूरी कार्य-सामायिक, वंदना, स्तुति, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, कायोत्सर्ग व श्रावक गृहस्थोंके नित्य करने योग्य देवपूजा, गुरुभक्ति, स्वाध्याय, संयम, तप, दान।

षट्कर्म—आजीविकाके साधन, असि, मसि, कृषि, वाणिज्य, शिल्प, विद्या; धर्मके नित्य करने योग्य मुनि व श्रावकके छ कर्म। देखो—"षट्कर्म"
(गृ. अ. ८)

षट् काय—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति।

षट् कारण भोजन—मुनि छः कारणोंसे भोजन करते हैं–(१) क्षुधा मेटना, (२) नित्य ६ आवश्यक साधना, (३) चारित्र पालना, (४) इन्द्रिय संयम, (५) प्राणरक्षार्थ, (६) उत्तम क्षमादि धर्म पालन। इन छः कारणोंसे भोजन नहीं करते। (१) शरीरबल, (२) आयुवृद्धि, (३) रसस्वाद, (४) आरंभकी शक्ति होना, (५) मोह होना, (६) दीसमान होना।

षट् कारण भोजन त्याग—मुनि इन छः कारणोंसे भोजन त्याग देते हैं। (१) अकस्मात् मरण आनेपर, (२) उपसर्ग आनेपर, (३) ब्रह्मचर्य रक्षार्थ, (४; प्राणियोंकी दया निमित्त, (५) तपवासके लिये, (६) सन्यास मरणके लिये। (श्र. म. ए. २७४)

षट् काल—१ प्रथम सुखमा सुखमा, २ सुखमा, ३ सुखमा दुखमा, ४ दुखमा सुखमा, ५ दुखमा, ६ दुखमा दुखमा। पहले तीनमें भोगभूमि होती है शेष तीनमें कर्मभूमि। यह क्रम अवसर्पिणीमें चलता है उत्सर्पिणीमें उलटा चलता है। एक काल उत्सर्पिणी अवसर्पिणीका १ कोड़ाकोड़ी सागरका होता है। इनमें पहला चार कोडाकोडी सागर, दूसरा तीन, तीसरा दो, चौथा ४२००० वर्ष कम एक कोड़ाकोड़ी सागर। पांचवा व छठा प्रत्येक २१००० वर्षका होता है।

(त्रि. गा. ७८०–७८१)

षट्कुण्ड—जम्बूद्वीपके छः द्रह। पद्म, महापद्म, तिगिञ्छ, केशरि, महापुंडरीक, पुंडरीक।

(सर्वा. अ. ३–१४)

षट् कुमारिकादेवी—श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि, लक्ष्मी वे पद्मादि छः कुण्डोंमें कमलमें रहती हैं।
(त्रि. गा. ५७२)

षट् कुलाचल—हिमवन्, महाहिमवन्, निषध, नील, रुक्मि, शिखरी। (सर्वा. अ. ३–११)

षट् खण्ड—भरत, ऐरावत व विदेह ३२, इनएकमें मध्यमें विजयार्द्ध पर्वत व उसकी गुफाओंके भीतरसे दोदो नदी आनेसे छः खण्ड होगए हैं। दक्षिणके मध्य खण्डको आर्यखण्ड, शेष पांचको म्लेच्छ खण्ड कहते हैं।

षट् खंडी—भरत या ऐरावत या विदेहके छः खण्डोंका स्वामी चक्रवर्ती राजा।

षट्गुणी हानि वृद्धि—किसी राशिके अविभागी अंशको गुण कहते हैं। हानि घटनेको, वृद्धि बढ़नेको कहते हैं, ये छः छः प्रकार हैं—

१ अनंत भाग वृद्धि, २ असंख्यात भाग वृद्धि, ३ संख्यात भाग वृद्धि, ४ संख्यात गुण वृद्धि, ५ असंख्यात गुण वृद्धि, ६ अनंत गुण वृद्धि। १ अनंत भाग हानि, २ असंख्यात भाग हानि, ३ संख्यात भाग हानि, ४ संख्यात गुण हानि, ५ असंख्यात गुण हानि, ६ अनंतगुण हानि। यदि हम किसी अंकराशिको १००३६ मानलें, अनन्तको ५, असंख्यातको ४, संख्यातको २ मानें तो वृद्धि हानि इस प्रकार होगी—

[illegible]

[illegible]

२–असंख्यात भाग वृद्धि=११९२+$\frac{१०२४}{४}$=११९२+२५६=१४०८

३–संख्यात भाग वृद्धि=१४०८+$\frac{१०२४}{२}$=१४०८+५१२=१९२०

४–संख्यात गुण वृद्धि–१९२०+१०२४×२=१९२०+२०४८=३९६८।

५–असंख्यात गुण वृद्धि–३९६८+१०२४×४=३९६८+४०९६=८०६४।

६–अनंत गुण वृद्धि–८०६४+१०२४×८ ८०६४+८१९२=१६२५६

इसीमें छः हानियें होगी।

१–अनंत भाग हानि-१६२५६–$\frac{१०२४}{८}$=१६२५६–१२८=१६१२८

२–असंख्यात भाग हानि–१६१२८–$\frac{१०२४}{४}$=१६१२८–२५६=१५८७२

३–संख्यात भाग हानि–१५८७२–$\frac{१०२४}{२}$=१५८७२–५१२=१५३६०

४–संख्यात गुण हानि-१५३६०-१०२४×२=१५३६०–२०४८=१३३१२

५–असंख्यात गुण हानि–१३३१२–१०२४×४=१३३१२–४०९६=९२१६

६–अनंत गुण हानि–९२१६–१२४+८=९२१६–८१९२=१०२४ इस तरह वृद्धि व हानि होती है। (सि.द.पृ.८९) सर्व द्रव्योंमें एक अगुरु-लघु गुण है उसके अंशोंमें षट्गुण वृद्धि हानि समुद्रमें लहरोंके समान होती रहती हैं। यही स्वभाव परिणमन है। (आलाप पद्धति)

षट्चत्वारिंशतगुण–अरहन्तके ४६ गुण, देखो "पंचपरमेष्टी गुण"।

षट् दर्शन–सांख्य, नैयायिक, वैशेषिक, मीमांसक, चार्वाक, बौद्ध।

षट् द्रव्य–जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल। चेतना लक्षण जीव है। स्पर्श रस गन्ध वर्ण गुणधारी पुद्गल है। जीव पुद्गलका गमन सहकारी धर्म, स्थिति सहकारी अधर्म है। सर्वको अवगाह देने वाला आकाश है। परिणति पलटनेमें सहकारी काल है। देखो "द्रव्य"

षट् द्रह–देखो "षट् कुण्ड"

षट् पंचाशत कुमारिका देवी–१३ वे रुचक द्वीपमें रुचक पर्वतपर और मानुषोत्तर पर्वतपर वास करनेवाली देवियां। ये सब तीर्थंकरको माताकी सेवा करने आती हैं।

रुचक पर्वतका कूट।	नाम दिक्कुमारीदेवी।
पूर्व १–कनक	विजया
२–कांचन	वैजयंती
३–तपन	जयंती
४–स्वस्तिक	अपराजिता
५–सुभद्र	नंदा
६–अंजनक	नंदावती
७–अंजन मूल	नंदोत्तरा
८–वज्र	नंदिषेणा

ये देवियां तीर्थंकरकी माताके पास भृंगार (झारी) लिये रहती हैं।

दक्षिण ९–स्फटिक	इच्छा
१०–रजत	समाहारा
११–कुमुद	प्रकीर्णा
१२–नलिन	यशोधरा
१३–पद्म	लक्ष्मी
१४–शशि	शेषवती
१५–वैश्रवण	चित्रगुप्ता
१६–वैडूर्य	वसुन्धरा

ये आरसा (शिशा) लिये रहती हैं।

पश्चिम १७–अमोघ	इला
१८–स्वस्तिक	सुरा
१९–मंदर	पृथ्वी
२०–हैमवत	पद्मावती
२१–राज्य	एकनासा
२२–राज्योतम	नवमिका
२३–चन्द्र	सीता

२४–सुदर्शन	भद्रा

तीन छत्र धारण करती हैं।

उत्तर	२५-विजय	अलंभृषा
	२६–वैजयंत	मिश्रकेशी
	२७–जयंत	पुंडरीकिणी
	२८-अपराजित	वारुणी
	२९–कुण्डल	आशा
	३०–रुचक	सत्या
	३१–रत्नकर	ह्री
	३२–सर्वरत्न	श्री

चमरोंको धारती हैं।

ये ३२ कूट परिधिमें हैं। भीतर अभ्यंतर कूट १२ हैं—

पूर्वादि	१–विमल	कनका
४	२–नित्यलोक	शतहृदा
दिशामें	३–स्वयंप्रभ	कनकचित्रा
	४–नित्योद्योत	सौदामिनी

ये दिशाओंको निर्मल करती हैं।

उनके भीतरी स्थानोंमें फिर चार कूट हैं। चार दिशामें।

कूट	देवी
१–वैडूर्य	रुचका
२–रुचक	रुचककीर्ति
३–मणिकूट	रुचककांता
४–राज्योत्तम	रुचकप्रभा

तीर्थंकरका जातकर्म करती हैं।

फिर उनके भीतर पूर्वादि दिशामें चार कूट हैं, उनपर ४ देवियां हैं, नाम नहीं दिये हैं। कुल ४९ दिक्कुमारी जो रुचकमें हैं शेष २४ दिक्कुमारी देवी मानुषोत्तर पर्वतकी आग्नेय व ईशान दिशाको छोड़कर शेष दिशामें १२ कूट हैं इनपर दिक्कुमारी देवी बसती हैं। इस तरह ५६ देवियां हैं जो माताकी सेवा करती हैं (त्रि. गा. ९४१–९४८....९५९)

षट् पर्याप्ति–देखो "पर्याप्ति"

षट् पाहुड–प्रा० मूल कुन्दकुन्दाचार्य कृत. सं० श्रुतसागर कृत, भाषा हिन्दी मुद्रित है।

षट्पेय–देखो "पेय"

षट्रस–देखो "रस"

षट्रसी व्रत–देखो "पाक्षिकव्रत"

षट्राशि–कर्मोंका उदय कैसे आता है व वे कैसे सत्तामें रहते हैं इस बातका हिसाब जाननेके लिये छः राशि जानना योग्य है।

१ द्रव्यराशि–कितनी कर्म वर्गणाएं एक समयमें बन्धीं।

२ स्थिति आयाम–उन कर्मोंमें कितने समयोंकी स्थिति पड़ी।

३ गुणहानि आयाम–जहां दूना दूना घाट कर्मवर्गणाओंका विभाग हो उसे गुणहानि कहते हैं, एक गुणहानिका समय प्रमाण।

४ दलशलाका–नानागुणहानि, उस स्थितिके समयोंमें कितनी गुणहानि होगी।

५ दो गुणहानि आयाम या निषेक–गुणहानि आयामका दूना।

६–अन्योन्याभ्यस्तराशि–नाना गुण हानि प्रमाण २ को लिखकर परस्पर गुणा करनेसे जो हो जैसे–(१) ६३०० कर्म द्रव्य, (२) स्थिति ४८ समय, (३) गुण हानि आयाम ८, (४) नाना गुण हानि ६, (५) दो गुण हानि आयाम या निषेक १६, (६) अन्योन्याभ्यस्तराशि २×२×२×२×२×२=६४। (गो. क. गा. ९२१–९२२)

षट् लेश्या–देखो "लेश्या"।

षट् [illegible]–देखो "षट् [illegible]"।

षट् [illegible]–देखो "[illegible]"।

षट् संस्थान–देखो "संस्थान"।

षट् संहनन–देखो "संहनन"।

षट् स्थान पतित हानि वृद्धि–देखो "षट्गुणी हानि वृद्धि"।

षट् त्रिंशत् गुण–आचार्यके ३६ गुण, देखो "आचार्यके गुण"।

षष्टम वेला–दो दिन छोडना, दो दिनका उपवास, प्रत्येक दिन दो दफे आहार करनेका साधारण नियम है। वेला करनेवालेको दो दिन उपवासके चार, पहले धारणा पिछले पारणाका एक एक, ऐसे ६ दफे भोजन छोड़ा इसलिये वेलाको षष्टम वेला कहते हैं। (त्रि. गा. ७८९)

षोड़श उत्पादन दोष–देखो "आहार दोष"।

,, उद्गम दोष– ,, ,,

षोड़स कषाय–देखो "कषाय"

षोड़स कारण (भावना)–इसके विचारनेसे तीर्थंकर नाम कर्मका वन्ध होता है।

१ दर्शन विशुद्धि, २ विनय सम्पन्नता, ३ शीलव्रतेष्वनतिचार, ४ अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग, ५ संवेग, ६ शक्तिस्त्याग, ७ शक्तिस्तप, ८ साधुसमाधि, ९ वैय्यावृत्यकरण, १० अर्हंत भक्ति, ११ आचार्य भक्ति, १२ उपाध्याय भक्ति, १३ प्रवचन भक्ति, १४ आवश्यकापरिहाणी, १५ मार्गप्रभावना, १६ प्रवचन वत्सलत्व।

(सर्वा० अ० ६–२४)

षोडश कारण पर्व–भादो, माघ व चैतका पूर्ण मास।

षोडश कारण व्रत–भादो, माघ, चैत्र मासमें एक उपवास १ एकासन करे, इस तरह मास पूर्ण करे। १ दिन पहलेसे धारे। १ दिन पीछे पारणा करे। कुल ३२ दिनका व्रत है, ऐसा १६ वर्षतक करे। फिर उद्यापन करे या दूना व्रत करे।

(क्रि० क्रि० पृ० १०८)

षोडश कुलकर–देखो "कुलकर" १४में ऋषभदेव व भरत चक्री मिलकर १६ होते हैं।

षोडश ध्यान–४ आर्त, ४ रौद्र, ४ धर्म, ४ शुक्ल।

षोडश मनु–देखो "कुलकर"।

षोडश सती–देखो 'प्रसिद्ध सतियां १६"।

षोडश स्वप्न–तीर्थंकरकी माता देखती हैं–(१) श्वेत ऐरावत हाथी, (२) बैल, (३) सिंह, (४) लक्ष्मी, (५) पुष्पमाला दो, (६) चंद्रमंडल, (७) सूर्य, (८) दो सुवर्ण कलश, (९) मछलियां, (१०) सरोवर, (११) समुद्र, (१२) सिंहासन, (१३) रत्नविमान, (१४) पृथ्वीसे आता हुआ नागेन्द्र विमान, (१५) रत्नराशि, (१६) विना धूम अग्नि।

(इति० १ पृ० २४)

षोडश स्वर्ग–देखो "विमान"।

स

सकलकीर्ति–(वि० सं० १४९९) सिद्धांतसार, तत्वार्थसार दीपक, सार चतुर्विंशतिका, धर्मप्रश्नोत्तर, मूलाचार प्रदीपक, यत्याचार, सद्भाषितावलि, आदिपुराण, उत्तरपुराण, धर्म, शांति, मल्लि, पार्श्व, वर्द्धमानपुराण, सिद्धांत मुक्तावली, कर्मविपाक, तत्वसार टीका आदिके कर्ता। (दि० ग्रं० नं० ३१२); (द्वि०) श्रुतकथाकोश, कातंत्रलघुवृत्ति आदिके कर्ता। (दि० ग्रं० नं० ३१३)

सकल चारित्र–पूर्ण चारित्र महाव्रत रूप साधुके लिये।

सकलदत्ति–नौमी प्रतिमा परिग्रह त्यागको धारते हुए सर्व धन सम्पत्तिका पुत्रादिको देदेना।

(सा० अ० ७–२४)

सकल परमात्मा–शरीर सहित परमात्मा अरहंत।

सकल पारमार्थिक प्रत्यक्ष–केवलज्ञान जो सर्व तीन काल, तीन लोक, अलोक सर्व पर्यायोंको एक काल जानता है।

सकल भूषण–(वि० सं० ६२७) धर्मोपदेश रत्नमालाके कर्ता। (दि. ग्र. नं. ३१३)

सकल संयम–मुनिके पूर्ण व्रतको सम्यक्त सहित अधिकसे अधिक बत्तीस वार ही धारे फिर अवश्य मोक्ष पावे। (गो० क० गा० ६१९)

सकलीकरण विधान–अंगकी मंत्रोंद्वारा शुद्धि (देखो प्रतिष्टासारोद्धार) पृ० ३५–८५

सगर–गृ० वर्द्धमानपुराणके कर्ता। (दि. ग्रं. नं. ३१४) भरतके वर्तमान दूसरे चक्रवर्ती।

सचित्त—जीव सहित जल वनस्पति फल पुष्पादि ।

सचित्त अतीचार—सचित्तका त्यागी भूलसे सचित्त लेले वह भोगोपभोग परिमाणव्रतका पहला अतीचार है । (सर्वा. ७-३५)

सचित्तक्रीत—गाय, भैंसादि देव साधुके लिये वस्तिका मोल लेवे यह वस्तिका दोष तथा गाय, भैंसादि सचित्त देकर भोजन मोल लाय कर साधुको दे यह आहारदोष । (भ. पृ. ९३-१०३)

सचित्त त्याग प्रतिमा—पांचमी श्रेणीका श्रावक जो जीव सहित पानी, वनस्पति आदि सचित्त न खाता है न खिलाता है—अचित्त पानी, वनस्पति आदि ग्रहण करेगा। इसे सचित्तको अचित्त करनेका त्याग नहीं है । (गृ. अ. (१ वां)

सचित्त निक्षेप—पहला अतीचार अतिथि संविभाग चौथे शिक्षाव्रतका मुनि आदि सचित्त त्यागीको सचित्त या रक्खा हुआ आहारदानमें देना ।
(सर्वा० अ० ७-३६)

सचित्ता विधान—दूसरा अतिचार अतिथि संविभाग चौथे शिक्षाव्रतका । मुनि आदि सचित्त त्यागीको सचित्तसे ढके हुए आहारका देना ।
(सर्वा० अ० ७-३६)

सचित परिग्रह—स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब, दासी, दास आदि ।

सचित्त योनि—जीवकी उत्पत्तिका सचित स्थान जैसे सिरमें जूं पड जाना ।

सचित्त सम्बन्ध—अतिचार दूसरा भोगोपभोग परिमाण व्रतका सचित्त त्याग होनेपर उसपर रक्खी व ढकी हुई वस्तु खाना । (सर्वा. अ. ७-३५)

सचित्त संमिश्र—अतीचार तीसरा भोगोपभोग परिमाण व्रतका—सचित्त त्याग होनेपर सचित्तको अचित्तसे मिलाकर खाना । (सर्वा० अ० ७-३५)

सजाति असद्भूत व्यवहारनय—सजाति द्रव्यमें द्रव्यगुण पर्याय आरोप जिस नयसे हो । नौ प्रकार है । द्रव्यमें द्रव्यका—(१) गुणका, (२) पर्यायका, (३) गुणमें द्रव्यका, (४) गुणका, (५) पर्यायका (६) पर्यायमें द्रव्यका, (७) गुणका, (८) पर्यायका, (९) आरोप । जैसे चन्द्रमाके प्रतिबिम्बको चन्द्रमा कहना । यह सजाति पर्यायमें सजाति पर्यायका समारोप है या ज्ञानको आत्मा कहना यह गुणमें द्रव्यका आरोप है । (सि. द. पृ. ११)

सजाति उपचरित असद्भूत व्यवहारनय—भिन्न सजाति पदार्थोंको अपनाना जैसे मित्र पुत्रादि मेरे हैं । (सि० द० पृ० ११)

सजाति विजाति असद्भूत व्यवहारनय—सजातिमें विजातिके द्रव्य गुण पर्यायका परस्पर आरोप । इसके भी नौ भेद होंगे । जैसे जीवको मूर्तिक कहना । यहां जीव विजाति द्रव्यमें पुद्गलके गुणका आरोप है । (सि० द० पृ० ११)

सजाति विजाति (मिश्र) उपचरित असद्भूत व्यवहार नय—भिन्न सजाति विजाति पदार्थोंका अपनाना जैसे कहना यह नगर मेरा है ।
(सि० द० पृ० ११)

संज्वलित—तीसरे नरकका नौमा इन्द्रक बिला ।
(त्रि० सा० १५७)

सत्पात्र दान—मुनि, श्रावक, अव्रत सम्यग्दृष्टि धर्मके पात्रोंको भक्ति पूर्वक दान देना ।

सत्ता—अस्तित्व गुण—जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्यका कभी नाश न हो सदा बनी रहे; पर्यायोंका बदल होनेके पीछे द्रव्य अनित्य व निर्मल होनेपर सत्ताके नाश नहीं होता ।

स्नातक—निर्ग्रन्थ साधुओंका पांचवां प्रकार ।
(त्रि० सा० ३०१)

सतियां १६—देखो "प्रसिद्ध सतियां १६"

सत्कार पुरस्कार—परीषह—१९ परीषहमें १९वीं । मान सत्कार होनेपर आकुलता रंच मात्र नहीं करे । (सर्वा० अ० ९)

सत्—सत्तारूप, अविनाशी, कभी नष्ट नहीं ।

सत्य प्रवाद पूर्व—द्वादशांग वाणीका छठा पूर्व जिसमें सत्य वचनका वर्णन है ...

मध्यम पद एक करोड छः हैं ।

(गो० जी० गा० ३६१–३६६)

सत्य मन–यथार्थ पदार्थका मनमें विचार करना ।

सत्य मनोयोग–सत्य पदार्थके ज्ञान उपजानेकी शक्तिलिये भाव, मनकी चेष्टा रूप योगसे आत्म प्रदेशोंका सकम्प होना व आत्माकी योगशक्तिका परिणमना जो कर्म नोकर्मके आगमनका कारण है ।

(गो. जी. का. गा. २१८)

सत्य महाव्रत–अनृतका पूर्णपने मन, वचन काय, कृत कारित अनुमोदनासे त्याग । प्रमत्त योगसे प्राणियोंको पीड़ा कारक वचन कहना अनृत है अथवा विद्यमान अर्थको अविद्यमान कहना, अविद्यमानको विद्यमान कहना या विपरित कहना या गर्हित निन्दनीय अप्रिय सावद्य वचन कहना असत्य है । उन सबका त्याग साधुके होता है । राग, द्वेष मोहका कारक, पर संतापकारक व द्वादशांगके अर्थके प्रतिकुल वचनको त्यागना सत्य महाव्रत है ।

(मू. गा. ६) (सर्वा.अ. ७–१४)

सत्य वचन–सत्यपदार्थका कहनेवाला वचन सो १० प्रकार है । (१) जनपद सत्य–प्रत्येक देशके व्यवहारकी भाषा जैसे भातको अंध्र देशमें वंटक व कर्णाटकमें कुलु कहते हैं, (२) संव्रति या सम्मति सत्य–जो बात बहुजन मान्य हो उसे कहना जैसे किसीको पटरानी न होनेपर भी रानी या देवी कहना, (३) स्थापना सत्य–अन्यमें अन्यकी स्थापना करना जैसे मूर्तिमें चन्द्रप्रभ तीर्थंकरकी स्थापना करके चन्द्रप्रभ कहना व सतरंजकी गोटमें हाथीकी स्थापना करके हाथी कहना, (४) नाम सत्य–व्यवहारमें जो नाम जिसका रक्खा जाय वह कहना । जैसे किसीको जिनदत्त या वृषभदत्त कहना, (५) रूप सत्य–किसी पुद्गलमें अनेक गुण होते हुए भी किसी रूप या वर्णकी अपेक्षासे वैसा कहना जैसे गोरे गोरे होते हैं यद्यपि बाल काले हैं परन्तु उनकी अपेक्षा न ली, (६) प्रतीत्य या आपेक्षिक सत्य–एक दूसरेकी अपेक्षासे हीन अधिक कहना । जैसे यह वृक्ष लम्बा है, यह लड़का छोटा है । (७) व्यवहार सत्य–जो वचन नैगमादि नयकी अपेक्षासे हो । जैसे रसोई बनी नहीं है या कहना होरही है या ये पदार्थ सत्रूप हैं, (८) सम्भावना सत्य–वस्तुके स्वभावका कहनेवाला वचन । जैसे कहना इस बीजमें आमका वृक्ष है, (९) भाव सत्य–शास्त्रके अनुसार त्याग ग्रहण रूप वचन कहना जैसे प्राशुक वस्तु खाद्य है, (१०) उपमा सत्य–किसी प्रसिद्ध पदार्थकी समानता बताकर कहना जैसे यह स्त्री चन्द्रमुखी है या पल्योपम, सागरोपम । (गो० जी० गा० २२१–२२४)

सत्य वचन योग–सत्य वचनकी प्रवृत्तिसे जो आत्माके प्रदेशोंका सकम्प होना व योगशक्तिका परणमना । (गो० जी० गा० २२०)

सत्यव्रत–देखो " सत्य महाव्रत "

सत्यव्रतकी भावनाएं–पांच हैं (१) से (४) क्रोध, लोभ, भय, हास्यका त्याग (५) अनुवीचि भाषण–शास्त्रानुकूल वचन कहना ।

(सर्वा० अ० ७–५)

सत्यकितनय–११ वां रुद्र जो महावीरस्वामीके समयमें हुआ व जिसने वीर प्रभुको उज्जैनीमें उपसर्ग किया । यह भरतकी आगामी उत्सर्पिणीका ९४ वां तीर्थंकर अनंतवीर्य होगा ।

(त्रि. गा. ८१६–८७५)

सत्य वाक्य–(हस्तिमल्ल कविका भाई) कल्याण नीनाटिकाका कर्ता । (दि० ग्रं० नं० ७५५)

सत्या–रुचक गिरिकी उत्तर दिशामें रुचक पर्वतपर बसनेवाली देवी–तीर्थंकरकी माताकी सेवा करनेवाली देवी । (त्रि. गा. ९५५)

सत्याणु व्रत–सत्यव्रतको एक देश पालना । आरम्भी वचन सिवाय अन्य सर्व प्रकार असत्यका त्याग करना, परको हानिकारक सत्य भी न बोलना । (श्रा. प. ११८) (पुरु. श्लोक ९१–१०१)

सत्याणुव्रत अतिचार–(१) मिथ्योपदेश–मोक्षमार्गसे उलटा उपदेश देना। (२)-रहोभ्याख्यान–स्त्री पुरुषकी एकान्त चेष्टाका प्रकाश (३) कूट-लेख क्रिया–ठगनेके लिये असत्य लेख लिखना, (४) न्यासापहार–कोई रक्खी हुई धरोहर रकमको भूलसे कम मांगे तो उसको तो उतनी ही दे देना, (५) साकार मंत्र भेद–किन्हीं सज्जनोंकी गुप्त संमतिसे अंग चिन्होंसे पहचानकर प्रकाशकर देना।
(सर्वा० अ० ७–२६)

सत्याभा–लौकांतिक देवोंका अन्तरालका एक कुल। (त्रि० गा० ५३७)

सत्यासत्य–उभय–जिसमें सत्य असत्य मिला हुआ अभिप्राय हो ऐसा विचार सो उभय मन है व ऐसा बोलना सो उभय वचन है।

सत्व–बन्धे हुए कर्म पुद्गलोंका कर्मरूप बने रहना।

सत्व द्रव्य–आत्माके प्रदेशोंमें बन्धा हुआ कर्म-समूह। (गो० क० गा० ४३९)

सदवस्थारूप उपशम–वर्तमान कालको छोड़-कर आगामी कालमें उदय आनेवाले कर्मोंकी सत्तामें रहना। (जै० सि० प्र० नं० ३७९)

सदृश–ज्योतिषके ८८ ग्रहोंमें २६ वां ग्रह।
(त्रि० गा० ३६६)

सद्‌भाव स्थापना–तदाकार स्थापना–जिसका जैसे आकार हो वैसे मूर्तिमें उसका संकल्प करना।

सद्भूत व्यवहारनय–जिससे गुण व गुणी भेद किया जाय जैसे आत्मा ज्ञानस्वरूप है। शुद्ध द्रव्यमें भेद करना। शुद्ध सद्भूत व्यवहारनय है, अशुद्ध द्रव्यमें भेद करना अशुद्ध सद्भूत व्यवहारनय है जैसे जीवके रागादिक हैं या मतिज्ञानादि हैं।
(सि. द. पृ. १०)

सदासुख–पं० (सं० १९०८) जयपुरी–भगवती आराधना टीका, रत्नकरण्ड श्रावकाचार टीका, तत्वार्थसूत्र टीका, अर्थ प्रकाशिका, नाटक समयसार टीका आदिके कर्ता। (दि.ग्रं.नं. १४८)

सधर्माविसंवाद–अचौर्यव्रतकी पांचवी भावना, धार्मिक पदार्थ शास्त्र आदिमें मेरा तेरा करके साधर्मी भाइयोंसे झगड़ा करना। (सर्वा. ७–७)

सनत्कुमार–तीसरा स्वर्ग–१२ लाख विमान हैं यह जिसका आकार अकृत्रिम जिन प्रतिमाके पार्श्वमें होता है। (त्रि. गा. ९८८)

सन्तान–ज्योतिषके ८८ ग्रहोंमें ४७ वां ग्रह।

सन्धाना आचार–आठ पहरके बादका अथाना है।

संध्यावंदन–संध्याके समय तीर्थंकरोंकी वन्दना करना व सामायिक करना।

संदिग्ध असिद्ध–जो साधन शंकाशील होनेसे सिद्ध न कर सके।

सनत्कुमार–भरतके वर्तमान तीसरे चक्रवर्ती।

सन्निधिकरण–पूजन करते समय पूज्यको अपने हृदयमें निकट करना तथा कहना " अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् "

सन्मति–श्री महावीर स्वामी भरतके वर्तमान २४ वें तीर्थंकरका नाम।

सन्यासाश्रम–जैन मुनिपद जहां सर्व परिग्रहोंका त्याग होता है।

सपक्ष–जहां साध्यके सद्भाव का होनेका निश्चय हो जैसे धूमका सपक्ष गीले ईंधनवाली अग्नि है।
(जै० सि० प्र० नं० ४९)

सप्त आनीक–देवोंमें सात प्रकार सेना होती है–भवनवासी देवोंमें ये हैं–भैंसा, घोड़ा, रथ, हाथी, प्यादा, गंधर्व, नृत्यकी असुर कुमारोंके होती है। शेष ९ कुमारोंमें प्रथम आनीकमें भेद है बाकी छः समान हैं। प्रथम आनीक नागकुमारादिमें क्रमसे होगी। नाव, गरुड़, हाथी, मगर, ऊंट, सूअर, सिंह, पालकी, घोड़ा। (नोट–यहां घोड़ा दो दफे आनेके भेदमें आता है)।
(त्रि० गा० २२९–२३१)

व्यंतर देवोंकी–आठ प्रकार सेना है–हाथी, घोड़ा, प्यादा, रथ, गंधर्व, नृत्यकी, वृषभ, ये सबोंके समान हैं।

वैमानिकोंके–सात प्रकार सेना है–वृषभ, घोड़ा, रथ, हाथी, पयादा, गंधर्व, नृत्यकी। (त्रि.गा.४९४)

सप्तईत–सात प्रकार प्रजाको संकटके कारण अतिवृष्टि, अनावृष्टि, मूसादल, टीड़ीदल, सूवादल, अपनी सेनाका खेतोंपर गमन–परकी सेनाका खेतोंमें गमन। ये सात ईत विदेहमें नहीं होती हैं। (त्रि. गा. ६८०)

सप्तऋषि–श्रीरामचन्द्रके समयमें मथुरामें मरी फैला था सो सात मुनियोंके पधारनेसे नष्ट होगया। श्रीमन्यु, सुरमन्यु, निचय, सर्वसुन्दर जयवान, विनयलाल, जयमित्र।

सत्यगुण दातार–भक्ति, श्रद्धा, सत्व (शक्ति) संतोष, ज्ञान, अलोलुपता, क्षमा। (सा.अ.५-४७)

सप्त चंदोए–व्रती श्रावक सात जँगह चंदोवा लगावे। (१)चूल्हा–रसोईघर, (२) पानीका स्थान–परिंडा, (३) चक्की पीसनेका स्थान, (४) अरवली-पर, (५) अन्नादि साफ करनेकी जगहपर, (६) सोनेकी जगहपर, (७) सामायिक स्वाध्यायकी जगहपर। (श्रा. १८९)

सप्तच्छद–स्वर्गके उत्तर इन्द्रोंके उत्तरकी ओरका विमान। (त्रि. गा. ४८५) नंदीश्वर द्वीपमें १६ वापिकाओंके चारों तरफ वन हैं। १६ वन सप्तच्छद हैं जो एक लाख योजन लम्बे व आधे लाख चौड़े हैं। (त्रि० गा० ९७२)

सप्त तत्त्व–जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष। देखो " तत्व "

सप्त दश नियम–१७ नियम गृहस्थ भोगोपभोग परिमाण व्रतमें विचारता है। देखो 'नियम'

सप्तदश मरण–(१) आवीचिका–मरण समय आयुका घटना, (२) तद्-भव मरण–वर्तमान पर्यायका छूटना, (३) अवधि मरण–जैसा मरण वर्तमान पर्यायका हो वैसा ही आगेकी पर्यायका हो, (४) आद्यंत मरण–वर्तमान पर्यायका जैसा मरण था वैसा आगेकी पर्यायमें नहीं हो। (५) बाल मरण–ये पांच तरहका है। (१) अव्यक्तबाल–जो बहुत छोटा बालक, (२) व्यवहारबाल–जो व्यवहारमें मूर्ख हो, (३) दर्शन बाल–जो मिथ्यादृष्टि हो, (४) ज्ञान बाल–यथार्थ ज्ञान रहित हो, चारित्र बाल–चारित्र रहित परन्तु सम्यक्तसहित हो, (६) पंडित मरण–पंडित ४ प्रकार है। (१) व्यवहार पंडित, (२) सम्यक्त पंडित–सम्यग्दृष्टि, (३) ज्ञान पंडित, (४) चारित्र पंडित यहां पिछले तीन पण्डितोंका ग्रहण है, (७)आसन्न मरण–भ्रष्ट साधुका मरण, (८) बाल पंडित मरण–सम्यग्दृष्टि श्रावकका मरण, (९) सशल्य मरण–माया, मिथ्या, निदान सहित मरे. (१०) पलाय मरण–जो धर्मक्रियासे दूर भागे ऐसे आलसीका मरण, (११) वशार्त्त मरण–जो इन्द्रिय विषय, वेदना, कषाय, नोकषाय सहित मरण, (१२) विप्राण मरण–उपसर्ग आनेपर सह भी न सके व भयसे संयम भी न छोड़े ऐसेका मरण, (१३)गृद्धपृष्ट मरण–जो शस्त्रसे मरे, (१४) भक्तप्रत्याख्यान मरण–जो क्रम पूर्वक आहार पानी त्यागकर समाधिसे मरे, (१५) इंगिनी मरण– जो समाधिमरण करे, अन्यके पास वैय्यावृत्य न करावे स्वयं करे, (१६) प्रायोपगमन सन्यास मरण–ऐसा समाधिमरण जहां न दूसरेसे वैय्यावृत करावे न आप अपनी करे, ध्यानमें एकतान रहे (१७) केवली मरण–केवली अरहंतकी मुक्ति। (भ० ष्ट० ९)

सप्त नरक–धर्मा, वंशा, मेघा, व्यंजना, अरिष्टा, मघवी, माघवी। (त्रि० गा० १४५)

सप्तनय–नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ, एवंभूत देखो भिन्न २ शब्द " नय "

सप्त पंचाशत आस्रवद्वार–देखो " प्रत्यय "

सप्त परमस्थान–सज्जाति, सद्गृहस्थ, मुनि, इन्द्र, चक्रवर्ती, अर्हंत, निर्वाण। (गृ० अ० ४)

सप्त प्रतिक्रमण–दैवसिक, रात्रिक, ईर्यापथिक, पाक्षिक, चातुर्मासिक, सांवत्सरिक, उत्तमार्थ, (समाधिमरणके समय)

सप्त पृथ्वी–रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, वालुका प्रभा, पंक प्रभा, धूमप्रभा, तमःप्रभा, महातमः प्रभा ।

सप्त प्रसिद्ध व्यसनी–द्यूत रमणमें महाराज युधिष्ठिर, मांसाहारमें राजा बक, मद्यपानमें यदुवंशी कुमार, वेश्यामें सेठ चारुदत्त, चोरीमें शिवभूति ब्राह्मण, परस्त्रीमें रावण, शिकारमें ब्रह्मदत्त चक्री, इन सातोंने अपने जीवनमें ही घोर आपत्तियें भोगीं।
(सा० अ० २–१७)

सप्त भङ्ग, सप्त भङ्गी न्याय, सप्त भङ्गी वाणी–किसी पदार्थमें दो विरोधी अविधिक स्वभावोंको समझने समझानेकी रीति–जैसे हरएक पदार्थ अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे अस्तिरूप है तब ही उसमें पर द्रव्यादिका नास्तिक रूप है। अर्थात् जैसे जीव अपने जीवपनेसे है परन्तु अजीवपनेसे नहीं है अर्थात् जीवमें जीवपना है परन्तु अजीवपना नहीं है जब जीवमें अजीवपना नहीं मानेंगे तब ही जीवको जीव कह सकेंगे। अस्ति नास्ति दोनों स्वभाव अवश्य एक पदार्थमें एक ही समयमें रहते हैं। उन ही को समझानेके लिये सात नियम हैं।

(१) स्यात् अस्ति–पदार्थ अपने द्रव्यादिकी अपेक्षा है।

(२) स्यात् नास्ति–पदार्थ परद्रव्यादिकी अपेक्षा नहीं है अर्थात् परका अभाव है।

(३) स्यात् अस्ति नास्ति–किसी अपेक्षासे अर्थात् यदि दोनोंको विचार करे तो अस्ति नास्ति दोनों ही स्वभाव वस्तुमें है।

(४) स्यात् अवक्तव्य–किसी अपेक्षासे अर्थात् एक समयमें दोनों स्वभावोंको कहा नहीं जासक्ता, इस वचनकी असमर्थताकी अपेक्षा वस्तु अवक्तव्य है, कही नहीं जासक्ती।

(५) स्यात् अस्ति अवक्तव्य–यद्यपि अवक्तव्य है तथापि अपने द्रव्यादिसे है सद्रूप।

(६) स्यात् नास्ति अवक्तव्य–यद्यपि अवक्तव्य है तथापि पर द्रव्यादिसे नास्ति रूप है।

(७) स्यात् अस्ति नास्ति अवक्तव्य–यद्यपि एक समयमें कहनेकी अपेक्षा अवक्तव्य है तथापि अस्ति नास्ति दोनों स्वभावरूप है।

इसी तरह नित्य अनित्य एक अनेक आदि विरोधी स्वभावोंकी भी सिद्धि होसकेगी। देखो
(आप्त मीमांसा समन्तभद्राचार्य)

सप्तभंग तरंगिणी–सं० सटीक मुद्रित।

सप्त भय–इस लोक भय, परलोक भय, वेदना भय, मरण भय, अनरक्षा भय, अगुप्ति भय, अकस्मात् भय। देखो " भय "

सप्त मौन–व्रती श्रावकको सात जगह मौन रखना चाहिये–(१) भोजनपानके समय, (२) स्नान करते हुए, (३) मलमोचन (पिशाब–पाखाना) (४) मैथुन, (५) वमन, (६) (६) पूजन, (७) सामायिकके समय। (श्रा. द. १८९)

सप्तरत्न–नारायण या अर्धचक्रीके सातरत्न–असि, शंख, धनुष, चक्र, मणि, शक्ति, गदा।
(त्रि. सा. ८२१)

सप्तवर्षा–अवसर्पिणीके छठे कालके अन्तमें पवन, अत्यन्त शीत (पाला) क्षाररस, विष, कठोर आग, धूल, धुआं, ये सात तरहकी वर्षा प्रत्येक सात सात दिन होती है। [illegible] एक योजन (४००० कोस) तक नीचेसे भूमी जाती है। फिर उत्सर्पिणीके लगते ही सात सात दिन तक मेघोंसे जल, दूध, घी अमृत, आदि रसकी वर्षा होती है तब पृथ्वी [illegible] शोभित होती है। तब भी पहली ४९ दिनकी वर्षासे [illegible] [illegible] गुफाओं व [illegible] छिपे और [illegible] [illegible] आते हैं और सृष्टि शुरू होजाती है।
(त्रि० सा० ८६८–८७०)

सप्त व्यसन–जुआ, मांस, मदिरा, चोरी, शिकार, वेश्या, परस्त्री इन सात आदतोंका त्याग रखना।

सप्त शील–तीन गुण व्रत (दिग्विरति, देशविरति, अनर्थदण्ड विरति), चार शिक्षाव्रत (सामायिक, प्रोषधोपवास, भोगोपभोग परिमाण, अतिथि संविभाग)

सप्तशुद्धि–सामायिकके समय सात शुद्धि चाहिये क्षेत्र, काल, आसन, मन, वचन, काय, विनय।
(श्र. सं. पृ. १६१)

सप्त संधान काव्य–सं० एक श्लोकके सात अर्थ किये गये हैं।

सप्त समुद्घात–-वेदना, कषाय, वैक्रियिक, आहारक, तैजस, मारणांतिक, केवलि (देखो " समुद्घात ")

सप्त स्थान दान–(सप्त क्षेत्र दान) सात जगह दातार द्रव्यको खर्चे–(१) जिनेन्द्रपूजा प्रभावनाके लिये, (२) मंदिर व बिम्बप्रतिष्ठाके लिये, (३) तीर्थयात्रा व संघ चलानेके लिये, (४) पात्रदानमें मुनि, श्रावक व अविरत सम्यग्दृष्टि भक्तिपूर्वक औषधि, आहार, शास्त्र व अभय दानमें, (५) समदत्ति–समान पदधारी गृहस्थी स्त्री पुरुषोंकी धन वस्त्रादिकी सहायता, (६) दयादत्ति–दयासे दुःखित भुखितको चार प्रकार दान देना, (७) सर्वदत्ति सर्वत्याग त्यागी होजाना। (श्रा. पृ. १९९) अथवा सात स्थान–मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका, प्रतिमा, मंदिर, शास्त्र, इनकी सेवामें धन खरचे। (सा० अ० २–७३)

सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति–जो एक जीव स्वामीवाली वनस्पति साधारण स्वामीवाली वनस्पति सहित हो देखो " सप्रतिष्ठित प्रत्येक " " अनंतकाय "

समचतुरस्र संस्थान–नामकर्म–जिसके उदयसे शरीरका आकार सुडौल ऊपर नीचे व बीचमें समभागसे बने। (जै० सि० प्र० पृ० ३८९)

समदत्ति–समान पदधारी गृहस्थ स्त्री पुरुषोंके वस्त्र, अन्न धनादि देना।

समधारा–दो दोकी संख्यासे बढ़ती हुई संख्याकी धारा केवलज्ञानके अविभाग प्रतिच्छेदों तक जैसे २, ४, ६, ८, १०, १२ आदि। (त्रि. गा. ५५)

समन्तभद्र–स्वामी–आचार्य (वि. सं १२५) गंधहस्ति महाभाष्य, देवागम स्तोत्र, जिनसत्तालंकार, विजयधवल टीका, तत्वानुशासन, युक्त्यनुशासन, स्वयंभूस्तोत्र, रत्नकरण्डश्रा० व जिन शतक आदिके कर्ता। (दि० ग्र० नं० ३१८) काशीके राजा शिवकोटिको जैनी बनानेवाले जो शिवकोटि मुनि हुए व जिन्होंने भगवती आराधना लिखी।
(दि० ग्रन्थ नं० ३१०)
(द्वि०) आष्टसहस्री विषमपद व्याख्या, चिंतामणि व्याकरण टिप्पणीके कर्ता। (दि. ग्रं. नं. ३१९)

समभाव–समता, वीतरागता।

समनस्क–मनवाले सैनी जीव जो शिक्षा, संकेत गृहण कर सकें, कारण कार्य विचार सकें, तर्क करसकें।

समन्तानुपात–१४ वीं क्रिया आस्रवकी मानव व पशुओंके स्थानोंमें मलमूत्र करना।
(सर्वा. अ. ६–५)

समभिरूढ़ नय–लिंगादिका भेद न होनेपर भी पर्याय शब्दके भेदसे जो पदार्थका भेदरूप ग्रहण करे जैसे–इन्द्र, शक्र, पुरन्द्र ये तीनों एक ही लिंगके पर्याय शब्द इन्द्रके वाचक हैं। यह नय देवराजको हीनरूप ग्रहण करती है। (जै० सि० प्र० नं० ९९); अथवा एक शब्दके अनेक अर्थ होते हैं उनमेंसे एक अर्थको लेकर किसी पदार्थको व्यवहार करना जैसे गौ शब्दके वचन आदि कई अर्थ होते हैं तौ भी गौ पशुके लिये व्यवहार करना समभिरूढ़ नयसे है। शब्दार्थ चलनेवालीके हैं। तथापि सोती, बैठती, खाती सर्व दशामें भी गौ शब्द प्रयोग करना समभिरूढ़ नयसे है।
(सर्वा. अ. १–३३)

समय–काल, आगम, पदार्थ, आत्मा " सम एकत्वेन अयति परिणमति जानाति इति आत्मा "

स्फटिकमणिमई है। इसके द्वारोंपर कल्पवासी देव द्वारपालवत खड़े रहते हैं। फिर आगे लतागृह आदि रहते हैं। अनेक स्तूपादि होते हैं। इसीके भीतर मध्यमें तीन पीठपर श्री मंडप होता है। बीचमें गंध-कुटी उसके चारों तरफ १२ सभा होती है, जिनमें क्रमसे इस तरह बैठकें होती हैं नं० १ में मुनिगण (२) कल्पवासी देवी। (३) आर्यकाएँ, (४) ज्योतिषी देवी, (५) व्यन्तर देवी, (६) भवनवासी देवी, (७) भवनवासी देव, (८) व्यन्तर देव, (९) ज्योतिषी देव, (१०) कल्पवासी देव, (११) मनुष्य, (१२) पशु, ये चारों तरफ होती हैं।

(देखो ह० पु० ५९९-१५ व सर्ग ५)

समवसरण व्रत—२० उपवास १० मास तक हरएक सुदी व वदी चौदसको करें।

(कि० क्रि० पृ० २११)

समवसरण स्तवन—विष्णुसेन कृत सं० मुद्रित। माणिकचन्द ग्रन्थमाला नं० २१।

समवाय—समूह, तादात्म्य, न छूटनेवाला।

समवायांग—द्वादशांग वाणीका चौथा अंग जिसमें द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी अपेक्षा समानताका कथन है। जैसे द्रव्य अपेक्षा धर्म अधर्म समान है। मुक्त जीव सब समान हैं। क्षेत्रापेक्षा नरकका पहला इन्द्रकबिला सीमन्त, ढाई द्वीप, प्रथम स्वर्गका पहला विमान, सिद्धशिला व सिद्ध क्षेत्र समान आकारधारी हैं। इत्यादि, इसके १६४००० मध्यमपद हैं।

समाचार—मुनियोंका चारित्र; रागद्वेषका अभाव रूप समताभाव; अतिचार रहित मूल गुण व उत्तर गुण पालन, प्रमत्तादि सर्व मुनियोंका समान आचार सर्व क्षेत्रोंमें समान आचार। इसके दो भेद हैं। औधिक पदविभागिक। औधिकके १० भेद हैं—

(१) इच्छाकार—व्रतोंमें इच्छासे प्रवर्तना, (२) मिथ्याकार—दोष लगनेपर उनको दूर करना, (३) तथाकार—सूत्रका अर्थ यथार्थ प्रेम सहित ग्रहण करना, (४) आसिका—रहनेकी जगहसे जाते हुए वहांके स्वामी देवता व गृहस्थसे पूछकर जाना, (५) निषेधिका—किसी स्थानमें ठहरते हुए वहांके स्वामीसे पूछकर प्रवेश करना, (६) आपृच्छा—नवीन पठनादि कार्य प्रारम्भ करते हुए गुरुसे पूछना, (७) प्रतिपृच्छा—साधर्मी व दीक्षा गुरुसे शास्त्रादि पहले दिये हुए थे उनको फिरसे लेनेके अभिप्रायसे पूछना, (८) छन्दन—दिये हुए पुस्तकादिको देनेवालेके अनुकूल सम्हालके रखना, (९) निमंत्रणा—किसी शास्त्रादिको सत्कारपूर्वक याचना, (१०) उपसंयत्—गुरुकुलमें अनुकूल आचरण करना। पदविभागी वह है जो सूर्योदयसे लेकर दिनरातमें समय विभागसे नियमसे आचरण करना। गुरुसे पूछकर जाना आना आदि। (मू.गा. १२३-१३०)

समादान क्रिया—अपने नियमोंमें शिथिल होनेका भाव। (सर्वा० अ० ६-५)

समादेश दोष—मुनिके आहार सम्बन्धी उत्पादन दोषमें ऐसा विचार करना कि आज हमारे यहां निर्ग्रंथ साधु जितने पधारेंगे सबको आहार देंगे, इस उद्देश्यसे बनाया हुआ भोजन। (म० प० १०३)

समाधिगुप्त—भरतके आगामी उत्सर्पिणीके १८वें तीर्थंकर। (त्रि० गा० ८७३)

समाधिमरण—उपसर्ग पड़नेपर, दुर्भिक्ष होनेपर, जरा होनेपर, असाध्य रोग होनेपर इत्यादि मरणके कारणोंके उपस्थित होनेपर धर्मकी रक्षा करते हुए आहारपान घटाकर या त्यागकर समताभावसे प्राण त्यागना। इसे श्रावक भी करते हैं। जहां कषाय घटाई जाय वह सल्लेखना या समाधिमरण है। सर्वसे क्षमा कराके स्नेह छोड़के नियमित आसनपर बैठे या लेटे धर्मध्यानमें आसक्त रहे। जो समय अधिककी शंका हो तो आहारपान थोड़ी थोड़ी देरतकका त्यागे। साधर्मीकी संगति रक्खे, धर्मचर्चा ही निकट हो, कोई रोवे व सांसारिक बातें न करें।

(गृ० अ० २१)

समाधिमरण अतीचार—समाधिमरण करनेवाला श्रावक पांच दोष बचावे—१ जीविताशंसा—अधिक

जीनेकी वांछा, २ मरणाशंसा-जल्दी मरनेकी चाह, ३ मित्रानुराग-मित्रोंसे प्रेमभाव, ४ सुखानुबन्ध-पिछले इंद्रिय सुखोंकी याद, निदान-आगेके लिये भोगोंकी इच्छा। (सर्वा० अ० ७-३७)

समाधिशतक-सं० पूज्यपाद कृत, भाषा ब्र० सीतलप्रसाद कृत मुद्रित।

समानदत्ति-देखो "समदत्ति"

समाहारा-रुचकगिरिपर दक्षिण दिशाके कूट रत्नपर वास करनेवाली देवी (त्रि. गा. ९९०)

समित्-इन्द्रोंकी तीन सभामें पहली सभा। (त्रि. २२९)

समाहित-ध्यान लीन।

समिति-परिषद, सभा, भलेप्रकार दयापूर्वक व्यवहार करना, साधुके चारित्रमें पांच समिति हैं-

(१) ईर्या-चार हाथ भूमि देखकर प्राशुक स्थानपर दिनमें प्रकाशमें चलना, (२) भाषा-पर पीड़ाकारी वचन, कठोर वचन बोलना, (३) एषणा-शुद्ध भोजन लेना, (४) आदान निक्षेप-देखकर रखना उठाना, (५) उत्सर्ग-निर्जंतु भूमिपर मल, मूत्रादि त्यागना (सर्वा० अ० ९-५)

समुच्छिन्नक्रिया प्रतिपात-(व्युपरत क्रिया निवर्ति)-चौथा शुक्लध्यान जहां योग बिलकुल नहीं होता है। १४ वें गुणस्थानमें सर्व कर्मनाशक है। (भ. ए. ९४८) (सर्वा० अ० ९-४०)

समुद्देश दोप-आज हमारे यहां जो पाखण्डी आवेंगे उन सबको भोजन देंगे। ऐसे उद्देशसे किया भोजन साधुको योग्य नहीं। (म० ए० १०२)

समुद्घात-मूल शरीरको न छोड़कर कार्मण और तैजस शरीर सहित जीवके प्रदेशोंका मूल शरीरसे फैलकर बाहर निकलना, फिर पीछे उसीमें समा जाना। इसके सात भेद हैं—

(१) वेदना-पीड़ाके कारण प्रदेश निकलें, (२) कषाय-क्रोधादि कषायसे निकलें। इन दोनोंमें जीवके प्रदेश एक ही तरफ़ लेकर [illegible] मूल शरीरसे तिगुने चौड़े फैलें, लेकिन मूल शरीर प्रमाण ही लें। इसका घनफल मूल शरीरसे नौगुणा उत्कृष्ट क्षेत्र है। (३) वैक्रियिक-विक्रियाके निमित्तसे प्रदेशोंका निकलना। देव व भोगभूमि जीव पृथक् व अपृथक् दोनों विक्रिया करते हैं, नारकी अपृथक् करते हैं। अनेक शरीर बनाकर प्रदेश फैलना सो पृथक् है। एक ही शरीरका अनेक रूप होना सो अपृथक् है, (४) मरणांतिक-मरण होनेके पहले नवीन पर्यायके धरनेके क्षेत्र पर्यंत प्रदेश फैलें, फिर संकुचित होजावें तब मरे। (५) तैजस-मुनिके शरीरसे शुभ तैजस सहित प्रदेश फैलें तो रोगादि मिटावें। अशुभ तैजस सहित फैलें तो नगरादि जलावे। (६) आहारक-प्रमत्त गुणस्थान वर्ती मुनिके आहारक शरीरके साथ फैलना, शंकादि दूर करनेको शरीर जाता है। (७) केवली-१३ वें गुणस्थानवर्ती केवलीके दण्डकपा-टादिरूप प्रदेश फैलना व संकुचना। आहारक और मारणांतिक नियमसे एक दिशाको ही जाते हैं। इनकी चौड़ाई कम लम्बाई बहुत है। शेष पांच दशोंदिशाओंमें फैलते हैं।

(गो० जी० गा० ५४३-६६७-६६८)

समुद्र-मध्य लोकमें असंख्यात द्वीप व उनके चारों तरफ समुद्र हैं देखो "तिर्यक् लोक" लवण समुद्रके जलका स्वाद निमकीन है। वारुणीवर मदिरावत्, क्षीरवर दुग्धवत्, घृतवर घृतवत् स्वाद, कालोदक, पुष्कर, स्वयंभूरमण जलवत्, शेष असंख्यात समुद्रोंके जलका स्वाद इक्षुरसवत् है। जलचर जीव व विकलत्रय लवण, कालोद व स्वयंभूरमण इनके समुद्रमें ही हैं। यहां कर्मभूमि है। अन्य समुद्रोंमें जलचर जीवरहित हैं। भोगभूमिके समान हैं, [illegible] हैं। लवण समुद्रमें जहां नदी मिली है वहां किनारेपर [illegible] लम्बे १८ योजन लम्बी मछलियें हैं। [illegible] नदी [illegible] १८ योजन लम्बी व [illegible] ९ योजन चौड़ी [illegible] है। स्वयंभूरमणमें जीवोंके ५०० योजन व [illegible] १००० योजन लम्बी [illegible] है। [illegible]

४ कोस) (त्रि॰ गा॰ ३०७-३१९ ३२०-३२१)

समुद्रोंके अंतमें भीतिके समान वेदिका है। लवण समुद्रके चार तरफ वज्रमई अनेक शिषा रहित रत्नमय कोट है। चार द्वार हैं, नीचे १२ योजन चौडा ऊपर ४ योजन चौडा, ऊंचा ८ योजन है, दो कोशकी नीव है। (त्रि॰ गा॰ ८८९-६) सर्व समुद्रोंकी गहराई १००० योजनसे अधिक नहीं है। (त्रि गा॰ ९२७)

सम्पतराय-पं॰, ज्ञान सूर्योदय नाटक छन्दके कर्ता। (दि॰ ग्रन्थ नं॰ १४०)

सम्भव-ज्योतिषके ८८ ग्रहोंमें ४८ वां ग्रह। (त्रि॰ गा॰ ३६७)

संभवनाथ-वर्तमान भरतके तीसरे तीर्थंकर श्रावस्तीके इक्ष्वाकुवंशी राजा जितारि सैना माताके पुत्र, ६० लाख पूर्व आयुधारी, अश्वचिह्न, दीर्घकाल राज्य करके फिर साधु हो सम्मेदशिखरसे मुक्त हुए।

सम्भ्रान्त-प्रथम नरकका छठां इन्द्रक विला। (त्रि॰ गा॰ १५४)

समैया जैनी-दि॰ जैनोंमें एक समाज जो शास्त्रोंको मानती है परन्तु प्रतिमा नहीं पूजती है। तारणस्वामी ब्रह्मचारी १५ वीं शताब्दीमें उनके गुरु हुए हैं। मध्यप्रांत सागर होशंगाबाद आदिमें इनके घर हैं। वासोदाके पास सेमरखेडीमें गुरुका तपस्थान है।

सम्मति सत्य-जो बात बहुत जन मान्य हो उसे कहना जैसे किसी स्त्रीको देवीजी पुकारना। देखो "सत्य वचन"।

सम्मूर्छन जन्म-गर्भ व उपपाद जन्मके सिवाय सर्व संसारी जीवोंका जन्म शरीरके आकार परिणमन योग्य पुद्गल स्कंधोंका स्वयं संगठित होकर प्रगट हो जाना सो सम्मूर्छन जन्म है। एकेन्द्रीसे लेकर चौंद्रिय तक व लब्ध्यपर्याप्तक पंचेंद्रिय तिर्यंच व मनुष्य व कुछ पंचेंद्रिय तिर्यंच सम्मूर्छन जन्मधारी हैं। (गो॰ जी॰ गा॰ ८३-८४)

सम्मूर्च्छन जीव-जो सम्मूर्छन जन्मसे पैदा हो।

सम्मेदशिखर-विहार प्रांतके हजारीबाग जिलेमें ईसरी स्टेशनसे १९ मील व ग्रीडो स्टेशनसे १९ मील बहुत ऊंचा पर्वत है। नीचे मधुबन है। पर्वत ६००० फुट ऊंचा है। यह बात जैनियोंको सर्वमान्य है कि भरतके सर्व ही तीर्थंकर अनादिसे अनंत कालतक इसी पर्वतसे मोक्ष जाते हैं। इस हुंडावसर्पिणी कालके कारण वर्तमानमें २० ही तीर्थंकर मोक्ष गए, शेष चार अन्यत्रसे गए। पर्वतपर चरणचिन्ह हैं, नीचे मंदिर व धर्मशाला है। (या॰ द॰ पृ॰ २११)

सम्मेदाचल-सम्मेदशिखर।

सम्यक्चारित्र-सम्यग्दर्शन सहित चारित्र। संसारके कारणोंको दूर करनेके लिये सम्यग्ज्ञानी जीवका कर्मोंके बन्धके कारणोंसे विरक्त होना सम्यग्चारित्र है। (सर्वा॰ अ॰ १-१); सम्पूर्ण साधुके व एक देश गृहस्थके होता है। रागद्वेषको दूरकर समभावमें जमना।

सम्यग्दर्शन (सम्यक्त)-जीवादि प्रयोजनभूत पदार्थोंका यथार्थ श्रद्धान करना। वे तत्व सात हैं-जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष। यह व्यवहार सम्यक्त है या यथार्थ वीतराग सर्वज्ञ देव, निर्ग्रन्थ गुरु, व जिनवाणीका श्रद्धान करना व्यवहार सम्यक्त है। व्यवहारके आलम्बनसे व अंतरंगमें अनंतानुबंधी कषाय व दर्शन मोहके उपशम, क्षय, क्षयोपशमसे जो आत्मानुभव सहित आत्मप्रतीति हो वह निश्चय सम्यग्दर्शन है। आत्मामें तल्लीन महात्माके वीतराग सम्यक्त है। अन्य अवसरपर सराग सम्यक्त है। उसके बाहरी लक्षण हैं १ प्रशम-शांतभाव, २ संवेग-धर्मप्रेम व संसारसे वैराग्य, ३ अनुकंपा-प्राणी मात्रपर दया, ४ आस्तिक्य-तत्वमें विश्वास। (सर्वा॰ अ॰ १-२)

सम्यक्त भेद-(१) औपशमिक-जो अनंतानुबंधी चार कषाय व दर्शन मोह कर्मके उपशमसे हो, (२) क्षायिक-जो इन्हींके क्षयसे हो, (३) क्षायोपशमिक-जिसमें सम्यक्का उपशम या क्षय हो परन्तु

सम्यक्त प्रकृतिका उदय हो जो चल मल अगाढ़ दोष पैदा करे ।

सम्यग्दृष्टी–जो जीव सम्यग्दर्शन सहित हो ।

सम्यक्त प्रकृति–दर्शन मोहकी तीसरी प्रकृति जिसके उदयसे सम्यग्दर्शन निर्मल न रहे । उसमें अतीचार लगे । (सर्वा० अ० ८–९)

सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति–दर्शन मोहकी दूसरी प्रकृति जिसके उदयसे यथार्थ व मिथ्या दोनों प्रकारका मिश्रित श्रद्धान हो । (सर्वा०अ० ८–९)

सम्यग्ज्ञान–सम्यग्दर्शन सहित ज्ञान, जिस ज्ञानमें संशय, विपर्यय, अनध्यवसाय (कुछ होगा) यह तीन दोष न हों । अपने व अपूर्व पदार्थको निश्चय करानेवाला ज्ञान (न्यायकी दृष्टिसे) मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय, केवल इसके पांच भेद हैं ।

सम्यग्ज्ञानी–सम्यग्दर्शनसहित जीव ।

सम्यक्ती–सम्यग्दर्शनधारी मानवमें ४८ मूल गुण व १९ उत्तर गुण होंगे । २५ मलदोष रहित पना, + ८ संवेगादि लक्षण + ७ भय रहितपना + ३ शल्यरहित पना + ५ अतीचार रहित पना= ४८ । ७ व्यसन त्याग + ५ उदुम्बर फल त्याग + ३मदिरा मांस मधु (मकार) त्याग=१९ उत्तर गुण, देखो पंचविंशति दोष, व प्र. जि.श. १३-२

सम्यक्त क्रिया–आश्रवकी २५ क्रियाओंमें पहली । मंदिर प्रतिमा गुरु शास्त्रकी भक्ति करना । (सर्वा० अ० ६–५)

सम्यक्त गुण–आत्माका एक गुण जिसके प्रगट होनेपर नियमसे आत्मानुभूति व आनन्दका प्रकाश होता है। इसको दर्शन मोह व अनन्तानुबन्धी कषायने रोक दिया है ।

सम्यक्त मार्गणा–६ प्रकार है, इनमेंसे किसीन संसारी जीवोंको ढूंढा जावे तो कोई किसी न किसी सम्यक्तोंमेंसे किसी एकमें मिलेंगे । (१) मिथ्यात्व, (२) सासादन, (३) मिश्र, (४) उपशम सम्यक्त, (५) क्षयोपशम सम्यक्त, (६) क्षायिक सम्यक्त ।

सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थान–देखो "मिश्र गुणस्थान" ।

सयोग केवलजिन गुणस्थान–१३ वें गुणस्थानमें अरहंत परमात्मा जो अनंतदर्शन, अनंतज्ञान, अनंतसुख, अनंतवीर्यके धारक हैं, परमौदारिक देहमें विराजित हैं, उपदेश व विहार होता है, इनके योग सहित हैं ।

सरस्वती–गंधर्व व्यंतरोंके इन्द्र गीतरतिकी वल्लभिका देवी (त्रि. गा. २६४); अकृत्रिम जिन-प्रतिमाके निकट सरस्वतीकी मूर्ति (त्रि. ९८०)

सरःशोष–तालावका पानी सुखाना, ऐसा व्यापार करना । (सा. अ० ५–२१–२२–२३)

सराग संयम–राग सहित मुनिका चारित्र । छठे गुणस्थानमें, क्षयोपशमिक चारित्र भी कहते हैं जहां संज्वलन कषाय व नौ नोकषायका यथासंभव उदय होता है । (सर्वा० अ० २–५)

सरित–विदेहके ३२ देशोंमें सीतोदा नदीके दक्षिण तटपर आठवां देश । (त्रि. गा. ६८९)

सर्व गंध–नौमा अरुण समुद्रका नायक व्यंतर देव । (त्रि० गा० ९६६)

सर्वतोभद्रव्रत–इसमें ७५ उपवास व पारणा २५ होती हैं–१ उपवास १ पारणा + [illegible]

उपवास, बीच बीचमें एक २ पारणा २५, होंगे । (कि० [illegible])

सर्वतोभद्र कुंभ–[illegible]

[illegible]

सर्व घातिया प्रकृति–२१ हैं–केवलज्ञानावरण १, केवलदर्शनावरण १, निद्रा ५, मोहनीयकी १४ (अनंतानुबंधी ४ अप्र० ४, प्र० ४, मिथ्यात्व मिश्र) ।

([illegible])

सर्व घाति स्पर्द्धक—सर्व घातिया कर्मकी वर्गणाओंके समूह।

सर्वज्ञ देव—अनन्त ज्ञानधारी अर्हत व सिद्ध भगवान।

सर्वधारा—१ से लगाकर केवल ज्ञान पर्यंतके सर्वस्थान। जैसे १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०, ११, १२, १३, १४, १५।
(त्रि. गा. ५३)

सर्वार्थिका—रत्नप्रभा पहली पृथ्वीके खर भागमें १६ पृथ्वीयोंमेंसे १४ वीं पृथ्वी १००० योजन मोटी जहां भवनवासी व व्यन्तरदेव वसते हैं।
(त्रि० गा १४८)

सर्व सुखराय—पं० (सं० १९६) समवसरण पूजाके कर्ता। (दि० ग्रं० नं० १५०)

सर्वसैन कवि—यशोधर चरित्रके कर्ता।
(दि० ग्रन्थ नं० ३१६)

सर्व संक्रमण—किसी कर्म द्रव्यका अन्तिम भागका अन्य प्रकृतिरूप होजाना।
(गो० क० गा० ४१३)

सर्वार्थी—ज्योतिषके ८८ ग्रहोंमें ४९ वां ग्रह।
(त्रि० गा० ४६७)

सर्वार्थसिद्ध ग्रन्थ—तत्वार्थ सूत्रपर श्री पूज्यपाद स्वामी कृत सं० टीका। भाषा पं० जयचन्द, व जगरूपसहाय वकील कृत, सब मुद्रित हैं।

सर्वार्थसिद्धि व्रत—कार्तिक सुदी अष्टमीसे आठ उपवास करे, आदि अन्त एकासन करे।
(क्रि० क्रि० पृ० ११४)

सर्वार्थसिद्धि विमान—पांच अनुत्तरमें मध्यका इन्द्रक जहांके अहमिन्द्र सब ३३ सागर आयुधारी होते हैं व एक मनुष्यका भव लेकर मोक्ष जाते हैं। यहांसे सिद्ध शिला १२ योजन ऊँची है।
(त्रि० गा० ४६९—४७०)

सर्वावधि—पूर्ण अवधिज्ञान।

सर्वभद्र—यक्ष व्यन्तरोंका सातवां प्रकार।
(त्रि० गा० २६९)

सर्वरक्षित—लौकांतिक देवोंका अंतरालका एक कुल। (त्रि० गा० ५३८)

सर्वश्री—भरतके वर्तमान पंचम कालके अंतमें आर्यिकाका नाम। (त्रि० गा० ८५८)

सर्वात्मभूत—भरतके आगामी उत्सर्पिणी कालमें पांचवें तीर्थंकर। (त्रि० गा० ८७३)

सर्व रत्न—रुचक पर्वतकी उत्तर दिशामें आठवां कूट जिसपर श्रीदेवी वसती हैं। (त्रि.गा. ९५४)

सर्व सेना—व्यन्तरोंके १६ इन्द्र सम्बन्धी महत्तरीदेवी। (त्रि० गा० २७७)

सर्वाह्ण—अकृत्रिम प्रतिमाके निकट यक्षकी प्रतिमा। (त्रि० गा० ९८८)

सविकल्प—साकार ज्ञान; चिन्तवन।

सविचार भक्त प्रत्याख्यान मरण—जहां मरणका निश्चय नहीं होय, वहां विचार सहित धीरे धीरे आहार पानका त्याग करते हुए समाधिमरण करना। (भ० पृ० २४)

सविचार समाधिमरण—चारित्रको हानि पहुंचानेवाला बुढ़ापा, दृष्टिमंद, असाध्य रोग हो पगोंसे चला न जावे वहां चार प्रकार आहार धीरे२ त्याग कर मरण करना। (श्रा० पृ० ३३४)

सविपाक निर्जरा—चारों गतिके जीवोंके शुभ अशुभ कर्मोंका अपने समयपर उदय आकर झड़ना (सर्वा० अ० ८—२३)

सर्वस्वरूप—जो जगतके सर्वस्वभावोंको रखनेवालाहो।

सशल्यमरण—माया, मिथ्या, निदान इनमेंसे किसी शल्य सहित मरना। (भ० पृ० ११)

ससिक्थ—भातके कण सहित पेय पदार्थ मांड या खीर आदि। (सा० अ० ८ ५७)

सहचर—जो साथ साथ रहें, जैसे जहां रूप है वहां रस व गंध भी है। जैसे वह आत्मा गंधवान है क्योंकि रूपवान है।

सहभावी विशेष—(पर्याय) गुण जो वस्तुके सर्व प्रदेशोंमें व उसकी सर्व अवस्थाओंमें साथ साथ रहता है। (जै० सि० प्र० ५८)

सहसा निक्षेपाधिकरण–यकायक जल्दीसे किसी वस्तुको रख देना, यह आस्रवका आधार है। (सर्वा० अ० ६–९)

सहज विपर्याय–आत्मज्ञानमें उल्टा समझना।

सहस्रकीर्ति–त्रिलोकसार टीका, धर्म शर्माभ्युदय टीका, त्रिलोकपूजाके कर्ता। (दि० ग्रं० नं० २९७)

सहस्रार इन्द्र–१२वें स्वर्गका इन्द्र।

सहस्रार स्वर्ग–१२ वां स्वर्ग।

सक्षय अनन्त–जघन्य अनन्तानंत प्रमाणके ऊपर आकर अनंतानंतका एक मध्यम भेद तक राशि सक्षम अनंत कहलाती है, क्योंकि प्रमाणमें आ सक्ती है। (सि० द० पृ० ६८) इसके आगे अक्षय अनंत हैं।

संकल्प मंत्र–तीनों काल संध्या करनेकी प्रतिज्ञाका मंत्र, सवेरे करे तो सर्वान्हिक, दोपहरको करे तो माध्यान्हिक व सायंकालको करे तो अपरान्हिक शब्द लगावे। मंत्र है–"मम समस्तपापक्षयार्थं आयुरारोग्यैश्वर्याभिवृध्यर्थं शुध्यर्थं पौर्वाह्णिकसंध्यावन्दनं करिष्ये।" (कि० का० १४)

संकल्पी हिंसा–हिंसा दो प्रकारकी है। एक संकल्पी जो हिंसाके विचारसे कि मैं अमुक जीवको मारूंगा की जाती है, इसमें न्यायपूर्वक कोई आरंभ हेतु नहीं होता है। जैसे शिकारमें, धर्मके नामसे पशु वधमें, मांसाहारके लिये कीजाती है। २ आरंभी जो असि, मसि, कृषि, वाणिज्य, शिल्प, विद्या, आजीविकाके न्यायपूर्वक कार्योंमें व गृहारंभमें व देश व धर्मरक्षार्थ युद्धादि करनेमें होती है, वह आरंभी है। अणुव्रती गृहस्थ संकल्पी हिंसाको नियमसे त्यागता है। (मा० अ० ३–८१–८२)

संक्रमण–किसी कर्मके द्रव्यका अन्य सजातीय प्रकृतिरूप बदलना। (जै. सि. प्र. नं० ३८७)

संक्षेप–मुरादाबाद (यो. पी. प्रा. १) [illegible] मध्यस्थ–दोनों आदि [illegible] (देखो भ० जि० जैन [illegible] पृ० ९०)

संख्यात गुणवृद्धि–किसी संख्याका संख्यात गुणा किसीमें बढ़ाना।

संख्यात गुणहानि–किसी संख्याका संख्यात गुणा किसीमें घटाना।

संख्यात भाग वृद्धि–किसी संख्याका संख्यात भाग किसीमें बढ़ाना।

संख्यात भाग हानि–किसी संख्याका संख्यात भाग किसीमें घटाना।

संख्यामान–एक दो आदि गणना।

संग्रहनय–अपनी जातिका विरोध न करके अनेक विषयोंका एक पनेसे जो ग्रहण करे। जैसे जीव उपयोगवान है, ऐसा कहनेसे सर्व जीव आ गए। (जै० सि० प्र० नं० ९४)

संघ–मुनि समूहमें पांच भेद हैं–(१) आचार्य–दीक्षादाता गुरु, (२) उपाध्याय–धर्मशास्त्रका पाठक, (३) प्रवर्तक–जो साधुओंको चारित्रमें चलावें, (४) स्थविर–जो अनुभवी साधु प्राचीन मर्यादाको बतावें, (५) गणधर–जो मुनिगणका रक्षक हो; ऋषि, मुनि, यति, अनगार चार प्रकार मुनिसंघ। (मू० गा० १५५) (सर्वा० अ० ९–२४)

संघात नाम कर्म–जिसके उदयसे औदारिक आदि पांच शरीर योग्य परमाणु परस्पर छिद्ररहित मिल जावें। (सर्वा० अ० ८–११)

संघात श्रुतज्ञान–पद समासज्ञानके ऊपर भेद [illegible] एक [illegible] संघात श्रुतज्ञान है। [illegible] ([illegible])

संजयन्त–[illegible] ([illegible])

संज्वलन कषाय–[illegible]

संभावना सत्य–[illegible] ([illegible])

संयम–सं अर्थात् भलेप्रकार यम अर्थात् नियम करना व अपनेको वश रखना सो संयम है।

यह पांच प्रकार है। अहिंसादि पांच व्रत पालना, ईर्यादि पांच समिति पालना, चार क्रोधादि कषाय रोकना, मन, वचन, कायकी प्रवृत्ति त्याग करना, पांच इन्द्रियोंको जीतना।

(गो० जी० का० गा० ४६५)

संयम मार्गणा–संसारी जीवोंको संयममें ढूंढ़ा जाय तब संयमके सात भेद हैं। असंयम–संयम न होना। यह चार गुणस्थान तक है। देश संयम या संयमा–संयम–पंचम गुणस्थानीका संयम, ३ सामायिक, ४ छेदोपस्थापना, ५ परिहारविशुद्धि, ६ सूक्ष्म सांपराय, ७ यथाख्यात संयम (ये सब संयम छठेसे होते हैं।) परिहार विशुद्धि ७ वें तक, सामायिक, छेदोपस्थापना नौमें तक, सूक्ष्मसांपराय १० वें तक, फिर ११ वे से १४ तक यथाख्यात संयम रहता है।

(गो० जी० का० गा० ४६६)

संयमासंयम–देश संयम, जहां संकल्पी त्रस हिंसाका त्याग है। कुछ संयम है कुछ असंयम है पूर्ण त्याग नहीं है। इसमें ५ अणुव्रत, ३ गुणव्रत, ४ शिक्षाव्रत होते हैं व दर्शनव्रत आदि ११ प्रतिमाएं होती हैं। देखो "एकादश प्रतिमा"।

(गो० जी० गा० ४७६–४७७)

संयमी–संयमको पालनेवाले साधुगण।

संयोगवाद–एक तरहका एकांतमत जो ऐसा मानते हैं कि संयोगसे ही जगतमें काम होते हैं। जैसे अंधोंके कंधेपर चढ़के पांगला चलता है।

(गो. क. गा. ८९८)

संयोगाधिकरण–भोजनमें पीनेकी वस्तु मिलाना या गर्म उपकरणमें ठंढी वस्तु रखना ऐसे इसके भक्तपान संयोग व उपकरण संयोग दो भेद हैं। यह आश्रवके लिये अजीव आधार है। (सर्वा. अ. ६–९)

संयोजना दोष–जो वस्तिका भोगी व असंयमी पुरुषोंके मकान व बागसे मिल रही हो उसमें ठहरना (म. ष. ९६); शीतल भोजनमें उष्ण जल मिलाना व उष्ण भोजनमें शीतजल मिलाना इत्यादि परस्पर विरुद्ध वस्तु मिलाकर भोजन देना।

(भ. १११)

सराग सम्यक्त–आत्मप्रतीतिमें कषायके तीव्र उदयसे धर्मानुराग हो।

सराग संयम–धर्मानुराग सहित संयम।

संरंम्भ–किसी कार्य करनेका दृढ़ संकल्प करना।

(सर्वा० अ० ६–८)

संवर–कर्मके आश्रवके कारणोंको रोकना। आश्रवके कारण मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय योग हैं। उनको क्रमसे सम्यग्दर्शन, व्रत, अप्रमत्तभाव, वीतरागता व मन, वचन, कायकी गुप्तिसे रोकना।

(सर्वा० अ० ९–१)

संवर भावना (अनुप्रेक्षा) यह वारवार चिन्तवन करना कि मेरे कर्मोंका संवर कैसे हो।

(सर्वा० अ० ९–७)

संवृत योनि–ढकी हुई योनि या उत्पत्तिकी जगह। (सर्वा० अ० २–३२)

संवरतक–अवसर्पिणीके छठे कालके अंतमें बड़ा तेज तूफान जिससे पर्वत, पृथ्वी आदि चूर्ण हो जाता है व प्राणी मरते हैं या मूर्छित होते हैं व भागते हैं। (त्रि० गा० ८८४)

संवाह–जो नगर उपसमुद्रकी खाड़ीसे वेष्टित हो। (त्रि० गा० ६७६)

संवेग–धर्मानुराग, संसार शरीर भोगोंसे वैराग्य (सर्वा.अ. ६–२४, षोडशकारण भावनामें पांचमी।

संवेदिनी कथा–धर्मानुराग बढ़ानेवाली कथा।

संशय मिथ्यात्व–आत्मा नित्य है या अनित्य है ऐसा संशयरूप श्रद्धान। (सर्वा० अ० ८–१)

संशयवचनी भाषा–अनुभव वचनका सातवां भेद, जैसे कहना कि यह बगलेकी पंक्ति है या ध्वजा है। (गो० जी० गा० २२५)

संशयवदन विदारण–सं० हस्तलिखित मुद्रित।

संसक्त मुनि–जो मुनि असंयमीके गुणोंमें

आसक्त हो, आहारका लम्पटी हो, वैद्यक ज्योतिषका करनेवाला हो, मंत्रतंत्रादि करे, राजाकी सेवा करे वह निर्ग्रंथ साधु भी भ्रष्ट संसक्त मुनि है। (म० प्र० १३९)

सप्तगंध—नौमे अरुण समुद्रका स्वामी व्यंतरदेव। (त्रि० गा० ९६९)

संसार—चार गतिमें भ्रमण।

संसार चक्रपाल—संसारकी गतियोंमें भ्रमण।

संसार भावना—(अनुप्रेक्षा)—चार गतिरूप संसार दुःखमय है, कहीं जीवको सुखशांति नहीं है, ऐसा विचारना। बारह भावनामें तीसरी भावना (सर्वा० अ० ९-७)

संसार भ्रमण—चार गति व द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, भाव पंच परिवर्तनमें भ्रमण। देखो "पंचपरिवर्तन"।

संसारी जीव—जो कर्म बन्ध सहित जीव अनादिसे नरक, पशु, मनुष्य व देवगतिमें भ्रमण कर रहे हैं। (सर्वा० अ० २-१०)

संस्कार—वे क्रियाएँ जिनका असर मनपर या शरीरपर पड़ता है। गर्भान्वय व दीक्षान्वय क्रियाओंमें संस्कार, गर्भाधान व अवतार आदि हैं। देखो (गृ० अ० ४-५)

संस्तर—तृणादिका संथारा बिछाना।

संस्थान नाम कर्म—जिस कर्मके उदयसे छः प्रकार संस्थानोंमेंसे एक कोई रूप शरीरका आकार हो। (१) समचतुरस्र संस्थान सुडौल शरीर, (२) न्यग्रोध परिमंडल सं०—ऊपर बड़ा नीचे छोटा बड़के समान, (३) स्वाति—ऊपर छोटा नीचे बड़ा, (४) कुब्जक—कुबड़ा, (५) वामन—बौना, (६) हुंडक—बेडौल आकार (सर्वा० अ० ८-११)

संस्थान विचय—धर्मध्यान। तीन लोक, तीन लोकका आकार व आत्माका स्वरूप विचारना। (सर्वा० अ० ९-३६) पिंडस्थ, पदस्थ, रूपस्थ, रूपातीत ध्यान इसीके भेद हैं। (देखो ज्ञान सं० १७-१८-१९)

संहनन—नाम कर्म—जिसके उदयसे औदारिक शरीरमें त्रस जीवोंके विशेष हड्डीकी प्राप्ति होती है। वे छः हैं—

(१) वज्रवृषभ नाराच संहनन—जिसमें वज्रमई नसोंके जाल, कीले व हाड़ हों, (२) वज्र नाराच संहनन—वज्रमई कीले व हाड़ हों, (३) नाराच संहनन—हड्डी ऐसी हो जिसके सिरे पूरे कीले हों, (४) अर्धनाराच संहनन—जिसमें अर्धकीले हों ऐसी हड्डी, (५) कीलित—हड्डी परस्पर कीलित हों, (६) असंप्राप्तासृपाटिका संहनन—जिसमें हड्डी नसोंसे जुड़ी हो। जैसे सर्पके। (सर्वा० अ० ८-११)

संहनन अपेक्षा गमन—छहों संहननवाले पहलेसे तीसरे नर्क तक, असं०को छोड़कर शेष ५ पांचवें तक, असं० व की० बिना चार संहननवाले छठे नर्क तक। वज्र वृ० नाराच संहननवाले ही सातवें नर्क जाते हैं। असं० संहननवाले ८ वें स्वर्ग तक, कीलितवाले १२ वें तक, अर्धनाराचवाले १६ वें स्वर्ग तक। उत्तम तीन संहननवाले नौग्रैवेयिक तक। वज्रनाराच व वज्रवृषभ नाराचवाले नौ अनुदिश तक, वज्रवृषभ संहननवाले ही जीव पंच अनुत्तरोंमें जन्मते हैं। (गो० क० गा० २९-३१)

संहनन अपेक्षा गुणस्थान—छहों संहननवाले सातवें गुणस्थानतक चढ़ते हैं। तीन उत्तम संहनन वाले ११ वें गुणस्थान तक चढ़ते हैं। वज्र वृषभ नाराच संहननवाला ही [illegible] होता है। कर्मभूमिकी महिलाओंके [illegible] होते हैं, संहनन भी [illegible] होते हैं। (क० ग्रं० १८)

संहार [illegible]—[illegible] (अमि० श्रा० ११)

संहार विसर्पत्व—[illegible] आत्माके प्रदेशोंमें संकोच विस्तार होनेकी शक्ति होती है। [illegible] छोटे बड़े शरीरमें [illegible]

हैं । सिद्ध जीव अँतिम शरीरसे कुछ कम आकारमें रहते हैं । (गो० जी० गा० ५८४)

संज्ञा-वांछा चार हैं-आहार, भय, मैथुन, परिग्रह । ये सर्व संसारी जीवोंके पाई जाती हैं । प्रत्यभिज्ञान अर्थात् स्मृति और प्रत्यक्षके विषयभूत पदार्थमें जोड़रूप ज्ञान । द्रव्य मनके द्वारा शिक्षादि ग्रहण करना । (जै० सि० प्र० नं० ४६६, २९, ९२४)

संज्ञी-संज्ञा अर्थात् द्रव्य मनके द्वारा शिक्षादि ग्रहण करनेवाला पंचेंद्रिय सैनी जीव ।

संज्ञी मार्गणा-सर्व संसारी जीव संज्ञी (मन सहित) या असंज्ञी (मन रहित) होंगे ।

साकार उपयोग-ज्ञान जिसमें पदार्थका आकार झलकता है ।

साकार मंत्र भेद-सज्जनोंकी गुप्त सम्मतिको उनके अंगके आकारसे जानकर प्रकाश करना, यह सत्य अणुव्रतका पांचवां अतीचार है ।

(सर्वा० अ० ७-२६)

साकार स्थापना निक्षेप-तदाकार स्था० नि० जिसकी स्थापना की जाय उसकी वैसी ही मूर्ति बनाना । जैसे ध्यानाकार अरहंतकी मूर्तिमें अरहंतकी स्थापना ।

सागर-मेरुके नंदनवनमें चारों मंदिरोंके दोनों तरफ आठ कूट हैं । उनमें आठवां कूट, जिसपर दिक्कुमारीदेवी वसती है । (त्रि० गा० ६२९-२६) माल्यवान गजदंत पर्वतपर छठा कूट, इसपर सुभोगा व्यन्तरदेवी वसती है, (त्रि० गा० ७१८-४१); लोकोत्तर गणना, देखो अंकविद्या (प्र. जि. पृ. १०७) १० कोड़ाकोड़ी पल्यका एक सागर ।

सागार-गृहमें रहनेवाला गृहस्थधर्म पालक ।

सागार धर्म-गृहस्थ धर्म ।

सागार लक्षण-गृहस्थ धर्मके पालनेवालेमें १४ गुण होने चाहिये—

(१) न्यायसे धन कमाता हो, (२) गुणवानोंका भक्त हो, (३) सत्य व मधुरवादी हो, (४) धर्म, अर्थ, काम, पुरुषार्थको परस्पर विरोध रहित पालता हो, (५) तीन पुरुषार्थोंके साधनमें सहायक धर्मपत्नी ग्राम व स्थानादि रखता हो, (६) लज्जावान हो, (७) योग्य आहारविहार करनेवाला हो, (८) सज्जनोंकी संगति रखता हो, (९) बुद्धिवान हो, (१०) कृतज्ञ हो, (११) इंद्रियविजयी हो, (१२) पापसे भयभीत हो, (१३) धर्मकी विधि सुनता हो, (१४) दयावान हो । (सा० अ० १-११)

सांख्य मत-कपिलके अनुयायी, जो तीन प्रमाण ही मानते हैं ।

सागरसेन-सैद्धांतिक-त्रैलोक्यसार लघु प्राकृतके कर्ता । (दि० ग्रन्थ नं० ३६०)

सातक-१३ वेंसे १६ वें स्वर्गमें ६ इंद्रकोंमेंसे चौथेका नाम । (त्रि० गा० ४६८)

सातागारव-साताकर्मके उदय होनेपर यह अभिमान करना, मैं बड़ा पुण्यवान हूं, मेरे रोगादि दुःख कभी नहीं होसक्ता । (भ० पृ० ९२७)

साता वेदनीय कर्म-जिस कर्मके उदयसे जीवको सुखकी वेदनाका कारण प्राप्त हो ।

(सर्वा० अ० ८-८)

सातिशय अप्रमत्त विरत-जो साधु उपशम या क्षायिक सम्यक्तधारी हो व अधोकरण लब्धिको प्राप्त करे । (गो० जी० गा० ४७)

साथिया-स्वस्तिक-卐 (क ख ग घ) ऐसा प्रसिद्ध है कि क की तरफका कोना मनुष्य गति है, जिससे जीव मोक्षको जासक्ता है । घ की तरफको तिर्यंच गति है जहां निगोद है, जहां अनंतकाल जीव रहता है । ग नरक गति व ख देवगति है, जहांसे मानव गतिमें आए विना मोक्ष नहीं होसकती ।

सादि बन्ध-जिस प्रकृतिका बंध जिस गुणस्थानमें न होता हो, फिर उससे गिरनेपर होने लगे वह सादि बन्ध है । जैसे ज्ञानावरणकी पांच प्रकृतिका बंध १० वें गुणस्थान तक था वह जीव ११ वेंमें गया तब ज्ञानावरण बन्ध नहीं हुआ ।

फिर गिरा १०वेंमें आया, तब होने लगा, यह सादि बन्ध है। (गो. क. गा. १२२)

सादि मिथ्यादृष्टि–जो सम्यग्दृष्टि होकर फिर मिथ्यात्वके उदयसे मिथ्यादृष्टि हो वह सादि है।

सादृश्य प्रत्यभिज्ञान–स्मृति और प्रत्यक्षके विषय भूत पदार्थोंमें सादृश्य दिखाते हुए जोड़रूप ज्ञानका होना। जैसे यह गौ गवयके समान है। (जै. सि. प्र. नं० ६२)

साधक–ज्योतिष मंत्रवाद आदि लोकोपकारी शास्त्रका जाननेवाला (सा० अ० २–५१); जो श्रावक रागद्वेष छोड़कर ध्यान करते हुए समाधिमरण करता है। (सा० नं० ८–१)

साधन–जीवनके अंतमें समाधिमरण करते हुए ध्यानमग्न रहना। (सा० अ० १–१९); वह हेतु जो साध्यके विना न होवे जैसे अग्निका साधन (हेतु) धूम है। (जै० सि० प्र० नं० २६)

साधर्म्य–अन्वय दृष्टांत, जहां साधन हो वहां साध्य है। जैसे रसोई घरमें धूम।

साधारण नाम कर्म–जिसके उदयसे ऐसा शरीर पावे जिसके अनंत जीव स्वामी हों। जो एक साथ जन्मे, श्वास लें व मरें। (सर्वा० अ० ८–११)

साधारण वनस्पति–अनंत जीवोंका एक शरीर रखनेवाली वनस्पति, अनंतकाय, देखो 'अनंतकाय'।

साधु–दीर्घकालका दीक्षित मुनि। (सर्वा० अ० ९–२४)

साधु समाधि–साधुओंपर उपसर्ग पड़नेपर उसको दूर करना। १६ कारणोंमें आठमी भावना। (सर्वा० अ० ६–२४)

साध्य–जिसको साधनसे सिद्ध किया जावे वह इष्ट, अबाधित, असिद्ध हो। वादी व प्रतिवादी दोनोंको सिद्ध करना स्वीकार हो वह इष्ट है। जो प्रत्यक्ष प्रमाणसे बाधित न हो वह अबाधित है। जिसका प्रतिवादीसे निश्चय न हो वह असिद्ध है। (जै० सि० प्र० नं० ३५–३७)

साध्यान्यथानुपपत्ति–देखो व्याप्ति, जहां साध्य हो वहां साधनका अवश्य रहना।

सामानिक देव–वे देव जिनकी आयु, वीर्य, परिवार भोगोपभोग इन्द्रके समान हैं। परन्तु आज्ञा न चले, पिता, गुरु व उपाध्यायके समान देव। देवोंके चार भेदोंमें एक पदवी, (सर्वा. अ. ४–४) व्यंतरोंमें एक १ इन्द्रके ४००० सामानिक देव होते हैं। स्वर्गोंमें सौधर्मादि चारमें क्रमसे ८४०००, ८००००, ७२०००, ७०००० हैं। ब्रह्मादि चार युगलमें क्रमसे ६००००, ५००००, ४००००, ३०००० हैं। फिर आनतादि चारमें २०००० हैं। (त्रि० गा० २७९–४९४)

सामान्य गुण–जो सर्व द्रव्योंमें व्यापै या पाए जावें वे छः मुख्य हैं। (१) अस्तित्व–जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्यका कभी नाश न हो, (२) वस्तुत्व–जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्यमें अर्थक्रिया हो। द्रव्यसे कुछ काम हो, (३) द्रव्यत्व–जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्य सदा अपने सदृश विसदृश पर्यायोंमें बदलता रहे, (४) प्रमेयत्व–जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्य किसी न किसीके ज्ञानका विषय हो, (५) अगुरुलघुत्व–जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्यकी द्रव्यता बनी रहे। अर्थात् एक द्रव्य दूसरे द्रव्यरूप, एक गुण दूसरे गुणरूप न हो व एक द्रव्यके अनेक न हों, न द्रव्यके अनन्तगुण बिखर कर जुदे हों। (६) प्रदेशत्व–जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्यका कुछ न कुछ आकार अवश्य हो। ये छः सामान्यगुण जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल सबमें पाए जाते हैं। (जै० सि० प्र० नं० ११०–११६)

सामान्य संग्रहनय–जो सब सत्तारूपसे अवि- रोधसे सर्व पदार्थोंको एकरूप ग्रहण करे, जैसे सर्व द्रव्य सत् हैं। (सि० द० पृ० ९ [illegible])

सामायिक–[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

विषयोपयोगः आत्मनः एकस्यैव ज्ञेयज्ञापकसंभवात् अथवा समे रागद्वेषाभ्यां अनुपहते मध्यस्थं आत्मनि आयः उपयोगस्य प्रवृत्तिः समायः, स प्रयोजनं अस्य-इति सामायिकं (गो. सं. टीका) अर्थात् अपने आत्माके विना सर्व परद्रव्योंसे अपने उपयोगको हटाकर अपने आत्म-स्वरूपमें ही एक होकर उपयोगको प्रवर्त करना। अर्थात् यह अनुभव करना कि मैं ज्ञाता द्रष्टा हूं (क्योंकि एक ही आत्मा जाननेवाला ज्ञायक भी है और जानने योग्य ज्ञेय भी है) सो समय है। अथवा रागद्वेषको हटाकर मध्यस्थ भावरूप समतामें लीन ऐसा जो आत्म-स्वरूप उसमें अपने उपयोगको चलाना सो समाय है। जिस क्रियाका समाय प्रयोजन हो वह सामायिक है। (गृ० अ० ८)

सामायिक कर्म-मुनिके ६ आवश्यकोंमें एक, रागद्वेष त्यागकर साम्य भावमें लीन रहना।
(श्रा. प्र. ९१०)

सामायिकका काल-प्रभात, मध्याह्न, सायंकाल प्रत्येकमें छः, चार या दो घड़ी है। उत्तम यह है कि आधा काल उधर हो आधा इधर सन्ध्याका समय मध्यमें पड़े। मध्यम यह है कि संध्याके समय ध्यानमें हो। जघन्य यह है कि छः घड़ीके भीतर दो घड़ी या कदाचित् अन्तर्मुहूर्त अवश्य करलें। ४८ मिनिटको दो घड़ी कहते हैं। (गृ. अ. ८)

सामायिक अतीचार-पांच-मन, वचन, कायका दुष्ट या अन्यथा वर्तन तीन-४ अनादर-(दुष्प्रणिधान) प्रेम न होना, ५ स्मृत्यनुपस्थापन-सामायिकका समय भूल जाना व पाठादि भूल जाना, एकाग्रता न रखना। (सर्वा. अ. ७-३३)

सामायिक चारित्र-मुनियोंका साम्यभाव रूप चारित्र जो छठेसे नौमें गुणस्थान तक होता है।
(सर्वा० अ० ९-१८)

सामायिक प्रकीर्णक-अंग बाह्य श्रुतज्ञानके १४ प्रकीर्णकोंमें पहला भेद। (भ० पृ० २६४)

सामायिक प्रतिमा-श्रावककी ग्यारह श्रेणियोंमें तीसरी श्रेणी जहां पहली दो श्रेणियोंके व्रतोंको पालते हुए सामायिक नित्य तीन काल नियमसे अतीचार रहित करनी होती है। (गृ० अ० ९)

सामायिक भेद-छः हैं नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव, क्षेत्र, काल। समायिकके समय अच्छे या बुरे नाम, चित्र, पदार्थ, भाव, स्थान या ऋतुका चिंतवन हो तो उस समय समभाव रखना।
(गृ० अ० ८)

सामायिक विधि-साधारण विधि यह है कि एकांत स्थानमें जाकर आसन चटाई, काष्ठ या भूमिमें ही पहले पूर्व या उत्तरके मुख खड़ा हो कायोत्सर्ग नौ दफे णमोकार मन्त्र पढ़कर भूमिमें मस्तक लगा नमस्कार करे व प्रतिज्ञा करे कि जबतक सामायिक करता हूं मेरे पास जो कुछ है उसके सिवाय सर्वका त्याग व जिस जगह पर बैठा हूं उसके आसपास एक एक गजके सिवाय सर्व जगहका त्याग। फिर उसी दिशाको खड़ा हो कायोत्सर्ग ३ या ९ दफे णमोकार मंत्र पढ़कर तीन आवर्त शिरोनति करे। जोड़े हुए हाथोंको अपने बाएंसे दहने लानेको आवर्त व मस्तक झुके-हुएपर लगानेको शिरोनति कहते हैं। फिर दाहने हाथको हाथ छोड़कर पलटे, वैसे ही कायोत्सर्ग ३ या ९ दफे णमोकार मंत्र पढ़ तीन आवर्त एक शिरोनति करे। इसी तरह खड़े २ चारों दिशामें करके फिर पूर्व या उत्तर मुख बैठकर आसन लगाले आसन या अर्ध पदमासन। पहले सामायिक पाठ अर्थको समझता हुआ पढ़े, फिर मंत्रका जाप करे, फिर पांच परमेष्टीके गुण विचारे या आत्मध्यानका अभ्यास करे, पिंडस्थ पदस्थ रूपस्थ, रूपातीत ध्यानको विचारे अंतमें खड़ा हो कायोत्सर्ग नौदफे णमोकार मंत्र पढ़कर दण्डवत करे। इतने काल किसीसे वार्तालाप आदि न करे। (गृ. अ. ८)

सामायिक शिक्षाव्रत-दूसरी व्रत प्रतिमामें सामायिकका मात्र अभ्यास है। इसलिये वह एक

दफे भी दिनरातमें कर सका है या कभी नहीं भी हो तो चल सक्ता है। तौभी सवेरे व शामको अभ्यास करना चाहिये। जितनी देर होसके, दो घड़ी पक्का नियम नहीं है। (गृ. अ. ८)

सामायिक शुद्धि–सामायिकके समय ७ शुद्धि रखनी चाहिये–(१) क्षेत्र शुद्धि–स्थान एकांत, शुद्ध व निराकुल हो, (२) काल शुद्धि ठीक सन्ध्याके समय करे, (३) आसन शुद्धि–आसन जमा करके, (४) मन शुद्धि, (५) वचन शुद्धि, (६) काय शुद्धि, (७) विनय शुद्धि–बहुत प्रेमसे करे। (गृ० अ० ८)

सामायिक संयम–देखो "सामायिक चारित्र"।

साम्परायिक आस्रव–संसारका कारणीभूत कर्मोंका आस्रव जो कषायवान जीवके होता है। इसका विरोधी ईर्यापथ जो कषाय रहित ११ वेंसे १३ वें गुणस्थान तक होता है। यह × १० वें तक होता है। (सर्वा. अ. ६–४)

सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष–जो ज्ञान इंद्रिय व मनकी सहायतासे पदार्थको एक देश स्पष्ट जाने। (जै. सि. प्र. नं० १७)

सारस्वत–लौकांतिक देवोंका पहला कुल। (सर्वा. अ. ४–२५)

सावद्य कर्मार्य–वे आर्य जो पापकर्म सहित आजीविका करें अर्थात् जिनमें आरम्भी हिंसा हो। ये कर्म ६ प्रकार हैं–असि शस्त्रकर्म (२) मसि–हिसाब लेखनादि (३) कृषि–खेती (४) वाणिज्य–व्यापार (५) विद्या–गान, नृत्यादि कलाका पठन पाठन (६) शिल्प–बढ़ई, लुहार, आदि कर्म। (भ. ग. ५१६)

सांशयिक मिथ्यात्व–धर्म अहिंसा स्वरूप है या नहीं अथवा यह देव पूज्य है या नहीं इसके अनिश्चित हो या डावांडोल भाव। (जै० सि० प्र० नं० २२४)

सासादन गुणस्थान–सम्यग्दर्शन [illegible] कालमें अधिकसे अधिक ६ आवली व कमसे कम एक समय शेष रहे तब किसीएक अनन्तानुबन्धी कषायके उदयसे जो भावोंका पतन मात्र हो। यहां सम्यक्त छूटजाता है परन्तु मिथ्यात्व नहीं है, शीघ्र ही आनेवाला है। (जै. सि. प्र. नं. ९९९) देखो "गुणस्थान"

सांसारिक प्रशस्त निदान–जिन धर्मकी प्रभावनाके लिये व अपने आत्माकी उन्नतिके लिये उत्तम साधनोंकी चाहना व निर्धन होनेकी इच्छा। (भा. अ. ४–१)

सिद्ध–जिस आत्माके आठों कर्म नाश होगए व आठ गुण प्रगट होगए हों, देह रहित हो पुरुषाकार आत्मा लोकके शिखरपर विराजमान हो, नित्य ज्ञानानंदमें मगन हो, जिसने जो साधने था उसे सिद्ध कर लिया हो, पूर्ण कृतकृत्य हो, अविनाशी हो, स्वभावमें सदा तल्लीन हो। आठ कर्मोंके नाशसे आठ गुण प्रगट होते हैं—

१–ज्ञानावरणके नाशसे		अनंतज्ञान
२–दर्शनावरणके	,,	अनंतदर्शन
३–मोहनीयके	,,	सम्यग्दर्शन
४–अंतरायके	,,	अनंत वीर्य
५–आयुके	,,	अवगाहनत्व
६–नामके	,,	सूक्ष्मत्व
७–गोत्रके	,,	अगुरुलघुत्व
८–वेदनीयके	,,	अव्याबाधत्व

सिद्ध भगवान कर्मोंसे छूटे हो उनको कहते हैं। [illegible] १,५३५ [illegible] है जिनमें [illegible] १०७३५९००८ ७८६५०० [illegible] है, [illegible] ५६६ [illegible] होते हैं। [illegible] १० [illegible] ७५६०० [illegible] ४ [illegible] ६००००० [illegible] (त्रि. सा. १४१–१४३) [illegible]

सिद्ध कवि–प्रद्युम्नचरित्र प्राकृतके कर्ता ।
(दि० ग्रंथ नं. ३६१)

सिद्धकूट–हिमवन्, महाहिमवन्, निषध, नील रुक्मी, शिखरी छः कुलाचलोंपर पहला कूट जिनपर जिन मंदिर हैं; भरत व ऐरावतके ऊपर भी हरएकके हैं जिनपर जिनमंदिर है । ४ गजदंत पर्वत माल्यवत्, सौमनस, विद्युत्प्रभ, गंधमादनपर भी पहला२ सिद्धकूट है, इनपर भी जिन मंदिर है । विदेहके भीतर १६ वक्षार पर्वतपर हैं उनपर भी हरएकके जिन मंदिर सहित सिद्धकूट है । कुण्डलगिरिपर भी चार सिद्धकूट हैं; जिन मंदिर सहित हैं । रुचक पर्वतपर भी ऐसे चार कूट हैं ।
(त्रि. गा. ७२४–७४४–९४४–९४७)

सिद्धगति–पंचमगति जो कभी नाश न होगी ।

सिद्धचन्द्र–आचार्य सं० ११९९ ।
(दि. ग्रं. नं. ३६३)

सिद्धपुरी–सिद्धक्षेत्र जहां सिद्ध भगवान विराजमान हैं ।

सिद्धपूजा–पद्मनन्दि आचार्य कृत मुद्रित है ।

सिद्धभक्ति–संस्कृतमें देशभक्ति ग्रन्थमें मुद्रित है ।

सिद्धभक्ति विधान–देखो प्रतिष्ठा सारोद्धार । पृ. ३९–४० ।

सिद्ध मातृका–समस्त शास्त्रोंको उत्पन्न करने वाली विद्या–६४ अक्षर २७ स्वर, ३३ व्यंजन ४ योगवाह (देखो शब्द अक्षर प्रथम जि. पृ. ३२) इनको वृषभदेवने अपनी पुत्री ब्राह्मीको पढ़ाया इसी लिये इसे ब्राह्मी लिपी व भाषा कहते हैं ।
(आदि० पर्व १६–१०९)

सिद्ध यंत्र–देखो " विनायक यंत्र " ।

सिद्धवरकूट–इन्दौर राज्यमें मोरटक्का स्टेशनसे ७ मील नर्मदाके तटपर, यहांसे दो चक्री व १० कामदेव व ३॥ करोड़ मुनि मोक्ष पधारे हैं । दि० जिन मंदिर है । (या. द. पृ. १७९)

सिद्धशिला–देखो " मुक्तिशिला " ।

सिद्ध साधन–जिस हेतुका साध्य सिद्ध हो । जैसे अग्नि गर्म है, क्योंकि स्पर्शन इंद्रियसे ऐसी ही प्रतीति होती है । (जै. सि. प्र. नं० ९२)

सिद्धसेन–आचार्य, नमस्कार महात्म्यके कर्ता, (दि. ग्रन्थ नं० ३६२) बृहत् षटदर्शन समुच्चयके कर्ता । (दि० ग्रं० नं० ४४०)

सिद्धक्षेत्र–निर्वाणक्षेत्र, देखो 'जैन तीर्थस्थान'

सिद्धायतन–सिद्धकूट–जहां जिन मंदिर है । देखो " सिद्धकूट " ।

सिद्धार्थ–श्री महावीर स्वामीके पिता नाथवंशी कुण्डपुरके राजा; रत्नमई वृक्ष जिनके मूलमें सिद्ध भगवानकी प्रतिमा होती है । सिद्ध प्रतिमाके छत्रादि नहीं होते हैं, यह वृक्ष अकृत्रिम जिन मदिरोंकी रचनामें होते हैं (त्रि.गा. १००–१०८) विजयार्द्धकी उत्तर श्रेणीमें १९ वां नगर (त्रि. गा. ७०४) श्री महावीर मोक्षके १६२ वर्ष पीछे १८३ वर्षके मध्यमें ११ अंग १० पूर्वके ज्ञाता एक महात्मा ।
(श्रा. पृ. १३)

सिद्धालय–सिद्धोंका निवासक्षेत्र देखो "सिद्ध"

सिद्धि–दृढ, संकल्प, प्राप्ति ।

सिन्दूर वर–मध्य लोकके अन्तके १६ द्वीपोंमें तीसरा द्वीप तथा समुद्र (त्रि. गा. ३०५–७)

सिन्धु कूट व नदी–सिंधु नदी हिमवत् पर्वत पद्मद्रहके पश्चिम द्वारसे निकलकर पश्चिमकी तरफ जाकर सिंधुकूटसे उस तरफ मुड़कर पर्वतपर जाकर नीचे कुंडमें पड़ी, फिर निकलकर विजयार्द्ध पर्वतकी तिमिश्र गुफासे होकर बहकर पश्चिम समुद्रमें गिरी है, वर्णन गंगानदीवत् है । देखो 'गंगानदी' (त्रि.गा. ५९७) हिमवत पर्वतपर ८वां कूट (त्रि.गा.७२१)

सिंह–दि०जैन साधुओंका एक प्राचीन संप्रदाय ।

सिंहकीर्ति–आचार्य सं० १२०६ ।
(दि० ग्रं० नं० ३३४)

सिंहचन्द्र–भरतके आगामी उत्सर्पिणीके पांचवे बलभद्र (त्रि० गा० ८७८)

मान होता है, यह अनुपम है, बाधा रहित है। आत्मासे ही प्रगट है। इन्द्रियातीत है, स्वतंत्र है। (क. गा. ६१२)

सुख करण व्रत—साढ़ेचार मास तक लगातार एक उपवास एक एकासन करे। शील व्रत पाले धर्म ध्यान करे। (कि. क्रि. पृ. १११)

सुखदुःखोपसंयत्—परस्पर साधु एक दूसरेको उपकार करे; शिष्यादिको कमण्डल दे। स्थान व क्रिया बतावे। हम आपके ही हैं ऐसा कह सुख दुःख पूंछे। (मू. गा. १४३)

सुख बन्धन—पं०, लीलावती चरित्र छंदके कर्ता। (दि. ग्रं. नं० १९२)

सुखानुबन्ध—सल्लेखनाका अतीचार पिछले भोगोंको स्मरण करना। (सर्वा. अ. ७३७)

सुखावह—पश्चिम विदेह सीतोदा नदीके दक्षिण तटपर चौथा वक्षार पर्वत (त्रि० गा० ६६८)

सुगनचन्द पं०—चौवीसी पूजापाठके कर्ता। (दि. ग्रं. न. १९९)

सुगन्ध नामकर्म—जिसके उदयसे शरीरमें सुगंध हो (सर्वा० अ० ८-११)

सुगन्ध दशमी व्रत—भादो सुदी दशमीको उपवास प्रोषध करे, १० वर्षतक पाले। (जि० क्रि० पृ० १११)

सुगन्धा—सीतोदाके उत्तर तट विदेह देश छटा। (त्रि. गा. ६९०)

सुगंधिनी—विजयार्द्धकी श्रेणीमें १७ वां नगर (त्रि. गा. ७०८)

सुग्रीव—रामचन्द्रके समयमें वानरवंशी विद्याधर जो मांगीतुंगी (नाशिक) से मोक्ष पधारे; व्यंतरोंकी घोड़ोंकी सभाका प्रधान (त्रि. गा. २८१)

सुघोषा—व्यंतरोंकी महत्तरीदेवीका नाम। (त्रि. गा. २७६)

सुचक्षुष्मान—पुष्कर द्वीपके ढाईद्वीपके बाहरी अर्धका स्वामी व्यंतरदेव (त्रि. गा. ९६२)

सुज्येष्ठा—व्यंतरोंकी हाथीकी सेनाका प्रधानदेव (त्रि. गा. २८१)

सुदर्शन—जम्बूद्वीपके मध्यमें नाभिके समान ऊँचा सुवर्णमई पर्वत, मेरु १००० योजन जड़ ९९००० योजन ऊंचा ४० योजन चूलिका नीचे भद्रसालवन, फिर नंदन फिर सौमनस फिर पांडुकवन हर एकमें चार चार जिन मन्दिर हैं देखो 'मेरु' विजयार्द्धकी उत्तर श्रेणीमें ९४ वां नगर। (त्रि. गा. ७०७); ग्रैवेयकमें पहला इन्द्रक (त्रि. गा. ४६८); रुचक पर्वतकी पश्चिम दिशामें आठवां कूट जिसपर भद्रा दिक्कुमारी वसती है। (त्रि. गा. ९९२)

सुदर्शना—पिशाच व्यंतरोंमें इन्द्र महाकालकी वल्लभिकादेवी। (त्रि. गा. २७२)

सुपर्णकुमार—व्यंतरोंका तीसरा भेद, गरुड़कुमार इनके इन्द्र वेणु और वेणुधारी, मुकुटमें चिह्न गरुड़ इसके ७२ लाख भवन हैं जिनमें प्रत्येकमें जिन मंदिर हैं। (त्रि. गा. १०९-११७)

सुपद्मा—सीतोदा नदीके दक्षिण तटपर दूसरा विदेह देश। (त्रि. गा. ६८९)

सुधर्मा—सौधर्म इन्द्रकी सभाका स्थान १०० योजन लम्बा, ५० योजन चौड़ा, ७५ योजन ऊँचा। (त्रि. गा. ५१५)

सुधर्माचार्य—पंचमकालके दूसरे केवली जो मोक्ष गए (श्रा० पृ० १८)

सुधीसागर—पंच कल्याण पूजाके कर्ता। (दि. ग्र. ४४३.)

सुप्रीति क्रिया—गर्भान्वय क्रिया अंक तीसरा संस्कार जप। ५ माहका गर्भ होजावे तब पूजा पाठ होमादि करके माताके ऊपर मंत्र पढ़ पुष्प क्षेपै। (गृ. अ. ४-३)

सुमतिष्ठ—भरतके वर्तमान पांचवें रुद्र। (त्रि. गा. ८३६)

सुप्रकीर्ण—रुचक पर्वतपर दक्षिण दिशाके स्फटिक कूटपर वसनेवाली देवी। (त्रि.गा.९९१)

सुरेन्द्रकान्त–विजयार्द्धकी उत्तर श्रेणीका २२ वां नगर। (त्रि० गाथा ७०४)

सुरेन्द्रकीर्ति–आष्टाह्निक कथाके कर्ता।
(दि. ग्रं. नं. ३७१)

सुरेन्द्रभूषण–सं० १८८९ मुनिसुव्रतपुराण, श्रेयांसनाथपुराण, सार्द्धद्वय दीप पूजा, सारसंग्रह, चर्चाशतक पूजादिके कर्ता। (दि. ग्र. नं. ३७०)

सुलोचना चरित्र–भाषा ब्र० सीतलकृत मुद्रित।

सुलस–सीतोदा नदीका द्रह।
(त्रि० गा० ६५७)

सुलसी–स्वर्गोंके दक्षिण इन्द्रोंकी पट्ट देवी।
(त्रि० गा० ५१०)

सुवत्सा–सीता नदीके दक्षिण तटपर दूसरा विदेह देश। (त्रि० गा० ६९०)

सुवप्रा–सीतोदा नदीके उत्तर तट दूसरा विदेहदेश। (त्रि० गा० ६९०)

सुवर्ण–द्वीप, जहां महोरग जातिके व्यंतरोंके नगर है। (त्रि० गा० २८३); मेरुके सौमनस वनमें तीसरा जिन मंदिर (त्रि० गा० ६२०); शिखरी कुलाचलपर ७ वां कूट।
(त्रि० गा० ७२८)

सुवर्णकूला नदी–शिखरी पर्वतके पुण्डरीक ह्रदसे निकलके हैरण्यवत क्षेत्रमें पूर्वको गई है।
(त्रि० गा० ५७९)

सुवर्णप्रभ–मेरुके सौमनस वनमें चौथा जिन मंदिर। (त्रि० गा० ६२०)

सुवर्णभद्राचार्य–माघमालिनी काव्य टीकाके कर्ता। (दि० ग्रं० नं० ३७२)

सुवर्णवर–मध्यलोकके अन्तके १६ द्वीपोंमें ८ वां द्वीप तथा समुद्र। (त्रि०गा० ३०६–७)

सुविधि–वर्तमान भारतके नौमा तीर्थंकर पुष्पदन्तका दूसरा नाम। त्रि० गा० ८१४)

सुविशाल–नौग्रैवियकोंका छठा इन्द्रक विमान।
(त्रि० गा० ५११)

सुशीला उपन्यास–पं० गोपालदास कृत मुद्रित

सुषेणा–स्वर्गके उत्तर इन्द्रकी एक देवी।
(त्रि० गा० ४६९)

सुखमा–अवसर्पिणीका दूसरा काल जहां मध्यम भोगभूमि रहती है। ३ कोड़ाकोड़ी सागरका।

सुखमा दुखमा–अवसर्पिणीका तीसरा काल जहां जघन्य भोगभूमि रहती है। २ कोड़ाकोड़ी सागरका।

सुषमा सुखमा–अवसर्पिणीका पहला काल जहां उत्तम भोगभूमि रहती हैं। ४ कोड़ाकोड़ी सागरका।
(त्रि० गा० ७८०–८१)

सुषिर–वे शब्द जो बांसरीसे निकले।

सुसीमा–विदेहक्षेत्रकी नौमी राजधानी (त्रि० गा० ७१३); स्वर्गके उत्तर इन्द्रोंकी एक महादेवी (त्रि० गा० ५११); चन्द्रमा ज्योतिषी इन्द्रकी दूसरी पट्टदेवी। (त्रि० गा० ४४७)

सुस्थित–लवण समुद्रका स्वामी व्यन्तरदेव।
(त्रि० गा० ९६१)

सुस्वर नाम कर्म–जिसके उदयसे स्वर सुरीला हो।
(सर्वा० अ० ८–११)

सुस्वरा–व्यंतरोंमें एक महत्तरीदेवी।
(त्रि. गा. २७९)

सूक्ति मुक्तावली–सं० मुद्रित।

सूक्ष्म–हलका; जो इंद्रियोंके गोचर न हो ऐसे स्कंध जैसे कार्मणवर्गणा आदि।

सूक्ष्म ऋजूसूत्रनय–जो नय एक समयवर्ती सूक्ष्म अर्थ पर्यायको ग्रहणकरे जैसे सर्व शब्द क्षणिक है। (सि. द. पृ. ९)

सूक्ष्म कृष्टि–कर्मोंके अनुभागको घटाकर सूक्ष्म कर देना। (गो. जी. गा. ५९)

सूक्ष्मक्रिया प्रतिपाति–तीसरा शुक्लध्यान जो तेरहवें गुणस्थानके अंतमें अंतर्मुहूर्तमें होता है। जब काययोगका परिणमन बहुत सूक्ष्म होजाता है। (सर्वा. अ. ९. ३९–४४; यदि किसी केवलीका आयुकर्म अंतर्मुहूर्त हो तथा शेष नाम गोत्र वेदनीयकी स्थिति अधिक हो तो केवली समुद्घात होता

है, जिसमें चार समयमें प्रदेश दंड कपाट प्रतर व लोक पूर्ण होजाते हैं। फिर क्रमसे संकुचकर आठवें समयमें शरीर प्रमाण होजाते हैं। जब चारों कर्मोंकी स्थिति बराबर होजाती है तब तीसरा शुक्ल ध्यान होता है।

सूक्ष्म जीव–वे एकेंद्रिय जीव जो सर्व लोक व्याप्त हैं व जिनको न कोई बाधा देसक्ता है और न वे बाधा देते हैं।

सूक्ष्म प्रतिजीवी गुण–इंद्रियोंके विषयभूत स्थूलताका अभाव। (जै. सि. प्र. न. २४३)

सूक्ष्म नामकर्म–जिसके उदयसे शरीर ऐसा हो जो किसीसे बाधा न पावे न किसीको बाधा करे। (सर्वा. अ. ८–११)

सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान–दशवां गुणस्थान जहां मात्र सूक्ष्म लोभका उदय रह जाय। देखो "गुणस्थान"

सूक्ष्म साम्पराय चरित्र–आत्माकी विशुद्धि या वीतरागता जो दशवें गुणस्थानमें संभव है। (सर्वा. अ. ९–१८)

सूक्ष्म सूक्ष्म–दो परमाणुका स्कंध या एक परमाणु।

सूक्ष्म स्थूल (बादर)–जो स्कंध दिखाई न पड़ें परन्तु उनका कार्य प्रगट हो जैसे हवा, शब्द आदि।

सूची फल–"शिलाफल" देखो।

सूच्यंगुल–अद्धा पल्यके अर्द्धछेदोंको फैलाकर प्रत्येकपर अद्धापल्य लिखकर परस्पर गुणा करनेसे जो राशि हो। देखो अंक विद्या (प्र. जि. ए. १०८)

सूतक–वृद्धि या जन्मका सूतक १० दिनका होता है। प्रसूति स्त्रीको ४० या ४५ दिनका सूतक होता है। स्त्रीको गर्भ जितने मासका गिरे उतने दिनका सूतक, ३ मासके पहले ३ दिनका सूतक है। मृत्युका पातक १२ दिनका होता है। तीन पीढी तक १२ दिन, चौथीमें १० दिन, पांचवींमें ६ दिन, छठीमें ४ दिन, सातवींमें ३ दिन, आठवींमें १ दिन, नवमीमें ३ पहर, फिर स्नान मात्रसे शुद्ध, आठ वर्षके बालककी मृत्युका ३ दिन व तीन दिनके बालकका १ दिन। कोई गृहत्यागी या दीक्षित अपने कुलका मरे व इसका संग्राममें मरण हो तो १ दिनका पातक होता है। यदि अपने कुलका देशांतरमें मरे और १२ दिन पूरे होनेके पहले मालूम हो तो शेष दिनका, यदि पूरे दिन होगये हों तो स्नान मात्रका। दासी, घोडी, भैंस, गौ, पशु अपने आंगनमें प्रसूति हो तो १ दिनका बाहर जने तो नहीं। दासी दास व पुत्रीकी प्रसूति घरमें हो या मरे तो ३ दिनका पातक हो। जने पीछे भैंसका दूध १५ दिन तक, गायका १० दिन तक, बकरीका ८ दिन तक अशुद्ध है। (क्रिया० पृ० २४९) सूतकपातकमें देव पूजा व धर्मके उपकरण स्पर्श न करे। दर्शन व धर्म सुनना व गुरुसे पठनपाठन होसक्ता है।

सूत्र–दृष्टिवाद १२ वें अंगका दूसरा भेद। इसमें मिथ्या दर्शनके भेद व ३६३ एकान्तवादोंके पूर्वपक्षका कथन है। इसके मध्यम पद ८८ लाख हैं। (गो० जी० गा० [illegible])

सूत्रकृतांग–द्वादशांग वाणीका दूसरा अंग [illegible] संक्षेपसे ज्ञानका विनयादिका व [illegible] क्रियाका वर्णन है। इसमें ३६००० मध्यमपद हैं। ([illegible])

सूत्र सम्यक्त्व–जो [illegible] सूत्रके सुनने मात्रसे हो। ([illegible])

सूत्रोपसंपत्–के तीन भेद हैं–(१) [illegible] (२) [illegible] (३) [illegible] [illegible] [illegible] ([illegible])

सूर–[illegible]

सूरजभान–[illegible]

([illegible])

सूरत–पं० बारह खडी छन्दके कर्ता ।
(दि० ग्रं० नं० १९८)

सूरि मंत्र–प्रायश्चित्त ग्रन्थ । (भ. पृ. १७१)

सूर्य–सूर्य ज्योतिषी प्रतीन्द्र निवासी विमान जंबूद्वीपमें २, लवण समुद्रमें ४, धातुकी खंडमें १२, कालोदधिमें ४२, पुष्करार्द्धमें ७२, कुल १३२ हैं । ढाईद्वीपके भीतर भ्रमण करते हैं। आगे स्थिर हैं (त्रि.गा. ३४६); लवण समुद्रके दोनों तटोंसे ४२००० योजन जाकर मध्यमें ४२००० योजन व्यासवाले चारों विदिशाओंके दोनों पार्श्वमें आठ सूर्यद्वीप हैं । (त्रि० गा० ९०९).

सूर्यपुर–विजयार्द्धकी दक्षिण श्रेणीकी ४९ वीं नगरी। (त्रि० गा० ७०१) वर्तमान सूरत नगर ।

सूर्यप्रभा–सूर्य ज्योतिषी प्रतीन्द्रकी दूसरी पट्टदेवी
(त्रि० गा० ४४७)

सूर्यमाल–सीतोदा नदीके उत्तर तटमें दूसरा वक्षार पर्वत । (त्रि० गा० ६६९)

सूर्याभ–लौकांतिक देवोंका अन्तरालका एक कुल (त्रि० गा० ५३७) विजयार्द्धकी दक्षिण श्रेणीका ३६ वां नगर । (त्रि० गा० ७००)

सेनगण–दिगम्बर जैन साधुओंकी एक प्राचीन सम्प्रदाय ।

सेवाराम पं०–(शाह जयपुरी) २४ महाराज पूजा (सं० १८५४) व धर्मोपदेश छंदके कर्ता (दि. ग्रं. नं. १९९); राजपूत (सं० १८२१) हनुमच्चरित्र छं०, शांतिनाथ पुराण, भविष्यदत्त चरित्रके कर्ता । (दि. ग्रं. नं० १६०)

सोनागिरि–(श्रमणगिरि)–झांसीके पास दतिया राज्यमें सोनागिरि स्टेशनसे ३ मील पर्वत। यहांसे नंग अनंगकुमार व ५॥ करोड़ मुनि मुक्ति पधारे हैं। दि० जैन मंदिर बहुत हैं। धर्मशाला हैं (या० द० पृ० १०७) पर्वतपर प्राचीन श्री चन्द्रप्रभुका मंदिर सं० ३३५ का श्री आचार्य कनकसेन द्वारा प्रतिष्ठित है। इसका जीर्णोद्धार मथुराके सेठ लखमीचंदजीने सं० १८८३ में कराया था। प्रतिमा चन्द्रप्रभ ७॥ फुट अतिमनोज्ञ कायोत्सर्ग है ।

सोपक्रमकाल लगातार उत्पत्ति होनेका समय १०००० वर्षकी जघन्य आयुवाले व्यंतर लगातार आवलीके असंख्यात मात्र कालतक उपजा ही करें। कोई समय अंतर न पड़े सो सोपक्रम काल है । उत्पत्ति रहित काल इनका १२ मुहूर्त है । इतने समयको अनुपक्रमकाल कहते हैं ।
(गो. जी. गा. २६६)

सोपक्रमायुष्क–जिन कर्मभूमिके मनुष्य व तिर्यंचोंका विषशस्त्र आदि कारणोंसे कदलीघात मरण हो जिनकी अकाल मृत्यु हो । जिनका आयुकर्म स्थितिसे पहले ही उदीरणारूप हो झड़ जावे ।
(गो. जी. गा. ५१८)

सोम–इन्द्रके पूर्व दिशाका लोकपाल (त्रि. गा. २२६) विदिशाका अनुदिशविमान (त्रि.गा.४५६)

सोमकीर्ति–प्रद्युम्न चरित्र, सप्तव्यसन च०, सुकौशल च०, यशोधरचरित्र, आदिके कर्ता ।
(दि० ग्रन्थ नं० ३७३)

सोमदत्त–भ० जंबूस्वामी चरित्रके कर्ता ।
(दि० ग्रन्थ नं० ३७४)

सोमदेव–सूरि० सं० ८८१ यशस्तिलक चम्पू, नीतिवाक्यामृत, शब्दार्णव चंद्रिका, अध्यात्म तरंगिणी, षण्णवति प्रकरण, युक्तिचिंतामणि, योगमार्ग, नीतिसार, पंचसंग्रह, राजनीति पद्धति, पंचाध्यायी, भावसंग्रह, त्रिवर्गमहेन्द्रपात संजल्पके कर्ता। (२) भट्टा० पार्श्वनाथ स्तोत्रके कर्ता, (३, सूरि संवत ११२७। (दि० ग्रं० नं० ३७५–६–७)

सोमप्रभ–भ०–सं० १४७५ स्तव रहस्यके कर्ता । (दि० नं० ३७८) आचार्य० नंदिसंघ सिंदुर प्रकरणके कर्ता । (दि० ग्रं नं० ३७९)

सोमसेन–भ०–त्रिवर्णाचार, प्रद्युम्नचरित्र, पूजादिके कर्ता । (दि० ग्रं० नं० ३८०)

सोमरूप–विदिशाका अनुदिश विमान ।
(त्रि. गा. ४५६)

सौदामिनी–रुचक पर्वतके अभ्यंतर उत्तर दिशाके नित्योद्योत कूटपर बसनेवाली देवी (त्रि. गा. ९९८)

सौधर्म–प्रथम स्वर्गका व उसके स्वामी इन्द्रका नाम सौधर्म इन्द्र ३१ वां पटलके इन्द्रक विमानके पासवाले १८ वें दक्षिण दिशाके श्रेणीबद्ध विमानमें बसता है वह। (त्रि. गा. ४८३)

सौमनस–मेरु पर्वतपर तीसरा वन जो नीचेसे ६१००० योजनकी ऊंचाईपर है (देखो 'मेरु') (त्रि. गा. ६४७) यहां चार जिन मंदिर हैं; नौग्रैवेयिकमें नौमा इन्द्रकविमान (त्रि. गा. ४६९); सौमनसगजदंत मेरुके निकट व उसका दूसरा कूट। (त्रि. गा. ७२९)

सौम्य–व्यंतरोंके इन्द्रोंकी एक महत्तरी देवीका नाम। (त्रि० गा० २७६।

संबोध पंचासिका–प्राकृत।

स्कंध–दो परमाणुओंके स्कंधसे लेकर संख्यात असंख्यात व अनंत परमाणुओंके स्कंध, देखो "पुद्गल द्रव्य"

स्कंध देश–स्कंधका आधा } यदि स्कंध
स्कंध प्रदेश–स्कंधका चौथाई } १६ परमाणुका हो तो स्कंधपना ९ तक फिर ८ से ५ तक स्कंध देशपना व ४ से २ तक स्कंध प्रदेशपना हो। यदि १०० परमाणुका स्कंध हो तो ५१ तक स्कंध; ५० से २६ तक स्कंध देश, २५ से २ तक स्कंध प्रदेश होगा। (पंचास्तिकाय)

स्कंधशाली–महोरग जातिके व्यंतरोंका पांचवां प्रकार। (त्रि० गा० २६१)

स्तनक–दूसरे नरकका दूसरा इन्द्रक बिला। (त्रि० गा० १५५)

स्तनलोला–दूसरे नरकका ग्यारहवां इन्द्रक बिला (त्रि० गा० १५६)

स्तनितकुमार–भवनवासियोंका आठवां भेद जिनके इन्द्र हरिषेण व हरिकांत हैं, चिह्न मुकुटमें वज्रका है, इनके ७६ लाख भवन हैं, जिनमें जिन मंदिर हैं। (त्रि० गा० २२९)

स्त्यानगृद्धि निद्रा–दर्शनावरण कर्म जिसके उदयसे "स्त्याने गृध्यति दीप्यते" स्वप्नमें उठकर कोई भयानक काम करके फिर सोजावे। (सर्वा० अ० ८–९)

स्त्री राग कथा श्रवण त्याग–ब्रह्मचर्यव्रतकी पहली भावना। स्त्रियोंमें राग बढ़ानेवाली कथाके सुनने पढ़नेका त्याग। (सर्वा० अ० ७–८)

स्त्रीवेद–नोकषाय जिसके उदयसे पुरुषसे संभोगकी चाह हो। (सर्वा० अ० ८–९)

स्त्रीपरीषह–स्त्रियोंके हाव भाव विलास करनेवाली चेष्टाओंके होते हुए भी निर्विकार रहना। (सर्वा. अ. ९–९)

स्तव–वस्तुका सर्वांग सम्बन्धी सर्व विस्तारसहित या संक्षेपसे जिसमें कहा जावे ऐसा शास्त्र। (गो. क. गा. ८८)

स्तुति–वस्तुके एक अंगके अधिकारका सर्वांग विस्तारसे या संक्षेपसे जिसमें कहा जाय वह शास्त्र। (गो. क. गा. ८८)

स्तेन प्रयोग–अचौर्य अणुव्रतका पहला अतीचार, दूसरोंको चोरीका उपाय बताना। (सर्वा. अ. ७–२७)

स्तेय–प्रमादसे बिना दी हुई वस्तुको ग्रहण कर लेलेना। (सर्वा. अ. ७–१५)

स्तूप–अकृत्रिम मंदिरोंके [illegible] आगे जो स्तूप होते हैं उनका पीठ (चबूतरा) [illegible] योजन ऊंचा होता है। [illegible] सहित उस पीठके साथ होती है। [illegible] मेखला का [illegible] ५४ योजन [illegible], ऊंचा, चौड़ा [illegible] होता है। [illegible] जिनबिंब स्थापित होता है। (त्रि. गा. [illegible])

[illegible]

स्थविरकल्पी–जो मुनि संघके संघकी रीति व प्राचीन परम्पाराकी मर्यादाको बतावे वह स्थविर मुनि है (मू. गा. १९६); जो साधु एक विहारी नहीं होसके वे स्थविर कल्पी कहलाते हैं। उत्तम संहननवाला, परीषह विजयी, सिद्धांतका ज्ञाता, तपस्वी ही एक विहारी होता है। (मू. गा. १४९)

स्थलगता चूलिका–दृष्टिवाद अंगकी दूसरी चूलिका जिसमें मेरु पर्वत भूमिमें प्रवेश करना, शीघ्र गमन आदिके मंत्रतंत्र हैं; इसके २०९८९१०० मध्यमपद हैं। (गो. जी. ६२१–२४)

स्थान–योग स्थान, मार्गणा स्थान, जीवसमास स्थान आदि अनेक प्रकार होते हैं, देखो भिन्न२ शब्द।

स्थानकपंथी / **स्थानकवासी** } श्वेतांबरोंमें वह आम्नाय जो मूर्ति नहीं पूजते हैं, जिसके साधु मुंहपट्टी रखते हैं।

स्थान लाभ क्रिया–दीक्षान्वय क्रियाओंमें तीसरी क्रिया। जब अजैनको उपवास कराकर गृहस्थाचार्य जैन धर्मकी दीक्षा देता है व णमोकार मंत्र देकर पवित्र करता है। देखो विधि (गृ. अ. ९–३)

स्थानांग–एकसे ले अनेक भेदरूप जीव पुद्गलादिका कथन जिसमें हो, द्वादशांग वाणीका तीसरा अंग, इसके ४२००० मध्यम पद हैं। (गो. जी. गा. ३५८)

स्थापन–पूजन करनेके पहले जिसकी पूजन करते हैं उसको हृदयमें स्थापन करते हुए कहते हैं। " अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः "

स्थापना निक्षेप–तदाकार व अतदाकार पदार्थमें वह यह है इस प्रकार संकल्प करना जैसे श्री पार्श्वनाथ भगवानके प्रतिबिंबको पार्श्वनाथ कहना तदाकार स्थापना है। सतरंजके हाथीको हाथी कहना अतदाकार स्थापना निक्षेप है। (जै.सि.प.नं.१०८)

स्थापना सत्य–अन्यमें अन्यकी स्थापना करना व उसे वैसा कहना जैसे चन्द्रप्रभकी मूर्तिको चंद्रप्रभ कहना। देखो " सत्यवचन "

स्थापनाक्षर–शब्दोंके अनुसार देशकी प्रवृत्तिके अनुकूल अक्षरोंका आकार लिखना जैसे जीव शब्दकी स्थापना जी व इन दो अक्षरोंकी। संस्कृत, इंग्रेजी, उर्दू लिपि स्थापनाक्षर है। (गो. जी. ३३३)

स्थापित दोष–भोजन जो एक घरसे दूसरे घरमें या स्थानमें लेजाकर रखा हुआ हो सो साधुको देना (भ. पृ. १०३), कोई मकान अपने वास्ते बनाया था फिर यह संकल्प करे कि यह मकान साधु ही के वास्ते है औरके लिये नहीं सो वस्तिका स्थापित दोष सहित है। (भ.पृ. १९३)

स्थावर कायिक-स्पर्शनेंद्रिय सहित पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति कायधारी जीव। इनके चार प्राण होते हैं। स्पर्शनेंद्रिय, काय बल, आयु, श्वासोच्छ्वास। जब जीव निकल जाता है तब स्थावर काय कहते हैं, जब विग्रह गतिमें जीव स्थावर कायमें आनेको हो तब उसे स्थावर जीव कहते हैं। (सर्वा. अ. २–१३)

स्थावर नाम कर्म–जिसके उदयसे स्थावरका शरीर धारे। (सर्वा. अ. ८–११)

स्थिति–गमनका अभाव, ठहरना। द्रव्योंकी स्थितिमें उदासीन निमित्त कारण अधर्म द्रव्य है। (गो. जी. गा. ६०४)

स्तिति भोजन–साधुके १८ मूल गुणोंमें १७ वां। अपने हाथमें ही भीत आदिके सहारे विना चार अंगुलके अन्तरसे पग रखकर खड़े होते हुये शुद्ध भूमिमें आहार लेना। (मू. गा. १४)

स्थिति आयाम–कर्मकी स्थितिका प्रमाण व काल। (क्षि. पृ. २६)

स्थितिकरण अंग–अपनेको या दूसरोंको धर्म मार्गसे डिगते हुये पुनः स्थापित करना। यह सम्यग्दर्शनका छठा अंग है। (र. श्लो. १६)

स्थितिकरण कल्प–१० प्रकार–देखो "श्रमण कल्प।"

स्थितिकांडक–कांडक पर्व या स्थानको कहते हैं। जैसे साठेमें पर्व हो जितने स्थानोंमें स्थिति घटे वे स्थितिकांडक हैं। (ल. पृ. २६)

स्निग्ध नाम कर्म–जिसके उदयसे शरीर चिकना हो। (सर्वा० अ० ८–११)

स्पर्द्धक–अनुभाग शक्तिके अविभागी अंशको अविभागी प्रतिच्छेद कहते हैं। समान अविभाग प्रतिच्छेदोंके समूहको वर्ग या परमाणु। इन वर्गोंके समूहको वर्गणा तथा वर्गणाओंके समूहको स्पर्द्धक कहते हैं। (जै. सि. प्र. नं. ३७९–३८०)

स्पर्द्धकवर्गणाशलाका–एक स्पर्द्धकमें जितनी वर्गणाएं हों उनकी संख्या (क० पृ० ७)

स्पर्श नाम कर्म–जिसके उदयसे शरीरमें स्पर्श हो। ठंडा, गर्म, रूखा, चिकना, हलका, भारी, नरम या कठोर। (सर्वा० अ० ९. १०)

स्पर्शन क्रिया–आस्रवकी २५ क्रियाओंमें १२ वीं। प्रमादसे स्पर्श करना। (सर्वा. अ. ६–५)

स्पर्शनेन्द्रिय–वह इंद्रिय जिसके द्वारा स्पर्शका ज्ञान हो। सम्पूर्ण शरीर द्रव्य स्पर्शेंद्रिय है। जाननेकी शक्ति व उपयोगका व्यापार भाव स्पर्शेंद्रिय है। इसका उत्कृष्ट विषय एकेंद्रियके ४०० धनुष, द्वेन्द्रियके ८००, तेन्द्रियके १६००, चौन्द्रियके ३२००, असैनीपंचेंद्रियके ६४००, सैनीके ९ योजन है। (गो. जी. १६८–१६९)

स्फटिक–सौधर्म ईशान स्वर्गका १८ वां इन्द्रक विमान (त्रि. गा. ४६९) गंधमादन गजदंतपर छठा कूट (त्रि. गा. ७४१), इसपर भोगंकरा व्यंतर देवी वसती है। रुचक पर्वतकी दक्षिण दिशामें पहला कूट जिसपर इच्छा दिक्कुमारी देवी वसती है। (त्रि० गा० ८–९–५०–१)

स्फटिका–रत्नप्रभा पृथ्वीके पहले खरभागमें १२वीं पृथ्वी, जो १००० योजन मोटी है, जिसमें भवनवासी व व्यंतरदेव रहते हैं। (त्रि. गा. १७)

स्फोट जीविका–आतशबाजी पटाके आदि व बारूदकी चीजें वेचकर आजीविका करना। (सा० अ० ५–२१–२३)

स्मरतीव्राभिनिवेश–काम भोगकी तीव्र लालसा रखनी। यह ब्रह्मचर्य अणुव्रतका पांचवा अतीचार है। (सर्वा० अ० ७–२८)

स्मृति–पहले जाने हुए पदार्थकी याद। (जै० सि० प्र० नं० १८)

स्मृत्यंतराधान–दिग्व्रतका पांचवां अतीचार। जो दिशाओंकी मर्यादा की हो उसको स्मरण न रखना। (सर्वा० अ० ७–३०)

स्मृत्यनुपस्थान–सामायिक शिक्षाव्रतका व प्रोषधोपवास शिक्षाव्रतका पांचवा अतीचार। सामायिककी विधि, पाठ तथा उपवासके दिन धर्मक्रियाओंको भूल जाना। (सर्वा० अ० ७. ३३–३४)

स्यात्–कथंचित् किसी अपेक्षासे।

स्याद्वाद–किसी अपेक्षासे किसी बातको कहना। देखो " सप्त भंग "

स्याद्वाद मंजरी–ग्रंथ सं० मुद्रित।

स्याद्वादी–स्याद्वादके द्वारा पदार्थके अनेक रूप यथार्थ समझनेवाला जैनी।

स्रोतावाहिनी–सीतोदा नदीके दक्षिण तटपर तीसरी विभंगा नदी। (त्रि. गा. ६६८)

स्वकचारित्र भ्रष्ट–अपने आत्मीक अनुभवसे गिरा हुआ।

स्वकं समयं–स्वात्म तल्लीनता।

स्वदारा संतोष–चौथा अणुव्रत–अपनी विवाहित स्त्रीमें संतोष रखना, परस्त्री त्याग। (रत्न. श्लो. ५९)

स्वद्रव्यादि ग्राहक द्रव्यार्थिकनय–जो स्वद्रव्यादिचतुष्टयकी अपेक्षासे द्रव्यका सत् स्वरूप ग्रहण करे। जैसे स्वचतुष्टयकी अपेक्षा द्रव्य है। (सि. द. पृ. ८)

स्वभाव अर्थपर्याय–विना दूसरे वैभाविक निमित्तके जो अर्थपर्याय हो या प्रदेशत्वगुणके सिवाय अन्य गुणोंमें विकार हो। जैसे जीवको केवलज्ञान या अगुरुलघुगुणमें षट्गुणी हानि वृद्धि। (जै. सि. प्र. नं. १९४–९६)

स्वाति–व्यंतरदेव जो हैमवत क्षेत्रके वृत्ताकार नाभिगिरिपर वसता है। (त्रि० गा० ७१९)

स्वाति संस्थान–नामकर्म जिसके उदयसे शरीरका आकार जो ऊपर छोटा हो व नीचे बड़ा हो।

(सर्वा० अ० ८–११)

स्वामित्व–अधिकारीपना।

स्वाध्याय–शास्त्रके अर्थका मनन; यह तप है क्योंकि इच्छाका निरोध हो धर्मध्यान होजाता है। इसके पांच भेद हैं। (१) वांचना-पढ़ना, (२) पृच्छना–शंकाको पूछना, (३) अनुप्रेक्षा–बारबार चिंतवन करना, (४) आम्नाय–शुद्ध शब्द अर्थ घोषना, (५) धर्मोपदेश–धर्मका भाषण करना।

(सर्वा० अ० ९–२०)

स्वानुभव–अपने आत्माके स्वभावका स्वाद लेना।

स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा–प्रा. भाषा सहित मुद्रित

स्वायंभुव व्याकरण–श्री ऋषभदेव प्रथम तीर्थंकर रचित व्याकरण। (आदि. प. १६–११२)

स्वार्थानुमान–अनुमान ज्ञान। जो अनुमान प्रमाणसे हो।

स्वाहा–शांतिवाचक मंत्र।

ह

हतपरापर–जिसने अपार संसारका नाश कर दिया

हनुमान–१८ वें कामदेव, मांगीतुंगीसे मोक्ष, रामचन्द्रके समयमें विद्याधर (वानरवंशी)।

हयग्रीव–भरतके आगामी उत्सर्पिणीके ८ वें प्रतिनारायण। (त्रि. गा. ८८०)

हरगुलाल पं०–अग्रवाल खतौली–ज्ञानचित्तवल्लभ वचनिका कर्ता। (दि. ग्रं. नं. १६२)

हरजीमल–पं०, चर्चाशतक टीकाके कर्ता।

(दि. ग्रं. नं. १६३)

हरिकण्ठ–भरतके आगामी उत्सर्पिणीके दूसरे प्रतिनारायण। (त्रि. गा. ८८९)

हरिकांत–स्तनितकुमार भवनवासियोंके इन्द्र।

(त्रि. गा. २११)

हरिकांता–जंबुद्वीपमें महा हिमवत् पर्वतके महापद्म द्रहसे निकली नदी जो हरिक्षेत्रमें बहकर पश्चिमको गई है (त्रि. गा. ५७८) महा हिमवन पर्वतपर छठा कूट। (त्रि. गा. ७२४)

हरिकिशनलाल–पं०, ईसागढ़ निवासी, पंचकल्याण पूजाके कर्ता। (दि. ग्रं. नं. १६४)

हरिकूट–निषद्ध कुलाचलपर पांचवां कूट। (त्रि. गा. ७२५) विद्युतप्रभ गजदन्तपर नौमा कूट। (त्रि. गा. ७४०)

हरिक्षेत्र–जंबुद्वीपमें तीसरा क्षेत्र जहां मध्यम भोगभूमि है। (त्रि. गा. ५६४–६९१)

हरिचन्द्र–भरतके आगामी उत्सर्पिणीमें चौथे बलिभद्र। (त्रि. गा. ८७८)

हरिचन्द्र पं०–(सं० १८३३) पंचकल्याणक महामहोत्सव छंदके कर्ता। (दि. ग्रं. नं. १६५)

हरिचन्द्र–महाकवि (कायस्थ) धर्मशर्माभ्युदय काव्यके कर्ता। (दि. ग्रं. नं. ३८८)

हरित–जंबूद्वीपके निषद्ध पर्वतके तिगंछ द्रहसे निकलकर हरिक्षेत्रमें बहकर पूर्वको गई है। (त्रि. गा. ५७८) सौधर्म ईशान स्वर्गोंका २९ वां इन्द्रक विमान (त्रि. गा. ४६५)

हरिताल–मध्य लोकके अंतके १६ द्वीपोंमें दूसरा द्वीप व समुद्र (त्रि० गा० ३०५–८) इस द्वीपमें पिशाच व्यंतरोंके नगर हैं (त्रि० गा० २८३)

हरिदामा–स्वर्गके इंद्रोंकी घोड़ोंकी सेनाका प्रधान (त्रि० गा० ४९६)

हरिद्र–सुमेरु पर्वतके पांडुक वनमें तीसरे पश्चिम दिशामें जिन मंदिरका नाम (त्रि० गा० ६२०)

हरिनन्दि–आचार्य नन्दिसंघ सं० ११९६।

(दि. ग्रं. नं. ३८७)

हरिभद्र–पट्‌ पंचास्तिकाय भा० के कर्ता।

(दि. ग्रं. नं. ३८९)

हरिराय पं०–हरिवंश पुराण छं. पंच कल्याणकके कर्ता। (दि. ग्रं. नं. १६४)

हरिवंश–कौशाम्बीके राजा सुमुखने सेठ वीरककी स्त्री वनमालाको हरण किया। इन दोनोंने पतिपत्नी

भावसे रहकर एक दफे मुनि दान दिया, इस पुण्यसे यह विजयार्द्धमें जन्मे। सुमुखका जीव हरिपुरके स्वामी पवनवेगका पुत्र 'आर्य' हुआ। वनमालाका जीव मेघपुरके स्वामी पवनवेगकी पुत्री मनोहरी हुई। दोनोंका विवाह होगया। सेठ वीरक जिसकी स्त्री वनमाला थी मुनि होगया व प्रथम स्वर्गमें देव हुआ, उसने अवधिज्ञानसे विचार कर जब ये दोनों हरिक्षेत्रमें क्रीड़ा कर रहे थे तब इनको विद्या हरली और दक्षिण भरतके चम्पापुरीमें लाके रख दिया। वहांके राजा हुए उनके हरि नामका पुत्र हुआ। यह परम तेजस्वी था। यही हरिवंशका प्रथम राजा हुआ। यह वृतान्त श्री शीतलनाथ तीर्थंकरके समयका है। (ह. अ. १४–१५ पृ. १६९)

हरिवर्ष–हरिक्षेत्र जंबूद्वीपमें तीसरा, महाहिमवत् कुलाचलका सातवां कूट, व निषध पर्वतका तीसरा कूट। (त्रि. गा. ७६४–७२५)

हरिवर्षक–हरिक्षेत्रका निवासी।

हरिवंशपुराण–जिनसेनाचार्यकृत सं० शाक ७०५ भाषा टीका दोनों मुद्रित हैं।

हरिश्चंद्र–पं० धर्मशर्माभ्युदय काव्य टीका (२०००) (दि. ग्र. नं. ३९०–३८९)

हरिषेण–स्तनितकुमारोंका इन्द्र (त्रि.गा.२११) भरतके दसवें चक्रवर्ती। (त्रि. गा. ८१५)

हरिषेण–बृहत् आराधना कथाकोष, धर्मपरीक्षाके कर्ता, (२) कवि, धर्मपरीक्षा प्राकृत, श्रावकाचार, मुनि सुव्रत पुराणके कर्ता (दि. ग्र. नं. ३८४–३८६)

हरिसह–माल्यवत् गजदंतपर नौमा कूट। (त्रि. गा, ७३८)

हवन–होमविधि व कुंडादि वर्णन व मंत्रादि। देखो–(गृ. अ. ४)

हस्तपुट–हाथकी मुट्ठी न बांधना, हाथ सीधा रखना। (मू. गा. [illegible])

हस्तिनापुर–मेरठजिला। यहांसे २२ मील, श्री शांति, कुंथु, अरह, १६. १७, १८वें तीर्थंकर वर्तमान तीर्थंकरोंके जन्म व [illegible] हुए, यहां मंदिर धर्मशाला है, यहीं राजा श्रेयांसने ऋषभदेव तीर्थंकरको पहला आहार दिया था। (वा. द. पृ. २९)

हस्तिचंद्र–आचार्य दि० सं० १४८। (दि. ग्रं. ३९०)

हर्बर्ट वारन–जैन दर्शन लंदन 'जैनिज्म' के कर्ता।

हस्तिमल्ल–(१) कवि (गोविन्दभट्टका पुत्र, सुभद्रा नाटक प्रा०, विक्रान्तकौरवीय नाटक, अंजना पवनंजय नाटक, मैथिलि परिणय नाटकका कर्ता, (२) पं०, गजशास्त्र पूजा व [illegible] कोषके कर्ता। (दि० ग्रं. नं. ३९२, ३९१)

हा ! मा ! धिक्–भरतक्षेत्रमें वर्तमान पांच कुलकरोंने मात्र हा ! इतना ही दंड नियत किया। फिर पांच कुलकरोंने हा ! मा ! इतना ही दंड रक्खा, फिर ऋषभदेव तीर्थंकर तक पांच कुलकरोंने हा ! मा ! धिक् यही दंड अपराधीको दिया। अर्थ–हाय, मत कर, तुमको धिक्कार हो। (त्रि. गा. ७९८)

हास्य–जो कषाय जिसके उदयसे हास्य हो। (सर्वा. अ. ८–९)

हास्य त्याग–हास्यकारी बोली छोड़ना, हास्यको न करना। (सर्वा अ० ७–५)

हा हा–गंधर्व व्यंतरोंका पहिला भेद। (त्रि. गा. २६१)

हिमकूट [illegible]–[illegible] २६ [illegible] (त्रि. गा. ७०५–७) [illegible] (त्रि. गा. २८१)

हिम–[illegible] (त्रि. गा. १६८)

हिमवन्–[illegible] (त्रि. गा. ५६०–६१)

हिमवान–[illegible] (त्रि. गा. [illegible])

[illegible]

[illegible]

हिंसा—प्रमाद सहित (कषाययुक्त) मन, वचन, कायके द्वारा द्रव्य व भाव प्राणोंको कष्ट देना व उनका घात करना "प्रमत्तयोगात् प्राणव्यपरोपणं हिंसा" (सर्वा. अ. ७-१३) आत्माका चेतना व शांत भाव—भाव प्राण है। इंद्रिय, बल, आयु, श्वासोछ्वास द्रव्य प्राण हैं। देखो 'प्राण' 'जीव'। हिंसा दो प्रकारकी है। संकल्पी—जो हिंसाके ही अभिप्रायसे हो, आरंभी—जहां हिंसाका अभिप्राय न होकर अन्य अभिप्राय हो परन्तु हिंसा लाचारीसे करनी पड़े। उसके तीन भेद हैं। उद्यमी—जो न्यायोचित असि, मसि, कृषि, वाणिज्य, शिल्प व विद्या कर्म द्वारा आजीविका साधनमें हो। गृहारम्भी—गृहके कार्योंमें रसोई, पानी आदिमें हो। ३ विरोधी—जो कोई दुष्ट, शत्रु, चोर, डाकू आनेपर आक्रमण करे व न माने उनको रोकनेमें जो हिंसा हो। साधु, महाव्रती सर्व हिंसाका त्यागी होता है। गृहस्थ जहांतक आठमी आरम्भ त्याग प्रतिमामें न पहुंचे संकल्पीका नियमसे त्यागी होता है। आरम्भीको यथाशक्ति बचाता है व्यर्थ नहीं करता है। (गृ. अ. ८)

हिंसा अतीचार—संकल्पी आदि अहिंसा अणुव्रतके पांच अतीचार हैं (१) बन्ध—कषायवश हो किसीको बन्धनमें डालना (२) वध—किसीको कषायसे मारना पीटना (३) छेद—कषायवश अंगोपांग छेदना (४) अतिभारारोपण—मर्यादासे अधिक बोझा गाड़ी आदिपर लादना। अन्नपान निरोध—अपने आधीन पशु व मानवोंको अन्नपान न देना व कम देना। (सर्वा. अ. ७-२५)

हिंसा दान—हिंसाकारी शस्त्र आदि मांगे देना अनर्थदंड है (सर्वा. अ. ७-२१)

हिंसानन्द—हिंसा करने, कराने वा उसकी अनुमोदनामें आनन्द मानना, रौद्रध्यान पहला नर्कगतिका कारण है। (सर्वा. अ. ९-३५)

हीनाधिक मानोन्मान—अचौर्य अणुव्रतका चौथा अतीचार, तोलने मापनेके बांट कम व अधिक रखना (सर्वा० अ० ७-२७)

हीयमान अवधिज्ञान—जो अवधिज्ञान संक्लेश परिणामोंसे घटता जावे। (सर्वा. अ. १-२१)

हुंडक संस्थान नामकर्म—जिसके उदयसे शरीरका आकार बिढंगा हो। (सर्वा. अ. ८-११)

हीराचंद—अमोलक, फलटनवाले पं० ब्रह्मचारी हुमड़। पंचपूजा व हिन्दी व मराठी कविताके कर्ता (दि० ग्रं० नं० १६७)

हीरानंद—आगराके पं०। पंचास्तिकाय छंदके कर्ता (सं०१७१८) (दि० १६८)

हीरालाल अग्रवाल बड़ौतवाले—चंद्रप्रभ पुराण छंद तत्वार्थ छंद ७१४ पाठ पूजा (दि. ग्रं. १६९)

हुंडावसर्पिणी काल—कई अवसर्पिणी बीतनेपर यह काल आता है तब विशेष बातें होती हैं जैसे चक्रीका अपमान, शलाका पुरुषोंके जीवोंकी अपेक्षा संख्याकी कमी, तीर्थंकरोंका अयोध्या सिवाय अन्यत्र जन्म व सम्मेदशिखर सिवाय अन्यत्र मोक्ष। १४८ चौबीसी होजाती हैं तब एक हुंडक काल आता है। उस समय ढाईद्वीपमेंसे छः मासतक कोई जीव मुक्त नहीं जाता है। (सि. द. पृ. १०१ व च. स. नं० १३८)

हुकमचंद—राज्यमान्य रा० ब० सरसेठ इन्दौर—विद्यालय, बोर्डिंग, अस्पताल, धर्मशाला आदि संस्थाओंके संस्थापक, दानवीर, भा० दि० जैन तीर्थक्षेत्र कमेटीके सभापति।

हुस्ने अव्वल—उर्दूमें जैनधर्म जिनेश्वरदास मायल कृत मुद्रित।

हूहू—गंधर्व व्यंतरोंका दूसरा भेद। (त्रि. गा. ६८३)

हेतु—साधनका वचन, जैसे कहना क्योंकि यहां धूम दिखता है। (जै. सि. प्र. नं. ८१)

हेतु भेद—केवलान्वयी—जिस हेतुमें मात्र अन्वय दृष्टान्त हो जैसे जीव अनेकांत स्वरूप है क्योंकि सत स्वरूप है। जो जो सत्स्वरूप होता है वह वह अनेकांत होता है, जैसे पुद्गलादि। २—केवल व्यतिरेकी, जिसमें मात्र व्यतिरेक या निषेधरूप दृष्टान्त

हो जैसे जिन्दा शरीरमें आत्मा है क्योंकि इसमें श्वासोच्छ्वास है। जहां२ आत्मा नहीं होता है वहां२ श्वासोच्छ्वास भी नहीं होता जैसे चौकी। अन्वय व्यतिरेकी—जिस हेतुमें अन्वय व व्यतिरेकी दोनों दृष्टांत हों। जैसे पर्वतमें अग्नि है क्योंकि इसमें धूम है, जहां२ धूम है वहां२ अग्नि है, जैसे रसोई-घर, व जहां अग्नि नहीं है वहां धूम नहीं है, जैसे तालाब। (जै. सि. प्र. नं. ६९–७०–७२)

हेत्वाभास—जो हेतु सदोष हो।

हेत्वाभास भेद—हेत्वाभासके चार भेद हैं (१) असिद्ध—जिस हेतुको अभावका निश्चय हो व सद्भावके होनेमें संदेह हो जैसे कहना शब्द नित्य है क्योंकि नेत्रका विषय है। यह असिद्ध है क्योंकि शब्द कानका विषय है नेत्रका नहीं। (२) विरुद्ध जिसकी व्याप्ति साध्यसे विरुद्ध पदार्थसे हो जैसे कहना शब्द नित्य है क्योंकि परिणामी है। यहां परिणामीपनाकी व्याप्ति अनित्यके साथ है। नित्यपनेके लिये हेतु विरुद्ध है। (३) अनैकान्तिक (व्यभिचारी) जो हेतु पक्ष, विपक्ष, सपक्ष तीनोंमें व्यापै। साध्यके रहनेका जहां संदेह हो वह पक्ष है। जहां साध्यके रहनेका निश्चय हो वह विपक्ष है। जैसे कहना इस कोठेमें धूम है क्योंकि इसमें अग्नि है। यहां अग्निपना हेतु संदेह रूप है। धुआं गीले इन्धनमें निकलेगा। अग्निसे तपे लोहेमें नहीं निकलेगा। कोठा—पक्ष है ईंधन सपक्ष है, गर्म लोहा विपक्ष है। (४) अकिंचित्कर—जो कुछ भी कार्य न करसके जैसे कहना अग्नि गर्म है क्योंकि स्पर्शे-न्द्रियसे ऐसा ही प्रतीत होता है। यह सिद्ध साधन अकिंचित्कर है। तथा जो प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम व स्ववचन बाधित हो वह बाधित है।
(जै. सि. प्र. नं. ७४–७५)

हेमकूट—विजयार्द्धकी दक्षिण श्रेणीका ४० वां नगर। (त्रि. गा. ७००)

हेमचन्द्र—कवि स्वयंभूदेव रामायणके कर्ता, (१) म० हरिवंशपुराण, त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र कर्ता (२) देव—रत्नपाल काव्य, विश्वप्रकाश कोष, शब्द प्रकाश कोष, श्रुतस्कंध प्र०, मदन पराजयके कर्ता। (दि० ग्रन्थ नं० १९१–१९२–१९३)

हेमराज—पं० सं० १७०९, नयचक्र वचनिका, प्रवचनसार वचनिका, पंचास्तिकाय वचनिका, कर्मकांड छन्द, प्रवचनसार छन्द, चौरासी बोलनी, गोम्मटसार संक्षेप वचनिकाके कर्ता। (दि. ग्रन्थ नं. १७०)

हैमवत—जंबू द्वीपका दूसरा क्षेत्र। यहां जघन्य भोग भूमि है (त्रि. गा. ५६३–५६४) इस क्षेत्रके मध्यमें नाभिगिरि है। (त्रि. ७१९) महा हिमवन पर्वतपर तीसरा कूट। (त्रि. गा. ७२४) कनक पर्वतके दक्षिण दिशामें चौथा कूट जिसपर पद्मावती देवी बसती है। (त्रि. गा. ९५२)

हैरण्यवत क्षेत्र—जम्बूद्वीपका छठा क्षेत्र, जघन्य भोगभूमि।

हैरण्य—शिखरी पर्वतपर तीसरा कूट। (त्रि० गा० ७२८); रुक्मी पर्वतपर सातवां कूट। (त्रि० गा० ७२७)

हैमवतक—हिमवन् पर्वतपर १० वां कूट। (त्रि० गा० ७२१)

होम—देखो "हवन"

ह्रद—कुण्ड।

ह्रस्वगर्भ—विजयार्द्धकी उत्तर श्रेणीका [illegible] (त्रि० गा० [illegible])

ह्रदपंचमहद—विदेह [illegible] (त्रि० गा० [illegible])

ह्री—जम्बूद्वीपके महा हिमवन् पर्वतके महा पद्म ह्रदकी निवासिनी देवी। ([illegible]) [illegible] (त्रि० गा० [illegible]) [illegible] [illegible] (त्रि० गा० [illegible]) [illegible] (त्रि० गा० [illegible])